(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के नियमसार शास्त्र पर सन् १९७१ के प्रवचन)

नियम का सार

भाग ३

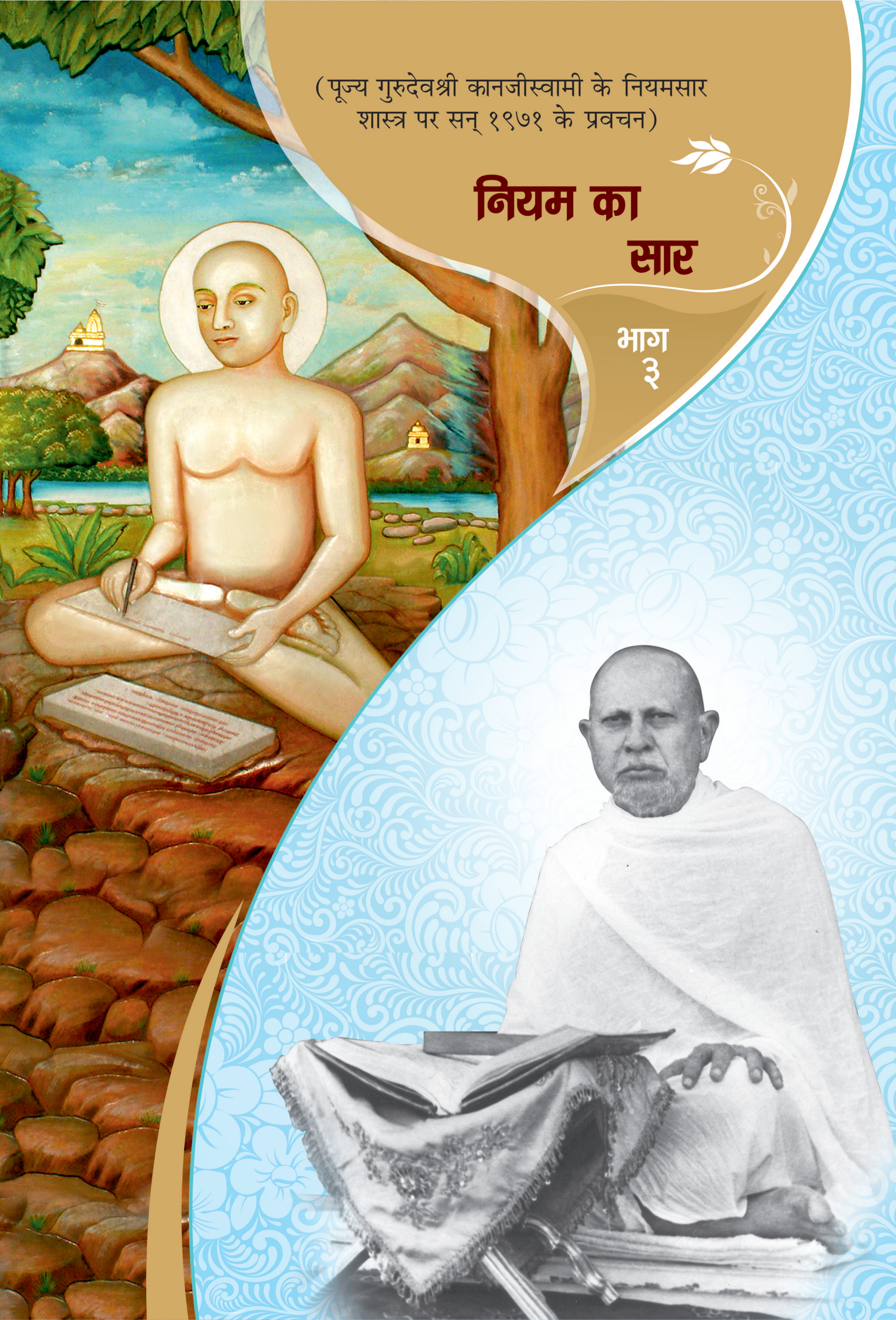

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

नियम का सार

(भाग 3)

श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री नियमसार परमागम के परमार्थ प्रतिक्रमण अधिकार, तथा निश्चय प्रत्या यान अधिकार पर अध्यात्म युगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के ईसवी सन् 1971 के वर्ष के धारावाहिक शब्दशः प्रवचन

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री दिग बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250

फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मु बई-400 056

फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत 2079 | **वीर संवत 2549** | **ई. सन 2023**

—: प्रकाशन :—
ज्ञानपर्व श्रुतपंचमी (ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी) तथा
श्री सीमन्धरस्वामी दिगम्बर जिनमन्दिर, विले पार्ला के
वार्षिक स्थापना दिवस **दिनांक 24 मई 2023** के अवसर पर

—: प्राप्ति स्थान :—
1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) – 364250   फोन : 02846–244334
2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई–400 056
फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046
www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :
विवेक कम्प्यूटर
अलीगढ़।

ॐ

સહજ ચિદાનંદ.

प्रकाशकीय

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।

मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैन धर्मोस्तु मंगलं।।

भगवान महावीर और गौतम गणधर के बाद जिनके नाम का उल्लेख किया जाता है, ऐसे भरत के समर्थ आचार्य, साक्षात्, सदेह विदेहक्षेत्र जाकर सीमन्धर भगवान की दिव्यध्वनि का प्रत्यक्ष रसपान करनेवाले श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव महान योगीश्वर हैं। अनेक महान आचार्य उनके द्वारा रचित शास्त्रों के आधार देते हैं, इससे ऐसा प्रसिद्ध होता है कि अन्य आचार्य भी उनके वचनों को आधारभूत मानते हैं।

वे निर्मल पवित्र परिणति के धारक तो थे ही, परन्तु पुण्य में भी समर्थ थे कि जिससे सीमन्धरभगवान का साक्षात् योग हुआ। महाविदेह से वापस आने के पश्चात् पोन्नूर तीर्थधाम में साधना करते-करते उन्होंने अनेक शास्त्रों की रचना की। जिसमें श्री समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, अष्टपाहुड़—यह पाँच परमागम तो प्रसिद्ध हैं ही, परन्तु इनके उपरान्त भी अनेक शास्त्रों की रचना उन्होंने की है।

'श्री समयसार' इस भरतक्षेत्र का सर्वोत्कृष्ट परमागम है। उसमें नवतत्त्वों का शुद्धनय की दृष्टि से निरूपण करके जीव का शुद्धस्वरूप प्रकाशित किया है। 'श्री प्रवचनसार' में नाम के अनुसार जिन-प्रवचन का सार झेला है और उसे ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन, ज्ञेयतत्त्व प्रज्ञापन और चरणानुयोगसूचक चूलिका नामक तीन अधिकारों में विभाजित किया है। 'श्री नियमसार' में मुख्यरूप से शुद्धनय से जीव, अजीव, शुद्धभाव, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना, प्रायश्चित, समाधि, भक्ति, आवश्यक, शुद्धोपयोग इत्यादि का वर्णन है। 'श्री पंचास्तिकायसंग्रह' में कालसहित पाँच अस्तिकायों का (अर्थात् छह द्रव्यों का) और नवपदार्थपूर्वक मोक्षमार्ग का निरूपण है। तथा 'श्री अष्टपाहुड़' एक दार्शनिक ग्रन्थ है, जिसमें सम्यक् रत्नत्रय एक ही मोक्षमार्ग है, इसकी दृढ़तापूर्वक स्थापना की गयी है।

श्री नियमसार परमागम मुख्यरूप से मोक्षमार्ग के निरूपचार निरूपण का अनुपम ग्रन्थ है। 'नियम' अर्थात् जो अवश्य करनेयोग्य हो, वह अर्थात् रत्नत्रय। 'नियमसार' अर्थात् नियम को सार अर्थात् शुद्ध रत्नत्रय। इस शुद्ध रत्नत्रय की प्राप्ति परमात्मतत्त्व का आश्रय करने से ही होती है। निगोद से लेकर सिद्ध तक की सर्व अवस्थाओं में—शुभ, अशुभ और शुद्ध विशेषों में—रहा हुआ जो नित्य-निरंजन टंकोत्कीर्ण शाश्वत् एकरूप शुद्ध द्रव्यसामान्य, वह परमात्मतत्त्व है। वही शुद्ध अन्त:तत्त्व, कारणपरमात्मा, परमपारिणामिकभाव इत्यादि नामों से कहा जाता है। इस परमात्मतत्त्व की उपलब्धि अनादि काल से अनन्त-अनन्त दु:ख को अनुभव करते हुए जीव ने एक क्षणमात्र भी नहीं की और इससे सुख के लिये उसके सर्व प्रयत्न (द्रव्यलिंगी मुनि के व्यवहाररत्नत्रय तक) सर्वथा व्यर्थ गये हैं। इसलिए इस परमागम का एकमात्र उद्देश्य जीवों को परमात्मतत्त्व की उपलब्धि अथवा आश्रय कराने का है।

इस शास्त्र में भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव की प्राकृत गाथाओं पर तात्पर्यवृत्ति नाम की संस्कृत टीका लिखनेवाले मुनिवरश्री पद्मप्रभमलधारिदेव हैं। वे श्री वीरनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती के शिष्य हैं और विक्रम की १३वीं शताब्दी में हो गये हैं। श्री पद्मप्रभमलधारिदेव ने भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव के हृदय में रहे हुए परम गम्भीर आध्यात्मिक भावों को अपने अन्तर्वेदन के साथ मिलानकर इस टीका में स्पष्ट रीति से अभिव्यक्त किया है। इस टीका में आनेवाले कलशरूप काव्य अतिशय मधुर हैं और अध्यात्म मस्ती से तथा भक्तिरस से भरपूर हैं। टीकाकार मुनिराज ने गद्य तथा पद्यरूप से परमपारिणामिकभाव को तो बहुत-बहुत गाया है। पूरी टीका मानो कि परमपारिणामिकभाव का और तदाश्रित मुनिदशा का एक महाकाव्य हो, ऐसा मुमुक्षु हृदय को मुदित करता है। संसार दावानल समान है और सिद्धदशा तथा मुनिदशा परम सहजानन्दमय है—ऐसे भाव का एकधारा वातावरण पूरी टीका में ब्रह्मनिष्ठ मुनिवर ने अलौकिक रीति से सृजित किया है और स्पष्टरूप से दर्शाया है कि मुनियों की व्रत, नियम, तप, ब्रह्मचर्य, त्याग, परीषहजय इत्यादिरूप से कोई भी परिणति हठपूर्वक, खेदयुक्त, कष्टजनक और नरकादि के भयमूलक नहीं होती परन्तु अन्तरंग आत्मिक वेदन से होनेवाली परम परितृप्ति के कारण सहजानन्दमय होती है।

श्री नियमसार में भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने 187 गाथायें प्राकृत में रची हैं। उन पर श्री पद्मप्रभमलधारिदेव ने तात्पर्यवृत्ति नामक संस्कृत टीका लिखी है। ब्रह्मचारी श्री शीतलप्रसादजी ने मूल गाथाओं का तथा टीका का हिन्दी अनुवाद किया है। श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा इस नियमसार की मूल गाथायें, उनका गुजराती पद्यानुवाद, संस्कृत टीका और उस गाथा-टीका का अक्षरश: गुजराती-हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया गया है। इस शास्त्रजी में प्रतिपादित विषयवस्तु को निम्नानुसार बारह अधिकारों में प्रस्तुत किया गया है।

(1) जीव अधिकार, (2) अजीव अधिकार, (3) शुद्धभाव अधिकार, (4) व्यवहार चारित्र अधिकार, (5) परमार्थ प्रतिक्रमण अधिकार, (6) निश्चय प्रत्याख्यान अधिकार, (7) परम आलोचना अधिकार, (8) शुद्धनिश्चय प्रायश्चित्त अधिकार, (9) परम समाधि अधिकार, (10) परम भक्ति अधिकार, (11) निश्चय परमआवश्यक अधिकार, (12) शुद्धोपयोग अधिकार।

यह नियमसार ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री को अत्यन्त प्रिय था। आचार्यदेव ने निज भावना के निमित्त रचना की होने से कारणपरमात्मा को बहुत ही घोंटा है, जो गुरुदेवश्री अपने आचार्य गुरुवर की उत्कृष्ट साधना स्मरण कराता था। उन्होंने इस पर बहुत ही गहराई से स्वाध्याय किया था और प्रसिद्ध में बहुत बार इस ग्रन्थ पर प्रवचन भी किये थे। इन प्रवचनों में से अपने पास छह बार के प्रवचन पूरे उपलब्ध हैं। यहाँ प्रस्तुत प्रवचन उनमें से एक बार के प्रवचन हैं, जो वीर संवत् 2497 (ई.स. 1971) वर्ष के दौरान नियमसार शास्त्र पर 202 प्रवचन हैं। पूज्य गुरुदेवश्री को निरन्तर ऐसी भावना रहती थी कि मुमुक्षु नितरते सत्धर्म का श्रवण करके निज कल्याण के मार्ग में आगे बढ़ें। इसी उत्कृष्ट भावना से ऐसे गहन शास्त्र कि जो कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने निज भावना के लिये रचा है, उसे पूज्यश्री ने छह-छह बार प्रसिद्ध सभा में लिया था। ये गहन प्रवचन यहाँ अक्षरशः शास्त्ररूप से प्रस्तुत किये जा रहे हैं। इस प्रकार यह शास्त्र वास्तव में पूज्य गुरुदेवश्री के प्रभावना का ही फल है। अध्यात्म का गहरा रहस्य समझाकर पूज्य गुरुदेवश्री ने जो अपार उपकार किया है, उसका वर्णन वाणी से करने में हम असमर्थ हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना की उपलब्धि सी.डी., डी.वी.डी., वेबसाईट vitragvani.com तथा ऐप (app) जैसे साधनों द्वारा श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विलेपार्ला, मुम्बई द्वारा की गयी है। इस कार्य के पीछे ट्रस्ट की ऐसी भावना है कि वर्तमान के आधुनिक साधनों द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा समझाये गये तत्त्वज्ञान का अधिकतम लाभ सामान्यजन प्राप्त करें कि जिससे यह वाणी शाश्वत् बनी रहे। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचन अक्षरशः ग्रन्थारूढ़ हो, ऐसी भावना के फलस्वरूप नियमसार शास्त्र पर 1971 में हुए 202 प्रवचन यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं। उसमें से नियम का सार, भाग-3 में यहाँ (5) परमार्थ प्रतिक्रमण अधिकार और (6) निश्चय प्रत्याख्यान अधिकार पर हुए धारावाही 38 प्रवचन प्रस्तुत करते हुए हर्ष का अनुभव कर रहे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना को ओडियो टेप में उतारने का महान कार्य शुरु करनेवाले श्री नवनीतभाई झबेरी का इस प्रसंग पर आभार व्यक्त करते हैं तथा श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ ने इस पवित्र कार्य को अविरतधारा से चालू रखा और सम्हालकर रखा, तदर्थ उनके आभारी हैं।

सर्व प्रवचनों को सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने में सावधानी रखी गयी है। वाक्य रचना को पूर्ण करने के लिये कहीं-कहीं कोष्ठक किया गया है। यह प्रवचन सुनकर गुजराती में ग्रन्थारूढ़ करने का कार्य श्री निजेश जैन, सोनगढ़ द्वारा किया गया है। प्रवचनों को जाँचने का कार्य श्रीमती पारुलबेन सेठ, विलेपार्ला; श्री दिनेशभाई शाह, विलेपार्ला; श्री अतुलभाई जैन, मलाड और श्रीमती आरतीबेन जैन, मलाड द्वारा किया गया है। प्रस्तुत प्रवचनों का हिन्दी रूपान्तरण पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां, जिला-भीलवाड़ा (राज) द्वारा किया गया है। इस प्रसंग पर ट्रस्ट सभी के प्रति आभार व्यक्त करता है।

जिनवाणी प्रकाशन का कार्य गम्भीर तथा उत्तरदायित्व पूर्ण होने से अत्यन्त जागृतिपूर्वक तथा उपयोग की एकाग्रतापूर्वक किया गया है। तथापि प्रकाशनकार्य में प्रमादवश अथवा अजागृतिवश कोई भूल रह गयी हो तो त्रिकालवर्ती वीतराग देव-शास्त्र-गुरु के प्रति क्षमायाचना करते हैं। सभी मुमुक्षुओं से निवेदन है कि अशुद्धियों की नोंध ट्रस्ट को प्रेषित करें जिससे आगामी आवृत्ति में सुधार किया जा सके। यह प्रवचन vitragvani.com तथा vitragvani app पर उपलब्ध हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी तथा तद्भक्त प्रशममूर्ति भगवती माता पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के करकमल में सादर समर्पित करते हैं। पाठकवर्ग इन प्रवचनों का अवश्य लाभ लेकर आत्मकल्याण को साधे ऐसी भावना से विराम लेते हैं। इति शिवम्।

ट्रस्टीगण
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,
विलेपाला, मुम्बई

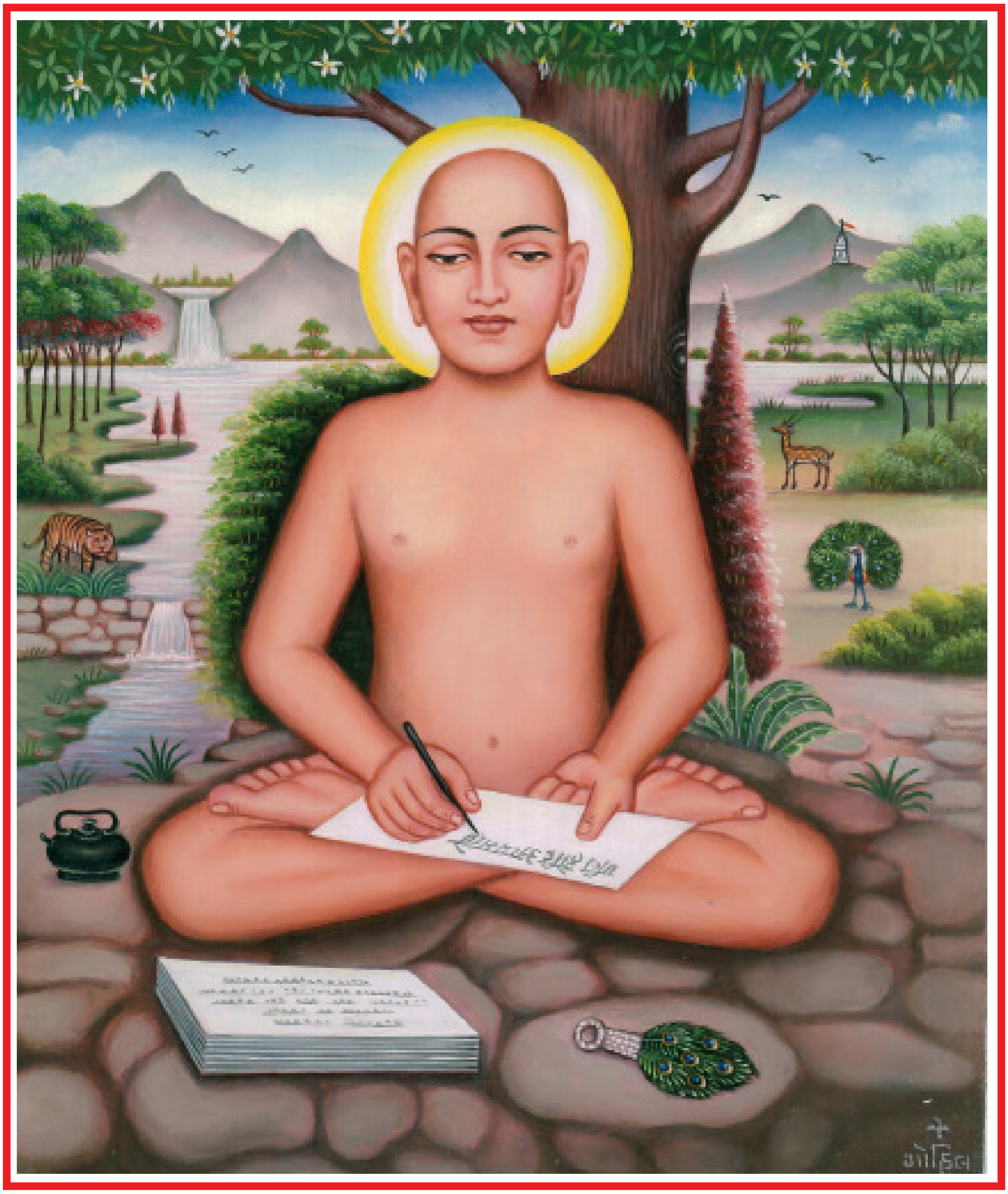

कलिकाल सर्वज्ञ श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव

अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के हार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म**

का श्रावक हूँ। सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अतः भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल **'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर'** का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्‌घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्‌गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर,

पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त

पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन नं.	दिनांक	गाथा / श्लोक नं.	पृष्ठ नं.
व्यवहारचारित्र अधिकार			
६८	१६-०७-१९७१	७७ से ८१	१
६९	१७-०७-१९७१	७७ से ८१	१५
७०	१८-०७-१९७१	७७ से ८१	२८
७१	१९-०७-१९७१	८२, १०९	४२
७२	२०-०७-१९७१	८३, ११०	५६
७३	२१-०७-१९७१	८४, १११	७०
७४	२३-०७-१९७१	८५, ११२	८६
७५	२४-०७-१९७१	८५-८६, ११३-११४	१०१
७६	२५-०७-१९७१	८७, ११५	११६
७७	२६-०७-१९७१	८८, ११६-११७	१३१
७८	२७-०७-१९७१	८९, ११८	१४४
७९	२८-०७-१९७१	८९, ११९	१६०
८०	२९-०७-१९७१	९०, १२०	१७६
८१	३१-०७-१९७१	९१, १२१	१९४
८२	०१-०८-१९७१	९१-९२, १२२	२११
८३	०२-०८-१९७१	९२	२२७
८४	०३-०८-१९७१	९२, १२३	२४५
८५	०४-०८-१९७१	९३, १२३-१२४	२६२
८६	०५-०८-१९७१	९४, १२५-१२६	२७७

निश्चयप्रत्याख्यान अधिकार			
८७	०६-०८-१९७१	९५	२९४
८८	०८-०८-१९७१	९६, १२७	३११
८९	०९-०८-१९७१	९७, १२८	३२७
९०	१०-०८-१९७१	१२९-१३०	३४३
९१	११-०८-१९७१	९८, १३१-१३३	३५८
९२	१२-०८-१९७१	९९	३७४
९३	१३-०८-१९७१	१००, १३४	३९०
९४	१४-०८-१९७१	१००	४०६
९५	१५-०८-१९७१	१०१, १३५-१३६	४२२
९६	१६-०८-१९७१	१०२, १३७-१३८	४३७
९७	१७-०८-१९७१	१०३	४५३
९८	१८-०८-१९७१	१३९	४७०
९९	१९-०८-१९७१	१०४, १४०	४८८
१००	२०-०८-१९७१	१०५, १४१	५०२
१०१	२१-०८-१९७१	१०५-१०६, १४२	५१८
१०२	२२-०८-१९७१	१०६, १४३-१४४	५३६
१०३	२३-०८-१९७१	१४५-१४७	५५१
१०४	२४-०८-१९७१	१४८-१५०	५६५
१०५	२५-०८-१९७१	१०७, १५१	५७९

ॐ

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

नियम का सार

(भाग – ३)

श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्यवर प्रणीत श्री निमयसार परमागम पर अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के ई.स. १९७१ वर्ष के अक्षरशः प्रवचन

आषाढ़ कृष्ण ९, शुक्रवार, दिनांक – १६-७-१९७१
गाथा – ७७ से ८१, प्रवचन-६८

नियमसार, परमार्थप्रतिक्रमण अधिकार पाँचवाँ, निश्चयचारित्र का अधिकार। कलश आ गया है।

अब, सकल व्यावहारिक चारित्र से.... व्यवहारचारित्र अर्थात् पंच महाव्रतादि के विकल्प, उनसे **और उसके फल की प्राप्ति से प्रतिपक्ष...** क्योंकि व्यवहारचारित्र तो शुभरागरूप है और उसका फल तो बन्धन है। उससे प्रतिपक्ष। **ऐसा जो शुद्धनिश्चय-नयात्मक परम चारित्र....** व्यवहारचारित्र जब शुभरागरूप है; निश्चयचारित्र, वह शुद्ध उपयोग-शुद्धपरिणतिरूप है। व्यवहारचारित्र का फल बन्ध है, तब शुद्धनिश्चयस्वरूप चारित्र का फल मोक्ष है। दो का विरोध है। **उभयनय विरोधध्वंसीनी....** ऐसे शुद्धनिश्चयस्वरूप परमचारित्र... शुद्धनिश्चय का विषय, ऐसा न लेकर, शुद्धनिश्चयस्वरूप (कहा)। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दमय, उसमें रमणता—चरना—रमना अतीन्द्रिय आनन्द में (रमना)—ऐसा जो शुद्धनिश्चयस्वरूप परम चारित्र, **उसका प्रतिपादन**

करनेवाला.... उसका कथन करनेवाला **परमार्थ-प्रतिक्रमण अधिकार कहा जाता है।** शुद्धनिश्चयस्वरूप चारित्र कहो, वह परमार्थ प्रतिक्रमण उसका अन्तर्भेद है।

वहाँ प्रारम्भ में पंचरत्न का स्वरूप कहते हैं। व्यवहारचारित्र और निश्चयचारित्र—दोनों का स्वरूप भिन्न और दोनों का फल भिन्न। ऐसे तो स्पष्ट छनावट की। व्यवहारचारित्र शुभराग है, निश्चयचारित्र तो स्वरूप की रमणता, परम पवित्रता ऐसा चारित्र है। शुभभाव का फल तो बन्ध है। व्यवहारचारित्र... व्यवहाररत्नत्रय में का व्यवहारचारित्र, उसका फल तो बन्ध है। निश्चयचारित्र स्वरूप के आश्रय से है, उसका फल मुक्ति है। ऐसे दो नयों के विषय और उनका फल स्पष्ट पहले कहा। आचार्य का कथन है। यह किसका कथन है? मुनि का कथन है, जिनके मुख में से परमागम झरता है। आचार्य कहते हैं, उसमें से ही यह है, इसका विस्तार है। इसमें है, देखो! **वह इस प्रकार:—**

अब पाँच रत्नों का अवतरण किया जाता है:—यह दो-तीन जगह है। उसमें उतारा है। इसमें नहीं। २८२ पृष्ठ पर है, २९७ और ३१६। (२७७) पृष्ठ है। **अब, व्यवहार छह आवश्यकों से प्रतिपक्ष, शुद्धनिश्चय का अधिकार कहा जाता है।** (गाथा १४१ का उपोद्‌घात)। है? कितना पृष्ठ? (२७७)। (२९२)। पुराना वाँचते थे, नया वाँचा नहीं। बाह्य षट्-आवश्यक है न? **षट्आवश्यक प्रपंचरूपी नदी के कोलाहल के श्रवण से पराङ्मुख हे शिष्य!...** (गाथा १४७)। विकल्प है, छह आवश्यक का व्यवहार, वह आवश्यक विकल्प नदी की कलकलाहट है। आहाहा! उससे पराङ्मुख... लो, उससे उल्टा। **शुद्ध निश्चय धर्मध्यान ने शुक्लध्यान...** लो। कोई कहे, धर्मध्यान शुद्धनिश्चयनय नहीं, वह व्यवहार विकल्प है। यहाँ तो शुद्धनिश्चय-धर्मध्यान और शुद्धनिश्चय-शुक्लध्यान। आहाहा! (२९२) है। और उसमें भी लिखा है अन्दर।

मुमुक्षु जीव को बाह्य छह आवश्यक क्रियाओं से क्या उत्पन्न हुआ? अनुपादेय फल उत्पन्न हुआ। हाँ, इसमें ही है नीचे। ऐसी बात है, भाई! होता है, जब तक पूर्ण वीतराग न हो, तब तक निश्चयदर्शन, ज्ञान और स्थिरता की भूमिका में ऐसा विकल्प होता है, इसलिए बतलाया है। बाकी उसका फल तो उपादेय कुछ है नहीं। ऐसा कहा न? अनुपादेय है। हेय—नापसन्द करनेयोग्य है, नहीं महिमा जैसा। (३१०)। **बाह्य**

आवश्यकादि क्रिया से प्रतिपक्ष... यह आवश्यक अधिकार में है। (पृष्ठ ३१०, गाथा १५८) पहली लाईन। **स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान...** देखो! धर्मध्यान, वह स्वात्माश्रित है। वह जो विकल्प शुभ है, वह तो पराश्रित है। **निश्चयशुक्लध्यानस्वरूप ऐसा जो बाह्य आवश्यकादि क्रिया से प्रतिपक्ष...** है? **शुद्धनिश्चय परमावश्यक साक्षात् अपुनर्भवरूपी स्त्री के अनंग सुख का कारण है,...** लो! ऐसी प्रत्यक्ष बात है, वह लोगों को रुचती नहीं। ऐसा स्पष्ट कर दिया न! व्यवहार राग है और उसका फल बन्ध है। निश्चय अरागपरिणति है और उसका फल मुक्ति है।

अब इन पाँच रत्न की व्याख्या करते हैं। गाथा।

णाहं णारयभावो तिरियत्थो मणुवदेवपज्जाओ।
कत्ता ण हि कारइदा अणुमंता णेव कत्तीणं।।७७।।

णाहं मग्गणठाणो णाहं गुणठाण जीवठाणो ण।
कत्ता ण हि कारइदा अणुमंता णेव कत्तीणं।।७८।।

णाहं बालो बुड्ढो ण चेव तरुणो ण कारणं तेसिं।
कत्ता ण हि कारइदा अणुमंता णेव कत्तीणं।।७९।।

णाहं रागो दोसो ण चेव मोहो ण कारणं तेसिं।
कत्ता ण हि कारइदा अणुमंता णेव कत्तीणं।।८०।।

णाहं कोहो माणो ण चेव माया ण होमि लोहो हं।
कत्ता ण हि कारइदा अणुमंता णेव कत्तीणं।।८१।।

हरिगीत।

नारक नहीं, तिर्यंच-मानव-देव पर्यय मैं नहीं।
कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमंता मैं नहीं॥७७॥

मैं मार्गणा के स्थान नहिं, गुणस्थान-जीवस्थान नहिं।
कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमंता भी नहीं॥७८॥

बालक नहीं मैं, वृद्ध नहिं, नहिं युवक तिन कारण नहीं।
कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमंता भी नहीं॥७९॥

मैं राग नहिं, मैं द्वेष नहिं, नहिं मोह तिन कारण नहीं।
कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमंता मैं नहीं॥८०॥
मैं क्रोध नहिं, मैं मान नहिं, माया नहीं, मैं लोभ नहिं।
कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमोदक मैं नहीं॥८१॥

इसकी **टीका :—यहाँ शुद्ध आत्मा को सकल कर्तृत्व का अभाव दर्शाते हैं।** शुद्ध ऐसा निश्चय त्रिकाली आत्मा, जो वास्तविक आत्मा का वास्तविक स्वरूप है, जो वास्तव में आत्मा है एक समय की पर्यायरहित। शुद्ध आत्मा उसे सकल कर्तृत्व अर्थात् गति आदि के, रागादि के परिणमन का अभाव है। उस सकल कर्तृत्व का अभाव दर्शाते हैं। नरक का लिया (कि) मैं नारक नहीं। क्यों नहीं मैं नारकी? **बहु आरम्भ तथा परिग्रह का अभाव होने के कारण....** नरक में जाने का कारण तो बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह है। वह तो आत्मा में है नहीं। **मैं नारकपर्याय नहीं हूँ।** आरम्भ, परिग्रह का अभाव होने के कारण मैं नारकी की पर्याय नहीं।

संसारी जीव को बहु आरम्भ-परिग्रह व्यवहार से होता है.... यह तो मुक्तजीव को नहीं, ऐसा कहते हैं इसमें? मुक्त जीव ही है यहाँ। ऐसा कि संसारी जीव को यह है, मुक्त जीव को नहीं—ऐसा कोई कहे तो इसका अर्थ यह है कि मुक्त जीव ही है आत्मा। नरकगति आदि, रागादि से मुक्त ही है त्रिकाल। उसका स्वरूप अत्यन्त मुक्त है। ऐसे मुक्त भगवान आत्मा को आरम्भ, परिग्रह का अभाव होने से उसके फलरूप नारकी की गति की पर्याय उसे है नहीं। ऐसी दृष्टि होने पर, हों! ऐसा कहते हैं। दृष्टि में, पूरा आत्मा शुद्ध दृष्टि में शुद्ध लेने पर वह आत्मा आरम्भ-परिग्रह के परिणाम रहित है। इसलिए उसके फलरूप नारकी की पर्याय उसे नहीं है।

संसारी जीव को बहु आरम्भ-परिग्रह.... आहाहा! जिसने, मैं नारकी हूँ, आरम्भ-परिग्रह के परिणामवाला हूँ, ऐसा माना है, वह संसारी जीव है। समझ में आया? धर्मी जीव संसारी नहीं। ले! क्योंकि संसार है, वह तो उदयभाव रागादि है। धर्मी उससे रहित है। आहाहा! चैतन्य शुद्ध आनन्द ऐसा जो उसका स्वरूप त्रिकाली, उसमें दृष्टि होने से—वर्तमान दृष्टि उसमें होने से, वर्तमान में वह संसारी नहीं। आहाहा! समझ में

आया? परन्तु वह आरम्भ-परिग्रह के परिणाम मेरे हैं, ऐसी दृष्टि जहाँ है, वह तो संसारी प्राणी आरम्भ-परिग्रहवाला व्यवहार से कहलाता है। परमार्थ से तो उसमें भी नहीं, परनतु व्यवहार की मान्यतावाला, उसे व्यवहार से नारकी कहा जाता है।

और इसीलिए उसे नारक-आयु के हेतुभूत.... किसे? संसारी जीव को। **समस्त मोह-राग-द्वेष होते हैं,....** समस्त मोह-राग-द्वेष, उसके अस्तित्व को ही उसने माना है। उनसे रहित ज्ञायक चिदानन्दस्वरूप उसने दृष्टि में लिया नहीं, इसलिए उसे मानता नहीं। मानता नहीं। समझ में आया? आहाहा! कथन पद्धति नियमसार की कुन्दकुन्दाचार्य की! वस्तु जहाँ है... जहाँ दृष्टि वस्तु की हुई, वह निश्चय में जहाँ राग का स्वीकार नहीं, इसलिए वह संसारी प्राणी ही नहीं। जिसे राग के, मोह के परिणाम का ही स्वीकार है और चैतन्य त्रिकाली ध्रुव का स्वीकार नहीं, ऐसे संसारी जीव को मोह-राग-द्वेष होने से उसे नरक के आयु का कारण उसके पास है। कहो, समझ में आया? जिसने मोह और राग-द्वेष मेरे हैं—ऐसा माना है, उसे नरक के हेतु के कारण हैं। धर्मी को है नहीं। आहाहा! देखो! यह प्रतिक्रमण। राग, मोह आदि जिनसे नरक की आयु बँधे, उनसे हट गया है। धर्मी उनसे हट गया है और चैतन्य नित्यानन्द ध्रुवस्वरूप में जो बैठा है, उसकी दृष्टि वहाँ स्थापित हुई है। आहाहा! इसलिए उसे सच्चा प्रतिक्रमण है, (इसलिए) यहाँ से ऐसे हट गया है और उसे सच्चा चारित्र है। समझ में आया?

उसे नारक-आयु के हेतुभूत समस्त मोह-राग-द्वेष होते हैं, परन्तु मुझे.... लो! **शुद्धनिश्चय के बल से...** किसी जगह 'शुद्धनिश्चय के बल से' कहा है, किसी जगह 'शुद्धनिश्चय से' कहा है, किसी जगह 'निश्चय से' कहा है—सर्वत्र शब्द भिन्न-भिन्न प्रयोग किये हैं, बाकी वस्तु शुद्धनिश्चय से, इतनी बात है। उसमें सब शब्द अलग-अलग आयेंगे प्रत्येक में। शुद्धनिश्चय के कारण से... मुझे शुद्धनिश्चय के कारण से अर्थात् मैं स्वयं शुद्धनिश्चय शुद्ध आनन्दस्वरूप के कारण से शुद्ध जीवास्तिकाय हूँ। मैं तो शुद्ध जीवास्तिकाय हूँ। यह रागादि और इनका फल, वह तो अशुद्ध जीवास्तिकाय है, व्यवहार है। व्यवहारी जीवों ने उसे अपना माना है। व्यवहारी अर्थात् मिथ्यादृष्टि। समझ में आया? आहाहा!

प्रतिक्रमण (अर्थात्) वापस मुड़ता है। उसमें मैं नहीं... उसमें मैं नहीं, मैं यहाँ हूँ। आहाहा! वेदान्त नेति... नेति... करता है न? परन्तु नेति... नेति... करके कुछ है, तब नहीं न? ऐसा सिद्ध करते हैं। सिद्धि करते जाते हैं वापस। अज्ञानी मोह-राग-द्वेष को स्वीकार करता है, इसलिए उसे नाकरी का आयुष्य बँधता है और इसीलिए वह राग-मोह और नारकी के आयुष्यवाला है, वह व्यवहारवाला अज्ञानी मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! कठिन बात! कहो, समझ में आया? **परन्तु मुझे...** मुझे अर्थात् मैं... संसारी जीव को हो... आहाहा! जिसने मिथ्यात्व, राग-द्वेष का स्वीकार किया है, उसे हो; मुझे नहीं। आहाहा! गजब शैली की है! मोह-राग-द्वेष ऐसा विकार / विभाव पर्यायबुद्धि में स्वीकार किया है, इसलिए संसारी को वह व्यवहार से है। उसे व्यवहार से है, परमार्थ से कुछ अन्दर में घुस नहीं जाता। आहाहा! समझ में आया?

इस संसारी जीव को मोह-राग-द्वेष नारकी के आयुष्य का कारण वह भाव, उसका स्वीकार किया इसलिए, वह नारकी हो। वह नारकी है, ऐसा वापस कहा है न? आरम्भ-परिग्रहवाला व्यवहार से होता है... है वह। नारकी की गति है, उसका आयुष्य है, उसके कारण भी हैं, उनका जिसे स्वीकार है, वह नारकी है। मुझे मोह-राग-द्वेष और उसका कारण आयुष्य मुझे नहीं। आहाहा! देखो! यह वीतरागमार्ग। तीर्थंकर केवली परमात्मा सर्वज्ञदेव के शासन में ऐसी बात है। जिसने मोह-राग-द्वेष—मिथ्यात्व और राग-द्वेष, ऐसा अस्तित्व स्वीकार किया है, उसे नारकी का आयुष्य बँधता है और वह नारकी है—ऐसा जैनशासन में ऐसे व्यवहारिक जीव को नारकी कहा है। आहाहा! समझ में आया?

मुझे—शुद्धनिश्चय के बल से.... आहाहा! श्रेणिक राजा क्षायिक समकिती पहले नरक में हैं? कहते हैं, नहीं। अरे! गजब बात है न यह तो! मैं नरक में ही नहीं न! नरक के कारणों के भाव ही मुझमें नहीं न! आहाहा! उसके फलरूप से नरक की गति में मैं कहाँ हूँ? आहाहा! मैं तो, वह गति और उसके कारणों का अभाववाला मेरा स्वभाव ऐसा शुद्ध जीवास्तिकाय मैं हूँ। देखो! यह मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण और राग-द्वेष का प्रतिक्रमण यह। कहो, कितने प्रतिक्रमण किये होंगे मलूकचन्दभाई? नागनेश में किये तो होंगे न? ये नागनेश के अग्रणी हैं। ... आहाहा! गजब बात है!

मुमुक्षु : संयोगीभाव की प्राप्ति उससे.... माना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : माना है, वही संसारी है और वही नारकी है। मैं नहीं। आहाहा!

मुझे.... ऐसी भाषा तो देखो! संसारीजीव को बहु आरम्भ-परिग्रह व्यवहार से है। वह व्यवहार है और व्यवहार का माननेवाला है, ऐसा कहते हैं। इसलिए व्यवहार से नारकी वह है। मैं तो व्यवहार से नारकी भी नहीं। आहाहा! देखो! यह प्रतिक्रमण। मिच्छामि दुक्कडं करके चले जाये। बिना भान के... मूलचन्दभाई! ... करे। वहाँ आते थे न उपाश्रय में। .... आहाहा!

यह तो जागती ज्योति प्रभु चैतन्य। आहाहा! मैं तो जागनेवाला, चेतनेवाला चैतन्य शुद्ध, वह मैं हूँ। राग-द्वेष-मोह मैं नहीं, इसलिए उसके फलरूप से नारकी मैं नहीं। आहाहा! देखो न! एक वीतराग की कथनी और वह यह दिगम्बर सन्त के सिवाय ऐसी बात अन्यत्र कहीं नहीं है। आहाहा! अकेला सत्य प्रवाहित किया है। आहाहा! भगवान कहते हैं, **मुझे...** आहाहा! संसारी व्यवहारी जीव को हो, क्योंकि वह व्यवहार राग का स्वीकार करनेवाले हैं और उसके फल(रूप) गति भी मुझे है, ऐसा स्वीकार करनेवाले हैं। मैं तो गति और गति के कारण से रहित मेरी चीज़ है। आहाहा! इसलिए मुझे शुद्धनिश्चय के कारण से **शुद्धजीवास्तिकाय को...** देखो, भाषा! अन्यमत में जीव कहते हैं, परन्तु अस्तिकाय अन्यमत में नहीं है। वीतरागमार्ग में अस्ति है और काय है, असंख्यप्रदेशी है। यह बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त वेदान्त-फेदान्त में यह बात कहीं नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

मुझे शुद्धनिश्चय के कारण से, ऐसा। निश्चय से—शुद्धनिश्चयस्वरूप से... ज्ञानानन्द वीतरागमूर्ति मैं, वह मेरा स्वरूप है। इस कारण से... ऐसा मैं जीवास्तिकाय—अस्ति और काय—असंख्यप्रदेशी, उसे वह नहीं। मोह-राग-द्वेष का कारण जो आयुष्य का कारण है, वह कारण नहीं और उसका आयुष्यफल, वह मैं नहीं। देखो! पहले से कहा था न कि व्यवहार और व्यवहार का फल, उससे प्रतिपक्ष निश्चय और निश्चय का फल... पहली लाईन में आ गया। समझ में आया? आहाहा! अरे! ऐसे काल में ऐसा सत्य नहीं समझे, उसका (भव का) अन्त कब आवे? बापू! दुनिया कोई साथ आवे, ऐसी नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, मेरे साथ राग नहीं, जिसके फल में संसार आवे नारकी (आदि), आहाहा! मेरे पास ही नहीं न! मेरे पास तो शुद्ध आनन्दघन जीवास्तिकाय, वह मैं हूँ। उसे 'मैं नारकी हूँ' यह है नहीं। **नाहं नारक...** देखो! भाषा ऊपर... इतने का अर्थ करते हैं। **नाहं नारक...** मैं नारकी नहीं। समझ में आया? ऐसा नहीं। यह नारकी की व्याख्या आयी। **णाहं** पहले आया था न? **णाहं णारयभावो...** इसका अर्थ इतना किया। नारकी का भाव, वह मैं नहीं और नारकी के भाव के फल के कारणरूपभाव वह मैं नहीं। वह कारण और कार्य मेरे नहीं। मैं तो शुद्धजीवास्तिकाय शुद्ध निर्मल ज्ञान का पिण्ड, आनन्द का धाम हूँ। वह (नारक पर्याय) मुझे नहीं। आहाहा! देखो! नरक में श्रेणिक राजा होने पर भी... वह तो व्यवहार है, ज्ञान का ज्ञेय है, मुझमें नहीं। आहाहा! यहाँ तो तीर्थंकरपने का भाव वह मैं (और) उसमें मैं नहीं, मुझे वह नहीं और उसका फल तीर्थंकरपना अर्थात् यह समवसरण आदि, वह मुझे नहीं। आहाहा!

दूसरी तिर्यंचपर्याय। तिर्यंच नहीं, ऐसा आया न? दूसरा पाठ **तिरियत्थो... तिरियत्थो...** हुआ... **तिर्यंचपर्याय के योग्य मायामिश्रित अशुभकर्म का अभाव होने के कारण...** जो मायामिश्रित अशुभकर्म बँधे, ऐसा जो भाव... **मायामिश्रित अशुभकर्म का अभाव होने के कारण मैं सदा तिर्यंचपर्याय के कर्तृत्वविहीन हूँ।** यहाँ कर्तृत्व डाला। मूल पाठ में वह कर्तु है न? कर्ता नहीं, यह आयेगा, इसलिए स्पष्टीकरण करते हैं। उसके कर्ता विहीन हूँ। जिस भाव से तिर्यंचपना बँधे, उस भाव से रहित हूँ, वह भाव मुझमें नहीं। आहाहा! समकिती को तिर्यंच आयुष्यकर्म बँध गया हो और फिर देवकुरु, उत्तरकुरु आदि जुगलिया में जाता है। नहीं; मैं तिर्यंच ही नहीं न! तिर्यंच के कारण के भाव ही मुझमें नहीं न। वह भाव हो तो उसका फल आवे न मुझे? मुझे आया ही नहीं। आहाहा!

तिर्यंचपर्याय के योग्य मायामिश्रित... वह ६० में आया था पहले जरा 'शुभमिश्रित।' वह साठ में... ५३ और ६० में। वहाँ थोड़ा शुभमिश्रित शब्द था। .... यहाँ मायामिश्रित.... आहाहा! वे परिणाम मुझमें नहीं न! वे मुझे नहीं न! आहाहा! **अशुभकर्म का अभाव होने के कारण मैं सदा....** लो, यहाँ और 'सदा' डाला। ठीक! 'शुद्धनिश्चय के बल से' डाला। यहाँ 'सदा' डाला। सदा तिर्यंचपर्याय के कर्तृत्वविहीन

हूँ। वहाँ वह 'निश्चय' शब्द न आकर 'सदा' कहा। इसलिए सदा हमारा निश्चयस्वरूप ही ऐसा है। यह तो धीरे से समझने की बात है अन्दर की। यह कहीं बाहर में कुदक्का मारकर कुदान (फुदकना) मारने से यह कहीं समझ में आये, ऐसा नहीं है। भगवान! कहते हैं कि **मैं सदा...** 'सदा' कहा वहाँ निश्चय का स्वरूप आया। आहाहा! मैं सदा तिर्यंच के शरीर के कर्तृत्व से रहित हूँ। क्योंकि जिस भाव से तिर्यंचपना बँधता है, ऐसे मिश्रभाव से रहित हूँ। तिर्यंच को (माया) मिश्रित लिया न, उससे रहित हूँ। आहाहा!

गजब शैली कुन्दकुन्दाचार्य की! सत्य को बाहर रखने की—प्रसिद्ध रखने की शैली गजब है। भरतक्षेत्र में ऐसी टीका नहीं, लो। ओहोहो! मैं तो सदा... गति और गति के कारण मायामिश्र मुझमें नहीं और जिसने माना है, वह आत्मा नहीं। जिसने तिर्यंचगति और कारण मेरे माने हैं, वह आत्मा नहीं। आहाहा! वह तो व्यवहार से संसारी जीव है। आहाहा! आठ वर्ष की बालिका भी सम्यक्त्व प्राप्त करती है। आहाहा! फिर तो भले विवाह करे। तो कहते हैं कि वह विवाह भी करती नहीं, वह राग भी उसका नहीं न! आहाहा! जहाँ उसका अस्तित्व है, वहाँ वह राग भी नहीं और वहाँ वे क्रियायें जड़ की, वे भी नहीं। आहाहा! दृष्टि से सृष्टि बदल गयी है। भगवान आत्मा...

केवली तीर्थंकरदेव ने जो शुद्ध जीवास्तिकाय कहा, ऐसा जहाँ भान हुआ अन्तर में, वह अस्ति, वह इतना मैं और तिर्यंच के कारण और तिर्यंच का कार्य, वह अस्तित्व, वह मैं नहीं। आहाहा! परन्तु वह अस्तित्व है अवश्य। बिल्कुल नहीं, ब्रह्म सत्य और जगत मिथ्या—ऐसा नहीं है। जगत जगतरूप से, राग रागरूप से, फल फलरूप से है। समझ में आया? परन्तु मेरे चैतन्यस्वरूप में वह नहीं। जिसने माना, वह आत्मा नहीं और मैं माननेवाला आत्मा का, वह मुझमें नहीं। आहाहा! गजब की बात है। ऐसा भेदज्ञान... आहाहा! अब यह करने का, वह करे नहीं और मुफ्त के झगड़े बाहर के... अरे! ऐसा समय मिला, ऐसे धन्धे हों? बापू! अरेरे! समय चला जाता है।

यह कहते हैं, मैं तो ऐसा हूँ, हों! मैं, तिर्यच की पर्याय के भाववाला और फलवाला, वह मैं नहीं। मैं तो ज्ञातादृष्टा शुद्ध चैतन्य ध्रुवस्वरूप, वह मैं हूँ। इसका नाम तिर्यंच पर्याय की गति से प्रतिक्रमण किया (अर्थात्) उसमें से हट गया। मैं उसमें हूँ

नहीं, हों! माना था वह मिथ्यात्व था। आहाहा! धर्म माना था मैंने। उसके कारण से तिर्यंच की पर्याय... **कर्तृत्व विहीन हूँ...** मूल पाठ में यह है। यह राग, जिस भाव से तिर्यंचगति और जिस भाव से नरकगति बँधे, उस भाव का परिणमन ही मेरा नहीं; उसका मैं कर्ता नहीं; मैं उसका करानेवाला नहीं; होता है, उसका अनुमोदन करनेवाला नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो पंच रत्न गाथा है। पंच रत्न, वह प्रवचनसार में डाले हैं अन्त में। यहाँ प्रतिक्रमण की पहली (पाँच गाथायें)। चारित्र... '**चरित्तं खलु धम्मो धम्मो जो सो समो त्ति णिद्दिठो। मोहक्खोहविहीणो परिणामो...**' यह चारित्र क्या आठवें-दसवें गुणस्थान का है? यह तो छठवें की मुख्यता से बात करते हैं। कहा न कि समकिती को यह ही है, परन्तु यह तो भूमिका आगे बढ़ गयी है, उससे स्वयं चारित्रवन्त है न? चारित्र से उसकी व्याख्या मुख्य करते हैं। यह 'सदा' में आ गया निश्चय। इसमें निश्चय शब्द पृथक् नहीं किया, उसे 'सदा' में डाला है।

अब तीसरा। **मनुष्यनामकर्म के योग्य....** मनुष्यनामकर्म के योग्य **द्रव्यकर्म तथा भावकर्म का अभाव होने के कारण मुझे मनुष्यपर्याय....** उसमें 'मुझे' डाला था नारकी में, उसमें 'सदा मुझे नहीं।' इसमें **मुझे मनुष्यपर्याय शुद्धनिश्चय से नहीं है।** लो। इतना यह शब्द वह 'शुद्धनिश्चय के बल से' कहना था, वह यहाँ 'शुद्धनिश्चय' से कहा। बस यह। समझ में आया? शुद्धनिश्चय से नहीं अर्थात्? अकेली भाषा नहीं, परन्तु जिस भाव से मनुष्यपना बँधे और मनुष्यपना—उससे रहित चैतन्यद्रव्य मेरी दृष्टि में आया है, इसलिए मैं उस मनुष्यपर्याय में नहीं। आहाहा! तो यह कहते हैं कि मनुष्यपर्याय हो तो केवल (ज्ञान) होता है। यहाँ कहते हैं कि मनुष्यपर्याय ही मुझमें नहीं न! आहाहा! आया नहीं था एक? कुचामण का आया था कुचामण का। तुम्हारा कुचामण न? घासीलाल पण्डित कलकत्ता रहते हैं। घासीलालजी को पहिचानते हो? तुम्हारे कुचामण का है। वह कलकत्ता रहते हैं। आये थे एक बार।

यह मनुष्यपना है, उसमें केवलज्ञान होता है, मनुष्यपने के कारण से है यह। अरे भगवान! यहाँ तो कहते हैं कि मुझमें मनुष्यपने का भाव और मनुष्यपना दोनों ही नहीं है। वह है नहीं—वह नहीं, वह मुझे किस प्रकार सहायता करे? आहाहा! समझ में आया? **मनुष्यनामकर्म के योग्य द्रव्यकर्म तथा भावकर्म....** मनुष्य के योग्यरूप भावकर्म,

ऐसा। जिस भाव से मनुष्यपना बँधे, ऐसा भावकर्म, ऐसा। दोनों में लेना है न यह! मनुष्यनामकर्म के योग्य द्रव्यकर्म और मनुष्यनामकर्म के योग्य भावकर्म, ऐसा। दोनों का अभाव होने से... **होने के कारण मुझे मनुष्यपर्याय.... मनुष्यपर्याय शुद्धनिश्चय से नहीं है।** आहाहा!

पर से दृष्टि फिराकर स्व में ले लिया और इतना अस्तित्व वही मैं हूँ, यह नहीं। इसका नाम चार गति का इसने प्रतिक्रमण किया। आहाहा! ऐसे भाषा से नहीं, हों! मैं नारकी नहीं, देव नहीं—ऐसा नहीं। वह वस्तु त्रिकाली जिसमें नारक का भाव और नारकी(पना), मनुष्य का भाव, मनुष्य(पना)—यह जिसमें नहीं, उसकी दृष्टि करके मुझमें नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! मेरा जीवास्तिकाय शुद्ध में यह नहीं, इसलिए मैं इनसे विमुख ही हुआ हूँ। मैंने इनसे भेद किया हुआ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसमें एकपना माना था, वह तो मिथ्यात्व था। वह एकपना मुझमें नहीं, (ऐसा माना) तो हो गया, एकपना छूट गया। स्वभाव चैतन्य अस्ति महासत्ता जीवास्ति—शुद्ध जीवास्ति, वह मैं हूँ। इसलिए जिस भाव से मनुष्य (आयुष्य) बँधे, उस भाव का भी मैं कर्ता नहीं हूँ, परन्तु यह मनुष्यपना मिला, तब यह सुनने का धर्म मिला न? इसलिए मनुष्यपना अच्छा है, यह बात कहते हैं, मिथ्यादृष्टि मानता है। आहाहा!

मनुष्यपना मिला और मनुष्यपने के कारण यह मेरे हैं, ऐसा मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! गजब बात सन्तों की वाणी! श्रीमद् कहते हैं न! रहस्य कुछ समझा जा सकता है। 'दिगम्बर के तीव्र वचनों के कारण रहस्य कुछ समझा जा सकता है। श्वेताम्बर की शिथिलता के कारण रस ठण्डा होता गया।' ऐसा आता है, श्रीमद् में ऐसा आता है। आहाहा! कहते हैं, यह मैं मनुष्य ही नहीं। कहो! मनुष्यपर्याय शुद्धनिश्चय से नहीं। नहीं, फिर मैं मनुष्य हूँ और यह मेरे मनुष्यपने से मुझे कुछ लाभ होगा, परन्तु जो मुझमें नहीं उससे लाभ कहाँ से होगा? मनुष्यपने बिना केवलज्ञान होता होगा? मनुष्यपने बिना ही केवलज्ञान होता है। इसका अर्थ ही कि उससे लक्ष्य छूटता है और तत्त्व अकेला रह जाता है, तब उसे एकाकार होकर केवलज्ञान होता है। मनुष्यपने के कारण वह नहीं है। अब रहा देव।

'देव' ऐसे नाम का अधार.... यह देवपर्याय, ऐसा। नामकर्म का आधार देवपर्याय...

उसके योग्य सुरस-सुगन्धस्वभाववाले पुद्गलद्रव्य के सम्बन्ध का अभाव होने के कारण.... ऐसा होने के कारण 'निश्चय से' इतना शब्द प्रयोग किया, लो। अलग-अलग शब्द (हैं, परन्तु) आशय कहने का एक ही है। ऐसी देवपर्याय के **योग्य सुरस-सुगन्धस्वभाववाले पुद्गलद्रव्य के सम्बन्ध का अभाव होने के कारण....** सुगन्धित शरीर देव का मेरा, मुझे मिलेगा। तुझे मिलेगा जड़? देवगति आत्मा को मिलेगी? आहाहा! कहते हैं कि वह मिथ्यादृष्टि है। देवगति और देवगति के कारण बिना का मैं आत्मा हूँ, उसका करनेवाला भी नहीं...

परन्तु तब अन्धकार में प्रकाश कारण हुआ या नहीं? अन्धकार में दिखता नहीं। सवेरे नहीं आया था उपादान में? वहाँ निमित्त बदला, तब दिखाई दिया या नहीं? देखो! उसकी अपनी पर्याय की... कल तो बहुत अन्धकार था। आज तो दिखता है, कल तो बहुत अन्धकार था।

पुद्गलद्रव्य के सम्बन्ध का अभाव होने के कारण निश्चय से मुझे देवपर्याय नहीं है। आहाहा! सर्वार्थसिद्धि का देव समकिती... देवपर्याय का कारण और आधार है? कि नहीं। देव मैं हूँ? कि नहीं। मैं तो देव भी नहीं। देवगति तो उदयभाव का फल है। उदयभाव ही जहाँ मुझमें नहीं, फिर देव मैं कहाँ से आया? आहाहा! व्यवहार-निश्चय की कथनी को स्पष्ट करके जगत के समक्ष प्रसिद्ध किया है। भाई! तू आत्मा है न, प्रभु! आत्मा तो शुद्ध चैतन्यकन्द, उसे आत्मा कहते हैं। ऐसा जिसने अन्तर में अनुभव किया, ऐसा शुद्ध चैतन्य हूँ, ऐसा जिसे अन्तर के स्वभाव की सत्ता का स्वीकार अन्तर से हुआ, वह देव-बेव हूँ, ऐसा कैसे माने? देव के कारणरूप भाव का भी कर्ता नहीं, करानेवाला नहीं, अनुमोदन करनेवाला नहीं। मैं उसे सम्मत नहीं, देवपर्याय को मैं सम्मत नहीं। मैं तो आत्मा का स्वभाव आनन्द शुद्ध, उसे सम्मत हूँ। आहाहा! समझ में आया?

अरे! शान्ति से, मध्यस्थता से स्वाध्याय करे न तो इसे हाथ लगे कुछ तत्त्व। परन्तु यह तो अपनी दृष्टि से हाँक रखता है, वाँचे, सुना करे। वह संसारी को नहीं, ऐसा कहा था। यह संसारी नहीं तुम? ऐसा कहते थे। ऐसा कहा था न अन्दर? संसारी जीव

को वे होते हैं। तब मुक्त हो गये? अरे, सुन न! मुक्त ही है भगवान आत्मा। विभाव और उदयभाव पूरा और पूरा उसे उसका फल, उससे रहित ही है। ऐसी दृष्टि हुई, इसलिए रहित ही है। सहित माना था, वह तो मिथ्यात्व था। आहाहा! **निश्चय से मुझे देवपर्याय नहीं है।** व्यवहार से है? व्यवहार से (मानता) है, वह संसारी है। मुझे तो जाननेयोग्य है, वह अलग बात है। जानना ज्ञान का ज्ञेय, वह तो छहों द्रव्य ज्ञेय हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसा अस्तित्व और ऐसी (मेरी) सत्ता और वह सत्ता पर—ऐसे भेदज्ञान में मुझमें दूसरा कुछ नहीं। उसका नाम यहाँ सच्चा प्रतिक्रमण (कहते हैं)। और यहाँ सम्यग्दर्शनसहित चारित्र लिया है न? समझ में आया?

जिस भाव से देवपर्याय मिले, वह भाव मैं नहीं न! वह भाव तो राग है। राग मैं, वह तो मिथ्यात्व है। चौदहवीं गाथा में आया न, पुरुषार्थसिद्धि उपाय में? आत्मा वस्तु उसे कहते हैं कि जो आस्रव और अजीव से असमाहित है—सहित नहीं। आत्मा उसे कहते हैं कि आस्रव और अजीव से रहित है। उसे जो सहित मानता है, वह मिथ्यात्व है, भव का बीज है। इसलिए उसमें (-नाटक समयसार में) लिया है कि असंख्य प्रकार के व्यवहार उतने मिथ्यात्वभाव केवली उकत है। आहाहा! जितना वह व्यवहार, उतना व्यवहार मेरा, उतना सब मिथ्यात्व। समझ में आया? गजब! यह तो सब एल.एल.बी. की बातें हैं। यह तो अभी भेदज्ञान सम्यग्दर्शन की बात है। आहाहा! जो अपने में नहीं, उससे अपने को पहिचानना, वही मिथ्यात्वभाव है। उससे अपनी प्रसिद्धि कराना... लो। हम राजा हैं, हम मनुष्य हैं और बाहर की ऋद्धिवाले हैं। उससे बाहर पड़ना, वह बाहर पड़ा हुआ बहिरात्मा है। आहाहा! यह तो अन्तरात्मा वस्तु है। वास्तव में वह परमात्मा है आत्मा। साधकपने की पर्याय की अपेक्षा से अन्तरात्मा (कहा)। उसमें बड़ा समेटा है सब बहुत।

चौदह भेदवाले मार्गणास्थान.... चौदह भेदवाले... पहले आ गये थे अपने ८८ पृष्ठ पर। मार्गणा ८८ पृष्ठ पर। **चौदह भेदवाले मार्गणास्थान....** ८८ है ८८। गति... नीचे है। गति मैं नहीं, गति नहीं, यह इन्द्रिय नहीं, गति ही मैं नहीं। यह पहले चार गति में आ गये अपने। यह इन्द्रियाँ नहीं। खण्ड-इन्द्रिय और द्रव्येनिद्रय और सब। काया नहीं,

योग नहीं, वेद नहीं, कषाय नहीं, ज्ञान के भेद नहीं। आहाहा! संयम के भेद नहीं, दर्शन के भेद नहीं, लेश्या नहीं, भव्य, अभव्य नहीं। लो, वस्तु में कहाँ भव्य-अभव्यपना है? सम्यक्त्वादि नहीं, ठीक! संज्ञित्व नहीं और आहार नहीं—ऐसे भेदस्वरूप चौदह मार्गणा, वे **शुद्धनिश्चयनय से परमभावस्वभाववाले को....** अर्थात् परमस्वभाव मुझको—मुझे **(-परमभाव जिसका स्वभाव है ऐसे मुझे)....** देखा न! स्पष्टीकरण ऐसा ही है न!

परमभावस्वभाववाले को.... मैं तो परमभावस्वभाववाला हूँ, यह राग और निमित्त के स्वभाववाला नहीं। आहाहा! कितनी उदासीनता है पर से, देखो न! मार्गणास्थान, वह शुद्धनिश्चयनय से... वहाँ ऐसा लिया है 'शुद्धनिश्चयनय से।' **परमभावस्वभाववाले को...** ऐसा आया न? परमभावस्वभाववाले को... त्रिकाली पंचम पारिणामिकस्वभाव ऐसे स्वभाववाले को... यह रागवाले को, गतिवाले को नहीं। **परमभावस्वभाववाले को (-परमभाव जिसका स्वभाव है ऐसे मुझे)...** यह मार्गणास्थान **नहीं है।**

विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ कृष्ण १०, शनिवार, दिनांक - १७-७-१९७१
गाथा - ७७ से ८१, प्रवचन-६९

यह समयसार नाटक... समयसार नाटक नहीं, नियमसार। परमार्थप्रतिक्रमण अधिकार। मोक्ष का मार्ग। चारित्र है न मूल, यह चारित्र की व्याख्या है इसमें। कल आया था न वह जरा, इसमें से विचार आया था अधिक। संसारी जीव को बहुत आरम्भ-परिग्रह व्यवहार से होता है। तत्त्वार्थसार का लिया है न? सिद्ध, असिद्ध और नोसिद्ध। गाथा में है। असिद्ध, वह मिथ्यादृष्टि है; इशद् सिद्ध वह समकिती है। सिद्ध रत्नत्रयवाले को गिना है। उसमें सिद्ध-प्रसिद्ध कहा है। आता है न प्रवचनसार में अन्तिम में? मोक्ष... मोक्षतत्त्व, रत्नत्रय से परिणमित हैं, वे मोक्षतत्त्व हैं। इसलिए वहाँ भले नहीं लिया, अर्थ में लिया है कि रत्नत्रय से परिणत है, वह सिद्ध है; समकिती है, वह नोसिद्ध है, इशद् सिद्ध। व्यवहार से मुक्त है न? जरा पर्याय में अस्थिरता है, इस अपेक्षा से चौदहवें गुणस्थान तक संसारी गिने हैं। पर्याय में है न, उसका ज्ञान कराने को। सम्यग्दृष्टि ऐसा मानता हे कि मैं तो चार गति की पर्यायें हूँ ही नहीं। यह आ गया है।

चौदह भेदवाले मार्गणास्थान.... शुद्धनिश्चयनय से परमभावस्वभाववाले को... मैं तो एक परमभावस्वभाववाला हूँ, जिसका परमभाव ऐसा स्वभाव है। त्रिकाली ज्ञायकभाव ऐसे मुझे चौदह भेदवाले मार्गणास्थान नहीं हैं। पर्याय में है, उसका यहाँ निषेध है। पर्याय का ज्ञान भी कराते हैं जरा। जैनदर्शन की जो पद्धति है वस्तु की... चौदह मार्गणा है परन्तु वह पर्यायदृष्टि का ज्ञान करनेयोग्य है, आश्रय करनेयोग्य नहीं। ज्ञान तो करने का है, व्यवहार का ज्ञान तो करने का है। **चौदह भेदवाले मार्गणास्थान....** सम्यग्दृष्टि जीव को परमभावस्वभावाला मैं... परमभाव ध्रुव त्रिकाल ऐसे स्वभावभाव (वाले) मुझे चार गति और मार्गणाभेद नहीं है।

तथा उतने (चौदह) भेदवाले जीवस्थान... जीव के स्थान... पंचेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त। एकेन्द्रिय से लेकर अन्तिम... लिये हैं। पंचेन्द्रिय पर्याप्तपना मुझे नहीं।

समझ में आया? ऐसे केवली को पंचेन्द्रिय पर्याप्त कहा जाता है व्यवहार से। किस ओर लिया? द्रव्येन्द्रियाँ हैं न पाँच, इस अपेक्षा से कहा जाता है, वस्तु में वह है नहीं। आहाहा! वह आता है न? गति। गुटका आता है न? क्या कहलाता है छोटा? चौबीसठाणा, उसमें सब डाले ऐसा। व्यवहार डालना है न अन्दर। पर्याय बतलावे। यहाँ तो वस्तु परमभावस्वभाव, वही मैं। नित्य ध्रुव चैतन्य परमभाव जो पर्याय से भी... क्षायिकादि सब पर्याय अपरमभाव... क्षायिकभाव आदि अपरमभाव... आहाहा! त्रिकाली भाव, वह परमभाव, ऐसा मेरा स्वभाव, उसमें जीव के चौदह भेद नहीं।

या गुणस्थान... पहले से चौदह गुणस्थान, वे **शुद्धनिश्चयनय से...** गुणस्थान भी मैं नहीं। लो, **परमभावस्वभाववाले को (-परमभाव जिसका स्वभाव है ऐसे मुझे)...** गुणस्थान **नहीं।** लो, छठवाँ, सातवाँ, चौथा, पाँचवाँ—यह सब पर्याय के—व्यवहार के भेद हैं। इसलिए कहा न '**जिणमयेण पव्वज्झमाण...**' व्यवहार नहीं मुझ.... व्यवहार है सही। है, वह जानने के लिये है। नहीं सुनने में आया हो वहाँ। यहाँ से वहाँ ऐसा कि अधिक सुनाई दे... ऐसा माने। मेल नहीं आया....

परमभाव-स्वभाववाले को... अर्थात? देखो ने! भाषा क्या है? परमभावस्वभाव नित्य ध्रुव ज्ञायक अकेला परम ऐसा मैं अर्थात् ऐसे मुझे, ऐसा। मैं तो परमभावस्वभाववाला हूँ, उसे जीव के चौदह भेद, एकेन्द्रिय पर्याप्त, अपर्याप्त से लेकर पंचेन्द्रिय गुणस्थानभेद और मार्गणाभेद मुझे नहीं है। मुझे नहीं अर्थात् मैं तो परमस्वभाववाला हूँ, ऐसा। मैं तो परमस्वभाववाला हूँ। आहाहा! परमभावस्वभाव ऐसे मुझे... ऐसा वह मैं, ऐसा। ऐसे भेद-बेद मैं नहीं। आहाहा! अकेला दृष्टि का विषय अभेद अकेला ज्ञायकभाव ध्रुव ऐसे मुझे अर्थात् ध्रुव है, वह मैं हूँ—ऐसा। परमभावस्वभाव, वह मैं हूँ। यह मैं नहीं। आहाहा! समझ में आया? परमभावस्वभाव ऐसे मुझे अर्थात् परमभावस्वभाव वही मैं, ऐसा। परमभावस्वभाव, वही मैं हूँ। यह नहीं—गुणस्थानभेद आदि नहीं।

मुमुक्षु : क्षायिक की पर्याय अपरमभाव....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नहीं। क्षायिकभाव की पर्याय भी अपरमभाव में जाती है, परमभाव में नहीं। और वास्तव में तो, ५०वीं गाथा नियमसार.... क्षायिकभाव की पर्याय भी परद्रव्य में जाती है। आहाहा!

महाप्रभु जहाँ नजर में पड़ा, उसके पास सब पर्यायों-बर्यायों की गिनती नहीं। आहाहा! त्रिकाली परमभाव ऐसा जो मेरा स्वभाव, ऐसा वापस, मेरा स्वभाव ही परमभावस्वभाव है और परमभावस्वभाव उतना ही वह मैं हूँ। आहाहा! भाई में आता है न? सोगानी। शब्द जरा खुल्ला थोड़ा कर दिया। पर्याय मेरा ध्यान करे तो करो, मैं किसका ध्यान करूँ? मैं तो हूँ वही हूँ, क्योंकि मैं तो द्रव्य हूँ, ऐसा वापस इसका अर्थ है। यहाँ कहा था, मैं परमभावस्वभाव हूँ, वह किसका ध्यान करे? पर्याय मेरा ध्यान करे तो करो। आहाहा! परमभाव जिसका स्वभाव.... परमभाव-स्वभाववाले को... ऐसा कहा न? परमभावस्वभाववाला, वह तो समकिती परमभावस्वभाववाला ही है और यहाँ चारित्र साथ में डाला। समझ में आया? आहाहा!

व्यवहाररत्नत्रय मेरा है, ऐसा तो इसमें नहीं आया? मेरा नहीं, वह मुझे सहायता करे, (ऐसा नहीं होता)। सत्य वस्तु ऐसी है। लोगों को अन्दर कान में पड़ी नहीं। बाहर में भटका-भटक। जहाँ भगवान का धाम है, वहाँ जाता नहीं। महाप्रभु का धाम तो ध्रुव है। देखो न! भाषा कैसी प्रयोग की है। मुनि ने टीका की है न! '**शुद्धनिश्चयनयतः परमभावस्वभावस्य...**' '**परमभावस्वभावस्य**' ऐसा है न? '**न विद्यन्ते...**' परमभावस्वभाव, वह मैं, इतना मैं, वह मैं। ऐसे '**परमभावस्वभावस्य**' परमभावस्वभाववाले को अर्थात् परमभावस्वभाव वह मैं, ऐसे मुझे, ऐसा। आहाहा! यह सब है नहीं। चौदह तिया बयालीस, ऐसे हुए। ऐसे तो चौदह मार्गणास्थान, चौदह जीवस्थान, चौदह गुणस्थान। चौदह तिया बयालीस। एक-एक के उसके वापस भेद मार्गणा के गति और इन्द्रिय और कषाय... आहाहा! ज्ञान में पाँच भेद—मति, श्रुत, अविध, मन:पर्याय (केवल आदि) भेद। वे परमभावस्वभाववाले को कुछ नहीं, कहते हैं। आहाहा! केवलज्ञान की पर्याय भी मेरे परमभावस्वभाववाले को नहीं। आहाहा! गजब बात है न! चैतन्य का तत्त्व इतना... इतना और इतना बड़ा है। भाषा कैसी है, देखो!

'**परमभावस्वभावस्य न विद्यन्ते**' विकल्प आदि, वाणी आदि हो तो उसके घर में, पर्याय हो तो उसके घर में। उसके स्थान में भले हो, मेरे स्वभाव में नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया या नहीं? बहुत बोल डाल दिये चौदह मार्गणा में। पूरे जैनदर्शन के पर्यायभेद सब ही... है। वस्तु में है नहीं। वापस जैनदर्शन व्यवहारवाला है, ऐसा

इन्होंने व्यवहारवाले का ज्ञान कराया कि ऐसी स्थिति अन्य में कहीं होती नहीं। चौदह गुणस्थान, चौदह जीवस्थान, चौदह मार्गणास्थान (आदि) ऐसे पर्याय के भेद सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं नहीं हो सकते। इतनी बात स्थापित करते गये, बतलाते गये, परन्तु वस्तु में नहीं है, ऐसा वापस निषेध करते गये। आहाहा! यह २९ बोल है न! सब बात बतलाते गये... पर्यायभेद, ... ऐसा सर्वज्ञ के अतिरिक्त, जैनदर्शन के अतिरिक्त अर्थात् वस्तुदर्शन के अतिरिक्त अन्यत्र ऐसा होता नहीं। आहाहा! यह व्यवहार कितने प्रकार के, किस प्रकार के यह सब बतलाया सही, तथापि वह वस्तु के स्वभाव परमस्वभाववाले मुझे वे नहीं। वह तो कहे, मैं ही एक हूँ, दूसरा कुछ नहीं। ऐसा नहीं। दूसरा मुझमें नहीं। 'ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या' ऐसा वेदान्त कहता है न? ऐसा नहीं है। मेरे धर्म में (द्रव्य में) वह भेद नहीं, परन्तु भेद में भेद है व्यवहाररूप से, जाननेरूप से। अब अवस्था की बात आयी।

मनुष्य और तिर्यंचपर्याय की काया के, वयकृत विकार से... नारकी को और देव को वयकृत विकार—भेद है ही नहीं। देव को तो एक ही प्रकार है अनुकूलता। बाल-युवक-वृद्ध (अवस्था) है नहीं। नारकी को एक ही प्रकार है वृद्धावस्था जैसी दशा है, उसे तीन भेद नहीं। नारकी के शरीर के बाल-युवक-वृद्ध तीन भेद नहीं। वह तो सब पूरी जिन्दगी वृद्ध की है। आहाहा! देव को नहीं। पूरी जिन्दगी युवक जैसी अवस्था है, इसलिए उसके तीन भेद उसमें नहीं। मनुष्य और तिर्यंच की पर्याय में शरीर में काया के वयकृत विकार... देखो! काया के वयकृत विकार... काया की वय की अवस्थावाला बाल-युवक-वृद्ध, वह तो काया के वयकृत विकार है। आहाहा!

(-परिवर्तन से) उत्पन्न होनेवाले... काया के फेरफार से उत्पन्न होनेवाले **बाल-युवा-स्थविर-वृद्धावस्थादिरूप....** स्थविर की ही व्याख्या की है... स्थविर अर्थात् वृद्धावस्था? स्थविर-वृद्धावस्था, ऐसा टीका में लिखा है। वह मैं नहीं, लो! बाल-युवक-स्थविर और वृद्धावस्थारूप आदि उसके बहुत प्रकार.... **अनेक स्थूल-कृश विविध भेद....** शरीर की युवक अवस्था, वह काया का वयकृत विकार है; वृद्धावस्था, वह काया का वयकृत-अवस्थाकृत भेद है। बालपना भी काया की अवस्थाकृत भेद है, वह स्थूल और कृश—पतला और जाडा, ऐसे विविध भेद शरीर के अवयव के हैं।

शुद्धनिश्चयनय के अभिप्राय से.... यहाँ अभिप्राय (शब्द) डाला। भिन्न-भिन्न शब्द प्रयोग करते हैं। बाकी यह शुद्धनिश्चय से नहीं, ऐसा कहा। **शुद्धनिश्चयनय के अभिप्राय से...** शुद्धनिश्चय के अभिप्राय से... त्रिकाली ज्ञायकभाव के अभिप्राय में यह सब कुछ है नहीं।

अब यहाँ, सकल मोह-राग-द्वेष नहीं है, यह सिद्ध करना है। सकल मोह-राग-द्वेष नहीं। उसका काम सबका... कि मैं उनका कर्ता नहीं, करानेवाला नहीं और कर्ता का अनुमोदक नहीं। आहाहा! युवा अवस्था का कर्ता नहीं, युवा अवस्था का करानेवाला नहीं और युवा अवस्था का सम्मत नहीं। युवा अवस्था हो तो ठीक, शरीर से धर्म होगा, ऐसा नहीं, कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : वृद्ध अवस्था हो तो होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी से नहीं होगा। यह प्रश्न है ही नहीं वहाँ। आहाहा! यहाँ तो उससे होगा नहीं, उस समय मैं नहीं तो उससे होगा कैसे? ऐसा। ऐसा कि शरीर की... मनुष्य साधारण कहे न? जरा... आता है न? .... अष्टपाहुड में आता है। वृद्धावस्था न हो, रोग बाहर न दिखाई दे, इन्द्रिय शिथिल न पड़े, तब तक धर्म कर लेना। ऐसा आता है। उत्तराध्ययन में नहीं। वह तुम्हारा तुम समझो। यहाँ तो भावपाहुड में आता है। उत्तराध्ययन में नहीं। श्वेताम्बर में दशवैकालिक में आता है। दशवैकालिक में यह सब गाथाओं के अर्थ देखे हैं और वाँचे हैं। दशवैकालिक के आठवें अध्ययन में आता है। .... पहले वजन आया कि इन्द्रिय ठीक हो तो धर्म हो। ऐई! यह तो एक पुरुषार्थ शीघ्र कर, ऐसा बतलाने के लिये यह बात की है। बाकी वहाँ कुछ अवस्था-बवस्था मैं हूँ और यह अवस्था हो तो होता है, वृद्धावस्था हो तो नहीं होता और युवा अवस्था हो तो होता है—ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा!

समझना चाहिए न कि यह किस नय का वाक्य है। यहाँ तो इनकार किया कि तीनों अवस्थायें मैं नहीं। फिर और वृद्धावस्था आने से पहले धर्म कर ले... यह आया है शास्त्र में। कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं कहते हैं। ऐई! यहाँ भी कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। वह जानने की बात कही है उसकी। निर्बल पुरुषार्थवन्त को ऐसे निमित्तों में अटकना हो

जाता है, वह न अटक, ऐसे जा, अन्दर जा। अन्तर में जा, उसकी ढील न कर, उसे काल न लगा, ऐसा। उसे अभी (नहीं), बाद में करूँगा, ऐसा नहीं होता। जिसे जिसकी रुचि है, उसे बाद का वायदा क्या? ऐसा कहते हैं। जिसे अन्तर रुचि हुई—रुचा, मेरा आत्मा भगवान पूर्णानन्द है, ऐसी जिसे रुचि हुई है, अन्दर में पोषाण होकर अनुभव हुआ, उसे अब देरी क्या? कहते हैं। फिर पुरुषार्थ की निर्बलता के कारण देरी लगे, परन्तु उसे फिर करूँगा, ऐसा नहीं हो सकता। 'आज ही' आता है न प्रवचनसार में? अन्त में आता है। 'आज ही।' आहाहा! दो गाथा आती है अन्तिम। आहाहा! आज ही कर ले। वर्तमान काल में ही करना है आत्मा में। आहाहा!

मनुष्य और तिर्यंच की पर्याय की काया... नारकी और देव को याद नहीं किया। क्योंकि उन्हें कुछ है नहीं, वयकृत फेरफार है नहीं। इनको फेरफार है। जवान अवस्था (हो) सांढ़ जैसी। और ढीली पड़े वहाँ ऐसे... यह सब शरीर की वयकृत अवस्था है, मुझमें है नहीं। मुझे मुझमें नहीं तो, वह मुझे मदद करे, जवान अवस्था हो तो मुझे धर्म हो—ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : निमित्तरूप से धर्म हो, वह कहाँ रहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने कहा? .... हमारे राजमलजी कहते थे न! ऐसे प्रश्न पण्डित के? शरीर की वयकृत... ऐई! क्या कहा? जीवित शरीर से धर्म होता है या नहीं? लो। .... बात सच्ची। यहाँ तो कहते हैं कि वह है ही नहीं न मुझमें। आहाहा! उससे होता है और ऐसा होता है, जीवित... भाई! तूने तुझे ठगा है। इसमें दूसरे को कुछ है नहीं। स्वयं ठगाता है और मानता है कि मैं लाभ में जाता हूँ। आहाहा! यह शुद्धनिश्चय के बल से... विविध भेद, ऐसा है न? उसमें सब भेदवाले... भेदवाले... चौदह भेदवाले, इतने भेदवाले, वे सब मैं नहीं। **शुद्धनिश्चयनय के अभिप्राय से मेरे नहीं हैं।**

पश्चात् **सत्ता**—भगवान आत्मा का अस्तित्व एकरूप त्रिकाल, **अवबोध**—ज्ञान, **परमचैतन्य**—ज्ञान-दर्शन आदि सब। वह अवबोध जरा अलग किया जरा ज्ञान को। परमचैतन्य... ज्ञान-दर्शनादि परम चैतन्य और **और सुख की अनुभूति में लीन...** ध्रुव तो सुख की अनुभूति में लीन ही है त्रिकाल, ऐसा कहते हैं। आहाहा! परमभावस्वभाववाले

मुझे... परमभावस्वभाव, वही मैं हूँ, ऐसे मुझे... आहाहा! मैं **सत्ता, अवबोध, परमचैतन्य और सुख की अनुभूति में लीन ऐसे विशिष्ट आत्मतत्त्व को ग्रहण करनेवाले....** ऐसा आत्म भगवान त्रिकाल है, त्रिकाल ज्ञान, त्रिकाल परम चैतन्य सुख में लीन है। सुख की अनुभूति में लीन ही मैं हूँ। अर्थात् सुखस्वभाव सम्पन्न है, वह सुख की अनुभूति में लीन है, ऐसा। ऐसे **विशिष्ट आत्मतत्त्व...** त्रिकाली... पहले आया है न ज्ञानचेतना? कारणपरमात्मा को ज्ञानचेतना है और कर्मफलचेतना अर्थात् आनन्द के फल का अनुभवना, वह भी कारणपरमात्मा में है। उपयोग में आया है न?

और क्या कहा? आत्मा जो कारणस्वरूप त्रिकाली परमात्मा ध्रुव, उसमें ज्ञानचेतना और ज्ञान का फल, आनन्द का फल, वह सब त्रिकाल में पड़ा है। यहाँ कहा न? सुख की अनुभूति में लीन। वह आनन्द का कर्मफल—आनन्द ऐसा जो कार्य, त्रिकाली वस्तु उसका जो फल अनुभव, वह भी त्रिकाल। ऐसा जो आत्मतत्त्व, उसे ग्रहण करनेवाला... उसे पकड़कर **शुद्धद्रव्यार्थिकनय के बल से...** (अर्थात्) शुद्ध द्रव्य का प्रयोजन जिसे दृष्टि में है। ऐसे शुद्ध द्रव्यार्थिकनय के बल से अर्थात् शुद्धद्रव्यार्थिकनय से **मुझे सकल मोह-राग-द्वेष नहीं है।** मुझे... इसमें भी चार गति में ऐसा आया है कि मुझे देवपर्याय नहीं। ऐसा आया था न? उसमें भी (ऐसा था)। मुझे, इसका अर्थ परमभावस्वभाववाले को अर्थात् मुझे। आहाहा! अर्थात् मुझे यह है नहीं। आहाहा! यह भागवत शास्त्र है। भगवान ऐसा आत्मा, त्रिकाली भगवान ऐसा मैं आत्मा, ऐसा। ऐसे मुझे... ऐसे मुझे ऐसे ग्रहण करनेवाले तत्त्व के आश्रय से मुझे सकल मोह-राग-द्वेष नहीं है। कुछ है ही नहीं मोह-राग-द्वेष। यह दृष्टि पड़ी है ज्ञान-ज्ञायक में, इसलिए मोह-राग-द्वेष नहीं है, ऐसा। समझ में आया?

वस्तु के स्वभाव में दृष्टि पड़ने से वस्तु के स्वभाव में यह नहीं। सकल मोह-राग-द्वेष है ही नहीं न! आहाहा! पर्याय में है, उसका स्वामी ज्ञानी नहीं, स्वामी नहीं। स्वामी तो अपने ज्ञायकभाव शुद्धभाव का है। आहाहा! वास्तविक सत्य को एक ओर रखकर सब बातें करना, उस बात में कुछ दम नहीं आता। फिर बड़ी पण्डिताई बड़ी-बड़ी... वस्तु **भूदत्थमस्सिदो...** यही कहते हैं न? यह बात है। संक्षिप्त में वहाँ कहा था ११वीं गाथा। **भूदत्थो देसिदा दु सुद्धणओ...** भूतार्थ वस्तु को शुद्धनय कहा। यहाँ कहते

हैं कि शुद्धद्रव्यार्थिकनय के बल से वस्तु, वह वस्तु हूँ। उसमें मुझे मोह-राग-द्वेष नहीं है। आहाहा! ऐसा ही तत्त्व है और ऐसा तत्त्व आत्मा, वही वास्तव में उसका स्वरूप है। उस स्वरूप को न स्वीकार कर दूसरे प्रकार से स्वीकार करे (तो) दृष्टि विपरीत है। ऐसा स्वीकार कर, पर्याय में भेद हो, उसे जाने... जाने। जैसे अन्य को जाने, वैसे उसे जाने।

अब क्रोध, मान, माया, लोभ नहीं है। है न गाथा? **रागो...** यह ८० गाथा हुई। **णाहं रागो दोसो ण चेव मोहो....** अब आयी ८१। एक-एक गाथा का अर्थ... यहाँ **सहज निश्चयनय से...** ऐसा शब्द प्रयोग किया। दूसरी बात है। आहाहा! किसी भी प्रकार से इसका विस्तार, इसका विशेषपना समझ में आये इस अपेक्षा से... स्वाभाविक निश्चयनय से **(१) सदा निरावरणस्वरूप...** त्रिकाल निरावरणस्वरूप मैं हूँ। सहज निश्चयनय से अर्थात् कि दृष्टि द्रव्यस्वभाव पर जाने से, वह वस्तुस्वभाव सहज निश्चय जो है, ऐसा जो स्वभाव सदा निरावरणस्वरूप है। कहो, समझ में आया? आवरण था और आवरण गया—ऐसा वस्तु के स्वरूप में नहीं है। यह तो पर्याय की अपेक्षा से है। बन्ध और बन्ध का अभाव, वह तो पर्याय की अपेक्षा से है; वस्तु में है नहीं। आहाहा! **सदानिरावरण स्वरूप...** अरे! द्रव्य को दृष्टि से स्वीकार किया कि सदा निरावरणस्वरूप मैं हूँ। वह तो है, परन्तु स्वीकार हुआ, तब उसे ख्याल में आया। वस्तु जो है, वह तो त्रिकाल निरावरण है, परन्तु वस्तु निरावरण अस्ति ख्याल में किसे आवे? जो उसकी ओर दृष्टि गयी, ऐसे दृष्टिवन्त को ख्याल में आया कि वह तो सदा निरावरण है। समझ में आया?

(२) शुद्धज्ञानरूप,... लो, **(३) सहज चित्शक्तिमय...** त्रिकाल... शुद्ध ज्ञानरूप हूँ, स्वाभाविक चित्शक्ति... एक ज्ञानशक्ति डाली, उसमें वीर्य समाहित हो जाता है। चित्शक्तिमय हूँ... अकेला शुद्धज्ञान और स्वाभाविक चित्शक्ति **(४) सहज दर्शन के स्फुरण से परिपूर्ण मूर्ति...** लो, त्रिकाल। **सहज दर्शन के स्फुरण से परिपूर्ण मूर्ति...** ऐसा। दर्शन का परिपूर्ण रूप मेरा है। पूर्ण अर्थात् है ही ऐसा। स्वाभाविक दर्शन का स्फुरण... मानो प्रगट ही है सब, ऐसा। वस्तु में तो दर्शन पूर्ण प्रगटरूप नित्य प्रगट परिपूर्ण मूर्ति हूँ। **(-जिसकी मूर्ति अर्थात् स्वरूप सहज दर्शन के स्फुरण से परिपूर्ण है ऐसे)...** स्फुरण से... प्रगट पर्याय की बात नहीं। वस्तु प्रगटरूप पूर्ण त्रिकाल... है। आहाहा!

उसकी दृष्टि करना, वह कितना पुरुषार्थ है उसमें। वह सूझता नहीं और यह बाहर का यह करना, वह करना, फलाना करना, उसमें इसे सूझबूझ लागू पड़ती है। जिसमें सूझ लगना चाहिए, वहाँ सूझ करता नहीं। आहाहा! स्वाभाविक दर्शन के स्फुरण के प्रगटपने से परिपूर्ण है वह तो। दर्शन प्रगटरूप से परिपूर्ण है आत्मा।

और (५) स्वरूप में अविचल स्थितिरूप सहज यथाख्यात चारित्रवाले... लो। यथाख्यात अर्थात् वह यथाख्यात (पर्याय) नहीं। त्रिकाल यथाख्यात। जैसे प्रसिद्ध है चारित्र अन्दर त्रिकाल... त्रिकाल... ऐसा। स्वाभाविक यथा प्रसिद्ध... अविचल, स्वरूप में अविचल स्थितिरूप अन्दर... ध्रुव में **अविचल स्थितिरूप सहज यथाख्यात...** यथा अर्थात् प्रसद्धि। मेरा चारित्र त्रिकाल प्रसिद्ध है, ऐसा।

मुमुक्षु : द्रव्य का यथाख्यात चारित्र.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य का। द्रव्य का। .... यथाख्यात का अर्थ यह यथा प्रसिद्ध।

स्वरूप में अविचल स्थितिरूप... स्वाभाविक **यथाख्यात...** ऐसा कहा है न? स्वाभाविक यथाख्यात—त्रिकाल यथाख्यात। जैसे दर्शन का स्फुरण प्रगट है, ऐसे इस चारित्र की प्रसिद्धि ध्रुव में प्रसिद्ध प्रगट है। आहाहा! अलौकिक बात है! **स्वरूप में अविचल स्थितिरूप सहज यथाख्यातचारित्रवाले ऐसे मुझे...** ऐसा। यह वह मैं, ऐसा। ऐसे मुझे... मानती है वह तो पर्याय है, तथापि ऐसे मुझे... त्रिकाल है न। ऐसे मुझे... यह 'मुझे ऐसा है और यह नहीं' वह तो सब पर्याय निर्णय करती है। पर्याय में यह निश्चित है कि यह ही मुझे (अर्थात्) द्रव्य को मुझे, ऐसा। क्या नियमसार नहीं? इसका अर्थ यह कि त्रिकाल निरावरण शुद्ध ज्ञानरूप स्वाभाविक चित्शक्ति और दर्शन का प्रगटपना और चारित्र का भी प्रसिद्ध प्रगटपना अन्दर ऐसे मुझे... ऐसा मैं... ऐसे मुझे—ऐसे परमभावस्वभाववाले को मुझे... आहाहा!

समस्त संसारक्लेश के हेतु क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं हैं। आहाहा! उसमें आ गया कि व्यवहार रागादि नहीं। व्यवहाररत्नत्रय का शुभ उपयोग, वह ऐसे मुझे नहीं। उसमें आ गया न? क्रोध, मान—द्वेष; माया, लोभ—राग। राग का प्रकार वह व्यवहार। व्यवहार मुझे नहीं। मैं तो परमस्वभावभाववाला प्रभु... 'मुझे' यह न? 'मुझे' ऐसा शब्द

है। वह मुझे नहीं। 'मुझे' ऐसा शब्द पड़ा है। दूसरी लाईन। मुझे वह नहीं। मुझे वह नहीं अर्थात् पर्याय में बोला—ज्ञात हुआ। उसमें मुझे... मैं यह वह उसमें नहीं। मुझे अर्थात् मैं जो त्रिकालीभाव ऐसा जो मुझे वह नहीं। यह निर्णय पर्याय करती है, परन्तु पर्याय में यह मुझे (अर्थात्) द्रव्य(रूप) मैं मुझे। समझ में आया?

मुमुक्षु : 'मुझे' शब्द द्रव्य के लिये प्रयुक्त हुआ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य के लिये प्रयुक्त हुआ है। निर्णय करती है पर्याय। मुझे नहीं अर्थात् मैं द्रव्य हूँ, उसमें यह नहीं, ऐसा निर्णय पर्याय है। मुझे अर्थात् यह मैं, ऐसा। समझ में आया? यह तो पहले आ गया है न! उसमें आया था। हाँ वह।

परमभाव जिसका स्वभाव है ऐसे मुझे नहीं हैं। परमभावस्वभाववाले को अर्थात् परमभावस्वभाववाला मैं, मुझे नहीं। आहाहा! पर्याय ऐसा कहती है कि यह द्रव्य है, वह मैं। आहाहा! पूरा तत्त्व वह मैं... 'वह मैं'—ऐसा निर्णय पर्याय करती है। परन्तु वह मैं, उसमें यह नहीं। पर्याय जो निर्णय करती है, वह पर्याय उसमें नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया? अंश है, वह अंशी में है नहीं। 'नहीं' ऐसा निर्णय पर्याय करती है, कहीं द्रव्य तो निर्णय करता नहीं। द्रव्य तो ध्रुव है। परन्तु निर्णय करती है कि मुझे अर्थात्... पर्याय ऐसा कहती है 'मुझे' अर्थात् यह मुझे (द्रव्य को), ऐसा। यह मुझे, यह मैं, ऐसे को यह नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! समयसार से भी कितनी ही बात इसमें विशेष है। भाई ने कहा था न? शीतलप्रसाद ने लिखा है.... यह मोक्षमार्ग किसके आधार से प्रगट हो, इसकी व्याख्या में लिया है। ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव.. 'ध्रुव, वह मैं।' मुझे अर्थात् मेरे यह... मेरा यह। मुझे अर्थात् मैं यह। ऐसा निर्णय तो पर्याय करती है, परन्तु पर्याय में निर्णय (है कि) यह 'मुझे' (अर्थात्) ध्रुव यह 'मुझे', ऐसा। ध्रुव वह मुझे, ध्रुव वह मेरे, यह नहीं। आहाहा! यह निर्णय करनेवाली पर्याय भी ध्रुव में नहीं है। आहाहा!

समस्त संसारक्लेश के हेतु क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं हैं। यह तो आ गया, नहीं? यथाख्यातचारित्र और अकषायस्वभावस्वरूप, ऐसा। मैं तो त्रिकाल अकषायस्वभावस्वरूप हूँ। ऐसे अकषायस्वभावस्वरूप मुझे यह कषायें नहीं हैं।

अकषायस्वभाव वह मैं, ऐसे मुझे अर्थात् मैं तो यह मुझे, ऐसा। अकषायस्वभाव वह मैं। वह मुझे... पर्याय ऐसा कहती है। कार्य तो (पर्याय में होता है।) मुझे कहनेवाली तो पर्याय है। मुझे अर्थात् उस द्रव्य को—मुझे, ऐसा। ऐसे शब्द 'मुझे' 'मुझे' बहुत आता है सोगानी में, तीसरे भाग में। अटपटा लगे ऐसा। 'मुझे'... 'मुझे' कहनेवाली तो पर्याय है। मुझे अर्थात् द्रव्य को। समझ में आया ? यह शब्द हैं आचार्य के। उनकी भाषा तो आवे ऐसी आवे न ! दूसरा क्या हो ? यह बोल कहे पाँच गाथाओं के। एक, दो, तीन, चार और पाँच।

अब, इन (उपरोक्त).... ऊपर कहीं हुई पाँच गाथाओं के भाव **विविध विकल्पों से....** (अर्थात्) सब **(भेदों से)...** विविध विकल्प अर्थात् भेदों से **भरी हुई विभावपर्यायों का...** लो, यह सब विभावपर्यायें हैं, कहते हैं। **निश्चय से मैं कर्ता नहीं हूँ,...** लो, भेदों का मैं कर्ता ही नहीं। **कारयिता नहीं हूँ...** (अर्थात्) भेदों का करानेवाला। करनेवाला भले वह हो (और) कराता हूँ—ऐसा भी नहीं। **विविध विकल्पों से...** अरे रे ! ऐसे तत्त्व कितने स्पष्ट भरे हैं। स्पष्ट कथन, स्पष्ट प्रसिद्ध। स्वाध्याय करे नहीं और सच्चे को झूठा ठहराये, झूठे को सच्चा। क्या करे ? उसे बैठे ऐसा। दृष्टि में उसे ख्याल में न आवे कि.... यह तो कुछ विरल प्राणी को तो कान में पड़ता है। कान में पड़े वह विरल न ! 'विरला जाने तत्त्व को, विरला धारे कोई...' आता है न ? योगसार। 'विरला सुने कोई...' ऐसा आया था। ऐसी चीज़ तो कोई विरले सुने। इसमें वाद-विवाद करना हो, उसे यह बात कुछ बैठती नहीं। वाद-विवाद का विकल्प ही जिसमें नहीं। आहाहा !

इन (उपरोक्त) विविध विकल्पों.... अनेक प्रकार के भेदों से भरे हुए **विभावपर्यायों का निश्चय से मैं कर्ता नहीं हूँ, कारयिता नहीं हूँ...** अब इसमें डाला। **और पुद्गलकर्मरूप कर्ता का....** इन सब भेदों का पुद्गलकर्म कर्ता है। लो, निमित्त के आधीन भेद होते हैं, यह सब पुद्गलकर्म लिया। आहाहा ! 'शान्तिदायक शान्ति जिनराया' आता है न भक्ति में ? वे शान्तिदायक शान्ति जिनराया। मैं त्रिकाल भगवान आनन्दस्वरूप ध्रुव उसे, कहते हैं कि यह पुद्गलकर्म का कर्ता नहीं। उस पर्याय का भी कर्ता आत्मा नहीं। आहाहा ! **(-विभाव-पर्यायों के कर्ता जो पुद्गलकर्म उनका-) अनुमोदक नहीं हूँ....** भेद है, वह ठीक किया, कर्म के निमित्त से हुए, परन्तु ठीक पड़े—यह सम्मत मैं नहीं। आहाहा !

अभी तो यह, पर का कुछ करे नहीं, वह दिगम्बर जैन नहीं। पर का कर्ता न माने... यह गजब बात है न! आहाहा! अरेरे!

'अरेरे' ऐसा बोलना छोड़कर, नहीं? तुम नहीं थे। आदर्श नगर में एक लड़की-बाई थी। ऐसा कण्ठ कौन जाने ऐसा कण्ठ! अन्दर दर्द... अरेरे! परन्तु ऐसा कण्ठ कि एक-एक शब्द बोले उसकी भणकार बजे, ध्वनि बजे कोई उस प्रकार की। थे कोई? नहीं बोली थी? गायन बोली थी। था गायन वैराग्य का, परन्तु कण्ठ और ध्वनि ऐसी ध्वनि... चाहे जो अक्षर बोले तो ऐसे रणकार उठे अकेला। अरे... ऐसा करके... कहा, क्या करता है! उसकी वह देशी, वह ले न देशी। देशी में जैसे करे न ऐसे। उसका ढंग ऐसा था। फिर कुछ पुस्तक दी थी, नहीं? ईनाम। क्या यही होगा? कुछ दिया अवश्य था। 'हित की बात' होगी। ... आहाहा! उस कण्ठ की आवाजों का कर्ता पुद्गल है। परन्तु वह चीज़ करता है पुद्गल आवाज अच्छी, उसका अनुमत मैं नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

उन विभावपर्यायों का भेद करते हैं कर्म, उनका मैं कर्ता नहीं, मैं करानेवाला नहीं, मैं उनका अनुमोदक नहीं। आहाहा! पाठ है न? पहले साधारण गाथा में अर्थ किया, मूल तो प्रत्येक गाथा में है 'कर्ता न कारयिता न अनुमन्ता।' फिर समेटा एकसाथ पाँच के नाम देकर, स्पष्टीकरण बाद में कर दिया। और वह भी यह सब पर्याय के भेदों का पुद्गलकर्मरूप कर्ता, ऐसा वापस सिद्ध किया। आहाहा! जैसे वहाँ कहा न? पुद्गल परिणाम अनुभूति से भिन्न है। ५१ से ५५ (गाथा, समयसार)। यहाँ कहा, मैं तो अभेद चिदानन्द ध्रुव, उसमें जितने भेद ज्ञात होते हैं, उनका पुद्गलकर्म कर्ता है। द्रव्य कर्ता नहीं। तब वह पुद्गल कर्ता है, उसका मैं सम्मत भी नहीं उसमें। आहाहा! ठीक! कर्म के निमित्त से भेद पड़े, मैंने तो भेद किये नहीं, भेद करनेवाला मैं नहीं, करानेवाला मैं नहीं, परन्तु भेद पड़े, उसे मैं ठीक, (ऐसा) सम्मत नहीं। आहाहा! मात्र भेदों को जाननेवाला हूँ, यह तो निश्चय का ज्ञान है, उसमें भेद को जानने का ज्ञान प्रगट होता है साथ में। साथ का साथ, वह कहीं आगे-पीछे नहीं है। यह बात यहाँ लेनी नहीं। यहाँ तो 'यह नहीं' ऐसा कहकर भेद का ज्ञान करते हैं, परन्तु भेद 'मुझमें है' ऐसा नहीं। आहाहा! **(ऐसा वर्णन किया जाता है)**। लो।

मैं नारकपर्याय को नहीं करता,.... पहला तो इतना था न कि नारकपर्याय मैं नहीं। ऐसे पहले कहा था। '**णाहं**' ऐसा था न पाठ ? '**णाहं णारयभावो...**' फिर कर्ता, ऐसा। फिर स्पष्टीकरण किया। **नारकपर्याय को नहीं करता,....** आहाहा! **सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ।** स्वाभाविक चैतन्य का विलास ऐसा जो आत्मा त्रिकाली, हों! स्वाभाविक चैतन्य का विलास... चैतन्य का जिसमें विलास है, ऐसा स्वरूप जो 'आत्मा को ही' यह द्रव्य हुआ। 'भाता हूँ' यह पर्याय हुई। सम्प्रदाय में तो ऐसी बात की गन्ध भी नहीं थी। थी ? आहाहा!

हमारे हीराजी महाराज थे बेचारे ऐसे भद्रिक, सरल, कषाय मन्द। यह शब्द कान में नहीं पड़े, हों! सम्प्रदाय की दृष्टि प्रमाण तो उनकी स्थिति ऐसी थी... सम्प्रदाय की। बहुत... चार वर्ष साथ में निकाले हैं न। ऐसे छह वर्ष संसार के (गिनकर)। बहुत शान्त... शान्त... कान में भी नहीं पड़ी हो यह बात। आहाहा! पर की क्रिया कर सकता नहीं, पर की दया का भाव वह राग, वह आत्मा में नहीं—यह बात सुनी नहीं। आहाहा! देखे थे तुमने ? गुजर गये वहाँ सुरेन्द्रनगर (संवत्) १९७४। ५३ वर्ष हुए। ओहो! हिन्दुस्तान का हीरा कहलाये, परन्तु यह शब्द कान में नहीं। ऐई! यह मलूकचन्दभाई के गुरु थे। परन्तु उस समय वह था, हों! ऐसा ही था। बस, बस। .... बात ही दूसरी कुछ नहीं थी, वे क्या करे ? आहाहा! कितनी दुर्लभ वस्तु सुनना दुर्लभ! उसे फिर समझना, विचारकर रुचि में लेना... आहाहा! उसका परिणमन करना, आहाहा! अलौकिक बात है। मैं तो चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा हूँ। राग के विलास और संसार का विलास वह आत्मा में है ही नहीं। आहाहा! इसलिए **आत्मा को ही भाता हूँ।** विशेष कहेंगे, लो।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ कृष्ण ११, रविवार, दिनांक - १८-७-१९७१
गाथा - ७७ से ८१, प्रवचन-७०

यह नियमसार, प्रतिक्रमण का अधिकार है। प्रतिक्रमण वह चारित्र के अन्तर का अन्तर भेद है। अधिकार तो चारित्र का निश्चयचारित्र का है, उसके अन्तर्भेद में प्रतिक्रमण है। उसकी पाँच रत्न गाथायें। यहाँ आया है अपने देखो! १५३ पृष्ठ पर नीचे का दूसरा पेरेग्राफ।

मैं नारकपर्याय को नहीं करता,... देखो! सूक्ष्म बात है। भगवान आत्मा... सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव ने यह आत्मा जो अभेद शुद्ध चैतन्यद्रव्य देखा, उसकी जिसे दृष्टि हो (अर्थात्) वह अभेद चैतन्य वस्तु एकरूप हूँ, ऐसा स्वभाव का आश्रय ले अथवा स्वभाव की सेवना करे, तब उसे सम्यग्दर्शन कहा जाता है। वह सम्यग्दृष्टि जीव अपने को ऐसा मानता है कि मैं नारक की पर्याय—गति को करता नहीं। चार गति लेनी है, परन्तु उसमें पहले नरक ली है। **सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ।** मैं गति-बति, नरक की गति, वह मैं नहीं। नरकगति में समकिती होता है, तो भी वह नरकगति वह 'मैं नहीं', (ऐसा मानता है)। मैं तो एक शुद्ध चैतन्यविलास—चैतन्य की जिसमें रमणता और विलास है, ऐसा जो भगवान आत्मा वस्तु ध्रुव त्रिकाली ज्ञायकभाव उसे भाता हूँ।

ऐसे **आत्मा को ही भाता हूँ।** 'ही' शब्द है। आहाहा! सूक्ष्म बहुत! वस्तु भगवान आत्मा पूर्ण स्वरूप अभेद ऐसा जो आत्मा, उसकी जिसे दृष्टि और अनुभव हुआ, ऐसा जो धर्मी, वह धर्मी अपने को ऐसा जानता और मानता है कि मैं तो नरकगति में नहीं, नरकगति मुझे नहीं। आहाहा! मैं तो चैतन्यविलासस्वरूप ज्ञानानन्द की क्रीड़ा जिसमें है, ऐसा जो भगवान आत्मा, उसे मैं भाता हूँ, उसमें मैं सन्मुख हूँ, ऐसा त्रिकाली ज्ञायकभाव, उसके सन्मुख हूँ। यह उसकी भावना भाता हूँ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह सूक्ष्म है, जयन्तीभाई!

वीतराग परमेश्वर तीर्थंकरदेव जिन्हें एक समय में तीन काल—तीन लोक ज्ञात

हुए, उन भगवान ने धर्मी का स्वरूप ऐसा वर्णन किया और कहा है कि धर्मी उसे कहते हैं कि जो अपना त्रिकाली ज्ञायकभाव शुद्ध चैतन्यविलासस्वरूप प्रभु आत्मा... ऐसा। चैतन्य के विलासरूप आत्मा को ही मैं भाता हूँ। मैं ऐसे त्रिकाली ज्ञायकभाव—सन्मुख ही हूँ। गति से विमुख हूँ अर्थात् गति मुझमें नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? मैं उसका कर्ता नहीं, करानेवाला नहीं... आज आ जायेगा। यह नरकगति, उसका मैं करनेवाला नहीं। श्रेणिक राजा अभी पहले नरक में (है ऐसा) कहा जाता है। कहा जाता है अर्थात् वास्तव में वे आत्मा में हैं, ऐसा। परन्तु कहते हैं कि वे धर्मी जीव क्षायिक समकिती धर्मी है। इससे उस नरक की गति का करनेवाला मैं नहीं। आहाहा! तथा उस गति का करानेवाला मैं नहीं और गति हुई, उसका मैं सम्मत नहीं—उसका अनुमोदन करनेवाला मैं नहीं। आहाहा!

मैं तो एक चैतन्यविलास की चीज़ आत्मा, ज्ञानानन्दस्वभावी भगवान वह वस्तु, उसे भाता हूँ, उसके सन्मुख होकर मैं एकाग्र होता हूँ। उसमें मैं एकाग्र हूँ। इसका नाम धर्मी और उसे धर्म, आत्मा के एकाग्रता की भावना हुई, वह उसका धर्म। भारी सूक्ष्म! वीतराग का यह मार्ग है। अन्तर में गटागटी है। आहाहा! यह नरक की गति मेरे स्वरूप में ही नहीं। गति तो नहीं, परन्तु गति सम्बन्धी के जो भाव थे पूर्व में बाँधे हुए, वे भाव भी मुझमें नहीं। आहाहा! चैतन्य विलास की क्रीड़ा जिसमें आनन्द का विलास है, ऐसा भगवान आत्मा मेरी त्रिकाली चीज़ है, उसके सन्मुख होकर मैं उसकी भावना करता हूँ। उसके सन्मुख हूँ और नरकगति से विमुख हूँ, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

दूसरा। **मैं तिर्यंचपर्याय को नहीं करता,...** तिर्यंच में भी पंचम गुणस्थान, चौथे गुणस्थानवाले असंख्य जीव हैं। नारकी में भी असंख्य जीव हैं और पशु में भी असंख्य जीव आत्मज्ञानी साधक धर्मात्मा हैं। वह तिर्यंच हजार योजन का शरीर हो... मनुष्य, तिर्यंच की गति हो, वह मैं नहीं, मैं उसमें नहीं, वह गति मुझमें नहीं। आहाहा! मैं तो एक चैतन्यविलास की चीज़ भगवान आत्मा हूँ, उसके सन्मुख में मेरी दृष्टि है। उसके सन्मुख में मैं एकाग्र झुका हुआ हूँ। आहाहा! गति से—तिर्यंचगति से मेरी विमुखता है। समझ में आया? मार्ग ऐसा है। अनन्त काल में इसने एक सेकेण्ड भी सुना नहीं यथार्थस्वरूप से। आहाहा! ऐसे बाहर में हो... हा... पूजा और भक्ति, दया और दान,

व्रत और तप और सामायिक यह सब तो राग की क्रिया... राग की क्रिया है, यह कहीं धर्म नहीं। आहाहा! धर्म तो गति के भाव से भी रहित, गति के अस्तित्व से (रहित है)। गति का अस्तित्व, वह अस्तित्व मुझमें नहीं और उस गति के अस्तित्व को मैंने किया नहीं। पशुगति करायी नहीं और कर्ता हो कर्म से, उसका मैं सम्मत नहीं।

सहज चैतन्य के विलासस्वरूप.... स्वाभाविक भगवान आत्मा चैतन्य के विलासस्वरूप... जिसमें चैतन्यविलास स्वभाव है, ऐसे स्वभाववान को ही भाता हूँ। आहाहा! कठिन भाई धर्म की पद्धति। वीतराग का मार्ग ऐसा है। वीतराग अर्थात् क्या? तेरा स्वभाव ही अन्दर वीतराग है। उसके भाव में एकाग्र होकर वीतरागपने की पर्याय प्रगट करना, वह धर्म। जयन्तीभाई! यह तो सुना भी न हो—कान में बात पड़ी न हो। ऐसी की ऐसी जिन्दगी... अरे! अवतार पूरा होने का काल कितनों को है, परन्तु यह क्या चीज़ है, इसकी खबर बिना और इसकी चीज़ की खबर बिना उसकी सन्मुखता-एकाग्रता नहीं होती और अन्तर एकाग्रता बिना उसे धर्म नहीं होता। यह जन्म-मरण से ८४ के अवतार की घानी में पिलता है। यह दुःखी है। अरबोंपति सेठिया हो, राजा या देव हो, वे सब दुःख की घानी में पिलते हैं, उन्हें भान नहीं। वह दुःख की पीड़ा और दुःख की दशा ऐसी गति तिर्यंच या मनुष्य वह मैं नहीं। उसे उल्लंघ गया हुआ मेरा तत्त्व, चैतन्य के आनन्द का विलास जिसमें है, आनन्द की जिसमें मौज है, आहाहा! ऐसे **आत्मा को ही भाता हूँ।** ऐसे आत्मभाव की एकाग्रता उसका नाम भाता हूँ।

मैं मनुष्यपर्याय को नहीं करता,... लो। कोई कहे कि यह मनुष्यपर्याय है तो धर्म होता है। ऐसा नहीं है। मनुष्यपर्याय ही आत्मा की नहीं। यह शरीर नहीं, हों! परन्तु गति। मनुष्य की गति योग्य जो उदयभाव, वह मैं नहीं। आहाहा! जो मैं नहीं, उससे मुझे धर्म होता है—ऐसा नहीं बनता। आहाहा! भाई! मनुष्यगति मिली, पाँच इन्द्रियाँ मिली तो उसे कितना लाभ होगा? यहाँ कहते हैं, भगवान! सुन न, प्रभु! वह गति और मनुष्य के भव का भाव, वह आत्मा ही नहीं, वह आत्मा में नहीं। ऐसे मनुष्यभव की गति को करता नहीं, मैं करता और रचता नहीं, मनुष्यगति को मैं रचता नहीं। धर्मी सम्यग्दृष्टि अपने त्रिकाली शुद्धस्वभाव के सत्ता के स्वीकार में (मानता है कि) मनुष्य की पर्याय को मैं करता नहीं, मैंने रचा नहीं। आहाहा! उस मनुष्य की पर्याय को मैं कराता नहीं।

हुई को सम्मत नहीं कि यह ठीक हुआ यह मनुष्यपना—मनुष्य की गति, तो यह धर्म को सुनने का योग हुआ। उसे मैं सम्मत नहीं, धर्मी कहता है। आहाहा!

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का धाम प्रभु त्रिकाली ऐसा सहजानन्द प्रभु, उसे मैं भाता हूँ, उसे मैं भजता हूँ, उसकी मैं भक्ति करता हूँ। त्रिकाली ज्ञायकभाव की मैं भक्ति करता हूँ, उसे भजता हूँ, उसमें एकाग्र होता हूँ, ऐसा। आहाहा! कहो, कान्तिभाई! गजब बात! समझ में आया? ऐसा धर्म! बापू! धर्म तो ऐसा ही है। **वत्थु सहावो धम्मो...** वस्तु ऐसा जो आत्मा, उसका स्वभाव चैतन्यविलासरूपी भाव, उसकी एकाग्रता से अन्दर में से भाव आवे, वह वस्तु का स्वभाव, वह धर्म। आहाहा! लोगों को ऐसा लगे यह कि यह तो सब निश्चय... निश्चय... निश्चय है अर्थात् सच्चा... सच्चा... सच्चा है। यहाँ कुछ खोटा आता नहीं। व्यवहार आवे, वह खोटा है। यह तो आगे कहेंगे अभी। **मैं मनुष्यपर्याय को नहीं करता,...** आहाहा! तो यह व्यापार-धन्धे को करता हूँ, ऐसा होगा? यह सब व्यापार-धन्धे किस प्रकार चलते होंगे? मनुष्य के आत्मा बिना चलते होंगे? अपने आप चलते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : सब आरम्भ-परिग्रह से रहित कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आरम्भ-परिग्रह के परिणाम ही स्वभाव में नहीं है। आहाहा! जिसे है और मेरे माने हैं, वह जीव धर्मी नहीं। कहा न, व्यवहार से है उसे—अज्ञानी को। समझ में आया? आहाहा!

चैतन्य के विलासरूपी भगवान सत्ता, जिसकी सत्ता में—अस्तित्व में तो अकेला ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द भरा है। ऐसे स्वभाव में जिसे सन्मुखता धर्मी को हुई है, वह धर्मी ऐसा मानता है कि नारक की पर्याय, मनुष्यपर्याय करता नहीं, कराता नहीं, मैं सम्मत नहीं कि मनुष्यपना है तो मुझे कुछ लाभ हुआ।—ऐसा मानता नहीं, ऐसा कहते हैं। मैं त्रिकाली हूँ तो मुझे लाभ हुआ है, ऐसा कहते हैं। मैं एक त्रिकाली भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञानानन्दस्वभाव वह हूँ तो मुझे लाभ हुआ है। आहाहा! समझ में आया? मार्ग ऐसा निकला गजब! ऐ हिम्मतभाई! वह अज्ञानी सामायिक, प्रौषध और प्रतिक्रमण करते बेचारे बेगार। अब यह कहे कि मुझे धर्म होता है। अरे भाई! तुझे खबर नहीं, प्रभु! आहाहा! तेरी जाति में वे विकल्प नहीं हैं। आहाहा! जिस भाव से मनुष्यगति मिले, वह

भाव तुझमें नहीं और वह भाव मेरा माने, वह आत्मा नहीं। आहाहा! क्या हो? जगत अनादि से लुटाया है न! वह कैसे लुटाया है, इसकी उसे खबर नहीं। आहाहा!

कहते हैं, **सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही...** ऐसा। अर्थात् कि द्रव्य को ही। भाई! एक वस्तु है त्रिकाली ज्ञायक, उसे ही; पर्याय को नहीं। पर्याय उसमें ढलती है, परन्तु भजता हूँ द्रव्य को। आहाहा! वस्तु है न त्रिकाली। अविनाशी भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त शरीर में, परन्तु रहा तो वह का वही। पर्याय में पलटा मारा, परन्तु वस्तु तो है, वह है। आहाहा! ऐसी चैतन्यसत्ता प्रभु मेरी सत्ता ऐसी, उसके स्वीकार में, उसकी सन्मुखता में मुझे जो धर्मदशा होगी, उसमें गति-बति का रचना, वह है नहीं। आहाहा! मनुष्यगति की सहायता मुझे नहीं कि मनुष्यगति थी तो मुझे सम्यग्दर्शन हुआ। मैं त्रिकाली था तो मुझे सम्यग्दर्शन हुआ। आहाहा! समझ में आया? बापू! धर्म कोई अपूर्व चीज़ है। अनन्त काल में अनन्त-अनन्त काल इसने विचारा कब है? कहाँ-कहाँ रहा? नरक में रहा, दरिद्रता में रहा, चींटी-कौवे-कुत्ते के अनन्त भव किये। आहाहा! अरे! इसका इतिहास... इति-हास—इसका सब इति देखे हो ह्रास में गया—दुःख में गया है। आहाहा!

भगवान आत्मा अपनी निज पूँजी की कीमत आँके बिना राग और संयोग और एक समय की अवस्था की कीमत करके भटका है। उसके भटकने के अन्त का यह अवसर है। जहाँ अन्तर स्वभाव में चौरासी के अवतार का कारण ऐसे भाव ही जिसमें नहीं। उसमें तो अनन्त आनन्द, ज्ञानभाव स्वभाव भरा है। ऐसे अनन्त की लहरें बहती प्रभु, उसमें जिसकी सन्मुखता है, उसे यहाँ जन्म-मरण के अन्त का अवसर लाया, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह तो अन्तर की बातें हैं, भाई! आहाहा!

मैं देवपर्याय को नहीं करता,... देव सर्वार्थसिद्धि का देव एकावतारी है। सर्वार्थसिद्धि का देव है। यह कहे, देव मैं नहीं, हों! आहाहा! और मैं देव हूँ, इसलिए एकावतारी हूँ—ऐसा नहीं। मैं तो त्रिकाली आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा हूँ, इसलिए मुझे एक अवतार अब है, बाकी दूसरा दूसरे के कारण मैं नहीं। आहाहा! वह अवतार और विकल्प भी मुझमें नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने अमृत बहाया है। ऐसी बात अन्यत्र कहीं सुनने को मिले, ऐसा नहीं है, ऐसी बात है।

सन्तों ने मार्ग सरल कर दिया है। आता है न? भाई! अनुभवप्रकाश। सन्तों ने सरल....

ऐसा भगवान महानिधिनिधान जिसने प्रसिद्धरूप से प्रगट किया और प्रसिद्धरूप से प्रगट हो, ऐसी उसकी कला समझायी। समझ में आया? 'अहो! उपकार जिनवर का...' आता है न? अरे! मैं देव नहीं, परन्तु सर्वार्थसिद्धि में जाये, उसे एकावतारीपना होता है और एक भव में मोक्ष होता है। अरे! मोक्ष तो मेरे स्वभाव में पड़ा ही है। मैं तो मोक्षस्वरूप ही हूँ। चैतन्य के विलासस्वभावी भगवान आत्मा त्रिकाल मुक्तस्वरूप हूँ। उस मुक्त में एकाग्र होने से पर्याय में मुक्तदशा प्रगट होती है। कोई राग की क्रिया और निमित्त की क्रिया से कहीं मुक्ति की पर्याय प्रगट नहीं होती। आहाहा! श्रीमद् ने नहीं कहा उसमें? कि अरे, भवचक्र का अन्त... 'तो भी अरे भवचक्र का फेरा नहीं एक ही टला।' आहाहा! देखो! सोलह वर्ष की उम्र में संक्षिप्त में कहा, लो। ऐसा मनुष्यपना मिला, भाई! तुझे, उसमें से भव का चक्र नहीं टला... और एक टला उसने सब टाले। आहाहा!

जिसे भगवान आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप—सत्-शाश्वत, ज्ञान और आनन्द का नाथ की जिसे भेंट हुई, सब भव गये। थे तो नहीं, परन्तु पर्याय में जो थे, वस्तु में नहीं थे, पर्याय में थे, उस वस्तु का आश्रय लेने से पर्याय में भी रहते नहीं। सहज चैतन्य के... देवपर्याय को करता नहीं। देव की गति को मैंने किया ही नहीं। परन्तु आये न यहाँ शुभभाव से? परन्तु शुभभाव ही मेरा नहीं था न! मैं किसी गति में और शुभभाव में आया ही नहीं न कभी। आहाहा! मैं तो ज्ञानस्वरूप आनन्दमूर्ति प्रभु आत्मा हूँ। मुझमें से हटकर कभी राग की गति में आया ही नहीं न! आया ऐसा तुझे भासित हो तो वह भ्रम अज्ञान है। समझ में आया?

मैं चौदह मार्गणास्थान के भेदों को नहीं करता,... वजन भेदों का है। चौदह मार्गणास्थान, चार गति नहीं, पाँच ज्ञान की पर्याय के भेद नहीं, क्षायिक, क्षयोपशम समकित ऐसे भेद नहीं। आहाहा! ऐसे भेद को मैं करता नहीं और उस भेद को मैंने कराया भी नहीं (और) भेद हो, उसे मैं सम्मत नहीं। सम्यग्दृष्टि कहता है, भेद हो वह मुझे सम्मत नहीं। मेरा सम्मतपना तो त्रिकाली चैतन्य **सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ।** आहाहा! जिसमें अनन्त आनन्द और अनन्त केवलज्ञान के कन्द पड़े हैं, रस पड़ा है, ऐसी रस की चैतन्य कातली, उसे मैं स्वादता हूँ। कहो, यह धर्मी

का यह स्वाद है। मेरा नाथ अनन्त आनन्द का सनाथ, उसे मैं भाता हूँ। आहाहा! ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद को लेता हुआ मैं मार्गणा के भेदों को नहीं करता। भेद पड़े, उन्हें सम्मत नहीं। आहाहा! अरे जीवो! अन्दर में चीज़ क्या है? पूर्णता का नाथ प्रभु अन्दर विराजता है, भगवान अनादि-अनन्त परमात्मस्वरूप ही स्वयं है। आहाहा! परमात्मस्वरूप न हो तो परमात्म (पना) पर्याय में आयेगा कहाँ से? आहाहा! अनन्त... अनन्त परमात्मा की पर्याय एक समय की, दूसरे समय में दूसरी... पर्याय है न? तीसरे समय में तीसरी। ऐसी अनन्त परमात्मपर्याय उसका स्वरूप तो द्रव्य में है, उसमें से आती है। मैं तो परमात्मा हूँ। बहिरात्मा भी नहीं और अन्तरात्मा भी नहीं, परमात्मा पर्याय में, वह नहीं। आहाहा! पर्याय का परमात्मा, उतना मैं नहीं। आहाहा!

सब इसमें चौदह में आ जाता है न? आठ ज्ञान के भेद... सब आ जाता है। तूने जिसके सामने देखा है, वह तेरा नहीं, जिसके सामने देखना है, वह तुझे खबर नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा, सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव परमेश्वर अरिहन्तों ने देखकर जानकर वाणी द्वारा आया, भगवान! भगवान होना है न तुझे? तू भगवान होगा, वह कहाँ से होगा? भगवान दशा में होना, वह कहाँ से होगा? वह भगवान स्वयं है, उसमें से भगवान होगा। आहाहा! भगवान आत्मा की भगवानपर्याय तो प्रजा है। आहाहा! तू त्रिलोकनाथ भगवान है, भाई! तेरी पामरता और हीनता दिखती है, वह दृष्टि मिथ्या है। हीनता दिखे... यह मार्गणा के भेद हैं न सब, यह भेद अकेले दिखाई दे, वह पामरता है, वह हीनता है, मिथ्याभाव है। आहाहा! समझ में आया? मार्ग इस प्रकार का है, भाई! आहाहा!

कहते हैं, मैं चौदह मार्गणा के भेदों को... गति, जाति, कषाय, ज्ञान, दर्शन, भव्य, अभव्य भी मैं तो नहीं। आहाहा! मैं तो परमात्मा त्रिकाल हूँ। आहाहा! मैं तो, चैतन्यविलासस्वरूप सहज-स्वाभाविक वस्तु है आत्मा त्रिकाल, उसकी सन्मुखता में ही हूँ, इनसे तो विमुख हूँ। विमुख है अर्थात् वे मुझमें नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का अन्दर है। भगवान त्रिलोकनाथ सीमन्धर परमात्मा महाविदेह में विराजते हैं, उन भगवान के मुख से यह निकला हुआ था। उसे सन्तों ने आकर रचा और यह बाहर में रखा है, लो! आहाहा! मैं यह लाया हूँ भगवान! तेरे लिये।

पाथेय लावे न! मगनभाई! लड़के सब आवे, बापू! मेरे लिये क्या लाये? स्त्रियाँ ऐसा कहे, क्या साड़ियाँ–बाड़ियाँ लाये? लड़के ऐसा कहे, घड़ी–बड़ी लाये? कलाई की घडी लाये? यह सब अभी यह है, पहले यह कहाँ था? पहले तो कम्बल लाये? ऐसा था। यह तो अब यह... पहले यह नहीं था। कम्बल–कम्बल लाये मेरे लिये? कोट–बोट लाये? कलाई की घड़ी लाये? यह जापान की है यह। गोदिका के पास थी वहाँ। कि ले जाओ तुम्हारी। उसके बदले हमको एक दो। वह बराबर नहीं चलती थी। कहा, आप रखो... वह नहीं थी दूसरी यहाँ? वह चलती नहीं थी। कहे कि मुझे दो। आहाहा! किसे कौन दे और कौन ले? आहाहा! गजब बात है! लेने–देने का मुझमें है ही नहीं। लेने का हो तो स्वभाव और छोड़ने का हो तो विभाव। कहो, समझ में आया? आता है न? '...और ठौर...' लेने का कुछ रहा नहीं। जो है वह ले लिया गया, आत्मा है, ले लिया गया। पृथक् था छूट गया, विभाव था वह छूट गया, मुझमें नहीं था। आहाहा!

आचार्यों ने भी कलशों में तो कमाल किया है कमाल। आहाहा! क्षयोपशम की हद भी इतनी! अनुभव और स्थिति हो, वह अलग बात है। एक तिर्यंच को अनुभव आनन्द का होता है, परन्तु यह तो क्षयोपशम की लहर उठी है न! आहाहा! समुद्र डोला है पूरा। कहते हैं, भगवान! एकबार सुन न, प्रभु! तू प्रभुता की शक्ति से भरपूर पूरा प्रभु है। ऐसे मार्गणा के भेद–बेद वे पामरता के लक्षण हैं, वे तुझमें नहीं। आहाहा! कहो, शान्तिभाई! बात बहुत आयी। लोगों को ऐसा लगे कि यह सोनगढ़वाले तो एकान्त निश्चय... निश्चय करे। सोनगढ़ नहीं, भगवान! तेरा स्वरूप ही ऐसा है भाई! उसे कहते हैं कि यह कहते नहीं कि भक्ति से ऐसा होता है, यात्रा से ऐसा होता है, अपवास से... बापू! क्या हो, भाई? परद्रव्य का कुछ कर सकता नहीं और परद्रव्य का यह लक्ष्य जाये वहाँ राग होता है, अब क्या करना है तुझे? आहाहा! यह तो वीतराग का मार्ग है। उसमें वीतरागता हो वह धर्म होता है। वीतरागता कब होती है? निमित्त के लक्ष्य से होती है? राग के लक्ष्य से होती है? पर्याय के लक्ष्य से होती है? (नहीं होती)। समाप्त हो गया। आहाहा!

त्रिकाली भगवान... देखो न! यह 'पर्यायदृष्टि, वह मिथ्यादृष्टि' यह सुहाता नहीं। ऐसे बड़े लेख लिखते हैं। कल बड़ा लेख आया था जैनसन्देश में। अरे भाई! तू चर्चा

किसके साथ, कैसे क्या करता है? पर्यायदृष्टि अकेला अंश ही मानना, वह तो मिथ्यादृष्टि है ही। आहाहा! त्रिकाली क्या है, उसकी तो खबर नहीं और त्रिकाली है, उसका भान हो, उसे पर्याय है, उसका ज्ञान है। पर्याय है, उसका ज्ञान है।

मुमुक्षु : पर्यायदृष्टि....

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टि कहाँ रही? दृष्टि तो है ही कहाँ? आहाहा! उसकी आलोचना करे। भगवान! तेरे घर में ऐसी लक्ष्मी तिलक करने, तो (कहे), अभी मुँह धोकर आता हूँ। अरे! चली जायेगी, फिर से वापस नहीं आयेगी। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा चैतन्य के विलास की क्रीड़ा रमनेवाला भगवान, ऐसा कहते हैं। त्रिकाल, हों, त्रिकाल। ऐसे आत्मा को मैं भाता हूँ। आहाहा!

मैं मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानभेदों को नहीं करता,... चौदह गुणस्थान के भेदों को मैं नहीं करता। आहाहा! चौदहवाँ गुणस्थान तेरा नहीं। शुद्धता है, परन्तु उसके साथ अशुद्धता का अंश है न अभी? चौदहवें में भी अशुद्धता का अंश है न? उदयभाव है न? वह दशा में है, वह मैं नहीं। समझ में आया? मैं मिथ्यादृष्टि आदि चौदह गुणस्थान भेदों को नहीं करता, चौदह को कराता नहीं और चौदह हों, उसे सम्मत नहीं। आहाहा! भेद नहीं और कारण भी नहीं। पहले आ गया है पहला। उसका कारण मैं नहीं, उसका अर्थ यह हुआ कि कर्ता नहीं, कराता नहीं। आहाहा!

यह गुणस्थान भेद... तलकचन्दभाई गाते थे, नहीं? 'तेरहवाँ गुणस्थान तेरा नहीं।' सुना था सुमनभाई? तलकचन्दभाई। उसमें ऐसा भी गाते... तब न हो वहाँ वह। वह पुस्तक ली... सम्हाल रखे। पुस्तक में है वह। पहले यहाँ जब आते, गाते, वहाँ बैठते। रहते यहाँ मकान में, लालजीभाई के मकान में रहते थे। ऐसे बेचारे को प्रेम हो गया, हों! परन्तु शरीर बहुत स्थूल, वह रह नहीं सके। मार्ग तो यह है। अभी तक गीत गाये खोटे हैं मेरे। भजन-बजन गाये बहुत। राग बहुत, शरीर जोरदार, बहुत भजन गाये हुए खोटे-खोटे गप्पा। आहाहा! अरे! भजन तो एक बार तेरा गा। जन्म-मरण का आरा—अन्त (आयेगा)। आहाहा! मैं एक पूर्णानन्द का नाथ प्रभु हूँ, मुझमें राग तो नहीं, संयोग तो नहीं, परन्तु अल्पज्ञता भी मुझमें नहीं। आहाहा! ऐसा जो आत्मा ध्रुव

चैतन्य अविनाशी सनातन सत्य... सनातन सत्य, ऐसे आत्मा के सन्मुख होना, वही उसकी भावना है। कहो, 'भाता हूँ' का अर्थ कल्पना करता हूँ—ऐसा है? आहाहा!

सिंह आये हो पच्चीस-पचास चारों ओर से, अकेला मनुष्य जंगल में गया हो। ऐसी खबर पड़े कि ऐ... सिंह आया। भाग। भागे परन्तु, कहीं जाने की... आहाहा! इसी प्रकार चार गति के दु:ख और कषाय सिंह है, विकार लगा है तुझे। वह बढवाण का, नहीं? भाई... आपटो लेने गये थे। उसका क्या नाम? .... पीछे घर, नहीं? वह लड़का जवान २४ वर्ष का। आपटो लेने गया। आपटो समझे न? यह बीड़ी के पान। वह क्या कहलाता है आपटा के अतिरिक्त का? टीमरू। टीमरू के पान बड़े होते हैं, आपटा के छोटे होते हैं। बड़े पड़े होंगे। उसके पिता जाते थे बहुत बार। आज हुआ कि इसे भेजूँ। विवाहित, दो-तीन लोग साथ में। लकड़ियाँ... रखवाले साथ में थे। हम वहाँ थे तब वह गुजर गया। गया वहाँ आपटो का ढ़ेर पड़ा था। उसमें एक सिंह ने दहाड़ मारी पीछे से आपटा में से। आपटा समझे? वह पान आते हैं ने बीड़ी के छोटे पत्ते। बड़ा ढ़ेर देखा। पीछे से दहाड़ की और भागा, वह और वे तीन साथ में। बबूल पर चढ़ने गये। तीन तो चढ़ गये ऊपर। यह चढ़ने गया वहाँ धोती फँस गयी बबूल के उसमें। वहाँ सिंह ने आकर थाप मारी। नीचे गिरा, खा गया। वे ऊपर तीनों रखवाले देखें। क्या करे? सब खाकर एकसाथ... कड़ा था सोने का, पड़ा रहा, सोने का कड़ा तो खाये नहीं। वह सब खा गया।

इसी प्रकार चार गति के दु:ख का.... दु:ख के सिंह पड़े हैं तेरे पीछे। कषाय... कषाय... कषाय... उससे दु:खी, किसका तुझे हर्ष आता है? किसके तुझे उत्साह आता है? आहाहा! हर्ष करनेयोग्य तो भगवान आत्मा है। वहाँ हर्ष करके रहने योग्य है। आहाहा! ऐसा धर्मी जीव अपने को, चौदह गुणस्थान के भेद को भी अपने नहीं मानता। अपने में नहीं मानता, है भले हो। अस्तिरूप से है, ऐसा सिद्ध तो करते हैं वापस। जैनदर्शन की पर्याय में भी कैसा होता है, यह साथ में प्रसिद्ध करते हैं और उसका निषेध करके वस्तु एकरूप है, उसे प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य, गजब स्थिति उनकी!

मैं मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानभेदों को नहीं करता, सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ। मैं एकेन्द्रियादि जीवस्थानभेदों को नहीं करता,.... एकेन्द्रिय, दो-इन्द्रिय, त्रैन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, पर्याप्त-अपर्याप्त, वह मैं नहीं। आहाहा! पंचेन्द्रिय है या नहीं तू? कहे, नहीं। भाई! पंचेन्द्रियपना मिला, इसलिए सदुपयोग करो। यहाँ कहते हैं कि पंचेन्द्रिय मेरी नहीं और किसका उपयोग करूँ? आहाहा! गुणवन्तभाई! ऐसा स्वरूप है। आहाहा! आबाल-गोपाल को यह समझने जैसी बात है। जिसे हित करना हो, उसके लिये यह बात है। अरेरे! चौरासी के अवतार में... भाई ने कहा न, 'अरेरे! सच्चा वारि रे अेने नहीं मणे।' आहाहा! तुम्हारे बींछियावाला। ऐई! कमल। रमेश नाम है। सरोवर, भरे सरोवर को भूलकर भटकता... जिसमें पानी नहीं उसमें—मृगजल में जाता है। यह सच्चा पानी तुझे नहीं मिलेगा, नाथ! वहाँ पानी नहीं है, भाई! उस मृगजल में पानी नहीं।

इसी प्रकार यह पैसा, स्त्री, पुत्र और शरीर, मन और वाणी, पुण्य और पाप वहाँ कहीं सुख नहीं है। वह मृगजल है। आहाहा! वह सच्चा सरोवर छोड़कर और यहाँ भटका-भटक पुण्य के भाव में, पाप के भाव में, उनके फल में... भाई! वहाँ (सुख) कहीं नहीं है। शान्ति का सरोवर तो तू है। आहाहा! सरोवर हो, वहाँ मनुष्य और पशु सब पानी पीने आवे। उसमें ऐसा नहीं कि मनुष्य ही आवे, ढोर न आवे। पशु भी आवे। ऐसे मनुष्य और पशु के जीव बाहर ज्ञात हो, वे आत्मा के सरोवर में सब जा सकते हैं। आहाहा! क्योंकि शरीर और गति ही तू नहीं न, तो फिर प्रश्न क्या? ऐसे एकेन्द्रियादि जीवस्थान के भेदों को करता नहीं। **सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ।** पुस्तक मिली है या नहीं? नगीनभाई! पुस्तक है? यह तो कोई दिक्कत नहीं। हिन्दी, गुजराती तो भाषा है। उसमें वहाँ नहीं रखी? आहाहा! अब उस ओर।

मैं शरीरसम्बन्धी बालादि अवस्थाभेदों को नहीं करता,... मनुष्य और तिर्यंचों के वयकृत भेद—बाल, युवक और वृद्ध, वह तो वयकृत भेद है, वह आत्मा में नहीं। आहाहा! जवानी, वृद्धावस्था, बाल, वे तो अवस्था के किये हुए भेद हैं। बालावस्था, वृद्धावस्था, युवावस्था, वे अवस्था के भेद हैं, वे वयकृत भेद हैं, वे आत्मा में नहीं। आहाहा! समझ में आया? वे 'नेति-नेति' करते हैं न वेदान्त? परन्तु नेति-नेति कुछ है

उसे 'नहीं-नहीं' करते हैं या नहीं, उसे 'नहीं-नहीं' करते हैं ? यहाँ है, वयकृत भेद शरीर में है, (परन्तु) मुझमें नहीं। समझ में आया ?

शरीरसम्बन्धी बालादि अवस्थाभेदों को नहीं करता,.... पहले आ गया है वयकृत भेद। यहाँ अवस्थाभेद लिया, वहाँ वयकृत भेद था। **सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ।** आत्मा को 'ही'। यह वस्तु मेरी त्रिकाली... यह कल कहा था, मुझे यह नहीं... मुझे यह नहीं। अब पर्याय निर्णय करती है और पर्याय कहती है कि यह द्रव्य में—मुझमें नहीं। मुझे नहीं। मुझे नहीं अर्थात् क्या ? मेरे भगवान में यह सब भेद ही नहीं। कौन निर्णय करता है ? कि पर्याय। वह ध्रुव निर्णय (नहीं करता)। आहाहा !

यह पर्याय ऐसा कहती है कि यह ध्रुव, वह मैं। यह मैं (-पर्याय) वह मैं नहीं। आहाहा ! एक समय की पर्याय ऐसा कहती है कि मुझे यह नहीं। मुझे अर्थात् उस ध्रुव को। पर्याय ध्रुव को अपना मानती है। पर्याय को पर्याय (मानती है), ऐसा नहीं, पर्याय ध्रुव को मानती है। त्रिकाल... आहाहा ! यह आ गया था कल। मुझे नहीं, नहीं ? मुझे नहीं। परन्तु मुझे नहीं कौन ? ध्रुव ने निर्णय किया ? आहाहा ! ध्रुव, वही मैं हूँ, ऐसा पर्याय पुकारती है, कहते हैं। पर्याय कहती है कि मैं पर्याय, वह मैं—ऐसा नहीं। पर्याय पुकारती है कि द्रव्य, वह मैं। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसी बात है, भाई ! पर्याय, वह मैं नहीं। पर्याय कहती है कि द्रव्य, वह मेरा, वह मैं; द्रव्य, वह मैं; ध्रुव, वह मैं; पर्याय, वह मैं नहीं। प्रवीणभाई ! आहाहा !

वीतरागमार्ग का रहस्य है। वीतराग के अतिरिक्त यह कहीं होता नहीं। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा अरिहन्त के सिवाय कहीं यह बात होती नहीं। ऊपर-ऊपर से सब बातें करे कि इसमें ऐसा है, वैसा है। वह सब खोटी। आहाहा ! आत्मा को भाता हूँ, ऐसा कौन निर्णय करता है ? आत्मद्रव्य निर्णय करता है ? तथापि, कहते हैं कि मैं आत्मा को भाता हूँ। आत्मा कहता है कि मैं मुझे भाता हूँ। इस पर्याय में इस आत्मा को भाता हूँ। आहाहा ! कठिन बात महँगी ! अरेरे !

मैं रागादिभेदरूप भावकर्म के भेदों को नहीं करता,.... लो, रागादि दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, पाप, ऐसे भाव को मैं नहीं करता। लो, यह व्यवहार मैं नहीं करता,

ऐसा कहते हैं। आत्मा करे। जड़ करे? आत्मा करता ही नहीं। विवाद ऐसे उठे न! व्यवहार कौन करता है? परन्तु सुन न अब? व्यवहार शुभराग है, वह तो अचेतन है। यह चेतन करे उसे? समझ में आया? दस-दस हजार लोग जब यात्रा में इकट्ठे हुए और वहाँ बात की हो... आहाहा! यह तो मिटाने के लिये... भाई! यह तो भगवान का कथन है। भगवान को, मिटाते हैं (ऐसा) कहना हो तो कह तुझे। और यह मिटाये बिना भगवान हाथ आवे ऐसा नहीं है। हमारी गुजराती भाषा है, भुंसाडिया वाणवो। उसमें ऐसा कहते हैं कि कंचन और कामिनी चौकी आडी श्यामनी, रामनी रमतने ते लूंटे। यहाँ कहते हैं, राग और पर्यायबुद्धि आत्मा की रमणता को लूटते हैं। आहाहा! ऐसा वस्तु का स्वरूप ही है। दूसरे प्रकार से लाओ, करो न निश्चित। वह आयेगा कहाँ से? होवे, वह आवे न! आहाहा!

रागादिभेदरूप भावकर्म.... देखो! भावकर्म अर्थात् पुण्यपरिणाम, पापपरिणाम, दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव, वह भावकर्म, उनके भेदों को अर्थात् असंख्य प्रकार, उन्हें मैं नहीं करता। आहाहा! यहाँ तो (अज्ञानी) कहते हैं कि व्यवहार करेगा तो निश्चय होगा। अरे भगवान! भाई! तुझे क्या करना है? जिसमें से होगा उसमें से निकलेगा। राग में है आत्मा? आत्मा की समृद्धि—सम्पदा राग में, पुण्य में, व्यवहार में है? व्यवहार को तू करता नहीं। यह व्यवहार को कराता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! और व्यवहार करता हो, तो उसे मैं सम्मत नहीं। आहाहा! **रागादिभेदरूप भावकर्म....** चौथी गाथा है। चौथी (८०) गाथा में है। '**णाहं रागो दोसो ण चेव मोहो ण कारणं तेसिं...**' उसका कारण भी नहीं। वह तो कर्ता में आ जाता है। उस राग का कारण भी मैं नहीं। व्यवहार रागादि हो, उसका मैं कर्ता नहीं, करानेवाला नहीं, अनुमोदक नहीं, कारण मैं नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया? अरे गजब!

यह तो अभी सम्यग्दर्शन का विषय ध्रुव और उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन प्रगट हो, वह बात चलती है। किसी को एल.एल.बी. की ऊँची लगती हो, वह यह नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा तो नहीं आया हो वहाँ। आया होगा पठन में? डॉक्टर का आवे थोथा का। इसका ऐसा करना, इसका ऐसा करना और इसका ऐसा करना। आहाहा! जितने बोल कहे, वे सब गुणस्थान (आदि) के कर्ता नहीं, करानेवाला नहीं,

परन्तु उनका कारण भी मैं नहीं। यहाँ से लिया। चार गति का कर्ता, करानेवाला नहीं, परन्तु कारण भी मैं नहीं। चार गति का कारण मैं नहीं। आहाहा! चौदह गुणस्थान, चौदह जीवस्थान, चौदह मार्गणास्थान, उनका मैं कारण भी नहीं। भगवान परमात्मा स्वयं केवलज्ञान का कारण, वह तो मुक्ति का कारण है। ऐसे भाव का कारण भी आत्मा नहीं। आहाहा!

सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ। 'भाता हूँ' यह निश्चय मोक्ष का मार्ग। त्रिकाल भगवान आत्मा, वह मोक्ष के मार्ग का कारण। त्रिकाल ज्ञायकभाव ध्रुवभाव, वह मोक्षमार्ग का कारण। अभी आश्रय वह लेना है न? और उस मोक्षमार्ग के भाव का मैं कर्ता। वह व्यवहार रागादि व्यवहारमोक्षमार्ग जिसे कहते हैं, उसका मैं कर्ता—व्यवहाररत्नत्रय का कर्ता नहीं, ऐसा कहते हैं। वे सब शोर मचाते हैं। व्यवहाररत्नत्रय का मैं कर्ता नहीं, करानेवाला नहीं, अनुमोदक नहीं, परन्तु व्यवहाररत्नत्रय का शुभविकल्प, उसका मैं कारण नहीं। आहाहा!

मैं भावकर्मात्मक चार कषायों को नहीं करता,... लो, चार कषायें लीं। वह भावकर्म समुच्चय लिया न रागादि। क्रोध, मान, माया, (लोभ) थे न अन्तिम चार। क्रोध, मान, माया, लोभ को करता नहीं, कराता नहीं, करते को सम्मत नहीं, हो उसका कारण नहीं। तब कौन कारण? आहाहा! ऐसे **सहज चैतन्य के विलासस्वरूप आत्मा को ही भाता हूँ।** लो। **(यहाँ टीका में जिस प्रकार कर्ता के सम्बन्ध में वर्णन किया, उसी प्रकार कारयिता और अनुमन्ता—अनुमोदक के—सम्बन्ध में भी समझ लेना।)**

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ कृष्ण १२, सोमवार, दिनांक - १९-७-१९७१
श्लोक - १०९, गाथा - ८२, प्रवचन-७१

(अब, इन पाँच गाथाओं की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं:) टीकाकार उन्हें पंच रत्न कहते हैं। ....मोक्ष की है न इसलिए।

भव्यः समस्तविषयाग्रहमुक्तचिन्तः,
स्वद्रव्यपर्ययगुणात्मनि दत्तचित्तः।
मुक्त्वा विभावमखिलं निजभावभिन्नं,
प्राप्नोति मुक्तिमचिरादिति पञ्चरत्नात्॥१०९॥

उसमें डाले रत्न। **श्लोकार्थः—इस प्रकार पंच रत्नों द्वारा जिसने समस्त विषयों के ग्रहण की चिन्ता को छोड़ा है...** परसन्मुख के विषय अर्थात् भेद, राग और निमित्त सब (पर) विषय हैं। उन समस्त विषयों के ग्रहण की चिन्ता को छोड़कर यह **निज द्रव्य-गुण-पर्याय के स्वरूप में...** अपने द्रव्य-गुण और पर्याय निर्मल त्रिकाल.... द्रव्य-गुण निर्मल है और उसकी निर्मल पर्याय में **चित्त एकाग्र किया है,...** अपना द्रव्यस्वभाव, गुणस्वभाव और उसकी एकाग्रता, वह निर्मल पर्याय, उसमें जिसने चित्त को एकाग्र किया है, वह भव्य जीव **निज भाव से भिन्न...** निज भाव अर्थात् त्रिकाली शुद्ध द्रव्यस्वभाव, वह निजभाव। त्रिकाली ज्ञायकभाव, ध्रुवस्वभाव, नित्यभाव, परमस्वभावभाव वह निजभाव। ऐसे निजभाव से भिन्न ऐसे **सकल विभाव को छोड़कर...** यहाँ तो सब भेद हैं, उन्हें भी विभाव कह दिया है। सब—**सकल विभाव को छोड़कर अल्प काल में मुक्ति को प्राप्त करता है।** 'छोड़कर' तो उपदेश की शैली ऐसी आती है। अपने स्वभाव में एकाग्र होता है तो उत्पन्न नहीं होता तो 'छोड़कर' ऐसा कहने में आता है। तयाग करके... कथनशैली ऐसी है।

सकल विभाव को छोड़कर... उसका अर्थ कि निजस्वभाव में लीन होता है तो भेदभाव और विकल्प उत्पन्न नहीं होते, उसको 'छोड़ते हैं' ऐसा कहने में आता है। ऐसी

बात है। आहाहा! उपदेश की शैली तो ऐसी है। छोड़े क्या? यह राग है, भेद है, (वह) मैं छोड़ूँ—वह भी पर के ऊपर लक्ष्य गया। यह तो उपदेश की पद्धति में ऐसी बात आती है। मैं तो निजभाव... कहा था न, सब उसका .... किया है न कलश। मुझे अर्थात् मैं... परमस्वभाववाला ऐसे मुझे अर्थात् कि परमस्वभावभाव में लीन होने से भेदभाव, रागभाव आदि उत्पन्न नहीं होते। उसे 'छोड़कर' ऐसा कहा और इसे 'ग्रहण करके' कहा। पूरा चैतन्यद्रव्य है न वस्तु—पदार्थ बड़ा महाप्रभु, चैतन्य रत्नाकर, ऐसा जो अभिन्न स्वभाव, वह निजभाव। ऐसे निजभाव में 'एकाग्र होने से', यह पर्याय हुई।

निजभाव त्रिकालभाव। एकाग्रता, वह वर्तमान पर्याय हुई। आहाहा! कहते हैं कि वर्तमान पर्याय अन्तर में एकाग्र हुई तो यह पर्याय उत्पन्न हुई। ध्रुव कायम है और पर्याय में रागादि उत्पन्न होते थे, वे नाश हुए, वे उत्पन्न होते नहीं। 'जिसने' अर्थात् मुझ ज्ञान की पर्याय ने। अपने द्रव्य-गुण-पर्याय स्वरूप में—निज द्रव्य-गुण-पर्याय के स्वरूप में... लो। इसका अर्थ कि है तो द्रव्य-गुण त्रिकाल और उसमें एकाग्र हुआ, वह पर्याय में एकाग्र हुआ, वह निज पर्याय हो गयी। स्वरूप में एकाग्र हुआ, वह निज पर्याय हुई। कार्य तो पर्याय में आया। कारण तो त्रिकालभाव। त्रिकालभाव का अवलम्बन लेने से जो पर्याय प्रगट हुई, उसमें भी लीन हूँ, ऐसा कहते हैं। और मेरे निजभाव से भिन्न ऐसे सकल विभाव उत्पन्न नहीं होते।

इससे **अल्प काल में मुक्ति को प्राप्त करता है।** पूर्ण आनन्द की पर्याय को अल्प काल में वह... लो, अल्प काल में प्राप्त करता है। क्रमबद्ध कहाँ रहा? क्रमबद्ध में होता है, उसमें 'अल्प काल में' आया न यह तो? परन्तु इसका अर्थ ही यह कि उसके क्रम में प्राप्ति का काल ही अल्प है, ऐसा कहते हैं। सूक्ष्म बात है। निजभाव अशेष अभेदभाव का आश्रय लिया, उसमें एकाग्र हुआ, उसे अल्प काल में ही उसके क्रमबद्ध में केवलज्ञान आनेवाला है, ऐसा कहना है। समझ में आया? इससे क्रमबद्ध टूट गया है, ऐसा नहीं है। स्व-चैतन्य के अवलम्बन में वह पर्याय अब अल्प काल में पूर्ण होगी, ऐसा ही उसका क्रम है, ऐसा कहते हैं।

अल्प काल में मुक्ति को प्राप्त करता है। जिसने द्रव्यस्वभाव का आश्रय किया,

वह क्रमबद्ध में होती पर्याय का ज्ञाता रहा, उसे क्रमबद्ध में अल्प काल में ही केवलज्ञान आनेवाला है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! परन्तु भारी कठिन बात! बाहर की ऐसी लगे न! यह सब करना... करना... करना, उसमें बँट गया हो न यहाँ। अन्दर में करना, कहते हैं। नित्यानन्द भगवान सहजानन्द की मूर्ति, ऐसा निजभाव, वह तो ध्रुव है। उसमें एकाग्रता, वह वर्तमान प्रगट पर्याय है। ऐसी जिसने पर्याय प्रगट की है और द्रव्य का आश्रय है, उसे अल्प काल में मुक्ति है, अब उसका संसार का अन्त है। तब कोई ऐसा कहे, परन्तु मुक्ति तो अभी पंचम काल में नहीं है। यह क्या ऐसी बात करते हो? भाई! मुक्ति.... परन्तु मुक्ति ही है। स्वभाव के आश्रय से दृष्टि हुई, स्थिरता हुई, वस्तु मुक्त है तो मुक्ति ही है पर्याय में। इस पर्याय में मुक्ति पूर्णरूप से होना, वह अल्प काल में बाद में होगी, ऐसा कहते हैं। अभी शुरु कर दिया है। ज्ञायकभाव में एकाग्रता शुरु की है तो मुक्ति का प्रयाण हुआ है। आहाहा! पन्थ में पड़ा है। पन्थ को थोड़ी देर लगेगी, मुक्ति ही है। आहाहा!

रत्नत्रय प्राप्त को भी मुक्ति—मोक्षतत्त्व कहा है प्रवचनसार में। मोक्ष होने से पहले। वह पंचरत्न है न, प्रवचनसार की अन्तिम पाँच गाथा पंचरत्न है। वे पाँच रत्न हैं। जिसके स्वभाव में एकाग्र हुआ दर्शन-ज्ञान-चारित्र (वाला) मुनि, वह मोक्षतत्त्व है, ऐसा कहा है। राग में एकत्व हुआ मुनि, वह संसारतत्त्व है। चाहे तो स्त्री, पुत्र छोड़कर नग्न होकर बैठा हो, (परन्तु) जिसमें राग की एकता पड़ी है, वह प्राणी संसारतत्त्व है, उसने संसार छोड़ा नहीं। आहाहा! राग, वह संसार है। चाहे तो शुभ-अशुभ चाहे जो हो। उस राग की एकता, वह संसार, मिथ्यात्व है और वह मिथ्यादृष्टि, वह संसारतत्त्व है। समझ में आया? आहाहा! प्रवचनसार की अन्तिम पाँच गाथायें, वे भी पंचरत्न हैं, उन गाथाओं का नाथ (भी पंचरत्न है)। वाह! पुट्ठा नया चढ़ाया लगता है अभी। यह कैसे हाथ आया नहीं? मोक्षतत्त्व प्रगट करते हैं। २७२ गाथा। २७१, संसारदशा—संसारतत्त्व। २७२, मोक्षतत्त्व। ७२। एक ज्यादा।

यद्यपि जो है जिनमत में पर, तत्त्वार्थ यथार्थ न ग्रहण करें।
कर्म फलों से लदे हुए वे दीर्घ काल तक भ्रमण करें॥२७१॥

(गाथा, प्रवचनसार)

भले जैन सम्प्रदाय में आया हो,... ऐसा कहते हैं। पाठ है, हों! देखो! **'जे अजधागहिदत्था एदे तच्च ति णिच्छिदा समये...' 'समये...'** जैनदर्शन सम्प्रदाय में आया हो, मुनि बाह्यलिंग में—द्रव्यलिंग में पंच महाव्रत में आया हो, परन्तु **'अजधागहिदत्था'** वह राग की पर्याय आस्रव है, उसे अपने साथ एकत्व किया है, वह **'अजधागहिदत्था'** पदार्थ को विपरीतरूप से ग्रहण किया है। समझ में आया? इसलिए वह **'अच्चंतफळसमिद्धं भमंति ते तो परं कालं'** वह दिगम्बर जैन साधु हो बाह्य से, (परन्तु) अन्तर में राग की एकता अद्वैत है—उसे द्वैत नहीं (अर्थात्) राग और आत्मा दो भिन्न चीज़ है, ऐसा जिसे विवेक नहीं। राग और आत्मस्वभाव एक है, ऐसा जिसे अविवेक है। वह अविवेक। वह अविवेकीजीव संसारतत्त्व है। हजारों रानियाँ छोड़कर नग्न हुआ हो, वस्त्र का एक धागा भी न रखता हो, तथापि वह संसार में डूबा हुआ कुँआ है। आहाहा! समझ में आया?

द्रव्यलिंगीरूप से जिनमार्ग में स्थित हों, तथापि परमार्थ श्रामण्य को प्राप्त नहीं होने से... आहाहा! **कर्मफल के उपभोगराशि से भयंकर ऐसे अनन्त काल तक अनन्त भावान्तररूप से परावर्तनों द्वारा अनवस्थित बुद्धिवाले रहने के कारण, उन्हें संसारतत्त्व जानना।** आहाहा! संसार कोई आत्मा की पर्याय से भिन्न नहीं है। संसार कोई आत्मा की पर्याय से भिन्न नहीं है। राग की एकताबुद्धि, वह संसारपर्याय आत्मा से—पर्याय से अभिन्न है, व्यवहार से। आहाहा! जीव का संसार कहीं बाहर नहीं रहता। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार वह संसार नहीं है।

मुमुक्षु : एक बार आपने ऐसा कहा कि संसार है ही नहीं। दूसरी बार....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह और दूसरी बात। वह तो (वीतरागी) पर्याय में संसार है नहीं। सम्यग्दर्शन में संसार है ही नहीं। आहाहा! यह तो संसारस्था (अर्थात्) राग की एकता, ऐसी मिथ्याबुद्धि, वह संसार में ही है। आहाहा! संसार कोई बाह्य चीज़ नहीं। कर्म, शरीर, वाणी, स्त्री, पुत्र, परिवार, वह संसार नहीं, वे तो बाह्य परचीज़ें हैं। आत्मा का संसार बाहर नहीं होता। उसकी राग की एकता ऐसा जो अविवेकभाव, वह संसारतत्त्व है। आहाहा! लोगों को तत्त्व की खबर नहीं। कुछ का कुछ तत्त्व खताते और मानते हैं।

वह **निर्मल विवेकरूपी दीपक के प्रकाशवाला...** २७२। **यथास्थित पदार्थनिश्चय द्वारा उत्सुकता निवर्ताकर,...** लो, **स्वरूपमंथर रहने से...** उपशान्त वर्तता है। ऐसे शां..त। राग से भिन्न, चाहे तो देव-गुरु की श्रद्धा का विकल्प हो, उससे भी भिन्न और स्वरूप में शान्ति की निर्मलता में अभिन्न, उस जीव को मोक्षतत्त्व कहते हैं। आहाहा! वह भी पाँच रतन है, यह भी पाँच रतन है। वह भी पाँच रतन है। अमृतचन्द्राचार्य ने लिखा है। मोक्षतत्त्व ऐसा आत्मतत्त्व... मोक्षतत्त्व त्रिकाली आत्मतत्त्व। उसके साथ राग का दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का विकल्प, उसकी एकता, वह संसारतत्त्व। ऐसी बात है।

मुमुक्षु : अज्ञानी उसको पुरुषार्थ मानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मानता है। संसारतत्त्व है। आहाहा!

'पुरुषार्थ है' यह चर्चा हमारे चली थी (संवत्) १९८० में राणपर। ७९ का चातुर्मास था लींबडी। .... जयचन्द,... और तीन थे। कार्तिक का महीना था। ... और यहाँ चातुर्मास था।... चर्चा अन्दर चलती थी कि नौवें ग्रैवेयक में गया, वह क्षयोपशमभाव से गया। कहा, नहीं, उदयभाव। क्योंकि राग की एकताबुद्धि से वहाँ गया है मिथ्यादृष्टि। उसे क्षयोपशम है ही नहीं। वह 'द्रव्यनिक्षेप से' आता है अवश्य न, इसलिए... उसे वह कुछ खबर नहीं थी, उसे तो यह ऊपर से... उसमें आता है। यही कहा। अर्थात् यह बात करते। ऐसे उसे खबर के लिये कहते... परन्तु ऐसा कि इतना पुरुषार्थ आया न, ऐसा। इतनी उसे खबर नहीं। ऐसा है... पुरुषार्थ है न इतना? भले नौवें ग्रैवेयक में गया, मिथ्यादृष्टि है। अशुभपना टाला है, इतना उसका पुरुषार्थ है न? कहा, नहीं। वीरचन्दभाई! शुभ का पुरुषार्थ, उसे नपुंसक कहते हैं। झड़ी लगी है झड़ी अभी सात दिन से। आहाहा! यह भी झड़ी है आत्मा की। आहाहा! अरे! ऐसे समय—काल कहाँ से आवे? दुनिया को उसकी कीमत नहीं।

भगवान आत्मा पूर्णानन्द निजभाव त्रिकाल, उसका अवलम्बन लेने से जो एकाग्रता होती है, वह एकाग्रता दर्शन-ज्ञान-चारित्र की, भले पूर्ण केवल (ज्ञान) न हुआ हो, तो भी उस जीव को मोक्षतत्त्व कहने में आया है। आहाहा! छूट गया है विकल्प से। अज्ञानी निजभाव की ओर तो सन्मुख है ही नहीं। राग के विकल्प के सन्मुख है, स्वभाव से

विमुख है। यह तो वस्तु की स्थिति ही ऐसी है। ऐसे दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह सब राग है और उसके सन्मुख बुद्धि की एकता है, वह मिथ्यात्व है, वह संसारतत्त्व है। ऐसा कहते हैं न कि स्त्री, पुत्र छोड़े हमने, संसार छोड़ा न हमने। संसार किसे कहना, तुझे खबर नहीं। संसार छोड़कर बैठे हैं न? छह काय का आरम्भ तो नहीं हमारे? सब आरम्भ है। इस पुण्य-पाप की एकताबुद्धि में पूर्ण—अनन्त हिंसा का आरम्भ है। आहाहा!

लो, यह गाथा ८१ पूरी हुई। यहाँ तो निजभाव वह स्वयं पूर्णानन्द प्रभु, वह निजभाव, बस। उससे भिन्न ऐसे सकल विभाव को छोड़कर... अर्थात् छूट जाते हैं, ऐसा। उपदेश तो ऐसा ही आवे न। समयसार में तो ऐसा कहा कि राग के त्याग का कर्ता भी आत्मा नहीं है। राग क्या त्यागे? राग अन्दर हुआ ही नहीं, (फिर) त्यागे क्या? और राग त्याग करूँ, ऐसी बुद्धि, वह तो पर्यायबुद्धि हो गयी। आहाहा! परन्तु उपदेश की शैली में ऐसा आता है कि यह मैंने विभाव छोड़ा, राग छोड़ा। ऐसी भाषा आवे, परन्तु उसका अर्थ समझना चाहिए। भाषा हो उसमें किस नय का कथन है, उसे जानना चाहिए।

'**अल्प काल में**' है न? '**अचिरात् प्राप्नोति मुक्तिमचिरादिति पंचरत्नात्...**' लो। आहाहा! यह पंच रत्ना अर्थात् पंच रत्न द्वारा। चौदह गुणस्थान, चौदह मार्गणास्थान, चौदह जीवस्थान का मैं कर्ता नहीं, कराता नहीं, कर्ता को सम्मत नहीं, उनका कारण भी नहीं। यह तो 'कर्ता नहीं' उसमें आ जाता है। ऐसी जो मैं चीज़, जो ध्रुव के स्तम्भ को लगा, उसे सब भेद-बेद का नाश हो जाता है। अकेला अभेद तत्त्व मुक्ति रह जायेगी। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! सत्य का पंथ ही ऐसा है। इससे फेरफार करे, वह सब फेरफार है। सत्य हाथ नहीं आयेगा। यह कोई व्यक्तिगत की बात नहीं है, यह वस्तु के स्वरूप की ही ऐसी स्थिति है। भगवान पूर्णानन्द प्रभु की ओर का झुकाव, बस हो गया, वह मुक्ति के पंथ में पड़ा, उसे अल्प काल में मुक्ति हो जायेगी। अरे! उसके पंथ को भूलकर विकल्प—विभाव—राग जहर, उस अमृत के सागर के साथ इस राग के जहर को मिलना—एकत्व करना, वह मिथ्यात्वभाव संसार है। वह संसार छोड़ना कैसे और संसार कैसे है, इसकी खबर नहीं होती और सब संसार छोड़कर बैठे। आहाहा!

८२ गाथा। '**एरिसभेदब्भासे**' भेद-अभ्यास है न अन्दर?

एरिसभेदब्भासे मज्झत्थो होदि तेण चारित्तं।
तं दिढकरणणिमित्तं पडिक्कमणादी पवक्खामि ॥८२॥

देखो! आहाहा! इसे कहूँगा। 'आदि' शब्द है न? सब प्रत्याख्यान इत्यादि चारित्र का अधिकार सब।

इस भेद के अभ्यास से.... इस भेद के अभ्यास से, ऐसा कहा है। व्यवहार का राग, वह कारण है और आत्मा का निश्चय(चारित्र) कार्य है—ऐसा नहीं कहा। उस व्यवहार के राग के भेद के अभ्यास से... आहाहा! समझ में आया? आहाहा! एक-एक गाथा....

इस भेद के अभ्यास से मध्यस्थ हो चारित बने;

अन्तर में वीतरागरूप से चारित्र बने, ऐसा कहते हैं। राग के भेद से, वीतरागपने के अभ्यास से वहाँ वीतरागपने में से वह चारित्र होता है।

प्रतिक्रमण आदि कहूँगा मैं चारित्रदृढ़ता के लिये॥८२॥

कहो, यह चारित्र तो निश्चयचारित्र है। पंच महाव्रतादि विकल्प तो अचारित्र है। आहाहा! उसे व्यवहार से आरोप से चारित्र कहा। उसे ही लगे पड़े हैं यह, लो। तुझे नुकसान होता है, भाई! नुकसान को लाभ का कारण मानना, वह कैसे छोड़े? पंच महाव्रत के विकल्प नुकसान है। उसे लाभ का कारण माने, वह कैसे छोड़े दृष्टि में से?

टीका:—यहाँ, भेदविज्ञान द्वारा.... भेद-अभ्यास है न? **क्रम से निश्चय-चारित्र होता है, ऐसा कहा है।** यह राग से भिन्न पड़ा हुआ स्वरूप, उसे पहले अनुभव में लिया, फिर राग से भिन्न पड़ने पर स्थिरता हुई, उसे चारित्र कहा जाता है। आहाहा! **भेदविज्ञान द्वारा क्रम से...** पहले राग से भिन्न पड़कर स्वरूप का अनुभव करे, फिर राग से भिन्न पड़कर स्थिरता हो, उसे चारित्र होता है। लो, यह चारित्र होने की विधि। आहाहा! पहले पंच महाव्रत ग्रहण करे, फिर चारित्र होता है—ऐसा यहाँ नहीं कहा है।

मुमुक्षु : वहाँ पर भेद नहीं रहा, अभेद ही हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, एकाकार हो गया। आहाहा!

भेदविज्ञान द्वारा... .... भाषा। **क्रम से निश्चय-चारित्र होता है। पूर्वोक्त पंच रत्नों से शोभित...** रागादि का भाव का कर्ता नहीं, कारयिता नहीं, अनुमोदन नहीं, कारण नहीं। उससे भेद-अभ्यास द्वारा... आहाहा! **पंच रत्नों से शोभित अर्थपरिज्ञान (-पदार्थों के ज्ञान)...** जो आत्मा राग का कर्ता, कारयिता, अनुमोदन और कारण नहीं—ऐसा पदार्थ का—चैतन्य का स्वरूप है। **पंच रत्नों से शोभित...** उससे शोभित पदार्थों का ज्ञान, ऐसा। जो विकल्पमात्र भेद, उसका कर्ता—रचनेवाला, भेद का रचनेवाला आत्मा नहीं, ऐसे करानेवाला नहीं, अनुमोदन करनेवाला नहीं। ऐसा जो पर से भिन्न पदार्थ का—आत्मतत्त्व का ज्ञान, उस **द्वारा पंचम गति की प्राप्ति के हेतुभूत...** ऐसा। पंचमगति ऐसी मोक्षगति, वह गति है, परन्तु आगति नहीं। आहाहा! चार तो गति है और आगति है (अर्थात्) जाये और निकले, आवे वहाँ से वापस। यह (मोक्ष) तो गति है वह है, आगति नहीं। मोक्षगति हुई, बाद में (फिर) नहीं पड़ते। गति में से वापस नहीं आता। सर्वार्थसिद्धि में गया तो वहाँ से भी निकलता है। यह तो ऐसी गति है कि गति हुई, वह हुई; आगति नहीं। वहाँ से निकलता नहीं। समझ में आया?

पंचम गति की प्राप्ति के हेतुभूत ऐसा जीव का और कर्मपुद्गल का भेद-अभ्यास... क्या कहा? **पंचम गति की प्राप्ति के हेतु... हेतुभूत...** यथार्थ हेतु—कारण, ऐसा कहते हैं, जीव का और कर्मपुद्गल का भेद-अभ्यास। यह रागादि सब कर्मपुद्गल है। कहा न? उस पदार्थ के ज्ञान द्वारा... ऐसा ज्ञान यथार्थ हुआ, फिर पंचम गति की प्राप्ति का कारण ऐसा जीव का और कर्मपुद्गल का भेद-अभ्यास होने से—पृथक्पने के विवेक द्वारा... दोनों का एकपना तो अनादि का था। अन्तर्मुख में झुकी हुई दृष्टि, राग से भिन्न पड़ी हुई दृष्टि, इस प्रकार से अभ्यास के पश्चात् भी राग और व्यवहार है, उससे भेद पड़ जाये और यहाँ स्थिर हो, उसका नाम चारित्र है। समझ में आया? गजब व्याख्या।

वे तो कहते हैं कि चारित्र के दो भेद। पंच महाव्रत और बारह व्रत। श्रावक के बारह व्रत और मुनि के पाँच। देखो! यह लिखा। यह चारित्र के भेद। भाई! यह तो निमित्त की व्याख्या की है। जहाँ अन्दर सच्चा चारित्र होता है, वहाँ ऐसे विकल्प व्यवहार से होते हैं। वह चारित्र नहीं। चारित्र तो जितने अंश में राग से भिन्न पड़कर,

पहले ज्ञान तो किया है, पश्चात् राग से भिन्न पड़कर अरागपरिणाम में स्थिर हो, उसका नाम चारित्र है। आहाहा! वस्तु अरागी-वीतरागी ही है। वस्तु-आत्मा वीतराग ही है। उस वीतराग में एकाग्रता हो, वह वीतरागता पर्याय प्रगट होती है। आहाहा! परन्तु उसे किस प्रकार लिया? वह राग है, उससे भिन्न पड़ता है अर्थात् स्वरूप में स्थिर होता है, अरागपरिणाम होते हैं। राग से भिन्न पड़ता है, वहाँ अरागपरिणाम होते हैं। वे अरागपरिणाम, वह चारित्र। समझ में आया? अभी तो समझने में जिसे दिक्कत, उसे दृष्टि कब हो, स्थिरता कब हो, उसका कुछ मेल नहीं मिलता। दुर्लभ चीज़ है, दुर्लभ चीज़।

जीव का और कर्मपुद्गल का... अर्थात् विकल्पमात्र कर्मपुद्गल है। चाहे तो व्रत का विकल्प हो, अव्रत का हो, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का हो, व्यवहाररत्नत्रय का राग—उससे भेद-अभ्यास होने पर... आहाहा! व्यवहार के राग से भेद-अभ्यास होने पर... व्यवहार से निश्चय होने पर, ऐसा यहाँ नहीं कहा। व्यवहार कारण है और निश्चय कार्य है। छहढाला में आया है। 'हेतु नियत को होई।' वह तो निमित्तपने की भूमिका का ज्ञान कराते हैं। यहाँ क्या कहते हैं? हेतु का अर्थ, वहाँ निमित्त होता है, उसका ज्ञान कराया है। उसे कारण (कहा, परन्तु) यहाँ तो इनकार करते हैं। जो राग है उससे भिन्न पड़ने पर स्थिरता हो, वह चारित्र है।

पंचम गति की प्राप्ति के हेतुभूत ऐसा जीव का और कर्मपुद्गल का... भिन्नता का अभ्यास... एकत्व तो तोड़ा है, अस्थिरता है, उससे भिन्नता का अभ्यास, ऐसा कहते हैं। यह राग है, उसका अभ्यास करने से उससे होगा, ऐसा नहीं है। आहाहा! जिसे व्यवहार कारण कहा, हेतु कहा, मुख्य उपचार मोक्षमार्ग कहा। छहढाला में तो ऐसा लिया। निमित्त कहा। यह सत्यार्थ कहा, तो व्यवहार असत्यार्थ है, ऐसा आया है। सत्यार्थ, निश्चय वह सत्यार्थ है; व्यवहार, वह असत्यार्थ है। वह सच्चा मार्ग नहीं है, झूठा है। क्या हो? लोगों को सत्य हाथ नहीं आता, इसलिए जहाँ-तहाँ व्यर्थ प्रयास करते हैं, वहाँ से होगा, ऐसे से होगा।

मुमुक्षु : अनुकूल निमित्त तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त की व्याख्या क्या? वहाँ कार्य हो, वहाँ स्वयं से, तब

होता है, उसका नाम अनुकूल निमित्त। निमित्त से कार्य जरा भी हुआ नहीं। परन्तु यहाँ तो निमित्त ऐसा राग, उससे भिन्न पड़ने पर भाव होता है, उसे चारित्र कहते हैं। उसकी सहायता से चारित्र होता है, ऐसा नहीं। गाथा आती है न, नहीं ? सर्वविशुद्धि में आती है भेद-अभ्यास की। ...नय-निक्षेप की।

मूल पाठ में बात बहुत सरस है। '**एरिसभेदब्भासे**' '**एरिसभेदब्भासे**' इस प्रकार से पूर्व में कथित पाँच गाथाओं में ऐसा जो भेदभाव, रागभाव आदि उससे भेद-अभ्यास अर्थात् स्वरूप-सन्मुख के झुकाववाली दशा और राग से भिन्न पड़ी हुई दशा, उसे चारित्र कहते हैं। वह रागभाव है, इसलिए निश्चयचारित्र उससे होता है, ऐसा नहीं है। व्यवहार पहले, निश्चय बाद में, ऐसा कहते हैं न बहुत से ? वह दूसरी अपेक्षा से बात है। छठवें गुणस्थान में जो रागभाग रह गया है, इसलिए उस राग को व्यवहार कहा, उससे रहित हो, उसे निश्चय कहते हैं। एकदम चारित्र उसे (कहते हैं) अभेदता की अपेक्षा से।

उसी में जो मुमुक्षु... राग के भेद के अभ्यास में, अपने स्वरूप के अभ्यास में जो रहता है, लो, **उसी में जो मुमुक्षु**—मोक्ष के अर्थी **सर्वदा संस्थित...** राग से भिन्न पड़े हुए भाव में संस्थित रहते हैं, ऐसा कहते हैं। रागभाव में नहीं। राग से भिन्न पड़े हुए भाव में जो संस्थित सदा ही रहते हैं, देखो! **सर्वदा संस्थित रहते हैं,...** ओहोहो! **वे उस (सतत भेदाभ्यास) द्वारा मध्यस्थ होते हैं...** अर्थात् वीतरागता होती है। वीतरागता हो जाती है। राग से भिन्न पड़े हुए भाव में वीतरागता आती है। मध्यस्थ अर्थात् वीतरागता। समझ में आया ?

और उस कारण से उन परम संयमियों को वास्तविक चारित्र होता है। लो। आहाहा! अरे! उसे चारित्र का क्या स्वरूप (उसकी) व्याख्या, यह सुना न हो, किया न हो और हो गया चारित्र। भगवान! उसमें कुछ है नहीं। वह खोटे (रास्ते) है। निंबोली से कहीं नीलमणि नहीं मिलती। निंबोली समझते हो ? नीम का फल। उससे कोई नीलमलि मिले ? नहीं। वह भी हरी है, यह भी हरी है। आहाहा! कहते हैं, उस राग से भिन्न पड़े हुए अपने भाव में संस्थित सर्वदा रहता है। राग में रहता है, ऐसा नहीं आया ? राग से भिन्न पड़े हुए भाव में संस्थित है, ऐसा कहा है। आहाहा!

ऐसी चारित्र की व्याख्या तो श्वेताम्बर में कहीं नहीं है। पढ़-पढ़कर मर जाये

वहाँ। यह सन्तों की गाथा एक-एक गाथा में, आहाहा! अलौकिक बात है। श्वेताम्बर के शास्त्र पढ़-पढ़कर... जयकुंजर... कल कहता था एक। भगवती (सूत्र) का वांचन शुरु हुआ है भावनगर। जयकुंजर—हाथी की उपमा भगवती को दी है। दो दन्तुश हो, ऐसे दो नय होते हैं। दो नय अर्थात् क्या? एक नय छोड़नेयोग्य है, एक नय आदरनेयोग्य है। आहाहा! उसमें भगवती को उसकी उपमा है जयकुंजर—हाथी। दो नयरूपी दाँत, फलाना... और वह कहीं अपने सुना नहीं। फिर कल बोले हों ऊपर से, वह नहीं सुनाई दिया। भाई कहते थे। आहाहा! भगवती में तो कहाँ... गड़बड़-गड़बड़, खोटा-खोटा... साधु को दस-दस पात्र, दस पछेड़ी—ऐसे तो कथन पड़े हैं भगवती में। .....

यहाँ तो (कहते हैं कि) वस्त्र का एक धाग रखे इतना, तो उसका वह राग ऐसा है कि उसे साधुपना नहीं होता। वस्त्र... वस्त्र का टुकड़ा। कपड़ा है न? कपड़े का तिलतुषमात्र भी रखे, तो वहाँ साधुपना है ही नहीं। क्योंकि वह ममता ऐसी है कि वहाँ साधुपना रह सकता ही नहीं। कषाय का भाव ऐसा है। वस्त्र के कारण से नहीं। एक टुकड़ा रखे और माने कि हम साधु हैं, तो निगोदम् गच्छई। पाठ है न अष्टपाहुड (सूत्रपाहुड गाथा १८) का? निगोदम् गच्छई...

मुमुक्षु : बात तो सत्य है, रखने को झोला रखे...

पूज्य गुरुदेवश्री : झोला-बोला रखे तो निगोदम् गच्छई... झोला क्या.... ?

अभी आया था चश्मा का। चश्मा का एक आया था। चश्मा रखते हैं। चश्मा रखे, कैसा मुनि? चश्मा होता है? चश्मा मैला हो तो साफ करने के लिये कपड़ा चाहिए। फिर उस कपड़े को साफ करने के लिये पानी चाहिए। यह वस्तु नहीं होती। बापू! मुनिपना किसे (कहें)? आहाहा! धन्य जिसका अवतार! जिसने सफल किया। पूर्ण चारित्र अन्दर वीतरागता प्रगट हुई है। जिसे वस्त्र का धागा, पात्र का टुकड़ा नहीं होता। आहाहा! वह करपात्री है। वस्तु की स्थिति ऐसी है। यहाँ यह कहते हैं, वह मध्यस्थ हुआ... राग से भिन्न पड़कर अपने स्वरूप में स्थित, वह मध्यस्थ है, वीतराग है—ऐसा कहते हैं। वह वीतरागपना, वह चारित्र है। आहाहा! समझ में आया? **और उस कारण से उन परम संयमियों को...** देखो! इस कारण से उन परमसंयमियों को **वास्तविक चारित्र होता है।** उसे वास्तव में चारित्र होता है।

उस चारित्र की अविचल स्थिति के हेतु से... ऐसा जो राग से भिन्न पड़कर अपने स्वभाव में सदा संस्थित जो चारित्र, उसकी **अविचल स्थिति के हेतु से...** वह चलित नहीं ऐसी स्थिति के कारण से **प्रतिक्रमणादि निश्चयक्रिया कही जाती है।** लो, देखो! यह क्रिया। प्रतिक्रमण आदि... परन्तु यह निश्चयक्रिया है, राग बिना की क्रिया है। देखो! यह क्रिया। प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना इत्यादि **निश्चयक्रिया कही जाती है।**

यह प्रतिक्रमण की व्याख्या करते हैं। **अतीत (-भूत काल के) दोषों के परिहार हेतु...** भूतकाल के कोई दोष हों, उनको छोड़ने के लिये (अर्थात्) परिहार के लिये। स्वरूप में स्थिर हो तो छूट जाये, परन्तु उपदेश तो ऐसा ही आवे न! **दोषों के परिहार हेतु जो प्रायश्चित किया जाता है, वह प्रतिक्रमण है।** दोषों को छोड़ने के लिये जो स्वरूप में स्थिरता की जाती है, ऐसा स्वरूप की स्थिरतारूप प्रायश्चित, उसे यहाँ प्रतिक्रमण कहा जाता है। आहा!

'आदि' शब्द से प्रत्याख्यानादि का सम्भव कहा जाता है। प्रत्याख्यान भी स्वरूप की स्थिरता की एकाग्रता (सहित)। आलोचना संवर भी स्वरूप की स्थिरता, राग से भिन्नपने की एकाग्रता (सहित)। आहाहा! यह सब निश्चयक्रिया, वीतरागी परिणति वह निश्चयक्रिया, वह चारित्र है। आहाहा! श्रद्धा... माना है, समझा नहीं। वस्तु सीधी है... परमात्मा स्वयं पूर्णानन्द प्रभु को राग से भिन्न करके स्थिर होना, ऐसा सीधा मार्ग है। उसे ऐसा करना, अपवास करना, ढींकणा करना—ऐसा कुछ कष्ट उसमें है नहीं। आहाहा! **(अर्थात् प्रतिक्रमणादि में जो 'आदि' शब्द है, वह प्रत्याख्यान आदि का भी समावेश करने के लिये है)।** लो।

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में १३१वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:—अपनी गाथा है उसकी टीका की, उसका आधार देते हैं।

'भेदविज्ञानतः सिद्धाः' देखो! आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य (कृत) समयसार का कलश है।

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।
अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन॥

बहुत ही ऊँची बात, परम सत्य बात। **श्लोकार्थ : जो कोई...** अभी तक अनन्त **सिद्ध हुए हैं, वे भेदविज्ञान से सिद्ध हुए हैं;...** वे राग से भिन्न करके सिद्ध हुए। सम्यग्दर्शन में भी राग से भिन्न पड़कर सम्यग्दर्शन; चारित्र में भी राग की अस्थिरता से भिन्न पड़कर स्थिरता। अभी तक अनन्त सिद्ध हुए, वे सब राग और विकल्प से भिन्न करके भेदज्ञान से सिद्ध हुए। कोई व्यवहार के साधन के कारण सिद्ध हुए, ऐसा नहीं है। आहाहा! अनन्त काल में अनन्त (जीव) मुक्ति को पधारे, उसका हेतु—कारण, कहते हैं, **भेदविज्ञानतः सिद्धाः** राग और भेद से भिन्न पड़कर अभेद में स्थिर हुए, यह भेदज्ञान, उससे सिद्ध हुए। कोई सिद्ध हुए, व्यवहार के साधन से सिद्ध हुए—ऐसा नहीं है। आहाहा! लो, यह साधन-बाधन कहा है न दूसरी जगह। वह तो ज्ञान कराया है। साधन-बाधन कैसा? साधन तो एक ही निश्चयस्वरूप का साधन, मूल तो एक ही साधन। व्यवहार साधन-बाधन कोई है ही नहीं।

मुमुक्षु : साध्य-साधक....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यह। निश्चय साध्य-साधक आत्मा। व्यवहार साधन कहा, वह तो साधन से भिन्न पड़े तो उसको—(बाह्य) साधन को निमित्त कहने में आया। उस साधन को रखकर अपनी साध्यदशा प्रगट हो, ऐसा नहीं। आहाहा!

भेदविज्ञान से सिद्ध हुए हैं;... आहाहा! बहुत संक्षिप्त। बहुत परम सत्य। भगवान चैतन्य रत्नाकर, उज्ज्वल जिसका अवतार, उज्ज्वल जिसका स्वरूप। ऐसा जो भगवान, वह राग से भिन्न करके सब मुक्ति को प्राप्त हुए। राग का साथ लेकर—साथ में लेकर समकित पाये, चारित्र पाये—ऐसा नहीं है। लो, व्यवहार को कहा है न साथ में—सहचर होता है। होता है न? परन्तु उससे मुक्ति होती है, ऐसा नहीं है। उससे भिन्न पड़े, तब मुक्ति होती है। आहाहा!

'अस्यैवाभावतो बद्धा' देखो! यह विशिष्टता। **जो कोई बँधे हैं, वे उसी के (भेदविज्ञान के ही) अभाव से बँधे हैं।** कोई कर्म के उदय से बँधे उसके कारण से, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। राग का अभाव—भेद नहीं करते... भेदज्ञान का अभाव अर्थात् राग का भेद नहीं करके, राग की एकता करके वे बँधे हैं। कोई कर्म के कारण

से बँधे हैं, कर्म का जोर आया इसलिए बँधे हैं, ऐसा नहीं है। भेदज्ञान के अभाव से बँधे हैं। आहाहा! जो कोई मुक्ति को प्राप्त हुए, वे भेदविज्ञान से से प्राप्त हुए हैं। जो कोई नहीं प्राप्त हुए अथवा बँधे हैं, वे भेदविज्ञान के अभाव से बँधे हैं। इसका अर्थ कि राग से भिन्न नहीं किया और राग के साथ एकता की, उससे बँधे हैं। कर्म के कारण से बँधे हैं, फलाने कारण से बँधे हैं, ऐसा नहीं है। आहाहा! है या नहीं अन्दर?

यह निगोद के जीव भी बँधते हैं, वे भेदविज्ञान के अभाव से बँधते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! बात वह बात परन्तु! निगोद के जीव को कर्म का जोर है, इसलिए मिथ्यात्व होता है और बँधता है, ऐसा नहीं है। वह राग और विकल्प से भिन्न नहीं करता और एकता करता है, इसलिए बँधे हुए हैं। आहाहा! जो कोई बँधे हैं, वे उसके अभाव से बंधे हैं—भेदविज्ञान का अभाव। दो सिद्धान्त, बस! पर से भिन्न करके छूटे और पर से भिन्न करने के अभाव से बँधे हैं। यह सब कर्म से ऐसा होता है, दर्शनमोह का तीव्र उदय आवे तो ऐसा होता है और चारित्रमोह का तीव्र उदय आवे तो उसमें जुड़ना पड़ता है न—यह बात इसमें कहीं नहीं रहती। बराबर है या नहीं यह? बाहर की.... सब खोटी है गप्पा। वस्तु की शैली ही यह, वस्तु ही यह है। जितने मुक्त हुए, वे विकल्प से भिन्न पड़कर और जितने बँधे, वे विकल्प से एकत्व करके। सब एक ही बात। विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ कृष्ण १३, मंगलवार, दिनांक - २०-७-१९७१
श्लोक - ११०, गाथा - ८३, प्रवचन-७२

चारित्र का अन्तर्भेद परमार्थ प्रतिक्रमण। सच्चा प्रतिक्रमण किसे कहना? यह कलश है ११०। ८२ गाथा का है न?

और (इस ८२वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं):—

इति सति मुनि-नाथस्योच्चकैर्भेद-भावे,
स्वय-मय-मुपयोगाद्राजते मुक्त-मोहः।
शम-जल-निधिपूर-क्षालितांहः कलङ्कः
स खलु समयसारस्यास्य भेदः क एषः॥११०॥

श्लोकार्थः—इस प्रकार जब मुनिनाथ को... मुनि की मुख्यता से बात है। **मुनिनाथ को अत्यन्त भेदभाव...** अन्तर में पुण्य-पाप के विकल्प जो उठते हैं द्रव्यप्रतिक्रमण आदि के, वह व्यवहार प्रतिक्रमण कहलाये न 'मिच्छामि दुक्कडम्' ऐसा विकल्प, उससे भी जिसने आत्मा का भेद किया है। शुभ और अशुभराग से जिसने भेदभाव... **(भेदविज्ञानपरिणाम)** भिन्न किया है। आत्मा वीतरागस्वरूप है, वह जब राग से भिन्न पड़कर वीतरागपरिणाम से परिणमता है, तब भेदज्ञान के परिणाम कहे जाते हैं। **तब यह (समयसार) स्वयं उपयोग होने से,...** शुद्ध उपयोग... समयसार त्रिकाल तो उपयोग(स्वरूप) है, राग से भिन्न पड़कर स्वयं शुद्ध उपयोग हुआ। प्रतिक्रमण करना और यह सामायिक करना, वह सब विकल्प और राग है, वह कहीं धर्म नहीं। वह सच्चा प्रतिक्रमण भी नहीं। सच्चा प्रतिक्रमण (अर्थात्) भगवान आत्मा विकल्प जो शुभ-अशुभराग, उससे भिन्न पड़कर स्वयं उपयोग शुद्ध हुआ।

मुक्त मोह (मोहरहित) होता हुआ,... अपने आत्मा में शुद्ध परिणमनरूप से—उपयोगरूप से परिणमा, वह रागादि मोह से मुक्त हुआ, इसका नाम प्रतिक्रमण है।

आहाहा! गजब! यह पहाड़े बोल जाते हैं न शाम-सवेरे प्रतिक्रमण के? वह तो, 'भाषा मैं करता हूँ' यह मान्यता ही मिथ्यात्व है और उसका जो विकल्प उठता है, वह तो राग है। वह सच्चा प्रतिक्रमण है, ऐसी मान्यता, वह मिथ्यात्व है। भगवानजीभाई! कितने प्रतिक्रमण किये होंगे? बहुत अधिक किये। पुराने व्यक्ति न! आहाहा! यहाँ तो भगवान आत्मा, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वरूप है उसका। राग है, वह दुःखरूप है। व्यवहार-प्रतिक्रमण का राग दुःखरूप है। आहाहा! उससे जिसने आत्मा को भिन्न किया है, ऐसा जो मुनिनाथ, उसका स्वयं उपयोग—उस आनन्द में स्वयं उपयोग होने से मुक्तमोह है। मोह से मुक्त होता हुआ... रागभाव है शुभविकल्प, वह भी मोह है। उससे मुक्त होता हुआ... अरे! अभी तो बात क्या कहते हैं, समझना कठिन पड़े।

शमजलनिधि के पूर से (उपशमसमुद्र के ज्वार से)... क्या कहते हैं? आत्मा अपने शुद्ध परिणमन के उपयोग में आया, उससे उसे शमजलनिधिपूर—उपशमसमुद्र का ज्वार आया। आहाहा! अकषाय शान्तिभाव, विकार रहित का ज्वार—उत्पाद हुआ। उससे **पापकलंक को धोकर,...** पुण्य और पाप के विकल्प, दोनों पाप हैं। आहाहा! दोनों पाप, हिंसा है। 'पाप को पाप सब कहे, परन्तु अनुभवीजन पुण्य को भी पाप कहे' (योगसार, गाथा ७१)। कहते हैं, शमजलनिधि—उपशमरस का समुद्र उसका पूर अर्थात् ज्वार। आहाहा! उस अवशपर्याय में राग की उत्पत्ति थी, उसके बदले राग से भिन्न पड़कर शान्तरस की उत्पत्ति—ज्वार पर्याय में आया। आहाहा! भरती समझते हो? बाढ़। बाढ़ कहते हैं। भरती—बाढ़ आयी। अन्तर में उपशमरस की बाढ़ आयी। आहाहा! भगवान आत्मा चैतन्यरस अकषायरस से भरपूर सत्त्व, उसे जिसने राग से भिन्न करके स्वभाव का अवलम्बन लिया और स्वभाव का शुद्ध उपयोग प्रगट हुआ, वह उपशमरस। वह राग था, वह कषाय दुःखरूप रस था, कषाय अग्नि थी। व्यवहारप्रतिक्रमण जो विकल्प है, वह भी कषाय अग्नि थी। आहाहा!

धर्मी की बात है, हों! अज्ञानी का व्यवहारप्रतिक्रमण वह प्रतिक्रमण है ही नहीं। वह तो अकेला मिथ्यात्वभाव है। जिसने आत्मा को पुण्य-पाप के विकल्प से दूर हटाया है... आता है न कहीं? प्रवचनसार में आता है। ऐसे हटा कर। ऐसे पुण्य-पाप पर जो लक्ष्य है, उससे पृथक् किया है—भिन्न क्रिया है। उसे भिन्न करने से उपशमरस की बाढ़

आयी। आहाहा! शान्त... शान्त... अकषायभाव की बाढ़—पर्याय में बाढ़ उत्पन्न हुई है। ओहोहो! इससे पापकलंक को धो डाला। शुभ और अशुभभाव दोनों पाप हैं। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का विकल्प, वह भी पाप है, अमृत से विरुद्ध है। अपना स्वरूप जो पवित्र आनन्द अमृत, उससे पुण्यभाव विरुद्ध है, इसलिए उसे यहाँ पापकलंक कह दिया है। आहाहा!

पापकलंक को धो डाला है... जिसने पुण्य-पाप की उत्पत्ति को रोक दिया है, ऐसा कहा। समझ में आया? उसके स्थान में उपशमरस की उत्पत्ति हुई है। आहाहा! वह पुरुषार्थ है। अनन्त पुरुषार्थ अनन्त काल में कभी किया नहीं। आहाहा! अन्तर के पुण्य-पाप के राग के भाग की उत्पत्ति का नाश करके, उसके स्थान में शान्ति—अविकारी वीतरागपर्याय का समुद्र उछला। आहाहा! वह **विराजता (-शोभता) है;...** वीतरागपर्याय वह शान्तरस से विराजती है। आहाहा! त्रिकाल भगवान आत्मा अकषाय शान्तरस का पिण्ड, उसका उपयोग हुआ, पर से हटकर, वह भी उपशमरस से विराजता है, इसका नाम प्रतिक्रमण है। अरे, गजब बात! सुनी न हो। आहाहा! सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ ने कहा हुआ प्रतिक्रमण का यह स्वरूप है। समझ में आया?

अरे! **वह सचमुच, इस समयसार का कैसा भेद है!** जिसकी शान्तिदशा प्रगट हुई, यह वह समयसार का कैसा प्रकार है! (ऐसा कहते हैं)। पुण्य-पाप के विकल्प का नाश करके स्वभाव शुद्ध उपयोग की रमणता में शान्तरस उछला, वह यह समयसार का कैसा भेद है! इसका नाम निश्चय सच्चा प्रतिक्रमण है। कहो, समझ में आया? पहले तो अभी क्या कहना चाहते हैं, यह पकड़ना कठिन पड़े। वह विपरीतता बहुत घुसी है न! यह ८२ गाथा हुई। लो, अब ८३।

मोत्तूण वयण-रयणं रागादी-भाव-वारणं किच्चा।
अप्पाणं जो झायदि तस्स दु होदि त्ति पडिकमणं॥८३॥

नीचे इसका हरिगीत।

रे वचन रचना छोड़ रागद्वेष का परित्याग कर।
ध्याता निजात्मा जीव जो होता उसी को प्रतिक्रमण॥८३॥

टीका: —प्रतिदिन मुमुक्षुजनों द्वारा उच्चारण किया जानेवाला... मुनि आत्मज्ञानी-ध्यानी अतीन्द्रिय आनन्द के स्वादिया ऐसे जो सन्त... वे हमेशा—**प्रतिदिन मुमुक्षुजनों द्वारा उच्चारण किया जानेवाला जो वचनमय प्रतिक्रमण...** शाम-सवेरे प्रतिक्रमण का व्यवहारविकल्प है न, उसकी बात करते हैं। जिसे आत्मा का भान है, जिसने राग के विकल्प से चैतन्य को भिन्न अनुभव किया है, उसे जो प्रतिक्रमण का विकल्प जो वचन है, वह **नामक समस्त पापक्षय के हेतुभूत...** सम्यग्दृष्टि ज्ञानी को आत्मा के आनन्द के लक्ष्य से अनुभवकर, ऐसे मुनि को जो वचन का विकल्प प्रतिक्रमण का उठे, वह पापक्षय का हेतु है। यह पाप अशुभ है। वह स्वयं पुण्यभाव है। पुण्यभाव से रहित आत्मा का भान होने पर भी उसे शुभभाव का विकल्प ऐसा प्रतिक्रमण का भगवान ने शास्त्र में कहा, तत्प्रमाण वचन की रचना में बोलता हो (और) भाव में शुभभाव है अन्दर। वह **पापक्षय के हेतुभूत सूत्रसमुदाय...** देखो! भगवान ने, सन्तों ने प्रतिक्रमणसूत्र की रचना की, वह सूत्र की रचना वचन द्वारा बोलता है और अन्दर शुभभाव है। 'बोलता है' यह तो व्यवहार से (बात की)। बोले कौन? वह तो जड़ की भाषा है।

सूत्रसमुदाय उसका यह निरास है... देखो! क्या कहा? यह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और चारित्र की शुद्धपरिणति होने पर भी, उसे जब व्यवहार प्रतिक्रमण का विकल्प उठता है, तब भगवान ने कहे हुए प्रतिक्रमण के शास्त्र वाणी से बोलता है (और) अन्दर शुभभाव है। उसका यहाँ तो निरास किया है। वह बन्ध का कारण है। आहाहा! किसे? यह सम्यग्ज्ञानी की बात चलती है। अज्ञानी, जो देह की क्रिया मैं हूँ, राग वह पुण्य का भाव, वह मुझे धर्म होगा—ऐसे मिथ्यादृष्टि की तो यहाँ बात है नहीं। वह तो अज्ञानी है। धर्मी मुनि को.... भावलिंगी सन्त जंगल में बसते हैं वे तो। उन्हें नग्नदशा होती है। जैनदर्शन में मुनि की दशा बाह्य में नग्न होती है। आहाहा! अन्तर में तीन कषाय का अभाव होता है। ऐसे मुनि को जब प्रतिदिन—हमेशा सवेरे-शाम प्रतिक्रमण का जो विकल्प आता है, वह पापक्षय का हेतु है, तथापि यहाँ उसका निरास है। आहाहा!

पुण्यपरिणाम भी बन्ध का कारण है, वह सच्चा प्रतिक्रमण नहीं। **उसका यह निरास है (अर्थात् उसका इसमें निराकरण-खण्डन किया है)**। लो, सम्यग्दृष्टि को, सम्यग्ज्ञानी को, तीन कषाय का अभाव हो, ऐसे सन्त को सवेरे-शाम जो शुभविकल्प

का प्रतिक्रमण, शास्त्र में बाँधा हुआ वह बोले ऐसा उसका भाव होता है, उसका भी इसमें निषेध किया है। कहो, समझ में आया? वह भी सच्चा प्रतिक्रमण नहीं, व्यवहार है। किसे? वह निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान और तीन कषाय का अभाव हो उसे। श्रावक को आंशिक... आंशिक होता है। समझ में आया?

कहते हैं, **परम तपश्चरण के कारणभूत सहज वैराग्यसुधासागर के लिए पूर्णिमा का चन्द्र ऐसा जो जीव...** आहाहा! जैसे पूर्णिमा का चन्द्र समुद्र में पानी को उछालता है। पूनम के दिन पानी—समुद्र उछलता है, नजदीक आता है। इसी प्रकार जो मुनि, जिसे आत्मज्ञान, आत्मध्यान प्रगट हुआ है, दया-दान-व्रत आदि के परिणाम भी जो बन्ध का कारण जानते हैं, महाव्रत के परिणाम भी जो बन्ध का कारण जानते हैं... आहाहा! भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञानानन्दस्वभाव का आश्रय लेकर परम तपश्चरण का कारणभूत—सच्चा मुनिपने का कारणभूत... ऐसा कहते हैं।

सहज वैराग्यसुधासागर के लिए... आहाहा! **सहज वैराग्यरूपी अमृत का...** समुद्र—**सागर,...** इसके लिये पूर्णिमा का चन्द्र जैसा जीव है। आहाहा! जीव ऐसा है, ऐसा कहते हैं। **परम तप का कारण ऐसा जो सहज वैराग्यरूपी अमृत का सागर...** ऐसा क्यों लिया वहाँ? कि पुण्य और पाप के विकल्प से हट जाना, इसका नाम वैराग्य है। यह प्रतिक्रमण है न, इसलिए ऐसा लिया है। आहाहा! भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ ऐसा जिसने सम्यग्दर्शन में अनुभव किया है, सम्यग्दर्शन में वह परम अतीन्द्रिय आनन्द आत्मा है, ऐसा अतीन्द्रिय का स्वाद जिसने लिया है। आहाहा! वह अतीन्द्रिय स्वादिया जीव, कहते हैं कि पर से इतना अधिक वैराग्य है उसे... यहाँ मुनि है न? यहाँ मुनि की बात है न? परम मुनिपना जो शान्त, आनन्दरस निर्विकल्प है, व्यवहारप्रतिक्रमण के विकल्प हैं, वे भी जिसमें नहीं, ऐसी दशा को यहाँ मुनिपना कहते हैं। आहाहा!

सहज वैराग्यरूपी अमृत का सागर, उसे उछालने के लिए अर्थात् उसमें ज्वार लाने के लिए जो पूर्ण चन्द्र समान है, ऐसा जो जीव... लो। मुनि के शब्द ही समझना (कठिन)। कहते हैं कि सच्चा मुनि उसे कहते हैं कि... उसने नव तत्त्व में संवर-निर्जरा की पहिचान करनी पड़ेगी न बराबर! सच्चा मुनि उसे कहते हैं कि जिसे अमृतसागर

अन्दर से उछला है। अमृत से भरपूर भगवान आत्मा है, अमृत आनन्द। वह राग और पुण्य-पाप के विकल्प से हट गया है—हट गया है और स्वभाव के ओर की सन्मुखता में अमृतसागर उछल रहा है। आहाहा! ऐसे मुनि को **अप्रशस्त वचनरचना से परिमुक्त (-सर्व ओर से मुक्त)...** अर्थात् अशुभ परिणाम से तो मुक्त है। उसे अशुभ परिणाम तो होते नहीं।

ऐसा **होने पर भी प्रतिक्रमणसूत्र की विषम (विविध) वचनरचना को (भी) छोड़कर...** ओहोहो! भाषा देखो! प्रतिक्रमणसूत्र की विषम—विविध प्रकार की भाषा की रचना, उसमें लक्ष्य देना, वह शुभभाव है, पुण्य है, वह सच्चा प्रतिक्रमण नहीं। आहाहा! पाप से तो हट गया है, इसलिए पाप तो उसे है ही नहीं। आहाहा! 'परिमुक्त है' इसका अर्थ 'सर्वथा मुक्त' ऐसा कहा। सर्व से मुक्त है। ओहोहो! वीतराग परमात्मा केवलज्ञानी प्रभु जैन परमेश्वर ने जो आत्मा कहा, ऐसा आत्मा अन्यमत में—अन्य में कहीं नहीं हो सकता। ऐसा जो भगवान आत्मा, कहते हैं कि वैराग्यरस से अमृत तो उछलता है उसे। अब अशुभरचना वचन की—परिणाम की वह तो उसे नहीं, परन्तु **प्रतिक्रमणसूत्र की विषम वचनरचना...** आहाहा! भाषा देखो! इन शब्दों को याद रखना और व्यवस्थित बोलना, वह सब विषमता है, कहते हैं। ऐई! आहाहा! वह सब शुभराग है। समझ में आया? ऐसा मार्ग का स्वरूप है, यह अभी इसकी श्रद्धा में भी बैठे नहीं, ज्ञान में आवे नहीं, उसे स्थिरता कब होगी? आहाहा!

कहते हैं कि भगवान ने कहे हुए प्रतिक्रमणसूत्र की रचना सन्तों ने कही हुई, उसकी विषम वचनरचना को छोड़कर... उन वचनों में... वचन तो जड़ है, परन्तु उसमें ऐसा बोलना, ऐसा करना, उसमें फेरफार शब्दों में आड़ा-टेढ़ा न हो—यह सब विषमभाव है। यह समभाव नहीं।

मुमुक्षु : जल्प....

पूज्य गुरुदेवश्री : जल्प, वह भी विषमभाव है, विकल्प है न? शुभराग है न? प्रतिक्रमण की भाषा बोलना, उसमें शुभराग है। भाषा तो जड़ है। जल्प, वह विकल्प है—राग है, उसे छोड़कर... आहाहा! ऐसी वचनरचना को भी छोड़कर, ऐसा। बापू! वीतरागमार्ग सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा हुआ यह अलौकिक मार्ग है। इस मार्ग की बात भी

सुनने को मिलती नहीं, वह समझे कब? आहाहा! बाहर से अनन्त सिरपच्ची कर-करके मर गया।

आत्मा के अन्तर ज्ञान और अन्तरभान बिना यह 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायौ, पै निज आत्मज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' ऐसा द्रव्यलिंगीपना अनन्त बार लिया। परन्तु आतम... यह पुण्य-पाप की क्रिया के परिणाम से भिन्न, उसके भान बिना स्वरूप की रचना की चारित्रदशा उसे नहीं होती। आहाहा! यहाँ तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव सच्चे प्रतिक्रमण की व्याख्या करते हुए ऐसा कहते हैं कि धर्मात्मा को, जिसे अन्तर आनन्दस्वभाव का भान हुआ है, उसे अशुभराग की रचना तो छोड़ना। उसे तो होता ही नहीं, ऐसा। इस शुभराग में प्रतिक्रमण का विकल्प उठता है, उन शास्त्र की रचना में या बोलने में, उसे भी छोड़ दे। आहाहा!

संसारलता के मूल-कन्दभूत... संसाररूपी वेलडी, उसका मूल—कन्दभूत **समस्त मोह-राग-द्वेष-भावों का निवारण करके...** आहाहा! संसाररूपी वेलडी का मूल, मोह और राग-द्वेष है। लो, यह शुभभाव भी संसारलता का मूल कहा। देखो, भाई! मुनि को, हों! सच्चे सन्त को। जिनकी आत्मक्रिया आनन्दमय हो गयी है। ऐसे जीव संसाररूपी वेलडी का मूल—कन्दमूल मोह-राग-द्वेषभाव निवारण करके (अर्थात्) छोड़कर आत्मा के आनन्द में रमते हैं, उन्हें सच्चा प्रतिक्रमण होता है। कहो, भगवानभाई! ऐसा तो सुना हुआ नहीं कभी। लो, बात सच्ची। आहाहा!

अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ आत्मा, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर आत्मा, उसका जिसे प्रथम मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण होकर (अर्थात्) भ्रमणा से विमुख होकर... पुण्य में धर्म है, पाप में मजा है, पर का कुछ कर सकता हूँ, पर से मुझमें कुछ मदद मिलती है—ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, उसे पहले स्वरूप के आनन्द के स्वादिया होकर उस मिथ्यात्व का जिसने प्रतिक्रमण किया है। समझ में आया? वह मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण है। उसने अब आगे बढ़कर तीन कषाय का नाश किया है और स्वरूप का आश्रय बहुत लिया है, ऐसे मुनि को, कहते हैं कि अशुभभाव तो उसे होता नहीं, परन्तु प्रतिक्रमणसूत्र को बोलने का जो शुभभाव है, वह भी बन्ध का कारण है, उसे छोड़कर... आहाहा! उसे छोड़कर अशुभ में जाना, ऐसा यहाँ कुछ नहीं। अशुभ तो है ही नहीं। उस शुभराग का

कारण, बन्ध का कारण मुनि को भी है, उसे छोड़कर स्वरूप में रमणता करे, राग से हटकर—च्युत होकर स्वरूप में लीनता करे।

अखण्ड-आनन्दमय निज कारणपरमात्मा को ध्याता है,... लो! आहाहा! भगवान आत्मा अखण्ड है, एकरूप चैतन्यमूर्ति प्रभु है। ऐसा **अखण्ड आनन्दमय...** प्रभु आत्मा तो आनन्द—अतीन्द्रिय आनन्दमय है। पुण्य-पाप के विकल्प-दुःख तो उसमें है नहीं। देखो! आनन्द को लाये यहाँ। **अखण्ड-आनन्दमय निज कारणपरमात्मा...** त्रिकाली भगवानस्वरूप आत्मा का, त्रिकाली ध्रुव नित्यानन्द निज कारणपरमात्मा, अपना भगवान त्रिकाली वह शुभभाव से हटकर और स्वरूप का ध्यान करता है, **उस जीव को...** सच्चा प्रतिक्रमण होता है। कहो, समझ में आया? आहाहा! कठिन बातें! यह कुन्दकुन्दाचार्यदेव ऐसा कहते हैं।

उस जीव को... जो कारणपरमात्मा अपना, जिसमें से केवलज्ञानादि कार्य प्रगट हो, ऐसा जो भगवान आत्मा त्रिकाली शुद्ध चैतन्य सच्चिदानन्द प्रभु, उसका जो **ध्यान करे**—ध्याता **है, उस जीव को—कि जो वास्तव में परमतत्त्व के श्रद्धान...** परमतत्त्व अपना भगवानस्वरूप, शुद्ध आनन्दघन की श्रद्धा, परमतत्त्व आनन्दघन का **ज्ञान...** और **अनुष्ठान**—आनन्दघन का आचरण। अनुष्ठान है न, वह प्रतिक्रमण व्यवहार अनुष्ठान सही न! उसे छोड़कर अतीन्द्रिय आनन्द के अनुष्ठान के सन्मुख है, उसे सच्चा प्रतिक्रमण है। जो **परमतत्त्व के श्रद्धान...** कारणपरमात्मा शुद्ध ध्रुव नित्यानन्द आत्मा की जिसे अन्तर सन्मुख होकर श्रद्धा, **ज्ञान और उसके अनुष्ठान के सन्मुख है...** वह स्व के आचरण के सन्मुख, ऐसा कहते हैं। पर आचरण से विमुख है। शुभराग का व्यवहार प्रतिक्रमण से विमुख है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

जो वास्तव में परमतत्त्व के श्रद्धान,... भगवान पूर्णानन्द अखण्ड आनन्द हूँ, ऐसे अनुभव में श्रद्धा, ऐसे अनुभव का ज्ञान और उसका आचरण... उस राग के आचरण से विमुख होकर वीतरागी आचरण के सन्मुख है, **उसे—वचनसम्बन्धी सर्व व्यापार रहित...** (अर्थात् कि) व्यवहारप्रतिक्रमण का विकल्प और वाणी बिना का **निश्चयप्रतिक्रमण होता है।** आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? ऐ विराणी! यह सब समझना पड़ेगा। परन्तु यह चैतन्य क्या है? कितना है? सर्वज्ञ ने कहा हुआ इतना वापस, हों! अज्ञानी,

आत्मा... आत्मा... करे, उस आत्मा का उसे भान नहीं।

यहाँ तो परमेश्वर त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ जिन्होंने एक समय में तीन काल—तीन लोक जाने, ऐसे परमेश्वर ने कहा हुआ यह आत्मा कि जो आत्मा कहे, तथापि उसमें अनन्त गुण है। अनन्त ज्ञान है, अनन्त दर्शन है, अनन्त आनन्द है, अनन्त स्वच्छता है, अनन्त प्रभुता, अनन्त कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान ऐसी अनन्त शक्तियाँ और एक-एक शक्तियों का अनन्त सामर्थ्य, ऐसा आत्मा। वह आत्मा ऐसा दूसरा नहीं हो सकता और नहीं कह सकता। दूसरे ने जाना नहीं इसलिए कह सकता ही नहीं। समझ में आया? आत्मा... आत्मा... करे, आत्मा ऐसा करो, आत्मा का अनुभव करो। आत्मा है कैसा? कितना? क्या है उसमें? आत्मा तो वस्तु हुई, उसका क्षेत्र कितना? उसका काल कितना? उसका भाव कितना?

श्रीमद् ने कहा है एक जगह उस वेदान्ती के सामने। वह था न वेदान्ती, कौन? त्रिपाठी। हाँ, मनसुखलाल। वह वेदान्ती था। उसका परिचय था जरा वह पढ़ा हुआ थोड़ा सा। श्रीमद् ने एक बार पत्र लिखा। अपने को किसी भी पदार्थ की व्याख्या करनी हो तो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से की जा सकती है। तो आत्मा की भी इस प्रकार से व्याख्या की जा सकती है। ऐसा करके उसको (कहा) कि आत्मा सर्वव्यापक है और फलाना है, ऐसा नहीं हो सकता। समझ में आया? एक पत्र है। जब किसी भी चीज़ की व्याख्या करनी हो तो वह चीज़ अर्थात् क्या? उसका क्षेत्र कितना? उसकी दशा क्या? कितना काल रहे? और उसका भाव क्या? और कितने भाव? इसे बिना उस तत्त्व का स्वरूप ख्याल में नहीं आ सकता। ओहोहो!

यह आत्मा एक द्रव्य कहलाता है, उसके असंख्य प्रदेश हैं, वे उसका क्षेत्र कहलाते हैं। ऐसा वीतराग के सिवाय कहीं असंख्य प्रदेश की बात नहीं आती और असंख्य प्रदेश में शक्तियाँ जो अनन्त हैं, उसे भाव कहा जाता है। त्रिकाल रहे उसे—द्रव्य को तत्त्व कहा जाता है और वर्तमान अवस्था को काल कहा जाता है। यही वस्तु की मर्यादा है। वस्तु इसी प्रकार से हो सकती है, दूसरी नहीं हो सकती। ऐसा आत्मा जिसने... पुण्य और पाप के राग की अवस्था है, वह भी सिद्ध की। कुछ मलिनता नहीं, ऐसा नहीं है। उसकी दशा में पुण्य-पाप के भाव मलिन हैं। उनसे हटना, तब अखण्ड

प्रदेशी भगवान अनन्त गुण का धाम, उसमें आना, इसका नाम प्रतिक्रमण है। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा!

जिनेश्वरदेव परमात्मा त्रिलोकनाथ के अतिरिक्त यह बात कहीं नहीं होती। विश्वधर्म... विश्वधर्म करते हैं न? सबके साथ समन्वय करो, किसके साथ करे? अमृत का और जहर का समन्वय नहीं होता। होवे कितना? कि अमृत भी 'है' और जहर भी 'है', इस अपेक्षा से। 'है' इस अपेक्षा से। परन्तु दोनों एक है और समान हैं, ऐसा नहीं। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य ने केवली के निकट जाकर, आठ दिन रहकर यह शास्त्र रचे हैं। आहाहा! गजब बात की है न! सर्वज्ञ परमात्मा सीमन्धर परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव महाविदेह में विराजते हैं अभी। यह संवत् ४९ में कुन्दकुन्दाचार्य मुनि दिगम्बर हुए यहाँ। वे वहाँ भगवान के पास गये थे। आठ दिन रहकर (वापस) आकर यह शास्त्र रचे हैं।

पौन्नूरहिल, मद्रास से ८० मील इस ओर एक टेकरी है। पौन्नूरहिल नाम की टेटरी है। वन्देवास गाँव साथ में है, दस हजार की आबादी का गाँव, उससे पाँच मील दूर है। दो बार वहाँ जा आये हैं। वहाँ थे और वहाँ से भगवान के पास गये थे और वहाँ से आकर फिर ये शास्त्र रचे हैं। ताड़पत्र में रचे। उनमें का यह एक प्रकार है। आहाहा! लिखितंग अध्धर से मफतलाल की सही, ऐसा नहीं। लिखितंग कुन्दकुन्दाचार्य की अस्ति भगवान के निकट अस्ति (थी), वहाँ से आकर लिखे हैं। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य की सही। मेरे किये हुए हैं यह। निमित्त से तो लिखे जाये न? आहाहा!

कहते हैं... भाषा कैसी की है! **संसारलता के मूल-कन्द...** मूल। फिर मूल फले। वृक्ष फले न! इसी प्रकार मिथ्यात्व, राग-द्वेष, वह मूल है। उसमें से संसार की वेलडी—संसार की लता फले। यहाँ कहते हैं कि शुभभाव—राग भी संसारलता का फल है। आहाहा! उसका **निवारण करके...** अखण्डानन्द प्रभु आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द, अखण्ड आनन्दमय निज कारणपरमात्मा को ध्याता है। आहाहा! भगवान के आत्मा को नहीं। भगवान का आत्मा तो पर है। उसका ध्यान करे तो विकल्प उठेगा। आहाहा! अरिहन्त और सिद्ध का ध्यान करने जाये तो विकल्प उठे, क्योंकि वह तो परद्रव्य है। आहाहा! यह तो अपना—निज कारणपरमात्मा, जिसमें कार्य होने की शक्ति पड़ी है।

सिद्धपद होने की शक्ति उसमें है। आहाहा! संसार होने की शक्ति उसमें नहीं। आहाहा! संसार तो पर्याय में अज्ञानभाव से खड़ा किया है, वस्तु में नहीं है। आहाहा!

कहते हैं, ऐसा अखण्ड आनन्दमय निज कारणपरमात्मा को जो अन्तर में ध्याता है, उसे चूसता है, उसका—अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद उग्ररूप से लेता है, उस जीव को कि जो वास्तव में परमतत्त्व के श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र के सन्मुख है—स्वभावसन्मुख है। राग से विमुख है, स्वभाव से सन्मुख है। आहाहा! तो पर्याय हो, वह ऐसी होती है। जिसने पर्याय—अवस्था ही मानी नहीं, उसे पर से सन्मुख है और स्व से विमुख है तथा स्व से सन्मुख है और पर से विमुख है—यह पर्याय ही होती नहीं उसमें। पर्याय अर्थात् अवस्था—हालत। गुण और द्रव्य वह शाश्वत् चीज़ है और बदलती दशा, वह समय-समय में पलटती है। ऐसा जिसे ज्ञान नहीं आत्मा का और आत्मा... आत्मा... करे तो उसे पलटने का तो रहता नहीं। अनादि राग और विकार पर लक्ष्य है, उसे बदलकर अन्तर में लाना, वह तो पर्याय में आता है। दशा पलटती है, अवस्था पलटती है; वस्तु ऐसी की ऐसी रहती है। समझ में आया?

ऐसा जहाँ द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान नहीं, उसे कुछ भी आत्मा और तत्त्व का ज्ञान है नहीं, हो नहीं सकता। आहाहा! क्या हो? भाई! मार्ग तो सच्चा यह है। सूक्ष्म है और ऐसा है। ऐसा है और ऐसा ही है यह। भगवान आनन्दकन्द प्रभु, वह अनादि से राग में जुड़ गया है, वह दु:ख है। यदि राग में जुड़ा न हो तो अतीन्द्रिय आनन्द का उसे स्वाद प्रत्यक्ष होना चाहिए। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद नहीं, तो यहाँ शुभाशुभराग में जुड़ गया है। मलिनभाव में निर्मलभाव को अटका दिया है। आहाहा! उस मलिनभाव से छूटकर निर्मलानन्द भगवान पूर्णानन्द कारणप्रभु में जो ध्यान करता है और उसमें आता है, उस जीव की श्रद्धा-ज्ञान स्वसन्मुख है, उसका अनुष्ठान भी स्वसन्मुख है। आहाहा! परसन्मुख था, यह तो निश्चित हुआ। परसन्मुख न हो और स्वसन्मुख करना, यह कहाँ से आवे? यही जहाँ वस्तु की स्थिति की खबर नहीं... कहो, गुणवन्तभाई! लॉजिक से-न्याय से तो कहा जाता है यहाँ। ऐसा का ऐसा मान लेना, यह बात जैनदर्शन में नहीं होती। उसके भाव में ख्याल आना चाहिए कि यह चीज़ ऐसी होती है और ऐसी नहीं होती। इस प्रकार से ख्याल आये बिना भाव की श्रद्धा यथार्थ नहीं होती, भरोसा नहीं

आता। यह तो यह होगा, ऐसा होगा, ऐसा होगा—ऐसा नहीं चलता। आहाहा!

ऐसे भगवान आत्मा के सन्मुख हुआ है और विकार से विमुख हुआ है, तब ऐसा तो था कि विकार के सन्मुख अनादि का था। यदि अनादि का सन्मुख न हो, तब तो उसे सन्मुख की दशा का—आत्मा की सन्मुख का आनन्द आना चाहिए पर्याय में—अवस्था में—हालत में—दशा में। वह दशा अपने द्रव्य-गुण के ऊपर न होने से, दशा का झुकाव राग के ऊपर होने से वह मिथ्यादृष्टि है, वह अज्ञानी है। राग के ऊपर झुकाव है और मानता है कि मैं आत्मा को मानता हूँ, वह तो मिथ्यात्व है। राग को अपना माने, वह मिथ्याज्ञान है। राग में एकाग्र हो, वह आचरण मिथ्या है। उससे हटना... अब मानो गुलांट खायी है ऐसे। वस्तु त्रिकाल आनन्द का नाथ, अनन्त शक्ति का पिण्ड, उसकी ओर पर्याय को झुकाया, उसे यहाँ 'सन्मुख' कहा है। समझ में आया? यह अपने आप घर में वाँचे तो भी बहुत समझ में आये, ऐसा नहीं है।

ऐसे सन्मुख हुआ है, अन्दर पूर्ण प्रभु शुद्ध चैतन्य असंख्य प्रदेशी क्षेत्र, अनन्त गुण का धाम, ऐसा एकरूप, उसके जो सन्मुख हुआ है। लो, सन्मुख... सन्मुख... सन्मुख का सत्-मुख होगा? सन्मुख... सन्मुख का अर्थ पूरा? सन्मुख का सन्मुख। शून्य का 'न' होगा न? सम्-मुख—सम्यक् प्रकार से, मुख्य करना है आत्मा को। उसके सन्मुख हुआ है। **उसे—वचनसम्बन्धी सर्व व्यापार रहित...** सच्चा प्रतिक्रमण धर्मात्मा को ऐसा होता है। उसे वचन भी नहीं, और वचन सम्बन्धी उसका जो विकल्प है प्रतिक्रमण का कि यह मिच्छामि, वह खोटा—वह विकल्प शुभराग है, उसके बिना का निश्चय प्रतिक्रमण होता है। परमात्मा और सन्त, कुन्दकुन्दाचार्य... देखो! आता है न? 'मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी, मंगलं कुंदकुंदार्यो...' यह तीसरे नम्बर में आये हुए कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा फरमाते हैं। जैनधर्म मंगलं (यह चौथा)

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में २४४ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:— लो, समयसार का आधार देते हैं।

अलमलमतिजल्पैर्दुर्विकल्पैरनल्पै-
रयमिह परमार्थश्चेत्यतां नित्यमेकः।

स्वरस-विसर-पूर्ण-ज्ञान-विस्फूर्तिमात्रा-
न्न खलु समयसारादुत्तरं किञ्चिदस्ति॥

भगवान अमृतचन्द्राचार्य मुनि आचार्य दिगम्बर सन्त थे, वनवासी—जंगल में रहनेवाले ९०० वर्ष पहले हुए। कुन्दकुन्दाचार्य दो हजार वर्ष संवत् ४९ में पहले हुए... वे दिगम्बर मुनि जंगलवासी थे। उनके सूत्र, उनकी—समयसार आदि की टीका करनेवाले अमृतचन्द्राचार्य थे। वे अमृतचन्द्राचार्य ऐसा कहते हैं।

अरे! **श्लोकार्थः अधिक कहने से तथा अधिक दुर्विकल्पों से बस होओ, बस होओ;... 'अलमलमतिजल्पैर्दुर्विकल्पैरनल्पै'** आहाहा! बहुत क्या कहें? बहुत विकल्प से क्या हो? सब दुर्विकल्प उठते हैं। बस होओ। **यहाँ इतना ही कहना है कि इस परम अर्थ का एक का ही निरन्तर अनुभवन करो;...** आहाहा! परम अर्थ—पदार्थ प्रभु आत्मा ध्रुव का अनुभव करो। यह सार में सार कहना है। जो अनादि का राग और पुण्य का अनुभव है, वह संसार है, दुःख है, क्लेश है। भगवान अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु, ऐसा परम अर्थ—परमपदार्थ... यहाँ 'परम अर्थ' शब्द प्रयोग किया है, (अन्यत्र) कारणपरमात्मा, ऐसे भिन्न-भिन्न रीति से....

परम अर्थ... अर्थात् कि (पुण्य)-पाप के भाव, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्षभाव—यह सब पर्यायें हैं, यह परम अर्थ नहीं। त्रिकाली आत्मा भगवान वह परम अर्थ है। अविनाशी प्रभु असंख्य प्रदेशी, अनन्त गुण का एकरूप—ऐसा **परम अर्थ का एक का ही निरन्तर अनुभवन करो;...** भाषा देखो! 'एक को ही अनुभव करो' उसमें अनेकान्त कहाँ रहा? दूसरे को भी अनुभव करो, यह अनेकान्त ऐसे हुआ। एक को भगवान पूर्णानन्द प्रभु मैं हूँ, उसे अनुभव करो। तीन लोक के नाथ तीर्थंकर को भी अनुभव करो, ऐसा यहाँ नहीं कहा। उसे न अनुभवो। क्योंकि उसके ऊपर लक्ष्य जाने से तुझे राग होगा। आहाहा! देखो! यह अमृतचन्द्राचार्य दिगम्बर सन्त—मुनि वनवासी ९०० वर्ष पहले हुए, समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय की टीका करनेवाले।

एक को ही... परम अर्थ को... 'एक' शब्द। परम अर्थ अर्थात् त्रिकाली ध्रुव ज्ञायकभाव आनन्द। अर्थ को अर्थात् उस पदार्थ को। **एक को ही...** दूसरे को नहीं। इसका अर्थ कि भगवान त्रिलोक के नाथ को नहीं, राग को नहीं और एक समय की

पर्याय को भी नहीं। आहाहा! **परम अर्थ का एक का ही निरन्तर अनुभवन करो;...** वापस 'निरन्तर'। आहाहा! वस्तु निष्क्रिय भगवान राग से भिन्न ऐसी चीज़, उसका निरन्तर दृष्टि और अनुभव उसकी ओर हो। आहाहा! कोई समयमात्र भी राग की मुख्यता करके राग का अनुभव और पर्याय की मुख्यता करके...—यह नहीं हो सकता, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

इस... वापस ऐसा शब्द प्रयोग किया है न? इस... 'इस' प्रत्यक्ष बताता है। **इस परम अर्थ का एक का ही...** गुण-गुणी के भेद को भी नहीं। आहाहा! **निरन्तर अनुभव करो...** सतत् परिणाम द्रव्य की ओर का धारावाही चलना, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वीतरागी परिणाम स्व के सन्मुख हुए, उस परिणाम को निरन्तर करो। स्वसन्मुख के ही परिणाम करो, वह अनुभव करो। आहाहा!

क्योंकि निज रस के विस्तार से पूर्ण जो ज्ञान उसके स्फुरायमान होनेमात्र जो समयसार (-परमात्मा) उससे ऊँचा वास्तव में अन्य कुछ भी नहीं है... अपना आनन्दरस प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का रस, उसके फैलाव से पूर्ण ऐसा जो ज्ञान, उसके स्फुरायमान से प्रगट हुआ पर्याय में सम्यग्ज्ञान... **होनेमात्र जो समयसार उससे ऊँचा वास्तव में अन्य कुछ भी नहीं है...** वह परमात्मा, उससे ऊँचा दूसरा कुछ भी नहीं। **(-समयसार के अतिरिक्त अन्य कुछ भी सारभूत नहीं है)**। पुण्य के परिणाम सार नहीं। आहाहा! भगवान की भक्ति का भाव वह सार नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। वह तो राग है। हो, परन्तु वह हेय है। कहते हैं, पूर्ण ज्ञान... जो ज्ञान, उसके स्फुरायमान होनेमात्र से जो समयसार, उससे ऊँचा कुछ नहीं है। कुछ भी नहीं है। **समयसार के अतिरिक्त अन्य कुछ भी सारभूत नहीं है।** अखण्डानन्द प्रभु आत्मा का ध्यान करना, वह सारभूत है और उससे ज्ञान की दशा प्रगट करना, यह अभी पर्याय को सारभूत कहा जाता है। सार तो त्रिकाली है और उसके आश्रय से पूर्ण दशा प्रगट करना सारभूत है। बाकी दूसरा कोई सार है नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आषाढ़ कृष्ण १४, बुधवार, दिनांक - २१-७-१९७१
श्लोक - १११, गाथा - ८४, प्रवचन-७३

परमार्थ प्रतिक्रमण अधिकार है। सच्चा प्रतिक्रमण किसे कहना? सच्चा कहो या निश्चय कहो या सत्य प्रतिक्रमण किसे कहना—उसकी बात है। ८३ गाथा का १११वाँ कलश है।

अति-तीव्र-मोह-सम्भव-पूर्वार्जितं तत्प्रतिक्रम्य।
आत्मनि सद्बोधात्मनि नित्यं वर्तेऽहमात्मना तस्मिन्॥१११॥

स्वयं पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि हैं, भावलिंगी सन्त हैं, वे स्वयं स्वयं से बात करके प्रतिक्रमण की व्याख्या करते हैं।

श्लोकार्थः—अति तीव्र मोह की उत्पत्ति से जो पूर्व में उपार्जित (कर्म)... पूर्व में आत्मा के भान बिना जो मिथ्यात्वभाव से, तीव्र मोह अर्थात् मिथ्यात्व, उसकी उत्पत्ति से पूर्व में बाँधा हुआ कर्म, **उसे प्रतिक्रम कर...** उससे अब मैं हट जाता हूँ। कर्म का निमित्त और कर्म के निमित्त से होनेवाले विकारभाव, चाहे तो शुभ हो या अशुभ हो, सब दोषरूप है। उससे मैं हट जाता हूँ, च्युत हो जाता हूँ, विमुख होता हूँ। 'प्रतिक्रम' शब्द है सही न? अर्थात् आत्मा के स्वभाव से विरुद्ध जितने पुण्य और पाप शुभ-अशुभभाव सबसे मैं निवृत्त होता हूँ। और कहाँ जाता हूँ? प्रतिक्रमण है न? इसलिए विमुख होकर **मैं सद्बोधात्मक (सम्यग्ज्ञानस्वरूप) ऐसे उस आत्मा में...** सद्बोध—ज्ञानस्वरूप आत्मा। सत्-बोध-आत्मक—सत्य ज्ञानस्वरूप आत्मा त्रिकाल, प्रज्ञाब्रह्म ज्ञानस्वरूप आत्मा है। ऐसा मैं ज्ञान सद्बोधस्वरूप ऐसा आत्मा। यह आत्मा की व्याख्या की। यह सद्बोधस्वरूप आत्मा, **ऐसे आत्मा में आत्मा से...** अर्थात् कि निर्विकल्प परिणति से **नित्य वर्तता हूँ।** यह प्रतिक्रमण, यह धर्म।

कर्म के निमित्त में जो पूर्व में मिथ्यात्व से बाँधा हुआ कर्म, उससे मैं विमुख होकर—हटकर और मैं सद्बोधस्वरूप आत्मा—सच्चे ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, ऐसे

आत्मा में आत्मा से, आत्मा से अर्थात् वीतराग परिणति से, निर्विकल्प अवस्था से नित्य वर्तता हूँ। इसका नाम प्रतिक्रमण और इसका नाम धर्म है। है न?

मुमुक्षु : अशुभचाल.... शुभ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, शुभ कुछ नहीं। शुभ और अशुभ दोनों ही दोष है।

मुमुक्षु : शुभ को उड़ा दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : उड़ा ही दिया। आहाहा! कहा न यहाँ?

मैं तो सद्बोधस्वरूप... उसमें शुभाशुभ परिणामस्वरूप हूँ और वे मुझमें हैं—ऐसा है ही नहीं। आहाहा! मैं सत्—शाश्वत्, ज्ञानस्वरूप हूँ। उसमें कोई पुण्य-पाप, दया, व्रत, भक्ति के परिणाम हैं नहीं। उस स्वरूप आत्मा है ही नहीं। आहाहा! जिसे धर्म करना हो, उसे क्या करना, यह बात चलती है। विकार, वह शुभ-अशुभभाव... शरीर-वाणी वह तो जड़ है, उससे तो रहित ही है और उससे हटना, वह कुछ है नहीं। (क्योंकि) उससे रहित ही है। पुण्य और पाप के भाव विकारी, शुभ-अशुभ दोनों, वे दोषरूप हैं। वे आत्मा के स्वरूप में नहीं। इसलिए उस दोषरूप से हटकर—विमुख होकर, शुद्ध... शुद्ध... सद्बोधज्ञानस्वरूप आत्मा, उस आत्मा से अर्थात् रागरहित निर्मल वीतरागपरिणति से आत्मा में नित्य वर्तता हूँ, इसका नाम धर्म और प्रतिक्रमण है। आहाहा! कहो, समझ में आया? पहले तो अभी पकड़ना कठिन कि क्या कहते हैं यह।

वीतरागमार्ग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने केवलज्ञान में तीन काल—तीन लोक देखे और वाणी में आया, उस वाणी को आगम कहते हैं। उस आगम में ऐसा आया कि भगवान! प्रतिक्रमण अर्थात् विकार के भावों से हटते हुए हट जाना, हट जाना, विमुख हो जाना। विकार के सन्मुख जो है, वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! उस विकारभाव से विमुख होकर... मैं तो सद्बोधस्वरूप हूँ, अकेला ज्ञान का पुंज—पिण्ड प्रभु, ज्ञानस्वभावभाववाला मेरा तत्त्व है, ऐसे आत्मा में आत्मा से (अर्थात्) ऐसा जो आत्मा, उसकी शुद्ध परिणति द्वारा आत्मा में नित्य—कायम वर्तना, इसका नाम प्रतिक्रमण और धर्म है। कहो, समझ में आया इसमें? यह कलश कहा १११।

मूल श्लोक कुन्दकुन्दाचार्य के और यह स्वयं पद्मप्रभमलधारिदेव ९०० वर्ष

पहले मुनि दिगम्बर सन्त बनवासी थे। उन्होंने टीका में यह कलश कहा। प्रतिक्रमण तो इसे कहते हैं। इससे कहा न कि मैं उसमें बसता हूँ। आहाहा! किसी की बात नहीं। ऐसा प्रतिक्रमण कोई करे तो हो... मैं... आहाहा! मैं निज स्वरूप में सद्बोध... सत्-बोधस्वरूप... सद्बोधस्वरूप—शाश्वत् ज्ञानस्वरूप, ऐसा। ऐसा जो मेरा स्वरूप ऐसा जो मैं आत्मा, ऐसा। ऐसे आत्मा से निर्विकल्प, विकारदशारहित... निर्विकल्प परिणति से नित्य अन्दर में ध्रुव में वर्तना, इसका नाम प्रतिक्रमण है। कहो, समझ में आया?

मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण भी कब कहलाता है? मिथ्या... पुण्य में धर्म है, पाप में मजा है, ऐसी जो मिथ्याश्रद्धा, उसका प्रतिक्रमण कब होता है? ऐसे भाव के लक्ष्य को छोड़कर और सद्बोधस्वरूप भगवान आत्मा में एकाग्र हो, तब उसे सम्यग्दर्शन की पर्याय प्रगट होती है, तब उसने मिथ्यात्व से प्रतिक्रमण किया—उसने मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण किया। आहाहा! सदोषभाव, रागभाव को अपना मानना और उससे धर्म मानना, वह तो मिथ्यात्वभाव है। यह वीतरागमार्ग है। वीतरागमार्ग में तो वीतरागभाव उत्पन्न होता है। समझ में आया? आहाहा! वस्तु ऐसी है। दुनिया को तो मिलना मुश्किल हो गयी है। आहाहा! बाहर से सब माना और उसमें मानो कुछ कल्याण हो जायेगा, ऐसा करके उसकी जिन्दगी चली जाती है।

भगवान आत्मा सद्बोधस्वरूप ऐसा आत्मा, 'मैं' वह आत्मा, ऐसा कहते हैं। आत्मा उसे कहते हैं। दया, दान, व्रत के परिणाम, वे आत्मा नहीं, तथा उस आत्मा से वर्तता हूँ तो वे रागादि आत्मा से नहीं। समझ में आया? भगवान आत्मा सद्बोध—शाश्वत् ज्ञान का पिण्ड प्रभु ऐसा जो आत्मा, उसमें आत्मा से... ऐसा कहा न? वापस उस व्यवहार दया, दान, व्रत विकल्प है, उससे वर्तता हूँ... वह तो दोष है। आहाहा! वह आत्मा नहीं। 'आत्मा में आत्मा से वर्तता हूँ।' ऐसा शब्द पड़ा है न? बहुत कठिन पड़े लोगों को तो। ... बाँधकर बैठा हो, पचास-पचास, साठ वर्ष से हम यह सब प्रतिक्रमण करते हैं, धर्म करते हैं और यह करते हुए चोट लग जाये अन्दर से। हाय... हाय! यह सब पानी में गया तब? पानी में है? आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा स्वयं शुद्ध चैतन्यमूर्ति, परम आत्मा अर्थात् परमस्वरूप

सद्बोधस्वरूप ऐसा जो निज आत्मा, उसमें आत्मा द्वारा अर्थात् व्यवहार के विकल्प द्वारा नहीं। उससे तो विमुख हुआ। जिससे विमुख हुआ, उस द्वारा अन्दर में किस प्रकार एकाग्र होगा? समझ में आया? कठिन यह काम। सम्प्रदायवालों को सुनते हुए तो ऐसा हो जाये अन्दर। आहाहा! यह सब पानी में (गया)। हमारा सब क्रियाकाण्ड है, वह धर्म नहीं, ऐसा कहे, हाय... हाय! सुनने में पसीना उतर जाये। मार्ग तो यह है। अनादि से ऐसे वर्तता है। आहाहा! कहा न? मैं नित्य वर्तता हूँ, ऐसा कहा न? वापस **नित्य वर्तता हूँ।** आहाहा! सद्बोधात्मक आत्मा में आत्मा से किसी समय वर्तता हूँ, किसी समय नहीं, किसी समय व्यवहार में आता हूँ। आहाहा! ऐई! व्यवहार के दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम में किसी समय आता हूँ और किसी समय अन्तर में—ऐसा नहीं। आहाहा!

कैसे कलश बनाये हैं! लो। अब मुनि की टीका भी मान्य नहीं। ठीक न पड़े, वह मान्य नहीं। क्या करे? आहाहा! प्रभु! यह तो तेरे घर की बात है न, भाई! तेरे घर में तेरे घर द्वारा जाया जाता है। तेरे घर में किसी पर के घर द्वारा जाया जाता है? किसी के घर के दरवाजे से तेरे घर में जाया जाता है? इसी प्रकार राग और पुण्य, दया, दान, व्रत, भक्ति, वह तो विकार का दरवाजा है। उसके द्वारा आत्मा में नहीं जाया जाता, ऐसा कहते हैं, देखो न! प्रतिक्रमण है न? आहाहा! यह तो व्याख्या ऐसी आयी न! प्रतिक्रमण की व्याख्या है न! वापस हटा है दोष से, परन्तु दोष द्वारा अब अन्तर में स्थिर होता है, ऐसा होगा? शुभभाव है न? दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह सब शुभभाव है। अब उससे तो हटा है, कहते हैं। अब जिससे हटा है, उस द्वारा वापस अन्दर में स्थिर होगा? क्योंकि राग है, वह तो पर दिशा की ओर के लक्ष्य से उत्पन्न होता है। इससे तो हटकर अन्दर में जाना है। आहाहा!

मैं एक सद्बोधस्वरूप... ऐसा आत्मा सद्बोध है (अर्थात्) ऐसा कि शाश्वत् ज्ञान है मुझमें। क्षणिक नहीं कुछ। आहाहा! सद्बोधस्वरूप—शाश्वत् मेरा ज्ञानस्वरूप, ऐसा मैं आत्मा, उसे आत्मा से... व्यवहार से, निमित्त से, उससे तो हटा है, विमुख हुआ है। जिससे विमुख हुआ, उससे फिर स्थिर हो, ऐसा कैसे होगा? यह सब (कहे),

व्यवहार से होता है, व्यवहार से होता है—यह बात खोटी पाड़ते हैं यहाँ। समझ में आया? चैतन्यमूर्तिस्वरूप भगवान आत्मा में विकल्प का अवकाश नहीं, क्योंकि विकल्प है, वह तो आस्रवतत्त्व है। चाहे तो दया, दान, पूजा, भक्ति, नामस्मरण, दान, सेवा, परोपकार, करुणा, कोमलता—सब विकल्प और राग, आस्रवतत्त्व है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : विमुख हो लक्ष्य छोड़कर, ऐसा कहते हैं। उस पर लक्ष्य है, छोड़ दे। अन्तर में लक्ष्य करे।

मुमुक्षु : अपने में आ जाये तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : बस वही। यहाँ से लक्ष्य छोड़ने का अर्थ ही यही है। समझाना हो तो ऐसे समझाये न? उससे लक्ष्य छोड़, उसका अर्थ कि स्वभाव सन्मुख जा। भाषा तो इतनी है। उपदेश शैली कैसी होगी? विमुख होकर अर्थात् यह है और विमुख होता हूँ—ऐसा है? परन्तु समझाने में क्या समझावे?

प्रतिक्रमण शब्द है। प्रतिक्रमण अर्थात् वापस मुड़ना, पहली बात करे न! परन्तु वापस मुड़े कब? कि अन्तर में सन्मुख हो तो वापस मुड़े। समझ में आया? कठिन बात ऐसी है मूल बात ही। जैन परमेश्वर का सत्य—त्रिकाल सत्य ही लोगों को सुनने को न मिला हो और वाडा बाँधकर (माने कि) यह हमारा धर्म। वह कहे कि हमारे पूजा, भक्ति और यात्रा धर्म। यह कहे, हमारे सामायिक, प्रतिक्रमण धर्म। वह कहे कि हमारे खाना और वस्त्र छोड़ना, वह हमारा धर्म। चौथेवाले कहे कि हमारे देव-गुरु की भक्ति करना, वह हमारा धर्म। यहाँ तो कहते हैं कि प्रभु! तेरा धर्म-स्वभाव सद्बोधस्वरूप है। वह वस्तु का स्वभाव और स्वभाव की परिणति द्वारा उस स्वभाव में—ध्रुव में वर्तना, इसका नाम धर्म। आहाहा!

लोग गड़बड़ करते हैं, सराग... सराग... राग की क्रिया करो, उससे वीतराग हुआ जायेगा। ऐसा कहते हैं, भाई! वह तो दोषरूप है। स्वभाव से—सद्बोध धर्मस्वरूप भगवान से—तो विरुद्ध भाव है। उससे विमुख होकर अर्थात् उससे (—उसके द्वारा) नहीं, परन्तु उससे विमुख होकर—हटकर। किससे? आत्मा से। तब आत्मा कौन? कि

सद्बोधस्वरूप। ऐसी जिसकी परिणति होना... सच्चा ज्ञान, श्रद्धा और शान्ति, वह सब सद्बोधस्वरूप है। ऐसी परिणति द्वारा नित्य आत्मा में वर्तना, वह प्रतिक्रमण। प्रतिक्रमण की व्याख्या भी सुनी न हो। मेघाणी! सब इकट्ठे होकर मिच्छामि दुक्कडं... ऐ गुणवन्तभाई! इकट्ठे हों सब। हम ऐसा करते, हों! दुकान पर पालेज में। साठ वर्ष पहले। साठ वर्ष पहले। शाम को इकट्ठे हों। पर्यूषण का दिन। आठ दिन, हों! बाद में नहीं। आठ दिन इकट्ठे हों सब। चार अपवास करें। पर्यूषण में आठ दिन होते हैं न? श्वेताम्बर में आठ है न? उसमें चार अपवास चतुर्विध आहार (त्याग)। शाम को प्रतिक्रमण, पूरे दिन दुकान में।

मुमुक्षु : आठ दिन में बारह महीने का (पाप) धुल जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : धुल जाये....

मुमुक्षु : यहाँ तो एक समय में सबका धुल जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! कहते हैं... बहुत सरस बात ली है, हों! यह सब अमृतचन्द्राचार्य की शैली है न कलश में। यह ८४ गाथा।

आराहणाइ वट्टइ मोत्तूण विराहणं विसेसेण।
सो पडिकमणं उच्चइ पडिकमणमओ हवे जम्हा ॥८४॥

इसलिए वह प्रतिक्रमणमय हो गया है, इसलिए उसे प्रतिक्रमण कहते हैं, ऐसी भाषा है। आहाहा! नीचे हरिगीत।

छोड़े समस्त विराधना आराधनारत जो रहे।
प्रतिक्रमणमयता हेतु से प्रतिक्रमण उसको ही कहें ॥८४॥

आहाहा! लो, यह कुन्दकुन्दाचार्य के वचन। उसकी **टीका:—यहाँ आत्मा की आराधना में वर्तते हुए जीव को...** आत्मा की सेवना। आत्मा आनन्द और ज्ञानमूर्ति, वह ज्ञान और आनन्द की सेवना (अर्थात्) अन्तर में एकाग्रता। ऐसी आराधना में वर्तते हुए जीव को ही—प्रतिक्रमण उसे ही, ऐसा वापस। उस **जीव को ही प्रतिक्रमणस्वरूप कहा है।** यह संक्षिप्त भाषा ली है। इसका अर्थ हुआ कि आत्मा की आराधना में वर्तते—उसमय होते जीव को, ऐसा। **प्रतिक्रमणस्वरूप कहा है।** संक्षिप्त अर्थ किया। क्या कहा? जो कोई आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप, उसकी आराधना में, अन्तर में एकाग्र सेवन में

वर्तते जीव को—यह पर्याय हुई। ऐसे आत्मा की आराधना, वह पर्याय है, आत्मा, वह त्रिकाली द्रव्य है। आराधनारूप वर्तता जीव, यह पर्याय हुई। अर्थात् कि जिसकी वीतराग परिणति में आत्मा वर्तता है, ऐसे जीव को... क्योंकि वह प्रतिक्रमणमय हो गया है। आराधनारूप वर्तते जीव को (अर्थात्) शुद्ध परिणति में वर्तते जीव को... शुद्ध परिणतिमय आत्मा हुआ, इसलिए उसे प्रतिक्रमणस्वरूप कहा है। इसका अर्थ करेंगे। यह तो संक्षिप्त अर्थ किया।

जो परमतत्त्वज्ञानी जीव निरन्तर अभिमुखरूप से (-आत्मसन्मुखरूप से) अटूट (-धारावाही) परिणामसंतति द्वारा साक्षात् स्वभावस्थिति में—आत्मा की आराधना में—वर्तता है, वह निरपराध है। आहाहा! है न? **जो परमतत्त्वज्ञानी जीव...** परम तत्त्वज्ञान... आत्मा शुद्ध आनन्दमूर्ति उसका ज्ञान वह परमतत्त्वज्ञान। शास्त्र का ज्ञान या दूसरे का ज्ञान, वह यहाँ नहीं। भगवान आत्मा परमानन्द और ज्ञान की मूर्ति प्रभु अनादि-अनन्त ऐसा जो परमतत्त्व, उसका जिसे ज्ञान, ऐसे परमतत्त्व का ज्ञान है, उसे परमतत्त्वज्ञानी कहा जाता है। आहाहा! ऐसा जीव निरन्तर (अर्थात्) एक समय भी पर में गये बिना, **निरन्तर अभिमुखरूप से...** वस्तु जो ज्ञानानन्दस्वरूप, उसके निरन्तर सन्मुखरूप से... स्वसन्मुखरूप से... पर से विमुखरूप से (और) स्व से सन्मुखरूप से। आहाहा!

मुमुक्षु : एक समय का अन्तर न पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : न पड़े। पड़े तो हो गया।

मुमुक्षु : तो मिथ्यादृष्टि हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टि मिथ्या हो जाये, राग का आलम्बन—आश्रय हो जाये तो मिथ्यादृष्टि हो जाये। ऐसी बात है। मार्ग बहुत, बापू! अलौकिक है। परन्तु जिसका फल भी अलौकिक है न! 'सादि-अनन्त अनन्त समाधि सुख में।' आहाहा! अनन्त-अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान-दर्शन प्रगट हो और अनन्त आनन्द और शान्ति अनन्त काल रहे ऐसी की ऐसी। जिसके फल में ऐसा, उसके कारण में तो ऐसा ही होगा न!

जो परमतत्त्वज्ञानी जीव... परमतत्त्व अर्थात् अपना जो वस्तु का स्वरूप, उसका

जाननेवाला जीव, ऐसा। उसका विवाद उठावे, ऐई! पर्याय का ज्ञान। वे आये हैं। प्रश्न उठे हैं... पर्यायदृष्टि, वह मिथ्यादृष्टि; द्रव्यदृष्टि, वह सम्यग्दृष्टि—यह बराबर है? प्रश्न उठे हैं अभी। किसी पत्र में कल ही आया है। पहले तो आ गया वह जैनगजट में विरोध का। पर्यायदृष्टि मिथ्यादृष्टि नहीं। भाई! पर्याय का अंश है, उसकी उतनी दृष्टि है तो मिथ्यात्व ही है, सुन न! अंश है, उसे पूरा आत्मा माना। पर्याय अर्थात् एक समय की दशा, चाहे तो ज्ञान की हो, वीर्य की हो, उस अंश को आत्मा माना, वह तो पर्यायबुद्धि मिथ्यादृष्टि है, मूढ़ है पर्याय में।

मुमुक्षु : ये भी पर है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर है, वस्तु कहाँ अपनी है इतनी? एक अंश है वह द्रव्य से भिन्न है। परन्तु उस अंशबुद्धिवाला मिथ्यादृष्टि है और त्रिकाल ज्ञायकभाव, वस्तुस्वभाव त्रिकाल ध्रुव परमतत्त्व की दृष्टि, वह द्रव्यदृष्टि है, वह सम्यग्दृष्टि है। आहाहा! इसका विवाद।

देखो न! यह 'द्रव्यदृष्टि सम्यग्दृष्टि' है न सामने? यह माणेकचन्दभाई आये थे न एक बार यहाँ। थान के हैं न? मन्दिरमार्गी। पोट्री ऐसा कुछ है, नहीं? पोट्री। आये थे, बहुत वर्ष हो गये। वहाँ फिर अपने गये थे... बेचारे को खबर नहीं होती कुछ। वाडा बाँधकर बैठे। वह कहे हम मन्दिरमार्गी, वह कहे हम दिगम्बर, वह कहे हम स्थानकवासी, वह कहे हम श्रीमद् को माननेवाले। परन्तु माननेवाले क्या चीज़ है वह? यह 'द्रव्यदृष्टि वह सम्यग्दृष्टि।' तब यह पाटिया यहाँ था इस ओर। उसे बहुत वर्ष हो गये, २५ वर्ष हो गये होंगे। भाई आये माणेकचन्दभाई थानवाले। महाराज! यह द्रव्यदृष्टि वह सम्यग्दृष्टि—यह कैसे? वह मानो कि यहाँ सब करोड़पति बहुत आते हैं। क्योंकि नानालालभाई करोड़पति, नानालाल जसाणी। सब करोड़पति बहुत, इसलिए यह द्रव्यदृष्टि अर्थात् (पैसे की दृष्टि)। अभी इसकी खबर नहीं होती। साठ-साठ वर्ष की उम्र....

मुमुक्षु : उसका नाम ही द्रव्य कहलाये न?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी द्रव्य कहलाता नहीं। पैसा द्रव्य कहाँ है? उसका एक-एक परमाणु वह द्रव्य है। पैसा तो विभाविक द्रव्य है, वह वास्तविक द्रव्य नहीं।

मुमुक्षु : विभाविक का क्या काम है ? द्रव्य है या नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका एक परमाणु जो है, वह द्रव्य है। इसी प्रकार आत्मा राग बिना की, एक समय की पर्याय बिना की त्रिकाली चीज़, वह त्रिकाली द्रव्य है। वह द्रव्यदृष्टि (अर्थात्) उसकी दृष्टि करना, इसका नाम सम्यक् दृष्टि है।

पटिया है न ? व्यापारी बोर्ड नहीं रखते सामने ? 'कपड़े के व्यापारी' लिखते हैं न ? उसका ट्रेडमार्क लिखे। इसी प्रकार यह यहाँ का ट्रेडमार्क हे। चार है—दो और दो=चार बड़े पाटिये। 'दर्शनशुद्धि, वह आत्मशुद्धि', 'पूर्णता के लक्ष्य से शुरुआत, वही वास्तविक शुरुआत है', द्रव्यदृष्टि, वह सम्यग्दृष्टि' और 'दंसणमूलो धम्मो।' यह ट्रेडमार्क है वीतराग का।

मुमुक्षु : यह दुकान वीतराग की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतराग की दुकान में यह ट्रेडमार्क है। वह व्यापारी करे न वे.... पर्दा रखे सामने और पर्दे में बड़ा नाम लिखे। जाहिरात। आहाहा!

परमतत्त्वज्ञानी जीव... लो। परमतत्त्वज्ञानी जीव... परमतत्त्व ऐसा जीव, उसका ज्ञानी वह जीव। आहाहा! **निरन्तर**—अन्तर पड़े बिना। **निरन्तर**—अन्तर अर्थात् आंतरुं पड़े बिना। **अभिमुखरूप से...** अभिमुख (अर्थात्) वस्तु के सन्मुख। भगवान पूर्णानन्द प्रभु स्वयं उसके सन्मुख, यह पर्याय हुई। **अटूट (धारावाही)...** आहाहा! द्रव्यस्वभाव में परिणाम अटूट धारावाही परिणाम (अर्थात्) जिसमें से टूट न पड़े। निरन्तर तो कहे, वापस अटूट धारावाही (कहे)। वे परिणाम।

निरन्तर सन्मुख **अटूट (-धारावाही) परिणामसंतति द्वारा...** आहाहा! यह परिणामसन्तति, वह वीतराग पर्याय है। उसके द्वारा **साक्षात् स्वभावस्थिति में...** साक्षात् स्वभाव की **—आत्मा की आराधना में—वर्तता है,...** ऐसा। स्वभावस्थिति में अर्थात् आत्मा की आराधना में—सेवना में। भगवान अपना स्वरूप स्वयं सेवन करता है। आहाहा! अन्तर्मुख सेवना करता है। अनादि से राग की सेवना करता था, पुण्य की और पाप की सेवा करता था, वह मिथ्यादृष्टि विराधक—अनाराधक था। आहाहा! जिसे भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप त्रिकाल, उसकी आराधना, अटूट परिणाम

सन्तति वापस। भाषा देखो न! ओहोहो! **निरन्तर अभिमुखरूप से अटूट परिणामसंतति...** वापस। परिणाम की सन्तति धारावाही—अटूटरूप से हुई। द्रव्य सन्मुख है जिसकी दृष्टि, वह आराधना है। आहाहा! वह धर्म है, वह आराधना है। आहाहा!

यह सब बात सही, परन्तु कुछ इसका साधन-बाधन होगा या नहीं दूसरा? ऐसा वहाँ पूछते थे श्रीमद् में। अगास गये न तब। व्याख्यान हुआ, सबने सुना। रात्रि में एक मारवाड़ी आया। चाहे जहाँ का हो। (उसने पूछा) कि यह बात बराबर है, परन्तु फिर इसका साधन? ऐसा कि यह भगवान की भक्ति करना, गुरु की भक्ति करना, दया, दान, पुण्य—(ऐसा) कुछ साधन है या नहीं? अरे भगवान! स्वभाव का साधन विभाव? वह तो विकल्प है। आहाहा! उस साधन में गम पड़ती नहीं।

अन्दर अखण्डानन्द प्रभु पूर्णस्वरूप सर्वज्ञ परमात्मा ने प्रगट किया, ऐसा ही इसका स्वरूप है। ऐसे तत्त्व का ज्ञान जिसे है, कि ऐसा तत्त्व है, ऐसा तत्त्व है, उसका जिसे ज्ञान है, वह परमतत्त्व का ज्ञानी जीव। वह जीव अपने परिणाम को अन्तर में निरन्तर (अर्थात्) टूट न पड़े, ऐसी सन्तति द्वारा आराधता है। स्वभावस्थिति में अर्थात् आत्मा की आराधना में अन्तर्मुख वर्तता है। आत्मा की अन्तर्मुख वर्तनेवाली वीतरागी पर्याय, उस पर्याय में वर्तता है, वह निरपराध है। घर में पूछे कि क्या सुनकर आये तो कहना भी मुश्किल पड़े यह। क्या कहते थे? कुछ कहते थे कि ऐसा है और वैसा है। एक आत्मा ऐसा है और उसमें ऐसे वर्तना... ऐसे वर्तना। आहाहा!

परिणामसंतति द्वारा साक्षात् स्वभावस्थिति में... ऐसा। प्रत्यक्ष स्वभावस्थिति में—आत्मा की आराधना में वर्तता है, उसे प्रतिक्रमण और निरपराधी कहा जाता है। आहाहा! **जो आत्मा के आराधन रहित है,...** जो कोई ऐसा आत्मा परमतत्त्वस्वरूप निर्मलानन्द प्रभु की एकाग्रता से वह रहित है—**आराधन रहित है, वह सापराध है;...** ऐसे शुद्ध भगवान आत्मा के सन्मुख की सेवा से रहित है और व्रत, दया, दान आदि विकल्प की सेवा करता है कि यह मेरा स्वरूप है, वह अपराधी जीव है, गुनहगार है। कहो!

आत्मा के आराधन रहित है,... बस, यह संक्षिप्त भाषा। आत्मा जो अखण्ड आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, उसके आराधन अर्थात् सेवना रहित है, अर्थात् कि उसके

सन्मुख की परिणति रहित है, **वह सापराध है।** वह परसन्मुख के भाव में रहा हुआ है। चाहे तो शुभ या अशुभ (हो), वह अपराधी है। कहो, मीठाभाई! ऐसा स्वरूप है। उसको कठिन पड़े बेचारे को। जैनशासन। मार्ग ऐसा है, उसमें करना क्या? वरना करे निर्णय। यह कहाँ किसी की अध्धर की बात है? धर्म का आराधन किसे कहना? क्या व्यवहार व्रत विकल्प को करे उसे? वह तो राग, दोष है। वस्तु में जो स्वभाव है, उस स्वभाव की सेवना करना। तो स्वभाव की सेवना तो उसके सन्मुख हो तब होती है। रागादि से विमुख हो। है न? अभी कहेंगे। '**मोत्तूणं विराहणं विसेसेण**' है न?

इसीलिए निरवशेषरूप से विराधन छोड़कर... ऐसा कहा। इसका स्पष्टीकरण किया। आत्मा के आराधना रहित है, इसलिए 'सापराध' इसकी व्याख्या। **इसीलिए निरवशेषरूप से विराधन छोड़कर...** ऐसा कहा है। दूसरा पद। '**मोत्तूणं विराहणं विसेसेण**' मूल पाठ। '**मोत्तूणं विराहणं विसेसेण**' विशेषरूप से पर की आराधना छोड़कर अर्थात् पर का आराधन छोड़कर (अर्थात्) राग का आराधना, पुण्य का करना, व्यवहार का करना छोड़कर, ऐसा कहते हैं। अरे! गजब व्याख्या!

मुमुक्षु : .... हो जाये तो ये बोलते हैं कि व्यवहार से एकान्तवादी बनते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : एकान्तवादी बनते हैं, तब तो निश्चय होता है। निश्चय में व्यवहार है ही नहीं, तब अनेकान्त होता है। निश्चय व्यवहार से होता है, यह अनेकान्त नहीं हुआ, यह तो फुदड़ीवाद हुआ। यही एकान्तवाद है। आहाहा! है, अन्तर है। ऐसा सुनना... उसे जो बैठे ऐसा कहे।

यहाँ तो व्यवहार से रहित हो और स्वभाव का आराधन करे, उसे धर्म होता है, ऐसा कहते हैं। व्यवहार तो शुभोपयोग, शुभराग है, वह तो दोष है। भगवान अमृतस्वरूप से तो विरुद्ध भाव है। उसका भी आराधन करना और स्वभाव का आराधन—दो होंगे? राग का सेवन करनेवाला आत्मा को सेवन नहीं करता और आत्मा का सेवन करनेवाला राग का सेवन नहीं करता, इसका नाम अनेकान्त है। आहाहा! ऐसा है। अपनेरूप से अस्ति है और रागरूप से नास्ति है। सप्तभंगी तब होती है या नहीं? सप्तभंगी। भंगी का नहीं कहा था? सुना है सप्तभंगी? कल नहीं कहा था? एक व्यक्ति था, वह कहे, ऐ! परन्तु तुमने अपने बाप-दादा का कुल धर्म छोड़ दिया और तुमने यह दूसरा अंगीकार किया।

सप्तभंगी—सात भंगी का। सात भंगी। स्वपने है, रागपने नहीं, अस्ति-नास्ति। ऐसी उसकी सप्तभंगी। निश्चयपने है और व्यवहारपने नहीं, उसकी सप्तभंगी करना। आहाहा! तब कहे, मैं जिस समाज में था तुम्हारे में, उसमें इतना कचरा मुझे लगा कि एक-दो भंगी से साफ हो, ऐसा नहीं था, सात भंगी से साफ हो, इसलिए इसमें आया हूँ। आहाहा!

भगवान स्वरूप से शुद्ध है, उसके आराधन से धर्म की अस्ति है, राग की आराधना की नास्ति है—यह पहला भंग है, देखो! नास्ति है, वह दूसरा भंग हुआ। अस्ति-नास्ति—स्व से निश्चय से है और राग से नहीं, ऐसा एक समय में साथ में अस्ति-नास्ति। अवक्तव्य—एक साथ में दोनों किस प्रकार कहना? स्व से लाभ है और पर से नहीं, अवक्तव्य हो गया। अस्ति अवक्तव्य—स्व से लाभ है और दोनों को एक साथ नहीं कहा जा सकता, इसलिए अवक्तव्य है। अस्ति धर्म की आराधना से लाभ है (और) व्यवहार से नहीं, परन्तु व्यवहार साथ में है और अस्ति-नास्ति एक साथ नहीं कहा जा सकता, इसलिए अस्ति अवक्तव्य हो गया। नास्ति अवक्तव्य—राग से नहीं, उसी समय निश्चय से है, परन्तु एक साथ नहीं बोला जा सकता, इसलिए नास्ति अवक्तव्य हो गया। अस्ति-नास्ति अवक्तव्य सातवाँ भंग—स्व से अस्ति का धर्म है, पर से नहीं, यह अस्ति-नास्ति। दोनों एक साथ नहीं कहे जा सकते, इसलिए अस्ति-नास्ति अवक्तव्य। यह सप्तभंगी है। आहाहा! यह अनेकान्त है। परन्तु इसकी खबर नहीं होती। क्या सप्तभंगी? जैनदर्शन नहीं, वह तो वस्तु का स्वरूप है। एक-एक आत्मा में सप्तभंगी स्वरूप है। सातों धर्म हैं इसके, ऐसा कहते हैं।

प्रवचनसार में अन्त में नहीं लिया? छेल्ला अर्थात् पीछे से, ऐसा। ४७ नयों में। प्रवचनसार, ४७ नय, प्रवचनसार। ... दृष्टान्त धनुष्य-बाण (का दिया है)। **इसीलिए निरवशेषरूप से विराधन छोड़कर...** ऐसा कहा है। आत्मा का आराधन रहित, वह सापराध है, इसलिए उसे **निरवशेषरूप से विराधन छोड़कर...** ऐसा कहा है। राग का भाग बिल्कुल छोड़कर, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसको ऐसा लगे कि अरे! हम गुरु की भक्ति करते हैं और गुरु की कृपा से मुक्ति हो जायेगी। धूल भी नहीं होगी, सुन न! गुरु तो पर है। उसकी ओर की भक्ति का विकल्प तो राग है। बात तो ऐसी है। उसकी नास्ति से और स्वभाव-सन्मुख की अस्ति से धर्म होता है। ऐसा त्रिकाली परम सत्य है।

उसमें आड़ा-टेढ़ा कोई करने जाये तो कुछ होगा नहीं। वस्तुस्थिति ही ऐसी है। आहाहा! समझ में आया?

जो परिणाम 'विगतराध' अर्थात् राध रहित है, वह विराधन है। समयसार की शैली। जो परिणाम अर्थात् वीतरागीदशा। **विगतराध...** (अर्थात्) राधरहित है। वीतराग परिणाम रहित है, वह विराधन है। रागपरिणाम सहित है और वीतराग परिणाम रहित है। आहाहा! सराग और वीतराग—दो, इन दो के अन्दर क्रीड़ा है। सराग परिणाम, वह विराधन है। वह राधरहित है। आत्मा की वीतराग परिणति के सेवन रहित राग का सेवन है, इसलिए वह अपराध है। आहाहा! अपराध है। शुभराग पुण्य के परिणाम वह अपराध है। वीतराग परिणाम की सेवनारहित, विराधनासहित वह अपराध है। वह राधरहित—(आत्मा की) सेवनारहित है, वह अपराध है। वीतराग परिणति की सेवनारहित, रागपरिणति की सेवनासहित, वह अपराध है। पहले श्रद्धा में तो ले, समझण में तो ले। वही बात है, दूसरी है नहीं। आहाहा!

जो परिणाम 'विगतराध' अर्थात् राध रहित है, वह विराधन है। लो। **वह (विराधनरहित—निरपराध) जीव...** लो। यह राग की सेवा बिना का और आत्मा की सेवावाला जीव निश्चयप्रतिक्रमण ही है, **निश्चयप्रतिक्रमणमय है,...** पाठ है न यह? '**पडिकमणमओ**' चौथा पद। इसलिए उसे प्रतिक्रमण कहना, ऐसा। आहाहा! ऐसा का ऐसे वाँचे जाये। समयसार वाँच गये थे पन्द्रह दिन में, (ऐसा) एक व्यक्ति कहे। उसमें क्या दिक्कत है? कहा। एकडिया के क, ख, ग, घ आते हों (तो) ऐसी उसकी पुस्तक गुजराती में लिखी हो तो वाँचे। ऐ, में, म, आ, आ ई... उसमें क्या हुआ परन्तु? शब्द की जोड़नी आती न हो, जोड़नी के बाद अर्थ न आता हो, अर्थ में से कौन सा खोटा अर्थ निकल जाये, यह आता न हो। वाँच गये। ऐसा कहता था कोई। यह महाराज समयसार की बहुत महिमा करते हैं। पन्द्रह दिन में वाँच गया, पन्द्रह दिन में पूरा। नव तत्त्व का अधिकार है न? नहीं, नहीं, सुन न अब! एक आत्मा का ही अधिकार है। आँखों बिना का अन्धा, ऐसे ऐसे देखे न अन्ध? नहीं आता? उभरे हुए अक्षर हों न, वह ऊपर से अनुमान करके इसे 'क' कहा जाता है, 'ग' कहा जाता है। यह भी देखना आया नहीं

इसे तो। कि यह कैसा लेखन है ? व्यवहार का है या निश्चय का है अथवा स्व का है या पर का है ? वाँच गये।

दलपतराम कहते थे। पहले हमारे विद्यालय के समय थे न ? दलपतराम कवि थे। 'वांचे पण नहीं करे विचार, वे समझे नहीं सघणो सार।' दलपतराम थे न। बाद में तो नानालाल और हो गये उनके पुत्र। हम थे और आये थे ९२ में, नानालाल कवि—उनके पुत्र। साठ वर्ष... उनका दूसरा पुत्र बढवाण में वह व्याख्यान में आता था। इससे वर्ष दिन बड़ा था। दरियापरिया... थे न वहाँ आये थे ९० के वर्ष में। यह तो उसके पिता दलपतराम। पहले उस समय कवि दलपतराम 'क.द.डा.' कहते थे। क. द. डा—कवि दलपतराम डाह्याभाई। यह तो ६०-७० वर्ष पहले की बात है, स्कूल में पढ़ते थे न जब (तब की बात है)। 'क.द.डा.' क.द.डा. क्या होगा यह ? क—कवि, द—दलपतराम, डा—डाह्याभाई, ऐसा। यह उसमें पुस्तक में था पहले। 'वांचे पण नहीं करे विचार...' वांचे परन्तु विचार न करे कि यह क्या है ? 'वह समझे नहीं सघळो सार।' कुछ समझे नहीं। मुफ्त में तुम्बी में कंकड़ी। आहाहा! क्या है यह कथन ? यह तो शास्त्र है, सिद्धान्त है। सर्वज्ञ से कहे हुए सिद्धान्त हैं। यह कोई बालबुद्धि के एकड़ा और कक्का नहीं।

'भू-पा' पहले पुस्तक में आवे न ? भू—पानी पा। पानी तो बोल सके नहीं। पानी ऐसा न बोले, 'भू' ऐसा। परन्तु खेंचो तो 'भू' यह पहला अनुकूल शब्द पड़े, इसलिए बालक यहाँ से सीखे। कण्ठ के अक्षर न सीखे, होठ के सीखे। 'भू-पा।' मात्र भू-पाप। बस, यही दो... यहाँ से शुरु करे वह। भू-पा समझते हो ? भू अर्थात् पानी। पा अर्थात् पाव—पिलाओ। जरा शब्द ऐसा न समझ सके पानी। पहले बालक है न ? होठ की आवाज निकालना तो आवे, ऐसा करना तो आवे। 'भू' ऐसा। भू... मात्र होठ को ही ऐसा करना। 'पा'। ऐसा उसे... कोई कण्ठ की, गले की, जीभ की कुछ (आवश्यकता) नहीं। ....है न खबर है। वे लोग इस प्रकार से पाठ में जाये। वह बालक है, इसलिए उसे होठ से शुरु करे। भू-पा, बा, चा, पा। एक-एक अक्षर। वीतराग की निरक्षरी वाणी... एक-एक अक्षरी। बालक को आ, तब महाप्रभु की वाणी ऐसी थी। निरक्षरी... परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतराग केवलज्ञानी की ओम ध्वनि पूरे शरीर में से उठे एकदम इच्छा

बिना। एक ओम में दूसरा नहीं, ऐसा वापस। फिर उसमें गर्भित सब आ जाये सात सौ भाषा और सब।

यहाँ यह कहते हैं, जो जीव विराधन रहित है, अर्थात् कि राग की सेवारहित है और वीतरागस्वभाव आत्मा की सेवा करनेवाला है, वह जीव निश्चयप्रतिक्रमण है। वीतराग परिणति से अभेद हो गया है वह। **निश्चयप्रतिक्रमणमय है,...** निर्विकल्प वीतरागदशा से अभेद है, इसलिए वह निश्चयप्रतिक्रमणमय होने से **इसीलिए उसे प्रतिक्रमणस्वरूप कहा जाता है।** आहाहा! देखो न शैली! आहाहा! केवली की वाणी खोली है न! कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, **वह विराधनरहित...** राधरहित परिणाम वह विराधन है और राधरहित परिणाम से रहित... राधरहित परिणाम से रहित, वह विगतराध (अर्थात्) आराधन—स्वरूप की वीतराग पर्याय, आहाहा! देखो! वीतराग का मार्ग यहाँ से शुरु होता है अर्थात् कि वस्तु का मार्ग अनादि सनातन सत्यस्वरूप, राग के विकल्प का सेवन रहित भगवान आत्मा की सेवना की शुरुआत, वह वीतराग परिणाममय हुआ, इसलिए प्रतिक्रमणमय हुआ, इसलिए उसे प्रतिक्रमण कहा जाता है। आहाहा! ऐसी वस्तु है। ऐसी वस्तु है, बापू! भाई! पहले ख्याल में तो ले। आहाहा!

यह चौथा हुआ। तीसरे पद का (अर्थ) हो गया न, '**सो पडिकमणं उच्चइ पडिकमणमओ हवे जम्हा**' प्रतिक्रमणमय है, इसलिए उसे प्रतिक्रमण कहते हैं। वीतराग-पर्यायमय हो गया, इसलिए वीतरागपर्याय को प्रतिक्रमण कहते हैं। आहाहा! वह कथा-वार्ता मांडे न, ऐई! प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये लोग ऐसे। एक राजा था, एक रानी थी, वह कुपित थी... क्योंकि घर में... रानी कुपित हो तो मनावे, यह सब आता है। ऐसी बातें उसे ठीक लगे। आहाहा! परन्तु वह राजा भगवान वह स्वयं से कुपित होकर राग में सेवे, उसे मना अब, ऐसा कहते हैं। राग का सेवन छोड़कर तेरे स्वरूप का सेवन कर, उसे यहाँ धर्म और प्रतिक्रमण कहा जाता है। आहाहा!

इसी प्रकार (श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत) श्री समयसार में (३०४ वीं गाथा द्वारा) कहा है कि:— लो। '**संसिद्धिराध**' यह सब वीतरागी परिणति आराधन के शब्द हैं। वस्तु सद्बोधात्मकस्वरूप परमतत्त्वज्ञान उसका जो भान और उसकी जो

सेवा—उसके यह सब बोल हैं। **संसिद्धि...** सम्यक् प्रकार से सिद्धि। **राध** = **आराधना।** नीचे यह सब शब्द। **प्रसन्नता...** आहाहा! भगवान आनन्दमूर्ति प्रभु की एकाग्रता, वह **राध** है, वह **आराधना** है, वह **प्रसन्नता** है, वह प्रभु की **कृपा** है। आहाहा! स्वयं प्रभु, हों! पुण्य-पाप के विकल्प से हटकर त्रिकाली सद्बोधस्वरूप भगवान आत्मा की एकाग्रता, वह प्रतिक्रमण, वह **राध, आराधना, प्रसन्नता, कृपा,...** हुई। प्रभु आत्मा की कृपा हुई आत्मा के ऊपर। आहाहा!

लो, उसमें देव और गुरु की कृपा न हो, ऐसा कहते हैं। आता है न! उस देव की कृपा है। ऐई! सुशास्त्र देव से उत्पन्न हुए, उनसे ज्ञान हुआ, इसलिए कृपा का फल—भगवान की कृपा का फल मुक्ति है। सब निमित्त से कथन करे तब... परमात्मा की वाणी उसे निमित्त होती है न? सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा निमित्त होते हैं, इसलिए उसे 'निमित्त की कृपा है' ऐसा कहा। और भगवान के ज्ञान में भी ऐसा आया था कि यह अभी धर्म पाया ऐसा उन्हें उस समय में ज्ञान पहले से आया था अर्थात् उस समय के ज्ञान में भी ऐसा वर्तता है भगवान को, (इसलिए) वह मेरे ऊपर भगवान की कृपा है, ऐसा। आहाहा!

सिद्धि... आत्मा की शान्ति का आराधन विकल्प—रागरहित, उसे सिद्धि कहते हैं, उसे **पूर्णता** कहते हैं, लो। उस आराधना को पूर्णता कहते हैं। है तो अभी साधन। उसे पूर्ण कहते हैं, चल न! पूर्ण भगवान आत्मा को सेवन करे, इसलिए पर्याय को पूर्ण (कहते हैं)। **सिद्ध करना वह...** भगवान आत्मा वीतरागी आनन्द प्रभु की सेवा—एकाग्रता वह **सिद्ध करना**—साबित की उसने बात। जो सिद्ध करना था, उसने किया, ऐसा कहते हैं। साबित करना था वह किया। कहत हैं न, अब साबित कर दे इस बात को, सिद्ध कर दे इस बात को। यह आत्मा के आनन्द का सेवन करके बात सिद्ध कर दी—बात साबित कर दी। आहाहा! **पूर्ण करना वह।** वापस देखा! 'पूर्णता' था न अकेला? पूर्ण करना। वह वीतरागमूर्ति प्रभु, उसकी एकाग्रता, वही पूर्ण करना है। दूसरे में आयेगा उसमें।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल १, शुक्रवार, दिनांक - २३-७-१९७१
श्लोक - ११२, गाथा - ८५, प्रवचन-७४

नियमसार, परमार्थप्रतिक्रमण अधिकार। (गाथा) ८४ का कलश है। अमृतचन्द्राचार्य का कलश है न? **श्री समयसार की (अमृतचन्दाचार्यदेवकृत आत्मख्याति नामक) टीका में भी (१८७वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:—** पृष्ठ १६०।

अनवरत-मनन्तैर्बध्यते सापराधः,
स्पृशति निरपराधो बन्धनं नैव जातु।
नियतमयमशुद्धं स्वं भजन्सापराधो,
भवति निरपराधः साधु शुद्धात्मसेवी॥

श्लोकार्थः—सापराध आत्मा... अर्थात् जो राग और पुण्य के परिणाम जो अशुद्धभाव को सेवन करता है... शुभ-अशुभभाव जो अशुद्ध हैं, उनकी जो एकाग्रता है और उनका सेवन है, वह सापराधी है—वह गुनहगार है। **सापराध आत्मा निरन्तर अनन्त (पुद्गलपरमाणुरूप) कर्मों से बँधता है;...** क्योंकि आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, उसके स्वभाव के भान बिना अनादि से राग की एकताबुद्धि है, वह अपराधी मिथ्यादृष्टि कर्म से बँधता है। इसलिए मिथ्यात्व से लेकर आठों ही... सात (या) आठ कर्म का बन्धन होता है।

निरपराध आत्मा बन्धन को कदापि स्पर्श ही नहीं करता। निरपराध अर्थात् भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूप की सेवा करनेवाला अर्थात् कि निरपराधीस्वरूप की एकाग्रता में है, वह निरपराध परिणामी है। **निरपराध आत्मा...** वस्तु जो आनन्द और ज्ञानस्वरूप, उसका अनुभव करनेवाला, वह वस्तु के स्वभाव को स्पर्शता, अनुभवता, वेदता हुआ वह निरपराधी है। वह बन्धन को कदापि स्पर्श नहीं करता। उसे बन्धनभाव नहीं और बन्धन का कार्य भी नहीं। अबन्धस्वरूपी भगवान आत्मा चैतन्यबिम्ब भगवान, ऐसा द्रव्यस्वरूप अबन्ध, उसकी जिसे एकाग्रता है, वह बन्ध को स्पर्शता नहीं। अबन्ध

को स्पर्शता है तो बन्ध को स्पर्शता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब!

जो सापराध आत्मा... अब स्पष्टीकरण देते हैं। अपराध कहा साधारण। अब अपराधी कहना किसे? **जो सापराध आत्मा है...** है, ऐसा वापस। **वह तो नियम से अपने को अशुद्ध सेवन करता हुआ...** वह 'रागवाला ही आत्मा हूँ, अपवित्र परिणामवाला ही हूँ' ऐसे अशुद्ध को सेवन करता हुआ अपराधी है। बहुत संक्षिप्त बात है। कहो, समझ में आया इसमें? चैतन्य भगवान आत्मा निर्दोष आनन्द और ज्ञानस्वरूप प्रभु की जिसे अन्तर सेवना अर्थात् एकाग्रता है, उसे बन्धन नहीं। परन्तु अपराधी नियम से अशुद्ध सेवन करता है। मिथ्यादृष्टि को ही यहाँ अपराधी लिया है। भगवान आत्मा पवित्र आनन्दघन है, तथापि राग दुःखरूप है, उसकी जिसे एकाग्रता है, सेवना अर्थात् एकाग्रता, वह प्राणी आठों ही कर्मों से बँधता है।

निरपराध आत्मा तो... निरपराधी—निर्दोष स्वरूप की सेवा करनेवाला **भलीभाँति शुद्ध आत्मा का सेवन करनेवाला होता है।** लो, साधु है न। **'साधु शुद्धात्मसेवी'** साधु अर्थात् भले प्रकार से। आहाहा! पूर्ण आनन्दस्वरूप आत्मा की सेवा करनेवाला... किस प्रकार से? शुद्ध आत्मा को सेवन करनेवाला भली रीति से अर्थात् कि अन्तर में एकाग्रता करके, ऐसा। वाणी द्वारा या अकेले जानपने द्वारा नहीं। शुद्ध भगवान आत्मा त्रिकाली पवित्र पिण्ड प्रभु को सेवन करनेवाला निरपराधी है, वह गुनहगार नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? यह बहुत कठिन सूक्ष्म है। वह निरपराधी भगवान प्रभु आत्मा... **शुद्धात्मसेवी** ऐसा कहा है न? शुद्धात्मसेवी, वह अशुद्धात्मसेवी। अज्ञानी राग को सेवन करनेवाला, वह अशुद्ध आत्मा, वह मिथ्यादृष्टि है। ज्ञानी शुद्ध का सेवन करनेवाला वह समकिती, वह निरपराधी है। स्पष्ट बात है। कहो, समझ में आया इसमें?

यहाँ तो कहते हैं... आज प्रतिक्रमण की बात आयी थी न जहर की, उसकी बात है यह सब। दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा, उस भाव का सेवन करनेवाला है, उसमें एकाग्र है, वह मिथ्यादृष्टि है। सम्यग्दृष्टि निरपराधी है। क्यों? वह नित्यानन्द प्रभु आत्मा, उसकी सेवना—एकाग्रता करनेवाला है, इसलिए वह बन्ध को स्पर्शता नहीं और शुद्धात्मा को सेवन करता है। आहाहा! बहुत संक्षिप्त बात! राग की एकताबुद्धि पुण्य की दया-

दान-व्रत-भक्ति की, हों! ऐसा विकल्प है, वह तो राग है। राग की एकता सेवन करनेवाला मिथ्यादृष्टि संसार को बाँधता है, भटकने का बाँधता है वह। आहाहा! और भगवान पवित्र प्रभु शुद्ध आनन्दधाम की सेवा अर्थात् सन्मुख में एकाग्र होने से वह शुद्धात्मा का सेवी निरपराधी है, उसे बन्ध नहीं होकर शुद्धता बढ़ती है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। यह ८४वीं (गाथा में) समयसार का आधार दिया। स्वयं (पद्मप्रभमलधारिदेव) कहते हैं अब।

और (इस ८४वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं):—स्वयं पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि—सन्त जंगलवासी थे, आत्मध्यानी मस्त थे। जिनके मुख में से परम आगम झरता है, वे स्वयं श्लोक कहते हैं।

अपगतपरमात्मध्यानसम्भावनात्मा,
नियतमिह भवार्तः सापराधः स्मृतः सः।
अनवरत-मखण्डाद्वैतचिद्भावयुक्तो,
भवति निरपराधः कर्म-सन्न्यास-दक्षः ॥११२॥

आहाहा! **श्लोकार्थः—इस लोक में जो परमात्मध्यान की सम्भावना रहित है...** भगवान आत्मा परम ज्ञान, आनन्द आदि स्वभाव से सहित है, ऐसा जो परमात्मा स्वयं... देखो! **(अर्थात् जो जीव परमात्मा के ध्यानरूप परिणमन से रहित है...**' पाठ है न? '**परमात्मध्यान**' परमात्म अर्थात् अपना अनादि-अनन्त शुद्ध आनन्दस्वरूप, वह अपना परमात्मस्वरूप है। **इस लोक में जो जीव परमात्मध्यान...** अर्थात् कि राग का ध्यान नहीं, निमित्त का ध्यान नहीं, पर्याय का ध्यान नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! राग में एकता नहीं, निमित्त में एकता नहीं, एक समय की पर्यायबुद्धि में एकता नहीं। आहाहा! जो जीव जगत के अन्दर परमात्म—अपना आत्मा का परमस्वरूप, शुद्ध चैतन्यघन, अनाकुल आनन्द का धाम भगवान पूर्ण, उसकी ध्यान की सम्भावना रहित है (अर्थात्) उसके अनुभव से रहित है, उसके परिणमन से रहित है... आहाहा!

ध्यान की—परिणमन की सम्भावना, है न? सम्यक् प्रकार से एकाग्रता का परिणमन। उस **परमात्मध्यानरूप परिणमित नहीं हुआ है...** चैतन्य के त्रिकाली

आनन्दस्वरूप ऐसा परमस्वरूप जीव का—आत्मा का, उसके परिणमन से परिणमा नहीं। **वह भवार्त जीव...** वह भव में भटकनेवाला जीव... आहाहा! **भवार्त—**भव में दु:खी ऐसा **जीव नियम से सापराध माना गया है;...** अपना परमस्वरूप भगवान आत्मा, राग बिना का, एक समय की अवस्था बिना का—उसके ध्यान के परिणमनरहित जीव, उसे यहाँ अपराधी गिना गया है। आहाहा! यह अपराध की व्याख्या की।

अपना आनन्दस्वरूप है, अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द आत्मा है। ऐसे अतीन्द्रिय आनन्दरूप से जिसका सन्मुख होकर परिणमन नहीं (और) उससे विमुख होकर राग के विकल्प का सेवन है, वह भवार्त जीव है—भव में आर्त—पीड़ित जीव है, भव में कुचला हुआ, पिला हुआ, पीड़ित है। आहाहा! जैसे घाणी में तिल पिले, वैसे ऐसा भवार्त जीव भव में दु:ख से पीड़ित है। आहाहा! **नियम से सापराध माना गया है;...** अर्थात् कि भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु की सेवनारहित है, अर्थात् राग की सेवनासहित है, अर्थात् भवार्त प्राणी है। चौरासी के अवतार में दु:खी हुआ आत्मा है। आहाहा! उसे यहाँ सापराधी गिना गया है।

जो जीव निरन्तर अखण्ड-अद्वैत-चैतन्यभाव से युक्त है,... लो। त्रिकाली आत्मा त्रिकाली अखण्ड अद्वैत एकरूप ऐसा चैतन्यभाव... ऐसा चैतन्यभाव त्रिकाल, उससे जो युक्त है, ऐसे भाव से सहित आत्मा अन्तर में एकाग्र है। **वह कर्मसंन्यासदक्ष...** आहाहा! वह रागादि के परिणाम जो विकल्प (भाव) कर्म जो विकार है, उसके त्याग में वह निपुण हैं। आहाहा! राग के त्याग में वह निपुण हैं, स्वभाव की एकाग्रता में वह निपुण—चतुर है। कहते हैं, **जो जीव निरन्तर अखण्ड-अद्वैत-चैतन्यभाव से...** सहित है। मैं तो त्रिकाल ज्ञायकभाव अद्वैत अखण्ड हूँ, ऐसी जहाँ अन्तर परिणतिसहित है, ऐसा कहते हैं। उसकी निर्मल अवस्थासहित है, **वह कर्मसंन्यासदक्ष...** जो राग के परिणाम, पुण्यादि के असंख्य प्रकार भाव—वे (भाव)कर्म उनके **त्याग में** वह **निपुण** है। आहाहा! देखो! यह राग का त्याग।

परम निरपराधी भगवान स्वरूप जिसका है, उसकी एकाग्रतावाला... यहाँ स्वभाव में एकाग्रता है, इसलिए राग के त्याग में वह निपुण है अर्थात् राग का परिणमन उसे नहीं

है। आहाहा! गजब श्लोक संक्षिप्त और भरपूर—भाव से भरे हुए। प्रभु बड़ा सत् का साहेबा, सत्... सत्... ऐसा त्रिकाली भगवान आत्मा का स्वरूप, उसका सेवन करनेवाला (है वह) रागादि विकारी परिणामरूपी कर्म के त्याग में अर्थात् अभावरूप से परिणमने में समर्थ है। आहाहा! शुद्ध परमस्वभाव में परिणमने में समर्थ है, ऐसे राग के अभावस्वरूप से परिणमन में समर्थ है, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो अब बाहर का त्याग और ग्रहण और सिरपच्ची करके मर जाये बेचारा परन्तु अहो कष्टो, महाकष्टो, लाभो किंचित् नहीं। लाभ कुछ नहीं होता। है लाभ संसार का, भवार्त का है। आहाहा!

मुमुक्षु : लाभ है या अलाभ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : लाभ है भटकने का।

मुमुक्षु : दुःखी होने का लाभ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःखी कहा न! 'भवार्त जीव', ऐसा कहा न, **नियम से सापराध माना गया है;...** आहाहा! ऐसा मार्ग है।

कोई तेरा नहीं, राग का विकल्प भी तेरा नहीं। ऐसा आत्मा अपने परम निज स्वभाव में एकाग्र हुआ उसे, राग के त्याग में चतुर अर्थात् राग के अभावरूप उसका परिणमन है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! बात अभी तो सुनने में आयी नहीं। प्रभु विराजता है न अस्ति तत्त्व, महासत्तावाला तत्त्व चैतन्य भगवान। ऐसे अस्ति के स्वभाव को पकड़कर जो एकाग्र हुआ, उसे राग की नास्ति का परिणमन होता है, अर्थात् राग के त्याग में चतुर है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : हो गया त्याग।

पूज्य गुरुदेवश्री : हो गया त्याग। हो जाता है, परन्तु समझावे क्या? उपदेश में क्या आवे? अस्ति-नास्ति की। आहाहा! परमानन्द प्रभु की सत्ता के सन्मुख आया, महासत्ता के सन्मुख आया, उसे राग के विमुखरूप से परिणमन है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह तो परम सत्य की बात है। आहाहा! दृष्टि का विषय। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। आहाहा! समझ में आया?

पदार्थ है या नहीं आत्मा? वस्तु है या नहीं? वस्तु है, उसका स्वभाव—गुण भी

अनादि-अनन्त है या नहीं ? तो अनादि-अनन्त ऐसा जो ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि स्वभाव और उस स्वभाव का धारक स्वभाववान आत्मा। आहाहा! स्वभाववान—स्वभाव जिसका रूप है, स्वभाव जिसका वान है। आहाहा! ऐसा जो ज्ञानानन्दस्वभाव, आत्मा के सन्मुख की जिसे सेवना है, उसे राग की सेवना नहीं। और जिसे राग की सेवना है, उसे आत्मा की सेवना नहीं। एक राग का कण पुण्यभाव की भी जिसे एकाग्रता और सेवना है, उसे भगवान आत्मा की सेवना नहीं। ऐसी सीधी बात है। आहाहा! वह **जीव निरपराध है।** लो।

मुमुक्षु : ये जो पंच महाव्रतधारी हैं, वे अपराधी हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अपराधी हैं। महाव्रत है, वह मेरा विकल्प है (ऐसा माननेवाला) वह तो अपराधी है। (ज्ञानी को) विकल्प आता है, परन्तु उसका जाननेवाला रहता है। विकल्परूप परिणमन नहीं करता। वीतरागरूप परिणमन मेरा है। यहाँ तो पंच महाव्रत के व्यवहार का ठिकाना न हो, और पंच महाव्रतधारी, वह चारित्र में जाओ। जय णमो लोए सव्व साहूणं। भाई! इसमें तेरी आलोचना नहीं, वस्तु की स्थिति ऐसी है। ठगा जाता है, भाई! ऐसे छूटने के अवसर में तू ठगा जाता है। आहाहा! जिससे छूटना है, उससे मुझे लाभ होगा। प्रभु! उसमें तुझे नुकसान है, ठगा जाता है, भाई! आहाहा!

कल दृष्टान्त नहीं दिया था ? वह चोर का दिया था न! क्या कहलाता है ? चोर का आया था न। नाम आया था ऊपर। 'विचित्र चोर'। यह भी विचित्र चोर है। राग को अपना माने, वह महाविचित्र चोर है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कल एक दृष्टान्त आया है। एक वृद्ध महिला थी। दिखे ऐसा वृद्ध... वृद्ध जैसा दिखाव, परन्तु ... वस्त्र महँगे पहने हुए और गहने पहने हुए। मोटर में आयी। ऊँची मोटर लेकर आवे न! पचास हजार पड़ाना हो, लाख पड़ाना हो, उसमें मोटर लेकर आवे। मोटर लेकर आयी। एक डॉक्टर थे। उन्माद लड़के, उन्माद मनुष्य हो उसकी—उन्माद की दवा करते। वह सब उसकी... आवे।

वहाँ महिला आयी। डॉक्टर को कहे, साहेब! कुछ थोड़ी देर—समय दोगे चर्चा-बात करने का ? हाँ, माँ! बहिन! बड़ा दिखाव अच्छा... मानो कि ग्राहक होगी।

ओ... मेरा नसीब फूटा, पति नहीं मिलता। लड़का इकलौता पागल है, मस्तिष्क फटा है। सब खोटी-खोटी बातें। देखो! किस प्रकार (बात) मिलाती है... लड़का इकलौता और मस्तिष्क फेर (पागल)। कितने ही दिन घण्टे—दो-दो घण्टे बातें करे तो कुछ न लगे। दो-दो महीने तक कुछ न लगे और दो मिनिट बाद बोले कि पचास हजार लाओ, पचास हजार लाओ, पचास हजार लाओ चूको तो चला जाऊँ, पचास हजार लाओ तो चला जाऊँ। ऐसा बोलता है। पचास हजार चुकाओ तो चला जाऊँ, ऐसा बोलता है। लाना यहाँ, बहिन! चार बजे लाना, डॉक्टर ने कहा।

वहाँ से झबेरी की दुकान पर गयी। मोटर रख दी। गहने देखने लगी। गहना ऊँचा था ५३ हजार का। वह झबेरी कहे, ५३ हजार का है। (महिला कहे), पचास हजार में लेना है। क्योंकि वह पचास हजार सीखा है न? पचास हजार में देना हो तो पचास हजार में लूँ। वह फिर कहे, पचास हजार लाओ। मैं यहाँ पैसा लायी नहीं, हों! तुम्हारा एक व्यक्ति भेजो मेरे साथ। हमारे घर में व्यक्ति भेजो, आहिर को भेजो। उसने जवान व्यक्ति भेजा। गया दवाखाने। वह महिला दवाखाने में अन्दर घुस गयी, इसलिए जो लेने आया यह उसको ऐसा लगा कि डॉक्टर की बहू लगती है। इसलिए अब डॉक्टर पैसा देगा। डॉक्टर साहेब! लाओ पैसा, पचास हजार लाओ। वह पचास हजार सीखा था। वह पचास हजार बोलेगा। पागल कहती थी। पचास हजार लाओ... पचास हजार लाओ, पचास हजार लाओ तो झट चला जाऊँ। हाँ, तुझे पचास हजार दूँ। बापू! अभी है नहीं। अभी चैक दूँ। बैठो थोड़ी देर। तुम्हारा ब्लडप्रेशर जाँच करूँ।

ओय माँ! यह क्या? परन्तु ब्लडप्रेशर मैं तो कहाँ... पकड़ा बराबर। उसने—महिला ने कहा था, देखो! जोर करेगा, तूफान करेगा, लड़का पागल है। वापस ऐसी बातचीत करेगो तो चतुर है। जब दिमाग फटे तब फटे। ऐसा सिखाया न। वह तो बाँधने लगा। कुछ यन्त्र रखे होंगे, क्या कि पागलपन कम हो। बाँधने नहीं दिया, जोर किया। दो व्यक्ति आये डॉक्टर के लोग। पकड़ रखा। हाय, हाय! यह क्या? परन्तु पैसा तो दो। परन्तु देते हैं न, अभी चैक देंगे तुमको पचास हजार का। आहाहा! वह महिला तो अन्दर गई, फिर चली गयी घर में। हो गया, पचास हजार के गहने लेकर चली गयी। यहाँ देखे तो लड़के को, हाय.. हाय! क्या हुआ यह? अन्त में डॉक्टर कहे, यह तो सब प्रपंच

(था)। इसी प्रकार यह प्रपंच किया है अनादि से। आहाहा! ....राग करे, पुण्य करे और माने कि उसमें धर्म, उसमें धीरे-धीरे धर्म होगा, हों! धीरे-धीरे होगा। सिखा रखा हो न उसके गुरु ने।

कल नहीं आया था? व्यवहार करते-करते... आया था दोपहर को। मोक्ष अधिकार में आया था। और कल आया वह अलग प्रकार है। 'छोड़कर' ऐसा नहीं आया था, करते-करते... करते-करते क्या आवे? आहाहा! अरे! परन्तु इसने किया है ऐसा, हों! आहाहा! जीव को ठगा है। स्वयं अपने को ठगा है, हों! आहाहा! उसे अवसर मिला छूटने का। भव तो, भव के अभाव के लिये यह भव है। उसके बदले... 'भवार्त' कहा न? राग की एकता में लीनता इससे होगी, धीरे-धीरे व्यवहार करूँगा न, उसमें से निश्चय होगा। लुट गया। आहाहा! अरे! ऐसे अवतार। देह पूरी हो जाती है, स्थिति चली जाती है, मरण के सन्मुख दशा हो रही है और राग में और पर में उत्साह और हर्ष करता है, कहते हैं, वह सापराधी जीव है, हों! आहाहा!

भवार्त—भव में पीड़ित प्राणी है यह, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **भवार्त जीव...** (अपना) ध्यान से नहीं परिणमा प्रभु! तेरा स्वरूप पवित्र और शुद्ध है। उस रूप दशा नहीं, वह भवार्त प्राणी है। आहाहा! राग में पीड़ित दुःखी है, राग स्वयं दुःख है। उस दुःख में एकाग्र होकर मानता है कि मैं कुछ ठीक करता हूँ। ठगा गया है। और ऐसे उसे कहनेवाले उपदेशक भी मिले। हाँ, ऐसा होता है। ऐसे सीधे चढ़ जाते होंगे पढ़े बिना? एकड़ा घूँटे बिना एल.एल.बी. हुआ जाता होगा? आहाहा! भगवान! ठगा जाता है, हों भाई! भगवान आत्मा पवित्र धाम प्रभु, जिसकी सन्मुख की सेवना बिना, उस राग की सेवना से तू कल्याण माने, वह आपराधिक भवार्त पीड़ित—भव में पीड़ित अपराधी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यह संन्यास है। आहाहा! अखण्ड अनन्त चैतन्यस्वरूप भगवान में परिणमनवाला... उसके परिणमनवाला (अर्थात्) उस द्रव्यस्वभाव के निर्मल परिणमन-पर्यायवाला निरपराधी राग के त्याग में चतुर है अर्थात् कि राग का त्याग सहज उसे हो जाता है। आहाहा! उस जीव को निरपराध कहा है। पहले समझण में बात लिये बिना अन्तर्मुख

होने का योग उसे कभी नहीं बनता। सत्य समझण क्या है, उसका जिसे अभी ख्याल नहीं, वह वीर्य अन्तर में कैसे गति करे? देखो! टीकाकार ने भी कैसा लिखा है! भवार्त जीव और वह '**कर्मसंन्यासदक्षः**' आहाहा! यह कहीं वाद-विवाद से (पार) पड़े, (ऐसा नहीं है)। वीतरागमार्ग परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ऐसा फरमा रहे हैं। समवसरण में इन्द्र और गणधरों के समक्ष में ऐसा कहते थे, यह बात यहाँ आयी है। आहाहा!

यहाँ कहा, प्रभु! तेरे घर को स्पर्शे बिना अपराध नहीं टलेंगे। आहाहा! राग को स्पर्शने में निरपराधी नहीं हुआ जायेगा, ऐसा कहते हैं। यह दया, दान के सूक्ष्म विकल्प अन्दर, अरे! गुण-गुणी के भेद का विकल्प, उसे स्पर्शने से निरपराधी नहीं हुआ जायेगा। वह जीव अखण्ड भगवान आत्मा, उसके पक्ष में चढ़ा... 'पडखे' कहते हैं न? क्या कहते हैं? उस ओर। अन्तर में स्वभाव-सन्मुख हुआ, वह निरपराधी है। राग-सन्मुख हुआ, वह सापराधी है। आहाहा! ऐसी बात वीतराग के अतिरिक्त (कहीं नहीं है)। वीतराग कहते हैं कि हमको भजने में तेरा राग तुझे आवे, हों! आहाहा! तुझे (स्वयं को) भजने में वीतरागता आती है। देखो न! यह एक बात कहते हैं। तेरा स्वरूप प्रभु वीतराग है अन्दर, हों! वीतराग अर्थात् दोषरहित—रागरहित। वीत अर्थात् रहित। रागरहित, दोषरहित। ऐसा तेरा स्वरूप ही ध्रुव चैतन्य है। उसकी सेवा से तुझे वीतरागता होगी। आहाहा! हमारी सेवा से, तू पूरे दिन—चौबीस घण्टे रहे तो भी राग होगा। ले! हो भले, परन्तु वह है हेय।

तब बहुत से ऐसा कहते हैं कि तुम ऐसा मानते हो तो फिर ऐसे मन्दिर और पूजा किसलिए लगायी है वापस? ले! वह तो उसके कारण से होते हैं, जड़ की अवस्था होनेवाली हो, वह होती है, वह कोई दूसरा करे, (ऐसा नहीं है)। पुद्गल परावर्तन के परिणमन के क्षेत्र में जहाँ होनेवाला हो वह होता है। हाँ, उसका निमित्त भाववाला—शुभभाववाला जीव हो। अत्यन्त वीतरागता न हो, तब तक ऐसा भाव होता है। धर्मी को होता है, सन्तों को होता है, परन्तु है वह अपराध। उस राग में लाभ है, ऐसा माननेवाला मिथ्यात्वी अपराधी है और यह राग त्यागनेयोग्य है, हेय है, तो भी होता है, तो अस्थिरता का अपराधी है। इतना (अन्तर है)। थोड़ा—अनन्तवें भाग में आता हुआ (राग)।

समझ में आया ? लो, यह ८४ गाथा हुई। यह चौरासी के भवार्त मिटाने के लिये यह बात है। आहाहा!

देखो न! एक समय में देह बदल जाती है, लो। मोहनभाई अभी तो यहाँ आते थे, बैठते थे। मनीष नहीं आया ? वह लड़का है न भतीजा। उसके लिये बहुत... ... गुरुवार को तो यहाँ थे। मंगलवार गये उस भव में। आहाहा! मेरी बदलने की दशा एक समय में रूपान्तर, भव दूसरा, क्षेत्र दूसरा, काल दूसरा, भाव दूसरा। आहाहा! ऐ मलूकचन्दभाई! मलूकचन्दभाई जाते रह गये और। यह बीच में... है या नहीं ? इसलिए तो यही करना चाहिए अब। वे जाते थे हों, तैयारी करके। यहाँ आये थे न अन्त में मंगलवार को... मोटर में। वह व्यवस्थित हो गया वापस। मुख में थोड़ा व्यवस्थित लगता है। बहुत अन्तर नहीं लगता। बहुत अन्तर नहीं लगता। पहले अन्तर था, वह अभी बहुत नहीं लगता। यह शरीर की जड़ की क्रिया है। आहाहा! जो अवस्था जिस काल में, जिस प्रकार से, जिस क्षेत्र में, जिस भाव से होती है वह होनी... होनी... होनी है। उसे बदलने में इन्द्र, नरेनद्र कोई समर्थ नहीं। तू बदल जा। आहाहा! देह और राग की रुचि को बदल दे, बस। तेरे बदलने से सब परिभ्रमण मिट जानेवाला है। आहाहा! ८५ गाथा। यह दो कलश थे, हों! ८४ (गाथा) के। बाकी थे। प्रतिक्रमण कितनी बार... वापस।

मोत्तूण अणायारं आयारे जो दु कुणदि थिरभावं।
सो पडिकमणं उच्चइ पडिकमणमओ हवे जम्हा॥८५॥

प्रतिक्रमणमय होता है, इसलिए उसे प्रतिक्रमण कहते हैं। आहाहा! परिणमन बताते हैं। राग से रहित (और) स्वभाव के परिणमन सहित होता है, इसलिए उसे प्रतिक्रमण करनेवाला या प्रतिक्रमणवाला कहते हैं। आहाहा!

जो जीव त्याग अनाचरण आचार में स्थिरता करे।
प्रतिक्रमणमयता हेतु से प्रतिक्रमण कहते हैं उसे॥८५॥

आहाहा! प्रतिक्रमणमय हो गया है, ऐसा कहते हैं। रागरहित शुद्ध परिणमनमय जिसकी दशा हो गयी है, इसलिए उसे हम प्रतिक्रमण कहते हैं, ऐसा कहते हैं। राग से विमुख होकर अरागी परिणमन हुआ है, आहाहा! इसलिए उसे प्रतिक्रमण कहा जाता

है। गजब बात है! कुन्दकुन्दाचार्य की शैली! सन्तों ने बात तो सब, मुनियों—दिगम्बर सन्तों ने तो सत्य ही कही है चारों अनुयोगों से। इनकी शैली बहुत अद्‌भुत! बहुत अद्‌भुत!

टीका:—यहाँ (इस गाथा में) निश्चयचरणात्मक... निश्चयचारित्रस्वरूप—वीतराग परिणामवाला चारित्र, उस **परमोपेक्षासंयम के धारण करनेवाले को...** वह अपहृत संयम नहीं। अपवाद नहीं, यह तो उपेक्षा, उत्सर्ग। **परमोपेक्षासंयम के धारण करनेवाले को...** राग से भी उपेक्षा करके संयम में स्थिर हुआ है, उसे **निश्चयप्रतिक्रमण का स्वरूप होता है...** लो। उसे सच्चा प्रतिक्रमण होता है।

नियम से परमोपेक्षासंयमवाले को... निश्चय से भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप में स्थिर हुआ, निर्विकल्प उपयोग में रमता हुआ ऐसे संयमवाले को **शुद्ध आत्मा की आराधना के अतिरिक्त...** भगवान पूर्णानन्द और शुद्ध पवित्र की सेवना के अतिरिक्त का **सब अनाचार है;...** पंच महाव्रत और २८ मूलगुण अनाचार है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **'मोत्तूण अणायारं आयारे जो दु कुणदि थिरभावं' 'थिरभावं'** कोई कहे, उसे अनाचार है, परन्तु नीचे (के गुणस्थान में) होवे उसे? क्या कहा? **नियम से परमोपेक्षासंयमवाले को...** वीतराग परिणति से परिणमा है, सप्तम गुणस्थानवाला शुद्धोपयोग में, उसे शुद्धात्मा की आराधना के अतिरिक्त का... चैतन्य भगवान परमानन्द अमृत का सागर, आहाहा! इन्द्रिय के सब विषयों के प्रेम और रुचि से हट गया है। आहाहा! वह उपेक्षा हो गयी न! पाँचों इन्द्रिय के विषय में कहीं सुख नहीं, सब दुःख है। पाँच इन्द्रिय के विषय के झुकाव में दुःख है, उसमें से हट गया है। पंच महाव्रत के परिणाम भी दुःखरूप है। आहाहा! यह कहीं अभी की बात नहीं, यह तो २००० वर्ष पहले का श्लोक (गाथा) है और टीका ९०० वर्ष पहले की। कहो, इसमें सोनगढ़ का कहाँ से आया? ऐसा निश्चय जहाँ आया, वहाँ सोनगढ़ का (कहे)। प्रकाशित चाहे जहाँ प्रकाशित हो। प्रकाशित है कहाँ यहाँ? आहाहा!

यह आगम में नहीं... लिखा है न? लिखा है न किसी नाथूलाल ने। लिखा है एक व्यक्ति ने। सागरवाला, कहाँ का है? निश्चय की जहाँ बात आवे वहाँ ऐसा लगता

है कि यह सोनगढ़ का। बेचारा कोई मध्यस्थता से शास्त्र वाँचता हो, तो भी कहे, यह सोनगढ़ का। इस आगम में सोनगढ़ कहाँ आया? मीठालालभाई! ...कल लेख आया है। यह कहाँ अभी की बात है? यह तो ९०० वर्ष पहले की टीका और २००० वर्ष पहले (की गाथायें हैं)। यह भाव तो अनादि के यही हैं। यह '**मोत्तूण अणायारं आयारे जो दु कुणदि थिरभावं**' वापस ऐसा। स्वयं पुरुषार्थ से यह बात करे, ऐसा कहते हैं। कर्म कुछ मार्ग दे तो स्थिर होता है, यह बात यहाँ है ही नहीं। आहाहा! चारित्र, नहीं? स्थिर-अस्थिर शक्ति। आयी थी न उसमें—उपादान-निमित्त में? स्थिर-अस्थिर शक्ति। अस्थिर हो, स्थिर हो, वह तो स्वयं के कारण से है, पर के कारण से कुछ है ही नहीं। आहाहा! ऐसा भाव अभी जिसे श्रद्धा में रुचे नहीं, व्यवहार श्रद्धा, हों! उसे अन्तर में सम्यग्दर्शन का परिणमन महँगा पड़ेगा, नहीं मिलेगा उसे। समझ में आया?

परमोपेक्षासंयमवाले को शुद्ध आत्मा की आराधना के अतिरिक्त.... अर्थात् कि उसे ऐसा राग होता नहीं, ऐसा कहते हैं। दूसरे को राग हो सकता है (नीचे के) गुणस्थान में, परन्तु वह अपराध है, ऐसा सिद्ध करना है। उसे भी वह अपराध है और इस सातवेंवाले को—परमसंयमवाले को वह अनाचार है अर्थात् कि अभी उसके आचार में यह नहीं। राग का भाव यह ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य—पंचाचार, व्यवहार पंचाचार, वह अनाचार है। प्रवचनसार, उसके प्रताप से... ऐई! ठीक। चरणानुयोग की शैली के कथन इसे भारी पड़े। यह बहुत अच्छा लिखा है। किस अनुयोग में किस नय का कथन है, वह कथन नय को समझकर वाँचना चाहिए। यह निश्चय का अर्थ क्या होगा, वह यहाँ किसी ने नये बनाये हैं? आगम में यह चले आते हैं, अनादि से चले आते हैं। आहाहा! परन्तु लोगों को सच्ची बात आवे न, (इसलिए) ऐसा हो जाता है कि हाय... हाय! तब यह सब नहीं करना? क्या किया? अब सुन न! राग किया तूने और राग में भी वापस एकताबुद्धि और लाभबुद्धि (करके) मिथ्यात्व को सेवन किया है। आहाहा!

अरे! इसे अपनी दया नहीं, हों! अरे! मैं कहाँ जाऊँगा? मेरा क्या होगा? यह चौरासी के अवतार। एक दिन, दो दिन वन में अकेला रहे और कुछ नजर न पड़े। बबूल के काँटे और बबूल के वृक्ष लाखों-करोड़ों। खड़ा हो और उसमें से कुछ पगदंडी

दिखाई दे नहीं (तो) उसे कैसा लगे? कहाँ जाना, कहीं नजर पड़ती नहीं, पगदण्डी मिलती नहीं। लाखों-करोड़ों बबूल, उसमें कोई जा चढ़ा (होवे तो) कितना उलझन में आये। उसमें तो कुछ धूल भी नहीं, कहते हैं। सुन न! यह चौरासी के अवतार की काँटे की जाल में फँस गया है, वहाँ से कैसे निकलना?

मुमुक्षु : संस्कृत टीका में....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सहज टीकाकार है। वह तो उसका है। हिन्दी है। हिन्दी बनाया है न नियमसार भाई शीतलप्रसाद ने। पहले वह बनाया। पहले नियमसार बाहर में नहीं था, वह भण्डार में था। जयपुर में भण्डार में था। एक बार शीतलप्रसाद का चौमासा था वहाँ, तो भण्डार में देखा, तब उन्होंने बनाया हिन्दी। पहले हिन्दी नहीं था। हिन्दी उन्होंने पहले यह बनाया है। यहाँ तो सबकुछ सब देखा है न! पहले यह पढ़ा था। पहले पाठ में से हिन्दी में बनाया। यहाँ गुजराती.... पहले यह बना। बाहर में पुस्तक थी नहीं। श्रीमद् को यह मिला नहीं। श्रीमद् राजचन्द्र को नियमसार और पंचाध्यायी दो पुस्तकें मिली नहीं—मिली नहीं। पंचाध्यायी अभी गोपालदास बरैया से बाहर आयी है। और यह नियमसार शीतलप्रसाद ने (बनाया है)। चौमासा था न, भण्डार में देखा। ओहो! उन्होंने हिन्दी बनाया। यह पुस्तक हजारों प्रकाशित हुई हैं हजारों। ...यह पृष्ठ फट गया लगता है।

यहाँ तो कहते हैं, व्यवहार ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्रासार, वीर्याचार, तपाचार है, वह सब विकल्प है और वह वास्तव में तो अनाचार है। आहाहा! व्यवहार आचार, वह निश्चय से अनाचार है। आहाहा! अरे भगवान! बापू! तेरा स्वरूप है, ज्ञान और आनन्द का भण्डार तू है। उसमें राग-विकल्प है, उसका भण्डार है वह? वह तो विकल्प नया उत्पन्न करता है, उसमें नहीं ऐसी (विपरीतता) उत्पन्न करता है। वह वस्तु में है नहीं। वस्तु तो चैतन्यमूर्ति आनन्द का धाम भगवान आत्मा है। उसकी शरण में जाकर जो स्थिरता हो, वह आचार। इसके अतिरिक्त पर के लक्ष्य से जितने विकल्प उठें, वह अनाचार।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा स्वरूप है, उसे ख्याल में लेना पड़ेगा। आहाहा! चौरासी के अवतार... आहाहा! नहीं, नहीं। अनादि-अनन्त भगवान ने दिव्यध्वनि द्वारा यह कहा है और वह बैठ जाये ऐसा है। ऐसा कुछ... परन्तु लोगों को तकरार—वाद-विवाद ही करना हो तो बापू! वह यह मार्ग नहीं कुछ यह।

नियम से परमोपेक्षासंयमवाले को शुद्ध आत्मा की आराधना के अतिरिक्त... आहाहा! शुद्ध भगवान परम पवित्र द्रव्यस्वभाव की सेवना के अतिरिक्त का **सब अनाचार है;...** आहाहा! व्यवहार के क्रियाकाण्ड के जितने परिणाम, सब अनाचार है। आहाहा! यह वह बात! वीतरागमार्ग में वीतरागभाव ही होता है न! यह तो रागभाव है और रागभाव से धर्म हो, विकल्प की क्रिया से निश्चय हो—ऐसा नहीं होता, भाई! लहसुन खाया हो और डकार आवे कस्तूरी की। लहसुन खाये और डकार आवे कस्तूरी की, बने कभी? लहसुन होता है न? खाये, फिर ओ... कस्तूरी की डकार आयी। आवे कभी? लहसुन में से कहाँ से आवे?

मुमुक्षु : वह गरीब लोगों की कस्तूरी कहलाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह गरीब को... है वह तो सुना है। गरीब की कस्तूरी प्याज कहलावे। लहसुन नहीं, प्याज। लहसुन में इतनी अधिक वह नहीं, प्याज बहुत तीखा। ऐसे काटते हुए आँख में से पानी आवे। एक बार काटने का मौका... एक बार हों, गरियाधार। एक बार वहाँ। प्याल खाते थे वहाँ... इसलिए किसी समय... ऐसे काटते हुए आँख में से पानी आवे। बहुत गरम और बहुत गरम। प्याल का थक्का। खायी तो नहीं, काटा था एक बार। आहाहा! ... आँख में से गरम... गरम... गरम। उसे लोग गरीबों की कस्तूरी कहते हैं। पैसेवाले को यह कस्तूरी है। कुछ दूसरी बात थी, नहीं? दवा में कस्तूरी। फलाने की दवा यह हो गृहस्थों को। गरीबों के लिये यह ठीक है, ऐसा कहकर बहुत सादी.... आयी थी सही कुछ, नाम भूल गये।

इसीलिए सर्व अनाचार छोड़कर... अर्थात् कि व्यवहार के आचरण के विकल्प छोड़कर **सहजचिद्विलासलक्षण निरंजन निज परमात्मतत्त्व की भावनास्वरूप...** आहाहा! परन्तु छोड़कर क्या करना? ऐसा कहते हैं। कि सहजचिद्विलासलक्षण निरंजन निज

परमात्मा—अपना निज परमात्मा, त्रिकाली स्वभाव अविनाशी भगवान आत्मा का परमात्म चिद्विलास... **सहजचिद्विलासलक्षण...** स्वाभाविक ज्ञानविलास का लक्षण-स्वरूप जिसका—भगवान आत्मा का है। स्वाभाविक ज्ञानविलास के लक्षणवाला **निरंजन निज परमात्मतत्त्व...** अंजन रहित—मैल रहित परमात्मा अपना, शुद्ध आनन्दघन भगवान ऐसा जो परमात्मतत्त्व। '**निज परमात्मत्तव**' शब्द प्रयोग किया है। अरिहन्त और सिद्ध नहीं। आहाहा! **निरंजन—**जिसे अंजन नहीं—मैल नहीं, ऐसा निज परमात्म अपना स्वभाव शाश्वत् अनादि उसकी **भावनास्वरूप** (अर्थात्) उसकी एकाग्रतास्वरूप, लो। भावना अर्थात् भावना करना कि ऐसा करो तो ऐसा होगा, ऐसा नहीं। उसकी एकाग्रतास्वरूप।

आचार में... ऐसा एकाग्रस्वरूप आचार में, ऐसा। **जो (परम तपोधन) सहजवैराग्यभावनारूप से परिणमित हुआ स्थिर भाव करता है,...** लो। आहाहा! वह भी सहज वैराग्यभावनारूप से, वापस ऐसा। सहज राग के अभाव-स्वभावरूप वैराग्यभावनारूप से **परिणमित हुआ स्थिर भाव करता है,...** वह निरपराधी है। वह मोक्ष का पंथी है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

नीचे (फुटनोट में)। **सहजचैतन्यविलासात्मक निर्मल निज परमात्मतत्त्व को भाना—अनुभवन करना, वही आचार का स्वरूप है;...** लो, यह आचार। वह यह आचार। नहीं तो आचार तो अथाणा को भी कहते हैं। अथाणा समझते हो? अथाणा—अथाणा, उसको आचार कहते हैं। यह तो निजस्वरूप में अपने परमात्मतत्त्व को भाना—अनुभव करना... ऐसे आचार में जो परम तपोधन स्थिरता करता है, वे स्वयं ही प्रतिक्रमण हैं। प्रतिक्रमण की पर्याय कहीं उसके द्रव्य से भिन्न नहीं है। आहाहा! वीतरागपर्यायरूप से अभेद परिणमा है, उसे प्रतिक्रमण कहा जाता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल २, शनिवार, दिनांक - २४-७-१९७१
श्लोक - ११३-११४, गाथा - ८५-८६, प्रवचन-७५

नियमसार, परमार्थप्रतिक्रमण, ८५ गाथा। प्रतिक्रमण की व्याख्या है। अन्तिम एक लाईन रह गयी है। **कारण कि वह परम समरसीभावनारूप से परिणमित हुआ...** मुनि की मुख्यता से बात है न? आत्मा वीतरागस्वभाव से सहित है, त्रिकाल उसका स्वरूप ही वीतराग है। उसके वीतरागस्वभाव से परिणमन होना... व्यवहार जो आचार के परिणाम जो विकल्प है, वह निश्चय से अनाचार है। उससे रहित शुद्ध ज्ञान, चैतन्य, आनन्द उसरूप परिणमन—अवस्था होना, वह परम समरसीभावनारूप परिणमा है। वीतरागी अवस्थारूप से—दशारूप से होता हुआ सहज निश्चय प्रतिक्रमण है, उसे स्वाभाविक सच्चा प्रतिक्रमण है। लो, यह प्रतिक्रमण की व्याख्या।

मुमुक्षु : परम समरसीभाव अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतरागता, कहा न? परम समरसीभाव। व्यवहार आचार के विकल्प हैं, वह विषमभाव है। व्यवहार प्रतिक्रमण, व्यवहार सामायिक का विकल्प इत्यादि, वह तो अनाचार है, विषमभाव है। आहाहा!

मुमुक्षु : व्यवहार से समन्वय....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार है, वह विषमभाव है।

मुमुक्षु : व्यवहार स्वयं ही विषमभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार स्वयं विषम, रागभाव, उल्टा भाव है। उससे रहित चैतन्य वीतरागस्वरूप वह समरसीभाव से अर्थात् वीतरागभाव से है, ऐसा। समता—अकषायभावरूप से परिणमना—होना, उसे यहाँ निश्चय प्रतिक्रमण कहा जाता है। अब उसका कलश।

अब इस ८५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक

कहते हैं:—पद्मप्रभमलधारिदेव दो श्लोक कहते हैं। ११३ कलश।

अथ निज-परमानन्दैक-पीयूष-सान्द्रं,
स्फुरितसहजबोधात्मानमात्मानमात्मा।
निज-शम-मय-वार्भिर्निर्भरानन्द-भक्त्या,
स्नपयतु बहुभिः किं लौकिकालापजालैः॥११३॥

श्लोकार्थः—आत्मा निज परमानन्दरूपी अद्वितीय अमृत से गाढ़ भरे हुए,.... आहा! भगवान आत्मा अपना परमानन्दरूपी अद्वितीय अमृत... अमृत के आनन्द से गाढ़ भरा हुआ पदार्थ आत्मा है। आहाहा! वस्तु आत्मा पदार्थ, वह अतीन्द्रिय अमृत आनन्द से भरपूर पूर्ण तत्त्व है। आहाहा! ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर **स्फुरित-सहज-ज्ञानस्वरूप आत्मा को...** प्रगट है वह तो, ऐसा कहते हैं। वस्तु तो प्रगट ही है न! ज्ञान और आनन्द से भरपूर पदार्थ प्रगट है। **सहज-ज्ञानस्वरूप आत्मा को...** आनन्द और ज्ञान दोनों लिये। **निर्भर (-भरपूर) आनन्द-भक्तिपूर्वक...** आहाहा! **निर्भर**—भरचक। अतीन्द्रिय आनन्द का धाम भगवान आत्मा और स्फुट—प्रगट ज्ञानस्वरूप आत्मा, उसे **भरपूर आनन्द-भक्तिपूर्वक...** ओहोहो! आनन्द की भक्तिपूर्वक, ऐसा कहते हैं। स्वरूप में अतीन्द्रिय आनन्द है, ऐसी पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द की भक्ति की है उसने। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का भजन। वह अतीन्द्रिय आनन्द, वह पर्याय है।

उस **आनन्द-भक्तिपूर्वक...** आहाहा! विकल्प जो राग है, वह तो आकुलता दु:खरूप है, वह तो दु:ख की भक्ति है। **आनन्द-भक्तिपूर्वक निज शममय जल द्वारा स्नान कराओ;...** आहाहा! कहते हैं कि अतीन्द्रिय अमृतमय आत्मा और ज्ञानस्वभावरूप प्रगट वस्तु, उसे आनन्द की भक्ति से (अर्थात् कि) अतीन्द्रिय आनन्द की दशा से **निज शममय जल द्वारा...** अपनी समतारूप... समता—रागरहित परिणति शुद्ध, ऐसे **जल द्वारा स्नान कराओ;...** आहाहा! भाषा अभी अगम्य जैसी लगे। कभी सुनी न हो। बापू! तेरा मार्ग तो अन्दर अतीन्द्रिय आनन्द से भरचक भरपूर है, आहाहा! उसे आत्मा कहते हैं। विकल्प जो उठे पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत के, वह तो आकुलता है, वह कोई आत्मा नहीं, वह तो अनात्मा है। आहाहा! ऐसा आत्मा है, वह अभी इसने अन्दर कभी दृष्टि में लिया नहीं।

अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति शमजल द्वारा, कहते हैं, स्नान कराओ। वीतरागभाव द्वारा उसे स्नान कराओ कि जिससे उसका मैल टल जाये। आहाहा! भारी भाई निश्चयवाले! उसका कारण कोई व्यवहार-ब्यवहार साधन होगा या नहीं? सीधे ऐसा निश्चय? आहाहा! व्यवहार साधन-बाधन है ही नहीं। व्यवहार तो विकल्प है, शुभराग है, वह तो दुःखरूपभाव है। आहाहा! परमेश्वर का मार्ग सूक्ष्म है। परमेश्वर अर्थात् तू। आत्मा वस्तु है, उसका कोई शाश्वत् अनादि स्वभाव है या नहीं? उसका अनादि स्वभाव अतीन्द्रिय आनन्द और प्रगट ज्ञानस्वभाव, वह उसका अविनाशी स्वरूप है। आहाहा!

उसमें आनन्द-भक्ति से.... ऐसा कहा न? दुःखरूप भक्ति नहीं। आहाहा! भगवान की भक्ति, परमेश्वर की भक्ति, पंच परमेश्वर की भक्ति का राग, वह आनन्द-भक्ति नहीं, वह राग की भक्ति है, वह राग का भजन है। आहाहा! कठिन बात, भाई! प्रभु चैतन्य भगवान... मृग की नाभि में कस्तूरी है, उसकी उसे कीमत नहीं; इसी प्रकार भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ ने प्रगट किया, वह आत्मा, वही आत्मा तू उतना है। आहाहा! निजनिधान में तो, कहते हैं कि अतीन्द्रिय आनन्द और अकेला ज्ञान ही भरा है। ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय अमृत सागर का पूर है। आहाहा! और समरसभाव से—वीतराग परिणति से—स्वसन्मुख की दशा से उसे स्नान कराओ, कहते हैं। परसन्मुख के विकल्प, वे स्वसन्मुख की स्थिरता द्वारा नाश होते हैं। आहाहा! कठिन बात, भाई! वीतरागमार्ग को दुनिया के निकट दूसरे प्रकार से रखा गया है। जो उसका स्वरूप है, उस प्रकार से नहीं रखा गया, इसलिए लोगों को, यह तो निश्चय... यह तो निश्चय—ऐसा हो जाता है। निश्चय अर्थात् सच्चा, निश्चय अर्थात् सत्य, निश्चय अर्थात् परमस्वभावभाव है वह। आहाहा!

वीतरागमार्ग है न यह? वीतरागमार्ग तो अन्दर आत्मा अमृत से भरपूर प्रभु, उसे अमृत अतीन्द्रिय आनन्द का भजन करने से जो अतीन्द्रिय आनन्द की पर्याय प्रगट होती है, उसमें समरस वीतरागता साथ में है, उस द्वारा रागादि का भाव नाश होता है। वह स्वरूप में प्रवेश करता है, तब स्नान किया कहलाता है, राग का स्नान किया (अर्थात्) राग को टाला। आहाहा! **स्नान कराओ।** देखो! मुनि कहते हैं जरा। **बहुत लौकिक आलापजालों से क्या...** लौकिक शब्द से (आशय) व्यवहार। व्यवहार को लौकिक

कहा जाता है। भगवान तीर्थंकर ने कहा, ऐसा व्यवहार, हों! उस व्यवहारनय को यहाँ लौकिक कहा जाता है। उस **लौकिक आलापजालों से क्या प्रयोजन है ?** आहाहा! प्रभु! उसमें तेरा प्रयोजन क्या है? विकल्पों का जाल उठे राग—शुभराग हों, ऐसे शुभराग से तुझे क्या प्रयोजन है? ऐसा मार्ग भगवान का शुरुआत से ही है। आहाहा!

मुमुक्षु : यदि व्यवहार.... विकल्प को....

पूज्य गुरुदेवश्री : उन सबको लौकिक व्यवहार कहा जाता है। लौकिक कहते हैं।

मुमुक्षु : व्यवहार तो सामान्य-विशेष में होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह और पर्याय। यह दूसरी बात। पर्याय विशेष व्यवहार और द्रव्य सामान्य निश्चय। इसके अतिरिक्त का विकल्प व्यवहार, वह असद्भूत व्यवहार। पर्याय, वह सद्भूत व्यवहार। आहाहा! एक समय की—एक समय की निर्मल अवस्था, वह सद्भूत व्यवहार और विकल्प है, वह असद्भूत व्यवहार।

मुमुक्षु : वह दोनों अपने में है, पर में कहाँ व्यवहार आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर में है क्या? अलग बात है। आहाहा! अरे! वीतरागस्वरूप परमात्मा स्वयं ही है। ऐसा भगवान वीतरागमूर्ति उसके सन्मुख होकर (और) रागादि से विमुख होकर स्वरूप में स्थिर करना, इसका नाम धर्म और इसका नाम प्रतिक्रमण है। आहाहा! यह वापस मुड़ा है। उस लौकिकजाल व्यवहार से विमुख हुआ है, ऐसा कहते हैं। अभी थोड़ा सुनना गुजराती। फिर आयेगा। हिन्दी लोग आयेंगे न, फिर हिन्दी चलेगा, हों! हिन्दी आये हैं। अभी तो गुजराती चलेगा। रवि और सोम दो दिन है। मंगलवार को तो है न, क्या कहलाता है तुम्हारा? कक्षा (शिविर)।

यहाँ तो कहते हैं, आहाहा! यह बात इन्होंने स्पष्ट कर दी है, इसलिए दूसरे साधारण को ऐसा लगे, इनकी टीका भारी है। यहाँ तो लौकिक आलापजाल... वह सब विकल्प उठे, वह आलापजाल है। आहाहा! उससे प्रयोजन क्या है? प्रयोजन तो, भगवान वीतरागमूर्ति प्रभु के सन्मुख में लीनता हो, वह प्रयोजन है। आहाहा! जहाँ शरण मिले और शान्ति मिले। स्वरूप शुद्ध में जाये तो शरण मिले और शान्ति मिले। राग में जाये तो अशान्ति मिले। शरण कुछ मिले नहीं। आहाहा! समझ में आया?

आठ-आठ दिन देखो न! शरीर में रहे आठ-आठ दिन, महीना-महीना, बाईस दिन असाध्य। आहाहा! जीवित जागती ज्योति चैतन्य। मरते हुए... बाईस दिन, नहीं? बेचरभाई बाईस दिन। कानजी पानाचन्द की माँ को आठ दिन। कानजी पानाचन्द है न देवळियावाले, कलकत्ता। ऐई मलूकभाई! वाडीभाई को प्रेम हो गया है, हों, अब कि मार्ग यह सच्चा है। यह सेठिया करोड़पति सेठिया वहाँ। जहाँ बाहर से... लगे। सत्य है, वह सत्य त्रिकाल है। असत्य, वह असत्य ही है। आहाहा! देह की क्रिया तो पर है, क्योंकि वह तो जड़ की अवस्था है। वह तो मिट्टी की अवस्था है, जड़ है। परन्तु अन्दर दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का विकल्प भी आस्रव और राग है, उसे यहाँ लौकिक कहा जाता है। आहाहा!

आता है कहीं दूसरा 'लौकिक'? द्रव्यसंग्रह में। इस गाथा का नाम नहीं? व्यवहार कहा लौकिक... 'जलोदित'। वहाँ आया है। हाँ, उसमें कहा है। द्रव्यसंग्रह। व्यवहार है, वह जलोदित है। लौकिक की बात है। द्रव्यसंग्रह। छोटा द्रव्यसंग्रह... परन्तु व्यवहार अर्थात् ही लौकिक है। निश्चय अर्थात् ही लोकोत्तर है। आहाहा! अरे प्रभु! तुझे लौकिक जल्प और विकल्प से क्या प्रयोजन है? आहाहा! **क्या प्रयोजन (अर्थात्) अन्य अनेक लौकिक कथनसमूहों से क्या कार्य सिद्ध हो सकता है?** कहीं कार्य हो, ऐसा नहीं। ११४।

मुक्त्वानाचार-मुच्चैर्जनन-मृतकरं सर्व-दोष-प्रसङ्गं,
स्थित्वात्मन्यात्मनात्मा निरुपमसहजानन्ददृग्ज्ञप्तिशक्तौ।
बाह्याचार-प्रमुक्तः शम-जलनिधिवार्बिन्दु-सन्दोहपूतः,
सोऽयं पुण्यः पुराणः क्षपितमलकलिर्भाति लोकोद्घसाक्षी॥११४॥

उद्घ... उद्घ कहा है न? **उद्घ... उ-द्-घ। उद्घ...** (अर्थात्) उत्कृष्ट। **श्लोकार्थः—जो आत्मा जन्म-मरण के करनेवाले,...** आहाहा! **सर्व दोषों के प्रसंगवाले अनाचार को...** देखो! पुण्यपरिणाम, वह अनाचार है। आहाहा! जगत चिल्लाहट मचा जाता है। **सर्व दोषों के प्रसंगवाले...** राग का... रागभाग तो सर्व दोष का प्रसंग है, उसमें कोई निर्दोष का प्रसंग नहीं। आहाहा! देखो! यह सन्त—दिगम्बर मुनि जगत के समक्ष

सत्य प्रसिद्ध करते हैं। ऐसा सत्य परमेश्वर ने कहा है, वह सत्य हम कहते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

जो आत्मा जन्म-मरण के करनेवाले,... जन्म-मरण को करनेवाले... एक बात। पुण्य का भाव, वह जन्म-मरण का करनेवाला है। व्यवहार आचार, वह जन्म-मरण का करनेवाला है। आहाहा! गजब बात है! और **सर्व दोषों के प्रसंगवाले...** आहाहा! दो। सर्व दोष उसमें से खड़े होते हैं। राग जो है, उसमें से सब दोष खड़े होते हैं। **अनाचार...** ऐसा जो अनाचारभाव (अर्थात्) स्वरूप के आचरणरहित का विकल्पभाव। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, तप का जो विकल्प है, वह सब अनाचार है। सच्ची बात है भाई!

इसे दोषरहित होना है न? दोषरहित होना है तो कहाँ से दोषरहित होगा? दोषरहित ऐसा इसका त्रिकाली स्वभाव है, अर्थात् कि रागरहित उसका स्वभाव है। उसमें जो राग का प्रसंग, वह दोष का प्रसंग है। आहाहा! राग का प्रसंग है, वह दोष का सम्बन्ध है, वह निर्दोष भगवान का सम्बन्ध नहीं। आहाहा! **प्रसंग=संग; सहवास; सम्बन्ध; युक्तता।** लो, जुड़ान। ऐसे **आनाचार को...** मुनि की भाषा देखो! फिर **अत्यन्त छोड़कर....** व्यवहार का जितना विकल्प है, उसका लक्ष्य छोड़ दे, तुझे धर्म करना हो तो।

भगवान आत्मा कैसा है? देखो! **निरुपम सहज आनन्द-दर्शन-ज्ञान-वीर्यवाले आत्मा में...** आहाहा! व्यवहार से बात ली है न? पर की ओर के सम्बन्धवाला राग, चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र के सम्बन्धवाला राग (हो), है तो वह आकुलता। वह अनाचार है। स्वरूप का आचार-आचरण नहीं, वह राग का आचरण है। आहाहा! **छोड़कर, निरुपम सहज आनन्द-दर्शन-ज्ञान-वीर्यवाले आत्मा...** भगवान आत्मा, जिसे उपमा नहीं। उसे उपमा किसकी देना? उसके जैसा वह। सहज, जिसमें सहज अतीन्द्रिय आनन्द है, सहज दर्शन है, सहज ज्ञान है, सहज वीर्य—बल है। ऐसे आत्मा में... स्वाभाविक आनन्द-दर्शन-ज्ञान है, ऐसा आत्मा। शास्त्र से किया ज्ञान, वह आत्मा नहीं, ऐसा कहते हैं। गजब बात है! परलक्षी ज्ञान, वह आत्मा नहीं।

अन्तर के ज्ञान और आनन्द से भरपूर आत्मा में... आहाहा! **आत्मा से स्थित**

होकर,... ऐसा स्वाभाविक उपमा रहित अतीन्द्रिय आनन्द-दर्शन-ज्ञान-वीर्यवाला भगवान, उस आत्मा से अर्थात् निर्विकल्पदशा से स्थित होकर, ऐसा। आहाहा! गजब कलश भरे हैं न! कलश में तो अमृत ही भरा हो न! प्यास लगी हो और मौसम्बी का पानी हो कलश में। लोटा... लोटा कहते हैं न? प्यास लगी हो बहुत, गर्मी हो, ११८ डिग्री धूप हो और उसमें मौसम्बी का पानी लोटा भरकर आया हो, गटक... गटक करे। इसी प्रकार यहाँ कहते हैं, अनन्त काल की तुझे तृषा लगी है। दुःख की (भरमार) थी, उसे छोड़ना हो तो अन्तर आत्मा आनन्द है, उसमें गटक... गटक कर (अर्थात्) अन्दर एकाग्र हो। पुरुषोत्तमजी! ऐसा मार्ग होगा? तो फिर यह व्यवहार क्या किया अभी तक यह सब? यह सिद्धचक्र और अमुक, लो। किया या नहीं अभी? होता है, परन्तु वह शुभभाव है। वह क्रिया है, वह जड़ की है। अन्दर राग की मन्दता का भाव शुभ है, वह पुण्यबन्ध का कारण है।

उसे न भजकर... जिसमें स्वाभाविक निरूपम आनन्द-दर्शन-ज्ञान और वीर्य भरा है, ऐसा प्रभु—ऐसे आत्मा में आत्मा से... राग द्वारा और व्यवहार द्वारा स्थिर होता है, ऐसा नहीं कहा इसमें। आहाहा! एक तो... बैठना कठिन पड़े पहले इसे। क्या कहते हैं यह? भगवान! तू पूर्णानन्द से भरपूर प्रभु है, महादेवाधिदेव है। आहाहा! ऐसा तेरा अन्दर दिव्य स्वभाव आनन्द, वीर्य, ज्ञान से, दर्शन से भरपूर है—ऐसे दर्शन, ज्ञान और आनन्द वीर्य की परिणति द्वारा सिद्ध होकर....

बाह्य आचार से मुक्त होता हुआ,... लो! बाह्याचार अर्थात् विकल्प व्यवहार। ऐसी बात स्पष्ट चुस्त पड़ी है। वाँचे नहीं, विचारे नहीं, बापू! ऐसा अवसर कब मिलेगा? आहाहा! यह तो स्वयं के लिये बात है। यह कहीं.... दुनिया दुनिया की जाने। हित करना हो तो यह है। बीच में राग आवे सही, आवे, परन्तु वह स्वयं आचरणीय निश्चय से नहीं। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द में कहाँ कमी और अपूर्णता है (कि) कुछ पर की शरण ले? आहाहा! ऐसे आत्मा में **बाह्य आचार से मुक्त होता हुआ,...** व्यवहार से पृथक् होकर, ऐसा कहते हैं। आहाहा! '**मोत्तूण**' है न? '**उम्मग्गं परिचत्ता**' यह ८६ में आयेगा। यह तो ८५... '**मोत्तूण**' है न '**मोत्तूण**'। '**मोत्तूण अणायारं**' ८५। आहाहा! कठिन काम लोगों को... यह तो कहते हैं कि एल.एल.बी. की बात है। एम.ए. की बात है,

ऐसा कोई कहे। यहाँ तो प्रथम सम्यग्दर्शन में ऐसी स्थिति होती है, ऐसा कहते हैं। सम्यग्दर्शन, वह व्यवहार के राग का लक्ष्य छोड़कर परमानन्द से भरपूर परमात्मा, उसके अनुभव में आकर प्रतीति करे, उसे सम्यग्दर्शन कहा जाता है। समझ में आया?

आचार से—**बाह्य आचार से मुक्त होता हुआ, शमरूपी समुद्र के जलबिन्दुओं के समूह से पवित्र होता है,...** आहाहा! समता... विकल्प जो आचार था, वह अनाचार, वह विषमता थी। आहाहा! उससे हटकर भगवान आत्मा में... पहले समझ और श्रद्धा में तो बात ले कि मार्ग यह है। इसके अतिरिक्त दूसरा रास्ता नहीं है। तीन काल, तीन लोक में नहीं है। सर्वज्ञ के समवसरण में जाये तो भी यह मिले ऐसा है, दूसरा कुछ है नहीं। ऐसा प्रभु अतीन्द्रिय ज्ञान-आनन्द-वीर्य-दर्शन-सुख से भरपूर, ऐसे आत्मा को, उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा! वापस उसमें राग तो नहीं, परन्तु एक समय की पर्याय भी नहीं।

ऐसे **आत्मा में आत्मा से स्थित होकर,...** आहाहा! यह पर्याय है वापस। ऐसा जो आत्मा, उसमें निर्विकल्प वीतरागी पर्याय से स्थिर होकर... राग से तो अस्थिर होता है। अरे! यह भाव... वहाँ, क्या है यह भाव? उसकी क्या कीमत है? राग की क्या कीमत है? कुछ कीमत नहीं। अनुपादेय फल निपजा, आता है न? राग के परिणाम में अनुपादेय फल (अर्थात्) आदरणीय नहीं, ऐसा फल आया चार गति का, ऐसा कहते हैं। आहाहा! थोड़ा परन्तु सत्य होना चाहिए। मोटा और बड़ा गड़बड़ करे, उसमें कुछ कस हाथ नहीं आता।

भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द से ठसाठस-लबालब भरपूर है। उसके सन्मुख में जाकर वीतराग परिणति द्वारा... आहाहा! **शमरूपी समुद्र के जलबिन्दुओं के...** समतारूपी समुद्र भगवान के जलबिन्दुओं... आत्मा तो शमरूपी महासमुद्र भरपूर है पूरा। उसके जलबिन्दुओं... आहाहा! उसके जलबिन्दुओं थोड़े-वीतराग परिणति से पवित्र होता है। उससे पवित्र होता है। व्यवहार के विकल्प से पवित्र नहीं होता। वह तो स्वयं अपवित्र है। आहाहा! कहो, मनुभाई! सुना है यह? वहाँ कहीं था नहीं। भटकाभटक करे, जहाँ-तहाँ जाये। यहाँ होगा, यहाँ होगा, यहाँ होगा। कहीं वेदान्त में होगा, फलाना में होगा। आहाहा! स्वयं ही तू भरपूर भगवान है, तू स्वयं देवाधिदेव है। आहाहा! ऐसा

भगवान पूर्णानन्द से भरपूर, उसके आनन्द की परिणति द्वारा पवित्र होता है। उस राग की परिणति द्वारा मलिन होता है।

ऐसा वह पवित्र पुराण (-सनातन) आत्मा... लो, अब क्या कहते हैं ? अरे ! पवित्र से भरपूर प्रभु पुराण आत्मा—सनातन आत्मा... यह अनादि का है, यह कहीं नया नहीं। **वह पवित्र पुराण (-सनातन) आत्मा मलरूपी क्लेश का क्षय करके...** आहाहा ! ऐसे राग के परिणाम मैल... देखो ! यहाँ मल कहा उसे। रागरूपी मलरूपी क्लेश। वह पुण्यपरिणाम भी रागरूपी मलरूपी क्लेश है। आहाहा ! उसका **क्षय करके लोक का उत्कृष्ट साक्षी होता है।** उत्कृष्ट साक्षी होता है, ऐसा कहते हैं। सम्यग्दर्शन में साक्षी है, परन्तु वह तो पूर्ण केवलज्ञान पाकर उत्कृष्ट साक्षी होता है। लो, यह निश्चय—सच्चा प्रतिक्रमण। शाम-सवेरे पहाड़े बोले जाये प्रतिक्रमण के। संवत्सरी का दिन हो, हजारों लोग इकट्ठे हों। आलोचना करो, यह करो। परन्तु किसकी ? परन्तु तू कौन है ? कहाँ गया था, वह आलोचना करनी है तुझे ? इसकी तो खबर नहीं होती। यह पुण्य-पाप में गया था, उसकी आलोचना करनी है। उसे परान्मुख करके आत्मा में स्थिर होना, उसका नाम आलोचना है। आहाहा ! लो, ११४ कलश हुआ। ८६वीं गाथा।

उम्मग्गं परिचत्ता जिणमग्गे जो दु कुणदि थिरभावं।
सो पडिकमणं उच्चइ पडिकमणमओ हवे जम्हा ॥८६॥

उन्मार्ग का कर परित्यजन जिनमार्ग में स्थिरता करे।
प्रतिक्रमणमयता हेतु से प्रतिक्रमण कहते हैं उसे ॥८६॥

जिनमार्ग कहो या वीतराग परिणति कहो। आहाहा ! .... हो जाता है, इसलिए वह प्रतिक्रमण कहलाता है, ऐसा कहते हैं।

इसकी **टीका :—यहाँ उन्मार्ग का परित्याग...** वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो मार्ग कहा, उससे जितने उल्टे करनेवाले सब उन्मार्ग हैं। **उन्मार्ग का परित्याग...** करके **और सर्वज्ञवीतरागमार्ग का स्वीकार....** करने में—**वर्णन किया गया है।** सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर ने जो मार्ग कहा सर्वज्ञपद से जाना हुआ... सर्वज्ञ ज्ञान में जानने में आया सब—तीन काल, तीन लोक आया। उनका जो मार्ग, उसका स्वीकार... उन्मार्ग का त्याग और

वीतरागमार्ग का स्वीकार, वह वर्णन किया गया है इसमें। जो कोई **शुद्धनिश्चयसम्यग्दृष्टि (जीव)...** दूसरी लाईन का अन्तिम शब्द। सच्चा—निश्चय—सत्य सम्यग्दृष्टि जीव.... वह शंका को छोड़कर... कैसे होगा मार्ग ? ऐसा होगा या नहीं ? यह शंका समकिती को होती नहीं। आहाहा! निश्चय वीतरागमार्ग है, वही एक सत्य है, बाकी कोई मार्ग (सत्य नहीं)। वीतराग अर्थात् अपना भाव। वीतरागपरिणति जो उत्पन्न हुई वीतरागस्वभाव के आश्रय से, वही वस्तु है। उसमें उसे शंका सम्यग्दृष्टि को होती नहीं। कितने ही ऐसा कहते हैं कि ध्यान करो, फलाना करो। समझे बिना अज्ञानी बातें करते हैं। आँखें बन्द करके ध्यान करो, बस नाचो, कूदो, फलाना करो। देखो न! अभी चला है न ?

मुमुक्षु : नाचे वह ध्यान कहाँ आया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नाचे, ऐसा कि बहुत लीनता हो गयी, इसलिए सब भूल गया। अभी जैन की, उसके तत्त्व की खबर नहीं, उसके घर में रहे न। जहाँ-तहाँ कहे वहाँ चल निकले। रजनीश आता है न तुम्हारे वहाँ मुम्बई। अठारह दिन का है वहाँ बड़ा तूफान। जैन में जन्मे, स्थानकवासी, मन्दिरमार्गी या दिगम्बर, नाम धरावे, वस्तु की खबर नहीं। नाचे ऐसा... 'नाचने का' आया था पत्र में, हों! कि नाचने का... वह बाजीगर भी करता है। यह तुम क्या करते हो धर्म के नाम से ? ऐसा आया था।

मुमुक्षु : इन्द्र ने तो ताण्डव नृत्य किया....

पूज्य गुरुदेवश्री : ताण्डव... परन्तु वह तो परमात्मा के समक्ष भक्ति है। वह ताण्डव की क्रिया तो जड़ की है, अन्दर शुभभाव...

यह रजनीश है न, उसे यों ही मानते हों बहुत... जादूगर है, हमारे भाई कहते थे। के. लाल है न एक बड़ा जादूगर ? तुम्हारे वहाँ कलकत्ता में उसकी दुकान है न ? के. लाल। आया था। कान्तिलाल। अभी आया था, वहाँ था। हम राजकोट थे, वहाँ था। १६ दिन वहाँ था। फिर आया था अन्त में दर्शन करने। २० मिनिट बैठा था हमारे पास। अभी राजकोट थे न तब। पहले भी आया था यहाँ। आकर बोला, महाराज! हमारा सब ढोंग है, हों! ....लाखों रुपये पैदा करता है। अभी परदेश में जायेगा, कितने ही लाख लायेगा। वहाँ से भुज में गया था। तीन वर्ष परदेश में रहा सही न। परदेश के लोग पागल हो जाये

हमको देखकर, ऐसा जादूगर, वह तीन घण्टे के पाँच लाख दिये थे सरकार ने। बतावे... क्या कहलाता है वह? टेलीविजन। तीन घण्टे बताया था। पाँच लाख। बहुत पैसा पैदा करता है। उसे हाथचालाकी.....

परन्तु स्वयं कहता था बेचारा, महाराज! हमारा ढोंग है, हों! अभी राजकोट थे न, कौन सा महीना? वैशाख। वैशाख शुक्ल दूज के बाद निकले। वह कहता था रजनीश का (कि) दो वर्ष से वह जादूगरी सीखा है। जादूगर है, दूसरा कुछ नहीं। बाहर में त्यागी है इसलिए (उसकी) शक्ति माने। हम स्त्री-पुत्रवाले, इसलिए हमारी हाथ चालाकी माने। (उसे) पुस्तक दी थी (कि) यह वाँचो, यह समझो। कहा, तुम्हारा पुण्य जल जाता है। पूर्व के पुण्य से सब लाखों की आमदनी। महीने में लाखों की आमदनी, हों! कहा, यह तो पूर्व का पुण्य है, इसलिए आता है। पुण्य जल जाता है, कहा। हमारे पास क्या कहे दूसरा? आहाहा!

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा हुआ जो आत्मा का मार्ग, उसमें सम्यग्दृष्टि को कहीं **शंका** नहीं होती कि इसमें कुछ होगा, फलाने में होगा। शंका नहीं होती। शंका को छोड़ दे। आहाहा! **कांक्षा** नहीं होती—कुछ भी इच्छा नहीं होती। धर्मी को तो पुण्य की भी इच्छा नहीं। आहाहा! अन्य धर्म पाखण्ड बहुत चलते हैं, उसमें कहीं इच्छा समकिती को नहीं होती। एक सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर ने कहा हुआ मार्ग, ऐसा समकिती को अन्दर बैठा होता है। समझ में आया? और कांक्षा छोड़कर **विचिकित्सा...** अरे! ऐसा करते हैं तो भी क्यों नहीं फलता? यह ग्लानि छोड़कर। **अन्यदृष्टिप्रशंसा और अन्यदृष्टि-संस्तवरूप...** यह मिथ्यादृष्टि का परिचय छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। वीतराग सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा का कहा हुआ एक यह दिगम्बर धर्म, यह एक ही वीतराग ने कहा हुआ मार्ग है। समझ में आया? इसके अतिरिक्त वीतराग ने कहा हुआ दूसरा कोई मार्ग है ही नहीं। अन्यदृष्टि का—मिथ्यादृष्टि का परिचय छोड़ दे। मिथ्यादृष्टि की स्तुति छोड़ दे। ओहो! तुमने बहुत त्याग किया, हों! बहुत इतने उपवास किये। मिथ्यादृष्टि का त्याग (प्रशंसा करना), वह मिथ्यात्व का पोषण है। समझ में आया?

धर्मी जीव ऐसे कुमार्ग की स्तुति भी न करे। **मन से मिथ्यादृष्टि की महिमा करना,**

वह अन्यदृष्टिप्रशंसा है... कुछ होगा परन्तु। नागा बाबा घूमते हैं जंगल में। आधा-एक रुपयाभार कन्दमूल खाकर महीना चलाते हैं आहार और पानी के बिना। क्या है ? सब अज्ञान है। भगवान आत्मा एक समय में अनन्त गुण का राशि—पिण्ड प्रभु, उसके अन्तर के भान बिना यह सब क्रियाकाण्ड मिथ्या है। **मन से मिथ्यादृष्टि की महिमा करना,...** ओहो! कितना काम करते हैं, देखो न! लाखों-करोड़ों लोगों को मोड़ते हैं, ऐसा करते हैं। धूल भी नहीं, सुन न अब! **मिथ्यादृष्टि की महिमा के वचन बोलना, वह अन्यदृष्टिसंस्तव है।** वाणी से महिमा करना। क्या एक ही मार्ग तुम्हारा सच्चा ? तुम्हारा नहीं, इस आत्मा का। यह एक ही मार्ग सच्चा है। इसके अतिरिक्त कोई मार्ग जगत में सच्चा कहीं है ही नहीं। इन्द्र डिगाने आवे तो समकिती डिगता नहीं। समझ में आया ?

है न अन्दर, देखो न! ऐसे **अन्यदृष्टिप्रशंसा... मलकलंकपंक...** मल-कलंक-पंक... यह मैलरूपी कलंक का कादव है सब। उससे **विमुक्त (-मलकलंकरूपी कीचड़ से रहित)...** अभी समन्वय चलता है न! बहुत से समन्वय करते हैं। ऐई ईश्वरचन्दजी! यह भी सच्चा, यह भी सच्चा, थोड़े प्रतिशत सच्चे कहीं—ऐसा करके समन्वय करते हैं। यह समन्वय, वीतरागमार्ग के साथ किसी का समन्वय नहीं होता। नेतर की छाल और सूत का डोरा दोनों को बुनने लगे तो डोरी होगी या नहीं ? डोरी। नेतर की छाल आती है न ? छाल उतारे, वह कठिन होती है, सीधी ही रहती है। और डोरी। डोरा बनाने जाये तो डोरा होगा ही नहीं। वल खाये ही नहीं। इसी प्रकार सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग ने कहा हुआ, कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा हुआ, इस मार्ग का जिसे अन्तर अनुभव में प्रतीति हुई है वह, कहते हैं कि यह सब मलकलंक से विमुक्त है। कहीं भी स्वप्न में भी उसे ऐसा नहीं आता कि कहीं होगा। अन्यत्र होगा ? समझ में आया ?

ऐसे **शुद्धनिश्चयसम्यग्दृष्टि (जीव) बुद्धादिप्रणीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्रात्मक मार्गाभासरूप...** यह क्यों लिया ? कि वह व्यवहार लेना है वापस इसमें। जैनदर्शन का व्यवहार और निश्चय—दोनों लेना है, इसलिए इसे विपरीत में यह डाला। बुद्धादिप्रणीत दूसरे... बौद्ध... बौद्धधर्म का कहा हुआ मार्ग अत्यन्त झूठा है। बौद्ध है न बौद्ध। बड़ा पंथ है अभी चीन में। आबादी ही उसकी अभी अधिक है, सब प्रजा में। बौद्ध, वेदान्त, वैशेषिक, सांख्य (आदि) का कहा हुआ **मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्रात्मक**

मार्गाभास... मार्ग नहीं, परन्तु मार्ग का आभास। मिथ्या (मार्ग)। आहाहा! यह तो जैन में जन्मा हो उसे खबर नहीं होती। सम्प्रदाय का व्यवहार, हों! निश्चय तो एक ओर रहा। वह जहाँ-तहाँ देखे कुछ त्याग और पीले वस्त्र और लाल वस्त्र। जय नारायण, चलो। कहते हैं, वीतराग सर्वज्ञ का तत्त्व जो आत्मा, वह वस्तु एक ओर अनन्त गुण और अनन्त उसकी पर्याय, ऐसा तत्त्व है, वह जैन वीतराग के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं होता। ऐसा जिसे अन्तर में बैठा है, उसने यह शंका-कुशंका छोड़ी है और यह बुद्धादिप्रणीत धर्म को—उन्मार्ग को परित्याग किया है।

सब उन्मार्ग हैं। वेदान्त आदि सब एक ही आत्मा माननेवाले हैं, विज्ञान आदि जड़ ही अकेला माननेवाले, या जगत का कर्ता कोई है, ऐसा माननेवाले। ईश्वर कर्ता हो न? वस्तु हो, उसका कर्ता तो होगा या नहीं? परन्तु है, उसे करे कौन? है अनादि से वस्तु। आत्मा है, जड़ है, अनादि-अनन्त है। करे कौन? ऐसे सब कर्ता माननेवाले मार्गाभास... ऐसा उन्मार्ग, उसे छोड़कर... क्या करे? वस्तु में यह चीज़ है कहाँ? बड़े विद्वान घूमे और लाखों लोगों का रंजन करे और... सब मार्गाभास है। आहाहा! यह तो मार्ग तो किसी के कान में पड़े, ऐसा मार्ग है। 'विरला जाने तत्त्व को, विरला सुने कोई।' आता है न, स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में आता है। आहाहा!

परमेश्वर ऐसा आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर ने प्रगट किया पर्याय में—अवस्था में, ऐसा प्रत्येक आत्मा है। ऐसा आत्मा अन्तर में अनुभव में जिसे बैठा, कहते हैं कि उसे शंका-कुशंका मल का त्याग होता है और उन्मार्ग का परित्याग होता है। लो, इसमें भी विमुक्त कहा है। विमुक्त है (अर्थात्) विशेष मुक्त है। वह परित्याग है। वह सब एक ही है। विमुक्त और परित्याग। 'विशेष' उत्सर्ग किया न? **उन्मार्ग का परित्याग करके,...** स्वप्न में भी उसे बैठे नहीं। कोई माननेवाला न निकले, इससे कहीं सत्य दूसरा हो जाये, ऐसा नहीं है। इसे थोड़े माननेवाले हैं (इसलिए खोटा) और इसको बहुत माननेवाले हैं इसलिए सच्चा—ऐसा नहीं है। सत्य को संख्या की आवश्यकता नहीं है। सत्य को सत् के स्वभाव की आवश्यकता है। आहाहा! समझ में आया? बड़े-बड़े विद्वान मानते हैं, ऐसे मानते हैं। मूर्ख सब जगत में बहुत हैं। कुछ भान नहीं होता।

कहते हैं कि **बुद्धादिप्रणीत...** आदि है न? बौद्ध, वेदान्त, वैशेषिक, सांख्य, मीमांसक आदि सभी मत। एक सर्वज्ञ परमेश्वर ने आत्मा का जो मार्ग कहा, उसके अतिरिक्त सभी मार्ग विपरीत हैं। उनकी श्रद्धा, उनका ज्ञान और उनका चारित्र मार्गाभास है। ऐसे **उन्मार्ग का परित्याग करके,...** है न, पाठ में है न? **'उम्मग्गं परिचत्ता जिणमग्गे जो दु कुणदि थिरभावं'** ऐसा है, लो। अब कहते हैं, व्यवहार और निश्चय दोनों होते हैं। ऐसा सहित लेकर निश्चय से अकेला उसे कहेंगे। यहाँ मुनि की मुख्यता से बात है न?

व्यवहार से पाँच महाव्रत,... उसके विकल्प होते हैं। स्वरूप में स्थिर नहीं रह सके, तब उसे छठवें गुणस्थान में नग्नदशा, अन्तर में छठवीं भूमिका होती है, उसे पंच महाव्रत का विकल्प होता है। **पाँच समिति...** होती है। देखकर चलना, विचारकर बोलना, निर्दोष आहार-पानी (ऐसा) विकल्प। उसके लिये पानी की एक बूँद की हो या चौका करके (आहार बनाया हो) ले, ऐसा व्यवहार मुनि को नहीं होता। उसे मुनि नहीं कहते। **पाँच समिति...** ईर्या, भाषा, ऐषणा इत्यादि। यह सब व्यवहार है। **पाँच इन्द्रियों का निरोध...** २८ मूलगुण है न? **छह आवश्यक...** सामायिक, चोविसंथो, वन्दन, प्रतिक्रमण और कायोत्सर्ग तथा प्रत्याख्यान। **इत्यादि अट्ठाईस मूलगुणस्वरूप...** लो। इत्यादि में खड़े-खड़े आहार करना, अदन्तधोवन इत्यादि (आते हैं)। **अट्ठाईस मूलगुणस्वरूप महादेवाधिदेव-परमेश्वर-सर्वज्ञ-वीतराग के मार्ग में...** ऐसे सहित **स्थिर परिणाम करता है,...** ऐसा कहते हैं। ऐसे परिणाम हों, वह उसे स्वरूप में स्थिर करते हैं, ऐसा व्यवहार से कहते हैं।

और शुद्धनिश्चयनय से सहजज्ञानादि शुद्ध गुणों से अलंकृत,... लो! उस व्यवहार को जरा कहा है। शुद्ध निश्चय से तो सहजज्ञान—स्वाभाविक अन्तरज्ञान, स्वाभाविक अन्तर दर्शन, आनन्दादि शुद्ध गुणों से शोभित ऐसा जो भगवान आत्मा **सहज परम चैतन्यसामान्य तथा (सहज परम) चैतन्यविशेषरूप जिसका प्रकाश है,...** वह आत्मा—निज परमात्मद्रव्य कैसा है, ऐसा कहते हैं। उसमें स्थिर होना, वह सच्चा प्रतिक्रमण है। **सहजज्ञानादि शुद्ध गुणों से अलंकृत, सहज परम चैतन्यसामान्य...** (अर्थात्) दर्शन। परम चैतन्य सामान्य दर्शनस्वभाव, **(सहज परम) चैतन्यविशेष...** (अर्थात्)

ज्ञानस्वभाव। ऐसा भगवान आत्मा जिसका प्रकाश है, **ऐसे निज परमात्मद्रव्य में...** अपना परम स्वरूप ऐसा पदार्थ भगवान आत्मा **शुद्धचारित्रमय स्थिरभाव करता है,...** लो, यह निश्चय से आया। वह व्यवहार से था। अन्तर स्वरूप में अमृत से भरपूर भगवान में जो स्वरूप में स्थिर करता है—स्थिर होता है, उसे सच्चा प्रतिक्रमण होता है, लो।

कोष्ठक में। **(अर्थात्) जो शुद्धनिश्चय-सम्यग्दृष्टि जीव व्यवहार से अट्ठाईस मूलगुणात्मक मार्ग में निश्चय से शुद्ध गुणों से शोभित दर्शनज्ञानात्मक परमात्मद्रव्य में स्थिरभाव करता है, वह मुनि निश्चय प्रतिक्रमणस्वरूप कहलाता है,...** वह भाव निश्चय है न, इस अपेक्षा से उसे निश्चयप्रतिक्रमण कहा जाता है। व्यवहारसहित निश्चय लिया है। वह **निश्चय प्रतिक्रमणस्वरूप कहलाता है, कारण कि उसे परमतत्त्वगत निश्चयप्रतिक्रमण है,...** ऐसा। ऐसे अभेद परिणतिवाले को परमतत्त्वगत **(-परमात्मतत्त्व के साथ सम्बन्धवाला)...** भगवान पूर्णानन्दस्वरूप के साथ सम्बन्धवाला.... **निश्चयप्रतिक्रमण है, इसीलिए वह तपोधन सदा शुद्ध है।** इसीलिए वह तपोधन सदा शुद्ध है। स्वरूप में निर्विकल्प आनन्द की परिणति है, इसलिए वह सदा शुद्ध है। व्यवहार के विकल्प भले हो। यह तो बात कही (कि) ऐसा व्यवहार उसे होता है निमित्तरूप से, परन्तु शुद्धता तो इसके कारण से है। उसे यहाँ सच्चा प्रतिक्रमण है (अर्थात्) मिथ्यात्व से हटा है, व्यवहार आचरण से हटा है और स्वरूप में लीन होकर शुद्ध वर्तता है, उसे सच्चा प्रतिक्रमण होता है। लो, उसे मुनि कहा जाता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल ३, रविवार, दिनांक - २५-७-१९७१
श्लोक - ११५, गाथा - ८७, प्रवचन-७६

यह नियमसार, परमार्थ प्रतिक्रमण (अधिकार)। सच्चा प्रतिक्रमण किसे कहना? ८६ गाथा हुई, उसका कलश है।

इसी प्रकार श्री प्रवचनसार की (अमृतचन्द्राचार्यदेवकृत तत्त्वदीपिका नामक) टीका में (१५वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:— पृष्ठ १६४।

इत्येवं चरणं पुराण-पुरुषैर्जुष्टं विशिष्टादरै-
रुत्सर्गा-दपवादतश्च विचरद्वह्वीः पृथग्भूमिकाः।
आक्रम्य क्रमतो निवृत्ति-मतुलां कृत्वा यतिः सर्वत-
श्चित्सामान्यविशेषभासिनि निजद्रव्ये करोतु स्थितिम्॥

श्लोकार्थः—इस प्रकार विशिष्ट आदरवाले पुराण पुरुषों द्वारा... विशिष्ट **आदर अर्थात् काळजीवाला, सावधान, प्रयत्न और बहुमानवाला...** पुराण पुरुष ने... अनादि सनातन वीतराग का मार्ग, उसे जिसने सेवन किया, ऐसे पुरुष ने **सेवन किया गया, उत्सर्ग और अपवाद...** अपना मेल करते हैं न। वह व्यवहार डाला है न टीका में, इसलिए उसके साथ (मिलान करते हैं)। व्यवहारमार्ग पंच महाव्रतादि, निश्चयस्वरूप आत्मा के आनन्दस्वरूप में लीनता, उस निश्चय सम्यग्दृष्टि को... देखो! वहाँ छठवें गुणस्थान में सम्यग्दर्शन निश्चय लिया है। शुद्ध कहो या निश्चय—एक ही है। शुद्ध निश्चय सम्यग्दृष्टि। कोई कहता है न कि निश्चय सम्यग्दर्शन तो आठवें में होता है, बारहवें में होता है। यहाँ तो छठवें में कहा। यह कल वाँचने के बाद रास्ते में विचार आया था। आत्मा आनन्दस्वरूप शुद्ध चैतन्य के अन्दर में रमणता, वीतरागता, वह निश्चय प्रतिक्रमण है। उसके साथ पंच महाव्रतादि २८ मूलगुण का विकल्प होता है, तो वह अपवादिक है और वह जो स्थिरता अन्तर में, वह उत्सर्ग है। अन्तर में स्थिरता, वह निश्चय है; पंच महाव्रत का भाव, वह व्यवहार अपवाद है। अरे! भाषा सब ऐसी है।

चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा हुआ, परमात्मा ऐसा जो त्रिकाल आनन्द, ध्रुव, उसकी अन्तर सेवा—अन्तर एकाग्रता, वह पर्याय है। अन्तर के आनन्द की एकाग्रता है, उस दु:ख और राग से विमुख हो गया है और आनन्द में रमता है, इसलिए उसे प्रतिक्रमण कहा जाता है। ऐ लड़कों! अलग-अलब बैठ जाओ। सब बातें करते हो यहाँ। अलग-अलग बैठ जाओ। खड़े हो जाओ यहाँ से। क्या कहा? देखो! यहाँ मुख्य मुनिपने की अपेक्षा से बात चलती है। सम्यग्दृष्टि को मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण होता है। मिथ्यात्व अर्थात्? पुण्य में धर्म होता है, पाप में मजा है, पर का कर सकता हूँ—ऐसी जो मिथ्यात्व मान्यता, उसका प्रतिक्रमण तो स्वभाव की अन्तर अनुभव की दृष्टि करे, वह मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण होता है। समझ में आया?

भगवान आत्मा पूर्णानन्द सच्चिदानन्द शुद्ध चैतन्यमूर्ति। आहाहा! उसका अन्तर में आश्रय लेकर और अनुभव में स्थिर हो, उसे सम्यग्दर्शन होता है, यह मिथ्यादर्शन का उसे प्रतिक्रमण कहलाता है। समझ में आया? आगे जाकर विशेष आनन्दस्वरूप में स्थिर हो, वीतराग परिणति उग्ररूप से बढ़ जाये, उसे निश्चय साधुपना अथवा प्रतिक्रमण कहते हैं। उसे व्यवहार जो अस्थिरता रागादि महाव्रतादि के परिणाम (होते हैं), वह आचार नहीं, परन्तु वह अनाचार है। उससे हटकर आनन्दस्वरूप में रमे, उसे सच्चा आचार और प्रतिक्रमण कहा जाता है। उसे व्यवहार होता है। वीतराग सर्वज्ञ ने कहा हुआ २८ मूलगुण का विकल्प होता है, परन्तु वह व्यवहार है, अपवाद है। व्यवहार से आचार है, निश्चय से अनाचार है। और निश्चय से आचार, ज्ञान और आनन्द में प्रचुर स्वसंवेदन—वेदन होकर आनन्द की मौज में—लीनता में रहना, उसे वास्तव में आचार और निश्चय प्रतिक्रमण कहा जाता है।

उसे, कहते हैं, **विशिष्ट आदरवाले पुराण पुरुषों द्वारा सेवन किया गया,...** महासन्तों, धर्मात्मा अनादि से चले आते हैं। वीतरागमार्ग में अनादि के आत्मा के स्वरूप में रमते... **पुराण पुरुषों द्वारा सेवन किया गया,...** देखो! अनादि धर्मात्मा ने आनन्द को सेवित। आहाहा! पुण्यादि के परिणाम, वे दु:खरूप हैं, उनमें से हटकर आनन्दस्वरूप में पुराणपुरुष अनादि के रमते थे, ऐसा जो मुनिपना, ऐसा कहा, **उत्सर्ग और अपवाद द्वारा...** उत्सर्ग अर्थात् निश्चय। वीतरागस्वभाव की परिणति, वह निश्चय। स्वद्रव्य के आश्रय

से प्रगट हुई वीतरागदशा, वह निश्चय। उत्सर्ग कहो या निश्चय कहो, वीतराग कहो या निश्चय कहो। अपवाद कहो या रागवाला कहो। पंच महाव्रत के परिणाम आदि सब रागवाले हैं, विकल्प है। आहाहा! ऐसे **द्वारा अनेक पृथक्-पृथक् भूमिकाओं में व्याप्त...** किसी समय छठवें के विकल्प में होते हैं और किसी समय छठवाँ विकल्प छूटकर सातवें (गुणस्थान) में निर्विकल्प में होते हैं। ऐसी पृथक्-पृथक् भूमिका... निर्मलता के अंश भी बढ़ते हैं और राग की परिणति भी घटती जाती है।

ऐसी **अनेक पृथक्-पृथक् भूमिकाओं में व्याप्त जो चरण (-चारित्र) उसे यति प्राप्त करके,...** निश्चयप्रतिक्रमण का अधिकार है न! स्वरूप में रमणता को प्राप्त करके **क्रमशः अतुल निवृत्ति करके,...** क्रम-क्रम से उस राग से छूटकर... अपवादमार्ग जो व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प था, उससे छूटकर—क्रम-क्रम से हटकर, **अतुल निवृत्ति करके,...** आहाहा! भगवान आत्मा अपने स्वरूप में उपमा नहीं, ऐसी निवृत्ति करके—अतुल निवृत्ति करके... उसकी तुलना क्या! आहाहा! पूर्णानन्द में रमण, निजानन्द के स्वरूपाचरण की स्थिरता, वह अतुल निवृत्ति, उसका नाम मोक्ष का मार्ग है। आहाहा!

चैतन्य सामान्य और चैतन्यविशेषरूप जिसका प्रकाश है,... यह अमृतचन्द्राचार्य का कलश है प्रवचनसार का। चैतन्यसामान्य अर्थात् दर्शन और चैतन्यविशेष अर्थात् ज्ञान। दर्शन और ज्ञान जो आत्मा का प्रकाश है। भगवान आत्मा का तो दर्शन और ज्ञान प्रकाश है। पुण्यादि की क्रिया, वह चैतन्य के प्रकाश की क्रिया नहीं, ऐसा कहते हैं। पंच महाव्रत के परिणाम, २८ मूलगुण का विकल्प, वह चैतन्य का प्रकाश—दर्शन और ज्ञान प्रकाश—उसके वह परिणाम नहीं। आहाहा! **चैतन्य सामान्य और चैतन्यविशेषरूप जिसका प्रकाश है, ऐसे निजद्रव्य में...** अपना तत्त्व कैसा है? कहते हैं। निजद्रव्य अर्थात् वस्तु, जिसमें दर्शन और ज्ञान प्रकाश है, ऐसा निजतत्त्व। जिसमें दर्शन सामान्य और ज्ञान विशेष—ऐसा जो वस्तु उसका वह प्रकाश है। ऐसे निजद्रव्य में **सर्वतः स्थिति करो।** व्यवहार अपवादिक विकल्प पंच महाव्रत से भी छूटकर अन्तर में स्थिर काल होओ, इसका नाम मोक्ष का सच्चा—निश्चय—उत्सर्ग मार्ग है। आहाहा! यह अमृतचन्द्राचार्य में आता है। कहा यह (कि) सामान्य-विशेष जिसका (प्रकाश है), ऐसा जो निजद्रव्य। भगवान आत्मा अपना स्वभाव सामान्य और विशेष प्रकाश, ऐसा निजद्रव्य—ऐसा निज

तत्त्व, उसमें स्थिर होओ, यह मुक्ति का उपाय है। आहाहा!

कैसे वैराग्य के प्रसंग आते हैं, देखो न! प्रतिदिन अलग-अलग सुनते हैं। मोहनभाई अभी गुजर गये, वहाँ बेचारा लड़का विवाहित भट्टी का। यहाँ से देखने गये रात्रि में बस में। अपनी बस और लड़के बहुत लेकर देखने गये। जहाँ खड़ा होगा बाहर, ऐसे वहाँ ट्रक निकला। रात्रि में दस बजे। आहाहा! पकड़ेंगे उसे। क्या करे? यह संसार... यह संसार... कोई शरण नहीं। उसकी शरण तो चैतन्य भगवान है। उसकी माँ और उसकी बहू को कान में पड़ते ही चिल्लाहट मचा गयी। मर गया। सब चिथड़े हो गये—चूरा (हो गया)। इसलिए उसे नशा दिया बेचारी दोनों को। सहन कर सके नहीं। मर गया और यह सब चिथड़े हो गये। सब हड्डियाँ-बड्डियाँ टूटकर चूरा हो गया। आहाहा! देखो, यह दशा! ऐसे भव अनन्त किये हैं, हों! आहाहा! ऐसे चौरासी के प्रवाह में ऐसे अनन्त भव किये, भाई! इसने आत्मा की दरकार किये बिना।

पुराण पुरुष... आहाहा! अनादि के सनातन धर्मात्मा, उन्होंने इस आत्मा के स्वभाव का आश्रय लेकर निश्चय वीतरागता प्रगट की, व्यवहार से भगवान ने कहे हुए विकल्प आदि का भाव था, परन्तु उसे भी छोड़कर... आहाहा! अरे! जहाँ स्थिर होना है... बाहर में कहीं है नहीं। यह शुभ और अशुभ विकल्प उठे, वह सब दुःख है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु, उसमें जिसकी दृष्टि और स्थिरता पड़ी है, वह **अतुल निवृत्ति करके,...** स्थित है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसे **सर्वतः स्थिति करो।** निजद्रव्य में सर्वतः प्रकार से स्थित करो, ऐसा कहते हैं। व्यवहार विकल्प होता है, वह कहीं निज स्वरूप नहीं। आहाहा! पंच महाव्रत और २८ मूलगुण, वह कहीं निजस्वरूप—निजद्रव्य—निज आत्मा नहीं। विकल्प की उपाधि है। आहाहा! मेघाणी! लो, यह पंच महाव्रत के परिणाम, वह उपाधि है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। विकल्प है न (कि) ऐसा करूँ, किसी को न मारूँ, अहिंसा पालन करूँ। वह सब वृत्तियाँ हैं, राग है, वह आत्मा का स्वरूप नहीं। गुणवन्तभाई! आहाहा!

अभी जिसकी समझ का ठिकाना नहीं, उसे वह रुचि कैसे हो और उसमें परिणमन कैसे करे वह? अरे! मैं जगत के पदार्थ से अत्यन्त निराला हूँ, मुझे और पर

को कुछ सम्बन्ध नहीं। आहाहा! क्षण में सम्बन्ध हो आये, क्षण में छूटे। आहाहा! छूटे हुए ही थे। क्षेत्र से छूटे तब ऐसा जाना कि यह छूटा। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के अमृत का सागर प्रभु में **सर्वतः स्थिति करो,** कहते हैं। आहाहा! उसमें आनन्द है, बाकी सर्वत्र दुःख है। आहाहा! उत्साह हो, ऐसा ही उत्साह का काल, इतना ही प्रतिकूलता के काल में चिल्लाहट मचा जाये। दो भाग कर दिये। जो अनुकूलता में हर्ष था, उतना ही उसे प्रतिकूलता में द्वेष होता है।

अभी हमारे हिम्मतभाई कहते थे। वह जलने का, वह सुलगा न? जितना उत्साह किया था उतना ही द्वेष आया, कहते हैं। कहा था न? अभी हिम्मतभाई गये न? जितना उत्साह किया था, उतना ही अन्दर द्वेष आया था तत्प्रमाण। लकड़े की... जल गयी वहाँ मुम्बई में। पैसे तो आये कुछ ९४ हजार या कितने। वह सब प्रवृत्ति करते-करते कितने महीने जाये? अभी व्यवस्थितता की, अब लड़के कमाऊ होंगे, विलायत से आनेवाला है। आ गया? कल।

कहते थे, हों! हमारे नारणभाई कहते थे (संवत्) १९८५ में। लाठी में चातुर्मास था। जब लोंच करते थे, तब। कितना लगता है? कैसे लगता है? जितना खाने के भाव में राग और प्रेम है, उतनी अरुचि लगती है। ८५ के वर्ष लाठी। वह धर्मशाला है न, क्या कहलाती है? भोजनशाला। पीछे, नहीं? अभी तो नयी बनायी। पैसे दिये न सबने। भोजनशाला... मंजिल है न? वहाँ करते थे पर्यूषण में। कैसा लगता है? जितना शरीर के प्रति का राग है और खाने में जितना प्रेम लगता है, उतनी ही अरुचि लगती है यहाँ। आत्मा के स्वभाव में प्रेम और द्वेष दोनों है नहीं। वह तो ज्ञाता-दृष्टा है। मेरुपर्वत—पहाड़ डोल जाये पूरा, तो भी धर्मी-धर्मात्मा ज्ञाता-दृष्टा है और अनुकूलता में हाथी से उतरकर इन्द्र आदि आकर नम पड़े, तो भी ज्ञाता-दृष्टा है। कुछ हर्ष का हिलोरा नहीं आता और शोक में खेदखिन्न नहीं हो जाते। ऐसा चैतन्य का सामान्य-विशेष (अर्थात्) दर्शन-ज्ञान स्वरूप, उसमें स्थिर होने से आनन्द आवे, उसे यह विकल्प नहीं हो सकते। आहाहा!

भाई ने कल कहा एक-दो व्यक्तियों का। एक डॉक्टर मर गये वहाँ जामनगर में।

बात करते थे। देह की स्थिति कब पूरी हो? यह जड़ है, वह जितनी अवधि रहनेवाला है, उतना ही रहनेवाला है। एक समयमात्र, उसका उपचार करो, ऐसा करो, ढींकणा करो। डॉक्टर चले जाते हैं या नहीं? शान्तिभाई! डॉक्टर जाते हैं या नहीं? यहाँ का बड़ा डॉक्टर नहीं? वैद्य-डॉक्टर यहाँ हेमन्तकुमार। पूरे अस्पताल का अधिकारी। एक मिनिट में। ऐसे करते थे कुछ ऑपरेशन। मुझे कुछ होता है। बस ऐसे हुआ और ढलकर पड़ा, मर गया। अस्पताल में... यहाँ आते थे, एक-दो-तीन बार आये थे। पूरे अस्पताल के बड़े डॉक्टर। उसमें क्या? आहाहा! जड़ और पर, अरे! राग भी रखने से रहता नहीं। पुण्य और पाप के विकल्प भी कर्म के निमित्त के सम्बन्ध में जिस क्षण उपजे, वे दूसरे क्षण में नाश हो जानेवाले हैं। नाश न करे तो भी नाश हो जानेवाले—व्यय हो जानेवाले हैं। आहाहा!

यहाँ तो वहाँ तक कहा न ५४ कलश में। आत्मा ध्रुव नित्यानन्द प्रभु की दृष्टि करनेयोग्य है। बाकी तो चार भाव नाशवान हैं। आहाहा! शरीर नाशवान, कर्म नाशवान, वाणी नाशवान, सन्ध्या के रंग जैसे दिखाव सब नाशवान है। परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि राग नाशवान है। परन्तु राग को जानने की पर्याय क्षायिकज्ञान, क्षायिक समकित, वह भी नाशवान है। क्योंकि एक समयमात्र रहती है। आहाहा! वीतराग परिणति खड़ी हुई सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र—मोक्ष का मार्ग, क्षयोपशमभाव से या क्षायिकभाव से जो दशा हो, वह या उपशमभाव से, परन्तु वह एक समय की पर्याय है, नाशवान है। अविनाशी तो ध्रुव चिदानन्द भगवान स्वयं तो एक समय की पर्याय के नाश से भिन्न है। आहाहा!

अविनाशी प्रभु ऐसा निजद्रव्य, ऐसा कहा न इसमें? जिसका दर्शनप्रकाश सामान्य, ज्ञानप्रकाश विशेष ऐसा जो त्रिकाली चैतन्यद्रव्य, उस निजद्रव्य में... ऐसा। ऐसे प्रकाश को प्रगट हुए परमात्मा में भी नहीं। आहाहा! परमात्मा अरिहन्त सर्वज्ञदेव भी पर है। उनका लक्ष्य करने से भी राग और विकल्प उत्पन्न होता है। आहाहा! **निज द्रव्य में...** द्रव्य अर्थात् तेरी लक्ष्मी, तेरा स्वरूप। आहाहा! परन्तु कभी अभ्यास नहीं न! ऐसा द्रव्य मेरा है, ऐसा इसे विश्वास आया नहीं। मैं त्रिकाली अविनाशी सामान्य और विशेष प्रकाश का पुंज, ऐसा मेरा एकरूप द्रव्य, वह सम्यग्दर्शन का विषय है। सम्यग्दर्शन

उसके आश्रय से प्रगट होता है। चारित्र भी उसके द्रव्य के आश्रय से प्रगट होता है और सम्यग्ज्ञान भी उस द्रव्य के आश्रय से प्रगट होता है। आहाहा!

और (इस ८६वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं):— पद्मप्रभमलधारिदेव। आहाहा! अभी पढ़ूँगा, पढ़ूँगा फिर पास होऊँगा, पास होऊँगा फिर नौकरी मिलेगी और धन्धा करूँगा, धन्धा करके वापस विवाह करूँगा, विवाह करूँगा, फिर वृद्धावस्था होगी, फिर मरूँगा, मरूँगा, फिर दूसरे भव में जाऊँगा। वहाँ का वहाँ उसे वह वापस। हिम्मतभाई! एक व्यक्ति को पूछा था, क्या करते हो तुम? अभी पढ़ूँगा। कहाँ तक? २२-२५ वर्ष की उम्र हो तब तक कॉलेज में। पश्चात् क्या करोगे? फिर कुछ धन्धा... पैसा होगा तो धन्धा करूँगा, नहीं तो नौकरी करूँगा। फिर विवाह करूँगा, फिर लड़के होंगे, फिर धन्धा करूँगा... फिर वृद्धावस्था आयेगी, फिर मरूँगा। फिर कहाँ जाओगे? दूसरे भव में जाऊँगा। आहाहा! तुझे कब करना है तेरा? यह करूँगा, यह करूँगा, यह करूँगा और फिर मरूँगा।

यहाँ कहते हैं, आहाहा! भगवान! तेरा आत्मा सामान्य और विशेष प्रकाश का पुंज है न, प्रभु! उसमें कर्म तो नहीं, शरीर तो नहीं, विकल्प तो नहीं, एक समय की पर्याय भी जिसमें नहीं। आहाहा! ऐसा त्रिकाली ध्रुव अविनाशी नित्यानन्द प्रभु, उसमें स्थिति करो। स्थिति करनेयोग्य वह चीज़ है। आहाहा! ११५ कलश।

विषयसुखविरक्ताः शुद्धतत्त्वानुरक्ताः,
तपसि निरतचित्ता शास्त्रसङ्घातमत्ताः।
गुणमणि-गणयुक्ताः सर्वसङ्कल्पमुक्ताः,
कथ-ममृतवधूटी-वल्लभा न स्युरेते॥११५॥

क्यों न हो वह मुक्ति? ऐसा कहते हैं। आहाहा! **श्लोकार्थः—जो विषयसुख से विरक्त हैं,...** भाषा पहली यह। धर्मी विषयसुख के प्रेम और रुचि से तो विरक्त है। इन्द्र के इन्द्रासन हो, चक्रवर्ती को ९६ हजार पद्मिनी जैसी स्त्रियाँ हों, सम्यग्दृष्टि को विषय से विरक्तता है। विरक्त की व्याख्या? उसमें सुख भासित नहीं होता। विषय में कहीं रुचि नहीं। आहाहा! विषय अर्थात् पर की ओर के सुख से विरक्त है। पाँचों इन्द्रिय के विषय

शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श, उसमें प्रेम से, रुचि से, उसमें सुखबुद्धि से विरक्त है। लो, समकिती पर में सुखबुद्धि से विरक्त हुआ है। कान्तिभाई! आहाहा! सम्यग्दृष्टि को आत्मा के अतिरिक्त कहीं सुख, लाभ दिखता नहीं। करोड़ों इन्द्राणियों के भोग में भी सुख नहीं दिखता, जहर देखता है। ओहो! भगवान आत्मा सुख का समुद्र प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, उसे इन्द्रिय विषय में प्रेम नहीं होता। आहाहा!

शुद्ध तत्त्व में अनुरक्त हैं,... यहाँ से जब विरक्त कहा, तब शुद्ध आनन्दतत्त्व में अनुरक्त अर्थात् लीन है, उसमें जिसकी रुचि जम गयी है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि धर्म की पहली सीढ़ीवाला, समझ में आया? वह इस प्रकार से शुद्धतत्त्व में अनुरक्त है। अब आगे बढ़कर, **तप में लीन जिनका चित्त है,...** अब आगे मुनि होता है। तप शब्द से मुनिपना है, हों! तप वह अपवास और वह बात यहाँ नहीं है। तप अर्थात् चारित्र अन्दर, स्वरूप में चारित्र—चरना, रमना, जमना, वह आनन्द का भोजन लेना। आहाहा! जम जाना अथवा जमना, ऐसा। अतीन्द्रिय आनन्द का विशेष अनुभव, उसे यहाँ तप और चारित्र कहते हैं। **तप में लीन जिनका चित्त है, शास्त्रसमूह में जो मत्त हैं,...** मत्त है। सम्यग्ज्ञान की कला खिलने में मत्त है, ऐसा कहते हैं। **गहल** है, **अतिशय प्रीतिवन्त** है, **अति आनन्दित** है। सम्यग्ज्ञान में अति आनन्दित है। शास्त्र के समूह के द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग आदि हो, उसमें से वीतरागता निकालने को कलाबाज है। समझ में आया?

कलाबाज अर्थात्? जैसे चिड़िया को बाज पकड़ता है, वैसे सम्यग्ज्ञानी—धर्मात्मा कला को पकड़ता है। कलाबाज है। आता है न यह बाज, नहीं? शकरो। क्या आता है, नहीं? 'तेतर ऊपर बाज, मच्छने बगलो, तारी कंचनवरणी काय करी देशे ढगलो।' काल पूरा होगा। यह ऐसा लगे रूपवान और अच्छा, एक सेकेण्ड रहे। आता है न वह? 'तेतर ऊपर बाज...' तेतर नहीं वह? तेतर। जंगल में बोलते न तेतर। उसकी वाणी पर वह शकुन होते हैं। तेतर होता है न तेतर पक्षी। जीव खाता है। उसकी वाणी बहुत वह होती है, उसके ऊपर से वह करे, क्या कहलाता है? शकुन। किस ओर बोला? कैसे बोला? ऐसे पूर्व का बोला तो शकुन है। परन्तु उस तेतर को जब बाज पकड़ने आवे, अरेरे! छुप जाये थोर की वाड में। 'तेतर ऊपर बाज, मच्छने बगलो...' मच्छ और बगुला पकड़ने आवे, ऐसे निकले, चोंच... बैठा हो, एकदम पकड़े। इसी

प्रकार 'तारी कंचनवरणी काय करी देशे ढगलो।' काल आवे तो हाय... हाय! देखो न! उस लड़के का बेचारे का चूरा। लो, विवाहित, दो महीने की लड़की है। रामसंग के भाई का पुत्र। आहाहा! वैराग्य... उसे तू पहिचानता था प्रदीप? पढ़ता होगा यहाँ। नहीं, नहीं, पहले पढ़ता होगा। बटुक कहता था कि आशीष के साथ पढ़ता था। आशीष पढ़ता था न जब यहाँ, उसके साथ पढ़ता था। ओहोहो!

निराला तत्त्व। आहाहा! निराला... पर से छूटा, स्वयं ने छोड़ा नहीं। आहाहा! उसकी अवधि हुई, इसलिए छूट गया। यहाँ तो अवधि होती है, तो भी छोड़कर ही बैठा अन्दर में। वह मुझमें नहीं, हों! शरीर नहीं, राग नहीं। आहाहा! ऐसे चारित्र में जहाँ लीन है और शास्त्र के समूह में मत्त—गहल लगे, पागल जैसा लगे, कहते हैं। शास्त्र की कला खिलने में मत्त होता है। मुनि की बात है न मुख्य। **गुणरूपी मणियों के समुदाय से युक्त हैं...** गुणरूपी मणि... सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रादि वीतरागी परिणतिरूपी गुणरूपी मणि से सहित है। आहाहा! **और सर्व संकल्पों से मुक्त हैं,...** ऐसे गुण से सहित है और संकल्प से रहित है। आहाहा! **वे मुक्तिसुन्दरी के वल्लभ क्यों न होंगे? (अवश्य ही होंगे)।** ओहोहो! ऐसी जिसकी तैयारी है, वह क्यों मोक्ष न जाये? ऐसा कहते हैं।

उस विवाह में गाते थे, विवाह में। हमारे कुँवरजीभाई का विवाह था, तब सुना हुआ है सब। खुशालभाई के विवाह की बहुत खबर नहीं। बोले थे। यह तो दूसरी बार विवाह करने आये थे न गढडे। मैं उपाश्रय में था। 'धन का बलिया वर...' ऐसा कुछ बोलते हैं। क्या कुछ कहते हैं? वापिस नहीं फिरेगा। ऐसा कुछ कहते थे। 'धन का बलिया वर तो वापस नहीं फिरे।' ऐसी कुछ भाषा थी... इसी प्रकार यह आत्मज्ञान और दर्शनका बलिया मुक्ति से मुक्ति से वापस नहीं फिरेगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसा कुछ महिलायें गाती हैं, नहीं? पहले बहुत गाते थे, अब तो सब बदल गया है। धन का बलिया वर वापस नहीं फिरे, उसी प्रकार सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्‌चारित्र का बलिया वह मुक्तिसुन्दरी को वरे बिना रहेगा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

है न? '**कथमममृतवधूटी**' इकट्ठा? '**वधूटी**' अमृतरूपी वधूटी स्त्री—मुक्तिसुन्दरी। आहाहा! '**टी**' क्यों डाला होगा '**वधूटी**' में? यह भगवान आत्मा जिसने आत्मा का

सम्यग्दर्शन प्रगट किया, स्वरूप के पूर्ण आनन्द के प्रतीति के भान में और जिसने आत्मा के आश्रय से ज्ञान का कण स्वसंवेदन प्रगट किया और जिसने स्वरूप में चारित्र की एकाग्रदशा प्रगट की, आहाहा! स्थिरता लगायी, अरे! कहते हैं कि उसे मुक्तिरूपी सुन्दरी क्यों न हो? उसे मुक्तिरूपी पर्याय प्रगट होगी ही। ऐसा कारण सेवन करे, उसे मुक्ति का कार्य आये बिना रहता ही नहीं, ऐसा कहते हैं। अरे! यह संसार चौरासी के अवतार को छोड़कर उसकी मुक्तिरूपी निर्मल परिणति उसे प्रगट करेगा ही। आहाहा! जो मुक्ति होने के पश्चात् फिर से अवतार होता नहीं सादि-अनन्त। 'सादि-अनन्त अनन्त समाधि सुख में, अनन्त दर्शन ज्ञानसहित जो...' ऐसा आता है न? श्रीमद् में आता है। समझ में आया? आहाहा!

यह ८६वीं गाथा पूरी हुई। वल्लभ क्यों न होगा अर्थात्? वह वीतरागी पूर्ण पर्याय उसे नहीं छोड़ेगी अब। वीतरागी पूर्ण पर्याय का वल्लभ है वह। आहाहा! पूर्ण दशा—मुक्तपर्याय, अनाकुल आनन्द की पूर्णदशा, उसका वह वल्लभ होगा। वह पर्याय उसे नहीं छोड़ेगी, ऐसा। आहाहा! धन्य अवतार है न! यह वस्तु है। करनेयोग्य यह है। करने जैसा यहाँ है आत्मा में। चौरासी के अवतार में कहीं सुख की गन्ध भी नहीं। व्यर्थ मूढ़ होकर भटकता है, मानता है। ८७, गाथा ८७।

प्रतिक्रमण में आता है न? चौथे ... तीन शल्य से विमुख होता हूँ। नहीं आता? किया था? प्रतिक्रमण किया था? ऐसा ठीक। चौथा.... ऐसे एक, दो, तीन, चार यह तैतीस तक। तैतीस तक आता था न। वह आता है। परन्तु वह भाषा बोलते इतना, कुछ भान नहीं होता। शाम-सवेरे बोले। ...चौथा श्रमणसूत्र आता है। स्थानकवासी में तो बहुत गृहस्थों को कण्ठस्थ है। मन्दिरमार्गी में नहीं करते। वह श्रमणसूत्र कहलाये साधु का। उन लोगों में करते हैं। एक दरियापरीवाला आठ कोटिवाला न करे। खबर है। यह छह कोटिवाला करे। ....मैं तीन शल्य से विमुख होता हूँ। तीन शल्य कौन? मिथ्यादर्शन शल्य, निदान शल्य, माया-कपट शल्य। उससे विमुख होता हूँ। 'पाछो फरुं' का अर्थ?

तस्सउत्तरी में भी आता है। 'तस्स उतरी करणेण, विसोहि करणेण, विसल्ली करणेण...' अर्थ-बर्थ की खबर नहीं। तस्सउत्तरी में आता है। 'तस्स उतरी करणेण,

पायच्छित करणेण...' एक भी अर्थ की खबर नहीं होती। साधु को खबर नहीं होती, बेचारे लेकर बैठे हों। मिथ्यात्वरूपी शल्य से विमुख होता हूँ। 'विसल्ली करणेण।' शल्यरहित होने के लिये मैं कायोत्सर्ग करता हूँ—ध्यान में आता हूँ, ऐसा। कायोत्सर्ग आता है या नहीं कायोत्सर्ग? चिमनभाई! कायोत्सर्ग आता है। तस्सउत्तरी तो आता है तुम्हारे। 'विसोहि करणेण, विसल्ली करणेण, पावाणं, कम्माणं, निग्घायणट्ठाए...' भूल गये हों। हो तो सही कण्ठस्थ। आहाहा!

यहाँ भगवान कुन्दकुन्दाचार्य, तीन शल्यरहित मुनि को होना, उसे प्रतिक्रमण कहा जाता है, यह बात करते हैं।

मोत्तूण सल्लभावं णिस्सल्ले जो दु साहु परिणमदि।
सो पडिकमणं उच्चइ पडिकमणमओ हवे जम्हा॥८७॥

वीतरागी परिणति से अभेद हो गया, इसलिए उसे प्रतिक्रमण कहा जाता है। आहाहा! नीचे।

कर शल्य का परित्याग मुनि निःशल्य जो वर्तन करे।
प्रतिक्रमणमयता हेतु से प्रतिक्रमण कहते हैं उसे॥८७॥

टीका :—यहाँ निःशल्यभाव से परिणत... जिसे मिथ्यादर्शन का शल्य नहीं... अब मिथ्यादर्शन शल्य पड़ी हो और साधु हो जाये, वह साधु (वास्तव में) साधु नहीं है। 'निःशल्योव्रती' आता है न? व्रती तो निःशल्योव्रती होता है। चारित्रवन्त जो हो मुनि, उसे तीनों शल्य नहीं होती। **यहाँ निःशल्यभाव से परिणत...** मिथ्यात्व शल्य, निदान शल्य... निदान अर्थात् कुछ क्रिया करके फल इच्छना कि स्वर्गादि मिले, सेठाई मिले, ऐसी शल्य और कपट की शल्य—माया शल्य। विशल्या नहीं वह बाई। उसका—बाई का नाम विशल्या था न? विशल्या। वह गन्ध छिड़का, नहीं? पानी छिड़का। विशल्या—शल्यरहित है। **निःशल्यभाव से परिणत महातपोधन को ही...** महा ऐसे को ही, ऐसा। महातपोधन। **निश्चय-प्रतिक्रमणस्वरूप कहा है।**

प्रथम तो, निश्चय से निःशल्यस्वरूप परमात्मा को... क्या कहते हैं? भगवान परमात्मस्वरूप तो निश्चय से निःशल्य ही है। कौन परमात्मा? यह आत्मा। आहाहा!

वस्तु ध्रुव आत्मा नित्यानन्द प्रभु ऐसा जो निज परमात्मा, वह ध्रुव आत्मा वास्तव में तो निःशल्यस्वरूप ही है। ध्रुवस्वभाव में शल्यपना बिल्कुल नहीं है। ऐसा वास्तव में निःशल्यस्वरूप परमात्मा स्वयं ही, उसे **व्यवहारनय के बल से...** उसे पर्यायदृष्टि से (अर्थात् कि) व्यवहारनय से उसकी पर्याय में शल्य होती है। क्या कहा, समझ में आया? निश्चय से तो निःशल्यरूप द्रव्यस्वरूप है। पर्याय में विकार मिथ्यात्व, निदान, माया, वह व्यवहारनय से है। पर्याय में है, वह व्यवहार है। वस्तु में नहीं, वह निश्चय है। **निःशल्यस्वरूप परमात्मा को व्यवहारनय के बल से...** अर्थात् व्यवहारनय से, ऐसा। **कर्मपंकयुक्तपना होने के कारण...** व्यवहारनय से—वर्तमान सम्बन्धनय से। व्यवहारनय से कर्म से सहित कहा जाता है। वस्तुदृष्टि से निश्चय से उसमें पदार्थ में—स्वभाव में—ध्रुव में शल्य-बल्य है नहीं।

(-व्यवहारनय से कर्मरूपी कीचड़ के साथ सम्बन्ध होने के कारण) 'उसे निदान, माया और मिथ्यात्वरूपी तीन शल्य वर्तते हैं'... पर्याय में तीन शल्य अज्ञानी को होती है। आहाहा! पर्याय में होती है और द्रव्य में नहीं होती न... यह क्या कहते हैं? वस्तु है, उसमें कहाँ है? वस्तु तो वस्तु है, आनन्दकन्द है। शुद्ध चैतन्य ध्रुव नित्य सदृशस्वभाव, वह तो अकेला पवित्र का पिण्ड है, अभी और अनादि से। वास्तव में तो निःशल्यस्वरूप ही प्रभु है आत्मा—परमात्मा स्वयं। परन्तु पर्याय में—हालत में.... यह दशा नहीं मानते न वेदान्त आदि? देखो न! तो फिर भूल है, वह भूल सुधारना रहता नहीं कुछ।

बहुत चर्चा चली थी, तब इतना स्वीकार किया था भाई ने, नहीं? मोतीलाल। मोतीलाल थे न? परमहंस है। यहाँ आये थे। वेदान्ती साधु। है न अहमदाबाद के पास पाटण है। पहले यहाँ आते थे, ९५ में आते थे। ८९ में आते व्याख्यान में। फिर हो गये साधु परमहंस। दशाश्रीमाली बनिया। फिर वहाँ भी आये थे गोंडल, भाई के यहाँ। बहुत चर्चा हुई थी। फिर यहाँ चर्चा होते-होते, कहा, कुछ भूल है या नहीं उसकी दशा में? भूल न हो तो समझना और टालना यह कुछ रहता नहीं। भूल तो है, स्वीकार तो करता हूँ। तब वह भूल स्वीकार करना, वह पर्याय हो गयी। कूटस्थ द्रव्य है, उसमें यह नहीं आया, यह पर्याय में आया। और भूल है... यदि भूल न हो तो आनन्द का अनुभव

चाहिए। वस्तु है, वह तो नि:शल्य आनन्दस्वरूप है। उसकी दशा में भूल न हो तो अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन होना चाहिए। अतीन्द्रिय आनन्द नहीं तो उसके स्थान में दु:ख है। दु:ख है, वह भ्रम है, वास्तविक आत्मा में है नहीं, परन्तु पर्याय में है। ऐसा न माने, उसे आत्मा द्रव्य और पर्याय का कुछ ज्ञान सच्चा नहीं। समझ में आया?

यह बात यहाँ सिद्ध की है। वस्तु में नहीं, ध्रुवरूप से में, परन्तु उसकी पर्याय में यदि दु:ख न हो और शल्य न हो तो उसे समझना और टालना और स्वभाव-सन्मुख होना और विभाव से विमुख होना, यह कुछ रहता नहीं। यह तो सब पर्याय में है। आहाहा! समझ में आया? पर्याय अर्थात् अवस्था—हालत। कल पूछता था न एक भाई, नहीं? राजकोटवाला आत्मधर्म में आपने पर्याय को भी सत् कहा है, कहे। ऐसा आया हो न कि द्रव्य सत्, गुण सत् और पर्याय सत्? उसे वेदान्त का अभ्यास, इसलिए मानो पर्याय सत् है, इसलिए मैं त्रिकाल हूँ, ऐसा। पर्याय अवस्थारूप से सत् है। है, वह नहीं—ऐसा नहीं। गधे का सींग नहीं कहीं। एक समय की पर्याय भी सत् है। है, परन्तु है; इसलिए वह त्रिकाल है, ऐसा नहीं। एक समय की दशा में... यह कहते हैं न, देखो न!

व्यवहारनय से निदान, माया (आदि) तीन शल्य वर्तती हैं। **ऐसा उपचार से कहा जाता है।** उपचार कहो या व्यवहार कहो। क्या कहा, समझ में आया? वस्तुस्वरूप भगवान आत्मा ध्रुव और पर्याय, दो होकर पूरा आत्मा। अब उसमें जो ध्रुव नित्य अविनाशी है, उसमें तो शल्य-बल्य कुछ है नहीं। परन्तु पर्याय में अर्थात् वर्तमान अवस्था में, व्यवहार कहो या पर्याय कहो, वर्तमान व्यवहार की पर्याय में वह है। तीन दोष है, ऐसा उपचार से कहा जाता है, अर्थात् व्यवहार से कहा जाता है। **ऐसा होने से ही तीन शल्यों का परित्याग करके...** देखो! जब उसकी दशा में मिथ्यात्व है, निदान शल्य है, माया है तो छोड़कर... होवे उसे छोड़ना न, न हो, उसे क्या छोड़ना? **ऐसा होने से ही तीन शल्यों का परित्याग करके...** ठीक। आहाहा! भगवान आनन्दस्वरूप में प्रविष्ट होने से—अन्दर में जाने से इन तीनों शल्यों का अभाव हो जाता है—परित्याग हो जाता है—व्यय होता है। समझ में आया?

जो परम योगी परम नि:शल्य स्वरूप में रहता है,... यह पर्याय हुई। वह तीन

शल्य की पर्याय का व्यय हुआ और उससे रहित परम योगी परम नि:शल्य स्वरूप की पर्याय में रहता है। **उसे निश्चयप्रतिक्रमणस्वरूप कहा जाता है,...** देखो! पर्याय में नि:शल्यता होती है। वस्तु तो त्रिकाल नि:शल्य है, परन्तु पर्याय में—अवस्था में जो यह मिथ्यात्वादि हैं, उनसे निवृत्त होता है, इसलिए निवृत्त होकर नि:शल्य परिणति होती है। नि:शल्य परिणति का उत्पाद, शल्य परिणति का व्यय, त्रिकाल ध्रुवस्वरूप नि:शल्य, वह त्रिकाल। अरे... गजब बातें, भाई! अकेला सामायिक, प्रौषध, प्रतिक्रमण, अपवास करनेवाले को कुछ भान नहीं हो न! ऐ! क्या कहते हैं यह? सामायिक करना या नहीं हमारे? यह तो कहो। यहाँ किसकी बात चलती है? सुन न! सामायिक कहना किसे? जिसे पुण्य-पाप के विकल्प राग-विकार उसकी पर्याय में है, त्रिकाल में नहीं, वह विकार का त्याग करके स्वरूप में स्थिरतारूपी वीतराग परिणति करे, उसे सामायिक कहा जाता है। समझ में आया?

परम योगी परम नि:शल्य स्वरूप में रहता है,... वह पर्याय, हों! परम नि:शल्य अर्थात् त्रिकाली नहीं, यह परिणति है। **उसे निश्चयप्रतिक्रमणस्वरूप कहा जाता है,...** लो। आहाहा! **कारण कि उसे...** कहते हैं कि निश्चयप्रतिक्रमणस्वरूप कहा जाता है। क्यों? कि **स्वरूपगत वास्तविक प्रतिक्रमण है ही।** ऐसा। **(-निज स्वरूप के साथ सम्बन्धवाला) वास्तविक प्रतिक्रमण है ही।** भगवान स्वरूप निज शुद्ध आनन्दकन्द के सम्बन्धवाला... वीतरागी परिणति-निर्दोष दशा को स्वरूपगत (अर्थात्) निजस्वरूप के साथ। 'गत' का अर्थ किया है सम्बन्धवाला। **स्वरूपगत वास्तविक प्रतिक्रमण है ही।** आहाहा! परमानन्द का धाम भगवान की ओर झुकने से, स्वरूप की ओर सन्मुख होने से, नि:शल्य परिणतिरूप दशा, वह प्रतिक्रमण है। शल्य की अवस्था से छूट गया है। प्रतिक्रमण कहना है न। 'छोड़कर' कहना है न! मिथ्यात्व, निदान आदि को छोड़कर अर्थात् व्यय करके, प्रतिक्रमण (अर्थात्) विमुख होकर, द्रव्यस्वभाव में एकाग्रतारूप प्रतिक्रमण करता है, उसे वास्तव में प्रतिक्रमण है, दूसरे को प्रतिक्रमण होता नहीं।

यह पहाड़े बोलते जाये शाम-सवेरे। बहुत किये हैं? भाई बहुत करते हों मनसुखभाई। मनसुख ताराचन्द डॉक्टर। मूळी, मूळी के न? मूळी पढ़े थे। मनसुखभाई ताराचन्द आते थे न, यह आँखों का ऑपरेशन उन्होंने किया है न! स्थानकवासी

करोड़पति। मुम्बई में है न। करोड़पति है। गुजर गये बेचारे। आते थे। निवृत्ति लेनी है, ऐसा कहते थे। गुजर गये। नैरोबी अफ्रीका में गुजर गये। बड़ी मशीन है बीस लाख की। यहाँ मिलती होगी बीस लाख की। आहाहा! ऐसा करूँगा, ऐसा करूँगा। करते... करते... यह तुम्हारे किया है न काम? लाख रुपये। लाख नहीं, कितने लाख की? अठारह लाख की। अठारह लाख का किया है। ५० हजार स्वयं ने दिये। यहाँ आते थे। यहाँ .... रहते पन्द्रह-पन्द्रह दिन। वहाँ निवृत्ति बहुत है। आहाहा!

कल करूँगा, करूँगा, कल करूँगा। उस धोबी की तरह। वस्त्र लेकर धोने गया। गर्म-गर्म बाजरे का रोटला और लहसुन की सब्जी खायी हुई। दो सौ कपड़े (लेकर) गया। वह क्या? पोटला बाँधकर गया धोने। पानी में गया उस शिला पर धोने। दस जहाँ धोये, वहाँ प्यास लगी। बाजरे का रोटला खाया हुआ गर्म और लहसुन की सब्जी। नहीं तो उड़द की दाल और मूँग। प्यास लगी, परन्तु दो सौ कपड़े, दस धुले। लाओ न दस धो दूँ, लाओ न दस धो दूँ। ऐसा करते-करते ऐसी तृषा लगी कि पानी निश्चिन्तता से पिया (अर्थात् कि) गिरा पानी में। यह धोबी की बात ऐसी की ऐसी है। ऐ चिमनभाई! यह तो कहते हैं कि वह धोबी की बात है यह। यह भी अभी नहीं, अभी नहीं, इतना कर लूँगा, फिर इतना कर लूँगा—करते-करते जाये। आहाहा! यहाँ कहते हैं, ऐसा जिसने तत्काल, भगवान आत्मा अन्तर में है, वैसी पर्याय प्रगट की है और शल्य से निवृत्त हुआ है, वह साक्षात् प्रतिक्रमणस्वरूप है, उस मोक्षगामी को मोक्ष होनेवाला है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल ४, सोमवार, दिनांक - २६-७-१९७१
श्लोक - ११६-११७, गाथा - ८८, प्रवचन-७७

नियमसार, परमार्थ प्रतिक्रमण अधिकार। नियमसार अर्थात् मोक्ष का मार्ग। नियम अर्थात् आत्मा पवित्र शुद्ध ध्रुव के अन्तर्मुख होकर सम्यग्दर्शन करना, अन्तर्मुख का स्वसंवेदनज्ञान और अन्तर्मुख में स्थिर होना, यह नियम उसे कहा जाता है। मोक्ष का मार्ग, निश्चय से नियम से करनेयोग्य वह यह है। उसमें सार अर्थात् व्यवहाररहित—व्यवहार श्रद्धा, ज्ञान और जो राग आदि है, उससे रहित—ऐसा जो आत्मा के निर्मल वीतरागी परिणाम, ऐसे सहित आत्मा को नियमसार कहा जाता है। व्यवहार से विरुद्ध। व्यवहार श्रद्धा, व्यवहार ज्ञान, व्यवहार आचरण—इससे रहित शुद्ध आत्मा के ध्येय से जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र की पर्याय होती है, उसे वास्तव में नियमसार कहा जाता है। उसकी यह ८७ गाथा और उसका ११६ कलश है। ११६ कलश। इसमें तो १६६ (पृष्ठ) है, हिन्दी में क्या पृष्ठ है? १६६। थोड़े-बहुत आये हैं। अब आज से (हिन्दी) शुरु करते हैं। कहते हैं.... १६६ पृष्ठ। ११६ कलश है।

शल्यत्रयं परित्यज्य निःशल्ये परमात्मनि।
स्थित्वा विद्वान्सदा शुद्धमात्मानं भावयेत्स्फुटम्॥११६॥

सत्य प्रतिक्रमण किसे कहते हैं? सच्चा प्रतिक्रमण—निश्चय प्रतिक्रमण। मिथ्यात्व और राग-द्वेष के परिणाम से हटकर स्वभाव आत्मा... यह कहते हैं, देखो! **श्लोकार्थः— तीन शल्यों का परित्याग करके,...** पाठ में है न यह? नास्ति से पहली बात की है। नास्ति से पहले बात की है। तीन शल्यों का परित्याग कर... मिथ्यात्वशल्य, निदानशल्य, मायाशल्य—तीनों को छोड़कर... उपदेश की पद्धति है न? व्यवहार पहले बताया, उसको छोड़कर, कहते हैं। पहले व्यवहार बताया कि तीन शल्य हैं। पर्याय में तीन शल्य है—मिथ्यात्वशल्य, निदानशल्य और मायाशल्य। ये दुःखरूपभाव शल्य है। उसको छोड़कर... है, उसको छोड़ना है न? वह तो उपदेश की एक पद्धति है। यह मिथ्याशल्य

छोड़ूँ, त्यागूँ, ऐसे वह नहीं छूटते। परन्तु वह उपदेश की विधि ऐसी पहले है न?

तीन शल्यों का परित्याग करके, निःशल्य परमात्मा में स्थित रहकर,... यह अस्ति। आत्मा परम आनन्दस्वरूप ध्रुव अविचल नित्य अविनाशी प्रभु एक समय की पर्याय बिना का, ऐसे **निःशल्य परमात्मा में...** वह त्रिकाली परमात्मा आत्मा है, त्रिकाल जो आत्मा है, वह परमात्मा ही है, ऐसा कहते हैं। परम आत्मा परमस्वरूप। राग-द्वेष और विकल्प तो नहीं, परन्तु एक समय की पर्याय भी जिसमें नहीं। ऐसे **निःशल्य परमात्मा में...** निःशल्य (अर्थात्) शल्यरहित ऐसा अपना निजस्वरूप ध्रुव, उसमें **स्थित रहकर**—उसमें स्थिर रहकर शल्य छूट जाती है। शल्य छूट जाती है, उसको 'शल्य छोड़ो' ऐसा कहने में आता है। आहा! व्यवहार की पद्धति ऐसी उपदेश की (है कि) पहले व्यवहार बताकर निषेध करते हैं। कहते हैं, जिसको अपना स्वरूप पुण्य-पाप और मिथ्यात्व से रहित पकड़ना हो, अनुभव करना हो अर्थात् जिसको धर्म करना हो अर्थात् जिसको सच्ची निःशल्य प्रतिक्रमणदशा प्रगट करनी हो, तो **निःशल्य परमात्मा में स्थित रहकर,...** यह महा शब्द है।

विकार शल्य रहित परमस्वरूप सर्वज्ञ वीतराग ने जो प्रगट किया, ऐसा ही अपना ध्रुव निजस्वरूप है। उसमें रहकर—स्थित रहकर... अब पुरुषार्थ आया। समझ में आया? अपनी शुद्ध चैतन्यवस्तु अतीन्द्रिय आनन्द का धाम और अनन्त अविचल ज्ञान का पिण्ड प्रभु ऐसा अपना आत्मा, उसको यहाँ परम आत्मा... परम आत्मा, परम स्वरूप कहने में आया है। निःशल्य होकर... निःशल्य है और निःशल्य होकर... स्थित रहकर... **विद्वान को...** यह क्या कहा? ज्ञानी को... ज्ञानी उसको कहते हैं, विद्वान उसको कहते हैं कि अपने निःशल्य परमात्मा में स्थित स्थिर रहना, वह विद्वान है। पण्डितजी! आहाहा! **विद्वान को सदा शुद्ध आत्मा को...** सदा एक शुद्ध ध्रुव चैतन्य निष्क्रिय परमात्मा, राग और पर्याय की क्रिया से रहित। आहाहा! ऐसा **सदा शुद्ध आत्मा को स्फुटरूप से भाना चाहिए...** अर्थात् प्रगट रीति से स्वरूप में एकाग्रता होनी चाहिए। आहाहा! उसका नाम प्रतिक्रमण है। आहाहा!

सदा शुद्ध आत्मा... दृष्टि में तो ध्रुव सदा निरन्तर रहता है। धर्मी को—सम्यग्दृष्टि

को, सम्यग्ज्ञानी को... 'विद्वान' लिया है न? नित्यानन्दवस्तु ध्रुव नित्य वस्तु, वह दृष्टि में कायम रहती है और कायम रखकर शुद्धात्मा को लक्ष्य करके सदा उसको लक्ष्य करते हैं। स्फुटपने भाना चाहिए... प्रगटपने... शक्ति है, उसमें से वीतरागदशा प्रगट हो, ऐसी आत्मा की भावना करनी चाहिए। गजब भाई! बातें बहुत सूक्ष्म। वस्तु स्वयं सूक्ष्म है, बहुत सूक्ष्म है, परम सूक्ष्म है। उसे पकड़ने के लिये बहुत ही धीरज (चाहिए)। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की निर्विकल्प पर्याय द्वारा वह पकड़ने में आता है। ऐसे शुद्धात्मा को और सदा... भाषा कितनी प्रयोग की है एक छोटे पद में! आहाहा! बहुत अधिक संक्षिप्त। भाई! तू कौन है? कौन है, उसमें पर्याय नहीं, परन्तु त्रिकाल कौन है? त्रिकाल आनन्दघन प्रभु पूर्ण आनन्द का दल—पिण्ड, ऐसा सदा शुद्धात्मा जो है, उसकी भावना प्रगटपने करो। प्रगटपने अर्थात् धारणा और जानना, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसा परमात्मा अपना स्वभाव, उसमें एकाग्र होओ, तो तीन शल्य से रहित हो सकेगा। आहाहा!

स्फुटपने भाना चाहिए। भाना अर्थात् भावना करनी चाहिए। भावना अर्थात् अन्तर में एकाग्रता करनी चाहिए। आहाहा! लो, इसका नाम सम्यग्दर्शन। यह शुद्धस्वरूप ध्रुव चैतन्य, उसके सन्मुख में जाकर एकाग्रता से उसकी भावना करना, उस भावना को वीतरागी और मोक्षमार्गपर्याय कहा जाता है। ध्रुव है, वह तो मोक्षमार्ग की पर्याय से भी भिन्न है, परन्तु उसमें एकाग्र होकर जो पर्याय उत्पन्न होती है, उसको यहाँ भावना—शुद्धात्मा की एकाग्रता (कहते हैं), वही मोक्ष का मार्ग है, वही धर्म है, वही सच्चा प्रतिक्रमण है। आहाहा! भारी सूक्ष्म, भाई! लोगों को अन्दर परिचय (नहीं)। बापू! पूरा आत्मा अन्दर है। ऐसी चैतन्यधातु... जिसने चैतन्य और आनन्द धार रखा है—टिका है उसमें। ऐसी चीज़ जो भगवान आत्मा निजस्वरूप, उसमें एकाग्रता की भावना करना। एकाग्र होने से तीन शल्य छूट जाते हैं। तीन शल्य छोड़ना, वह व्यवहार कहने में आया था। छोड़ना पड़ता नहीं, अन्तर वस्तु में एकाग्र होते ही यह दोष की उत्पत्ति नहीं होती, उसको 'दोष छोड़ना' ऐसा कहने में आया है। वीतरागमार्ग तो अलौकिक है। यह मार्ग दूसरे कहीं नहीं है। परन्तु इसको समझना, प्राप्त करना अनन्त पुरुषार्थ है। ११७ कलश, ८७ गाथा का।

कषायकलिरंजितं त्यजतु चित्तमुच्चैर्भवान्,
भवभ्रमणकारणं स्मरशराग्निदग्धं मुहुः।
स्वभावनियतं सुखं विधिवशा-दनासादितं,
भजत्वमलिनं यते प्रबलसन्सृतेर्भीतितः॥११७॥

लो, भाषा तो ऐसी ही आवे न! **श्लोकार्थः—हे यति!** मुनि की प्रधानता से कथन है न? हे यति! हे मुनि! **जो (चित्त) भवभ्रमण का कारण है...** आहाहा! जिस चित्त में राग-द्वेष और मिथ्यात्वभाव आदि उत्पन्न होते हैं, वह भवभ्रमण का कारण है। **भवभ्रमण का कारण है और बारम्बार कामबाण की अग्नि से दग्ध है...** आहाहा! प्रभु ऐसा कहते हैं, अरे! तुझे कुछ भी अनुकूलता, शरीर की सुन्दरता देखकर उत्साहित वीर्य हो जाता है, आहा... आकर्षित हो जाता है, वे काम के बाण तुझे दग्ध कर देते हैं। आहाहा! काम के बाण तुझे जलाते हैं। कोई भी सुन्दर शरीर, आकृति देखकर आकर्षण हो जाता है कि ठीक है... ठीक है..., वह कामबाण से तेरा चित्त दग्ध हो जाता है। आहाहा! अग्नि से दग्ध... आहाहा! भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु में आनन्द है, उस आनन्द को छोड़कर अनादि से... देखो! यह शल्य में डाला। कोई भी विषय की किसी भी वृत्ति में ठीकबुद्धि हो जाये, उत्साहितबुद्धि हो जाये, (वह) मिथ्यात्वशल्य है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

अपना आत्मा आनन्दमूर्ति अतीन्द्रिय आनन्दघन तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी परमात्मा ने प्रगट किया, ऐसा ही आत्मा है। आहाहा! ऐसे आत्मा के आनन्द के भाव में से हटकर, कोई भी बाहर के पदार्थ—चीज़ में अनुकूल स्वर्गादि या इन्द्र-इन्द्राणी या इज्जत और सुन्दरता में आकर्षण हो जाये, खिंच जाये कि यह क्या? आहाहा! काम के बाण जलाकर तेरा चित्त दग्ध—जल गया है। समझ में आया? **बारम्बार कामबाण की अग्नि से दग्ध है—ऐसे कषायक्लेश से रंगे हुए चित्त को...** देखो! कषाय के क्लेश से रंगा हुआ चित्त... आहाहा! तेरा आनन्दस्वरूप भगवान का प्रेम छोड़कर किसी भी बाह्य चीज़ में प्रेम हो जाये, उसमें कुछ ठीक है, ऐसी सुखबुद्धि हो जाये, यह कामबाण से तेरा चित्त जल गया—जला हुआ है। आहाहा! समझ में आया?

वह मिथ्यात्वशल्य है, ऐसा कहते हैं। पर में सुख नहीं, इन्द्रियों में—पाँच

इन्द्रियों—शब्द, रूप, स्पर्श, रस, गन्ध, कीर्ति सुनते हैं, उसमें 'ठीक है'—ऐसा हो जाये, तो यह मिथ्याशल्य है, ऐसा कहते हैं। क्योंकि उसमें ठीकपना है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? सेठ! आहाहा! कीर्ति... कीर्ति... बड़ा सेठ साहेब है, लो! बड़ा सुन्दर है, लड़का अच्छा है और... आहाहा! भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा तीर्थंकरदेव ऐसा फरमाते हैं, भाई! तेरी चीज़ में आनन्द है, उसका तू अनादर करके, कोई भी बाह्य चीज़ में लोभायमान होकर कषाय से तेरा चित्त रंग जाता है—रंजायमान हो जाता है। आहाहा! यह मिथ्याशल्य है। आहाहा! समझ में आया? यह वीतरागमार्ग है। वीतरागमार्ग में अपने स्वरूप में वीतरागता भरी पड़ी है। ऐसी वीतरागता की रुचि छोड़कर बाह्य में कोई भी अनुकूल चीज़ का आकर्षण हो जाये, उल्लसित वीर्य हो जाये, उत्साह आ जाय, आहाहा! ऐसा कहते हैं। उससे तेरे चित्त में कषाय के रंग से रंग चढ़ गया है, वीतराग का रंग तुझे नहीं हुआ। सूक्ष्म है, भाई! परमात्मा का मार्ग सूक्ष्म है, सूक्ष्म है।

भवभ्रमण का कारण ऐसा चित्त, ऐसा है न? **और बारम्बार कामबाण की अग्नि...** आहाहा! शब्द जहाँ अनुकूल पड़े और प्रसन्नता आ जाये, रूप अनुकूल देखे तो प्रसन्नता आ जाये, भोजन अनुकूल खाकर प्रसन्नता आ जाये, खाने की क्रिया के काल में हों, क्रिया तो जड़ की है, सुगन्ध आदि देखकर प्रसन्नता आ जाये, आहाहा! स्पर्श में प्रसन्नता आ जाये, पंचेन्द्रिय के विषय भोगादि, मक्खन जैसा सुन्दर शरीर, उसमें प्रसन्नता आ जाये, वह मिथ्यात्वशल्य है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रभु! ऐसे भावों का.... यह एकान्त है....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोष है न। बात है इसलिए है न, भाई! वीतराग का मार्ग पहले तो सत्य क्या है, सुनने में आया नहीं। आहाहा! ऐसा का ऐसा पुण्य की क्रिया (करे और) बाहर में प्रसन्नता आ जाये, मिथ्यात्व है—ऐसा कहते हैं। क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : शुभभाव में लग जाये तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : लग जाये (और) प्रसन्नता आ जाये, वह मिथ्यात्व है। वह पुण्य की बात की थी न। आहाहा!

यहाँ तो, वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा है तो उसमें से वीतरागता प्रगट होती है।

वह बाहर से आती है? तो वीतरागता अपने निज स्वरूप का अन्तर प्रेम, रुचि और आदर छोड़कर, पर की कोई भी चीज़ छोटे में छोटा राग का कण या अनुकूलता देखकर प्रसन्नता, उल्लसित वीर्य, होंश, हर्ष आ जाये (तो) मिथ्यात्व है, ऐसा कहते हैं, ऐसी बात करते हैं। क्योंकि कोई पर में उत्साह करने की चीज़ है नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग सूक्ष्म है, भगवान! तेरी चीज़ में तो, अतीन्द्रिय आनन्द से तेरा आत्मा लबालब भरा है। उस ओर का अनादर करके कोई भी चीज़ में लीनता, प्रसन्नता, अनुकूल है, ऐसा विकल्प उठता है, तो कहते हैं कि मिथ्यात्वशल्य ने तेरी शान्ति को जला दिया। आहाहा! समझ में आया? यह पंच महाव्रत का परिणाम है, वह शुभराग है। राग में भी प्रसन्नता आ जाये कि मैं ठीक करता हूँ, मिथ्यात्वशल्य है। बात ऐसी है, भगवान! आहाहा!

मुमुक्षु : यह चीज़ तो अनादि की पड़ी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अनादि की पड़ी है, उसको यहाँ बताते हैं। भाई! तुझे खबर नहीं है। प्रभु! तुझे अन्दर सूक्ष्म शल्य रहता है। शल्य की बात है न?

भगवान आत्मा आनन्द का कन्द है प्रभु! उसके सन्मुख होकर दृष्टि करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। क्योंकि आत्मा निःशल्यस्वरूप है। निःशल्यस्वरूप का आश्रय करने से निःशल्य परिणति उत्पन्न होती है। और निःशल्य भगवान आत्मा सुख का सुन्दर समुद्र, सुख का सरोवर, ओहो! उस ओर का उत्साहित वीर्य छोड़कर, छोटे में छोटी कोई भी चीज़ की अनुकूलता में उत्साहित हो जाना, स्वरूप का लक्ष्य, रुचि छूट जाना, वह मिथ्यात्वशल्य है। यह व्याख्या मिथ्यात्वशल्य की है। कामबाण में तो पाँचों ही कहा है न? पाँचों ही है न शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श। आहाहा! भगवान तो अतीन्द्रिय है न! प्रभु आत्मा तो अतीन्द्रिय आत्मा है। अतीन्द्रिय परिणति द्वारा अतीन्द्रिय पदार्थ का अनुभव होता है। ऐसा (आत्मा) छोड़कर शुभराग दया, व्रत, भक्ति, पूजा में प्रसन्नता (आवे), स्वभाव की प्रसन्नता छोड़कर उसमें राग आ जाये कि बड़ा अच्छा है, (तो) मिथ्यात्व शल्य है।

अरे! 'बारम्बार' ऐसी भाषा प्रयोग की है न। '**मुहुः मुहुः**' '**मुहुः**' एक शब्द है, लो न। '**मुहुः**' है न? '**मुहुः**'—बारम्बार। भगवान! बारम्बार तेरा आनन्दस्वरूप की ओर

(दृष्टि करके) सदा शिवमार्ग को प्रगट करना चाहिए। यह न करके बारम्बार बाह्य के किसी भी पदार्थ में सुखबुद्धि—प्रसन्नबुद्धि हो जाये, (तो) बारम्बार भगवान! तेरा चित्त जल जाये। आहाहा! उस कारण से **कषायक्लेश से रंगे हुए चित्त...** चाहे तो अशुभराग हो या चाहे तो शुभराग हो, इस **कषायक्लेश से रंगे हुए चित्त को तू अत्यन्त छोड़;...** '**मोत्तूणं**' है न। '**मोत्तूणं**' (अर्थात्) छोड़। आहाहा! मूल तो '**मोत्तूणं**' पाठ में था न, वह बात फिर कलश में 'छोड़' न... ऐसा करके कहते हैं। आहाहा!

ऐसे **कषायक्लेश से रंगे हुए चित्त को तू अत्यन्त छोड़;...** '**उच्चइ**' कहाँ से आया? '**चित्तंउच्चइ' जो विधिवशात् (-कर्मवशात् के कारण) अप्राप्त है,...** आहाहा! अरे! विकार के वश हुआ, भगवान आत्मा प्राप्त नहीं हुआ तुझे। राग और विकार—शुभ और अशुभ के वश हुआ **ऐसे निर्मल विधिवशात् (-कर्मवशात् के कारण) अप्राप्त है,...** प्रभु। क्या कहते हैं? शुभ-अशुभराग के भाव में तू वश है, उस कारण से तुझे वीतरागता प्रगट नहीं हुई। शुभ-अशुभराग से अप्राप्त है भगवान आत्मा। उसमें वश होता है, राग के वश होकर शुद्ध भगवान आत्मा की अप्राप्ति हुई तुझे। ऐसे निर्मल स्वभाव को वह अप्राप्त है, राग के आधीन—वश होकर तुझे आनन्द की अप्राप्ति है, कहते हैं। आहाहा!

विधिवशात् अप्राप्त है,... कोई ऐसा कहे कि कर्म के वश में (है)। यह कर्म के वश आत्मा की पर्याय हुई है, कर्म ने वश किया नहीं। **विधिवशात्** है न? स्वयं विधि के वश होता है, कर्म उसको पराधीन करता है, ऐसा नहीं है। स्वद्रव्य के आधीन नहीं होता है तो विधिवशात् राग-द्वेष के आधीन हो जाता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अनन्त काल में मुनिव्रत भी धारण किया, 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो', तथापि मिथ्यात्वशल्य रह गयी। इसका अर्थ कि स्वभाव की रुचि, आश्रय छोड़कर परमदेव त्रिलोकनाथ तीर्थंकर के प्रति उत्साहित परद्रव्य में हो जाना, आहाहा! वह भी शल्य है। ऐसी शल्य अनन्त काल में रह गयी है। समझ में आया?

अरे! **निर्मल स्वभावनियत सुख को...** भाषा देखो! **स्वभाव में निश्चित रहा हुआ; स्वभाव में नियम से रहा हुआ।** स्वभाव में कायम रहा हुआ। क्या? सुख। ओहोहो! भगवान आत्मा में आनन्द है। **निर्मल स्वभावनियत...** (अर्थात्) स्वभाव में

निश्चित रहा हुआ, ऐसे सुख को **तू प्रबल संसार की भीति से डरकर...** आहाहा! ओहो! चार गति के दु:ख से डरकर... चारों गति दु:खरूप है। देव, नरक, पशु, मनुष्य दु:खरूप गति है, पराधीनता है। आहाहा! ऐसे **प्रबल संसार की भीति...** आहाहा! संसार का डर... **भीति से डरकर...** देखो! संसार के दु:ख के भय से डरकर... कोई नारकी के दु:ख से डरकर, ऐसा नहीं। चार गति का दु:ख है, उससे डरकर। आहाहा!

मुमुक्षु : नारकी के दु:ख से तो मिथ्यादृष्टि भी डरता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नहीं डरता, वह बाहर के दु:ख से डरता है। अन्तर की आकुलता के दु:ख से नहीं डरता। संयोग प्रतिकूलता आती है, उससे डरता है। परन्तु पुण्य और पाप के विकल्प, वे दु:खरूप हैं, उनसे नहीं डरता। पुण्य के भाव में प्रेम करता है, पाप से डरता है, मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! शल्य है—मिथ्यात्वशल्य है। भाई! आहाहा! नौवें ग्रैवेयक गया और कहीं (शल्य) रह गयी? समझ में आया? सूक्ष्म शल्य रह गया है। उसमें तो लिया है न वह? व्यवहार का सूक्ष्म शब्द का आश्रय रह गया है, अभव्य और भव्य सबको। नौवें ग्रैवेयक गया तो अन्दर में सूक्ष्म राग, चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, भगवान का प्रेम, उसमें 'ठीक है' ऐसी शल्य रह गयी है। उस कारण से अपराध है, ...अपराध है। आहाहा! समझ में आया? ओहो! निर्मल स्वभाव में नियत—निश्चित—नियम से भरा हुआ आनन्द, आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द है, उसके सुख को **प्रबल संसार की भीति से डरकर भज।** संसार के दु:ख से डरकर आत्मा के आनन्द को भज, ऐसा कहते हैं। क्या कहा, समझ में आया? आहाहा!

यह तीनों शल्य इसमें आ गये। निदानशल्य भी दु:ख है न? यह फल हो तो ठीक हो मुझे। क्या फल? दु:ख? राग की क्रिया से स्वर्ग मिले तो दु:ख। माया, कपट, कुटिलता, दम्भ करना, वह सब शल्य है। राग से धर्म है नहीं (और) मानता है, वह भी माया—कपटशल्य है। आहाहा! मार्ग तो ऐसा है, भाई! वीतराग परमात्मा तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परमात्मा ने समवसरण में इन्द्र और गणधर के समक्ष यह बात की थी (कि) मार्ग यह है। वह डर लगे। कल एक लड़का मर गया न,... धर में त्रास... त्रास... त्रास... चार भाई, ऐसे छातीफाट रोते थे। २५ वर्ष का जवान। कल वहाँ अकस्मात् हो गया। २५ वर्ष

का जवान ऐसा बस में बैठा था। आधा अंग बाहर था (और) दरवाजा खुला था। कमाड क्या? बस का दरवाजा खुला था। ट्रक आया तो दरवाजा और वह आदमी ऐसे रोटी जैसे दब गये। परसों रात्रि साढ़े नौ, दस बजे थे। सारे गाँव में बहुत... ऐसा सुना कि उसके चारों भाई ऐसे रोये छातीफाट। बापू! किसको रोना भाई! किसको रोना? 'रोनेवाला नहीं रहनेवाला रे...' रोनेवाला कहाँ रहनेवाला है यहाँ? किसको तुम रोते हो? आहाहा! भगवान आत्मा... अरे! ऐसा तो अनन्त बार किया है, हों!

यहाँ तो जरा सूक्ष्म बात मुनि ने ली है। जिसे पाँच इन्द्रियों के विषयों की ओर के कुछ भी सुखबुद्धि हो जाये तो वह शल्य है। उस शल्य को स्वभावनियत सुख का आश्रय करके—उसका भजन करके छोड़। आहाहा! क्रियाकाण्ड में भी राग है न पुण्य और उससे मुझे सुख होगा, मोक्ष होगा तो वह भी मिथ्यात्वशल्य है। आहाहा! सुख तो, भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द है। जिसके एक समय के आनन्द में सारी दुनिया (या) इन्द्र के इन्द्रासन सड़ा हुआ... क्या कहते हैं? तिनका, कूड़े का ढ़ेर। कचरा होता है न कचरा? कूडा, कूड़े का ढ़ेर। उसी प्रकार ज्ञानी को अपने आनन्द की रुचि के समक्ष सारे इन्द्र के इन्द्रासन सड़े हुए तृण जैसे दिखते हैं। जिसमें कुछ भी प्रीति—प्रेम अन्दर आ जाये... आसक्ति दूसरी चीज़ है। धर्मी को राग की आसक्ति होती है, परन्तु राग में रुचि और सुखबुद्धि नहीं होती। समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान में ९६ हजार स्त्रियों के भोग में दिखता है। राग है, परन्तु राग में रस नहीं है, राग का प्रेम नहीं है। नहीं, नहीं। दुःख... दुःख... दुःख। विषयभोग की वासना धर्मी को दुःख(रूप) लगती है। आहाहा! जैसे काला नाग देखकर डर जाये, वैसे धर्मी को अशुभराग से तो दुःख लगता है, डर जाता है। आहाहा! अज्ञानी उसके प्रेम में रंगा जाता है। इतना अन्तर है। ओहो! राग के वश से जो चैतन्य अप्राप्त है, वह निर्मल स्वभाव निश्चय सुख को **प्रबल संसार की भीति...** देखा! **प्रबल संसार की भीति से डरकर...** आहाहा! संसार के भय से डरकर, ऐसा कहा है। नरक के दुःख और ढोर के दुःख—पशु के दुःख से डरकर, ऐसा नहीं कहा है। क्योंकि सारी आकुलता है, (वह) सब दुःख है। चिमनभाई! यह पैसा-बैसा में मजा लगे, वह दुःख है—दुःख है, ऐसा कहते हैं। पाँच-पाँच लाख के बँगले... ऐ सेठ! इसे और छह लाख

का बँगला। उसमें रहते हैं, झूले में झूलते हैं। क्या कहते हैं? झूला... झूला... आहाहा! दु:ख के गंज में पड़ा है। दु:ख की पर्याय के वेदन में पड़ा है वह आत्मा, ऐसा कहते हैं। आनन्द तो आत्मा में है, उसकी तो खबर नहीं, श्रद्धा नहीं, श्रद्धा की खबर नहीं। आहाहा! ११७ कलश हुआ।

प्रबल संसार की भीति से डरकर... ऐसा है न? '**भज**' किसे? निर्मल स्वभावनियत सुख। आहाहा! स्वभाव में भरा हुआ आनन्द, उस सन्मुख हो तो भजन होता है। राग से विमुख होकर, व्यवहार के विकल्प से विमुख होकर, स्वभाव सुखरूप के सन्मुख होकर एकाग्रता करना, वह सुख का भजन कहने में आता है। आहाहा! सुख(रूप) के भजन में सुख होता है। आहाहा! ८८ (गाथा)।

चत्ता अगुत्तिभावं तिगुत्तिगुत्तो हवेइ जो साहू।
सो पडिकमणं उच्चइ पडिकमणमओ हवे जम्हा॥८८॥

जो साधु छोड़ अगुप्ति को त्रय-गुप्ति में विचरण करे।
प्रतिक्रमणमयता हेतु से प्रतिक्रमण कहते हैं उसे॥८८॥

टीका :—त्रिगुप्तिगुप्तपना (-तीन गुप्ति द्वारा गुप्तपना) जिसका लक्षण है, ऐसे परम तपोधन को निश्चयचारित्र होने का यह कथन है। सच्चे सन्त चारित्रवन्त... सच्चे सन्त चारित्रवन्त का लक्षण कहते हैं। वे तो त्रिगुप्ति-गुप्त हैं। आहाहा! सच्चे सन्त की चारित्रदशा... अचारित्र से प्रतिक्रमण हुआ... कहा न? मन में अशुभ से छूटना, वह व्यवहारगुप्ति, परन्तु शुभ से छूटना, वह निश्चयगुप्ति। शुभभाव जो है, वह तो प्रतिक्रमण करनेयोग्य है—उससे हटनेयोग्य है, उसमें रहनेयोग्य नहीं। **त्रिगुप्तिगुप्तपना जिसका लक्षण है, ऐसे परम तपोधन...** मुनि... जिसके पास चारित्ररूपी धन है। आनन्द में रमणता की दशा, वह चारित्रधन है। आहाहा! तपोधन कहा न? चारित्ररूपी धन। चिमनभाई! पैसारूपी धन नहीं। सुख का सागर भगवान आत्मा, उसमें लीनता करके वीतरागदशारूप परिणाम हुआ, वह चारित्र। वह चारित्र का धन है उसके पास। मन-वचन-काया के शुभाशुभ (भाव) से रहित, उसका नाम यहाँ (निश्चय) गुप्ति कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया?

वीतरागदर्शन की बात ही बहुत... श्रीमद् ने कहा न, दिगम्बर के तीव्र वचनों के कारण रहस्य समझा जा सकता है कि वस्तु ऐसी है। ऐसा कहना चाहते हैं। जिसे क्षण-क्षण में और समय-समय में जो कुछ शुभपरिणाम आवे, वह दु:खरूप है। उनसे हट जाये, तब गुप्ति कही जाती है। आहाहा! अभी तो यहाँ निश्चय भान बिना की व्यवहारसमिति का भी ठिकाना नहीं होता। यहाँ तो कहते हैं, भगवान... प्रतिक्रमण है न, इसलिए अगुप्ति से छूटना और गुप्ति में आना, ऐसा। मन-वचन और काया के शुभाशुभभाव, वह अगुप्तिभाव है—अगुप्तिभाव है। उससे हटकर आत्मा में आना, वह गुप्तिभाव है। समझ में आया? परम तपोधन, वापस। ऐसी भाषा ली है, देखा! परम... आहाहा! तपोधन कहो या निश्चय चारित्र कहो। सच्चा चारित्र, मन-वचन-काया की शुभाशुभ परिणति जो विकल्प-राग है, उससे हटकर स्वरूप में लीनता होना, वह गुप्तिभाव और निश्चयचारित्र है। यह गुप्तिभाव, वह निश्चयचारित्र है। पंच महाव्रत के परिणाम से भी हटकर स्वरूप में ठहरना, वह निश्चयगुप्ति और निश्चयचारित्र है। आहाहा!

परम तपश्चरणरूपी सरोवर के कमलसमूह के लिए... आहाहा! दिगम्बर मुनि टीका के करनेवाले और कुन्दकुन्दाचार्य गाथा (कर्ता)। दो हजार वर्ष पहले संवत् ४९ में कुन्दकुन्दाचार्य हुए, भगवान के पास गये, आठ दिन रहे। परमात्मा विराजते हैं। आहाहा! आठ दिन सुनकर आये, वह यह शास्त्र बनाया। हजार वर्ष पश्चात् मुनि हुए—पद्मप्रभमलधारि मुनि—दिगम्बर सन्त ध्यानी, ज्ञानी, आत्मा में भावलिंगसहित। निर्विकल्पदशा, वह भावलिंग है। आहाहा! परमात्मप्रकाश में कहा है न! भावलिंग भी जिसमें नहीं। परमात्मप्रकाश में है। है न इस ओर है। इस ओर है। निर्विकल्प—राग के विकल्प बिना की वीतरागी परिणति, वह भावलिंगी सन्त का, वह भावलिंग भी वस्तु में नहीं। आहाहा! वस्तु तो त्रिकाली ध्रुव है। समझ में आया?

भगवान आत्मा में, शरीर, कर्म तो नहीं, पुण्य-पाप तो नहीं, परन्तु निर्विकल्पचारित्र वीतरागीदशा मोक्ष का मार्ग गुप्तभाव, शुभ से भी गुप्त होकर स्थिर होना, वह भी एक समय की पर्याय है, वस्तु में नहीं—सम्यग्दर्शन का विषय ध्रुव में नहीं। वह पर्याय है। आहाहा! ऐसा मार्ग सुनने को मिलता नहीं, वह समझे कब? कब समझे और कब रुचि करे और कब प्रगट हो? आहाहा! ऐसा मार्ग...

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में है, द्रव्य में नहीं। वह तो पर्याय है। पर्याय है न वह ? क्षणिक है। मोक्षमार्ग की पर्याय क्षणिक है। जिसके आश्रय से प्रगट हो, वह ध्रुव है। ध्रुव में वह पर्याय है नहीं। भारी कठिन काम जगत को। आहाहा! यह मर जाता है ऐसे का ऐसा देखो न! जन्म-मरण कर-करके घानी में पिलता है, वह मानता है कि कुछ ठीक है हमारे। धूल में भी ठीक नहीं। शरीर ठीक हो, पैसा ठीक हो, स्त्री ठीक हो... क्या ठीक है ? भगवान! ठीक (पना) तो तेरी चीज़ में है। ऐसा अपना सुख अपने में है, ऐसी प्रतीति नहीं करके, कुछ भी शुभभाव आदि में ठीक है (ऐसा मानना), आहाहा! यह अगुप्तिभाव है, गुप्तभाव नहीं। आहाहा!

क्या कहते हैं ? अरे! परमचारित्ररूपी सरोवर... तपश्चरण है न मुनि में... ? तपश्चरण अर्थात् मुनिपना, चारित्रपना। सम्यग्दर्शन-ज्ञान और अनुभवसहित स्वरूप में लीनतारूप चारित्र, आनन्द। ओहोहो! **परम तपश्चरणरूपी सरोवर के कमलसमूह के लिए...** आहाहा! **प्रचण्ड सूर्य समान ऐसे जो अति-आसन्नभव्य मुनीश्वर...** मुनिश्वर की व्याख्या की है। आहाहा! कैसे हैं मुनिश्वर ? अपने वीतरागी परिणति—चारित्ररूपी सरोवर के कमलसमूह के लिये... यह सरोवर का कमलसमूह को प्रचण्ड सूर्य समान... चारित्र को विकास करने के लिये और वीतरागी परिणति को विकास करने के लिये मुनि सूर्य समान हैं। जैसे कमल को खिलाने में सूर्य निमित्त है... सवेरे कमल खिलता है न कमल ? वैसे भगवान सन्त उसको कहते हैं कि जिसकी वीतरागी परिणति खिलने में सूर्य समान है। आहाहा! व्यवहार, दया, दान, व्रत के परिणाम खिलने में वह (आश्रय) है नहीं। आहाहा! समझ में आया ? समझ में आता है कुछ ?

ऐसे आसन्नभव्य मुनिश्वर... ओहोहो! जिसकी मुक्ति निकट है। ऐसा चारित्र... चारित्रवन्त तो अलौकिक है, परन्तु ऐसा चारित्र क्या चीज़ है, वह लोगों को सुनने में दुर्लभ हो गयी है। आहाहा! ऐसे आसन्नभव्य... **प्रचण्ड सूर्य समान...** वापस भाषा ली है न! आहाहा! अपने चारित्ररूपी सरोवर के कमल के समूह को—निर्मल वीतरागीदशा को प्रचण्ड सूर्य समान... आहाहा! **ऐसे जो अति-आसन्नभव्य मुनीश्वर बाह्य प्रपंचरूप**

अगुप्तिभाव छोड़कर,... आहाहा! कहते हैं, शुभविकल्प है, वह तो सब प्रपंच है। समझ में आया? पंच महाव्रत का परिणाम, २८ मूलगुण का परिणाम, श्रावक के बारह व्रत के परिणाम—सब विकल्प प्रपंच है, राग का प्रपंच है। कैसी टीका की है, लो! यह पसन्द नहीं आयी। आहाहा! **बाह्य प्रपंचरूप अगुप्तिभाव छोड़कर,...** बाह्य प्रपंच अर्थात् शुभविकल्प यह बाह्य प्रपंच है, यह अगुप्तिभाव है। **छोड़कर... 'चत्ता'** है न ८८ में? **त्रिगुप्तिगुप्त-निर्विकल्प परमसमाधिलक्षण से लक्षित...** आहाहा! मन, वचन और काया, उसका शुभभाव, उससे हटकर **त्रिगुप्तिगुप्त...** आनन्दस्वरूप में गुप्त हो गये।

निर्विकल्प परमसमाधि... आहाहा! शुभराग था, वह आकुलता थी, दुःख था, उसे छोड़कर **त्रिगुप्तिगुप्त-निर्विकल्प परमसमाधि...** परम शान्ति, परम आनन्द की लहर ऐसे लक्षित **अति-अपूर्व आत्मा को ध्याते हैं,...** आहाहा! ऐसे अपूर्व आत्मा को... आत्मा तो है ही है, परन्तु वीतराग परिणति के द्वारा ध्याते हैं, वे अपूर्व आत्मा को ध्याते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कभी नहीं किया था, अनन्त काल में नहीं। **अपूर्व आत्मा को ध्याते हैं,...** पूर्व में कभी तीन काल में नहीं ध्याया था। वापस अति अपूर्व, ऐसा।

वे मुनीश्वर प्रतिक्रमणमय परमसंयमी होने से ही... लो। अन्तर की वीतराग आनन्द की दशा में रमनेवाले... प्रतिक्रमणमय... यह पर्याय अभेद हो गयी। **परमसंयमी होने से ही...** यह परमसंयमी। **निश्चयप्रतिक्रमणस्वरूप हैं।** सच्ची प्रतिक्रमणस्वरूप पर्याय अभेद हो गयी। आहाहा! यह प्रतिक्रमण। शाम-सवेरे करते हैं न पहाड़े। ऐ मेघाणी! प्रतिक्रमण किये होंगे या नहीं? गये होंगे नहीं पर्यूषण में सब? संवत्सरी में जाना पड़े... चलो, नहीं तो जैन नहीं गिने जायेंगे, जाति से बाहर करेंगे। अरेरे! यह प्रतिक्रमण... बापू! अभी धर्म, आत्मा क्या चीज़ है और दोष किस प्रकार के हैं—दोनों के भेदविज्ञान किये बिना पर से हटकर स्वरूप में नहीं आ सकेगा—आ नहीं सकेगा।

ऐसे मुनि को प्रतिक्रमण कहा जाता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल ५, मंगलवार, दिनांक - २७-७-१९७१
श्लोक - ११८, गाथा - ८९, प्रवचन-७८

यह नियमसार चलता है, परमार्थ प्रतिक्रमण अधिकार। सच्चा—यथार्थ—निश्चय प्रतिक्रमण किसको कहते हैं, वह अधिकार है। ११८ कलश है। ११८ कलश है न ऊपर? टीका तो हो गयी ८८ गाथा की।

अथ तनुमनोवाचां त्यक्त्वा सदा विकृतिं मुनिः,
सहज-परमां गुप्तिं सञ्ज्ञान-पुञ्ज-मयी-मिमाम्।
भजतु परमां भव्यः शुद्धात्म-भावनया समं,
भवति विशदं शीलं तस्य त्रिगुप्तिमयस्य तत्॥११८॥

क्या कहते हैं? **श्लोकार्थः—मन-वचन-काय की विकृति को सदा छोड़कर,...** जितने शुभ-अशुभभाव हैं, वे सब विकृतिभाव हैं। उसको छोड़कर... प्रतिक्रमण है न? (अर्थात्) उससे हटकर... मन-वचन-काया के निमित्त में होनेवाले शुभ और अशुभभाव जो अशुद्धभाव (हैं, उस) विकृति को सदा छोड़कर... यह तो नास्ति से बात की। **भव्य मुनि...** (अर्थात्) लायक आत्मा—धर्मात्मा **सम्यग्ज्ञान के पुंजमयी इस सहज परम गुप्ति को...** कहते हैं कि अपना त्रिकाल स्वभाव जो ज्ञान और आनन्द है, उसमें ज्ञान में एकाग्रता होना, अशुद्धता को छोड़कर शुद्धता में एकाग्रता होना, यह गुप्ति है, वह प्रतिक्रमण है, वह धर्मध्यान है, वह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा!

परम गुप्ति को शुद्धात्मा की भावनासहित... क्या कहते हैं? भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य ध्रुव नित्यानन्द ऐसा जो शुद्ध आत्मा, उसकी भावना—द्रव्य में एकाग्रता—गुप्ति को यहाँ प्रतिक्रमण कहते हैं (और) अगुप्ति को अप्रतिक्रमण कहते हैं। अगुप्ति का भाव शुभ और अशुभ दो भाव, वह अगुप्तिभाव है। उससे रहित अपना ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा उसमें ज्ञान की एकाग्रता, वह गुप्ति और उसके साथ पूरे द्रव्य में एकाग्रता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, अनन्त काल में कभी किया नहीं। वस्तु पूरी अखण्ड

प्रभु सच्चिदानन्द आत्मा—सत् अर्थात् शाश्वत्—अविनाशी, चिद् और आनन्द जिसका त्रिकाली अविनाशी स्वभाव है, ऐसा शुद्धात्मा, उसकी भावना... भावना का अर्थ शुद्ध चैतन्यद्रव्य में एकाग्रता। आहाहा!

जो पुण्य और पाप की ओर की दशा और दिशा है, उसकी दिशा परसन्मुख है, दशा अशुद्ध है। शुभ-अशुभभाव, यह अशुद्धदशा है और उसकी दिशा परसन्मुख है। आहाहा! तो शुद्धदशा, अशुद्ध को छोड़कर—व्यय कर, शुद्धदशा का उत्पन्न करना... किसके आश्रय से? त्रिकाली ध्रुव के आश्रय से। आहाहा! नित्यानन्द प्रभु सच्चिदानन्द शाश्वत् वस्तु ध्रुव जो एक समय की पर्याय से भी पृथक् है, आहाहा! ऐसा शुद्धात्मा, उसकी भावना, वह पर्याय है। शुद्धात्मा, वह त्रिकाली द्रव्य है और उसकी भावना (अर्थात् द्रव्य) सन्मुख में एकाग्रता, वह पर्याय है। देखो! द्रव्य और पर्याय—दो ले लिये। ऐसी चीज़ जैनदर्शन के सिवा अन्यत्र होती नहीं। वह वस्तु का यथार्थ स्वरूप है। भगवान आत्मा... यहाँ दो बातें लीं। अशुद्धभाव को छोड़कर ज्ञान का पुंजरूप सम्यग्ज्ञान की पर्याय, उसके साथ, अकेले ज्ञान में एकाग्रता नहीं, परन्तु पूरे द्रव्य में एकाग्रता। आहाहा! समझ में आया?

सहज परम गुप्ति को शुद्धात्मा की भावना सहित... भगवान पूर्णानन्दस्वभाव की अपनी एकाग्रता सहित **उत्कृष्टरूप से...** यहाँ तो मुनि की बात लेनी है न! चौथे गुणस्थान में सम्यग्दर्शन में भी अपनी शुद्ध ध्रुव आत्मा में एकाग्रता तो होती है। उसके बिना सम्यग्दर्शन-ज्ञान नहीं होता। ...भाव यहाँ भी ऐसा तो होता है। आहाहा! चैतन्यकन्द प्रभु सहजानन्द की मूर्ति आत्मा परमेश्वरस्वरूप ऐसा शुद्धात्मा, उस सन्मुख की एकाग्रता, वह जघन्य एकाग्रता, वह सम्यग्दर्शन है। जघन्य समझते हो? थोड़ा। यहाँ तो मुनि की व्याख्या है, तो **भावना सहित उत्कृष्टरूप से...** अन्दर में ध्रुव में उग्ररूप से लीन होना, द्रव्य का आश्रय उग्ररूप से लेना। आहाहा! अगम्य बात। यही वस्तु है। ध्यान की पर्याय, ध्यान तो पर्याय है—अवस्था है और अवस्था, त्रिकाली द्रव्य में एकाग्र होते हैं तो यह अवस्था उत्पन्न होती है। दया, दान, व्रत आदि शुभाशुभ परिणाम में एकाग्र होती है तब तो वह तो अशुद्धता है। आहाहा! और उसमें एकाग्रता से लाभ मानना, शुभपरिणाम में एकाग्रता, अशुभपरिणाम में एकाग्रता, वह तो मिथ्यात्व है। भगवान आत्मा पूर्ण ध्रुव

शुद्धात्मा... आहाहा! पुण्य-पाप का भाव तो अशुद्ध हो गया, वह अनात्मा है। पर्याय में वह अनात्मा है। आहाहा!

शुद्धात्मा त्रिकालीबिम्ब प्रभु ध्रुव की एकाग्रता (अर्थात्) उसकी भावना... भावना अर्थ से विकल्प नहीं। चिन्तन करना कि यह ऐसा है—ऐसा नहीं। शुद्धस्वरूप में एकाग्रता का नाम भावना कहने में आता है। आहाहा! वह निर्विकल्प पर्याय है। भावना (अर्थात्) राग के सम्बन्ध बिना की शुद्ध आत्मा में एकाग्रता, वह वीतरागी पर्याय है। आहाहा! है पर्याय—अवस्था—हालत, परन्तु है वीतरागी, उसका नाम प्रतिक्रमण और उसका नाम सच्ची गुप्ति कहा जाता है। आहाहा! देखो! जिनेन्द्र का मार्ग। जिनेन्द्र के अतिरिक्त अन्यत्र ऐसी चीज़ कहीं होती नहीं। क्यों? 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्' अशुद्धता का व्यय करके, शुद्ध ध्रुव का आश्रय करके, शुद्धता उत्पन्न (की), तो उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों आ गये। समझ में आया? आहाहा!

ऐसी चीज़ सन्तों ने जगत के समक्ष प्रसिद्ध की। सर्वज्ञ जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा की सभा में इन्द्र के समक्ष और गणधरों के समक्ष परमात्मा की दिव्यध्वनि में यह आया। लालचन्दजी! आहाहा! भगवान! एक बार सुन तो सही, कहते हैं। तेरी चीज़ तो अन्तर अनन्त... अनन्त... अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त स्वच्छता, अनन्त प्रभुता, अनन्त प्रभुता से भरा पड़ा प्रभु आत्मा है। आहाहा! उसमें से अनन्तवें भाग में प्रभुता प्रगट हो, उसका नाम सच्चा प्रतिक्रमण और सच्चा ज्ञान और सच्ची गुप्ति कहने में आता है। आहाहा! लोगों को निश्चय का ऐसा लगे (कि) कुछ अन्दर व्यवहार... व्यवहार... व्यवहार होता है, परन्तु वह तो छोड़नेयोग्य है। है अवश्य। व्यवहार बीच में (नहीं) आता है, ऐसा नहीं, आता है, परन्तु वह वस्तु (स्वरूप से) धर्म नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : धर्म का कारण तो सही।

पूज्य गुरुदेवश्री : कारण-फारण है नहीं, यह तो व्यवहार से कहा जाता है। कारण-फारण कैसा? कारण का निरूपण दो प्रकार का है, कारण तो एक ही है। समझ में आया? आया न? कि मोक्षमार्ग का निरूपण दो प्रकार से है। मोक्षमार्गप्रकाशक २५६ पृष्ठ। हमारे गुजराती में है। हिन्दी में (जो) पृष्ठ हो वह ठीक। इतना ही होगा।

'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग:' भगवान उमास्वामी का सूत्र है। यह निश्चय सम्यग्दर्शन की बात है, व्यवहार की बात नहीं है वहाँ। 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग:' है, यह सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र ध्रुव के आश्रय से उत्पन्न होनेवाली पर्याय है। समझ में आया? (एक) पर्याय उत्पन्न होती है, एक पर्याय व्यय होती है, ध्रुवपने कायम रहता है। आहाहा! समझ में आया? ध्रुव, वह सामान्य है, उत्पाद-व्यय वह विशेष है। उत्पाद-व्यय है, वह व्यवहार(नय) का विषय है, ध्रुव निश्चय (नय) का विषय है। समझ में आया?

तो यहाँ कहते हैं... ओहो! बहुत संक्षिप्त में, पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि थे ९०० वर्ष पहले। अमृतचन्द्राचार्य के बाद में हुए हैं। दिगम्बर मुनि—सन्त जंगल में रहते थे। परमागम जिसके मुख में से निकलता था। छद्मस्थ मुनि। मुनि वह क्या? छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलनेवाले। आहाहा! वह कोई दशा परमेष्ठी दशा! उनके मुख में से वीतरागभाव ही निकलता था, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वह यह वीतरागभाव। भगवान आत्मा शुद्धात्मा... पहले तो ऐसा कहा कि गुप्ति तो ज्ञानस्वरूप भगवान में एकाग्र होना, वह गुप्ति। परन्तु अकेले ज्ञान में नहीं, पूरे आत्मा में एकाग्र होना, इसलिए 'शुद्धात्मा की भावनासहित' ऐसा लिया है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म भाव है भैया! यह तो नियमसार है न? नियमसार की व्याख्या। नियम अर्थात् मोक्ष का मार्ग, सार अर्थात् व्यवहाररहित। यह पहले आ गया है। समझ में आया?

अरे! जन्म-मरण का फेरा चौरासी के अवतार अनन्त बार किये, भाई! उसने नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार ली। ओहोहो! पंच महाव्रत, २८ मूलगुण आदि पाल करके पुण्यभाव से स्वर्ग लिया, परन्तु आत्मा क्या है, उसका पता नहीं लिया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो...' पण्डितजी! छहढाला में आता है न? दौलतरामजी। आहाहा! 'पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' उसका अर्थ क्या हुआ? कि जितना पंच महाव्रत आदि पालन किया, वह सब तो दु:खरूप था। पण्डितजी! बराबर है? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' इसका अर्थ क्या हुआ? छहढाला में कहा है।

(आत्मा सन्मुख होना) यह सुखरूप है और पंच महाव्रत आदि की क्रिया, वह दु:खरूप है। इतना किया परन्तु सुख न पाया, उसका अर्थ क्या हुआ? आहाहा! बराबर है? छहढाला में है यह तो। बहुतों को कण्ठस्थ है। पाठशाला में पढ़ाते हैं। चीज़, यह तो मूल चीज़ है। नौवें ग्रैवेयक जैन साधु दिगम्बर हो, उसके बिना कोई नौवें ग्रैवेयक जा नहीं सकता। अन्यमति का साधु नौवें ग्रैवेयक नहीं जा सकता। दिगम्बर मुनि पंच महाव्रत, २८ मूलगुण और जिसको चमड़ा उतारकर क्षार-लवण छिड़के, तो भी क्रोध न करे, क्षमा (धारे)। परन्तु वह सब बाह्य लक्ष्य से है, वह अशुद्धपरिणाम है। आहाहा! गजब बात है। यह अशुद्ध परिणाम दु:खरूप है, ऐसा कहते हैं। 'आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो' का क्या अर्थ हुआ? यह अशुद्ध परिणाम से रहित... अशुद्ध परिणाम जो दु:खरूप था, उसमें आनन्द आया नहीं, आत्मा के सुख का अंश आया नहीं। आहाहा!

वह कहते हैं, इस विकृति को छोड़, प्रभु! इस अशुद्धभाव का आश्रय, लक्ष्य छोड़ दे। आहाहा! भगवान ज्ञानस्वरूपी प्रभु की पर्याय में ज्ञान का पुंज प्रगट हो; राग का नहीं, विकल्प का नहीं और ज्ञान के पुंज के साथ पूरे द्रव्य में एकाग्रता हो... आहाहा! उसमें अनन्त गुण की एकाग्रता है। जितनी गुण की संख्या है, उतने में एकाग्रता है। उसमें इतना अंश निर्मल आनन्द का अंश, शान्ति का अंश; शान्ति अर्थात् चारित्र, आनन्द अर्थात् सुख; स्वच्छता का अंश, प्रभुता का अंश, परमेश्वरता का अंश सब प्रगट हो, अशुद्धता बिना की यह चीज़ (-पर्याय) को यहाँ गुप्ति और प्रतिक्रमण और धर्म कहते हैं। आहाहा!

भजो। उत्कृष्टरूप से भजो। ऐसा शब्द है न? आहाहा! **भजतु... भजतु** ऐसा तीसरे पद में है। ... भजता का अर्थ वह है। आहाहा! प्रभु शुद्ध आत्मा है, उसको अनुसरकर, अनुभव (अर्थात्) उसको अनुसरकर हो। निमित्त को या राग को अनुसरकर होना, वह तो मलिनभाव है। समझ में आया? कहो, पूनमचन्दजी! क्या वीतरागदेव सिवाय यह कहीं होगा दूसरे में? किसके साथ समन्वय करना? आहाहा! सर्व धर्म-बर्म नहीं। वीतरागमार्ग एक ही धर्म है, दूसरा कोई धर्म है ही नहीं। कहीं धर्म दूसरे है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! वस्तु की स्थिति, यह जैनधर्म है। जैनधर्म कोई

सम्प्रदाय नहीं है। वस्तु त्रिकाली जिनस्वरूपी प्रभु वीतरागभाव का पुंज प्रभु आत्मा है, उसमें एकाग्र होने से जो वीतरागपर्याय प्रगट हो, वह जैनधर्म है। समझ में आया?

द्रव्य है, पर्याय है, पर्याय में उत्पाद-व्यय है, द्रव्य सदृश है। आहाहा! देखो न! 'छोड़कर' में व्यय कहा है, भाई! भावना कही, वह उत्पाद कही, शुद्धात्मा को ध्रुव कहा। आहाहा! गजब! सन्तों की कथनी—दिगम्बर मुनियों की कथनी परमेश्वर के पेट को स्पर्श दे, ऐसी कथनी है। आहाहा! अनादि सनातन परम मार्ग यह है। समझ में आया? कितना एक गाथा में—एक कलश में डाला है! तीन लाईन भी पूरी नहीं हैं। लीटी समझते हो, पंक्ति। तीन पंक्ति पूरी नहीं, उसमें ऐसा डाल दिया है, देखो! आहाहा!

त्रिगुप्तिमय ऐसे उस मुनि का वह चारित्र निर्मल है। ऐसे, अशुद्धता को छोड़कर भगवान शुद्धात्मा में एकाग्र होना और वीतरागी पर्याय की उत्पत्ति होना, यह मुनि का चारित्र निर्मल है। समझ में आया? यह प्रतिक्रमण आदि सब चारित्र के अन्तर्भेद हैं। यह चारित्र का अधिकार चलता है। प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना, ये सब चारित्र के (भेद हैं)। पहले आ गया है। 'अब चारित्र कहूँगा।' है न भाई? प्रतिक्रमण की शुरुआत करते हुए। शुरुआत में कहा है। चारित्र निश्चयचारित्र का अधिकार है। पाँच गाथा रतन की आ गयी न? देखो! ७६, नहीं? अब परम चारित्र कहूँगा। देखो! पृष्ठ १४७ है। '**शुद्धनिश्चयात्मपरमचारित्रं दृष्टव्यं**' अन्तिम लाईन है। १४७ पृष्ठ। अन्तिम लाईन। '**शुद्धनिश्चयात्मपरमचारित्रं दृष्टव्यं**' 'शुद्धनिश्चयचारित्र देखनेयोग्य है।' अन्तिम लाईन है। हिन्दी... हिन्दी... है न। यह चारित्र की सूचना का कथन है। अन्त में है वह। उसमें आगे है। मूल पाठ है। यह तो हिन्दी में अर्थ लिया है, देखो! मूल पाठ क्या है, देखो! '**एरिसयभावणाए ववहारणयस्स होदि चारित्तं णिच्छयणयस्स चरणं एत्तो उड्ढं पवक्खामि।**' सच्चा चारित्र जो निश्चय है... वह अभी कहेंगे। प्रतिक्रमण के अधिकार में चारित्र का ही अधिकार है। सम्यग्दर्शन अनुभवसहित स्वरूप की रमणता शुद्धता, वह चारित्र है। बीच में पंच महाव्रतादि विकल्प उठते हैं, वह चारित्र नहीं, वह चारित्र में मल है। आहाहा! गजब बात है।

यहाँ (अज्ञानी) तो कहे, पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण पालन करे, वह

साधु। अट्ठाईस मूलगुण और पंच महाव्रत तो राग है, विकल्प है। उस अशुद्धता को पाले? यह तो व्यवहारनय का कथन है। उसमें ऐसा (भाव) बीच में आता है। व्यवहार होता है, नहीं होता है—ऐसा नहीं। परन्तु वह व्यवहार है, वह मलिन है, उसको 'छोड़कर' ऐसा कहा यहाँ। आहाहा! 'भव्य मुनि' ऐसा लिया है न? योग्य आत्मा, मोक्ष जाने के योग्य हो गया है। लो, **त्रिगुप्तिमय ऐसे उस मुनि का वह चारित्र निर्मल है।** लो, यह चारित्र की व्याख्या है। आत्मा के त्रिकाली स्वभाव में एकाग्रता जघन्यरूप से होना, वह सम्यग्दर्शन है और वह सम्यग्ज्ञान है और द्रव्य में उत्कृष्टरूप से एकाग्रता होना, यह मुनिपना चारित्र है। आहाहा! समझ में आया? यह गाथा पूरी हुई, लो। ८८। ८९, ध्यान की व्याख्या करते हैं अब।

'मोत्तूण अट्टरुद्दं' ८९ गाथा। ८९ कहते हैं न? आठ और नौ। **'मोत्तूण अट्टरुद्दं झाणं जो झादि धम्मसुक्कं वा।'** देखो! यह धर्म का ध्यान करना, ऐसा कहे धर्मध्यान। वे कितने ही धर्मध्यान अर्थात् शुभभाव। यहाँ तो कहे, धर्म का स्व-आश्रय से ध्यान करना, वह धर्मध्यान। धन्नालालजी! ऊँची (और) यह सत्य बात। हमारे पण्डितजी स्पष्टीकरण कराते हैं। वही सत्य है। शुभभाव, वह वास्तव में सत्य की अपेक्षा से असत्य है। मार्ग तो ऐसा है, भगवान! ऐसा निर्णय किये बिना कभी आगे बढ़ेगा नहीं। आहाहा! अभूतार्थ कहो, असत्यार्थ कहो। व्यवहार असत्यार्थ है, निश्चय सत्यार्थ एक ही चीज़ है। आहाहा! अरेरे! ऐसा समय मिला मनुष्यपना, उसमें जिनेन्द्रदेव की वाणी, उसमें इस बात का निर्णय यर्था न करे... आहाहा! परसों एक पत्र आया है। भाई हेमचन्द, नहीं? नियम लिया है। तुम्हारे भोपाल का है भैया! इंजीनियर। इंजीनियर है न वह? वह नहीं? हेमचन्द। ६०० वेतन। अपने बालब्रह्मचारी हुआ न? २५ वर्ष की उम्र है। पण्डितजी!

भोपाल का है। हमारे डालचन्दजी के गाँव का है। ६०० वेतन, २५ वर्ष उम्र हुई, बालब्रह्मचारी। छह भाई हैं, माँ-बाप हैं, सब है। गत वर्ष आया था यहाँ। महाराज! नियम लेना (चाहता हूँ) आजीवन बालब्रह्मचारी। अरे भाई! २४ वर्ष की उम्र में आज्ञा बिना हम नहीं दे सकते। किसी की आज्ञा—पिताजी की आज्ञा बिना.... २४ वर्ष की उम्र थी गत वर्ष। अब तो २५ है। सारा परिवार लेकर आया था वहाँ जयपुर। जयपुर (में) नियम लिया न सभा में! परसों पत्र आया है। अरे महाराज! अरेरे! ऐसा मनुष्यपना मिला

और यदि सम्यग्दर्शन पाया नहीं, अरे! चौरासी के अवतार कहाँ तक? वैसे व्यक्ति वैरागी है। ६०० वेतन है, २५ वर्ष की उम्र में बालब्रह्मचारी हुआ। इंजीनियर है। भाई इनके गाँव का है डालचन्दजी। वह दूसरी (जगह) रहते हैं, पीपलानी या कहाँ? पास ही है।

वह पत्र आया था परसों। बहुत वैराग्य... अरे! चौरासी के अवतार, जन्म-मरण मिटा नहीं और सम्यग्दर्शन यदि पाया नहीं तो क्या हाल होगा? अनन्त काल भविष्य का कहाँ निकाले? ऐसा पहले दुःख का डर होना चाहिए। चार गति का दुःख हो, नारकी का, ऐसा नहीं। चारों गति दुःखरूप है। स्वर्ग में भी दुःखी है। कषाय अग्नि से जला हुआ है वह भी। समझ में आया? व्यवहार से स्वर्ग का... है, निश्चय से तो चारों गति दुःखरूप दशा ही है। उसमें रहना, रुलना... आहाहा! कहाँ अवतार हो? यह मिथ्यात्व जब तक है, तो मिथ्यात्व में तो अनन्त भव करने की सामर्थ्य है। निगोद या एकेन्द्रियादि का भव करने की ताकत है, भाई! भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसका आश्रय ले, सम्यग्दर्शन हो, बस वही संवर-निर्जरा और मोक्ष है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और साथ में स्वरूपाचरण (चारित्र)—वह सब स्वद्रव्य के आश्रय से होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब दुःखी हैं। इन्द्र भी दुःखी है न? क्या बाहर में सुख है? इन्द्राणी पर लक्ष्य जाता है तो राग होता है। अंगारा है, शास्त्र तो ऐसा कहते हैं।

पंचास्तिकाय में कहते हैं कि अंगारों में जलता है। पुण्यभाव करके स्वर्ग में गया, वह अंगारों में जलता है। वहाँ धूल भी सुख नहीं। विषय में सुख है? इन्द्राणी जैसी करोड़ों इन्द्राणियाँ हो तो भी क्या है? उस ओर लक्ष्य जाता है तो अशुभभाव अंगारा है। शुभभाव राग है, (वह भी) अंगारा है तो अशुभ की बात क्या? वह राग आया न पण्डितजी! छहढाला में अन्त में है। 'राग आग दाह दहै सदा, तातैं समामृत पीजिये।' शुभ-अशुभभाव दोनों राग दाह है। हमने बहुत बार भजा है, कहते हैं। विषयकषाय में धूल में (सुख) है नहीं। स्त्री में सुख है, पैसे में सुख है, इन्द्राणी में सुख है (ऐसा)

माननेवाला मूढ़ है, मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। जिसमें (सुख) नहीं, उसमें मानना, वही मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! पण्डितजी! है ही नहीं (और) मानना, कहाँ से है? कहाँ से होता है? भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ अतीन्द्रिय आनन्द से लबालब भरा है। वहाँ सुख है। (पर में) धूल में सुख नहीं। पर में तो नहीं, परन्तु पुण्यभाव और पापभाव में सुख नहीं। यों तो पहले कहा कि नौवें ग्रैवेयक गया, पंच महाव्रत पाला, वह तो दुःख है, राग है, आग है, अग्नि है, शुभभाव भी भट्टी है कषाय अग्नि की। भगवान आत्मा शीतल सत्‌रूप है। आहाहा! वीतराग स्वभाव अपना त्रिकाली, अकषायस्वभाव प्रभु का त्रिकाली, अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान की प्रभुता से भरा प्रभु त्रिकाली, आहाहा! उसके आश्रय से जो ध्यान होता है, वह धर्मध्यान और शुक्लध्यान कहा जाता है। वह कहते हैं, देखो!

मोत्तूण अट्टरुद्दं झाणं जो झादि धम्मसुक्कं वा।
सो पडिकमणं उच्चइ जिणवर-णिद्दिट्ठ-सुत्तेसु॥८९॥

देखो! जिनवर ने कहे हुए शास्त्र में यह बात है। पूनमचन्दजी! '**जिणवर-णिद्दिट्ठसुत्तेसु**' कुन्दकुन्दाचार्य पुकार करते हैं। आहाहा! जिनवर कथित आगम में—भगवान ने कहे हुए परमागम—वाणी में ऐसा आया है। समझ में आया? नीचे...

जो आर्त रौद्र विहाय वर्त्ते धर्म-शुक्ल सुध्यान में।
प्रतिक्रमण कहते हैं उसे जिनदेव के आख्यान में॥८९॥

आख्यान में... जिनदेव के आख्यान में। आहाहा! जिनेन्द्रदेव को वीतराग परिणति से पूरा प्राप्त हुआ, उनकी वाणी में यह आया है। उसके सिवाय दूसरे में यह बात है नहीं। क्योंकि पर्याय माने, अशुद्धता माने, उससे हटकर दूसरा परिणमन हो सके (ऐसा) माने और वह परिणमन बिना की चीज़ ध्रुव त्रिकाली भी है, वह माने, तब उसको जिनवर के उपदेश का यथार्थ भान हो। समझ में आया? अशुद्धता माने पर्याय में, अशुद्धता छोड़ सकता है परिणमन करके, ऐसा परिणमन माने और ध्रुव में अशुद्धता नहीं तो उसके आश्रय से (शुद्धता) होती है, (ऐसा) ध्रुव को माने तब जिनवर के उपदेश का सार उसको मिला। ऐसी बात जिनवर के अतिरिक्त तीन काल में होती नहीं। समझ में आया? दूसरे से समन्वय करो।

मुमुक्षु : पर्याय में अशुद्धता माने।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में अशुद्धता न हो तो टालना किसको? तब तो सिद्ध हो गया। सिद्ध समान तो द्रव्य है। पर्याय में अशुद्धता माने। (नहीं तो) टाले किसको? है उसको टालना या नहीं है उसको टालना? आहाहा! आचार्य स्वयं जिनवर जैसे तो हैं कुन्दकुन्दाचार्य। वे कहते हैं कि '**जिणवरणिद्दिट्ठसुत्तेसु**' आहाहा! जिनवर भगवान की वाणी, उसके आगम में आया (कि) दो ध्यान को छोड़ना और दो ध्यान को करना, उसका नाम प्रतिक्रमण भगवान के आगम में कहा है। प्रतिक्रमण का अर्थ क्या हुआ? हटना। तो हटना कहाँ से? कोई चीज़ है उसमें से हटना? यहाँ धर्मध्यान को शुद्धभाव लिया है यहाँ पर। आगे आयेगा। निश्चय स्वाश्रित धर्मध्यान होता है। विकल्प शुभ है, वह धर्मध्यान है ही नहीं, वह तो उसको—व्यवहार को धर्मध्यान का उपचार करते हैं। है नहीं। वह आयेगा अभी। टीका देखो। टीका है न!

टीका :—यह, ध्यान के भेदों के स्वरूप का कथन है। ८९। चारों ध्यान। **(१) स्वदेश के त्याग से,...** आर्तध्यान होता है न? स्वदेश का त्याग (अर्थात्) अपना देश छोड़कर कहीं बाहर जाना, (उसमें) दुःख होता है। आर्तध्यान होता है। और **द्रव्य के नाश से...** लक्ष्मी, मकान, आदि का नाश होने से आर्तध्यान होता है। **मित्रजन के विदेशगमन से,...** अपना प्रिय में प्रिय मित्र हो, विदेश जाता हो, तो भी आर्तध्यान होता है। **कमनीय (इष्ट, सुन्दर) कामिनी के वियोग से...** सुन्दर स्त्री... स्त्री का वियोग, उससे अज्ञानी को दुःख होता है, आर्तध्यान होता है। **अथवा अनिष्ट के संयोग से उत्पन्न...** और प्रतिकूल का संयोग उससे **होनेवाला जो आर्तध्यान,...** उत्पन्न होनेवाला आर्तध्यान... पर्याय में आर्तध्यान उत्पन्न होता है, ऐसा कहते हैं। द्रव्य में तो है नहीं, यह आर्तध्यान पर में है नहीं। आहाहा! समझ में आया? अपनी पर्याय में उत्पन्न होता है, उसको आर्तध्यान कहते हैं। आहाहा!

परसों शनिवार रात को यहाँ लड़का गुजर गया, २४ वर्ष का जवान। गाँव में बहुत त्रास हुआ। भाई! गाँव में हड़ताल कर दी। बस का मालिक था, उसके भाई का लड़का। बस में जाता था, दरवाजा खुल्ला था, आधा शरीर बाहर था। ऐसे ट्रक आया। क्या कहते हैं? ट्रक? खटारा। दरवाजा खुल्ला था। आया ऐसे तो दरवाजे को फाड़कर...

उसका आधा शरीर बाहर था तो वह भी घिसट गया। दोनों के बीच में जैसे रोटी बेलते हैं वैसे... परसों शनिवार की रात्रि को बारह बजे लगभग। त्रास... २४ वर्ष का था। दो वर्ष का विवाह। बहुत त्रास हुआ गाँव में। दो दिन हुए। शनिवार... ओहोहो! ऐसे जन्म अनन्त बार किये हैं, भगवान! एक ओर बस तथा एक ओर ट्रक। ऐसा दबा दिया उसको। वहीं का वहीं एक मिनिट में समाप्त हो गया। आहाहा! यहाँ मकान है न? समिति के सामने। सोसायटी के सामने मकान है वहाँ। गाँव में त्रास हो गया। हड़ताल कर दी पूरे गाँव में। यह तो अनन्त बार हुआ है, भगवान! आहाहा!

संयोग का वियोग और वियोग का संयोग। आहाहा! भगवान आत्मा पर के संयोग बिना की चीज़ है, आहाहा! राग के संयोग-वियोग बिना की चीज़ है। वह तो ठीक है, परन्तु नयी पर्याय उत्पन्न होती है, उसे भी संयोग कहा जाता है। पुरानी व्यय होती है, उसको वियोग कहा जाता है। द्रव्य के साथ पर्याय का उत्पाद-व्यय संयोग-वियोग है। आहाहा! वह है, पंचास्तिकाय में पाठ है। शास्त्र में सब पाठ है। संयोग है न? पर्याय उत्पन्न होती है न? संयोग है, वह कोई त्रिकाली नहीं है। पर का संयोग-वियोग... वह तो चीज़ है ही, वह पर तो पररूप है ही। और राग का संयोग-वियोग... राग आता है उत्पन्नध्वंसी... वह तो अशुद्धता का संयोग-वियोग है। परन्तु यहाँ तो पर्याय शुद्ध उत्पन्न हो, आहाहा! उसको भी द्रव्य के साथ संयोग कहने में आता है। दो (भिन्न) चीज़ है न? पर्याय और द्रव्य। आहाहा! ऐसा मार्ग भगवान का। वीतराग जिनवरदेव... आहाहा!

त्रिकाली भगवान ध्रुवस्वरूप परमात्मा निज परमेश्वर उसमें पर्याय उत्पन्न हो, उसको भी संयोग कहा जाता है। आहाहा! जिनवर की वाणी तो देखो! और पुरानी पर्याय का व्यय, वह द्रव्य के साथ पर्याय का वियोग हुआ। भगवान द्रव्यस्वभाव तो संयोग-वियोग बिना की चीज़ है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : संसार तो राग है। वह तो पर्याय—साधारण निर्मल पर्याय। संसार तो उदयभाव है, वह तो विकारभाव है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : संसार की पर्याय का तो संयोग-वियोग तो आया समझ में, परन्तु अपनी पर्याय का... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अपनी पर्याय का संयोग-वियोग यह कहा। वह न समझ में आया तो विशेष कहते हैं। द्रव्यस्वभाव जो ध्रुव एकरूप त्रिकाली परमात्मा अपना स्वरूप है, उसमें पर्याय का उत्पन्न होना (अर्थात्) नहीं था और उत्पन्न हुआ, (वह) संयोग हुआ और पर्याय थी, उसका नाश हुआ, (वह) वियोग हुआ। यह पंचास्तिकाय में पाठ है। संस्कृत टीका। अमृतचन्द्राचार्य। कितनी गाथा में है? खबर नहीं। है पंचास्तिकाय? हाँ, यह। १८, १८। १८ गाथा है।

सो चेव जादि मरणं जादि ण णट्ठो ण चेव उप्पणो।
उप्पण्णो य विणट्ठो देवो मणुसो त्ति पज्जाओ॥१८॥

१८वीं गाथा है। पंचास्तिकाय। 'टीका : जो द्रव्य पूर्वपर्याय के वियोग से...' धन्नालालजी! भगवान आत्मा... सब द्रव्य की बात है, परन्तु अपने तो यहाँ (आत्मा) लेना है न! जो द्रव्य पूर्व अर्थात् पहली पर्याय के वियोग से और उत्तर पर्याय के संयोग से 'होती उभय अवस्था को आत्मसात् करता हुआ, विनाश पाता हुआ और उपजता हुआ देखने में आता है।' आहाहा! संस्कृत पाठ है, उसकी टीका। देखो! '**यदेव पूर्वोत्तरपर्यायविवेकसंपर्का**' ऐसा पाठ है। पूर्व-उत्तर पर्याय। (उत्तर) पर्याय का उत्पन्न होना, पूर्व पर्याय का विवेक होना, विवेक अर्थात् व्यय होना, उत्तर पर्याय का सम्पर्क होना। देखो! द्रव्य में उत्तर पर्याय का सम्पर्क होना। ...संयोग... '**पूर्वोत्तरपर्यायविवेक-संपर्कापादित**' लो, आहाहा! भगवान! कहते हैं कि बाहर के अभ्यास की क्या बात करते हो? भगवान आत्मा में... ओहोहो!

कहा था न वहाँ? जयपुर में कहा था पहले स्वागत में। स्वागत में कहा था। क्या? क्या कहते हो? संवरभाव भी उत्पाद है, संयोग है। पर्याय है न! द्रव्य की पर्याय, वह भी संयोग है। विकारी पर्याय—भाव तो संयोगीभाव है ही। वह तो तादात्म्य, एक समय की पर्याय यहाँ तादात्म्य है। एक समय की केवलज्ञान पर्याय... संवर एकओर रखो, केवलज्ञान की पर्याय को संयोग कहते हैं और व्यय को वियोग कहते हैं। ५४वें कलश में लिया है यहाँ। नियमसार है न, देखो! यह ३८ गाथा। लो, यही पृष्ठ निकला।

ओहोहो! कब कहाँ... ? ऐसा पृष्ठ करते हुए यही पृष्ठ। पृष्ठ ७८। देखो! वहाँ भी लिख दिया, हों! पृष्ठ ७८ है। नीचे श्लोक है ५४। कलश... कलश।

सर्व तत्त्वों में जो एक सार है, जो समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से दूर है... देखो! वहाँ कहा था जयपुर में स्वागत में। दस हजार लोग थे न। उनके बीच में कहा था, भगवान! सुन तू एक बार। यहाँ तो क्षायिकभाव को भी नाश होनेयोग्य (कहा)। उससे भी भगवान आत्मा दूर है। आहाहा! 'दूर' पीछे आया। खबर है न। यह तो पहले दिन गाँव में स्वागत हुआ न! पाण्डाल तो बहुत दूर था न! पाँच मील दूर था। गाँव में स्वागत हुआ। दस हजार लोग। रामलीला न? रामलीला मैदान। वहाँ कहा था। भगवान ऐसा कहते हैं, भाई! चार भाव से दूर, ऐसा आत्मा को परमात्मा पारिणामिकभाव कहते हैं। देखो! **जो समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से दूर है...** केवलज्ञान की पर्याय भी नष्ट होनेयोग्य है, उससे भी ध्रुव दूर है। आहाहा! यह तो परमेश्वर जिनवर का पंथ है। यह कोई कल्पित नहीं। समझ में आया? वह पहले आ गया है टीका में। सात तत्त्व बहिर्तत्त्व है। लो, देखो! पहले आया है न?

'जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण...' मोक्ष की पर्याय भी परद्रव्य है। चिल्लाहट मचा जाये। देखो! ३८ गाथा। पहली लाईन है। ३८ है न? 'जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण वास्तव में उपादेय नहीं है।' देखो! आहाहा! जीवादि सात तत्त्व... संवर, निर्जरा और मोक्ष सहित, ये परद्रव्य हैं, अपना स्वद्रव्य नहीं। त्रिकाली (स्वद्रव्य नहीं), उस अपेक्षा से परद्रव्य। समझ में आया? मोक्ष की पर्याय है न, पर्याय वह भी पर। उससे भी द्रव्य पर। क्योंकि वह तो अंश है। यह त्रिकाली तो अंशी है। बड़ी सूक्ष्म बात है। भाई! यह तो भगवान परमेश्वर त्रिलोकनाथ केवलज्ञानी जिसने एक समय में तीन काल—तीन लोक जाना, वह चीज़ क्या है? आहाहा! जिनवर ने कहे हुए आगम... दूसरों में तो कल्पित किये हुए आगम होते है, वह आगम नहीं। आहाहा! मुनिवरों ने तो गजब काम किया है! यह कहते हैं कि मोक्ष और संवर-निर्जरा की पर्याय उपादेय नहीं। त्रिकाली द्रव्य ज्ञायकभाव, वही एक उपादेय है। आहाहा!

देखो! टीका है। '**जीवादिसप्ततत्त्वजातं परद्रव्यत्वान्न ह्युपादेयम्...**' आहाहा! लोगों

को परम सत्य की बात ऐसी लगती है... आहाहा! धन्नालालजी! यहाँ देखा न! बीस दिन जयपुर में देखा न! लोगों की बहुत लगन। ओहोहो! सवेरे सात से लेकर रात्रि के दस बजे तक एक ही बात। व्याख्यान दो। ...शिक्षण। रात्रि को चर्चा, धमाधम सब। विरोध का अंश कहीं नहीं। कहीं विरोध का अंश नहीं। बापू! मार्ग ऐसा है, सुनो! विरोध करने की चीज़ नहीं है। आहाहा! बहुत, पैसा भी बहुत खर्च किया था भाई गोदिका ने। दो-तीन लाख तो खर्च किया होगा। तीन लाख होगा। २५०० व्यक्ति जीमते थे सुबह-शाम बीस दिन। और बस से गाँव में से लाने का खर्च उसका था। तीन बसें चलती थीं। पाँच मील जाना-आना। सुबह से शाम मुफ्त। सब खर्च उसका। भाई आया था डालाचन्दजी। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, संवर (क्या)? केवलज्ञान भी उपादेय नहीं, (ऐसा) यहाँ तो कहते हैं। केवलज्ञान की पर्याय भी द्रव्य में संयोग से उत्पन्न हुई है। संयोगी उत्पन्न हुई, उसका नाम संयोग। आहाहा! दूसरे समय केवलज्ञान की पर्याय व्यय होगी, वह वियोग। एक समय की पर्याय दूसरे समय नहीं रहती। केवलज्ञान पर्याय है, गुण नहीं। समझ में आया? आहाहा! यहाँ कहते हैं... यहाँ तो अनिष्ट के संयोग में उत्पन्न होनेवाला आर्तध्यान आया न? उसमें से यह बात आयी। आहाहा!

फिर दूसरा **तथा (२) चोर-जार-शत्रुजनों के बध-बन्धन सम्बन्धी महा द्वेष से...** आहाहा! **उत्पन्न होनेवाला जो रौद्रध्यान,...** चोर लोग आवे, काटे, छुरा मारे, उस समय रौद्रध्यान... मार डालने को ऐसा करूँगा। **वे दोनों ध्यान स्वर्ग और मोक्ष के अपरिमित सुख से प्रतिपक्ष...** यहाँ स्वर्ग के सुख को भी अपरिमित लिया। बहुत काल रहता है न? व्यवहार... व्यवहार... समझ में आया? है तो दुःख, परन्तु व्यवहार से सुख कहने में आता है। आहाहा! स्वर्ग और मोक्ष के अपरिमित सुख से... देखो! दोनों में 'अपरिमित' शब्द लिया है। स्वर्ग में भी असंख्य वर्ष (रहते) हैं न? असंख्य अरब वर्ष का आयुष्य है न बड़ा। ३१-३१ सागर, ३३-३३ सागर। **अपरिमित सुख से प्रतिपक्ष...** भगवान आत्मा के मोक्षसुख की बात ही क्या? वह तो अतीन्द्रिय आनन्द है। ऐसा जो आत्मा का सुख, उससे प्रतिपक्ष... विजातीय, वह तो विजातीय (सुख है अर्थात्) दुःख ही है, परन्तु उसको व्यवहारसुख का आरोप दिया व्यवहारनय से। (वह तो) दुःख ही है,

अंगारा है। क्या धूल में सुख है? सुख तो आत्मा आनन्दमूर्ति प्रभु, जिसका अतीन्द्रिय आनन्द का एक समय के स्वाद (के समक्ष) सारे इन्द्र और इन्द्राणी का सुख सड़ा हुआ तृण जैसा लगे। आहाहा! समझ में आया?

सम्यग्दर्शन में जो अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है, सम्यग्दर्शन में चौथे गुणस्थान में... अनन्त गुण की पर्याय व्यक्त होती है तो आनन्द की पर्याय भी स्वाद में आयी। उस आनन्द के आगे सारे देव और देवी का सुख सड़ा हुआ तृण है। आहाहा! सुख है नहीं, भाई! माने अज्ञानी मूढ़। शरीर सुन्दर, खाने-पीने की ऐसी अच्छी (सुविधा है तो) सुख है। वह सुख नहीं, प्रभु! वह तो राग है। अग्नि दाह है, आहाहा! दुःख को सुख मानना, वही मिथ्यात्वभाव है। है, उससे उल्टा माना, वह विपरीत अभिनिवेश है। आहाहा! पण्डितजी! 'स्वर्ग-मोक्ष के सुख' लिखा है।

संसारदुःख के मूल होने के कारण उन दोनों को निरवशेषरूप से (सर्वथा) छोड़कर,... देखो! भगवान! तुझे आत्मा की शान्ति लेना हो तो आर्तध्यान, रौद्रध्यान सब निःशेषरूप से छोड़ना। आहाहा! वास्तव में तो शुभराग भी आर्तध्यान है। उसमें आत्मा के प्राण पीड़ित होते हैं। आहाहा! चैतन्य हीरा चमकता प्रभु अन्दर निर्मलानन्द का नाथ प्रभु, उसमें सुख है, उसके सिवा दूसरी किसी चीज़ में सुख है नहीं। तो कहते हैं कि कल्पना जो है शुभ-अशुभ की, (उसे) सर्वथा छोड़ करके... लो, है न? निरवशेष है न? निर्-अवशेषः... कुछ भी बाकी रखे बिना सर्वथा विकल्प छोड़ दे। भगवान निर्विकल्पानन्द प्रभु का आश्रय कर। अब कहते हैं, देखो!

(३) स्वर्ग और मोक्ष के निःसीम (-अपार) सुख का... वह अपरिमित था, यहाँ निःसीम लिया। एक ही (अर्थ) है। **मूल ऐसा जो स्वात्माश्रित निश्चय-परम-धर्मध्यान,...** देखो! यथार्थ धर्मध्यान उसे कहते हैं। स्व-आत्मा आश्रित। शुभविकल्प धर्मध्यान कहा है, वह तो व्यवहार है, परमार्थ नहीं। आहाहा! कितना स्पष्ट किया है! **स्वात्माश्रित निश्चय-परम-धर्मध्यान,...** भगवान चैतन्यबिम्ब प्रभु अपना परमेश्वर, उसके आश्रय से, उसको ध्येय बनाकर जो पर्याय उत्पन्न होती है, वह निश्चय धर्मध्यान है। है तो वह पर्याय। आहाहा! कठिन बात, भाई! वह निश्चय-धर्मध्यान... यह ३८ गाथा में आ गया है, भाई! वह भी परतत्त्व है, बहिर्तत्त्व है। आहाहा! गजब बात है!

आहाहा! महाप्रभु सच्चिदानन्द निर्मलानन्द प्रभु आत्मा ध्रुव को स्वद्रव्य कहते हैं। उसमें यह पर्याय उत्पन्न होती है, उसको वास्तव में बहिर्तत्त्व कहते हैं। अन्त:तत्त्व से बाह्य उसको बहिर्तत्त्व (कहा)। आहाहा! कठिन बात, भाई! दिगम्बर मुनियों की कथनी केवलज्ञानी को स्पर्शकर हुई है। ओहोहो!

लोग मध्यस्थता से स्वाध्याय नहीं करते और फिर यह एकान्त है... यह एकान्त है (ऐसा कहते हैं)। भगवान! सुन तो सही, प्रभु! तेरा स्वभाव-धर्म शुद्ध एकान्त ही है। आहाहा! वह पर्याय से दूर है। एकान्त पर्याय से दूर है। (उसमें) अनेकान्त? ऐसा भगवान ध्रुव चैतन्य प्रभु... कहते हैं, ऐसा स्वात्मा, उसके आश्रित निश्चय परमधर्मध्यान... वह कहते हैं अभी कि धर्मध्यान तो शुभभाव है। शुक्लध्यान में शुद्धोपयोग भाव होता है। झूठी बात है। आहाहा! अरे भगवान! तू आत्मा शुद्ध है न? तो शुद्ध का ध्यान शुद्ध ही है। आहाहा! निमित्त का ध्यान लगाना, वह अशुद्धता है। आहाहा! सर्वज्ञ परमात्मा और समवसरण का ध्यान लगाना, यह शुभभाव है—अशुद्धभाव है। समझ में आया? कठिन बात, भाई!

कहते हैं, **स्वात्माश्रित निश्चय-परम-धर्मध्यान,...** सच्चा परमध्यान—धर्मध्यान... यहाँ तो जरा सी पंच महाव्रत या दया, दान या भगवान का ध्यान सामने खड़ा होकर के कायोत्सर्ग करते हैं न, वह तो विकल्प है, राग है, पराश्रितभाव है। स्व चैतन्य भगवान के आश्रित उत्पन्न हुआ, ऐसा निश्चय धर्मध्यान, परम निश्चय धर्मध्यान, वही एक प्रगट करनेयोग्य है। विशेष शुक्लध्यान की बात आयेगी।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल ६, बुधवार, दिनांक - २८-७-१९७१
श्लोक - ११९, गाथा - ८९, प्रवचन-७९

यह नियमसार शास्त्र है, परमार्थ प्रतिक्रमण (अधिकार)। सच्चा-सत्य स्वरूप अपना जो आत्मा पूर्णानन्द है, उस ओर के झुकाव से दोष का नाश होता है, उसका नाम प्रतिक्रमण कहते हैं। मिथ्यात्व से लेकर सबके प्रतिक्रमण की व्याख्या आयेगी। यहाँ आया है, देखो! ८९ गाथा।

(३) स्वर्ग और मोक्ष के निःसीम (-अपार) सुख का मूल ऐसा... मोक्षमार्ग बताना है न, तो स्वर्ग और मोक्ष का अपार सुख, उसका मूल ऐसा **जो स्वात्माश्रित निश्चय-परम-धर्मध्यान,...** देखो! अपना आत्मा द्रव्यस्वभाव ध्रुवस्वभाव अविनाशी नित्यस्वभाव, उसका आश्रय करने से धर्मध्यान उत्पन्न होता है। समझ में आया? प्रथम में प्रथम धर्मध्यान। **स्वात्माश्रित...** स्व-आत्मा वह पुण्य-पाप से रहित है, कर्म-शरीर से रहित है और एक समय की पर्याय से भी रहित है। आहाहा! ऐसा जो स्व-आत्मा द्रव्यस्वभाव परमपारिणामिकभाव... आहाहा! ऐसा अपना निज आनन्दस्वभाव, उसका आश्रय करने से... है न? **स्वात्माश्रित...** अपने आत्मा के आश्रित... तीन शब्द पड़े हैं। स्व-आत्मा। भगवान का आत्मा भी नहीं। स्व-आत्मा—अखण्ड आनन्द ध्रुवस्वरूप स्व ऐसा आत्मा—उसके आश्रित, वह पर्याय है। त्रिकाल ध्रुवस्वरूप के आश्रित **निश्चय-परम-धर्मध्यान,...** आहाहा! उसको सच्चा परमध्यान और उसको यथार्थ में प्रतिक्रमण कहने में आता है। बीच में थोड़ी शुद्धता है धर्मध्यान में... स्वात्माश्रित में थोड़ी शुद्धता है, शुक्लध्यान में बहुत शुद्धता है।

यहाँ कहते हैं, परम ध्रुव का आश्रय लेकर जो शुद्धता उत्पन्न हुई, वह तो निश्चय प्रतिक्रमण और निश्चय मोक्ष का मार्ग है, परन्तु साथ में थोड़ा विकल्प रहता है—निश्चयसहित का व्यवहार, वह सिद्ध करना है यहाँ। समझ में आया? किसको? चैतन्यध्रुव भगवान सर्वज्ञ वीतरागदेव परमेश्वर ने कहा है वह, ऐसा जो आत्मा ध्रुव नित्य, उसके

आश्रय से अन्तर की दृष्टि लगाकर जो निर्मलता उत्पन्न होती है, वह तो मुक्ति का कारण है। परन्तु बीच में थोड़ी शुद्धता है, (उसके साथ में) अशुद्धता का विकल्प-राग है, उसका फल स्वर्ग है। पण्डितजी! जब तक पूर्णता न हो, तब तक विकल्प का व्यवहार होता है, परन्तु वह व्यवहार निश्चय का कारण है, ऐसा नहीं है। वह व्यवहार पुण्यबन्ध का कारण होकर स्वर्ग के सुख का कारण होता है। ऐसा कहते हैं। पण्डितजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दु:ख है, यहाँ तो व्यवहार को कहते हैं न! दु:ख ही है, परन्तु तीन गति की अपेक्षा से सुविधा—अनुकूलता है तो जरा उपचार से उसको सुख कहा जाता है। ऐसे निश्चय-व्यवहार—दोनों लेते हैं न? कि स्व चैतन्य भगवान अपना आश्रय लेकर जितनी पवित्रता प्रगट हुई, वह तो मुक्ति का कारण है। साथ में जितना विकल्प व्यवहार का रहता है, वह निश्चय मोक्षमार्ग का कारण नहीं, परन्तु वह स्वर्गसुख का कारण, ऐसा बताना है। समझ में आया? आहाहा! कितनी गम्भीर टीका, ओहोहो! **स्वात्माश्रित निश्चय-परम-धर्मध्यान,...** वापस ऐसा लिया न? जितना अन्दर में व्यवहार का भाव-विकल्प रहता है, उसका फल तो स्वर्ग है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : निर्विकल्पदशा में विकल्प कैसा?

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्विकल्पदशा में नहीं, जो निर्विकल्पता है, वह तो स्थिरता ही है। साथ में दूसरा विकल्प है। साथ में कहा न यहाँ? पूर्ण निर्विकल्पता हो तो शुक्लध्यान है। यहाँ तो धर्मध्यान कहना है न प्रथम श्रेणी का। आहाहा! बहुत अलौकिक बात कहते हैं।

कहते हैं कि निश्चय जहाँ स्वद्रव्य का आश्रय लिया, वह तो निश्चय ही है और उसमें जरा राग की मन्दता का भाव, व्रत का, भक्ति का विकल्प ऐसा रह जाता है तो दो (भाव) के दो फल हैं। दो (भाव) का एक फल नहीं। समझ में आया? स्वभाव के आश्रय से जो पवित्रता हुई, वह तो मुक्ति का कारण है और बीच में थोड़ा विकल्प आता है, वह स्वर्गसुख का कारण है, ऐसा (कहा) भाई! निश्चय का कारण नहीं, स्वर्गसुख का कारण है, ऐसा बताना है। दो के दो फल।

मुमुक्षु : स्वर्ग, मोक्ष दो ही बताना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, दो ही बताना है। अपवर्ग अर्थात् मोक्ष और स्वर्ग अर्थात् देव। वह समकिती तो वैमानिक देव होता है न! समकित होने के पश्चात् समकिती भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी में भी उत्पन्न नहीं होता, स्त्री में उत्पन्न नहीं होता। नरक में उत्पन्न नहीं होता। पहले आयुष्य बँध गया हो, वह दूसरी बात है। समझ में आया?

कहते हैं, देखो! यह पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि दिगम्बर सन्त वनवासी थे। ९०० वर्ष पहले (हुए)। श्लोक तो २००० वर्ष पहले का कुन्दकुन्दाचार्य का है। उसकी टीका करते हुए कहते हैं कि धर्मध्यान... कोई ऐसा कहता है कि शुभराग को ही धर्मध्यान कहना।—उसका यहाँ निषेध करते हैं। शुभराग को व्यवहार धर्मध्यान (कहा) और स्व का आश्रय करके जो एकाग्रता, शुद्धता उत्पन्न हुई, वह निश्चय धर्मध्यान है। निश्चय के साथ में व्यवहार है तो दो के दो फल हैं, ऐसा बताते हैं। आहाहा! समझ में आया? अरे! यह मनुष्यपना मिला, उसमें क्या करना है, वह यथार्थ बात समझ में न आवे, उस मनुष्यजन्म का फल क्या? सत्य तो यह है। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज सर्वज्ञ के मार्गानुसारी थे। ओहोहो! तीसरे नम्बर पर आये हैं न वे? 'मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी, मंगलं कुंदकुंदर्यो...' कुन्दकुन्दाचार्य, भगवान के पास गये थे, (ऐसा) जो सिद्ध हो जाये तो दिगम्बर धर्म एक ही सत्य है, ऐसा हो जाये। तो कितनों को अन्दर यह खटकता है। भगवान सिद्ध हो जाये, भगवान के पास गये थे, वहाँ से लाये थे, (ऐसा माने तो) यह धर्म ही एक सत्य हो जाये। डालचन्दजी! ऐसी वस्तु यह एक ही है। आहाहा! क्या कहें? वाणी तो देखो! वाणी में से कैसा नितरता है! समझ में आया?

अब शुक्लध्यान की बात करते हैं। धर्मध्यान की (बात) की। धर्मध्यान के दो प्रकार। एक भगवान आत्मा परमपारिणामिक चैतन्यमूर्ति प्रभु के आश्रय से जो निर्मलता हुई, वह तो वीतरागी पर्याय है। परन्तु पूर्ण वीतरागता नहीं तो साथ में शुभराग है। उस राग का फल स्वर्ग का सुख है। अरागीपरिणति का सुख मोक्ष का सुख है। दोनों ही को असीम कहा है। असंख्य अरब वर्ष रहते हैं न स्वर्ग में! अमर कहते हैं न उसको? दूसरी तीन गतियों की अपेक्षा से उसको अमर कहते हैं न? देव को अमर कहते हैं। बहुत काल रहते हैं, इस अपेक्षा से।

मुमुक्षु : अमरान् देवा....

पूज्य गुरुदेवश्री : अमरा देवा... वे भी मर जाते हैं देह छूटकर। परन्तु बहुत काल की अपेक्षा उसको अमर कहने में आया है। आहाहा!

तथा (४) ध्यान और ध्येय के... ऐसा क्यों लिया? ऐसा क्यों लिया? क्योंकि पंचम काल के मुनि हैं। पंचम काल के मुनि को मोक्ष तो है नहीं। शुक्लध्यान तो अभी है नहीं। अपना स्वरूप भगवान का आश्रय लेकर जितनी पवित्रता प्रगट हुई, वह निश्चय परमध्यान, परम निश्चय धर्मध्यान। और मुनि हैं—पंचम काल के सन्त हैं। (उन्हें) केवल (ज्ञान) तो होगा नहीं तो वह साथ में लिया है कि राग बाकी रह जाता है पुण्य का, उसके (फल में) स्वर्ग जायेंगे। समझ में आया? और अब शुक्लध्यान। उत्कृष्ट बात। अभी है नहीं, परन्तु ध्यान की व्याख्या तो करे न? स्वरूप तो समझावे न? **ध्यान और ध्येय के विविध विकल्परहित,...** देखो! उसमें **विविध विकल्परहित,...** ऐसा लिया। अकेला आत्मा भगवान पूर्णानन्द को ध्येय बनाकर विकल्परहित अन्तर में लीन हो जाना। एक बात। मैं ध्यान करता हूँ, ध्येय आत्मा है—ऐसा विकल्प उसमें नहीं। शुक्ल अर्थात् उज्ज्वल, श्वेत, पवित्र धर्मध्यान, शुक्लध्यान। **अन्तर्मुखाकार...** सर्वथा अन्तर्मुख जिसका स्वरूप है। धर्मध्यान में तो पूर्णता नहीं थी तो (जितना) अन्तर्मुख आकार है, उतना निश्चय परमध्यान (और) जितना विकल्प रहता है, वह परलक्षी है, वह बहिर्मुखाकार है। समझ में आया?

यहाँ तो **अन्तर्मुखाकार...** अकेला भगवान आनन्द का धाम प्रभु जो अपना स्वरूप है, उसमें अन्तर्मुख हो गया है। **सकल इन्द्रियों के समूह से अतीत (-समस्त इन्द्रियातीत)...** दो विशेषण कहेंगे। सकल इन्द्रियों का समूह, उस ओर का लक्ष्य पूर्ण छोड़कर **निर्भेद...** दो बात—इन्द्रियों से रहित, भेद से रहित। धर्मध्यान में तो थोड़ा व्यवहार भेद था विकल्प (था), पूर्ण शुद्धता नहीं है न! यहाँ तो निर्भेद... आहाहा! **परम कलासहित...** केवलज्ञान लेने की परम कलासहित... शुक्लध्यान की बात साथ में कह दी। क्योंकि भविष्य में शुक्लध्यान होकर मुनि को केवलज्ञान प्राप्त करना है। वर्तमान में भले शुक्लध्यान न हो, परन्तु जो शुद्ध (उपयोगी) मुनि है पंचम काल का, एकावतारी

हो जाता है—एक भवतारी। स्वर्ग में जाकर, मनुष्य होकर शुक्लध्यान (लेकर) केवलज्ञान पायेगा। यह शुक्लध्यान का ऐसा स्वरूप है। आहाहा!

मुमुक्षु : उसमें आनन्द तो है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : आनन्द तो दोनों में है। यहाँ अपूर्ण है—धर्मध्यान में अपूर्ण आनन्द है, शुक्लध्यान में बहुत आनन्द है, पूर्ण आनन्द तो बारहवें (गुणस्थान में है), अनन्त आनन्द तो तेरहवें (गुणस्थान में) है, अनन्त अव्याबाध आनन्द तो सिद्ध में है—इतना अन्तर है। आनन्द का अंश तो चौथे गुणस्थान से शुरु होता है। क्योंकि द्रव्यदृष्टि हुई न! स्वद्रव्य कहा न! स्वद्रव्य में तो अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान आदि अनन्त शक्तियाँ पड़ी हैं। द्रव्यदृष्टि जहाँ हुई अन्तर सम्यक्, तो अनन्त गुण हैं, वे सब प्रगट हो गये अंश में... अंश में। उस कारण से समकित को सर्वगुणांश, वह समकित कहने में आया है। 'सर्वगुणांश, वह समकित।'

अपने चिट्ठी—रहस्यपूर्ण चिट्ठी में ऐसा आया है कि ज्ञानादि गुण का सबका एक अंश प्रगट होना, वह चौथा गुणस्थान। ज्ञानादि सर्व सम्पूर्ण पर्याय प्रगट होना, वह केवलज्ञान। समझ में आया? तो उसमें आनन्द आया। आया या नहीं? आया। वस्तु है तो आनन्द और अनन्त ज्ञान आदि शक्तियों का पिण्ड है तो वस्तु की जहाँ दृष्टि झुक गयी उसमें तो जितनी शक्तियाँ हैं, उसकी प्रगट व्यक्तता—अनन्त गुण की पर्याय का प्रगटपना चौथे गुणस्थान से होता है। समझ में आया? थोड़ा आनन्द है वहाँ, स्वसंवेदन थोड़ा है। पंचम (गुणस्थान में) विशेष है, छठवें (गुणस्थान में उससे) विशेष है, सातवें (गुणस्थान में उससे) विशेष है, बारहवें (गुणस्थान में) पूर्ण है। पूर्ण आनन्द है, अनन्त नहीं। अनन्त (आनन्द) तो केवलज्ञान (हो तो) अनन्त आनन्द है और सिद्ध हो तो अनन्त अव्याबाध आनन्द है। वह वेदनीय (कर्म) का अभाव हो गया न?

मुमुक्षु : सिद्धों के आनन्द में और अरिहन्तों के आनन्द में अन्तर है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, अन्तर आनन्द में जरा भी अन्तर नहीं है। थोड़ा-बहुत का अन्तर है, आनन्द की जाति में अन्तर नहीं है। (उसकी चर्चा) रात्रि को करो। गड़बड़ उठ गयी है। अनन्त आनन्द है, जहाँ केवलज्ञान उत्पन्न हुआ (तो) अनन्त-बेहद

आनन्द हुआ। बारहवें गुणस्थान तक आनन्द है, परन्तु ज्ञान में तीन आवरण है, उसका नाश होकर अनन्त आनन्द है। उस आनन्द में अन्तर है नहीं। उस आनन्द की जाति का ही अंश चौथे में है, पूर्ण नहीं। है न? द्रव्य आश्रय (पूर्ण) हो गया न? आहाहा!

मुमुक्षु : बारहवें (तक) मर्यादित (आनन्द) है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मर्यादित है। सुख है, परन्तु अनन्त नहीं है। ज्ञान, दर्शन और वीर्य जहाँ अनन्त प्रगट हुआ, अनन्त आनन्द हो गया।

यहाँ कहते हैं, **निर्भेद परम कला सहित...** आहाहा! एक तो शुक्लध्यान इन्द्रिय से रहित... निमित्तपना भी उसमें नहीं, कहते हैं। व्यवहार धर्मध्यान में तो थोड़ा मन का निमित्त था। निश्चय में तो स्व का आश्रय था। यहाँ तो अकेला इन्द्रियों से रहित निर्भेद—भेद नहीं। भगवान आनन्दकन्द में अकेला एकाकार अभेद **परम कला...** देखो! पूर्ण मोक्ष की पर्याय प्राप्त करने में परम कला है। आहाहा! ऐसे सहित... **ऐसा जो निश्चय-शुक्लध्यान, उन्हें ध्याकर,...** उसे ध्याकर—ध्यान करके... भावना करते हैं मुनि। भविष्य में होना है न उनको? कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य आदि भविष्य में एक भव करके मोक्ष जानेवाले हैं। वर्तमान में स्वर्ग में हैं। कुन्दकुन्दाचार्य भी वर्तमान में तो स्वर्ग में हैं। केवल(ज्ञान) नहीं है। आगे के काल में उनको मनुष्यपना होकर केवलज्ञान होगा। वह कहते हैं कि शुक्लध्यान में केवलज्ञान होगा। आहाहा!

उन्हें ध्याकर **जो भव्यवरपुंडरीक...** आहाहा! भव्य में भी प्रधान—उत्तम। 'वर पुण्डरिक' ऐसा है न? **(-भव्योत्तम) परमभाव की (पारिणामिकभाव की) भावनारूप से...** देखो! यहाँ यह लिया। उसमें स्वद्रव्याश्रित इतना लिया था थोड़ा। यहाँ तो, परमभाव की भावनारूप से परिणमित हुआ... परमभाव जो ध्रुव चैतन्य भगवान, उसकी भावना अर्थात् एकाग्रता... परमभाव की... परमभाव, वह ध्रुव; भावना, वह पर्याय। त्रिकाली ध्रुव में एकाग्र होकर **परिणमित हुआ...** वीतरागी पर्याय—दशा प्रगट हुई, **वह निश्चयप्रतिक्रमणस्वरूप है...** लो, वह निश्चयप्रतिक्रमणस्वरूप है। आहाहा!

ऐसा परम जिनेन्द्र के मुखारविन्द से... देखो! कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। पाठ में है न? '**जिणवरणिद्दिट्ठसुत्तेसु**' जिनवर—जिनेन्द्र तीर्थंकरदेव परमात्मा के मुखारविन्द

से—मुखरूपी कमल से **निकले हुए द्रव्यश्रुत में कहा है।** आगम में ऐसा कहा है। परमागम भगवान की वाणी में यह कहा है कि स्वद्रव्य के आश्रय से धर्मध्यान होता है, उसमें अपूर्ण शुद्धता है तो राग है। दो का दो फल है और अन्तर्मुखाकार शुक्लध्यान निश्चय प्रतिक्रमणस्वरूप मोक्ष का कारण है। ऐसा जिनेन्द्रदेव वीतराग परमात्मा सौ इन्द्रों से पूजनिक हैं, वे (उनके) मुखारविन्द से निकली यह वाणी है (और) द्रव्यश्रुत में ऐसा कहा है। समझ में आया? आहाहा!

चार ध्यानों में प्रथम दो ध्यान हेय हैं,... आर्त और रौद्र। आर्तध्यान और रौद्रध्यान तो छोड़नेयोग्य है। **तीसरा प्रथम तो उपादेय है...** प्रथम उपादेय है। **और चौथा सर्वदा उपादेय है।** उपादेय तो द्रव्य कहा था पहले। यह (ध्यान) प्रगट करने की अपेक्षा उपादेय कहा गया है। समझ में आया? पहले तो कहा था। ३८ गाथा शुरु की थी, तब (कहा था)। एक अन्तर्तत्त्व त्रिकाली ध्रुव ही उपादेय है, बाकी संवर, निर्जरा, मोक्ष, आस्रव, बन्धादि हेय हैं। यहाँ संवर-निर्जरा धर्मध्यान (कहा) है। उसमें बहुत संवर-निर्जरा वह शुक्लध्यान (कहा) है। उसे भी हेय कहा था। अब यहाँ उपादेय कहा, वह प्रगट (करने की अपेक्षा से) उसको उपादेय कहने में आता है। कहो, समझ में आया? आहाहा! **तीसरा प्रथम तो उपादेय है...** धर्मध्यान—स्व चैतन्य भगवान निष्क्रिय, अभेद का आश्रय लेकर जो धर्मध्यान उत्पन्न होता है, उसे उपादेय कहने में आया है। चौथा तो सर्वदा उपादेय है। शुक्लध्यान स्व के आश्रय से अन्तर्मुखाकार से प्रगट होनेयोग्य है, वह उपादेय कहा गया है। आर्तध्यान, रौद्रध्यान, आस्रव, बन्ध तो हेय ही है, ऐसा कहते हैं। आर्तध्यान में व्यवहाररत्नत्रय का व्यवहार विकल्प आदि आ गया। वह हेय है, (परन्तु) उपादेय कहा है।

इसी प्रकार (अन्यत्र श्लोक द्वारा) कहा है कि:—

निष्क्रियं करणातीतं ध्यान-ध्येय-विवर्जितम्।
अन्तर्मुखं तु यद्ध्यानं तच्छुक्लं योगिनो विदुः॥

आहाहा! **श्लोकार्थ:—जो ध्यान निष्क्रिय है,...** निष्क्रिय कहने का अर्थ राग की क्रिया उसमें बिल्कुल नहीं है। **इन्द्रियातीत है,...** अनीन्द्रिय परमात्मा अपना स्वरूप,

उसमें लीन है। **ध्यानध्येयविवर्जित (अर्थात् ध्यान और ध्येय के विकल्पों-राग से रहित) है और अन्तर्मुख है,...** बिल्कुल अन्तर्मुख है, अन्तर द्रव्य के स्वभाव-सन्मुख है। आहाहा! अपनी पर्याय द्रव्य के सन्मुख है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! देखो! वाणी तो देखो! क्या है? ऐसी वाणी वीतराग के सिवाय कहीं अन्यत्र है ही नहीं। समझ में आया? किसके साथ समन्वय करना? किसके साथ मिलान करना? वह भी सच्चा और यह भी सच्चा। जैनदर्शन में ऐसी चीज़ है ही नहीं। समझ में आया? **उस ध्यान को योगी शुक्लध्यान कहते हैं।** देखो! अन्तर्मुख स्वरूप का पूर्ण अवलम्बन, निर्भेद इन्द्रियातीत अन्तर्मुखाकारस्वरूप, उसको सन्त-योगी शुक्लध्यान कहते हैं।

[अब, इस ८९वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं:] ११९ आया न? ११९।

ध्यानावलीमपि च शुद्धनयो न वक्ति,
व्यक्तं सदा-शिवमये परमात्म-तत्त्वे।
सास्तीत्युवाच सततं व्यवहार-मार्ग-
स्तत्त्वं जिनेन्द्र तदहो महदिन्द्रजालम्॥११९॥

आहाहा! इन्द्रजाल कहते हैं यहाँ। वह क्या कहलाता है? जादूगर। वह जादू, यहाँ इन्द्रजाल। जादू है न जादू? वह करता है न जादू? बड़ा (आदमी) है न? के. लाल। गये थे न देखने? सेठ देखने गये थे। दस हजार भरकर देखने गये थे। हम राजकोट थे न! आहाहा! बड़ा जादूगर है। छोटी उम्र है। लाखों रुपये पैदा करता है, लाखों। श्वेताम्बर जैन है। हमारे प्रति प्रेम है। वहाँ आया था हमारे पास।

मुमुक्षु : लाखों....

पूज्य गुरुदेवश्री : लाखों में क्या धूल है? वह तो तीन घण्टे में पाँच लाख दिये थे सरकार ने। एक बार तीन घण्टे के पाँच लाख दिये। ऐसा बड़ा जादूगर है। यहाँ उसकी बहिन है न? भानेज। ब्रह्मचारी है ऊषाबेन। वहाँ सोलह दिन रहे थे। उसका मामा होता है। यहाँ आया था, सोनगढ़ आया तब हमारे पास आया था। बड़ा जादूगर है। अभी तो परदेश गया है। लाखों रुपये एक महीने में प्राप्त करेगा। ऐसा कोई चपल है, जवान है।

हमारे पास आया, बीस मिनिट बैठा, अभी जब राजकोट थे न तब। 'महाराज! हमारा तो सब ढोंग है, हमारा सब ढोंग है।' मैंने कहा, भाई! इस ढोंग में तुम्हारा पूर्व का पुण्य नाश हो जाता है। ये पुण्य से मिलता है, तेरी जादूगरी से नहीं मिलता। आहाहा! संसार में ऐसे जादूगर लोग होते हैं न, बड़े-बड़े राजा-महाराजा ऐसे स्तब्ध हो जाये, ऐसी उनमें... मात्र वचनचातुरी, हाथचालाकी। दुनिया उसे पसन्द करे। कहते थे, अभी परदेश जानेवाला है, परदेश... बहुत पैसा भाई! वह तो पूर्व का पुण्य होता है तो मिलता है। उसमें कुछ है नहीं। पुस्तक दी, एक-दो पुस्तकें दीं। वाँचो, यह वाँचो। उसमें धूल में कुछ नहीं है। जादूगरी में ठगा जायेगा। आहाहा! यह इन्द्रजाल है, देखो! क्या कहते हैं? देखो! आहाहा!

श्लोकार्थः—प्रगटरूप से सदाशिवमय... क्या कहते हैं? वस्तु भगवान आत्मा तो प्रगटरूप सदा कल्याणमूर्ति ही है। प्रगट ही है द्रव्य... द्रव्य। आहाहा! **प्रगटरूप से सदाशिवमय...** प्रभु! शुद्ध आनन्द और ज्ञान आदि शक्तियों का पिण्ड द्रव्य—वस्तु सदा शिवमय प्रगट है। सदा शिवमय प्रगट है द्रव्य... द्रव्य। आहाहा! **सदाशिवमय (निरन्तर कल्याणमय)...** त्रिकाल कल्याणमय है, ऐसा भगवान आत्मा प्रगट द्रव्य है। आहाहा! **ऐसे परमात्मतत्त्व में ध्यानावली होना भी शुद्धनय नहीं कहता।** आहाहा! शुद्धनय त्रिकाली जो द्रव्यस्वभाव सदा कल्याणमूर्ति प्रभु, उसमें—द्रव्य में ध्यान का प्रकार नहीं है। आहाहा! वह तो पर्याय में है। आहाहा! देखो! राग और पुण्य तो है ही नहीं द्रव्य में, संसार तो है ही नहीं, उदयभाव संसार, वह तो द्रव्य में है ही नहीं, त्रिकाली भगवान आनन्द का धाम प्रभु जिसकी दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है, आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा... शब्द कैसा लिया है? देखो!

सदाशिवमय ऐसे परमात्मतत्त्व... तो परमात्मतत्त्व अर्थात् भगवान नहीं, यह (स्व-आत्मा) परमात्मतत्त्व। आहाहा! जिसकी दृष्टि से, जिसके आश्रय से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र प्रगट हो, ऐसी चीज़ में ध्यानावली भी नहीं। धर्मध्यान और शुक्लध्यान का प्रकार भी अन्तर स्वरूप में नहीं। आहाहा! सेठ! वह पर्याय है। धर्मध्यान, शुक्लध्यान तो भावना—पर्याय है। एक-एक समय की शुद्ध दशा है। भगवान त्रिकाली में तो पर्याय भी नहीं। आहाहा! ध्यानावली ध्यान की... है न नीचे? 'ध्यानपंक्ति, ध्यान परम्परा...'

धर्मध्यान की शुद्धता और शुक्लध्यान की शुद्धता—वह तो सब पर्याय व्यवहार है। आहाहा! उसको व्यवहार कहते हैं। समझ में आया?

शुद्धनय नहीं कहता। शुद्ध चैतन्य भगवान की दृष्टि है, उसको ध्यानावली अन्तर में है, ऐसा कहता नहीं। **'वह है (अर्थात् ध्यानावली आत्मा में है)' ऐसा (मात्र) व्यवहारमार्ग में सतत कहा है।** देखो! और यहाँ 'सतत्।' बारम्बार कहा हो, निरन्तर कहा हो, तो वह तो पर्याय है, वह तो व्यवहारमार्ग में कहने में आया है। आहाहा! लोगों को वीतराग का परम तत्त्व... पर्याय है, धर्मध्यान-शुक्लध्यान पर्याय है, परन्तु वह व्यवहार है। आहाहा! त्रिकाली भगवान सदाशिवमय प्रगटरूप ही वस्तु है। वह शुद्धनय उसमें (द्रव्य में) ध्यान का प्रकार भी नहीं कहता। उसमें है ही नहीं। आहाहा!

ऐसा भगवान आत्मा परमानन्द की अतीन्द्रिय मूर्ति प्रभु, आहाहा! अविनाशीतत्त्व परमात्मा अपना स्वरूप। कहो, हीराभाई! उसमें पर्याय नहीं कहते। ध्यानावली पर्याय उसमें नहीं, शुक्लध्यान उसमें नहीं। ध्यान तो पर्याय है, केवलज्ञान भी पर्याय है। केवलज्ञान भी सद्भूतव्यवहारनय का विषय है, निश्चय का विषय है नहीं। निश्चय (नय का) तो ध्रुव विषय है। आहाहा!

मुमुक्षु : पर्याय से रहित द्रव्य!

पूज्य गुरुदेवश्री : (पर्याय से) रहित है द्रव्य।

मुमुक्षु : .... अन्तर्मग्न

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर्मग्न अर्थात् राग की ओर थी, वह (द्रव्य सन्मुख हुई) वह अन्तर्मग्न। पर्याय तो पर्याय रहती है (और) द्रव्य द्रव्य रहता है। पर्याय द्रव्यरूप हो जाती नहीं। समझ में आया? अन्तर्मग्न कहने से जो पर्याय में राग में एकत्व थी, वह पर्याय द्रव्य में आयी। पर्याय, पर्याय रही है और द्रव्य द्रव्य रहा है। आहाहा!

इन्द्रजाल... हे नाथ! तेरी यह बात कैसी है! एक ओर कहे कि ध्यान है, मोक्ष का मार्ग है। एक ओर कहे कि द्रव्य में है ही नहीं। प्रभु! तेरा मार्ग न समझे, उसको इन्द्रजाल जैसा दिखता है। हाँ और ना, ना और हाँ। शुक्लध्यान, धर्मध्यान है? हाँ। आहाहा! द्रव्य में नहीं? ना। द्रव्य में नहीं? ना। पर्याय में है? हाँ। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : शुक्लध्यान में ध्यान में पड़ने का कहा है... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। पड़ने-फड़ने की यहाँ बात नहीं। द्रव्य पड़े तो पर्याय पड़े। पड़ने-फड़ने की बात ही नहीं यहाँ। भगवान के घर में पड़ना होता नहीं। दरबार! यहाँ चढ़कर केवलज्ञान पावे, उसकी बात है। पड़ने-बड़ने की बात यहाँ है नहीं। द्रव्य पड़े तो पर्याय पड़ जाये। जिसको द्रव्य का आश्रय है, उसे पड़ना-फड़ना है नहीं। समझ में आया? आहाहा! .... पूर्ण रखे न! अप्रतिहतभाव से भरपूर... वह यहाँ कहा न, देखो! वृक्ष से फल खिर गया, वह फिर नहीं चिपटता। आया है न समयसार में? आया है। **पक्के फलं...** समयसार, आस्रव अधिकार (गाथा १६८) में आया है। पका फल गिर जाये, फिर नहीं चिपटता, ऐसी बात है। राग गया, गया वह गया। यह व्यय, उत्पाद बिना का व्यय है। आहाहा!

यह प्रवचनसार में लिया है न भाई! सिद्ध का संसार व्यय हुआ है, यह कैसा व्यय है? प्रवचनसार में गाथा—श्लोक है। उत्पाद बिना का व्यय है अर्थात् वह व्यय फिर से उत्पन्न होता नहीं। और उत्पन्न कैसा हुआ परमात्मपद? व्यय बिना का। आहाहा! उत्पन्न हुआ। जो केवलज्ञान व्यय हुए बिना। अब व्यय नहीं होगा। उत्पाद, व्यय बिना का और व्यय, उत्पाद बिना का। आहाहा! श्लोक है प्रवचनसार में। मूल पाठ में है। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य की झपट तो तीर्थंकरदेव वीतराग जैसी है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : व्यय बिना का उत्पाद तो प्रवचनसार में लिखा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : लिखा है। पाठ में है। कितना है? खबर है? १७वीं (गाथा)? १६वीं में स्वयंभू। लो, १७। '**भंगविहूणो य भवो**' '**भंगविहूणो य भवो**' भगवान को केवलज्ञान हुआ, वह भंग बिना उत्पन्न हुआ है, अब उसका भंग कभी होता नहीं। '**संभवपरिवज्जिदो विणासो हि**' संसार का जो विनाश हुआ, वह '**संभवपरिवज्जिदो**'— फिर से उत्पन्न होगा नहीं। '**विज्जदि तस्सेव पुणो ठिदिसंभवणाससमवाओ**' पाठ में है, देखो! 'उत्पाद, वह फिर से उसरूप से प्रलय का अभाव होने से विनाशरहित है।' टीका : 'वास्तव में आत्मा को शुद्धोपयोग के प्रसाद से उत्पन्न हुए शुद्धात्मस्वभाव—सिद्ध (दशा)

उत्पाद, वह फिर से उसरूप से प्रलय का अभाव होने से...' प्रलय नहीं, उत्पाद हुआ वह हुआ, उसका प्रलय कभी नहीं होता। संस्कृत है। '**आत्मनः शुद्धोपयोगप्रसादात् शुद्धात्मस्वभावेन यो भवः**' उत्पाद हुआ। '**पुनस्तेन रूपेण प्रलयभावाद्भङ्गविहीनः**' आहाहा! समझ में आया? तो यहाँ नीचे (की भूमिका में) भी ऐसा लेना। जो वीतराग पर्याय उत्पन्न हुई, वह व्यय हुए बिना रह गयी ऐसी और मिथ्यात्वादि का व्यय हुआ, वह उत्पाद बिना का हुआ। फिर वह उत्पन्न होगा नहीं। समझ में आया? आहाहा!

देखो! 'व्ययहीन है उत्पाद अरु उत्पादहीन विनाश है...' गुजराती है। हिन्दी में है नहीं। सत्रह—एक और सात। हम तो सत्तर कहते हैं। दस और सात। गाथा है। सोलहवीं में स्वयंभू, स्वयंभू हुआ—केवलज्ञान अपने से प्रगट हुआ, कोई दूसरे कारण से नहीं। व्यय (होकर) स्वयंभूत उत्पन्न हुआ, वह हुआ, व्यय बिना रहता है—उसका नाश कभी नहीं होता। पर्याय तो एक समय ही रहेगी, दूसरे समय पर्याय व्यय होगी। वह यहाँ बात नहीं लेनी है। जो शुद्ध परिणति उत्पन्न हुई, सो हुई, उसका अभाव कभी होगा नहीं और संसार का अभाव हुआ, सो हुआ, कभी संसार उत्पन्न होगा नहीं। आहाहा! देखो! वाणी तो देखो कि क्या है! यह भगवान के समीप में गये बिना ऐसी (वाणी) होती नहीं। समझ में आया? डालचन्दजी! आहाहा! परम सत्य। बात ऐसी है।

एक छोटा लड़का है बारह वर्ष का। बारह वर्ष की उम्र है। यह सुनकर ऐसा कहता है। संस्कार लेकर आया है। अभी यहाँ नहीं है। गृहस्थ है, उसके पिता बहुत लाखोंपति है। अभी यहाँ आया नहीं। सोसायटी में उसका कमरा है। तो यह ११वीं गाथा सुनकर ऐसा कहे... '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' भाई! त्रिकाली भूतार्थ का आश्रय करना, वह सम्यक् है। यह चीज़ ऐसी त्रिकाली आनन्दकन्द है। कहे, आहाहा! बारह वर्ष की उम्र है। बारह वर्ष पूरे हुए, अभी १३वाँ लगा है। परन्तु आत्मा चीज़ है... चाहे जहाँ से थोड़ा लिया हो... कहता है बालक, ओहो! ऐसी चीज़! क्यों जगत को नहीं बैठती है? ऐ हीराभाई! देखा है या नहीं? नहीं देखा। क्या नाम उसका? दिलीप... दिलीप। अपने वहाँ गये थे न, नहीं तो आवे कक्षा में वैशाख में आवे। अभी तो शाला है न, वैशाख में अवकाश होता है न, तो यहाँ आता है। अब तो वहाँ थे हम जयपुर। ऐसा कहे और फिर बोले, ओहो! ऐसी बात भाग्यवान को कान में पड़ती है। भाग्यवान... ऐसी चीज़! अन्तर

वीर्य से बोले, हों! ऐसे-ऐसे नहीं। बनियों की तरह ऐं... ऐं... ऐं... (ऐसा नहीं)। ऐसी चीज़ जगत को क्यों नहीं बैठती? वस्तु, ऐसी ही वस्तु कहते हैं और ऐसी बात सुननेवाला भी भाग्यवान है। यह चीज़ परमात्मा के घर की है—परमात्मा की दिव्यध्वनि का सार है। आहाहा!

कहते हैं, हे भगवान! ध्यानावली वह है, ऐसा व्यवहारमार्ग ने सतत कहा है। पहले इनकार किया। 'ना पाडी' को क्या कहते हैं? निषेध किया। थोड़ी तो हमारी गुजराती आती है। पहले निषेध किया। भगवान चिदानन्द ध्रुव नित्यानन्द सदृश स्वभाव में ध्यानावली है ही नहीं। परन्तु (पर्याय में) है न? है, व्यवहारमार्ग ने सतत कहा है। जहाँ-जहाँ पर्याय की सिद्धि की है, (वह) व्यवहारमार्ग की सिद्धि की है। आहाहा! देखो! निश्चयमोक्षमार्ग को भी यहाँ व्यवहारमार्ग कहा। आहाहा! विकल्प का व्यवहारमोक्षमार्ग तो है ही नहीं, परन्तु यह तो जो निश्चय मोक्ष का मार्ग है, उसको व्यवहारमार्ग कहा। यह तो पर्याय है न? पण्डितजी! आहाहा!

'रणे चड्यो रजपूत छूपे नहीं...' आता है न? वह श्लोक आता है। 'चंचल नारी को नैन छूपे नहीं, भाग्य छूपे नहीं भभूत लगाया...' बाबा हो, साधु हो, परन्तु कुछ पुण्य हट जाये? पुण्य दिखे या नहीं कि यह पुण्यशाली है? 'दाता छूपे नहीं घर माँगण आया...' मागण (याचक) घर में आवे और दाता छुपे? कहे, ले जा भाई! 'चंचल नारी को नैन छूपे नहीं, चन्द्र छूपे नहीं बादल छाया, रजपूत छूपे नहीं...' समझ में आया? 'रणे चड्यो रजपूत छूपे नहीं...' जमींदार वे कहीं बनिया जैसे विह्वल होते होंगे? रण में चढ़े अर्थात् मार-फाड़ मार डालूँ। वैसे आत्मा अपने स्वरूप के रण में चढ़ता है, (फिर कहे कि) हम नीचे पड़ जायेंगे? अरे! चल पामर! ऐसी बात यहाँ कहाँ आयी? समझ में आया? वह तो केवलज्ञान लेकर ही रहेगा। आहाहा!

मुमुक्षु : वास्तविक राजपूत तो यह है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह राजपूत है, वे राजपूत तो समझ बिना के अभिमानी हैं। दरबार! तुम कहते थे कि सब अभिमानी हैं। अन्दर चैतन्यप्रभु अपना निज राज, उसका पुत्र... निज साम्राज्य त्रिकाली भगवान उसका पुत्र अर्थात् प्रजा वीतरागी सम्यग्दर्शनादि पर्याय प्रगट हुई, वह राजपूत है। आहाहा!

यह तो मुनि—पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं। ९०० वर्ष पहले दिगम्बर सन्त जंगलवासी (हुए)। आहाहा! अवधूत योगी। आनन्द में मस्त, नग्नपना। मुनि होते हैं तो उनको नग्नपना ही होता है। वस्त्र का धागा रहे और मुनिपना आता है, (ऐसा) तीन काल—तीन लोक में (होता) नहीं। समझ में आया? और वस्त्र छूट गया, इसलिए मुनिपना हो गया—ऐसा भी नहीं है। आहाहा! हाँ और ना। भगवान आत्मा... आचार्य कहते हैं... यह तो मुनि हैं, आचार्य नहीं। टीकाकार मुनि हैं। अमृतचन्द्राचार्य आचार्य थे, कुन्दकुन्दाचार्य आचार्य थे, पद्मनन्दि आचार्य थे, जयसेन आचार्य थे। यह पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि हैं।

मुनि कहते हैं, अरे, सुन तो सही नाथ! तेरी चीज़ में तो ध्यानावली है ही नहीं। आहाहा! ऐसा भरा भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसमें पर्याय है ही नहीं। तब कहे, ध्यान—मोक्ष का मार्ग कहते हैं न? वह व्यवहारमार्ग है। '**सततं**' कहा है। है न? लो, '**सततं**' तीसरे पद में है। '**सास्तीत्युवाच**' '**सा-अस्ति**' ऐसा। '**अस्ति वाच सततं व्यवहारमार्ग**' ११९ कलश है। आहाहा! दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त ऐसी वाणी कहीं होती नहीं। समझ में आया? मार्ग ऐसा है, पहले निर्णय तो करे। समझ में आया? निर्णय करे बिना स्वभाव-सन्मुख कभी होगा ही नहीं। स्वभाव-सन्मुख हुए बिना अनुभव होगा नहीं। आहाहा! 'सन्मुख हो' उसका अर्थ—द्रव्य है, उसके अनुसरके होना। राग के अनुसर के होना नहीं।

कहते हैं, **हे जिनेन्द्र!** आहाहा! **ऐसा वह तत्त्व (-तूने नय द्वारा कहा हुआ वस्तुस्वरूप), अहो! महा इन्द्रजाल है।** आहाहा! एक ओर कहे कि वस्तु में धर्मध्यान है नहीं, शुक्लध्यान है नहीं। दूसरी ओर कहे कि स्व का आश्रय करने से धर्मध्यान, शुक्लध्यान उत्पन्न होता है। यह उत्पन्न हुआ, वह व्यवहारमार्ग है। उत्पाद और व्यय व्यवहार है, ध्रुव निश्चय है। आहाहा! एक ही द्रव्य में दो भाग। उत्पाद-व्यय, वह व्यवहार है; ध्रुव, निश्चय है। निश्चय में व्यवहार नहीं, व्यवहार में निश्चय नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ध्रौव्य भी तो पर्याय है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, उत्पाद-व्यय पर्याय है, परन्तु एक ही है।

मुमुक्षु : उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य....

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्रुव त्रिकाल है। त्रिकाली वस्तु ध्रुव। त्रिकाली ध्रुव को द्रव्य कहा, उत्पाद-व्यय को पर्याय (कहा)। यह तीन अंश को गिनकर भेद लिया है। यहाँ नहीं। यहाँ तो त्रिकाली ध्रुव है, वह द्रव्य है। द्रव्यार्थिक का विषय द्रव्य, वह त्रिकाली ध्रुव है और उत्पाद-व्यय वर्तमान पर्याय का विषय है, व्यवहारनय का विषय है। वह आया न! शुद्धनय ध्रुव को कहता है। आया न ११वीं गाथा में आया, नहीं? तीन अवस्था में दो अवस्था है, वह व्यवहारनय का विषय है। ध्रुव निश्चयनय का विषय है। ११वीं गाथा में आया। '**भूदत्थदेसिदो सुद्धणओ**' ११वीं गाथा का महासिद्धान्त। भूतार्थ है, वह शुद्धनय है। शुद्धनय कहा न यहाँ? त्रिकालीभाव ज्ञायकभाव ध्रुवभाव, वही शुद्धनय, पर्याय, वह व्यवहारनय। आहाहा!

कहते हैं, हे भगवान! एक ओर कहो कि शुद्धनय ध्रुव में पर्याय है नहीं, भेद है नहीं। यह पर्याय तो भेद हुआ, परन्तु भेद पर्याय में है। व्यवहारमार्ग में सतत कहने में आता है। आहाहा! व्यय है या नहीं? नहीं? पर्याय, पर्याय में नहीं है? व्यवहार उड़ जाता है। है सही, त्रिकाली में नहीं। जिसका आश्रय करना है, उसमें नहीं। आश्रय करनेवाली पर्याय है, वह व्यवहार है। आहाहा! यह कहते हैं न, क्या कहते हो प्रभु तुम? एक ओर कहते हो कि शुद्धनय में ध्यानावली नहीं। दूसरी ओर कहते हो कि व्यवहारमार्ग में सतत कहने में आया है। प्रभु! यह तेरी इन्द्रजाल है। इसका अर्थ कि तेरी चीज़ गम्भीर है। तेरी चीज़ को समझना गम्भीर है, ऐसा कहते हैं। इन्द्रजाल कहकर उपहास नहीं करते। तेरी चीज़... नाथ! तेरी दिव्यध्वनि में आया तत्त्व समझने में महा गम्भीरता है, बड़ा पुरुषार्थ है, अनन्त प्रयत्न है। उसके बिना समझ में आता नहीं। आहाहा! सारांश उसमें ही है। यह बात है।

पढ़ा-लिखा भी समझ नहीं सकता। ११ अंग पढ़ा, ९ पूर्व पढ़ा... यह बाद में आयेगा। '**मिच्छत्तं पवई भावाः**' ९० में आयेगा। उसका नाम अनेकान्त है कि द्रव्य में पर्याय नहीं और पर्याय, पर्याय में है और पर्याय में द्रव्य नहीं। इसका नाम अनेकान्त है। द्रव्य में द्रव्य है और द्रव्य में भी पर्याय है—यह अनेकान्त नहीं। आहाहा! समझ में

आया? लोग अनेकान्त को फुदड़ीवाद कर देते हैं। ऐसा भी होता है, ऐसा भी होता है। ऐसा नहीं, भाई! व्यवहार से व्यवहार है, निश्चय से निश्चय है। निश्चय में व्यवहार नहीं और व्यवहार में निश्चय नहीं। समझ में आया? यह तो तत्त्व की बात ऐसी है। थोड़ा अभ्यास हो तो उसको ख्याल आ जाये। वरना तो यह चीज़ है।

मुमुक्षु : अभ्यास आप कराओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करावे? करावे कौन? किसी को कोई करा सकता नहीं। कौन करावे? वह करता है तो दूसरी चीज़ को निमित्त कहा जाता है। आहाहा! समवसरण में भी अनन्तबार गया सुनने को। 'केवली आगळ रह गयो कोरो...' ऐसा एक स्तवन है। हे नाथ! तेरे समवसरण में गया, परन्तु कोरा रह गया। क्या आपने कहा, वह छुआ नहीं। आहाहा! यह स्तवन आता है।

मुमुक्षु : क्यों रह गया कोरा?

पूज्य गुरुदेवश्री : भान नहीं किया, स्व का आश्रय नहीं लिया। पर से कुछ होगा, पर से होगा, ऐसा मान रखा। रह गया कोरा। कोरा कहते हैं? यह हमारी काठियावाड़ी भाषा में है। स्तवन में है। 'केवली आगळ रह गया कोरो...' वह बोलते हैं न सज्झायमाला है? उसमें है। यहाँ कहते हैं, प्रभु! तेरा तत्त्व इन्द्रजाल जैसा है। ऐसा कहकर गम्भीरता बताई है। प्रभु! तेरी तत्त्व की चीज़ समझना महा गम्भीर रहस्य है। उसका पता लेनेवाला मोक्ष का मार्गी हो जाता है, ऐसा कहते हैं। विस्तार से अब कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल ७, गुरुवार, दिनांक - २९-७-१९७१
श्लोक - १२०, गाथा - ९०, प्रवचन-८०

परमार्थ प्रतिक्रमण अधिकार। ८९ गाथा है न, उसका कलश १२०।

सद्बोध-मण्डन-मिदं परमात्म-तत्त्वं,
मुक्तं विकल्पनिकरैरखिलैः समन्तात्।
नास्त्येष सर्व-नय-जात-गत-प्रपञ्चो
ध्यानावली कथय सा कथमत्र जाता॥१२०॥

१२० (कलश), १७० पृष्ठ पर है। भगवान आत्मा ध्रुव चैतन्य अनादि-अनन्त, उसके आश्रय से मोक्षमार्ग प्राप्त होता है। परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि जो... **श्लोकार्थः— सम्यग्ज्ञान का आभूषण...** आत्मा तो ज्ञान(रूप) आभूषण, ज्ञानस्वरूप ही है। उसमें कोई राग का विकल्प करना या विकल्प छोड़ना, यह वस्तु के स्वरूप में नहीं है। आहाहा! **सम्यग्ज्ञान का आभूषण...** आभूषण कहते हैं न? जेवर। अर्थात् कि सम्यग्ज्ञान का पिण्ड। एक समय में चैतन्य ध्रुव सम्यग्ज्ञान का पिण्ड चैतन्यवस्तु **ऐसा यह परमात्मतत्त्व समस्त विकल्प समूहों से सर्वतः मुक्त (-सर्व ओर से रहित) है।** कहते हैं कि कोई भी नय का विकल्प या राग का विकल्प भाव, उससे वस्तु तो मुक्त है। चैतन्यतत्त्व ज्ञानस्वभाव, आनन्दधाम, त्रिकाल एकरूप रहनेवाली ध्रुव चीज़, वह अपना परमात्मतत्त्व है... अपना। आहाहा! **ऐसा यह परमात्मतत्त्व समस्त विकल्प समूहों से सर्वतः मुक्त है।** उसमें कोई, आत्मा ऐसा है और ऐसा नहीं है—ऐसा विकल्प उसमें है नहीं। आहाहा!

(इस प्रकार) सर्व नयसमूह सम्बन्धी... नयसम्बन्धी **यह प्रपंच परमात्मतत्त्व में नहीं है...** दूसरी बात। कोई रागादि विकल्प नहीं है और नय का विकल्प भी उसमें कोई है नहीं कि निश्चयनय है, ऐसा विकल्प; व्यवहारनय है, ऐसा विकल्प। शुद्ध चैतन्यघन कारणपरमात्मा... यह परमात्मा लिया है न! अपना कारणपरमात्मा नित्यानन्द, उसमें **सर्वनयसमूह...** विकल्पात्मक यहाँ लेना है। वरना तो ध्रुव है, वह शुद्धनयस्वरूप है। यह

११वीं गाथा में ऐसा लिया। भूतार्थ त्रिकाल ध्रुव, वही शुद्धनय है। परन्तु वह नय तो, अभेदस्वभाव में नय और नय के विषय का भेद छोड़कर अकेला शुद्धनयस्वरूप त्रिकाल है। यहाँ तो विकल्पात्मक नय है कि सामान्य आत्मा है, विशेष नहीं है, विशेष पर्याय में है—ऐसा विकल्पवाला नय उसमें है नहीं। आहाहा!

प्रपंच है सब। भिन्न है। वह तो नयातीत—विकल्पातीत है। वैसे तो शुद्धनयस्वरूप है, है तो शुद्धनय अभेद। अध्यात्म में नय और नय का विषय (ऐसे) दो (भेद) नहीं करते। परम अध्यात्म वस्तु अकेली '**भूदत्थोसिस्दो खलु**' अथवा '**भूदत्थो देसिदो शुद्धनयो**' ११वीं गाथा (समयसार) सारे जैनशासन का मूल। भूतार्थ त्रिकाल ज्ञायकस्वरूप परमात्मा कारणपरमात्मा, वही शुद्धनय। यहाँ तो ऐसा कहा। परन्तु वह तो नय और नय का विषय अभेद करके कहा। यहाँ नयभेद करके (कहना कि) यह निश्चय है, ऐसा विकल्प स्वरूप में नहीं है। आहाहा! ऐसा तत्त्व! सर्वज्ञ के सिवाय—परम जिनेन्द्रदेव के सिवाय ऐसी चीज़ कहीं हो नहीं सकती।

कहते हैं, अरे! **तो फिर वह ध्यानावली इसमें किस प्रकार उत्पन्न हुई...** आहाहा! कहते हैं कि भगवान परमस्वरूप परमात्मस्वरूप ज्ञानस्वरूप ही वह है। विकल्प से तो सर्वथा मुक्त है, नय का विकल्प (ऐसा) सम्बन्ध उसमें कुछ है नहीं। और ध्यानावली उसमें कैसे होती है? ओहोहो! गजब बात है! ध्यान—शुक्लध्यान और धर्मध्यान, वह पर्याय है, वह द्रव्य में नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कारणप्रभु एक-एक... अपना निज आत्मा कारणपरमात्मा... कहते हैं, अरे! जब कोई नयसमूह का विकल्प नहीं तो यह ध्यानावली उसमें किस प्रकार उत्पन्न हुई? ध्यानावली—ध्यान की पंक्ति। धर्मध्यान और शुक्लध्यान और शुक्लध्यान की निर्मलता और विशेष निर्मलता... विशेष निर्मलता... वह सब तो पर्याय है। आहाहा! द्रव्य में है नहीं। समझ में आया? आहाहा!

कैसे हो सकती है? **(अर्थात् ध्यानावली इस परमात्मतत्त्व में कैसे हो सकती है) सो कहो।** ऐसा प्रश्न है। अर्थात् उसमें नय है नहीं। ध्यानावली नहीं है, शुक्लध्यान द्रव्य में नहीं है। वह तो पर्याय है। कहो, सेठ! ऐसी बात है। आहाहा! मोक्ष का मार्ग जो शुक्लध्यान या धर्मध्यान, निश्चयमोक्षमार्ग, हों! स्वद्रव्य के आश्रय से उत्पन्न हुआ।

आहाहा! ऐसी ध्यान की धारा द्रव्य में कैसे सम्भवे? आहाहा! ऐसी चीज़ है तू अनादि-अनन्त, अनन्त-अनन्त सिद्धपर्याय, अनन्त केवलज्ञानपर्याय ऐसी तेरी शक्ति में—तेरे ध्रुव में पड़ा है। उसमें ऐसी पर्याय का भेद कहाँ से आया? कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? बहुत भाई! यह मार्ग... यह व्यवहारवालों को तो इतना कठिन लगे। वकीलजी! व्यवहार... व्यवहार... आगे आयेगा।

मुमुक्षु : केवली भी शुक्लध्यान लगाते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं लगाते हैं। वह तो पर्याय है, द्रव्य नहीं। शुक्लध्यान, वह पर्याय है। पर्याय में है, द्रव्य में नहीं। समझ में आया?

वह तो आप्तमीमांसा में आया है। पण्डितजी! धर्मी और धर्म दो निरपेक्ष चीज़ है। आप्तमीमांसा में। धर्मी, वह धर्म है तो धर्मी है—ऐसा नहीं। वह धर्मी है तो धर्म है—ऐसा नहीं। आप्तमीमांसा में आया है। स्वामी समन्तभद्र (कृत)। दो धर्म निरपेक्ष अपने से है। इसी प्रकार पर्याय पर्याय से है, द्रव्य द्रव्य से है। आहाहा! ऐसी बात! वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा कहते हैं कि हमारी सर्वज्ञपर्याय द्रव्य में नहीं। समझ में आया? तो उसमें संसार और राग-द्वेष और विकल्प कहाँ से हो? ऐसी निर्मलानन्द चीज़ की दृष्टि करना, ध्येय बनाना, अपनी वर्तमान ज्ञानपर्याय में उसको त्राटक कर ध्येय बनाना, वह सम्यग्दर्शन है। तथापि वह सम्यग्दर्शन की पर्याय भी द्रव्य में नहीं है। समझ में आया?

इन्द्र तीन ज्ञान के धनी एकावतारी-एक भवतारी हैं। शकेन्द्र और उनकी रानी दोनों एक भवतारी हैं और वे भगवान के पास सुनने को आते हैं, वह कथा कैसी होगी? तीन ज्ञान, क्षायिक समकित है शकेन्द्र को। और उसकी पटरानी—रानी है इन्द्राणी, वह भी एकावतारी है। क्षायिक समकित नहीं, परन्तु है एक भवतारी। वहाँ से निकलकर पति-पत्नी दोनों को एक मनुष्यभव धारण करके मोक्ष होगा। और तीन ज्ञान तो दोनों को है मति, श्रुत, अवधि। भगवान के पास, सन्तों के निकट सुनते होंगे, वह कथा कैसी होगी? यह अलौकिक बात है, भाई! यह बात ही कोई लोकोत्तर चीज़ है।

कहते हैं कि भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप है, आभूषण—गहना—जेवर, ज्ञान का जेवर—गहना... सोने का गहना कहते हैं न? स्वर्ण का। यह तो ज्ञान का जेवर है। ऐसे

ज्ञान का पिण्ड प्रभु जो सम्यग्दर्शन का विषय है, उसमें ध्यानावली कहाँ से आयी? भाई! ऐसा कहते हैं। पर्याय द्रव्य में कहाँ से आयी? आहाहा! समझ में आया? जिनवरेन्द्र वीतरागदेव त्रिलोकनाथ समवसरण में इन्द्रों और गणधरों के समक्ष में यह बात फरमाते थे, यह कुन्दकुन्दाचार्य जाकर लाये। समझ में आया? अभी कितनों को, कुन्दकुन्दाचार्य महाविदेह में गये थे या नहीं? (यह शंका है।) नहीं, यह सोनगढ़वालों ने निकाला है। अरे, भगवान! क्या कहते हो तुम?

मुमुक्षु : वे जाते तो लिखते न?

पूज्य गुरुदेवश्री : लिखे कौन? वीतरागी मुनि क्या दिखे?

मुमुक्षु : इसी से शंका होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या शंका होती है? बताया नहीं पंचास्तिकाय में? जयसेन आचार्य मुनि पंच महाव्रतधारी, सत्य बोलनेवाले उन्होंने टीका में लिखा नहीं—बताया नहीं? बताया न? पंचास्तिकाय है न! यह टीका है उसमें? जयसेनाचार्य की टीका में कहाँ है? फुटनोट में लिया है। देखो! संस्कृत टीका है जयसेनाचार्य की, उसका गुजराती बनाया है। 'इस शास्त्र के कर्ता भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव हैं। उनका दूसरा नाम पद्मनन्दि, वक्रग्रीवाचार्य, ऐलाचार्य, गृद्धपिच्छाचार्य है।' गृद्धपिच्छाचार्य। गृद्धपिच्छाचार्य नाम कहाँ से आया? भगवान के पास जाते थे, मोरपिच्छी गिर गयी। कहाँ? जाते थे, तब गिर गयी न? जयसेनाचार्य शास्त्र की तात्पर्यवृत्ति टीका में प्रारम्भ करते हैं कि 'जिन्होंने प्रसिद्ध कथा-न्याय से पूर्व विदेह में जाकर...' पूर्व विदेह में सीमन्धर परमात्मा विराजते हैं। वर्तमान में मौजूद हैं, ५०० धनुष का देह है, करोड़पूर्व की देह की स्थिति है। आहाहा! मुनिसुव्रत भगवान के समय में तो भगवान की दीक्षा हुई थी। अभी केवलज्ञान में विराजते हैं। अगली चौबीसी में जब यहाँ १३वें तीर्थंकर होंगे, तब मुक्ति पायेंगे, देह छूटकर सिद्ध होंगे। अभी तो अरिहन्त पद में विराजते हैं।

कहते हैं, 'पूर्व विदेह में जाकर वीतराग सर्वज्ञ सीमन्धरस्वामी तीर्थंकर परमदेव के दर्शन करके उनके मुखकमल से निकली हुई दिव्य वाणी... यह संस्कृत है, उसका गुजराती बनाया है। श्रवण द्वारा अवधारित...' दिव्यध्वनि की श्रवण द्वारा अवधारित...

आहाहा! ऐसा निश्चित हो जाये तो दिगम्बर धर्म निश्चित हो जाये, इसके सिवाय दूसरा धर्म सच्चा हो नहीं, (ऐसा निश्चित हो जाये)। तो इसे उड़ा देना। सब धर्म सच्चा है। समझ में आया? ऐसी बात है नहीं, भाई! कहते हैं, 'शुद्धात्मतत्त्वादि सारभूत अर्थ को ग्रहण करके...'। परमात्मा के पास साक्षात् संवत् ४९ (में गये थे)। साक्षात् भगवान के पास 'अर्थ को ग्रहण करके वहाँ से वापस आकर अन्तःतत्त्व भगवान(आत्मा) और बहिर्तत्त्व सात गौण-मुख्य प्रतिपादन के लिये अथवा शिवकुमार महाराजादि संक्षेपरुचि शिष्य के प्रतिबोधन के लिये रचित पंचास्तिकाय प्राभृत शास्त्र का यथाक्रम से अधिकारशुद्धिपूर्वक तात्पर्यार्थरूप व्याख्यान किया जाता है।' समझ में आया? यह तो आचार्य का कथन है। जयसेन आचार्य। और देवसेन आचार्य का आया है। देवसेन आचार्य, दर्शनसार (में कहते हैं)। 'अरे! कुन्दकुन्दाचार्य...' दर्शनसार बनानेवाले मुनि आचार्य हैं। आचार्य झूठ बोलते हैं?

मुमुक्षु : जैनशासन की महिमा बताने के लिये...... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। यथार्थ बात है। जैनशासन में कोई ऐसा झूठ बोले? 'महाविदेह में गये थे, वहाँ से आकर यदि हमको सम्बोधन नहीं करते तो हम मोक्षमार्ग कैसे पाते?' ऐसा लिखा है। समझ में आया? आहाहा! शिलालेख है। चन्द्रगिरि में है। सबमें है। देखना किसको है? अपनी पकड़ से... ऐसा (निश्चित) हो जाये कि महाविदेह में सीमन्धर परमात्मा के पास नग्न दिगम्बर गये थे। तो दिगम्बर धर्म निश्चित पक्का हो गया। उसका शास्त्र यथार्थ, उसके गुरु यथार्थ, उसके देव यथार्थ, उसका कथन यथार्थ। समझ में आया? उसे उत्थापित करने के लिये (कहते हैं कि) महाविदेह में गये नहीं थे। यह तो सोनगढ़वालों ने उठाया है, ऐसा लिखा है। उसमें बताया न! आहाहा! क्या कहते हैं? देखो! आगे कहेंगे। गाथा ९१ में कहेंगे।

भगवान अर्हत् परमेश्वर के मार्ग से प्रतिकूल मार्गाभास में मार्ग का श्रद्धान, वह मिथ्यादर्शन है;... ९१ में कहेंगे। ९१ गाथा है न, ९० और १। ९१ है आगे। टीका है। **भगवान अर्हत् परमेश्वर के मार्ग से प्रतिकूल मार्गाभास...** मार्ग है नहीं, परन्तु मार्गाभास है। यह **श्रद्धान, वह मिथ्यादर्शन है;...** वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने जो मार्ग कहा,

वह दिगम्बरमार्ग कहा, वही दिगम्बर धर्म है। वह कोई पक्ष नहीं है। समझ में आया? उससे विरुद्ध मानना मिथ्यादर्शन, अज्ञान है। ९१ गाथा में है। **उसी में कही हुई अवस्तु में वस्तुबुद्धि,...** भगवान ने जैसे छह द्रव्य, उनके अनन्त गुण, अनन्त पर्याय, आहाहा! एक-एक आत्मा पर्यायरहित है, पर्याय पर्यायसहित है, पर्याय द्रव्यरहित है—ऐसा भगवान के मुख से आया, उससे विपरीत मानना, वह मिथ्याज्ञान है और उस मार्ग का आचरण, वह मिथ्याचारित्र है। भगवान आत्मा....

मुमुक्षु : पर्याय द्रव्यरहित नहीं लिखी?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या आया न? पहले आया न? प्रत्येक गाथा में लिखे? कहा था न? पंचास्तिकाय में १८वीं गाथा। इसमें तो सब प्रत्येक गाथा में आता है। पंचास्तिकाय में लिया नहीं? पर्याय उत्पन्न हुई, वह संयोग है; व्यय, वह वियोग है—विवेक है, उत्पाद पर्याय का वह द्रव्य को संयोग है। आहाहा! पंचास्तिकाय की गाथा में। १७। १७ न? १० और ७। समझ में आया न? फिर से कहते हैं। १७, हों! १७। संस्कृत है।'**पूर्वोत्तरपर्यायविवेकसंपर्कापादिता**' द्रव्य पूर्वपर्याय के वियोग से, उत्तरपर्याय के संयोग से... देखो तो सही। आहाहा! बाहर की चीज़ का संयोग-वियोग तो कहीं रह गया। द्रव्य जो अनादि-अनन्त परमात्मतत्त्व ध्रुव, (उसमें) केवलज्ञानादि पर्याय जो उत्पन्न हो, वह संयोग है। द्रव्य में संयोग हुआ। और पूर्व पर्याय का व्यय, वह वियोग अर्थात् विवेक हुआ। पूर्वपर्याय का वियोग हो गया। आहाहा! व्यय को वियोग और उत्पाद को संयोग (कहते हैं) द्रव्य के साथ। समझ में आया? इतना स्पष्टीकरण, इतनी स्वच्छता और निर्मलता सूर्य जैसा प्रकाश है। समझ में आया?

तो कहते हैं, अहो! ऐसे परमात्मतत्त्व में ध्यानावली कैसे हो सकती है? आया क्या? परमात्मतत्त्व में पर्याय कहाँ से हुई, ऐसा कहते हैं यहाँ। पर्याय, पर्याय में है। पर्याय सत् है या नहीं? तीनों सत् हैं। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य तीनों सत् हैं। सत् सत् से है, द्रव्य से नहीं। आगे जाकर तो यह बात भी की थी। आ गया है आत्मधर्म में। अमितगति आचार्य का योगसार (प्राभृत) है। उसमें तो ऐसा पाठ है कि आत्मा अपनी पर्याय का दाता नहीं। वह आत्मधर्म में आ गया है। योगसार है, योगसार (प्राभृत) अमितगति

आचार्य (कृत) योगसार। सारे ग्रन्थ का व्याख्यान हो गया है। यहाँ तो ३७ वर्ष हुए न! ३७। ३० और ७ चातुर्मास। योगसार में (कहा कि) आत्मा की अपनी निर्मल पर्याय का दाता द्रव्य नहीं। आहाहा! आया है, आत्मधर्म में आया है। शशीभाई! आया है या नहीं? याद है? नहीं। ले! पैसे का याद रखे, यह याद नहीं? आत्मा दाता नहीं। यहाँ पुस्तक नहीं। योगसार में है। व्याख्यान दिया है। आत्मदाता नहीं, नहीं दाता। पर्याय पर्याय से उत्पन्न हुई—ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

सत् है न! सत् को हेतु की आवश्यकता नहीं, ऐसा कहते हैं। सत्धर्मलक्षणम् स्वतः है। ... तीन है, परन्तु तीन तीन से है, किसी के कारण से नहीं, ऐसा कहते हैं। और वह गाथा है न प्रवचनसार। नहीं, वह तो १०१। प्रवचनसार में १०१ में (कहा कि) उत्पाद उत्पाद से है, उत्पाद व्यय से नहीं, व्यय उत्पाद से नहीं, उत्पाद ध्रुव से नहीं, ध्रुव उत्पाद से नहीं। १०१ गाथा, प्रवचनसार। आचार्य ने तो स्पष्ट कर दिया है। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य तीनों... तीनों... तीनों से तीन हैं। एक-एक अपने से है, पर से नहीं। सत् है न! सत् को हेतु की आवश्यकता नहीं।

यहाँ कहते हैं, ऐसे परमात्मतत्त्व में ध्यानावली कैसे? ९०। अब ९० गाथा। प्रवचनसार १०१ गाथा बहुत तात्त्विक है। कुन्दकुन्दाचार्य के शास्त्र सर्वज्ञ की ध्वनि से सीधे आये हैं। आहाहा! बीच में वे आड़तिया हुए। माल तो भगवान का था। समझ में आया? ९० (गाथा)।

मिच्छत्तपहुदिभावा पुव्वं जीवेण भाविया सुइरं।
सम्मत्तं-पहुदि-भावा अभाविया होंति जीवेण ॥९०॥

नीचे हरिगीत

मिथ्यात्व आदिक भावकी की जीव ने चिर भावना।
सम्यक्त्व आदिक भाव की पर की कभी न प्रभावना ॥९०॥

टीका :—यह आसन्न भव्य और अनासन्न भव्य जीव के पूर्वापर (-पहले के और बाद के) परिणामों के स्वरूप का कथन है। अनादि से अज्ञानी जीव का क्या परिणाम था और ज्ञानी का कैसा परिणाम हुआ, उसका कथन है। पूर्वापर है न? कोई

एक जीव का पूर्व में परिणाम क्या था और बाद में परिणाम क्या हुआ ? पहले मिथ्यात्वादि का परिणाम था, पश्चात् सम्यग्दर्शन का परिणाम हुआ। वह बात यहाँ कहते हैं। **मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय और योग...** प्रमाद उसमें आ गया कषाय में। वरना पाँच है न बन्ध के कारण ? कषाय में प्रमाद आ गया। **मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय और योगरूप परिणाम सामान्य प्रत्यय (आस्रव) हैं;...** चारों आस्रव हैं, बन्ध के कारण हैं। और **उनके तेरह भेद हैं,...** तेरह गुणस्थान। **कारण कि '[1]मिच्छादिट्ठीआदी जाव सजोगिस्स चरमंतं' ऐसा (शास्त्र का) वचन है;...** समयसार में आता है। नीचे अर्थ है। **(प्रत्ययों के, तेरह प्रकार के भेद कहे गये हैं—) मिथ्यादृष्टिगुणस्थान से लेकर सयोगकेवलीगुणस्थान के चरम समय तक के।** १३। आहाहा! **मिथ्यादृष्टिगुणस्थान से लेकर सयोगीगुणस्थान के अन्तिम समय तक प्रत्यय होते हैं**—आस्रव होते हैं—**ऐसा अर्थ है।** कहते हैं अब।

निरंजन निज परमात्मतत्त्व के... भगवान आत्मा... दूसरी रीति से परमात्मतत्त्व कहा था। निरंजन—जिसमें संसार का कोई अंजन—मैल है ही नहीं। निज परमात्मा—अपना परमात्मतत्त्व। परमात्मा भगवान का भगवान के पास रहा। **निज परमात्मतत्त्व के श्रद्धानरहित...** ऐसे परमात्मा की श्रद्धारहित मिथ्यादृष्टि। आहाहा! देखो! निज परमात्मतत्त्व का श्रद्धान, वह सम्यग्दर्शन। उस श्रद्धानरहित **अनासन्नभव्य जीव ने...** अर्थात् मुक्ति से दूर ऐसे प्राणी को **वास्तव में सामान्य प्रत्ययों को पहले सुचिर काल भाया है;...** मिथ्यात्व को भाया, अव्रत, प्रमाद, कषाय जो आस्रव है, उसकी भावना की। अनन्त काल में उसने ऐसी भावना की। आहाहा! उसका अर्थ यह हुआ कि मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी दिगम्बर साधु होकर नौवें ग्रैवेयक गया, उसने यह भावना भायी। निज परमात्मा की भावना नहीं भायी। आहाहा! पंच महाव्रत पालन किये। २८ मूलगुण पालन किये। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' ... तो कहते हैं कि उसने आस्रव की भावना भायी थी। आहाहा! मैं पंच महाव्रत पालन करूँ, २८ मूलगुण पालन करूँ... ? ऐसी आस्रव की भावना थी उसको। आहाहा! समझ में आया ?

निज परमात्मा अखण्डानन्द प्रभु के श्रद्धान से रहित इस आस्रव की भावना भानेवाला था। आहाहा! अरे प्रभु! यह पंच महाव्रत पालता है न ? २८ मूलगुण रखता

है न? वह आस्रव है। आस्रव की भावना भायी थी। आहाहा! अमूलखचन्दजी! आहाहा! कथन पद्धति तो देखो आचार्य, दिगम्बर सन्तों की! दिगम्बर मुनि हुआ, २८ मूलगुण पालन किये, हजारों रानियाँ छोड़ी, जंगल में रहा, नग्नरूप से रहा, परन्तु वह राग की भावना भाता था। क्योंकि निज परमात्मतत्त्व की श्रद्धानरहित था। आहाहा! अनात्मा की भावना थी।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनासन्नभव्य—आसन्नभव्य नहीं। आसन्नभव्य तो सम्यक्, मोक्ष के नजदीक है। यह अनासन्न तो मोक्ष से दूर है। अनासन्न (अर्थात्) मोक्ष से दूर है। आहाहा! नियमसार। इस बार कक्षा (शिविर) में नियमसार आ गया और नाटक (समयसार) आया। दो आये न! दोनों शास्त्र फिर लिये। आहाहा!

भगवान! तू अनादि काल का अज्ञानपने अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गया मिथ्यादृष्टि (होकर)। समकिती हो वह दूसरी बात है। समकिती भी वहाँ जाते हैं। सम्यग्दर्शन बिना... नौवें ग्रैवेयक सम्यग्दृष्टि भी जाते हैं, मिथ्यादृष्टि भी जाते हैं, चौथे गुणस्थानवाले जाते हैं। मुनि, गृहस्थ नहीं। गृहस्थ तो... दिगम्बर सन्त २८ मूलगुण (लिये) बिना नौवें ग्रैवेयक नहीं जा सकते। मिथ्यादृष्टि अन्यमति का मिथ्यादृष्टि हो, वह नौवें ग्रैवेयक जा ही नहीं सकता। दिगम्बर जैन का जो मिथ्यादृष्टि साधु है, वही जा सकता है और चौथे गुणस्थानवाला भी जा सकता है, ऐसा पाठ है। परन्तु क्रिया छठवें गुणस्थान (जैसी हो तो जा सकता है)। उसको भी द्रव्यलिंगी भी कहते हैं। मिथ्यादृष्टि को भी द्रव्यलिंगी कहते हैं। अन्तर आत्मभान हुआ, अनुभव हुआ है, पंच महाव्रतादि क्रिया(रूप) साधुपना ले लिया, गुणस्थान... चौथे गुणस्थान में अन्दर है, बाह्य में छठवें गुणस्थान की निरतिचार निर्मल आगम प्रमाण क्रिया है। वह नौवें ग्रैवेयक तक जाता है और तीसरा—पाँचवाँ गुणस्थानवाला। अन्दर पंचम गुणस्थान हो, बाहर में छठवें गुणस्थान की क्रिया पूरी निरतिचार, आचार जैसा है वैसा, वह भी नौवें ग्रैवेयक जाये। और छठवें गुणस्थानवाला, वह भी नौवें ग्रैवेयक जाता है। इतने जाते हैं—मिथ्यादृष्टि, समकिती, पंचम गुणस्थान (वाले), छठवें, सातवें। मिथ्यादृष्टि, परन्तु वह दिगम्बर सन्त हो तो (जो सकता है)।

दूसरे वस्त्र-पात्र रखकर मिथ्यादृष्टि जीव हो, वह नौवें ग्रैवेयक तक नहीं जा सकता। समझ में आया?

मुमुक्षु : बाहर में मिथ्यादृष्टि.... बाहर में चौथे गुणस्थानवाला अन्तरंग में तो.... ही है?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या?

मुमुक्षु : मुनि की क्रिया छठवें-सातवें में अन्तरंग में....

पूज्य गुरुदेवश्री : छठवें-सातवें में नहीं, छठवेंवाला। छठवें की क्रिया।

मुमुक्षु : क्रिया की दृष्टि से बाह्यदृष्टि....

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर में मिथ्यात्व है, राग की भावना भानेवाला है। क्योंकि निज परमात्मा राग और विकल्प से रहित है, ऐसी दृष्टि उसने की नहीं। आहाहा!

अनासन्नभव्य जीव ने वास्तव में सामान्य प्रत्ययों को पहले सुचिर काल भाया है;... देखो! सुचिर (अर्थात्) अनन्त काल। ओहो! नौवें ग्रैवेयक भी अनन्त बार गया है। समझ में आया? अनन्त पुद्गलपरावर्तन किये, ऐसा शास्त्र में है। नौवें ग्रैवेयक के भी अनन्त पुद्गलपरावर्तन किये। ओहोहो! परन्तु वह....

मुमुक्षु : ....लेकर अभव्य गया, भव्य नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! दोनों गये भव्य-अभव्य। भव्य गये मिथ्यादृष्टि भव्य, मिथ्यादृष्टि अभव्य, सम्यग्दृष्टि भव्य, सम्यग्दृष्टि पाँचवेंवाला, सम्यग्दृष्टि छठवेंवाला— इतनी तो बात की पहले। समझ में आया?

कहते हैं, **पहले सुचिर काल भाया है;...** आहाहा! उसका अर्थ यह हुआ कि निज परमात्मा पूर्णानन्द प्रभु के अनुभव बिना, उसकी श्रद्धा बिना... उसकी श्रद्धा हो, तब तो भावना वीतराग की भावना भाता है। धर्मीजीव तो वीतराग की भावना भाता है। अज्ञानी निज परमात्मतत्त्व की श्रद्धा से रहित अनन्त बार सुचिर आस्रव की भावना भाता है। क्योंकि उसकी दृष्टि में आस्रव ही है, परमात्मतत्त्व की दृष्टि में नहीं। यह क्रिया जो मन्द राग की, पंच महाव्रत आदि की, बस वह क्रिया उसका लक्षण, उसकी भावना भायी। यह कहते हैं, देखो!

जिसने परम नैष्कर्म्यरूप चारित्र प्राप्त नहीं किया है,... जिसने परमस्वरूपाचरणरूप चारित्र... ऐसा कहते हैं। वह तो आस्रव की भावना, पर की भावना हुई। समझ में आया? अनासन्नभव्य...

मुमुक्षु : दसवें गुणस्थान के अन्त में होगा परमनिश्चयचारित्र?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : दसवें गुणस्थान के अन्त में होगा परमनिश्चयचारित्र?

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथे से शुरुआत होगी। चौथे से, भैया!

मुमुक्षु : श्रद्धा होगी....

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रद्धा, ज्ञान और स्वरूपाचरण तीनों चौथे से होते हैं। अनन्तानुबन्धी गयी तो अनन्तानुबन्धी तो चारित्र का भेद है, चारित्र के दोष का भेद है। वह गया तो कुछ हुआ या नहीं चारित्र? वह तो पूछते हैं जानने को, हों! ऐसी चर्चा चलती है न! समझ में आया? आहाहा!

अरेरे! वास्तविक तत्त्व... अन्तर में जहाँ निज परमात्मा की प्रतीति, अनुभव हुआ, वहाँ तो अनन्तानुबन्धी गयी (और) उसमें स्वरूप की शान्ति भी आयी। उसमें स्वरूपाचरण भी आ गया। समझ में आया? परन्तु अनन्तानुबन्धी नहीं है, इतनी (शान्ति)। जिसको संयम कहे, वह नहीं, वह तो पंचम गुणस्थान में है। समझ में आया? तो यहाँ समुच्चय अर्थ किया है न? **परम नैष्कर्म्य...** अर्थात् स्वरूपाचरणचारित्र प्राप्त नहीं किया। समझ में आया? आस्रव की भावना भानेवाले ने स्वरूप के चारित्र का आचरण नहीं किया। आस्रव के चारित्र की क्रिया की। आहाहा!

मुमुक्षु : कषाय में भी सम्यग्दर्शन हो जाता है? तीव्र कषाय में भी सम्यग्दर्शन हो जाता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अनन्तानुबन्धी न हो, अप्रत्याख्यानीय हो। ... परन्तु उस समय तो कषाय मन्द हो, पहले कषाय मन्द हो, तथापि दूसरी अनन्तानुबन्धी के अतिरिक्त सब कषाय हैं। इसमें कुछ अवरोधक नहीं है। वास्तव में तो अनन्त संसार का

कारण अनन्तानुबन्धी है। उसका नाम ही अनन्त मिथ्यात्व, उसका अनुसन्धान करनेवाली अनन्तानुबन्धी। अनन्त का अर्थ मिथ्यात्व। अनन्त-अनुबन्धी, मिथ्यात्व के साथ सम्बन्ध रखनेवाली अनन्तानुबन्धी कषाय। आहाहा!

कहते हैं, निष्कर्म चारित्र—स्वरूपाचरणरूप चारित्र नहीं किया, क्योंकि आस्रव की भावना तो चारित्र है नहीं, अचारित्र है। आस्रव की भावना है तो मिथ्यादृष्टि है, मिथ्याज्ञानी है, मिथ्याचारित्री है। आहाहा! **परम नैष्कर्म्यरूप चारित्र प्राप्त नहीं किया है, ऐसे उस स्वरूपशून्य...** देखो! स्वरूपशून्य... भगवान पूर्णानन्दस्वरूप की दृष्टि से शून्य है, (वह) बहिरात्मा है। आहाहा! राग की भावना भानेवाला... राग अपने में नहीं, विकल्प अपने में नहीं, वह तो बहिर् है। उसकी भावना भानेवाला बहिरात्मा है। समझ में आया? मिथ्यादृष्टि है। बहिर् है, भगवान आत्मा में है नहीं। ऐसे आस्रव का विकल्प, उसकी भावना भानेवाला बहिरात्मा है, अन्तरात्मा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

जिसने—**बहिरात्म-जीव ने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को नहीं भाया है।** अपने निज स्वरूप की भावना उसने कभी की नहीं। आहाहा! ऐसे बहिरात्मा जीव ने... अनासन्नभव्य की बात चलती है न? बहिर् है, अपने स्वरूप में नहीं, ऐसे दया-दान-व्रत के विकल्प जो हैं, उसकी भावना भानेवाला (उसने) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र को नहीं भाया। आस्रव को भानेवाले ने आत्मा की भावना नहीं की, ऐसा कहते हैं। और आत्मा की भावना करनेवाले आस्रव की भावना नहीं करते। आ जावे भले, (परन्तु) भावना (करते) नहीं। समझ में आया? आहाहा! सम्यग्दर्शन हुआ, उस ही क्षण में आस्रव से, व्यवहार से तो मुक्त ही है। क्योंकि वह तो अशुद्धभाव है और भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्दस्वरूप है, ऐसी प्रतीति अनुभव में हुई, वह तो शुभपरिणामसहित है, अशुद्ध परिणामसहित नहीं। अशुद्ध परिणाम से तो मुक्त है सम्यग्दृष्टि। 'व्यवहार से मुक्त है' वह आया न? समझ में आया? 'निश्चय में लीन, व्यवहार से मुक्त...' वह बन्ध अधिकार, (नाटक समयसार) में आया है।

मुमुक्षु : फिर क्यों साधु बने?

पूज्य गुरुदेवश्री : साधु (बना) राग की अस्थिरता छोड़ने को। श्रद्धा में उसका

त्याग है। है ही नहीं। उसकी श्रद्धा में आया तो चारित्र आये बिना रहता ही नहीं। अस्थिरता से मुक्त है। अस्थिरता से मुक्त न हो तो मिथ्यादृष्टि है। अस्थिरता है सही, दृष्टि में—श्रद्धा में मुक्त है। वह आया, नहीं? कहा था न? वह आया न? 'असंख्यात् लोकप्रमाण' है न? बन्ध अधिकार। 'असंख्यात लोक परवान जे मिथ्यात्वभाव, तेई विवहार भाव केवली उकतु है।' व्यवहार की रुचि और व्यवहार मेरा, वही मिथ्यात्वभाव है। 'जिन्हकौ मिथ्यात्व गयौ सम्यक दरस भयौ, ते नियत लीन विवहारसौ मुकत है।' यह बन्ध अधिकार की ३२ गाथा (पद) है।

मुमुक्षु : व्यवहार .... तो एकता हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : बन्ध और अबन्ध दोनों एक हो जाये। सम्यग्दृष्टि की तो अबन्धदृष्टि है। राग से तो मुक्त है। (राग) हो, परन्तु अन्तर्दृष्टि में मुक्त है। चारित्र तो, अस्थिरता के त्याग के लिये चारित्र करते हैं। दृष्टि में तो मुक्त ही है। मुक्त न हो तो अशुद्धतासहित ऐसे आत्मा को माना तो मिथ्यादृष्टि है। पुरुषार्थसिद्धिउपाय में आया न? १४वीं गाथा, अमृतचन्द्राचार्य। भगवान आत्मा... १४वीं गाथा है न! पुरुषार्थसिद्धिउपाय है? वह वहाँ बताया था, चार वर्ष पहले बताया था। दृष्टि की अपेक्षा से....

मुमुक्षु : दृष्टि में .... होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : होता है तो जैसे छह द्रव्य हैं, वैसे होता है। वह उससे मुक्त है, ऐसा कहते हैं। होता है, वह दूसरी चीज़ है। उससे मुक्त है। देखो! यह १४वीं गाथा है।

एवमयं कर्मकृतैर्भावैरसमाहितोऽपि युक्त इव।
प्रतिभाति बालिशानां प्रतिभासः स खलु भवबीजम्॥१४॥

आहाहा! भगवान आत्मा रागादि और शरीरादि भावों से संयुक्त न होने पर भी... संयुक्त है ही नहीं आत्मा। संयुक्त मानना, वही मिथ्यात्वभाव है। अज्ञानी जीवों को संयुक्त जैसा प्रतिभासित होता है। '**प्रतिभाति बालिशानां**' '**असमाहितोऽपि युक्त इव**' आस्रव और शरीर से रहित होने पर भी, अज्ञानी को युक्त (लगता है)। '**प्रतिभाति बालिशानां प्रतिभासः स खलु भवबीजम्**' यह मिथ्यात्व भव का बीज है। समझ में आया?

मुमुक्षु : आप तो हमको एडवान्स में मिथ्यादृष्टि सिद्ध कर देते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या? जैसे हो, वैसा सिद्ध करते हैं। हमारा कहना है या भगवान का कहना है? धन्नालालजी! यह अमृतचन्द्राचार्य... चार वर्ष पहले तो कहा था जयपुर में। दस हजार लोग थे, पण्डित लोग थे सब। यह कैलाशचन्दजी, बंसीधरजी। दूसरे कौन? जयपुर के वे पालचन्दजी। बहुत पण्डित थे। दस हजार लोग थे व्याख्यान में। उस समय गाथा बतायी थी। देखो! क्या कहते हैं? भगवान आत्मा चैतन्य (जिसे) परमात्मतत्त्व कहे, वह राग और शरीर से सहित नहीं है। **असमाहितो...** परन्तु जिसको सहित भासित होता है, (वह) मिथ्यात्वी, अभव्य है। नहीं तो तत्त्व तीन क्यों रहे? ज्ञायकतत्त्व, आस्रवतत्त्व, अजीवतत्त्व—तीन क्यों रहें? तीन तो दो से रहित है तो ज्ञायकतत्त्व हुआ, परन्तु दो से सहित हो जाये तो तीन का एक हो जाये। समझ में आया? आहाहा!

आचार्यों ने तो बात कितनी स्पष्ट (की) है! ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य, पूज्यपादस्वामी कोई भी आचार्य लोग, नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती, समन्तभद्र... बात तो टंकोत्कीण है। जैसे सर्वज्ञ के मुख में से आयी है, वह बात है। श्रद्धा में बड़ा अन्तर है, आचरण तो अनन्त बार किया। देखो न! यहाँ कहा न? फिर उसमें कहा। 'निर्विकल्प निरुपाधि आतमसमाधि, साधि जे सुगुन मोख पंथकौ ढुकत है, तेई जीव परम दशामैं थिररूप व्हैकै, धरममैं धुके न करमसौं रुकत है।' बनारसीदास। यह कलशा है ११वाँ, बन्ध अधिकार।

सर्वत्राध्यवसानमेवमखिलं त्याज्यं यदुक्तं जिनै-
स्तन्मन्ये व्यवहार एव निखिलोऽप्यन्याश्रयस्त्याजितः।

अन्य का आश्रय, इसलिए व्यवहार त्याज्य है। आहाहा!

सम्यकनिश्चयमेकमेव तदमी निष्कंपमाक्रम्य किं
शुद्धज्ञानघने महिम्नि न निजे बध्नन्ति सन्तो धृतिम्॥११॥

अरे समकिती! तू निश्चय को (क्यों अंगीकार) नहीं करता? व्यवहार से तो तुम मुक्त हो। आहाहा! समझ में आया? यह तो अगम प्याला है। यहाँ वीतरागदर्शन है। अलौकिक बात है। जहाँ इन्द्र भी कुत्ती का बच्चा... क्या कहते हैं? भगवान के समवसरण

में दक्षिण के अर्धलोक के स्वामी शकेन्द्र, उत्तर के अर्धलोक के ईशानेन्द्र (सुनने आते हों), वह चीज़ कैसी है? और वह कथा ही कैसी है? यह तो अलौकिक बात है।

यहाँ कहते हैं, **इस मिथ्यादृष्टि जीव से विपरीत गुणसमुदायवाला अति-आसन्नभव्य जीव होता है।** देखो! अज्ञानी आस्रव की भावना भाता है, तब **मिथ्यादृष्टि जीव से विपरीत गुणसमुदायवाला...** आहाहा! यह सब—अनन्त गुण पर्याय में आ गये। (मिथ्यादृष्टि जीव से विपरीत) गुणसमुदायवाला अति आसन्न भव्य जीव होता है। उसको आस्रव की भावना है तो अकेला अवगुण है। सम्यग्दृष्टि को सार द्रव्य का आश्रय है तो पर्याय में अनन्त गुण की पर्याय निर्मल प्रगट हो गयी है। कहो, समझ में आया? **मिथ्यादृष्टि जीव से विपरीत...** पर्याय की बात है, हों! **गुणसमुदायवाला अति-आसन्नभव्य जीव होता है।** ओहोहो! निज परमात्मा अनन्त गुण का पिण्ड, उसमें जब आश्रय करके एकाग्र हुआ तो द्रव्य में जितनी शक्तियाँ—गुण की संख्या है, सब अंश में प्रगट हो गयी। आहाहा! समझ में आया? मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा ने सम्यग्दर्शन-ज्ञान भाया नहीं, मिथ्यादृष्टि जीव से विपरीत उसने—(सम्यग्दृष्टि ने) भाया है, ऐसा। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र (आदि) अनन्त गुण की पर्याय, समुदाय—गुण का समुदाय सारा पर्याय में प्रगट हुआ है। आहाहा! समझ में आया? **विपरीत गुणसमुदायवाला अति-आसन्नभव्य...** अल्पकाल में उसको केवलज्ञान है।

मुमुक्षु : आप जो कुछ कह रहे हो, उसे याद कर लें तो बन जायेगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : याद करे क्या? अन्दर समझना अन्दर। अन्दर परिणमाना। याद करे—धारणा (करे), वह तो अनन्त बार की। सुनने का भाव, वह विकल्प है, याद करने का भाव भी विकल्प है। यहाँ तो मार्ग भगवान! तू पर का लक्ष्य छोड़कर, विकल्प का लक्ष्य छोड़कर, वस्तु निज परमात्मतत्त्व पर दृष्टि लगाकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान की भावना करना—वह बात है। वह कोई भाषा की चीज़ नहीं। आहाहा! पहले उसके निश्चय में—निर्णय में तो ऐसा ले (कि) भगवान आत्मा पूर्णानन्द है, उसका आश्रय करने से ही धर्म होगा। लाख-करोड़ पर का भाव पंच महाव्रत और २८ मूलगुण से बिल्कुल किंचित् धर्म होता नहीं। वीतरागमार्ग है, भाई!

मुमुक्षु : निश्चय की बात.... पश्चात् आप जो कह रहे हैं, यही बात जरा खटक जाती है। पंच महाव्रत में....

पूज्य गुरुदेवश्री : पंच महाव्रत क्या ? पंच महाव्रत वस्तु क्या है ? वह तो आस्रव है, उदयभाव है।

मुमुक्षु : महाव्रत में नाम बड़ा आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो अणुव्रत और दूसरे की अपेक्षा से उसको महाव्रत कहा है। स्वभाव की अपेक्षा से तो उसको अणु कहा है, अणु लिया है। महाव्रत... अणु में भी आस्रव है, वह तो। आहाहा! कहा न ? जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव आस्रव है। आहाहा! और वह अपराध है। पुरुषार्थसिद्धिउपाय में अमृतचन्द्राचार्य ने लिया है। महाराज! तीर्थंकरगोत्र और आहारकशरीर तो समकिती और मुनि ही बाँधते हैं। महाराज! यह चीज़ क्या है ? तो कहा कि सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र से बन्ध नहीं होता। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र योग और कषायरूप नहीं है और आहारक शरीर का बन्ध और तीर्थंकरगोत्र का बन्ध पड़ता है, वह योग, कषाय से पड़ता है। यह श्लोक है पुरुषार्थसिद्धिउपाय में। सारा भरा है। आहाहा! तब है क्या ? भगवान! वह अपराध, शुभ उपयोग का अपराध है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : शुभ उपयोग को अपराध कहा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : लिया है या नहीं यहाँ ? कितना श्लोक है ? २२०। लो, आया। २२०। 'इस लोक में रत्नत्रयरूप धर्म निर्वाण का ही कारण होता है, अन्य गति का नहीं। जो रत्नत्रय में पुण्य का आस्रव होता है, वह यह अपराध शुभ उपयोग का है।' संस्कृत मूल पाठ है। **'शुभउपयोगो अयं अपराधः'** पण्डितजी! तीर्थंकरगोत्र बाँधे, वह भाव अपराध है, ऐसा कहते हैं। और तीर्थंकरगोत्र बँधा, वह उसी भव में मोक्ष नहीं जा सकेगा। एक बार स्वर्ग में जायेगा या नरक में जायेगा, पहले कोई नरक आयु का बन्ध पड़ा हो तो। जैसे श्रेणिक राजा नरक में गये न ? तीर्थंकरगोत्र बँधा है। पहले आयुष्य नरक का बँध गया था, पीछे तीर्थंकरगोत्र बँधा तो भी नरक में जाना पड़ा। यह पर्याय की योग्यता है। समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं, अपराध है। यह शुभ उपयोग का अपराध है, ऐसा पाठ है, देखो! '**शुभउपयोगो अयं अपराधः**' लोग तो चिल्लाहट मचाये न, परन्तु शुभ उपयोग तो आस्रव है, भावबन्ध है, आत्मा अमृतस्वरूप से विपरीत जहर है। आहाहा! कठिन पड़े या न पड़े, परन्तु यह समझना ही पड़ेगा जगत को। जन्म-मरण का चौरासी का अवतार, आहाहा! उसका अन्त करना हो तो यह समझना ही पड़ेगा। लालापेठा करेगा तो मार्ग नहीं मिलेगा। लालापेठा समझते हो? ऐसा होता नहीं, ऐसा होगा, ऐसा होगा— ऐसे नहीं चलेगा। मार्ग तो जो अनादि का परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने दिव्यध्वनि द्वारा जो कहा, वही मार्ग रहेगा। सत्, सत् ही रहेगा। सत् कभी असत् नहीं होगा। आहाहा! लोगों को ऐसा कि अरे! पुण्य को हेय कहते हैं? पण्डितजी! चर्चा हुई थी। शुभ उपयोग, भगवान! शुभ उपयोग जैनधर्म है? वह तो राग है। वीतरागमार्ग तो वीतरागभाव से है। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रशस्त राग तो मोक्ष का कारण है....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी कारण नहीं, बन्ध का कारण है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कुछ नहीं। यह तो अपने तत्त्व की बात.... यह तो तत्त्व ऐसा है। कोई व्यक्ति के लिये नहीं, वह तो उसकी स्वतन्त्रता है। अनादि से चली आयी है, कोई नयी चीज़ नहीं।

वह तो कहा न? वह भाव तो अनादि से भाया नहीं। पाठ में आया न? '**मिच्छत्त-पहुदिभावा पुव्वं जीवेण भाविया सुइरं**' वह कोई नयी चीज़ नहीं। व्यक्ति स्वतन्त्र है, प्राणी स्वतन्त्र है। उसे भी दुःखी होने का भाव नहीं, परन्तु भान नहीं है। अज्ञान है। इस अज्ञान का फल क्या है? अज्ञान का फल बहुत नुकसान है। यहाँ तो कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं, आत्मा का भान हो, तब तो वस्त्र का धागा रखकर मुनिपना मानता नहीं। परन्तु वस्त्र का एक धागा भी रखकर हम मुनि हैं, (ऐसा) माने, मनावे, मानते हुए को भला जाने 'निगोदम् गच्छई।' यहाँ किसी की सिफारिश नहीं चलती। सिफारिश कहते हैं न? क्या कहते हैं? सिफारिश। एक इतने में निगोद, तो विपरीत श्रद्धा का परिणाम

उल्टा कितना? उसका फल प्रभु! करुणा लाने की बात है। तिरस्कार करने की बात नहीं है। विपरीत श्रद्धावाले जीव का तिरस्कार करना नहीं। वह तो अपना स्वयं तिरस्कार करता है, उसका तिरस्कार क्या? आहाहा!

कहते हैं, **मिथ्यादृष्टि जीव से विपरीत गुणसमुदायवाला अति-आसन्नभव्य जीव होता है।** ओहोहो! **इस (अतिनिकटभव्य) जीव को सम्यग्ज्ञान की भावना किस प्रकार से होती है, ऐसा प्रश्न किया जाये तो (आचार्यवर) श्री गुणभद्रस्वामी ने (आत्मानुशासन में २३८ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:—** गुणभद्राचार्य का आधार लेते हैं। आत्मानुशासन। भाषा देखो!

भावयामि भवावर्ते भावनाः प्रागभाविताः।
भावये भाविता नेति भवाभावाय भावनाः॥

सब भभा बहुत। आहाहा! मुनि, ज्ञानी धर्मात्मा, परन्तु क्षयोपशम भी कितना!

भावयामि भवावर्ते भावनाः प्रागभाविताः।
भावये भाविता नेति भवाभावाय भावनाः॥

भव के अभाव की भावना कभी की नहीं। आहाहा! इसका अर्थ कल होगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल ९, शनिवार, दिनांक - ३१-७-१९७१
श्लोक - १२१, गाथा - ९१, प्रवचन-८१

नियमसार, सिद्धान्तशास्त्र है, परमार्थ प्रतिक्रमण अधिकार। १७१ पृष्ठ है। श्लोक बोल गये हैं, फिर से। गुणभद्रस्वामी आत्मानुशाासन में इस सम्बन्धी अधिकार वर्णन करते हैं।

भावयामि भवावर्ते भावनाः प्रागभाविताः।
भावये भाविता नेति भवाभावाय भावनाः॥

अरे रे! इस जीव ने **भवावर्त में...** चौरासी के अवतार के चक्र में, चार गति के भव नरक, निगोद, एकेन्द्रिय, ईयल, कीड़ा, मकोड़ा, ढोर, पशु आदि अवतार, अरे! अनन्त बार किये। ऐसे भवावर्त—भवचक्र में भव का भंवरजाल... समुद्र में भंवर होती है न, चक्कर? उसमें, जहाज उसमें ही (फँसा) रहता है, छूट सकता नहीं। ऐसा भवचक्र—भवपरावर्तन, कहते हैं, **पहले न भायी हुई...** अनन्त काल में, अपना आत्मा आनन्दस्वरूप, उसकी भावना अनन्त काल में कभी की नहीं। नौवें ग्रैवेयक भी अनन्त बार गया, दिगम्बर द्रव्यलिंगी साधु पंच महाव्रत आदि धारण कर, परन्तु अन्तर की भावना 'आत्मा आनन्द है' ऐसी भावना कभी की नहीं। आहाहा! **भवावर्त में पहले न भायी हुई भावनाएँ (अब) मैं भाता हूँ।** ऐसा आचार्य कहते हैं। अब मैं इस भवावर्त में नहीं भायी हुई भावना को भाता हूँ।

वे भावनाएँ (पहले) न भायी होने से मैं भव के अभाव के लिये उन्हें भाता हूँ... भव का अभाव... जिससे चार गति मिले, ऐसी भावना आस्रव की और बन्ध की, वह तो अनन्त बार भायी। आहाहा! आगे तो कहेंगे। व्यवहाररत्नत्रय की भावना भी अनन्त बार की है। आहाहा! वह तो भव का कारण था। **मैं भव के अभाव के लिये उन्हें भाता हूँ...** क्यों? **(कारण कि भव का अभाव तो भवभ्रमण के कारणभूत भावनाओं से विरुद्ध प्रकार की पहले न भायी हुई ऐसी अपूर्व भावनाओं से ही होता है)।** क्या कहते

हैं। भवभ्रमण के कारणभूत पुण्य और पाप—विकार की भावना की हो, बढ़ो, वह मिथ्यादर्शन की भावना है। आहाहा! ऐसी भावना भवभ्रमण का कारण है। उससे विरुद्ध... पुण्य-पाप की भावना, वह भवभ्रमण की कारण है। चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का परिणाम (हो), परन्तु भवभ्रमण का कारण है, ऐसा कहते हैं। यह ही है। आजकल यही चलता है, (ऐसा) कहते हैं पण्डितजी।

मुमुक्षु : जानबूझकर कोई भाता होगा महाराज?

पूज्य गुरुदेवश्री : भान नहीं, भान नहीं (कि) मैं क्या चीज़ हूँ। आत्मा आनन्द का धाम, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द अनन्त-अनन्त भरा है, ऐसी अन्तर्मुख होकर रुचि कभी की ही नहीं। रुचि, सम्यग्दर्शन की बात है यहाँ। सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन। व्यवहार जो दया, दान, व्रत आदि परिणाम है, उसकी भावना भाना, वह मिथ्यादर्शन की भावना है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : यह बात सुने बिना कहाँ से.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सुने तब तो करे या नहीं? ऐसा कहते हैं। यह आगे कहेंगे अभी-अभी। सुना है बारम्बार, परन्तु अन्तर की दृष्टि में आत्मा आनन्दस्वरूप निर्विकल्प, निष्क्रिय—राग की क्रियारहित चीज़ है, उसकी अन्तर्दृष्टि नहीं की। चाहे तो ग्यारह अंग पढ़ डाला। पढ़ डाला (अर्थात्) पढ़कर छोड़ दिया। अरे! कहते हैं कि भगवान आत्मा शुद्ध आनन्द का धाम पुण्य-पाप के राग से रहित है, ऐसी कभी भावना भायी नहीं। आहाहा! देखो! आचार्य स्वयं कहते हैं। आत्मानुशासन।

भव का अभाव तो भवभ्रमण के कारणभूत भावनाओं से विरुद्ध... व्यवहार रागादि है, वह व्यवहार तो भवभ्रमण का कारण है। उससे विरुद्ध ज्ञाता-दृष्टा चैतन्यमूर्ति भगवान की एकाग्रता, वह आत्मा की भावना है। पन्नालालजी! यह अपूर्व भावना मैं भव के अभाव के लिये भाता हूँ, ऐसा कहते हैं। कोई स्वर्गादि का भव मिले, वह भावना तो मिथ्यात्व की भावना है। आहाहा! मैं पुण्य करूँ और पुण्य के फल मुझे मिले, वह भी मिथ्यात्वभावना है। अहो! मेरी चीज़ सच्चिदानन्द निर्मल वीतरागमूर्ति उस सन्मुख की एकाग्रता की भावना मैंने भवभ्रमण में कभी की नहीं। समझ में आया? वह भावना आचार्य कहते हैं। दुनिया को समझाते हैं और अपनी भावना को प्रसिद्ध करते हैं। मैं तो

अपना आत्मा आनन्दमूर्ति हूँ, उसमें एकाग्रता की भावना मैं तो भाता हूँ। दूसरी कोई चीज़ मेरे पास है नहीं। व्यवहाररत्नत्रय की भावना भी मैं तो नहीं भाता हूँ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह श्लोक टीकाकार कहेंगे। देखो! १२१ श्लोक है। मक्खन है, मक्खन है। मक्खन क्या कहते हैं न?

अथ भवजलराशौ मग्न-जीवेन पूर्वं,
किमपि वचनमात्रं निर्वृतेः कारणं यत्।
तदपि भव-भवेषु श्रूयते बाह्यते वा,
न च न च बत कष्टं सर्वदा ज्ञानमेकम्॥१२१॥

पद्मप्रभमलधारि मुनि कहते हैं, अरे! **श्लोकार्थ :—जो मोक्ष का कुछ कथनमात्र...** कथन है न, निरूपण। व्यवहार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह तो कथनमात्र है। वास्तविक मोक्षमार्ग है ही नहीं। आया या नहीं आया? वचनमात्र निवृत्ति... मोक्ष का निरूपण—कथनमात्र है। यह मोक्षमार्गप्रकाशक में आया न? मोक्षमार्गप्रकाशक में। दो मोक्ष का मार्ग तो निरूपणमात्र है—कथनमात्र है। वास्तविक तो एक निश्चयमोक्षमार्ग ही मोक्षमार्ग है।

मुमुक्षु : वह तो पण्डित का वाक्य है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या कहते हैं यहाँ? आचार्य का वाक्य है मुनि का। यह क्या कहते हैं? देखो! '**भवजलराशौ मग्न-जीवेन पूर्वं किमपि वचनमात्रं निर्वृतेः कारणं**' निवृत्ति अर्थात् मोक्ष का कारण कथनमात्र—निरूपणमात्र। क्या आया? वह आया न उसमें भी? हीराभाई कहाँ गये? कथनमात्र आया न? निरूपण है न वहाँ? सम्यग्दर्शन दो प्रकार का नहीं, उसका कथन दो प्रकार का है। सम्यग्ज्ञान दो प्रकार का नहीं, कथन दो प्रकार का है। साथ में लेकर आरोप करके कहते हैं। चारित्र दो प्रकार का नहीं, एक ही प्रकार का है, परन्तु कथन दो प्रकार का है। आहाहा!

मोक्षमार्गप्रकाशक अधिकार में यही स्पष्टीकरण किया है। उसमें शास्त्र के आधार से स्पष्टीकरण किया है। टोडरमलजी ने अपनी कल्पना से कोई शब्द नहीं (रखा)। एकबार कैलाशचन्दजी कहते थे कि महाराज! इस मोक्षमार्गप्रकाशक में किस-किस आधार से लिया है, (उसका विवरण) बनाओ। भाई! हमको तो समय नहीं। है शास्त्र के आधार से सब। समझ में आया? उन्होंने कहा था। कैलाशचन्दजी आये थे न? ऐसा

कि क्या-क्या आधार है यहाँ शास्त्र का? उसमें तो शब्द-शब्द में शास्त्र का आधार है। परन्तु इतना अधिक समय और निवृत्ति हमको तो है नहीं। हमारे आत्मा के काम के आगे इसका समय तो हमको है ही नहीं।

एक ने कहा था, ऐसा कि मोक्षमार्गप्रकाशक अधिकार सिद्धान्त में जो सब सामान्यरूप, रहस्यरूप था उसका विशेषरूप स्पष्टीकरण कर दिया है। उनके घर की बात एक भी नहीं है। यह क्या कहते हैं? देखो! आचार्य स्वयं पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र '**वचनमात्रं निर्वृतेः कारणं**' निवृत्ति अर्थात् मोक्ष। कथनमात्र कारणं... आ गया न, भाई? पण्डितजी! आहाहा! यही आया है वहाँ मोक्षमार्गप्रकाशक में। समझ में आया? वही बात यहाँ ली है न। शास्त्र के आधार से बहुत गजब काम किया है उन्होंने। कितने पृष्ठ पर आया? २५५ (गुजराती), देखो!

'अब मोक्षमार्ग तो दो नहीं, परन्तु मोक्षमार्ग का निरूपण दो प्रकार से है।' निरूपण—यह कथन। मोक्षमार्ग का निरूपण दो... 'जहाँ सच्चे मोक्षमार्ग का निरूपण किया है, वह निश्चयमोक्षमार्ग है, तथा जहाँ मोक्षमार्ग तो नहीं, परन्तु मोक्षमार्ग का निमित्त व सहचारी है, उसे उपचार से मोक्षमार्ग कहते हैं, वह व्यवहारमोक्षमार्ग है। क्योंकि निश्चय-व्यवहार का सर्वत्र ऐसा ही लक्षण है।' निश्चय-व्यवहार का सर्वत्र ऐसा ही लक्षण है। निरूपण करना दो प्रकार का (और) वास्तविक (मोक्षमार्ग) एक है। आहाहा! अरे! आत्मा अन्तर निज चीज़ ज्ञान और आनन्द का पिण्ड भण्डार प्रभु... यह विकल्प उठते हैं दया, दान, व्रत, व्यवहार रत्नत्रय, वह तो राग है, संसार है, वह तो उदयभाव है। उसकी भावना तो अनन्त बार की। कहा न यहाँ? अभी आयेगा स्पष्टीकरण बाद के कलश में। 'समस्त विभाव और व्यवहारमार्ग के रत्नत्रय को छोड़कर...' इस ओर आयेगा। १७३, नीचे की लाईन, आखिर की अन्तिम लाईन। है? 'व्यवहारमार्ग रत्नत्रय को छोड़कर...' वह राग है। बहुत स्पष्ट किया है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, अहो! **मोक्ष का कुछ कथनमात्र (-कहनेमात्र) कारण है, उसे भी (अर्थात् व्यवहाररत्नत्रय को भी)...** कोष्ठक में स्पष्टीकरण लिखा है। है? व्यवहाररत्नत्रय तो कथनमात्र है, वह वस्तु नहीं है। यह छहढाला में भी आया न? निश्चय सत्यार्थ, व्यवहार उसका कारण, वह असत्यार्थ। उसका अर्थ हुआ कि सत्यार्थ

सो निश्चय, व्यवहार सो कारण... आया न? व्यवहार वह असत्यार्थ कथनमात्र है। आहाहा! छहढाला में आया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : (जो सत्यारथ रूप सो निश्चय कारण सो व्यवहारो)। हाँ, यह। परन्तु दरकार कहाँ (की है) तुमने सेठिया होकर? बाहर के पैसे में यह दरकार कहाँ? पन्नालालजी! यह सेठिया को... एक बात ऐसी है छहढाला में। सत्यार्थ... ऐसा सेठिया ने कण्ठस्थ तो किया था थोड़ा। सत्यार्थ वह निश्चय, उसका अर्थ यह हुआ कि व्यवहार, वह असत्यार्थ है-झूठा है, ऐसी बात है। है अवश्य, वह राग है अवश्य, परन्तु मोक्षमार्गरूप से झूठा है। वह यहाँ कहते हैं, देखो! मोक्ष का कुछ कहनेमात्र कारण है। पाठ में है न वह?

'किमपि वचनमात्रं निर्वृतेः कारणं यत्' दूसरी लाईन है। उसे **भवसागर में डूबे हुए जीव ने...** ओहोहो! अशुभराग तो अनन्त बार किया, परन्तु यह शुभराग भवावर्त का कारण भी अनन्त बार किया। आहाहा! वीतराग की वाणी क्या कहती है (उसकी) खबर नहीं। भगवान! तेरी चीज़ को भूलकर, ऐसा व्यवहाररत्नत्रय का शुभराग, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, पंच महाव्रत का विकल्प-राग, शास्त्र का पढ़ने का परलक्ष्यी राग—ऐसा व्यवहाररत्नत्रय **भवसागर में डूबे हुए जीव ने पहले भवभव में (-अनेक भवों में) सुना है और आचरा (-आचरण में लिया) है;...** यह व्यवहार सुना भी है, आचरण भी किया। निश्चय कभी सुना नहीं और आचरण कभी किया नहीं। समझ में आया?

परन्तु अरे रे! खेद है कि जो सर्वदा एक ज्ञान है,... भगवान आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है। यह व्यवहाररत्नत्रय तो विकल्प है—राग है। यह राग आत्मस्वरूप है? (नहीं)। भगवान चैतन्यस्वरूप प्रज्ञास्वरूप ज्ञानमूर्ति प्रभु आत्मा है। ऐसे ज्ञान के साथ अनन्त गुण साथ में आ गये। यह तो **सर्वदा...** 'सर्वदा' लिया न? तीनों काल... भगवान आत्मा तो जानन-देखनस्वरूप है। उसमें तो व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प भी नहीं है। आहाहा! **उसे (अर्थात् जो सदा एक ज्ञानस्वरूप ही है, ऐसे परमात्मतत्त्व को)...** देखो! परमात्मतत्त्व अपना। वह **जीव ने सुना-आचरा नहीं है, नहीं है।** दो बार है। **'न च न च बत कष्टं**

सर्वदा ज्ञानमेकम्।' आहाहा! मैं तो एक ज्ञानक्रियावाला हूँ, रागक्रियावाला मैं नहीं। आहाहा! चौरासी के भवावर्त में अनन्त-अनन्त काल में मैंने व्यवहाररत्नत्रय सुना है, आचरा भी है—आचरण भी किया है मैंने। वह कोई (वास्तविक) चीज़ नहीं है। आहाहा! निश्चय आचरण अपना ज्ञानस्वरूप भगवान चैतन्यप्रभु, उसकी एकाग्रता, उसको ध्येय करके एकाग्रता, यह सम्यग्दर्शन, उसका लक्ष्य करके वेदन—स्वसंवेदन, वह ज्ञान और उसमें लीनता—ऐसी ज्ञान की एकाग्रता की भावना कभी की नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : आप जैसा सुनानेवाला नहीं मिला होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुना, भगवान की वाणी भी अनन्त बार सुनी। आहाहा! यहाँ तो मना करते हैं कि सुनी ही नहीं। सुनी—सुनना कहने में आता ही नहीं। समवसरण में अनन्त बार गया। आहाहा! तीन लोक के नाथ का समवसरण, जिसमें सौ-सौ इन्द्रों की उपस्थिति, सौ-सौ इन्द्रों की उपस्थिति, बाघ और सिंह ऐसे हाथ जोड़कर सुनते थे। ऐसे समवसरण में भी अनन्त... परमात्मप्रकाश में आता है।'भवोभवो जिनवर पूजिया...' भवोभव जिनवर पूजिया, यह आता है। परन्तु आत्मा ज्ञानानन्द है, उसकी कभी भावना की नहीं। आहाहा!

सम्यग्ज्ञानदीपिका में तो यहाँ तक आता है, धर्मदास क्षुल्लक (कृत)। समझ में आया? वह प्रश्न आया था न, वह याद आ गया। कोई कहता था न? कोई पुस्तक बताता था हमारे सोनगढ़ का। उसे बताया भिण्ड में। देखो! पति सिर पर है, उस (स्त्री) का किसी के साथ व्यभिचार हो जाये तो दोष नहीं, यह दृष्टान्त है सम्यग्ज्ञानदीपिका में। सम्यग्ज्ञानदीपिका का दृष्टान्त है। यहाँ है नहीं। सम्यग्ज्ञानदीपिका का है। यह हमारे घर की बात नहीं। व्याख्या तो यहाँ होती है। सम्यग्ज्ञानदीपिका का है। दोपहर को लाना।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, पहले से है। अभी कहाँ? हिन्दी में पहले से है, ऐसा है... वह बताता था कोई भिण्ड में। यह हिन्दी तो पहले से है, हमारे पास पुरानी हिन्दी में है, पुरानी हिन्दी। हमने पहले पुरानी हिन्दी में देखा था जंगल में। ७८ के वर्ष, ४९ वर्ष हुए। हमारे पास पुस्तक है पुरानी हिन्दी में, बड़े अक्षर हैं। पुरानी-जूनी। हम तो बोटाद में रहते थे। जंगल में रहकर देखा था। ७८ के वर्ष। ४९ वर्ष हुए। हमारे पास

पुस्तकें तो बहुत आती थी न पहले ? सारे ५०-५० वर्ष... पहले वहीं वाँचते थे। श्वेताम्बर शास्त्र तो सब वाँच लिये थे, ७८ के वर्ष पहले। करोड़ों श्लोक सब वाँच लिये थे। ७८ के वर्ष से (समयसार) आया। कहाँ होगा यह खबर पड़े ? ११५। ११५ है। देखो !

दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल, भावनगर (सौराष्ट्र) ने छपाया है। हमारे जयन्तीभाई ने, हिम्मतभाई ने छपाया है। 'जैसे जिस स्त्री के मस्तक पर अपना पति है...' यह धर्मदास क्षुल्लक का है। पदमचन्दजी ! याद आ गया यह। किस कारण से आ गया ? भवे भवे.... दूसरा लेना था मुझे तो। उसमें ऐसा आया है कि समवसरण में अनन्त बार गया और मणिरत्न के दीपक, कल्पवृक्ष के फूल से भगवान की पूजा की। वह याद आ गया। उसमें से यह याद आया। मणिरत्न के दीपक भगवान के समवसरण में, कल्पवृक्ष के फूल। जय नारायण... जय भगवान... वह सब तो शुभभाव है। पन्नालालजी ! ऐसा है उसमें। यह तो हमने बहुत बार—सैकड़ों बार देखा है ७८ के वर्ष से। कितनों का तो जन्म भी नहीं होगा। ७८ के मागसर महीने में। ७९ में गुजर गये थे न माणेकचन्दजी तपसी। मागसर शुक्ल पूर्णिमा। तब हम बोटाद में थे। वहाँ आगे यह पुस्तक मिली थी। परन्तु यह पुरानी, मूल पुरानी है मेरे पास बोटाद की। पुरानी उस समय की। यह हरिभाई लाये थे। तुम्हारे हरिभाई, हरिभाई भायाणी लाये थे, वहाँ बोटाद। हम बाहर जंगल में जाते न, तब व्याख्यान नहीं वाँचते थे। अमुक समय व्याख्यान नहीं वाँचते थे। .... उस समय तो वाँचकर हमको... ओहोहो ! वाह ! यहाँ देखो ! यह लिखा है। वह कहे कि सोनगढ़ ऐसा कहता है। परन्तु यह सोनगढ़ की बात है या (भगवान की बात है) ? हमारे पास प्राचीन-पुरानी पुस्तक यहाँ है। यह तो छपाया, परन्तु उसके पहले की एक हिन्दी है। तीसरी आवृत्ति है, दो आवृत्ति हो गयी है।

'जैसे जिस स्त्री के मस्तक पर अपना पति है, तथापि वह स्त्री परपुरुष के निमित्त से गर्भ भी धारण करे तो भी उसे दोष नहीं लगता।' 'दोष (नहीं) लगता' का अर्थ उसको आरोप नहीं आता। पति सिर पर है तो आक्षेप नहीं आता। आळ नहीं कहते ? आक्षेप। 'आळ' हमारी गुजराती भाषा है। बदनामी नहीं होती, लो भाई ! ऐसा अर्थ है यह... बदनामी नहीं होती। देखो ! 'परपुरुष के निमित्त से गर्भ हो तो उसको दोष नहीं लगता...' बाहर बदनामी नहीं होती, वह बात प्रसिद्ध नहीं होती। 'वैसे ही...' अब

दृष्टान्त का सिद्धान्त देते हैं। 'कोई पुरुष के मस्तक पर...' तन्मयस्वरूप मस्तक के ऊपर 'स्वसमय ज्ञानरूपी परमब्रह्म परमात्मा है...' ज्ञान के साथ, आनन्द के साथ तन्मय अनुभव हुआ है, ऐसा जिसके सिर पर परमात्मा दृष्टि में है, ऐसा कहते हैं। 'वह पुरुष कदापि कर्मवश दोष भी करे तो उस पुरुष को दोष नहीं लगता, बड़े की शरण लेने का यही फल है।' अभिप्राय का दोष है। रागादि का दोष है, परन्तु सिर पर कोई....

मुमुक्षु : दूसरी बात बताते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरी बात बताते हैं।

मुमुक्षु : वह कहता है कि व्यभिचार भी करे तो कोई दोष नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा उल्टा लगाते हैं ? क्या करे ? यह तो सम्यग्ज्ञानदीपिका तो सबके पास है। ११५ पृष्ठ पर है उसमें। आहाहा! क्या करे? यहाँ तो सब पुस्तकें व्याख्यान में चल गयी हैं, भाई! और उसका व्याख्यान चल गया है। इतनी बात है।

ऐसे आत्मा आनन्दस्वरूप का जहाँ अनुभव हुआ, मस्तक—सिर पर परमात्मा अपना है, उस परमात्मा को कदाचित् निमित्तादि से राग का दोष आ जाये तो भी उसको आक्षेप नहीं लगता—आक्षेप नहीं कि वह दोष का करनेवाला है। ऐसा कहते हैं। अथवा दोष का करनेवाला कर्ता है, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। मूल तो ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : कोई ऐसा आक्षेप.... सम्यग्दृष्टि ऐसा....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! वह करे नहीं, सम्यग्दृष्टि ऐसा करे ही नहीं। यह तो दृष्टान्त दिया है। अरेरे! लोगों को तत्त्व की खबर नहीं और बाहर में ऐसा....

यह याद क्यों आ गया? कि वह सम्यग्ज्ञानदीपिका में ऐसा है और ऐसा परमात्मप्रकाश में ऐसा है कि 'भवोभव जिनवर पूजिया।' परन्तु आत्मा क्या चीज़ है, उसकी कभी दर्शन और ज्ञान में दरकार की नहीं। आहाहा! सम्यग्ज्ञानदीपिका में है कहीं। अभी याद आ गया। वह भिण्ड के हैं न तुम्हारे पण्डितजी, तो याद आ गया।

मुमुक्षु : वह.... के लिये अच्छा बताना है, परन्तु आपका विरोध करने के लिये...

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे भगवान! विरोध किसी का कौन करे? कौन करे? किसका करे ? भाई! हम कौन हैं, क्या है, उसकी खबर बिना विरोध कौन करे हमारा ?

कोई किसी का विरोध नहीं करता। वह आता है न योगसार में? कौन मैत्री.... योगसार में आता है। कौन किसकी मैत्री करे, कौन किसका विरोध करे? किसी का कोई कर सकता नहीं। योगसार में आता है। योगसार, अमितगति आचार्य। यह योगीन्द्रदेव। अमितगति आचार्य का सवेरे कहा था। वे अमितगति आचार्य।

यहाँ कहते हैं कि मोक्ष का व्यवहाररत्नत्रय तो कथनमात्र है। आहाहा! अभी श्लोक आयेगा। स्पष्ट श्लोक पीछे १२२ में आयेगा। '**त्यत्तवा विभावमखिलं व्यवहारमार्ग रत्नत्रयं च**' व्यवहाररत्नत्रय भी राग है, उसको छोड़कर आत्मा का आश्रय करो। उसके बिना धर्म कभी होता नहीं। आहाहा! अरे! **भवसागर में डूबे हुए जीव ने पहले भवभव में सुना है और आचरा है...** आहाहा! परन्तु अरेरे! खेद है, सर्वदा एक भगवान चैतन्यमूर्ति जिसमें व्यवहाररत्नत्रय विकल्प का भी अभाव है, ऐसी ज्ञानमात्र चीज़ की कभी भावना की नहीं। अपनी भावना की नहीं (और) पर की, राग की (भावना) की है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! राग तो पर है, विभाव है। आहाहा! समझ में आया?

जीव ने सुना, आचरा नहीं, नहीं, यहाँ तो ऐसा कहते हैं। आत्मा आनन्दमूर्ति ज्ञानस्वरूप है, उसकी दृष्टि करके रमना, यह बात कभी सुनी नहीं। आहाहा! सुना नहीं तो आचरे तो कहाँ से? 'सुना' इसके कहते हैं कि सुनकर अन्दर में आचरण करे, एकाग्र हो तो 'सुना' कहने में आता है। समझ में आया? आहाहा! चौथी गाथा में आया न? **कामभोगबंध कथा... सुदपरिचिदाणुभूदा...** चौथी गाथा, समयसार। **सुदपरि-चिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकथा...** काम अर्थात् राग, भोग अर्थात् भोगना। राग का—पुण्य का—व्यवहार का करना और उसका भोगना, यह बात तो अनन्त बार सुनी है। **सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकथा। एयत्तस्सुवलंभो...** परन्तु विकल्प से भिन्न (और) अपने स्वभाव से अभिन्न ऐसी बात कभी उसने सुनी नहीं। अपनी निज हित की बात कभी सुनी नहीं। सुनी हो तो अन्तर में एकाग्रता—सम्यग्दर्शन प्रगट हुए बिना रहे नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

अरेरे! ऐसा है न? उसमें आता है न भाई! लड़का भाई बींछियावाला। अरेरे! 'सरोवर कांठे मृगला तरस्या...' आता है न उसमें? उसमें होगा। रमेश... रमेश।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, यह तो दूसरा। 'मार्ग अलग जगत से सन्त का रे लोल...' मुम्बई व्याख्यान हुआ था तो बींछिया की मण्डली—भजन मण्डली है, उसने बनाया है। 'सरोवर कांठे रे मृगला तरस्या रे लोल,...' चैतन्य सरोवर भगवान आत्मा। 'सरोवर कांठे मृगला तरस्या रे लोल, दोडे हांफी झांझवा जलनी काज...' मृगजल। मृगजल पीने को हिरण हाँफकर दौड़कर जाता है। 'अरेरे! साचा वारि रे अेने न मळे रे लोल...' रखो एक। समझे? है? देखो! तीसरा बोल है। 'सरोवर कांठे रे मृगला तरस्या रे लोल...' हिरण। सरोवर के किनारे प्यासे हैं। 'दोडे हांफे झांझवा जलनी काज...' 'दोड़े' दौड़े समझे? और हांफी... हाँफकर दौड़े। 'अरेरे! साचा वारि...' वारि अर्थात् पानी। 'साचा वारि रे अेने ना मळे...' मुम्बई व्याख्यान हुआ था, उसका (पद) हमारे मुमुक्षु ने बनाया है। 'अेम मनना मृगलाने पाछा वाणजो रे लोल...' यह मन का मृग राग की भावना में है, भाई! वापस मोड़ना। 'पाछा' समझे? 'जोडी द्यो आतम सरोवर आज, अेने मळशे आतम सुख अमुला रे लोल...' यह सब है लम्बा। 'अरेरे!' ऊपर से याद आया। रखो एक। कहो, समझ में आया? आहाहा! यहाँ अरेरे! आया न? उसमें यह लिया है। बड़ा भजन बनाता है। अभी पोरबन्दर में आया था। बहुत भजन बनाता है। लड़का छोटा है २१-२२ वर्ष का। वह प्रेमचन्दभाई नहीं हैं बींछिया के? प्रेमचन्दभाई आते हैं, उनके लड़के का लड़का है। भजन मण्डली बनायी है सात-आठ लोग... कहते हैं, वह शुभभाव है। आहाहा! यह १२१ कलश हुआ। ९१ गाथा।

मिच्छादंसणणाणचरित्तं चइऊण णिरवसेसेण।
सम्मत्तणाणचरणं जो भावइ सो पडिक्कमणं॥९१॥

९१ गाथा।

जो जीव त्यागे सर्व मिथ्यादर्श-ज्ञान-चरित्र रे।
सम्यक्त्व-ज्ञान-चरित्र भावे प्रतिक्रमण कहते उसे॥९१॥

उसकी **टीका :—यहाँ (इस गाथा में) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का निरवशेष (-सम्पूर्ण) स्वीकार करने से...** देखो! अपना सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निर्मल-निर्विकारी

पर्याय जो वस्तु त्रिकाली ध्रुव के आश्रय से प्रगट हुई, उसका सम्पूर्ण स्वीकार करने से... अभेदरूप से आत्मा में आने से, ऐसा अर्थ है। चिदानन्द भगवान ध्रुव अनन्त आनन्द का सरोवर सागर प्रभु में दृष्टि, ज्ञान और रमणता का स्वीकार करने से **और मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र का निरवशेष त्याग करने से...** उसमें निरवशेष स्वीकार (अर्थात्) कुछ बाकी रखे बिना। त्याग करने से **परम मुमुक्षु को निश्चयप्रतिक्रमण होता है, ऐसा कहा है।** आहाहा! धर्मात्मा को सच्चा प्रतिक्रमण कहते हैं। उसको होता है, ऐसा कहते हैं। अब टीकाकार स्पष्टीकरण करते हैं।

मुमुक्षु : निरवशेष माने....

पूज्य गुरुदेवश्री : राग का सर्वथा त्याग करते हैं। सर्वथा त्याग, वह निरवशेष। राग का अंशमात्र भी—गुण-गुणी का भेदरूप विकल्प भी—निरवशेष त्याग कर... सब त्याग कर, ऐसा कुछ बाकी रखे बिना त्याग कर... और यहाँ बाकी रखे बिना आश्रय करके... स्वभाव की ओर में बाकी रखे बिना आश्रय करके और राग का (कुछ) बाकी रखे बिना त्याग करके सब त्याग किया। आहाहा!

मुमुक्षु : राग बना रहे तो सम्यग्दर्शन हो जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : हो।

मुमुक्षु : प्रतिक्रमण होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रतिक्रमण कहा न? निश्चय प्रतिक्रमण है। मिथ्यात्व का निश्चय प्रतिक्रमण हो गया। राग हो, परन्तु मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण हो गया। स्वभाव की दृष्टि हुई, सम्यग्दर्शन हुआ और मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण हो गया। पीछे अव्रत का त्याग कर, स्वरूप में स्थिरता हो जाये तो अव्रत का त्याग—प्रतिक्रमण हो गया। स्वरूप में स्थिर हो गया।

मुमुक्षु : अनन्तानुबन्धी का राग बना रहे?

पूज्य गुरुदेवश्री : बना रहे। अनन्तानुबन्धी बना रहे तो प्रतिक्रमण नहीं। वह तो मिथ्यात्व है। निरवशेष...

मुमुक्षु : स्वीकार सर्वथा निरवशेष उपचार करके.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ (स्वभाव का) निरवशेष स्वीकार करके, यहाँ (राग का) निरवशेष त्याग करके। दो शब्द हैं न? अब कहते हैं।

मुमुक्षु : अनन्तानुबन्धी और मिथ्यात्व का अविनाभावी सम्बन्ध है।

पूज्य गुरुदेवश्री : साथ ही है। वह तो चलता है।

देखो! पूनमचन्दजी! क्या है उसमें? है, पुस्तक है? ठीक अच्छा। **भगवान अर्हत् परमेश्वर के मार्ग से प्रतिकूल...** यहाँ तो विरोध करते हैं। भगवान के मार्ग से विरुद्ध... उसकी निन्दा करते हैं यहाँ।

मुमुक्षु : सही बात की निन्दा करते हैं तो क्या है?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी की निन्दा नहीं करना, किसी का विरोध नहीं करना। निन्दा का अर्थ? वस्तु है, उसका विरोध... झूठी दृष्टि है उसकी। समझ में आया? ३६३ पाखण्ड वीतराग सर्वज्ञ मार्ग से विरुद्ध... गोम्मटसार में दिया है। क्रियावादी, अक्रियावादी, विनयवादी और अज्ञानवादी। आहाहा! भगवान अरिहन्त परमेश्वर का मार्ग, परमात्मा सर्वज्ञप्रभु ने जो मार्ग कहा, अरे! उससे प्रतिकूल मार्गाभास (अर्थात्) मार्ग नहीं परन्तु मार्ग मानते हैं। मार्गाभास (अर्थात्) मार्ग जैसा देखे। आहाहा! समझ में आया?

सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो मार्ग कहा, उससे जो विरुद्ध है, वे सब मार्गाभास हैं। मार्ग नहीं, परन्तु मार्ग जैसा दिखे। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! जैन में भी वीतराग ने कहा हुआ मार्ग, परमेश्वर ने कहा हुआ मार्ग। तीन लोक के नाथ जिन्हें एक समय में अनन्त ज्ञान, आनन्द प्रगट हुआ, उसने जो आगम कहा—वाणी, उसमें कहा मार्ग, उसके अतिरिक्त दूसरे मार्गाभास हैं। आहाहा! झूठा है। मार्ग नहीं, झूठा है। ऐसा श्रद्धान, ऐसे **मार्गाभास में मार्ग का श्रद्धान, वह मिथ्यादर्शन है;...** यह तो कौन कहते हैं? यह मुनि टीकाकार कहते हैं और आचार्य स्वयं कहते हैं। यह कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि **'मिच्छादंसणणाणचरित्तं चइऊण णिरवसेसेण'** किसी का मार्ग झूठा नहीं कहना। आहाहा! यह मार्ग सच्चा एक ही है। दूसरे सब मार्ग सच्चे हैं ही नहीं। आहाहा!

यह पूनमचन्द के गाँव में होता है न? आहाहा! यह मिथ्यादर्शन है। भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा सर्वज्ञदेव जिनवरेन्द्र ने तीन काल—तीन लोक देखा, उन्होंने जो

मार्ग कहा, उसके अतिरिक्त दूसरे मार्गाभास हैं। सब सूक्ष्म बात है भैया! यहाँ तो श्वेताम्बर को भी मार्गाभास में डाला है, भाई! किसी को दुःख लगे, ऐसी बात है। मोक्षमार्गप्रकाशक में तो उसको भी अन्यमत में डाला है। आहाहा! यह कोई पक्ष नहीं, वस्तु की स्थिति ऐसी है। क्या करे? पक्षवाले को दुःख हो, क्या करे? मोक्षमार्गप्रकाशक में लिया है कि मदिरा की निन्दा करने से मदिरा बेचनेवाले को दुःख हो तो क्या करे? मोक्षमार्गप्रकाशक में लिया है। वेश्या की निन्दा करने से कि वेश्या—परस्त्री का त्याग करो, उसको ऐसा कहने से वेश्या को दुःख लगे तो क्या करे? तो ऐसा तो कोई सत्य उपदेश नहीं कि सबको जँचे। ऐसा लिखा है। लिखा है न उसमें? पाँचवें अध्याय में है। समझ में आया? ऐसी तो कोई एक बात नहीं कि सबको सच्ची लगे। क्या करे? प्रभु! किसी व्यक्ति का द्वेष नहीं है। व्यक्ति ने विरुद्ध मान्यता की है, उसका द्वेष है। आहाहा! समझ में आया?

ओहोहो! आचार्य कितना विशेषण लगाते हैं। भगवान, अर्हत्। अर्हत् अर्थात् कुछ खाना बाकी नहीं, सब रस जान लिया है। पूजनीक हैं। परमेश्वर—परम ईश्वर परमात्मा। ओहो! मार्ग से प्रतिकूल—उसके मार्ग से विरुद्ध मार्गाभास के मार्ग का श्रद्धान करना कि यह भी मार्ग है, यह भी सच्चा है, ऐसी श्रद्धा करना मिथ्यादर्शन है। मार्ग ऐसा है भगवान! किसी पक्ष के कारण से यह बात है नहीं, यह तो वस्तु का स्वरूप है।

उसी में कही हुई अवस्तु में वस्तुबुद्धि,... भगवान ने कहा उसके अतिरिक्त मार्गाभास से सिद्ध किया हो कि एक ही आत्मा है, जड़ ही अकेला है, छह द्रव्य नहीं—ऐसी बात की हो तो अवस्तु में वस्तुबुद्धि है। समझ में आया? भगवान ने तो जाति से छह द्रव्य कहे हैं। संख्या से अनन्त। जाति से छह, संख्या से अनन्त। अनन्त आत्मा, अनन्तगुणे परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति, एक आकाश। सर्वज्ञ के अतिरिक्त छह द्रव्य कहीं नहीं हो सकते। समझ में आया? और छह द्रव्य जानने की शक्ति आत्मा की एक पर्याय में है। एक समय की श्रुतज्ञान की पर्याय में इतनी ताकत है। ऐसा वीतराग का मार्ग जो है, उससे विरुद्ध कोई कहे... पाँच ही द्रव्य हैं, कालद्रव्य नहीं है, जगत में जीव ही अकेला है—ऐसा सब कहनेवाला मार्गाभास है। आहाहा! पुण्य में धर्म मनाते हैं, पाप में प्रसन्नता बताते हैं—यह सब मार्गाभास है, मार्ग

नहीं। आहाहा! जिस रास्ते से मुक्ति मिले, वह मार्ग। मार्ग क्या? कि भाई! इस मार्ग में हम जाते हैं तो गाँव में पहुँच जाते हैं। तो अपने आत्मा के आनन्द का आश्रय ले, वह मार्ग। उस मार्ग पर जाने से मुक्ति की पूर्ण पर्याय प्रगट होती है। क्या राग के मार्ग में जाने से मुक्तिमार्ग आता है? आहाहा! भगवान से विरुद्ध अवस्तु में वस्तुबुद्धि... भगवान ने छह द्रव्य कहे, आत्मा अखण्डानन्द कहा, एक-एक आत्मा सर्वज्ञस्वभावी कहा, उससे (विरुद्ध) कोई कहे कि आत्मा एक ही है, आत्मा अल्पज्ञ ही है, एक ईश्वर ही पूर्ण ज्ञानवाला है, सर्व प्राणी अल्पज्ञ ही हैं, सर्वज्ञ हो सकते नहीं—यह सब मार्गाभास है। समझ में आया? आहाहा!

अवस्तु में वस्तुबुद्धि,... 'वस्तु' शब्द प्रयोग किया है। जिसमें अनन्त शक्तियाँ वर्तती हैं, ऐसी चीज़ भगवान ने कही, उसके अतिरिक्त दूसरा कहे... समझ में आया? हमारे था एक सम्प्रदाय का। धर्मास्तिकाय (के बारे) में पूछा एकबार। ऐ मलूकचन्दभाई कहाँ गये? उनके गुरु थे। उनके पिता के थे। उसने पूछा, धर्मास्ति में गुण कितने? बेरिस्टर कहलाता था। दो गुण—एक अरूपी और एक गति(हेतुत्व)। धर्मास्तिकाय में दो गुण। ऐसा प्रश्न चला था बहुत वर्ष पहले सम्प्रदाय में (चला था)। अरे! अनन्त गुण हैं। एक धर्मास्ति में अनन्त गुण हैं। कल कहा था न, परसों। आकाश के प्रदेश से अनन्तगुणे एक जीव में गुण हैं, इतने ही गुण एक परमाणु में हैं। इतने ही गुण एक कालाणु में हैं, इतने ही गुण एक धर्मास्तिकाय में भी हैं। गुण की संख्या में अन्तर नहीं है। आत्मा में चैतन्य, आनन्द है (और) जड़ में चैतन्य, आनन्द नहीं। परन्तु गुण तो समान ही हैं। आहाहा! भगवान के मार्ग में ऐसी बात है। उससे विरुद्ध में... और **उस मार्ग का आचरण, वह मिथ्याचारित्र है...** सर्वज्ञ भगवान ने कहा, उससे विरुद्ध कोई भी मार्ग का आचरण करना, वह मिथ्याचारित्र है। अज्ञानी ने कहे व्रत, तप, नियम पालना, वह मिथ्याचारित्र है। आहाहा!

इन तीनों को निरवशेषरूप से छोड़कर। लो। बिल्कुल एक अंश भी मिथ्यादर्शन, मिथ्याचारित्र का अंश न लेना। सब झूठ मार्ग है। आहाहा! दरबार! **निरवशेषरूप से छोड़कर। अथवा...** दूसरी बात। अब अपना। **निज-आत्मा के श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठान के रूप से विमुखता,...** आत्मा का सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से विमुख... अकेले

व्यवहाररत्नत्रय में राग है, वह समकित है, वह मिथ्यादर्शन मान्यता है। निश्चय बिना का अकेला व्यवहार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, (वह) वास्तव में तो मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र ही है। समझ में आया? आहाहा! उसका ही कलश है, भाई! पीछे। 'रत्नत्रय को छोड़कर' है न? उसका ही है। अकेला व्यवहाररत्नत्रय, वह तो मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र है। क्योंकि राग में अपनापन माना है। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, वह राग है। राग में धर्म होगा, ऐसा माने तो मिथ्यादर्शन है। बात बहुत कठिन, भाई! आहाहा! यहाँ तो सर्वज्ञ मार्ग के अतिरिक्त कोई मार्ग सच्चा है नहीं, ऐसा कहते हैं। सब मार्ग सच्चा और विश्वधर्म सच्चा, ऐसा तो यहाँ कहते नहीं। यह मीठी मधुर, बापू! अरे! तेरे हित की बात है, नाथ! आहाहा! जन्म-मरण का नाश करने की बात है, प्रभु! यह कोई व्यक्ति का द्वेष या उसके लिये नहीं है, भाई! आहाहा!

'कोई क्रियाजड़ हो रहे, शुष्कज्ञान में कोई, माने मारग मोक्ष का करुणा उपजे जोई।' वहाँ तो ऐसा लिया है। श्रीमद् राजचन्द्र (कृत आत्मसिद्धि, काव्य २)। 'कोई क्रियाजड़ हो रहे...' राग की क्रिया में धर्म (माने)। कोई शुष्कज्ञान की बातें करे, परन्तु अन्तर की दृष्टि का अभाव है। स्वसन्मुख होकर सम्यग्दर्शन करते नहीं और अकेली बातें करनेवाले हैं, वे शुष्कज्ञानी हैं और राग में धर्म माननेवाले क्रियाकाण्डी हैं। 'कोई क्रियाजड़ हो रहे, शुष्कज्ञान में कोई, मारग माने मोक्ष का, करुणा उपजे जोई।' बापू! भाई! उस रास्ते से प्रभु! तू सुखी नहीं होगा। उस रास्ते से दुःखी होगा, भाई! आहाहा! मिथ्याश्रद्धा, वही दुःख है। तुम दुःख में डूब जाते हो, भाई! तुझे खबर नहीं। भगवान आनन्दस्वरूप है, विकल्प से रहित है—ऐसी अन्तर में दृष्टि, ज्ञान करना और अन्तर (में) रमना, वह सच्चा मोक्षमार्ग है। आहाहा! भगवान! यह तो तेरे हित की बात है; द्वेष की—विरोध की बात नहीं, भाई! तुम भगवान हो। पर्याय में भूल है, बापू! तुम तो, साक्षात् परमात्मस्वरूप ही तेरी चीज़ है। पण्डितजी! आहाहा!

वही मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्रात्मक (मिथ्या) रत्नत्रय है;... देखो! मिथ्या रत्नत्रय। आहाहा! राग में—विकल्प में, अल्पज्ञता में पूर्णता मानना, राग में धर्म मानना और राग का कर्ता होकर लाभ मानना—यह सब मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र है। **इसे भी...** ऊपर का तो छोड़ना कहा, परन्तु इसे भी **(निरवशेषरूप से) छोड़कर...**

आहाहा! **त्रिकाल-निरावरण, नित्य आनन्द जिसका एक लक्षण है...** आहाहा! प्रभु! तेरा लक्षण तो यह है न, नाथ! **त्रिकाल-निरावरण...** तेरी चीज़ तो तीनों काल निरावरण द्रव्य पड़ा है न! **त्रिकाल-निरावरण, नित्य आनन्द...** जिसमें नित्य—त्रिकाली अविनाशी अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है, वह तेरा लक्षण है। आहाहा! **नित्य आनन्द जिसका एक लक्षण...** एक ही लक्षण है, ऐसा भाई! **नित्य आनन्द जिसका एक लक्षण है...** ओहोहो! आनन्द से शुरु किया है। ज्ञानलक्षण है, परन्तु यहाँ तो तेरा आनन्दलक्षण है, भाई! आहाहा! मिथ्यादर्शन-ज्ञान आदि दु:खरूप है, संसार का मार्ग है, आत्मा आनन्द एक लक्षण है, उसका—आनन्द का अनुभव, दृष्टि आदि, यह मोक्ष का मार्ग है।

ऐसा, निरंजन निज परमपारिणामिकभावस्वरूप... कितने विशेषण हैं! ऐसा नित्यानन्द, निरावरण भगवान वस्तु... त्रिकाल निरावरण और नित्य आनन्दलक्षण ऐसा **निरंजन निज परमपारिणामिकभाव...** अपना परमपारिणामिक ध्रुवस्वभाव... **परमपारिणामिकभावस्वरूप कारणपरमात्मा, वह आत्मा है;...** उसको आत्मा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : कारणपरमात्मा अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रिकाली कारण। यह कारण त्रिकाली है न! केवलज्ञान प्राप्ति(रूप) कार्य का वह कारण है। वस्तु जो है, वह कारणपरमात्मा है। उसमें से कार्य होता है न! त्रिकाली कारणपरमात्मा... आहाहा!

निरंजन निज परमपारिणामिकभावस्वरूप... आहाहा! कारणपरमात्मा त्रिकाली द्रव्यस्वभाव, वही आत्मा। कारणप्रभु, वही आत्मा। यहाँ तो पर्याय भी आत्मा नहीं, राग भी नहीं, सब निकाल दिया। आहाहा! एक समय की पर्याय भी अभूतार्थ है—असत्यार्थ है। सत्यार्थ आत्मा यह है। आहाहा! समझ में आया? अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, निज निरंजन परमात्मस्वरूप पारिणामिकभावस्वरूप कारण प्रभु स्वयं... 'पोते' कहते हैं? स्वयं। कोई गुजराती आ जाये। **निज परमपारिणामिकभावस्वरूप कारणपरमात्मा...** अपना निज अन्दर ध्रुव, वह आत्मा, उसको आत्मा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : तीनों काल जाननेवाला....

पूज्य गुरुदेवश्री : जाननेवाला, वह अभी नहीं लेना। यहाँ तो आनन्द के लक्षणवाली त्रिकाली चीज़ अपना भगवान आत्मा। लोग दु:ख से डरते हैं न, तो आनन्द का लक्षणवाला आत्मा बताया। भगवान! तुझे आनन्द चाहिए तो आत्मा में आनन्द है। सम्यग्दर्शन में आत्मा का आनन्द का स्वाद आता है, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! आत्मा नित्यानन्द है। आहाहा! त्रिकाली आनन्द की मूर्ति प्रभु है, अमृत का सागर आत्मा है। जिसका स्वभाव, उसकी मर्यादा क्या? स्वभाव अविनाशी अपरिमित शक्ति का सागर नित्यानन्द प्रभु तेरी ध्रुवचीज़ अन्तर की, उसको यहाँ कारणपरमात्मा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : परन्तु वर्तमान में तो कषाय के रंग रँगा है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, वह पर्याय में है। द्रव्य तीन काल में रँगा नहीं। द्रव्यस्वभाव तो त्रिकाल में रंगा नहीं। पहले कहा न? त्रिकाल निरावरण। पर्याय में राग की एकता है, द्रव्य में एकता कहाँ हुई? आहाहा! समझ में आया? अलौकिक बात है, भैया! आहाहा! संसार का अन्त और मोक्ष की शुरुआत अलौकिक बात है, भाई! यह कोई साधारण चीज़ नहीं। आहाहा! कितने विशेषण लिये! आहाहा!

त्रिकाल -निरावरण, नित्य आनन्द जिसका एक लक्षण है ऐसा, निरंजन— अंजनरहित **निज**—अपना **परमपारिणामिकभाव...** त्रिकाली शुद्ध, पर्यायरहित कारणस्वरूप त्रिकाल, यह आत्मा। **उसके स्वरूप के श्रद्धान...** ऐसा स्वरूप का श्रद्धान, वह सम्यग्दर्शन है। आहाहा! समझ में आया? उसके स्वरूप का **ज्ञान...** शास्त्र का ज्ञान आदि नहीं। आहाहा! निज परमात्मा नित्यानन्द लक्षण उसका ज्ञान... उसका ज्ञान, यह सम्यग्ज्ञान, और उसका **आचरण...** आनन्दलक्षण भगवान ध्रुव में एकाग्रता(रूप) परिणमन, शुद्धता, वह आचरण, वह चारित्र। पंच महाव्रतादि, वह चारित्र नहीं। आहाहा! वह तो अचारित्र है, विकल्प है। **वह वास्तव में निश्चयरत्नत्रय है...** लो! वास्तव में तो निश्चयमोक्षमार्ग तो यह है। सत्यार्थ मार्ग तो यह है। फिर विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल १०, रविवार, दिनांक - १-८-१९७१
श्लोक - १२२, गाथा - ९१, ९२, प्रवचन-८२

नियमसार सिद्धान्त है। परमार्थ प्रतिक्रमण (अर्थात्) सच्चा प्रतिक्रमण। किससे हटना और कहाँ स्थिर होना, उसका नाम यहाँ प्रतिक्रमण कहा जाता है। ९१ गाथा है। यहाँ से लो। **त्रिकाल-निरावरण...** ९१ है। प्रतिक्रमण का अर्थ पहले आया कि मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्रादि रत्नत्रय को छोड़कर, पर से हटकर, यह प्रतिक्रमण... जैनदर्शन के सिवाय अन्य जो मार्ग है, वह मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र है। उससे हटकर... 'छोड़कर' है न? **त्रिकाल-निरावरण, नित्य आनन्द जिसका एक लक्षण है...** हटकर कहाँ स्थिर होना, किसका आश्रय करना—वह बात है। भगवान आत्मा त्रिकाल निरावरण द्रव्यस्वभाव(रूप) वस्तु है और नित्य आनन्द जिसका एक लक्षण है। अतीन्द्रिय आनन्द, वह जिसका लक्षण है। ज्ञानलक्षण कहने में आता था, यहाँ आनन्द लक्षण कहा। **ऐसा, निरंजन निज परमपारिणामिकभावस्वरूप कारणपरमात्मा...** ध्रुवस्वभाव नित्यस्वभाव, वही आत्मा... वही आत्मा। संयोगी चीज़ आत्मा नहीं, राग—व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प, वह आत्मा नहीं, एक समय की पर्याय भी आत्मा नहीं। त्रिकाल निरावरण निज आनन्द लक्षण से लक्षित... आनन्द लक्षण से लक्षित ऐसा अपना—निज स्वरूप, वह आत्मा, उसको आत्मा कहते हैं। निश्चय आत्मा—वास्तव में आत्मा—परमार्थ आत्मा, त्रिकाल निरावरण परमात्मकारणस्वरूप, वह आत्मा। त्रिकाल कारणस्वरूप जिसमें से केवलज्ञान आदि कार्य प्रगट हो। वह कार्यपरमात्मा कारणपरमात्मा में से होता है। आहाहा! समझ में आया?

परमपारिणामिकभावस्वरूप कारणपरमात्मा, वह आत्मा। उसका अर्थ तो यह हुआ कि मोक्षमार्ग की पर्याय में से भी मोक्षकार्य नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मोक्षरूपी कार्य, वह त्रिकाल कारणपरमात्मा के आश्रय से उत्पन्न होता है। यह तो स्वभाव की बात है। अनन्त काल में उसने कभी किया ही नहीं और वर्तमान में तो गड़बड़ बहुत है। कोई कहे वयवहार से होता है, कोई कहे निमित्त से होता है। वकीलजी! मन्द

कषाय का परिणाम करते-करते होता है। समझ में आया? यह सब बात छोड़ दी। यह सब झूठ है। भगवान कारणस्वरूप प्रभु जिसका आश्रय लेने से **उसके स्वरूप के श्रद्धान...** देखो! त्रिकाल शुद्ध ध्रुव आत्मा **उसके स्वरूप के श्रद्धान...** व्यवहार की श्रद्धा, निमित्त की श्रद्धा, पर्याय की श्रद्धा की बात यहाँ की ही नहीं। आहाहा! लोगों को ऐसा लगे कि यह तो निश्चय... निश्चय होता है। परन्तु निश्चय, वही सत्य है।

यहाँ तो कहा न, एक समय की पर्याय से भी रहित जो त्रिकालस्वरूप, वही आत्मा, उसको ही आत्मा कहने में आया है। पर्याय तो व्यवहार आत्मा है। व्यवहार आत्मा है, अभूतार्थ आत्मा है। सत्यार्थ आत्मा तो यह है। आहाहा! कहते हैं कि ऐसा आत्मा **उसके स्वरूप के श्रद्धान...** उसका स्वरूप भावस्वभाव त्रिकाल की श्रद्धा... देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा या नवतत्त्व की श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन नहीं। रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहा है न, आप्त-आगम....

मुमुक्षु : आप्त आगम सरोवर जान....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका तो अर्थ कि आप्त क्या चीज़ है, ऐसा स्वभाव का जिसको भान हो, उसको निश्चय का आश्रय हो गया। समझ में आया? आप्त अर्थात् अरिहन्त की पर्याय जिसके ख्याल में आ जाये तो उस पर्याय की श्रद्धा कब होती है कि अपना निश्चय द्रव्य का आश्रय लेता है, तब द्रव्य की श्रद्धा होती है, तो पर्याय की श्रद्धा होती है। ऐसी बात है। आहाहा!

वह आत्मा है; उसके स्वरूप के श्रद्धान... है टीका? देखो! स्पष्ट है। आहा! भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु के स्वरूप का... स्वरूप लिया है। 'उसकी श्रद्धा' ऐसा भी नहीं लिया। **उसके स्वरूप के श्रद्धान...** त्रिकाल ज्ञायकभाव, ऐसे स्वरूप की श्रद्धा... बापू! अपूर्व बात है! समझ में आया? ऐसे स्वरूप का **ज्ञान...** अपना त्रिकाली भगवान, उसका स्वरूप ज्ञायकभाव, उसका ज्ञान... शास्त्र का ज्ञान या व्यवहारिक ज्ञान, वह (ज्ञान) नहीं। आहाहा! और उसका **आचरण**—स्वरूप का आचरण, देखो! यह चारित्र। ज्ञानानन्दस्वभाव का आचरण, उसमें लीन होना निर्विकल्पदशा, वीतराग पर्याय से लीन होना, वह चारित्र है। आहाहा! यहाँ तो (कहा कि) पंच महाव्रत, २८ मूलगुण चारित्र नहीं। वह तो विकार है, अचारित्र है। आहाहा!

भगवान निजस्वरूप के **आचरण का रूप वह वास्तव में निश्चयरत्नत्रय है;...** पहले आत्मा कहा था कि वह आत्मा, त्रिकाली स्वरूप जो है, वह आत्मा। और उसके आश्रय से जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो, उसकी श्रद्धा, उसका ज्ञान, उसमें आचरण, वह निश्चयरत्नत्रय। वह पर्याय है। पहले कहा था वह आत्मा। त्रिकाली आत्मा, वही आत्मा। ध्रुव आत्मा, वही आत्मा। नित्यानन्दस्वरूप एकरूप—सदृश भगवान परमपारिणामिकस्वभावभाव कारणपरमात्मा, वही आत्मा। और उस आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और आचरण, वह निश्चयरत्नत्रय। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! मार्ग तो ऐसा है।

मुमुक्षु : एकान्त हो जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकान्त ही है। सम्यक् एकान्त हुए बिना अनेकान्त का यथार्थ ज्ञान होता ही नहीं। ऐसी बात है, भाई! आहाहा! अन्तर में झुके बिना—द्रव्यस्वभाव की ओर झुके बिना पर्याय का ज्ञान यथार्थ होता ही नहीं। समझ में आया?

वीतरागमार्ग अलौकिक मार्ग है, भाई! अपूर्व मार्ग है। दुनिया के पास वीतरागमार्ग दूसरी पद्धति से कहने में आया है। यह मार्ग ऐसा नहीं है। अनादि-अनन्त त्रिकाल में त्रिकाल के जाननेवाले का विरह होता ही नहीं। क्या कहा? त्रिकाल में त्रिकाल के जाननेवाले का कभी विरह होता ही नहीं। अनादि से सर्वज्ञ परमात्मा हैं। पहले कभी सर्वज्ञ नहीं थे, ऐसा है कभी? त्रिकाल में त्रिकाल के जाननेवाले का कभी विरह है नहीं। भूतकाल में भी अनन्त... अनन्त... अनन्त... त्रिकाल जाननेवाले हो गये, अभी हैं, भविष्य में होंगे। वह त्रिकालज्ञानी ऐसा कहते हैं कि त्रिकाली तेरा तत्त्व जो है... आहाहा! त्रिकाली तेरा तत्त्व है, एक समय की पर्याय (तेरा तत्त्व) नहीं। हीराभाई! गड़बड़ है या नहीं बहुत। यहाँ तो, पर्याय वह आत्मा नहीं, अनात्मा है—ऐसा कहते हैं। व्यवहार आत्मा है। निश्चय आत्मा तो त्रिकाली भगवान पर्याय और राग की क्रिया रहित, आहाहा! ऐसी चीज़ की और उस चीज़ के स्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान और आचरण, वह निश्चयरत्नत्रय है। वह निश्चयरत्नत्रय पर्याय है। त्रिकाली ध्रुव आत्मा कारणपरमात्मा वह आत्मा है। आहाहा! यहाँ तक तो कल आया था। यह तो सन्धि करने को लिया।

इस प्रकार भगवान परमात्मा के सुख का अभिलाषी... आहाहा! अपने में अतीन्द्रिय आनन्द है, उसका अभिलाषी, यह समकिती। आहाहा! **भगवान परमात्मा...**

भगवान परमात्मा अर्थात् अपना परमात्मा। आहाहा! उसके सुख का अभिलाषी... भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय अनन्त... अनन्त... आनन्द अमृत पड़ा है। ऐसे अतीन्द्रिय सुख का अभिलाषी... **ऐसा जो परम पुरुषार्थपरायण...** देखो! मुनिपना लेना है न? सम्यग्दर्शन में अल्प पुरुषार्थपरायणता है। अपने द्रव्यस्वभाव के सम्यग्दर्शन में चौथे गुणस्थान में अल्प पुरुषार्थपरायणता है, पंचम में उससे उग्र पुरुषार्थपरायणता है, मुनि परमपुरुषार्थपरायण हैं। आहाहा! सेठ! यह मार्ग है। **परम पुरुषार्थपरायण...** कोष्ठक में लिखा है न **परम तपोधन...** मुनि की बात है न! परमपुरुषार्थ... पंचम गाथा समयसार में ऐसा लिया है, हमको प्रचुर स्वसंवेदन प्रगट हुआ है। आचार्य—मुनि कहते हैं। प्रचुर स्वसंवेदन—बहुत अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन हमको प्रगट हुआ है। वह हमारा निज वैभव है। आहाहा! पंचम गाथा।

'तं एयत्तविहत्तं...' एकत्व-(विभक्त आत्मा) कहूँगा तो प्रमाण करना। **जदि दाएज्ज पमाणं चुक्केज्ज छलं ण घेत्तव्वं...** व्याकरण में या कोई शब्दों में त्रुटि रह जाये तो, उसे ग्रहण नहीं करना। हमारा भाव क्या है और उसका आशय क्या है, वह पकड़ना। कहते हैं, भगवान आत्मा अपना पूर्णानन्द सुख का अभिलाषी प्राणी, आहा! जिसको राग की अभिलाषा नहीं, स्वर्ग के सुख की अभिलाषा नहीं, व्यवहाररत्नत्रय की अभिलाषा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : दो तरह का सुख होता होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, लोग मानते हैं न सुख स्वर्ग में। मूढ़ लोग स्वर्ग में सुख मानते हैं, वह सुख नहीं। वह कहेंगे आगे। वह तो जहर है। आहाहा! आगे आयेगा। आठ बोल आयेंगे। जहर है, व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प भी जहर है, आहाहा! राग है।

ऐसे **परम पुरुषार्थपरायण शुद्धरत्नत्रयात्मक आत्मा को भाता है,...** लो, पहले तो कहा कि ऐसे स्वरूप का श्रद्धान-ज्ञान-चारित्र, फिर ऐसा शुद्धरत्नत्रयस्वरूप आत्मा को भाता है, ऐसा। ऐसी निर्मल अभेद दृष्टि, ज्ञान और रमणता, ऐसे आत्मा को भाता है। आहाहा! कठिन बात। वकील! यह सुना नहीं वास्तविक तत्त्वज्ञान। अपनी कल्पना से मान लिया कि भगवान ऐसा कहते हैं, ऐसा कहते हैं और ऐसा कहते हैं। आहाहा! सत्य अभी सुनने में न आवे तो सत्य का शरण और समझ कहाँ से हो? आहाहा!

शुद्धरत्नत्रयात्मक आत्मा को भाता है,... देखो! यहाँ पर्यायसहित आत्मा लिया। निश्चयरत्नत्रय को यहाँ शुद्धरत्नत्रय कहा। व्यवहाररत्नत्रय अशुद्धरत्नत्रय है। आहाहा! आयेगा थोड़ा नीचे। **उस परम तपोधन को ही...** ऐसे भगवान आत्मा में उग्र परमपुरुषार्थपरायण अन्दर में है, उसको **निश्चयप्रतिक्रमणस्वरूप कहा है।** यह सच्ची प्रतिक्रमणदशा उसको उत्पन्न हुई। विकल्प से हटकर स्वभाव के आश्रय से निश्चय—सत्य सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रमयदशा, वह निश्चयप्रतिक्रमण दशा है। आहाहा! समझ में आया?

अब इस ९१वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:—पद्मप्रभमलधारिदेव सन्त मुनि आगे कहेंगे कि हमारे मुख में से परमागम झरता है। मुनि स्वयं (कहेंगे)। १२२ कलश।

त्यक्त्वा विभावमखिलं व्यवहारमार्ग-
रत्नत्रयं च मति-मान्निज-तत्त्व-वेदी।
शुद्धात्म-तत्त्व-नियतं निज-बोध-मेकं,
श्रद्धान-मन्य-दपरं चरणं प्रपेदे ॥१२२॥

अहो धर्मात्मा! अपना शुद्धस्वरूप का आश्रय करने में... **श्लोकार्थ : समस्त विभाव को...** छोड़कर... शुभ-अशुभ विकल्प चाहे जो हो। आहाहा! भगवान का स्मरण हो, भगवान की भक्ति—वह सब विकल्प—राग है। **समस्त विभाव को...** एक बात, **तथा व्यवहार मार्ग के रत्नत्रय को...** आहाहा! व्यवहारमार्ग देव-गुरु, सच्चे देव-गुरु, हों! कुदेव, कुगुरु, कुशब्द (-कुशास्त्र), उसकी श्रद्धा तो मिथ्याश्रद्धा है। परन्तु सच्चे देव-गुरु और शास्त्र की श्रद्धा का भाव भी राग है। आहाहा! यह श्रद्धा का विकल्प व्यवहारसमकित, शास्त्र जो सर्वज्ञ ने कहे, ऐसी वाणी सुनकर ज्ञान हो, वह व्यवहारज्ञान और पंचमहाव्रत का विकल्प उत्पन्न होता है, वह व्यवहारचारित्र। इस **व्यवहार मार्ग के रत्नत्रय को छोड़कर...** आहाहा! प्रतिक्रमण है न! 'प्रतिक्रमण' शब्द व्याख्यान में है। छोड़ना क्या? छोड़ सकता है? अन्तर का आश्रय करता है तो (राग) उत्पन्न नहीं होता, उसको 'छोड़कर' कहने में आता है। प्रतिक्रमण की व्याख्या है कि पीछे हटना... हटना ऐसा। उसके लिये 'छोड़कर' लिया है। समझ में आया?

निश्चय में तो अपना आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप, उसके आश्रय में लीन होता है तो विकल्प की उत्पत्ति होती नहीं, उसको 'छोड़ते हैं', ऐसा कहने में आता है।... उपदेश क्या करना? उपदेश की पद्धति ही ऐसी है। आहाहा! सम्यग्ज्ञानदीपिका में धर्मदास क्षुल्लक ने कहा है कि हाथी के दाँत बाह्य के दूसरे और चबाने के दूसरे। चबाना कहते हैं न? अन्दर के दाँत दूसरे और बाहर के दूसरे। ऐसे आचार्यों का कथन दूसरा, आशय कुछ दूसरा, ऐसा लिखा है। पण्डितजी! धर्मदास क्षुल्लक। वह कल पढ़ते थे न सम्यग्ज्ञानदीपिका, उसमें है। हाथी के दाँत बाहर के जो दिखाने के हैं, वे कहीं खाने में काम नहीं आते। अन्दर के दाँत (काम) आते हैं। उसी प्रकार बाहर के कथन ऐसा छोड़ो और ऐसा रखो—यह सब बाहर के कथन हैं। आहाहा! समझ में आया? अन्दर का कथन—अन्दर का भाव... भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु ध्रुव नित्यानन्द नाथ में एकाग्र होना, तो विकार की उत्पत्ति होती नहीं। उसको 'छोड़ो' ऐसा कहने में आता है। किसको छोड़े? आहाहा! समझ में आया?

व्यवहार मार्ग के रत्नत्रय को छोड़कर... देखो! यह लोगों को कठिन लगता है। टीका ऐसी स्पष्ट कर दी है पद्मप्रभमलधारिदेव ने। लोग कहे, पण्डित का नहीं, यह नहीं, यह नहीं। टीका दुर्गम कर दी है, ऐसा कितने ही कहते हैं। पाठ है। **त्यक्त्वा विभावमखिलं व्यवहारमार्गरत्नत्रयं...** रत्नत्रय कहना और छोड़नेयोग्य कहना। अरे! अरे! गजब बात है! यह तो निमित्त से कथन है। निश्चयरत्नत्रय तो अपना भगवान आत्मा के सन्मुख होकर स्वद्रव्य के आश्रय से श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति—चारित्र उत्पन्न हो, वह निश्चयरत्नत्रय। परन्तु साथ में निमित्त है, ऐसा व्यवहार, उसको आरोप देकर रत्नत्रय कहा गया है, परन्तु है वह छोड़नेयोग्य। आहाहा! गजब बात! पहले दृष्टि में छोड़नेयोग्य न माने तो दृष्टि स्वसन्मुख नहीं जायेगी। समझ में आया? **व्यवहार मार्ग के रत्नत्रय...** शब्द ऐसा लिया न पाठ में, 'व्यवहारमार्ग' है। 'व्यवहारमार्ग रत्नत्रय' ऐसा लिया है। जितना व्यवहारमार्ग चरणानुयोग में कहने में आया है, आहाहा! उस सब व्यवहारमार्ग रत्नत्रय को छोड़कर... आहाहा! पण्डितजी! क्या करना तब व्यवहार छोड़ना (कहा) तो? आहाहा!

मुनिराज कहते हैं... भावलिंगी सन्त हैं। आहाहा! पद्मप्रभमलधारिदेव छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलनेवाले, एक अन्तर्मुहूर्त में हजारों बार छठवाँ-सातवाँ आता है।

ऐसा धवल में मुनि का लेख है। सच्चे मुनि को एक अन्तर्मुहूर्त—दो घड़ी में हजारों बार छठवाँ और सातवाँ (गुणस्थान) आता है। आहाहा!

मुमुक्षु : जमनेवाली बात नहीं। जमती नहीं है ऐसी।

पूज्य गुरुदेवश्री : न जमे तो क्या करे? भोजन करने की इच्छा हो तो जमे (जीमे)। सत्य रुचि हो तो जमे। आहाहा! वकीलजी! जमता नहीं है। दूसरी जम गयी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

व्यवहाररत्नत्रय का लक्ष्य पर के ऊपर है। उसकी दशा और दिशा दोनों दूसरी है। व्यवहाररत्नत्रय की दशा रागवाली है और उसकी दिशा पर के ऊपर है। निश्चयरत्नत्रय दशा वीतरागी है और उसकी दिशा द्रव्य के ऊपर है। समझ में आया? आहाहा! अरे! स्वाध्याय निस्पृहपने करे नहीं, अपनी दृष्टि रखकर वाँचे, उसमें क्या... ? शास्त्र का जो आशय है, उस ओर तो दृष्टि नहीं ले जाते। अपना आशय है, ऐसा शास्त्र का अर्थ करते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह शास्त्र बोलता है या नहीं वकीलजी? आहाहा! शास्त्र कहता है, **व्यवहार मार्ग के रत्नत्रय...** देखो! भाषा कैसी ली है। व्यवहाररत्नत्रय, ऐसा नहीं कहा। व्यवहारमार्ग जितना है, उस सब रत्नत्रय को छोड़कर... आहाहा! वह दृष्टि का विषय नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : छोड़कर बाद में कहा, पहले उसे रत्नत्रय कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : नाम लिया। कहते हैं न? पहले नरक का नाम क्या है? पहले नरक का नाम क्या है? रत्नप्रभा। लो, एक मजाकिया साधु थे। एक साधु था स्थानकवासी। एक वृद्धा आयी, वृद्धा—बुढ्ढी। माताजी! तुम्हें रत्नप्रभा जाना है? मजाक की। रत्नप्रभा जाना है? महाराज! हमारे जैसे पामर कहाँ (जायेंगे), आपके जैसे जा सकते हैं। मजाक की। उसे बेचारी को खबर नहीं, वृद्धा को कुछ खबर नहीं। वह मानो कि रत्नप्रभा कोई चीज़ होगी, ऊँची चीज़ होगी। रत्नप्रभा कोई ऊँची चीज़ होगी। ए चन्दुभाई! यह बनी हुई बात है। वृद्धा-बुढ्ढी आयी। बुढ़ियाजी! माता! रत्नप्रभा जाना है आपको? वह तो बेचारी निर्दोष थी। उसे कुछ (खबर नहीं कि) रत्नप्रभा क्या होगा। महाराज! हम दीन प्राणी, रत्नप्रभा जानेयोग्य हम नहीं। आप जैसे जायेंगे। आहाहा! रत्नप्रभा।

यह तो व्यवहाररत्नत्रय आया न, उसका नाम रत्नप्रभा है। रत्न है वहाँ? आहाहा! कहो, सेठ! आहाहा! वह साधु ऐसा कहे कि हाय! हाय! मैंने कहाँ इसकी मजाक की। आप जैसा, महाराज! आप जैसा पवित्र आत्मा रत्नप्रभा जा सकता है। आहाहा! ऐसे व्यवहाररत्न की रुचि करना है? समझ में आया? अज्ञानी करता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ज्ञानी व्यवहाररत्नत्रय की रुचि को छोड़ते हैं। समझ में आया? आहाहा! अरे भगवान! यह तो सर्वज्ञ का पंथ-मार्ग है, बापू! यह कोई अल्पज्ञ का कहा, कल्पित कहा (मार्ग है)—यह बात नहीं। ओहो! सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिकालज्ञानी परमात्मा। यह तो कुन्दकुन्दाचार्य भगवान सीमन्धर परमात्मा के पास गये थे। वहाँ से लाये। इसमें भी आता है न पहली गाथा में? यह याद आया। सवेरे का आया था विचार। पहली गाथा में वह है न?

देखो! नियमसार। '**केवलिसुदकेवलीभणिदं...**' यह कोई कहता है न? भाई! '**सुदकेवलीभणिदं**' ऐसा पाठ है। 'केवली ने कहा' ऐसा पाठ नहीं, ऐसा कहते हैं। पहली गाथा। चौथा पृष्ठ। आहाहा! '**वंदित्तु सव्वसिद्धे**' में भी '**सुदकेवलीभणिदं**' का अर्थ अमृतचन्द्राचार्य ने टीका में दो अर्थ किये भेद करके। '**केवलीप्रणितम्**' और '**श्रुतकेवलीप्रणितम्**' ऐसे दो (अर्थ) लिये हैं टीका में। पाठ में ऐसा आया '**सुदकेवलीभणिदं...**' तो कोई ऐसा ले लेते हैं कि श्रुतकेवली का कहा है, केवली की बात इसमें है नहीं। तो अमृतचन्द्राचार्य ने टीका कर दी कि केवली ने कहा और श्रुतकेवली ने कहा—दो (अर्थ) हैं। और इस पाठ में दो भिन्न हैं, देखो! पहली गाथा। है?

'**वोच्छामि णियमसारं...**' कुन्दकुन्दाचार्य प्रभु कहते हैं। केवली, श्रुतकेवली—दोनों आये। आहाहा! यहाँ तो श्रुतकेवली नहीं थे, केवली नहीं थे। भगवान के पास दोनों थे। भगवान के पास दोनों थे। '**केवलिसुदकेवलीभणिदं...**' धन्नालालजी! क्या कहा? कहते हैं कितने। ओ वकीलजी! ऐसा कि '**सुदकेवलीभणिदं...**' कहा है। '**केवलीभणिदं...**' नहीं कहा है। वहाँ कहा है और टीका में दोनों लिये हैं। अमृतचन्द्राचार्य ने दोनों लिये हैं। '**केवलिसुदकेवलीभणिदं...**' श्रुतकेवली... श्रुत अर्थात् श्रुतज्ञानी, केवली अर्थात् सर्वज्ञ—ऐसे दो (अर्थ) टीका में लिये। अमृतचन्द्राचार्य (ने लिये हैं)। यह अमृतचन्द्राचार्य की बात, यह तो कुन्दकुन्दाचार्य की बात। '**वोच्छामि णियमसारं...**'

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य। ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्य अर्थात् सर्वज्ञ के मार्गानुसारी, अल्प काल में सर्वज्ञ हो जायेंगे। आहाहा!

मुमुक्षु : गाथा का अर्थ तो करो महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न देखो! अर्थ अन्दर। '**केवलिसुद-केवलीभणिदं...**' केवली तथा श्रुतकेविलयों का कहा हुआ... है अर्थ में?

मुमुक्षु : गाथा ही कह रही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गाथा कह रही है। पहली गाथा, चौथा पृष्ठ है।

णमिऊण जिणं वीरं अणंतवरणाणदंसणसहावं।
वोच्छामि णियमसारं केवलिसुदकेवलीभणिदं॥१॥

दो भिन्न कर दिये। लोग स्वाध्याय करते नहीं और (करे तो) अपनी कल्पना से करते हैं। भगवान! ऐसा कहीं चले? यह तो सन्तों का मार्ग है। यह तो वीतरागी सन्तों का मार्ग है। आहाहा! समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य, पुष्पदन्त महाराज, भूतबलि, धरसेनाचार्य—यह सब वीतरागी मुनि थे। आहाहा! धवल में उनको वीतरागी मुनि कहे हैं, भाई! भगवान वीतरागी वीतराग ऐसा कहा है। पुष्पदन्त, हों! षट्खण्डागम। ... व्यवहार का कथन, परन्तु वीतरागी भगवान मुनि थे। पुष्पदन्त-भूतबलि वीतराग भगवन्त वीतराग पुष्पदन्त, ऐसा लिखा है। आहाहा! समझ में आया? यह तो कुन्दकुन्दाचार्य, आहाहा! जिनका नाम तीसरे नम्बर पर आया है। 'मंगलं भगवान वीरो, मंगल गौतमो गणी, मंगलं कुंदकुंदार्यो...' ओहोहो! धन्य अवतार! समझ में आया?

कहते हैं, मैं नियमसार—मोक्ष का मार्ग कहूँगा। कैसा? केवली और श्रुतकेवली ने कहा ऐसा। देखो! लोग माने, ऐसा नहीं। सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ को एक समय में त्रिकाल ज्ञान का भान हो गया। उसके '**भणिदं**' है न? उसके '**भणिदं... केवलिभणिदं..**' और '**सुदकेवलीभणिदं...**' दो भाव लाये। आहाहा! भाई! मध्यस्थता से समझना चाहिए। भाई! यह तो वीतरागपंथ का मार्ग है। यह कोई रागी का कहा हुआ नहीं। आहाहा! समझ में आया? शान्त... शान्त... शान्तरस—वीतरागी रस। (जिन्हें) तीन कषाय (चौकड़ी) का अभाव हो गया प्रगट, ऐसे सन्तों ने कहा। वह सन्त कहते हैं कि मैं

केवली और श्रुतकेवली ने कहा, वह मोक्षमार्ग कहूँगा। अकेला श्रुतकेवली ने कहा, ऐसा नहीं। पूनमचन्दजी! आहाहा! यह तो मुनि कहे तो भी उनका प्रमाण है। भावलिंगी सन्त हैं, आनन्द का अनुभव हैं, आहाहा! चारित्र के आनन्द के अनुभवी। समकित में तो अमुक अनुभव है। चारित्र सहित का अनुभव, वह तो प्रचुर स्वसंवेदन है। पाँचवीं गाथा में टीका में आया। अमृतचन्द्राचार्य। मुझे ऐसा प्रचुर स्वसंवेदन है, वह मेरा निजवैभव है। उस निजवैभव से मैं कहूँगा। भले भगवान से सुना है, भगवान कहते हैं, परन्तु वर्तमान में कहनेवाला तो मैं हूँ। समझ में आया? मेरे निजवैभव से मैं समयसार कहता हूँ। आहाहा! यह वस्तु ऐसी है।

यह तो एकबार कोई प्रश्न करता... श्रुतकेवली अकेला कहा है, केवली नहीं। श्रुतकेवली लेना। भगवान! ऐसा आग्रह छोड़ दे। यह तो श्रुतकेवली में दोनों आ गये— केवली और श्रुतकेवली। यहाँ तो दोनों शब्द भिन्न कर दिये। यह अमृतचन्द्राचार्य ने टीका में दोनों (शब्द) भिन्न कर दिये। परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतराग केवली ने कहा हुआ, दिव्यध्वनि में आया। ओमकार दिव्यध्वनि सुनकर जो रचा था। आहाहा!

मुमुक्षु : श्रुतकेवली का भी ज्ञान प्रमाणिक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रमाणिक है। श्रुतकेवली प्रमाण... सम्यग्दृष्टि कहे तो भी प्रमाण है। चारित्र में अन्तर है, परन्तु सम्यग्दृष्टि के ज्ञान-श्रद्धा में अन्तर नहीं है, ऐसा तिर्यंच का समकित, ऐसा सिद्ध का समकित है। सिद्ध और तिर्यंच के समकित में अन्तर बिल्कुल नहीं है। यह मोक्षमार्गप्रकाशक में आया है। समझ में आया? आहाहा! यह कोई कल्पना का विषय नहीं। यह कोई अनुमान करके कहना है, ऐसा नहीं। प्रत्यक्ष हो गया है, ऐसी चीज़ है—ऐसा कहते हैं। ऐसा केवलीप्रत्यक्ष हुआ उसे, कहते हैं। श्रुतकेवली को प्रत्यक्ष हुआ, वह परोक्ष है। यहाँ (केवली को) प्रत्यक्ष है, परन्तु है तो दोनों ही प्रमाण। आहाहा! समझ में आया?

तो कहते हैं, **व्यवहार मार्ग के रत्नत्रय को छोड़कर...** यहाँ वजन आया। केवली और श्रुतकेवली ने कहा, वह मैं कहूँगा। क्या?-कि भगवान ऐसा कहते हैं और श्रुतकेवली ऐसा कहते हैं कि व्यवहारमार्ग को छोड़कर स्वभाव में आ जा। व्यवहारमार्ग

से निश्चयमार्ग होगा, ऐसा नहीं है। किसी जगह कथन आता है न, छहढाला में? सत्यार्थ...

मुमुक्षु : जो सत्यारथ रूप सो निश्चय, कारण सो व्यवहारो।

पूज्य गुरुदेवश्री : कारण, सो व्यवहारो। क्या करना? कारण पहले और कार्य बाद में—ऐसा अर्थ करते हैं। ऐसा है नहीं। वह तो निमित्तकारण का आरोप दिया है। आहाहा! यहाँ क्या कहते हैं?

व्यवहार मार्ग के रत्नत्रय को छोड़कर... जो वह कारण हो तो उसे छोड़कर कैसे आता है? आहाहा! समझ में आया? यह तो पंचास्तिकाय में आया है, पीछे १७२ गाथा में। साध्य-साधक। व्यवहार साधक है, निश्चय साध्य है, लो। परन्तु किसका? किसको कहते हैं वह? जो अपना निश्चय साधन किया है, (तब) उसको—राग को व्यवहार साधन का आरोप दिया है। आहाहा! क्या करे? ऐसी बात है। परन्तु अर्थ ही उल्टा करे, वहाँ क्या करे? समझ में आया? यह तो भाई! तेरे आत्मा को दुःख होगा विपरीत अर्थ करने से, हों! अनन्त सर्वज्ञ, अनन्त सन्तों की वाणी को नुकसान होगा तुझसे। वैसे तुझे भी नुकसान होगा। भाई! तेरी दया है या नहीं तुझे? आहाहा! चार गति का डर—भय हो तो शास्त्र कहते हैं, केवली कहते हैं, उस तरह समझना चाहिए। अपनी कल्पना से नहीं।

कहते हैं, **समस्त विभाव को...** यह क्यों लिया? व्यवहारमार्ग ही विभाव है। वह तो शुभभाव है इसलिए। पहले 'शुभ-अशुभ सर्व को छोड़कर' ऐसा सामान्य अर्थ लिया, भाई! विभाव को छोड़कर... दोनों। परन्तु स्पष्ट करने के लिये (कहा कि) शुभराग को छोड़कर व्यवहार (रत्नत्रय) को छोड़कर। समझ में आया? तो कहते हैं, वह व्यवहार कारण हो और निश्चय कार्य हो तो छोड़ना कैसे उसको? उसको तो पकड़ना है। परन्तु वह तो उपचार-व्यवहारनय से कथन है। कारण—हेतु आता है न? निश्चय का हेतु, आता है न छहढाला में? 'हेतु नियत को होई।' व्यवहार को निमित्त का आरोप है। कारण है ही नहीं, उसको कारण कहते हैं, यह व्यवहार है।

यहाँ तो कहा, **व्यवहार मार्ग के रत्नत्रय को छोड़कर...** शास्त्र में चरणानुयोग में जितना व्यवहारमार्ग कहा, वह भी राग है। तो उसे छोड़कर... कहते हैं न, शुभभाव से

शुद्ध होता है। यहाँ तो इनकार करते हैं। पण्डितजी! आहाहा! भाई! वाद-विवाद कैसा? 'सद्गुरु कहे सहज का धन्धा, वादविवाद करे सो अन्धा।' प्रभु! मार्ग तो तेरा सहज है। ऐसी स्वीकृति तो ला। आहाहा! कहते हैं, **समस्त विभाव को तथा व्यवहार मार्ग...** भाषा ली है, देखो! 'व्यवहाररत्नत्रय को छोड़कर' ऐसा शब्द नहीं लिया, परन्तु **व्यवहार मार्ग के रत्नत्रय को छोड़कर...** जितना व्यवहारमार्ग में कथन आया, समझ में आया? वह सब बन्ध का कारण है। चाहे तो पंच महाव्रत हो, चाहे तो शास्त्र का ज्ञान हो, चाहे तो नौ तत्त्व की श्रद्धा हो, परन्तु विकल्प है, राग है, बन्ध का कारण है। आहाहा!

एक तत्त्व की श्रद्धा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! लो! **निजतत्त्ववेदी...** भाषा देखो! व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प—राग छोड़कर निजतत्त्ववेदी... आहाहा! यह व्यवहार निजतत्त्व नहीं था, वह परतत्त्व था। **निजतत्त्ववेदी (निज आत्मतत्त्व को जाननेवाला-अनुभव करनेवाला)...** मैं तो ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ, ऐसा उस ओर से अनुभव (अर्थात्) ज्ञानरूप अनुसरकर होना, आनन्दरूप होकर होना, द्रव्य के द्रव्यरूप से होना, जो स्वभाव है, उस रूप से होना—ऐसी निर्विकल्प स्वसंवेदन श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति, ऐसा अनुभव करनेवाला **मतिमान पुरुष...** यह मतिमान पुरु है। आहाहा! यहाँ शास्त्र की बड़ी-बड़ी बात करे और ऐसा और फैसा... वह मतिमान नहीं। आहाहा! विकल्प को छोड़कर... भगवान! तेरा निजतत्त्व है न! 'निजतत्त्व को वेदी' ऐसा शब्द पड़ा है। अपना निज आत्मा भगवान ध्रुव, वह निजतत्त्व। उसका वेदी—अनुभव करनेवाली पर्याय। समझ में आया?

एक जगह ऐसा आया था। श्वेताम्बर में ऐसा है कि जातिस्मरणज्ञान क्यों नहीं होता अभी? ऐसा लेख है। कि ज्ञानी को भी विपरीत बात को समझाने में उसका इतना काल जाता है... क्या कहा? कि जातिस्मरणज्ञान सबको क्यों नहीं होता? सब परभव से आये हैं। आहाहा! कल तो और एक भाई आया था २५-३० वर्ष का जवान। वह रतिभाई का साला। रतिलाल मास्टर थे न, उनका साला वढ़वाणवाला। नारणभाई का पुत्र। वह सब २५-३० लोग थे, सब जवान। महिलायें नहीं थीं। महाराज! कि पुनर्जन्म होगा? अरर! ऐसे लोगों को अभी पुनर्जन्म होगा, उसकी (खबर नहीं)। कहा, यह

राजुल लड़की है। राजुल आयी है? है। बतायी थी। वहाँ आये थे न, आये थे? राजुल आयी थी? यहाँ आये थे सब। कहे, यह हमारी देखना है राजुल को। ... गये थे वहाँ।

पुनर्जन्म, यहाँ तो कहा, पुनर्जन्म सब प्रत्यक्ष हो गया है। सुन तो सही! इस लड़की को देखो, कहा, जानना हो तो। गये थे... उसमें से कोई गये थे। ...यह तो लड़की आयी है अभी, खड़ी हुई। पूर्वभव का जातिस्मरण है। साढ़े सात वर्ष पहले का। अभी तो दस वर्ष की उम्र हो गयी। ढाई वर्ष में हुआ। समझ में आया? वह तो ... है। ऐसे हमारे पास आया था, उसकी रिपोर्ट लेने को, अमेरिका का। अमेरिका का आदमी आया था। जेतपुर में बड़ा... दो हजार वेतन है। यहाँ आये थे। परन्तु यह तो अपने अमेरिका के लोग आये थे। वे कहते थे कि एक हजार (केस) मेरे पास हैं। सब देश के, हों! अकेले हिन्दुस्तान के नहीं। यूरोप में, सबमें है। थोड़े-थोड़े सबमें हैं। मुसलमान में भी है पुनर्जन्म का। १००० केस हैं हमारे पास। एक और दो, एक और तीन, ऐसा कहते थे। हाँ, होता है किसी को। (आत्मा) अनादि का है।

अरे! जवान व्यक्ति ऐसा पूछे कि पुनर्जन्म है महाराज? तुम मानते हो? अरे भगवान! क्या करे? हाँ, उसकी कॉलेज है कुछ, कहा। नयी निकाली है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह। बन्ध के पास। नारणभाई के पुत्र है। कुछ कहा तो हों। वे लड़के जवान थे। फिर तो कहा, देखना हो तो जाओ। वह एक लड़की प्रत्यक्ष है। एक बहिन है, वह तो तुमको जवाब नहीं दे। उनके पिता की बुआ है, कहा। चम्पाबहिन को चार भव का ज्ञान है, कहा। वे साथ में बैठे। परन्तु वे जवाब नहीं दे। समझ में आया? अभी तो पुनर्जन्म की श्रद्धा भी नहीं, आहाहा! उसे तीन काल, तीन लोक जाननेवाली पर्याय, आहाहा! कैसे श्रद्धा में आवे?

यहाँ तो कहते हैं, ओहो! भगवान! तुझे मोक्ष का सुख चाहिए... ऐसा कहा न ऊपर। ऊपर कहा था न? 'परमात्मा के सुख का अभिलाषी' यह उसका साररूप कलश है। तुझे अतीन्द्रिय आनन्द की अभिलाषा हो, भगवान! अन्तर में एकबार व्यवहाररत्नत्रय और विभाव का लक्ष्य छोड़ दे न! अन्दर में महाप्रभु विराजता है। कारणभगवान, वह

निजतत्त्व है, वह तेरा तत्त्व है। आहाहा! राग नहीं, व्यवहाररत्नत्रय नहीं, एक समय की पर्याय निजतत्त्व नहीं। आहाहा! उसमें है या नहीं? निजतत्त्व, वह तो वस्तु हुई त्रिकाली, वह निजतत्त्व। उसका वेदी, वह पर्याय हुई। आहाहा! **मतिमान पुरुष शुद्ध आत्मतत्त्व में नियत...** शुद्ध भगवान आत्मा में नियत अर्थात् परायण... शुद्ध आत्मतत्त्व में नियत... बात तो अलौकिक है, भाई! लौकिक के साथ मिलान करे तो मिलेगा नहीं। आहाहा!

हम तो सम्प्रदाय में कहते थे। आचारांग का एक पाँचवाँ अध्याय है। वह नया बनाया है, परन्तु उसमें लेख है।... हे गौतम! ऐसा उसमें कथन आता है।... ऐसा कहते थे। महावीर कहते हैं, हे गौतम! ... मेरे मार्ग का दुनिया के साथ मिलान नहीं करना। मेरे मार्ग का दुनिया के मार्ग के साथ मिलान नहीं करना।... लोग क्या कहते हैं, उसके साथ हमारा मिलान नहीं करना। समझ में आया? यह ४०-४५ वर्ष पहले सम्प्रदाय में कहते थे। सभा में... पहले भी सभा में हमारी प्रतिष्ठा बहुत थी। हजारों लोग आते थे। ऐसी (सभा) भरती थी। तीन-तीन हजार। राजकोट में (संवत्) ८९ में तीन-तीन हजार। ८९ के वर्ष। हमारे बोटाद में ३५० घर हैं।... बहुत प्रतिष्ठा थी न हमारी। हम तो प्रवचन करने को बैठे तो लोग चींटियों के तरह भर जायें। ऐसे लोग... लोग... उसमें यही कहा था। बहुत बार कहते थे। प्रभु वीर ऐसा कहते हैं, ... लोक के मार्ग के साथ हमारा मिलान नहीं करना। हमारा मार्ग दूसरा है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ वह कहा, देखो! **मतिमान पुरुष शुद्ध आत्मतत्त्व में नियत (-शुद्धात्मतत्त्व-परायण) ऐसा जो एक निजज्ञान,...** एक निजज्ञान एकाकार। भेद नहीं। है पर्याय यह। **दूसरा श्रद्धान...** एक श्रद्धान स्वभाव की निर्विकल्प प्रतीति **और फिर दूसरा चारित्र...** उसका आश्रय करता है। वह तो पर्याय का अभेदसहित आश्रय करता है, ऐसा लेना। यह तो पहले आ गया न? 'शुद्धरत्नत्रयात्मक आत्मा को भाता है' ऐसा आया न टीका में? टीका में आ गया। 'शुद्धरत्नत्रयात्मक आत्मा को भाता है।' नहीं तो, वह तो पर्याय है, परन्तु वह तो अभेद करके (कहा)। उसका यह कलश है। 'शुद्धरत्नत्रयात्मक आत्मा को भाता है।' यहाँ लिया न! 'आत्मतत्त्व में नियत।' आत्मतत्त्व तो लिया, उसमें नियत वह पर्याय हुई। **(शुद्धात्मतत्त्वपरायण) ऐसा जो एक निजज्ञान, दूसरा श्रद्धान और फिर दूसरा चारित्र...** अन्तर, आहाहा! **उसका आश्रय करता है।** उसको कल्याणमार्ग

पंथ और उसको केवलज्ञान होगा। यह ९१ (गाथा) हुई। ९२, गाथा ९२। निश्चय उत्तमार्थ प्रतिक्रमण का स्वरूप।

उत्तमअट्ठं आदा तम्हि ठिदा हणदि मुणिवरा कम्मं।
तम्हा दु झाणमेव हि उत्तमअट्ठस्स पडिकमणं॥९२॥

लो, यहाँ तो पहला **उत्तमअट्ठं आदा।**

है जीव उत्तम अर्थ, मुनि तत्रस्थ हन्ता कर्म का।
अतएव है बस ध्यान ही प्रतिक्रमण उत्तम अर्थ का॥९२॥

टीका :—यहाँ (इस गाथा में), निश्चय-उत्तमार्थप्रतिक्रमण का स्वरूप कहा है।

जिनेश्वर के मार्ग में... देखो! जिनेश्वर के मार्ग में मुनियों की संल्लेखना होती है। जब सल्लेखना का—अन्तिम देह छूटने का काल आता है... आहाहा!

मुमुक्षु : अन्त समय...

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्त समय।

जिनेश्वर के मार्ग में... जिनेश्वर वीतराग परमात्मा त्रिलोकनाथ परमात्मा ने कहे मार्ग में मुनियों की... इस मार्ग में **मुनियों की सल्लेखना के समय,...** देखो! अन्तिम में देह छूटने का काल... आहाहा! सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र तो है और देह छूटने का समय आया। **ब्यालीस आचार्यों द्वारा,...** आहाहा! ब्यालीस। ब्यालीस कहते हैं न? चालीस और दो। यह आचार्य के पास पूछना, ऐसा कहते हैं। अपनी सल्लेखना में देह छूटने के लिये शान्ति... एक आचार्य, दूसरे आचार्य, ब्यालीस तक शान्ति ऐसी कायम रहती है या नहीं? पूछना। महाराज! अपने गुरु आये हैं धर्मात्मा, आचार्य। उस समय तो बहुत होंगे न? **ब्यालीस आचार्यों द्वारा, जिसका नाम उत्तमार्थप्रतिक्रमण है, वह दिया जाने के कारण,...** यह आचार्य कहते हैं कि लो! सल्लेखना करो। तुम्हारी स्थिति हो गयी भैया! ४२ आचार्य के पास जाये और भाव ठीक रहे। शान्ति का मार्ग अन्दर में... आचार्य कहते हैं कि जाओ, संथारा लो। समझ में आया? आहाहा!

वस्त्र बदलने का तुम्हारा काल है। वस्त्र (अर्थात्) शरीर। शरीर बदलने का काल है। जाओ, तुम्हारे अन्दर आराधन (करो)। आहाहा! एक, दो, तीन, चार, ब्यालीस।

तब तक उसकी (सल्लेखना) लेने की स्थिरता ठीक रही... ब्यालीस—चालीस और दो आचार्य। आचार्य के पास जाकर पूछते हैं। आचार्य देते हैं, सल्लेखना की आज्ञा देते हैं।

मुमुक्षु : ब्यालीस आचार्य की आज्ञा लेते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। उस समय... है, कथनयोग्य नहीं... है न पाठ में? अन्दर पड़ा है न? टीका है न? वह तो है चरणानुयोग में। सर्वत्र आता है। चरणानुयोग में आता है। पाठ है न? **ब्यालीस आचार्यों द्वारा,... 'मुनिनां सल्लेखनासमये हि द्विचत्वारिशद्भिराचार्यैः'** है न? वह तो है। भगवती आराधना में है। ऐसा बहुत जगह है। चरणानुयोग में बहुत जगह है। भगवती आराधना में बहुत है। मुझे तो दूसरा कहना है कि इतनी आराधना की तैयारी हो गयी आत्मा की, ब्यालीस आचार्य के पास जाकर (भी) वह भाव ठीक रहा (संल्लेखना) करने का। तो आचार्य ने हुकम दिया। करो संथारा। जाओ, तुम्हारा आत्मा तैयार हो गया है।

आहाहा! धन्य अवतार! देह छोड़ने के काल में... उत्तम अर्थ है, ऐसा भगवान आत्मा, ऐसा कहते हैं, देखो! **वह दिया जाने के कारण,...** देखो! उत्तमार्थ प्रतिक्रमण दिया। मुनियों को दिया। मुनि को आचार्य ने दिया। विकल्प छोड़ दो, सब छोड़ दो, उत्तमार्थ में घुस जाओ। उत्तम अर्थ ऐसा आत्मा... **निश्चय से-नव अर्थों में उत्तम अर्थ आत्मा है;...** नव पदार्थ में उत्तम आत्मा है। आहाहा! आस्रव, बन्ध से तो भिन्न है, उत्तम है ही, परन्तु संवर-निर्जरा और मोक्ष से भी उत्तम अर्थ आत्मा है। आहाहा! बन्ध-मोक्ष, यह तो पर्याय है। त्रिकाल भगवान आत्मा है। आहाहा! यह आत्मा है, ऐसा आचार्य कहते हैं। उसका आश्रय करो, तुम्हारी शान्ति हो जायेगी। निर्विकल्प मरण होगा, समाधिमरण हो जायेगा। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल ११, सोमवार, दिनांक - २-८-१९७१
गाथा - ९२, प्रवचन-८३

यह नियमसार, परमार्थ प्रतिक्रमण अधिकार। प्रतिक्रमण का अर्थ—किये हुए दोषों का निराकरण करना। इस ओर अर्थ है। १७५ पृष्ठ पर। नीचे है न! प्रतिक्रमण (अर्थात्) किये हुए दोषों का निराकरण करना। यह निश्चय प्रतिक्रमण की बात है। ९२ गाथा चलती है।

जिनेश्वर के मार्ग में... सर्वज्ञ परमात्मा जिनवरदेव ने कहा मार्ग, उसमें मुनियों की सल्लेखना के समय की बात चलती है। देह के छूटने के काल में समाधिमरण कैसे होता है? बाहर की अकेली क्रिया, अपवास करके देह छोड़ना, वह क्रिया कोई सल्लेखना नहीं है। ऐसा तो अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गया, तब दो-दो महीने की व्यवहार सल्लेखना की थी। साठ-साठ दिन तक वृक्ष की डाल पड़े... वह (सल्लेखना) नहीं। वह तो क्रिया जड़ की, राग की है। यथार्थ प्रतिक्रमण और समाधिमरण... पूछता था यहाँ एक गृहस्थ। 'महाराज! इस काल में समाधिमरण, तड़पकर-तड़पकर मरना, ऐसा समाधिमरण होता है?' ऐसा प्रश्न किया। भाई थे। तरफड़ते, समझे न? कारण कि ऐसा देखे कि (समाधि)मरण करे, (परन्तु) है तो अज्ञान, भान तो है नहीं। अपना शुद्ध आनन्दस्वरूप ऐसा दृष्टि में, अनुभव में आया नहीं तो क्या करना, किसमें रमना और किससे हटना, वह तो खबर नहीं। यह क्रियाकाण्ड में रहे। तो कल पूछता था गृहस्थ बेचारा। हमने तो जितने मरण देखे ऐसा... ऐसा और ऐसा... तरफड़िया कहते हैं? क्या कहते हैं? तड़प... तड़पकर। हाँ, उसे कहते हैं।

भाई! समाधिमरण इसको नहीं कहते। आत्मा आनन्दस्वरूप का जिसको अन्तर में... ओहो! मिथ्यात्व का जो महादोष, उसका जिसने अपना निजस्वरूप में अनुभव करके मिथ्यात्वदोष का निराकरण किया है, उसको प्रथम सम्यग्दर्शन में समाधिमरण होता है। यहाँ तो कहते हैं, मुनि हैं उनको समाधिमरण—सल्लेखना कैसे होती है?

आहाहा! **जिनेश्वर के मार्ग में...** अर्थात् वीतरागस्वभाव के मार्ग में अन्दर—यह निश्चय। व्यवहार में **मुनियों की सल्लेखना के समय, ब्यालीस आचार्यों द्वारा,...** ब्यालीस कहते हैं न तुम्हारे? चालीस और दो। आचार्य के पास उसे जाना, जिसे समाधिमरण करना हो। आहाहा! वह काल कैसा होगा? ब्यालीस-ब्यालीस आचार्य तो आत्मज्ञानी, भावलिंगी। आहाहा! धन्य अवसर! अवसर!!

मुमुक्षु : देशकाल की उसे खबर पड़ जाती होगी?

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर कृश हो जाये तो ख्याल आ जाये कि अब समय हो गया है। एक बारह वर्ष का भी है। सूक्ष्म बात है। एक बारह वर्ष का सल्लेखनामरण है। बारह वर्ष है। है, वह तो श्वेताम्बर में भी है। हमारे बहुत चर्चा हुई थी, (संवत्) १९७५ के वर्ष में सल्लेखनामरण की। बारह वर्ष की भी एक है। अपने दिगम्बर में भी है। ओहो! बारह वर्ष। पहले से ऐसी विधि है। भक्तप्रत्याख्यान बारह वर्ष की उत्कृष्ट संल्लेखना है। वह चर्चा हमारे ७५ के वर्ष में बहुत हुई थी। कितने हुए? ५२ वर्ष हुए। पाळियाद में। आहाहा! क्रम-क्रम से छोड़ते हैं, ऐसा लिखा है। उत्तराध्ययन में है। अपने उसमें आवे—भगवती आराधना में है। ओहोहो! जिसने आत्मा हस्तगत किया है। हस्तगत अर्थात् जैसे हथेली में चीज़ हो और दिखे, ऐसा जिसने अपना आत्मा पुण्य-पाप के विकल्प से हटकर अपने स्वरूप में आनन्द का अनुभव किया है, सम्यग्दर्शन में पहली भूमिका ऐसी होती है। आहाहा!

देह तो छोड़ते हैं, अनन्त बार छूटा, परन्तु अन्तर आनन्द की समाधि में लहर करते हुए आनन्द में देह छूट जाये, उसका नाम शान्तमरण—समाधिमरण है। **ब्यालीस आचार्यों...** देखो! क्या कहते हैं? जिसको आत्मा की शान्ति... शान्ति... शान्ति चाहिए। सल्लेखना... शोधन करते-करते... काया और कषाय—ऐसा दो है। काया और कषाय की सल्लेखना। कृश करते-करते उसमें ऐसा हो कि मुझे तो अब अल्पकाल में देह छूटने का काल है। अकस्मात आ जाये कोई सिंह आदि या उपद्रव हो तो तुरन्त ही अन्दर में वृत्ति समेट लेते हैं—समेट लेते हैं, आनन्दकन्द में झूल जाते हैं और क्रमसर जो किसी का काल लम्बा हो तो ब्यालीस आचार्य के पास जाये। यह क्या कहते हैं

उसमें ? कि उसकी समाधिमरण शान्ति की जो भावना हुई है, वह ब्यालीस आचार्य के पास गया, तब तक उसकी (भावना) टिक रही है या नहीं ? समझ में आया ? आहाहा !

अन्तिम देह छूटना है। जिसने पचास... साठ-साठ, अरे! करोड़ पूर्व पहले तो। पहले तो आयुष्य बहुत था। अरबों वर्ष का था। करोड़ पूर्व का आयुष्य सीमन्धर भगवान का। एक पूर्व में ७० लाख ५६ हजार करोड़ वर्ष जाते हैं। एक पूर्व में ७० लाख करोड़... एक करोड़, दो करोड़ ऐसा नहीं। ७० लाख करोड़ (और ऊपर) ५६ हजार करोड़, इतने वर्ष का एक पूर्व कहने में आता है। ऐसा करोड़ पूर्व अनन्त बार हुआ, उसमें कोई नवीन बात नहीं है। आहाहा! तीन-तीन पल्योपम का आयुष्य देवकुरु-उत्तरकुरु जुगलिया में है। वहाँ भी अनन्त बार रहा है। तीन-तीन पल्योपम। एक पल्योपम के असंख्यवें भाग में असंख्य अरब वर्ष जाते हैं। आहाहा! एक पल्योपम के असंख्यवें भाग में असंख्य अरब वर्ष। ऐसा तीन पल्योपम। वहाँ भी अनन्त बार गया मिथ्यात्वसहित और मिथ्यात्वसहित निकला। वह कोई मरण नहीं। समझ में आया ?

कहते हैं, **जिसका नाम उत्तमार्थप्रतिक्रमण है, वह दिया जाने के कारण,...** आहाहा! देखो तो सही! ब्यालीस आचार्यों ने दिया। व्यवहार है न ? सन्तो! समाधिमरण करो, हमारी आज्ञा है। तुम समाधिमरण के योग्य हो। आहाहा! '**दिया**' है न पाठ ? भाई! **दिया जाने के कारण...** वह प्रवचनसार में आ गया है (चरणानुयोगसूचक चूलिका के) शुरुआत में। गुरु के पास मुनिपना लेता है। चरणानुयोग में है, प्रवचनसार। सर्वस्व दिया। गुरु ने सर्वस्व दिया। व्यवहार में ऐसा आरोप... उपकार का विनय तो है। गुरु ने सर्वस्व दिया। भावलिंग दिया, द्रव्यलिंग दिया—ऐसा आता है। आहाहा! मुनिपने में तो नग्न हो जाता है। वस्त्र का टुकड़ा भी न रहे और अन्तर तीन कषाय (चौकड़ी) का अभाव है, उसको मुनि कहते हैं। वस्त्र-पात्र रखना और मुनिपने का नाम धरना, वह तो मिथ्यात्व का पोषण है। आहाहा! मार्ग ऐसा है। मुनिपना तो दूसरी चीज़ है—अलौकिक चीज़ है।

मुमुक्षु : अगृहीत का (दोष) है, गृहीत का तो नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : गृहीतमिथ्यात्व है। आहाहा! सूक्ष्म बात है। वस्त्र-पात्र रखकर

मुनि मानते हैं न ? मनाते हैं न ? उसको तो गृहीतमिथ्यात्व में डाला है मोक्षमार्गप्रकाशक के पाँचवें अध्याय में। बात तो यथार्थ है। तुझे दुःख लगे—न लगे, उसके ऊपर सत्यता का (निर्भर) नहीं है। समझ में आया ? भगवान कुन्दकुन्दाचार्य तो यहाँ तक कहते हैं कि एक वस्त्र का तुषमात्र भी रहे, रखे और मुनिपना माने और मनावे तथा मानते हुए को अनुमोदन करे, 'निगोदं गच्छई'। तत्त्व का विराधक है। आहाहा! भले सम्यग्दर्शन हो, मुनिपना न हो, परन्तु आत्मा का सम्यक् अनुभव करके देह छूटती है तो वह समाधिमरण है, उस प्रकार का जघन्य। यह तो उत्कृष्ट मरण की बात चलती है। समझ में आया ? आहाहा!

मुमुक्षु : महाराज! चश्मा तो रखते हैं....

पूज्य गुरुदेवश्री : चश्मा-बश्मा...अपने व्यक्तिगत की बात नहीं। चश्मा-बश्मा तो होता नहीं। एक तुषमात्र वस्त्र नहीं तो चश्मा कहाँ आया ? मार्ग ऐसा है। कोइ व्यक्तिगत की बात नहीं है यहाँ। व्यक्ति, उसके परिणाम का वह जवाबदार है। आहाहा!

मुमुक्षु : सब आ गया तिलतुषमात्र में ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, तिलतुषमात्र में आ जाता है। ओहोहो! जिनेश्वर का मुनिपना, वीतरागमार्ग का मुनिपना, बापू! वह तो अलौकिक है। आहाहा! जिसमें प्रचुर आनन्द का संवेदन आता है। सम्यग्दर्शन में आनन्द का जघन्य संवेदन आता है। जघन्य समझते हो ? थोड़ा। और मुनि को प्रचुर स्वसंवेदन... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के झूले में झूलते हैं, उसकी नग्न-दिगम्बर दशा तो निमित्तरूप से हो जाती है। हो जाती है, करनी पड़ती नहीं। समझ में आया ? आहाहा! विकल्प हो तो २८ मूलगुण का विकल्प होता है, दूसरा विकल्प-राग होता नहीं।

यहाँ तो संथारा... आहाहा! धन्य अवतार! अपने स्वरूप का शोध करते... करते... करते... करते... राग की कृशता हो गयी और शरीर की कृशता हो गयी बाहर में। आहाहा! वह मुनि के पास—आचार्य के पास जाते हैं, महाराज! हमें शान्ति लेना है प्रभु! आहा! हमें समाधि आनन्द में देह छोड़ना है, नाथ! आप परीक्षा करके मुझे आज्ञा दो। आहाहा! भाई! सर्वस्व दिया है। यहाँ आया न ? सर्वस्व दिया है। प्रवचनसार में, चरणानुयोग (सूचक चूलिका) में। गुरु ने सर्वस्व दिया। श्रीमद् में आता है, नहीं ? 'वह

तो प्रभु ने ही दिया...' श्रीमद् में आता है। '....आत्मा से सब हीन, वह तो प्रभु ने ही दिया, वर्तुं चरणाधीन।' यह विनय का शब्द ही ऐसा होता है। विनयभाव होता है... विनय... विनय... विनय... सन्त सन्तों के निकट भी विनय करते हैं। आहाहा!

कहते हैं कि आचार्यों ने ब्यालीस आचार्यों ने समाधिमरण दिया। उसकी योग्यता देखकर कहा, करो भैया! तुम्हें शान्ति होगी, तुम्हें आनन्दसहित देह छूट जायेगी। तुम्हारी भावना हमने ऐसी देखी है। आहाहा! समझ में आया? **देहत्याग व्यवहार से धर्म है।** है न उसमें? **निश्चय से-नव अर्थों में उत्तम अर्थ आत्मा है;...** देखो! नव तत्त्व हैं नव पदार्थ। जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। उसमें—नौ में उत्तम तो भगवान आत्मा है। आहाहा! पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द से भरा पड़ा, शान्ति और आनन्द से लबालब भरा है आत्मा। आहाहा! ऐसे संवर, निर्जरा और मोक्ष में भी उत्तम तो आत्मा है। वह तीन तो पर्याय हैं। समझ में आया? पन्नालालजी! यह प्रज्ञा की बात चलती है। आहाहा!

पहले हमारे स्वाध्याय में आता था। सज्झाय है न, उसमें है। 'एक रे दिवस ऐसा आयेगा, यह मुझे .... साले जी...' यह चार सज्झायमाला आती थी। हम तो दुकान पर बहुत वाँचते थे। हमें निवृत्ति बहुत थी न! उसमें यह आता था। यह ६४-६५ की बात है। संवत् १९६४-६५ और हमको रात्रि को भी बहुत निवृत्ति थी। ६४ वर्ष से तो हमें रात्रि को पानी-आहार का त्याग है। ६४ वर्ष। ५८ वर्ष तो यहाँ (संसार छोड़े) हुए। छह वर्ष दुकान पर बैठे थे। रात्रि को पानी की बूँद नहीं। मणिभाई! रात्रि को निवृत्ति बहुत थी। वह पुस्तकें वाँचते थे। ६५ वर्ष पहले। उसमें यह आया था। 'एक रे दिवस एवो आवशे...' गुजराती है न। 'अे मने ... साले जी, सगी रे नारी रे तारी कामिनी, उभी टगटग जोवे जी, आ रे कायामां हवे कंई नथी, ऐ ध्रुसके ध्रुसके रोवे जी, अेक रे दिवस एवो आवशे।' उस समय भाई! वैराग्य बहुत पसन्द था न... 'काढो रे काढो अेने सौ कहे, जोने जाणे जन्म्यो ज नहोतो।' आहाहा!

कहते हैं, भगवान! एक दिन तो सबको आयेगा। आयेगा या नहीं? देह संयोगी है तो संयोग छूट जायेगा ही। आहाहा! प्रभु! तेरी चीज़ की सम्हाल करके, शोध करके

देह छूटे, वह देह छूटा कहने में आयेगा। शोभालालजी! आहाहा! यहाँ तो अभी शरीर की रुचि कि मेरा शरीर, मेरी लक्ष्मी, मेरा राग—वह तो सब मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! उसका मरण तो असमाधि, अज्ञानमरण हो जायेगा। आहाहा! कहते हैं, नौ तत्त्व में एक उत्तम भगवान (आत्मा)... आहाहा! पर्याय को शोधना छोड़ दे, कहते हैं। द्रव्य को शोध। त्रिकाली भगवान आत्मा महा आनन्द से लबालब भरा है, ठसाठस भरा है। आहाहा! उस आनन्द की झलक में इन्द्र का इन्द्रासन सड़ा हुआ तृण देखने में आवे, ऐसी चीज़ सम्यग्दर्शन में भासित होती है, ऐसा कहते हैं। वकीलजी! ऐसा है, भगवान! आहाहा!

मुमुक्षु : किस भगवान की बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आत्मा के भगवान की बात करते हैं। यह रहा। दूसरा भगवान—उसका भगवान तो उसके पास रहा।

मुमुक्षु : ऐसा अनुभव पहले हो सकता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले हो सम्यग्दर्शन में। शुद्धोपयोग के काल में सम्यग्दर्शन होता है, तब ऐसा होता है, ऐसी बात है।

मुमुक्षु : बारहखड़ी सिखाते नहीं और कुछ सिखाते नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बारहखड़ी-फारहकड़ी वह आत्मा है अक्षर। अ-क्षर। खिरे नहीं ऐसा अक्षर है। यह अक्षर का ज्ञान हुआ (तो) बारहखड़ी का ज्ञान हो गया सबका। आहाहा! पशु को तो क्या? पशु को तो नव तत्त्व का नाम भी नहीं आता। क्यों पण्डितजी! तथापि समकित होता है। पाँचवें गुणस्थान में असंख्य (तिर्यंच) पड़े हैं बाहर—ढाई द्वीप के बाहर। असंख्य पंचम गुणस्थानवाले पशु। एक हजार योजन लम्बा मत्स्य। ऐसे असंख्य पड़े हैं, पाँचवें गुणस्थानवाले। नव तत्त्व का नाम भी नहीं (आता)।

अरे! आत्मा है न! आत्मा का अनुभव हुआ तो सब आ गया। उसका—तत्त्व का भी ऐसा लिया है मोक्षमार्गप्रकाशक में कि अतीन्द्रिय आनन्द (स्वरूप) आत्मा है, उस आनन्द का भान हुआ तो पूर्ण आनन्द है, वह आत्मा, ध्यान की पर्याय हुई संवर-निर्जरा और जो रागादि, राग का नाम नहीं आता, परन्तु आनन्द से वह दूसरी चीज़ है, दूसरी है

ऐसा भासित होता है, यह आस्रव पुण्य-पाप का भाव, उसका ज्ञान हुआ, यह दुःख... यह दुःख। यह (वेदन, वह) आनन्द। भगवान पूर्णानन्द, ऐसी आनन्द की दृष्टि हुई तो पर्याय में आनन्द आया, वह आनन्द आया, वह संवर-निर्जरा, पूर्णानन्द प्रभु आत्मा, यह आत्मा और दुःख लगता है, पुण्य-पाप के विकल्प का दुःख लगता है 'यह नहीं' तो वह आस्रव-बन्ध का ज्ञान हो गया और अपने में प्रयत्न करने से संवर-निर्जरा तो हुई है, प्रयत्न करने से पूर्ण करने का भाव है, पूर्ण होगा, वह मोक्ष है। नव तत्त्व का ज्ञान हो गया। आहाहा! समझ में आया?

मोक्षमार्गप्रकाशक में लिया है। समझ में आया? नाम न आये (तो क्या हुआ), भाव आ गया न! नाम तो ग्यारह अंग पढ़ लिया अनन्त बार, नौ पूर्व भी पढ़ लिया, उसमें हुआ क्या? आहाहा! दृष्टि बदलने से, दृष्टि बदलने से शान्ति हो जाती है। मिथ्यात्व में अशान्ति है। आहाहा! वस्तु ऐसी है। राग की एकता में मिथ्यात्वभाव, यह अशान्ति है। राग से पृथक् होकर भगवान आत्मा अपना शुद्ध आनन्द, उस ओर की दृष्टि हुई तो दुःख की पर्याय का व्यय हुआ, आनन्द की पर्याय उत्पन्न हुई, अतीन्द्रिय आनन्द का ध्रुवपना, वह आत्मा रहा। आहाहा! समझ में आया? यह नव अर्थ में आत्मा अर्थ है। कैसा है? एक प्रयोजनभूत तत्त्व है। आहाहा!

सच्चिदानन्दमय कारणसमयसारस्वरूप... देखो! कैसा है यह भगवान? **सच्चिदानन्द**—सत् है, ज्ञान है और आनन्द है। सच्चिदानन्दमय प्रभु आत्मा **कारणसमयसार...** वह कारणसमयसार कहो, कारणपरमात्मा कहो अथवा ध्रुवस्वभाव कहो। समझ में आया? गुण के पिण्ड को कारणसमयसार कहो, कारणपरमात्मा कहो, कारणजीव कहो, कारणध्रुव कहो, नित्य कहो, सदृश कहो—वह सब ध्रुव आत्मा के विशेषण हैं। आहाहा! **ऐसे उस आत्मा में...** देखो! **सच्चिदानन्दमय...** लो, सच्चिदानन्दमय नाम आया तो लोग कहे, सच्चिदानन्द तो अपने में—जैन में नहीं होता। स्वामीनारायण में तो सहजानन्द (आता है)। 'सहजानन्दी शुद्धस्वरूपी' आता है न? स्वामीनारायण (वाले) कहे, देखो! हमारा (सहजानन्द) है न वहाँ। अरे भगवान! यह सहजानन्द नहीं। सहजानन्द तो यह आत्मा सहजानन्दस्वरूप है। समझ में आया?

यहाँ **सच्चिदानन्दमय...** सच्चिदानन्द कहते हैं वे। आटा माँगने आते हैं न? 'सच्चिदानन्दमय' ऐसा कुछ कहते हैं। नारायण हरि, ऐसा कहते हैं। हाँ, ऐसा बोलते हैं। यह भी कुछ बोलते हमारे यहाँ उपाश्रय के साथ में... यह सच्चिदानन्द तो भगवान आत्मा है। (सच्चिदानन्द)=सत्-शाश्वत्, चिद् अर्थात् ज्ञान और आनन्द। वही शाश्वत्। ऐसा कारणसमयसारस्वरूप... ऐसा वीतरागी केवलज्ञानादि पर्याय का कारणस्वरूप, उस आत्मा में... **उस आत्मा में जो तपोधन स्थित रहते हैं,...** आहाहा! जिसके पास निर्विकल्प तपोधनदशा है, धन है। आहाहा! वीतरागी परिणति(रूप) जिसके पास धन है। तपोधन कहा न? आत्मा में स्थित होकर वीतरागी परिणति उत्पन्न हुई, ऐसा तपोधन (अर्थात्) जिसके पास आनन्द की लक्ष्मी है। आहाहा! समझ में आया?

स्थित रहते हैं... ऐसे भगवान आत्मा में जम जाते हैं—जम जाते हैं, **वे तपोधन नित्य मरणभीरु हैं;...** आहाहा! सम्यग्दर्शन बिना देह छूटे तो किसी की कषाय मन्द हो और ऐसे देह छूटे, परन्तु है भावमरण। यहाँ तो तृषा लगी हो, भूख लगी हो, ऐसे... ऐसे और आत्मा का ज्ञान, अनुभव तो है नहीं, तो सहनशक्ति तो है नहीं। फिर तड़पे। देह छूटे। देह तो छूट ही जाये, उसमें क्या है?

मुमुक्षु : तड़पना तो पुद्गल की पर्याय है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पुद्गल की पर्याय... अन्दर आकुलता-व्याकुलता है न? ठीक कहते हैं। अन्दर व्याकुलता है न? वह व्याकुलता, वह अज्ञान और दु:ख है। आहाहा! शरीर में तड़पन न भी हो (यदि) पक्षघात हो गया हो तो। परन्तु अन्दर में आत्मा आनन्दस्वरूप का विकास तो किया नहीं और मिथ्याश्रद्धा का विकास और अवलम्बन किया तो व्याकुलता है। आहाहा! अज्ञान ही दु:ख है। समझ में आया?

कल कहा था न? नहीं कहा था? राजकोट की जेल में। जेल में लिखा था ऐसा दीवार पर (लिखा था)। 'अज्ञान, वह दु:ख है।' सब कैदी लोग, सारे आये थे, कैदी लोग। वहाँ हमारी बातें बहुत जाती हैं न! कीर्ति बहुत है... तो कैदियों को दर्शन करने की भावना हुई। हमें पाव घण्टे सुनना है महाराज का, समय मिले तो। अहमदाबाद से हुकम आया। जाओ। दो दरवाजा रखे, हों! एक दरवाजा खुले, दूसरा दरवाजा बन्द

रखे। (दूसरा) खुले तो यह दरवाजा बन्द रखे। क्योंकि कोई भागे तो? चोर-कैदी... जेलर सब ऑफीसर... देखो भैया! 'अज्ञान, वह दुःख है।'

दूसरी यह चीज़ कही कि सिंह के बच्चे को सिंह का (भय) दुःख नहीं। (भय) दुःख लगे? क्योंकि उसे भान है कि मेरी माता है। अज्ञान नहीं न इस जाति का। सिंहनी के बच्चे को सिंहनी का ख्याल है कि मेरी माता है। अज्ञान नहीं। यह कौन है, ऐसे भानरहित नहीं। भान है कि मेरी माता है। सिंहनी का बच्चा सिर पर चढ़े, कान पकड़े, यहाँ पकड़े, डर नहीं लगता। क्योंकि उसको भान है कि ये मेरी माता है। सिंहनी माता है। बकरी को... वह तो ऐसे देखे वहाँ... आहाहा! वही बात है कि आत्मा का जिसको भान नहीं, उसको दुःख है। समझ में आया? यह तो अन्तर की बात है, भगवान! आहाहा! जिसको आत्मा का हित करना हो तो यह बात है। बाकी दुनिया, दुनिया की जाने। आहाहा! दुनिया का अन्त कोई लाया नहीं। आस्रव और बन्ध अनादि-अनन्त रहेंगे संसार में तो। तू (अन्दर से) निकाल दे। आहाहा! समझ में आया?

ओहो! **नित्य मरणभीरु...** उसको मरण का त्रास है, डर लगता है। आत्मा की शान्ति में आ जाता है। ओहो! देह छूटने के काल में कैसा श्वास रहेगा? कैसा ... रहेगा? हाथ कैसे-पैर कैसे...? असाध्य हो जाये। असाध्य हो जाता है न? असाध्य समझते हो? क्या कहते हैं? दुःसाध्य—बेहोश। बेहोश हो जाये, भान नहीं रहे। आहाहा! आठ-आठ घण्टे, चौबीस-चौबीस घण्टे, बाईस-बाईस दिन। भाई! बाईस दिन, यह बेचरभाई को बाईस दिन। यह कानजी पानाचन्द करोड़पति है, उसकी माँ आठ दिन। कुछ खबर नहीं होती। आठ दिन तक... देह की स्थिति तो भगवान! ऐसी है ही। वह तुझसे हुई नहीं, तुझसे बदलती नहीं। तू बदल जा। आहाहा! शरीर में मैं नहीं, राग में मैं नहीं, मैं एक समय की पर्याय में पूरा नहीं। आहाहा! ऐसे भगवान आत्मा में सन्त रमण करते हैं, कहते हैं। मरण का भय है।

इसीलिए वे कर्म का विनाश करते हैं। ओहो! जिसमें कर्म और कर्म का कारण नहीं, ऐसी चीज़ में अन्तर (में) रहते हैं, कर्म का नाश होता है। कर्म का उदय आकर चला जाता है। आहाहा! समझ में आया? हाथ जोड़कर प्रतिक्रमण कर दे, ऐसा कर दे,

यह क्रिया नहीं, यह तो शुभराग है। समझ में आया? यह आयेगा अभी। वह कोई प्रतिक्रमण है नहीं, वह सच्ची चीज़ है नहीं। **इसलिए अध्यात्मभाषा में, पूर्वोक्त भेदकरण रहित,...** आहाहा! उसकी बात करते हैं पहले। शुक्लध्यान... ऐसे देह छूटे अलौकिक... आहाहा! वह न छूटे तो धर्मध्यान। ऐसे दो लेंगे पहले। पहले शुक्लध्यान लेकर फिर धर्मध्यान लिया। **भेदकरण रहित, ध्यान और ध्येय के विकल्प रहित,...** आत्मा ध्येय है और मैं ध्यान करता हूँ, वह भी विकल्प है, वह भी राग है। उससे रहित... आहाहा! **निरवशेषरूप से अंतर्मुख जिसका आकार है,...** शुक्लध्यान। निरवशेष अन्तर्मुख—पूर्ण अन्तर्मुख होता है। सम्यग्दर्शन में अल्प अन्तर्मुख है, चारित्र में विशेष अन्तर्मुख है और धर्मध्यान में अन्तर्मुख है, शुक्लध्यान में निरवशेष अन्तर्मुख है। आहाहा! अकेला भगवान ध्येय में लेकर लीन होता है आनन्द में।

ऐसा और सकल इन्द्रियों से अगोचर... इन्द्रियों से अगोचर है। **निश्चय-परमशुक्लध्यान ही निश्चय-उत्तमार्थप्रतिक्रमण है, ऐसा जानना।** उसको प्रतिक्रमण प्रगट होता है। **और, निश्चय-उत्तमार्थप्रतिक्रमण...** अब विशेष स्पष्टीकरण करते हैं। **स्वात्माश्रित...** देखो! ऐसे निश्चयधर्मध्यान... निश्चयधर्मध्यान स्वात्माश्रित होता है। आहाहा! कितने ही कहते हैं कि धर्मध्यान तो शुभभाव ही है, शुक्लध्यान में शुद्धभाव है। झूठ बात है। समझ में आया? अरे भगवान! तेरी शरण बिना धर्मध्यान कैसा? **निश्चय-उत्तमार्थप्रतिक्रमण स्वात्माश्रित...** देखो! परमात्मा तीन लोक के नाथ के आश्रय से भी निश्चय धर्मध्यान नहीं होता। आहाहा!

मुमुक्षु : निश्चयधर्मध्यान पंचम गुणस्थान से होता है.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथे से। निश्चयधर्मध्यान चौथे गुणस्थान से उत्पन्न होता है। छठवें-सातवें तक धर्मध्यान गिनने में आया है। पीछे शुक्लध्यान... धवल में ११वें गुणस्थान तक धर्मध्यान गिनने में आया है। यहाँ तत्त्वार्थसूत्र में सातवें गुणस्थान तक धर्मध्यान, आठवें से शुक्लध्यान। तत्त्वार्थसूत्र में 'राजमार्ग' कहते हैं उसे।

यहाँ कहते हैं, जब से सम्यग्दर्शन स्वद्रव्य के आश्रय से हुआ। तो स्वद्रव्याश्रित जो है, वह धर्मध्यान है। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रत्येक समय में होता होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रत्येक समय। वह तो अन्दर आत्मा की दृष्टि परिणम गई है। दृष्टि द्रव्य के ऊपर पड़ी, वह तो परिणम गयी है। समय-समय में धर्मध्यान है।

मुमुक्षु : निश्चयधर्मध्यान या व्यवहारधर्मध्यान?

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय। व्यवहार की कहाँ बात है? वह आयेगा आगे। कहीं आता है न? 'ध्यान विहीणो।' 'ध्यान बिना' आयेगा आगे। ध्यान बिना के मुनि नहीं। ध्यान बिना के मुनि (नहीं) तो (शुद्ध) उपयोगवाला हो तो ही मुनि कहते हैं—ऐसा नहीं। कहीं है। '**झाणविहीणो समणो...**' यह तो ध्यान में लीन है परन्तु ध्यानविहीणो ऐसा आता है कहीं। लीन नहीं। लीन तो है, परन्तु 'ध्यानविहीणो साहु...' ऐसा आता है। ध्यान बिना अर्थात् (शुद्ध) उपयोग हो तो ही साधु? आगे आता है एक जगह। कहीं आता है। जरा स्पष्टीकरण किया था एक बार। पहले कहा था एक बार, हों!

कहीं है। प्रत्याख्यान में या आलोचना में हो। कहीं होगा अवश्य। ध्यानरहित है, वह आयेगा। ध्यानरहित वह साधु नहीं, ऐसा आता है। आता है, ख्याल है। पहले कहा हुआ है। यह पहले एकबार बात हुई है। नहीं तो उपयोग में हो तो ही धर्मध्यान? यहाँ तो लब्धरूप है तो भी धर्मध्यान। उपयोग भले पर में हो। ऐसा आता है। अब कहाँ देखे? १७६ पृष्ठ। १७६ पृष्ठ **आत्मध्यान के अतिरिक्त दूसरा सब वह घोर संसार का कारण है।** यह पाठ है, देखो! **आत्मध्यान के अतिरिक्त अन्य सब घोर संसार का मूल है।** हाँ, वह आता है। (कलश) १२३। परन्तु इसके सिवा मूल पाठ भी है। आगे आयेगा। यह तो टीका। वह मूल पाठ में है। कुन्दकुन्दाचार्य के शब्द हैं। कहीं सब याद रहता है? ख्याल में आवे। क्या कहते हैं? देखो! **निश्चय-उत्तमार्थप्रतिक्रमण स्वात्माश्रित...** चौथे गुणस्थान से धर्मध्यान शुरु होता है। संवर-निर्जरा स्व के आश्रय बिना कभी होती नहीं। पर के आश्रय से जितना विकल्प उठता है, वह पुण्यबन्ध का कारण है, आस्रव है। वह आयेगा अभी, देखो!

ऐसे निश्चयधर्मध्यान तथा निश्चयशुक्लध्यानमय होने से अमृतकुम्भस्वरूप है;... अपना स्वद्रव्याश्रित निश्चयधर्मध्यान और स्वद्रव्याश्रित निश्चय शुक्लध्यान—

दोनों स्वद्रव्याश्रित हैं। अखण्डानन्द परमात्मा के आश्रय से उत्पन्न हुआ धर्मध्यान, उसके आश्रय से उत्पन्न हुआ शुक्लध्यान अमृतकुम्भस्वरूप है। यह निश्चयप्रतिक्रमण निश्चयधर्मध्यान और निश्चय शुक्लध्यान अमृतस्वरूप है, आनन्दस्वरूप है। आहाहा! **व्यवहार-उत्तमार्थप्रतिक्रमण व्यवहार-धर्मध्यानमय होने से विषकुम्भस्वरूप है।** आहाहा! कहो, मूलचन्दभाई! आहाहा! देखो! व्यवहारधर्मध्यान... धर्मध्यान के दो प्रकार—निश्चय और व्यवहार। निश्चय स्वाश्रित है, व्यवहार पराश्रित (होने से) विकल्प उठते हैं। आहाहा! **व्यवहार-धर्मध्यानमय होने से...** व्यवहारधर्मध्यानमय होने से... व्यवहार उत्तमार्थप्रतिक्रमण होने से, आहाहा! विषकुम्भ है, जहर का घड़ा है। २०वीं गाथा में लिया, २१ गाथा आयी। समयसार की गाथा लेते हैं, देखो!

इसी प्रकार (श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत) श्री समयसार में (३०६वीं गाथा द्वारा) कहा है कि:— यह कुन्दकुन्दाचार्य का आधार देते हैं। मोक्ष अधिकार है। समयसार।

पडिकमणं पडिसरणं परिहारो धारणा णियत्ती य।
णिंदा गरहा सोही अट्ठविहो होदि विसकुंभो॥

गाथार्थ :—प्रतिक्रमण, प्रतिसरण, परिहार, धारणा, निवृत्ति, निन्दा, गर्हा और शुद्धि—इन आठ प्रकार का विषकुम्भ है। जहर का घड़ा है। पाप तो जहर का घड़ा है ही। उसकी तो बात (है ही नहीं)। उसको छोड़कर शुभभाव है, वह भी विष का कुम्भ—घड़ा है। उसको छोड़कर विमुख हो जाना, ऐसा कहते हैं। उसको छोड़कर पाप करना, ऐसा नहीं। कहाँ? १५१। पहले आ गया है, नहीं? आहाहा! अब आयेगा। कितना? ३०४। है न! कहा, आ गया है। अपने व्याख्यान कर गये हैं। ३०४ आ गया। वह आया देखो! बस, यह १५१ गाथा।

'**झाणविहिणो समणो बहिरप्पा इदि विजाणीहि**' ध्यानरहित साधु को बहिरात्मा कहा है। तो विकल्प में है तो भी ध्यान तो है, ऐसा कहना है। यह १५१। परम-आवश्यक अधिकार। दो शब्द लिये हैं, देखो! '**धम्मसुक्कझाणम्हि परिणदो सो वि अंतरंगप्पा**' धर्म और शुक्लध्यान में अन्तर में परिणत हुआ है। और '**झाणविहिणो**'

धर्म और शुक्लध्यान दोनों नहीं, वह **'समणो बहिरप्पा'** बहिरात्मा है। क्या? विकल्प में है तो धर्मध्यान नहीं? धर्मध्यान है अन्दर में निर्विकल्प कायम—निरन्तर। आहाहा! समझ में आया? ध्यानरहित साधु को बहिरात्मा, मिथ्यादृष्टि कहा है। उस ध्यान का अर्थ क्या? उपयोग में जम जाये, वह ध्यान, ऐसा नहीं। शुद्ध द्रव्य के आश्रय से परिणति शुद्ध उत्पन्न हुई, वही धर्मध्यान। वह उपयोग तो पर (के ऊपर) है, (फिर भी) ध्यान तो ध्यान ही है।

मुमुक्षु : चौथे व्यवहारधर्मध्यान?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, निश्चयधर्मध्यान है चौथे से। यह तो दूसरा... वह पूछते हैं। नहीं, कहते हैं भाई! कहते हैं, ऐसा ही कहते हैं। चौथे, पाँचवें, छठवें में व्यवहारधर्मध्यान, सातवें निश्चयधर्मध्यान अथवा आठवें में। शुक्लध्यान में शुद्धोपयोग। नीचे शुद्धोपयोग नहीं। अरे भगवान! तेरा आश्रय न लिया हो और ध्यान हो, धर्म हो, (ऐसा हो सकता नहीं)। आहाहा! लो, इस गाथा में बहुत लिया है। ध्यानविहीन तो बहिरात्मा है, मिथ्यादृष्टि है। उसका अर्थ कि धर्मध्यान चौथे गुणस्थान में है। आया या नहीं भाई? यह बहिरात्मा कहा न! ध्यानरहित प्राणी बहिरात्मा। भैया! आहाहा! अन्तरात्मा दो प्रकार के हैं। एक धर्मध्यानमय, एक शुक्लध्यानमय, धर्मध्यानमय चौथे से शुरु होता है, नहीं तो बहिरात्मा हो जाता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अनुभूति है, वही ध्यान है अन्तर में कायम।

मुमुक्षु : धर्मध्यान का अर्थ क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, द्रव्य में एकाग्रता। क्रिया कौनसी हो? यह क्या कहते हैं? स्व-आश्रित।

मुमुक्षु : भेदरहित पहले बताया न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह शुक्लध्यान। स्व-आत्माश्रित निर्विकल्पपरिणति, वह धर्मध्यान। यह दूसरा प्रकार है, मूलचन्दभाई! अभी तक सब निकाला है समझे बिना का। आहाहा!

मुमुक्षु : ध्यान तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ध्यान, आगे कायम ध्यान है, ऐसा बताना है। इसलिए तो यह गाथा ली है। यह ध्यान तो अन्दर ध्याता, ध्येय (भेद) छूटकर उपयोग लग जाये वह। यह तो '**झाणविहिणो**' ध्यान—धर्मध्यान या शुक्लध्यान न हो तो मिथ्यादृष्टि, ऐसा कहा है। तब चौथे गुणस्थान में मिथ्यादृष्टि है? ध्यान नहीं है? ध्यान है तो क्या है? धर्मध्यान है। आहाहा! अपना निजस्वभाव पूर्ण शुद्ध का आश्रय लिया, वही धर्मध्यान। उत्कृष्ट उग्र आश्रय ले, वह शुक्लध्यान। परन्तु वह स्वद्रव्य आश्रय से उत्पन्न होता है। आहाहा! ऐसी जाति! ध्यान की व्याख्या ऐसी नहीं कि अन्दर जम जाये तो ही ध्यान। वह तो उत्कृष्ट विशेष ध्यान है। कायम, अपना स्वभाव शुद्ध आनन्द आदि, उसमें एकाग्रता जो है, वह कायम है, उसको यहाँ धर्मध्यान कहा है। वह तो धर्मध्यान न हो, तब तो विकल्प का और राग का ध्यान है तो बहिरात्मा है। समझ में आया? व्याख्या ... की थी।

'**झाणविहिणो बहिरप्पा**' आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य की शैली परमात्मा के पेट (अभिप्राय) खोलने की है। भाई! तेरी चीज़ का तुझे ध्यान न हो तो तू बहिरात्मा, मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहा। आहाहा! कायम, जितनी एकाग्रता हुई है तो धर्मध्यान कायम है। वह धर्मध्यान न हो तो राग की एकताबुद्धि में मिथ्यात्व हो जाता है। आहाहा! गजब भाई! वीतरागमार्ग, यह चीज़ कहीं अन्यत्र है नहीं। तीन काल में कहीं नहीं। ऐसा सन्तों—दिगम्बर मुनियों ने केवली का पेट (अभिप्राय) खोलकर आत्मा खोल दिया है। कायम मुनि... चौथे गुणस्थान में कायम धर्मध्यान है, यह कहा न अभी। यह तो यहाँ मुनि की बात है। परन्तु पहले १५१ गाथा में कहा न! धर्मध्यानरहित ध्यानविहीन प्राणी मिथ्यादृष्टि है। वह १५१ में कहा न, उसका अर्थ क्या हुआ? चौथे में धर्मध्यान न हो तो मिथ्यादृष्टि हो जाये। यह तो मुनि की विशेष बात है। परन्तु यहाँ तो सर्व ध्यान बिना—कोई भी ध्यान न हो धर्म या शुक्ल... आर्त-रौद्रध्यान तो (ध्यान) ही नहीं, फिर प्रश्न कहाँ है? वह अनुभव थोड़ा है, परन्तु ध्यान की एकाग्रता तो कायम है। जितनी एकाग्रता हुई, (उतनी) परिणति कायम है, उसको यहाँ धर्मध्यान कहने में आता है। वह लब्ध उपयोग में, यह तो ध्यान में एकाग्र ही है। वह तो लब्ध उपयोग में है।

मुमुक्षु : ध्यान उपयोग को मान लिया, इसलिए गड़बड़ हो गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, गड़बड़ हो गयी। उपयोग पर में हो भले, उसमें क्या है? राग में, शुभाशुभरागरूप उपयोग हो, परन्तु अन्तर जितनी कषायरहित एकाग्रता हुई है, वह तो कायम है। चौथे गुणस्थान में मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीरहित एकाग्रता हुई, वहाँ उसको आर्तध्यान कहना? उसे रौद्रध्यान कहना? वह पराश्रित है? है न। धर्मध्यान के प्रकार हैं। चार प्रकार में तीन ले लिये। हाँ, है। वह चाहे जो हो, परन्तु धर्मध्यान है। वह परम अध्यात्म.... में आया है। समझ में आया? परन्तु वह धर्मध्यान शुभ नहीं, स्वद्रव्याश्रित। यहाँ तो यह सिद्ध करना है। आहाहा! वह तो कहते हैं, देखो! भगवान कहते हैं कि स्व-आत्माश्रित धर्मध्यान होता है। उसका नाम सच्चा प्रतिक्रमण और सच्चा ध्यान कहते हैं।

अब नीचे उसका अर्थ करते हैं। **प्रतिक्रमण...** है न? **किये हुए दोषों का निराकरण करना।** यह व्यवहार प्रतिक्रमण, शुभ विकल्प, जो जहर समान है विषकुम्भ। **किये हुए दोषों का निराकरण करना।** यह शुभराग है। यह स्वद्रव्याश्रित नहीं, यह परलक्षी भाव हुआ। आहाहा!

मुमुक्षु : .... खटकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : खटकता है, परन्तु पाठ शास्त्र में है। देखो! उसमें लिखा है न! यह आठ प्रकार के विषकुम्भ हैं। अकेला जहर नहीं, जहर का कुम्भ—घड़ा। कुम्भ तो पानी का हो, पानी से भरा कुम्भ। यह तो जहर से भरा कुम्भ। यह तो सन्तो, वीतराग की वाणी है भैया! उसमें राग को तो जहर ही कहते हैं, चाहे तो शुभ हो या अशुभ। 'राग आग दाह दहे...' नहीं आता है? 'राग आग दाह...' शुभ या अशुभ हो, राग दाह है। आहाहा! वहाँ ऐसा नहीं कहा कि अशुभराग, वह आग दाह है। सब राग आग दाह है। समझ में आया?

प्रश्न किया है न? निहालचन्दभाई सोगानी ने लिखा है न? शुभभाव तो भट्टी है। उन्होंने खोल दिया है—खुल्ली बात की है। यहाँ कहा कि शुभभाव जहर है। तो उसमें क्या हुआ? भट्टी अग्नि है, कषाय अग्नि है। जलता ही है। कषाय में अग्नि है तो जलता है—सुलगता है; शान्ति तो है नहीं।

मुमुक्षु : पहले तो शुभभाव होता हो, वह भट्टी में जल जायेगा, फिर माल कहाँ से आयेगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें से कहाँ से आता है? उसको छोड़कर स्वद्रव्य का आश्रय ले तो उसमें से आता है। राग में से कहाँ से आता है? तब प्रश्न उठता है न? देखो! सोगानी कहते हैं कि शुभभाव अग्नि—भट्टी है। भगवान की भक्ति के ऊपर हमारा लक्ष्य है तो वहाँ कहाँ अग्नि आ गयी? वह राग है। आहाहा! राग है, भगवान के ऊपर लक्ष्य करना, वही राग है, वह कषाय है। समझ में आया?

बहुत प्रश्न आये हैं न! उस ओर से बहुत प्रश्न आये थे। सेठिया का प्रश्न आया था। भाई क्या? शोभालाल... शोभाचन्दजी। वह करोड़ रुपये... सेठिया, नहीं? दीपचन्दजी के मामा वे रतनगढ़वाले। देखे हैं तुमने? उसका एक प्रश्न आया था। इस शुभराग को भट्टी क्यों कहा? भाई! मन्द राग है। राग है न? राग का अर्थ माया और लोभ। द्वेष का अर्थ क्रोध और मान। सब ... दाह कहा। परन्तु शान्ति की खबर नहीं न। 'समामृत पीजिये।' तो यह (राग) समामृत है? मुश्किल से आये बहुत समय से। अम्बला आये थे अम्बला। धुजते हैं। कमजोरी... भाई! यहाँ बैठ जाओ। हार्ट की व्याधि है। हार्ट की व्याधि बहुत बढ़ गयी है। यह हार्ट की व्याधि है। राग को अपना मानना, वह मिथ्यात्व हार्ट की व्याधि है। आहाहा! उसमें हार्टफेल हो जाता है। राग को अपना मानने में आत्मा का प्राण चला जाता है, नाश होता है। आहाहा!

प्रतिसरण=सम्यक्त्वादि गुणों में प्रेरणा। वह विकल्प शुभराग। समकित ऐसा है, मिथ्यात्व ऐसा है—ऐसे विकल्प उठते हैं न! यह शुभराग जहर का घड़ा है। आहाहा! कठिन बात! समाज को तो यह बात बैठना कठिन। यह राग जहर है, जहर की धारा है। आत्मा अमृत का कुम्भ है और शुद्धपरिणति भी अमृत का कुम्भ है, शुभ परिणति जहर का कुम्भ है। अमृत से विरुद्ध है। पन्नालालजी! ठण्डा हो गया।

मुमुक्षु : दुःख के कुम्भ को अमृत का कुम्भ मान रखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मान रखा है। यहाँ तो अभी अशुभभाव में भी मिठास आ जाती है। आहाहा! पापभाव—हिंसा, झूठ, विषय, भोग, कमाना, पापभाव, उसमें मिठास,

वह तो बड़ा जहर है। उसको छोड़ने को, शुभभाव को छोड़कर अन्तर में जाना, इसलिए बात करते हैं। शुभ छोड़कर अशुभ में आना, स्वच्छन्दी होना, ऐसी बात है नहीं। समझ में आया? वह उसमें है। अरे प्राणी! ऊँचे-ऊँचे क्यों नहीं चढ़ता है? आता है। हाँ, यह। आता है, अभी आयेगा। अभी कलश में आयेगा। ऊँचे-ऊँचे क्यों नहीं चढ़ते? नीचे-नीचे क्यों उतरते हो? हम तो, शुभभाव को जहर बताकर शुद्धोपयोग में आना, वह बताते हैं। शुभ छोड़कर अशुभ करना, ऐसा कहाँ तुझे कहा? नीचे-नीचे क्यों उतर जाते हो? हाँ, है न। आयेगा पीछे। नीचे-नीचे क्यों... ? आयेगा। प्रतिसरण।

परिहार=मिथ्यात्व रागादि दोषों का निवारण। यह भी शुभभाव है। शुभभाव है, हों! जहर। **धारणा=पंच नमस्कारादि मन्त्र,...** यह पंच नमस्कारादि मन्त्र वह शुभभाव, जहर का घड़ा। चिल्लाहट मचाये।

मुमुक्षु : वह तो अनादि मन्त्र है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि मन्त्र का किसने मना किया? अनादि मन्त्र पर है या अपना है? अपना मन्त्र(रूपी) प्रभु तो यहाँ विराजता है। यह पंच परमेष्ठी परद्रव्य है। परद्रव्य का स्मरण शुभराग है। मूलचन्दभाई! कठिन लगे या न लगे? तुम तो सब करके आये हो सब। आहाहा! **पंच नमस्कारादि मन्त्र,...** देखो! यह पंच नमस्कार तो अनादि मन्त्र यथार्थ में है। और दूसरे भी मन्त्र हैं न? ओम जाप, ओम ह्रीं ह्रीं आदि। यह ज्ञानार्णव में आता है। सब मन्त्र जपना, यह विकल्प है। अपना स्वद्रव्य आत्मा का आश्रय छोड़कर परद्रव्य का जाप करना, सब शुभभाव जहर का घड़ा है। आता है तो बताते हैं। नहीं आता है? होता तो है, परन्तु है दुःखरूप और जहर। उसमें तेरी दृष्टि—रुचि नहीं होनी चाहिए, ऐसा कहते हैं। रुचि भगवान आत्मा के प्रति होनी चाहिए। आहाहा!

मुमुक्षु : वह तो चाहे जब कर लेंगे, पहले अभी की बात बताओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अभी की बात करते हैं। क्या है? करना तो यह है। शुभभाव की रुचि छोड़कर निश्चय की रुचि करना, वही करनेयोग्य है। '**णियमेण य जं कज्जं**' यह पहले आ गया है तीसरी गाथा में। नियम से करनेयोग्य हो... देखो! अर्थ।

नियमसार है न! तीसरी गाथा है। यह तो आ गया। यहाँ तो बहुत वर्ष से चलता है। तीसरी गाथा '**णियमेण य जं कज्जं**' पृष्ठ सात। '**णियमेण य जं कज्जं तं णियमं णाणदंसणचरित्तं**' नियम से करनेयोग्य हो तो भगवान आत्मा का सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र, बस। तीसरी गाथा में लिया। समझ में आया?

धारणा=प्रतिमा आदि बाह्य द्रव्यों के आलम्बन द्वारा चित्त को स्थिर करना। भगवान का लक्ष्य रखकर प्रतिमा, यात्रा आदि में स्थिर करना, वह शुभभाव है। यात्रा का भाव शुभभाव है। ऐ मलूकचन्दजी! है या नहीं वकीलजी?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें है तो क्या है? भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। उनका तो तीसरे नम्बर पर नाम है। 'मंगलं कुन्दकुन्दार्यो।' भगवान कहे या कुन्दकुन्दाचार्य कहे—दोनों एक ही बात है। समझ में आया? यह सब शुभभाव है। दूसरे चार बोल हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल १२, मंगलवार, दिनांक - ३-८-१९७१
गाथा - ९२, श्लोक-१२३, प्रवचन-८४

नियमसार सिद्धान्तशास्त्र है, परमार्थ प्रतिक्रमण अधिकार। परमार्थ अर्थात् सच्चा प्रतिक्रमण किसे कहते हैं ? वह बात आ गयी है पहले। अपना आत्मा शुद्ध आनन्द और ज्ञानमूर्ति है। उसके आश्रय से जो एकाग्रता होती है, उसका नाम स्वद्रव्याश्रित धर्मध्यान, निश्चय प्रतिक्रमण कहा जाता है। उस निश्चय प्रतिक्रमण के काल में जब स्वरूप शुद्धोपयोग न हो, तब शुद्ध परिणति हो, परन्तु उसमें जो व्यवहार विकल्प उठते हैं, वह व्यवहार प्रतिक्रमण है, वह विषकुम्भ है। आहाहा! निश्चयसहित हो तो भी गृहस्थ को जितना शुभभाव है, उतना ही जहर है। '**सदव्वादो हु सुग्गई**' '**परदव्वादो दुग्गई**' ऐसा सिद्धान्त है। मोक्षप्राभृत (गाथा १६), अष्टपाहुड़ में। '**सदव्वादो सुग्गई...** अपना आत्मा ज्ञानानन्द सहजानन्दस्वरूप नित्यानन्द '**सदव्वादो**' उसमें एकाग्रता, वह सुगति अर्थात् मुक्ति का कारण है। जितना '**परदव्वादो**' परद्रव्य के ऊपर राग जाता है, वह दुर्गति है, भले स्वर्ग मिले परन्तु वह दुर्गति है। समझ में आया ? वह आया न पहले ? **स्वात्माश्रित ऐसे निश्चयधर्मध्यान तथा निश्चयशुक्लध्यानमय होने से अमृतकुम्भस्वरूप है...** आहाहा! सूक्ष्म बात है। **व्यवहार-उत्तमार्थप्रतिक्रमण व्यवहारधर्मध्यानमय होने से विषकुम्भस्वरूप है।** ...होने से विषकुम्भस्वरूप है। वही अपने चलते हैं आठ बोल। समयसार की गाथा ३०६। नीचे है न ? प्रतिक्रमण। चार बोल आ गये हैं कल।

प्रतिक्रमण=किये हुए दोषों का निराकरण करना। यह शुभराग है, शुभविकल्प है। यह जहर का घड़ा है। भगवान आत्मा अमृत का कुम्भ है। आहाहा! परमात्मा निजस्वरूप शुद्ध आनन्द, उसके आश्रय में एकाग्रता जितनी होती है, उतना सच्चा प्रतिक्रमण और सच्चा धर्म कहने में आता है। राग आता है प्रतिक्रमण का व्यवहार, हो, परन्तु है शुभराग जहर। ऐसा तो कहते हैं न! आज मणिभाई कहते थे न, सोना की बेड़ी... यह तो सुना था। पाप और पुण्य... पाप लोहे की बेड़ी, पुण्य सोने की बेड़ी,

ऐसा तो कहते थे परन्तु स्पष्ट नहीं करते थे कि यह पुण्य शुभभाव, यह दुःखरूप है। सोने की बेड़ी... चले न... स्वर्ण की बेड़ी, परन्तु दोनों ही कैद में बन्धन का कारण है।

मुमुक्षु : स्वर्ण की बेड़ी का टुकड़ा दें तो बहुत रुपया आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं आवे। कैद में जायेगा और मर जायेगा। स्वर्ण की बेड़ी की बात है यहाँ तो। स्वर्ण से भी बँधते हैं और लोहे से भी बँधते हैं, यह बात यहाँ पर है। टुकड़ा कहाँ इसके बाप का था? सरकार ने सोने की बेड़ी डाली हो। यहाँ तो कहते हैं कि निश्चय आत्मा का सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञानसहित, स्वरूप की आंशिक स्थिरतासहित जो शुभभाव आता है प्रतिक्रमण का, वह शुभभाव विष का घड़ा है।

प्रतिसरण=सम्यक्त्वादि गुणों में प्रेरणा। ओहो! मैं शुद्ध हूँ, आनन्द हूँ—ऐसा स्वद्रव्याश्रित की दृष्टि में विकल्प उत्पन्न होना। ऐसा मैं हूँ, ऐसा मैं, निश्चय सम्यग्दर्शन का विषय द्रव्य है, ऐसा विकल्प उठना, वह शुभभाव भी जहर का घड़ा है। आहाहा!

मुमुक्षु : सम्यग्दृष्टि को ऐसा विकल्प....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ सम्यग्दृष्टि की बात है। वह भी जहर है। मिथ्यादृष्टि को तो है ही क्या? बस, अन्तर भगवान आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप अमृत का सागर... अमृत का सागर प्रभु, उसका अन्तर आश्रय करके निर्विकल्पता जितनी उत्पन्न हो, उतना सच्चा धर्म है। उसके साथ में जितना विकल्प उठता है, वह व्यवहारधर्म, व्यवहारनय-आश्रित जहरकुम्भ है। परन्तु दो नय है तो दोनों का फल भी भिन्न होता है या नहीं? निश्चय के आश्रय से उत्पन्न हो तो अमृत है, व्यवहार के आश्रय से, पर के आश्रय से उत्पन्न हो, वह जहर है। सीधी बात है।

मुमुक्षु : जिसे स्वभाव का आनन्द आया नहीं उसे?

पूज्य गुरुदेवश्री : समाप्त हुआ। कहते हैं कि कुछ है नहीं। अकेला दुःख है। वह कहेंगे।

परिहार=मिथ्यात्व रागादि दोषों का निवारण। कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र की मान्यता छोड़ना, वह मैं छोड़ता हूँ—ऐसा विकल्प-शुभराग, वह भी व्यवहार है। आहाहा! कहो, मिथ्यारागादि परिहार।

धारणा=पंच नमस्कारादि मन्त्र... की धारणा, जपना अन्दर। 'णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आईरियाणं...' ऐसा विकल्प शुभराग। आहाहा! जिसको अपने आत्मा का निश्चय आश्रय हुआ है... सम्यग्दर्शन की प्राप्ति, चैतन्य भगवान पूर्ण स्वरूप के अवलम्बन से, आश्रय से, आधार से जो अन्तर्मुखदृष्टि होकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ है, उसको भी ऐसा शुभराग जो है... आहाहा! तो फिर करना क्या? मन्दिर-बन्दिर किसलिए करना? प्रतिमा किसलिए स्थापन करना?

मुमुक्षु : बाबूभाई तो कराते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : देखो! यह बाबूभाई बड़ा समवसरण बनाते हैं। तीन लाख का समवसरण बनाते हैं। यहाँ हमारे रामजीभाई बनाते नहीं? रामजीभाई बनाते हैं न! रामजीभाई प्रमुख... यह बारह लाख का मकान (मन्दिर) होता है, देखो! परमागम (मन्दिर)। कौन बनाता है? ऐसा हो।

मुमुक्षु : आपने कहा कि बनाते हैं और फिर नहीं....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह क्या करे? बोलने की भाषा ही ऐसी है। भाषा जड़ है, उससे काम लेना। काम कौन ले? आहाहा!

कहते हैं, **पंच नमस्कारादि मन्त्र,...** जितने मन्त्र हैं, सब शुभभाव है, लो। आहाहा! भक्तामर स्तोत्र आता है या नहीं? सवेरे भक्तामर गिने, उसको ऐसे-ऐसे लिखे। अपने को कपड़ा मिले, आहार मिले, शरीर ठीक रहे, भक्तामर गिनो। वह तो पापभाव है। समझ में आया? परन्तु यहाँ तो निश्चयस्वभाव के आश्रयपूर्वक मन्त्र जपते हैं 'भक्तामर प्रणित मौलि मणि प्रभाणां...' तो कहते हैं कि शुभराग है। उसमें इच्छा नहीं कोई कि उसका मुझे फल मिले या मुझे अनुकूलता मिले। तो भी शुभराग आया, वह जहर है, जहर का घड़ा है। आहाहा!

मुमुक्षु : .... महाराज! हमें भक्तामर का पाठ करना या नहीं करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह इतना विकल्प आता है। करना, पाठ-पाठ करने की बात नहीं। पाठ तो जड़ है।

मुमुक्षु : क्या राग करने का करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भक्तामर सवेरे का करते होंगे इसलिए। अब क्या करना हमारे? आहाहा! हो, परन्तु उसको दु:खरूप और जहर जानना, हेय जानना। उपादेय तो एक अपना निर्विकल्प आनन्दकन्द प्रभु है। 'लाख बात की बात निश्चय उर आणो..' आता है या नहीं छहढाला में? 'तोरि सकल जगत द्वंद्व-फंद आतम उर ध्यावो।' छहढाला में ऐसा आया है। इसको तो बहुतों ने कण्ठस्थ किया है। 'जगत द्वंद्व-फंद...' द्वंद्व—दो। यह शुभ और अशुभ—दोनों जगत द्वंद्व-फंद है। आहाहा! वह तो सच्ची बात रखी अनादि की। यह कोई नयी बात है? अनादि-अनन्त महाविदेह में, भरत में, ऐरावत में जितने तीर्थंकर अनन्त हुए, वर्तमान में हैं, भविष्य में होंगे, यही बात करते हैं। उनके पास जाओ तो भी वही बात है। समझ में आया? आहाहा!

प्रतिमा आदि बाह्य द्रव्यों के आलम्बन द्वारा चित्त को स्थिर करना। वे कहते हैं, देखो! तुम्हारे लिये लिखा है। प्रतिमा में (चित्त) स्थिर करना, यह राग है, जहर है; इसलिए हम प्रतिमा-ब्रतिमा मानते नहीं। यह तो अशुभभाव हुआ। यह प्रतिमा है, वह (स्थापना) निक्षेप है। ऐसे न माने तो मिथ्यात्व है। समझ में आया? और उससे धर्म होता है, ऐसा माने तो मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में आया? प्रतिमा अनादि है। स्वर्ग में शाश्वत् प्रतिमा है। इन्द्र भी नन्दीश्वरद्वीपादि में नहीं जाते हैं? रत्नप्रतिमा है और वहाँ नाचते हैं इन्द्र एक भवतारी, क्षायिक समकिती... इन्द्र-इन्द्राणी—शकेन्द्र और उसकी शचि पत्नी दोनों एकावतारी—एक भवतारी हैं। नन्दीश्वरद्वीप में कार्तिक, अषाढ़ और फाल्गुन (महीने में) आठ-आठ दिन जाते हैं न! वह भाव होता है, परन्तु अन्तर में जानते हैं कि वह हेय है।

मुमुक्षु : हेय कहो वहाँ तक दिक्कत नहीं, परन्तु विषकुम्भ कहो....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह तो जहर का घड़ा कहो या हेय कहो। हेय किसलिए कहते हैं? अमृत हो तो हेय होता है? आहाहा! होता अवश्य है, परन्तु वह हेय समकिती जानते हैं। और ऐसा शुभभाव प्रतिमा वन्दन आदि का नहीं आता तो वह भी मिथ्यादृष्टि है, क्योंकि वह प्रतिमा आदि को मानता नहीं और वस्तु की स्थिति अनादि ऐसी है। ऐई!

मुमुक्षु : मानना या नहीं मानना?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रतिमा है, व्यवहार है, शुभभाव है—ऐसा न माने तो मिथ्यादृष्टि है और शुभभाव से, प्रतिमा से धर्म होता है—ऐसा माने तो मिथ्यादृष्टि है। ऐसी बात है, दो बातें हैं। आहाहा! समझ में आया?

वस्तु जैसी है, ऐसी न माने तो विपरीत मान्यता है और राग है, उसको धर्म माने तो भी तत्त्व से विपरीत (मान्यता) हुई, आस्रव में धर्म माना, वह भी तत्त्व से विरुद्ध है और सर्वज्ञ परमात्मा के विरह में... अरे! विरह न हो तो भी महाविदेह में भी प्रतिमा, मन्दिर है। शाश्वत् है देव में। आता है या नहीं? भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष, वैमानिक सबमें शाश्वत् मन्दिर हैं, मणिरत्न की प्रतिमा हैं। इन्द्र समकिती भी जिसको पूजते हैं। जब उपजते हैं तो पहले वही याद आता है समकिती को। ओहो! मेरे शुभ अपराध से मेरा यहाँ जन्म हुआ। भगवान की प्रतिमा, मन्दिर कहाँ है? पहले उनको नमता है। तो देव कहते हैं, अन्नदाता! यहाँ प्रतिमा, मन्दिर है, पधारो। तब पूजन करने जाते हैं। देह की क्रिया तो देह से हो, परन्तु ऐसा शुभभाव आये बिना नहीं रहता। परन्तु समकिती जानते हैं कि वह हेय है। धन्नालालजी! दोनों बातें। कहो, बाह्य के अवलम्बन द्वारा चित्त को स्थिर करना, वह भी शुभभाव है।

मुमुक्षु : दोनों बात मानने से.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से अमृतकुम्भ का अर्थ क्या? व्यवहार से अमृतकुम्भ ही है वह। क्या? और व्यवहार का अर्थ क्या? यहाँ अमृतकुम्भ जो निश्चय प्रगट हुआ है, उसके निमित्त में आरोप दिया कि अमृतकुम्भ है, नहीं तो है तो जहर। परन्तु निमित्त को आरोप दिया। जैसे अपना स्वभाव शुद्ध चैतन्य के आश्रय से निश्चय सम्यग्दर्शन हुआ, साथ में देव-गुरु की श्रद्धा के राग को व्यवहार समकित कहते हैं। समकित है वह? वह तो राग है। यहाँ का उसको आरोप दिया। 'है नहीं', उसको कहना, इसका नाम व्यवहार है। है, ऐसा मानना इसका नाम निश्चय है। तो व्यवहार अमृतकुम्भ ही कहा है।

यहाँ तो निश्चय का अर्थ है। निश्चय अपना स्वभाव अमृतस्वरूप भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का सागर आत्मा है, ऐसी अन्तर में दृष्टि होकर जितनी शुद्धता प्रगट होती है, उतना तो अमृत है। परन्तु साथ में शुभराग आ गया, उसको भी व्यवहार अमृत... व्यवहार अमृत कहते हैं। निश्चय से जहर कहते हैं। इसलिए अमृत हो जाये? व्यवहार

समकित कहा तो समकित व्यवहार है? वह तो राग है। पंच महाव्रत को व्यवहार चारित्र कहा, वह चारित्र है? वह तो निश्चय स्वरूप का आश्रय करके अमृत की लहर उठी है अन्दर में प्रचुर स्वसंवेदन, उसमें जो पंच महाव्रत का विकल्प आया, उसको व्यवहारचारित्र का आरोप दिया। व्यवहारचारित्र कहो या निश्चय अचारित्र कहो। आहाहा! भाई! यह तो मार्ग है, भाई! यह कोई किसी की कल्पना की बात नहीं है। उसे जन्म-मरण से छूटना हो तो स्वद्रव्य के आश्रय बिना कभी नहीं छूटेगा। समझ में आया? वह कहते हैं। जरा कड़क तो लगे भैया! दृष्टान्त आचार्य-मुनि ने दिया है।

निवृत्ति=बाह्य विषयकषायादि इच्छा में वर्तते हुए चित्त को मोड़ना। चित्त को पीछे मोड़ना, वह भी शुभ है। वापस कहते हैं? क्या कहते हैं? पीछे हटाना। अशुभ से पीछे हटना, वह भी शुभ है। आहाहा! शुभ-अशुभ दोनों से हटकर स्वद्रव्य का आश्रय लेना, वह अमृत है। आहाहा! अरे भगवान! दु:खी तो अनादि से है न! राग को दु:ख का कारण कहा न! कल आया था न तुम्हारे? ७२ गाथा, तीसरा बोल। अशुचि, विपरीत, दु:ख कारणं। आनन्द का कारण है राग? आहाहा! वह तो यहाँ कहते हैं, शुभराग विषकुम्भ है। अकेला जहर नहीं कहा, जहर का घड़ा कहा। आहाहा! सन्तों की वाणी सर्वज्ञ के अनुसारिणी। आहाहा! ऐसी बात है। अन्तर में जँचनी चाहिए, भाई! यह कहीं बोले हो, ऐसा नहीं। आहाहा!

भगवान आत्मा शरीर और राग से रहित, रजकण और राग दोनों से रहित चैतन्यमूर्ति प्रभु है, ऐसी दृष्टि अन्तर में जमनी चाहिए, तो वह सम्यग्दर्शन है और उसमें स्थिर नहीं हो सके तो अशुभ को टालने में ऐसा शुभभाव आये बिना रहता नहीं। ऐसा नहीं कहते हैं... आगे कहेंगे अभी, कि निश्चय भी नहीं है तो व्यवहार शुभ छोड़कर अकेला पाप करना, ऐसा नहीं कहा है। समझ में आया? निश्चय भी नहीं और शुभ व्यवहार भी नहीं निश्चयसहित, तो अकेला अशुभ पाप करना? ऐसा तो है ही नहीं।

मुमुक्षु : शुभ को छोड़ने का कहा और पाप करने का कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभभाव छुड़ाने को जहर कहा, तो अशुभ करने को कहा? पाप करने को कहा? स्वच्छन्द होने को कहा? आगे बढ़ने के लिये (कहा है)। आयेगा, अभी वह कलश आयेगा। अभी आयेगा। यहाँ तो जैसा है, वैसा होना चाहिए भाई!

आहाहा! आगे-पीछे थोड़ा भी फेरफार वीतरागमार्ग में नहीं चलता। आहाहा! आँख में कण घुसा हो, खटक... खटक होती है, छोटी भी कणी हो तो। इसी प्रकार शुभराग, वह शान्ति में खटक है। समझ में आया?

निन्दा=आत्मसाक्षी से दोषों का प्रगट करना। वह भी शुभभाव है। आहाहा! गजब बात है। वीतरागमार्ग है, भाई! और चारों (अनुयोगों के) शास्त्र का सार—तात्पर्य वीतरागता है। पंचास्तिकाय में १७२ गाथा में कहा कि चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है। वीतरागता कब होती है? पर की उपेक्षा और स्व की अपेक्षा। त्रिकाली आनन्दकन्द की अपेक्षा और भेद तथा राग की उपेक्षा हो, तब वीतरागता होती है। आहाहा! समझ में आया? **निन्दा=आत्मसाक्षी से दोषों का प्रगट करना।**

गर्हा=गुरुसाक्षी से दोषों का प्रगट करना। यह भी शुभ विकल्प है।

शुद्धि=दोष हो जाने पर प्रायश्चित्त लेकर विशुद्धि करना। यह भी शुभराग है। आहाहा! अब देखो!

और इसी प्रकार श्री समयसार की (अमृतचन्द्राचार्यदेवकृत आत्मख्याति नामक) टीका में (१८९वें श्लोक द्वारा) कहा है कि: आया देखो!

यत्र प्रतिक्रमण-मेव विषं प्रणीतं,
तत्राप्रतिक्रमणमेव सुधा कुतः स्यात्।
तत्किं प्रमाद्यति जनः प्रपतन्नधोऽधः,
किन्नोर्ध्वमूर्ध्वमधिरोहति निष्प्रमादः॥

आहाहा! **श्लोकार्थ : (अरे! भाई,) जहाँ प्रतिक्रमण को ही विष कहा है,...** जहाँ शुभभाव को जहर कहा। **वहाँ अप्रतिक्रमण**—पापभाव **अमृत कहाँ से होगा?** ऐसा कहते हैं। अप्रतिक्रमण अर्थात् पापभाव। वह तीसरी प्रतिक्रमणरहित (भूमि) वह नहीं। प्रतिक्रमण (और) अप्रतिक्रमण रहित (ऐसा) अप्रतिक्रमण—आत्मा की शुद्धता, वह नहीं। यहाँ तो प्रतिक्रमण अर्थात् शुभभाव, ज्ञानी का शुभभाव भी जहाँ जहर कहा, वहाँ अप्रतिक्रमण (-पापभाव) अमृत कहाँ से होगा? वहाँ पापभाव, हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोगवासना, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ—ऐसा पापभाव कैसे अमृत होगा? वह

तो बड़ा जहर है। आहाहा! शुभभाव मन्द जहर है, अशुभभाव तीव्र जहर है। हलाहल जहर है। अरे भाई! इस देह छूटने के काल में तुझे शरण हो तो आत्मा है, दूसरा कोई शरण है ही नहीं। भगवान... भगवान करेगा तो भी शुभभाव है। आहाहा! और पूर्व में शुभभाव बहुत किया हो (और) उससे पुण्यबन्ध—रजकण बँधा हो तो उसमें शरण क्या आया? समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : वस्तु जाने बिना शान्ति....

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु की दृष्टि हुए बिना, भान हुए बिना शान्ति कहाँ से आती है? शान्ति कहीं बाहर से आती है? शान्ति का सागर परमात्मा, जिसके आश्रय से, एकाग्रता से शान्ति प्रगट होती है, शान्ति का अंकुर फूटता है। आहाहा! ऐसी शान्ति में जहाँ शुभभाव को भी जहर कहा, वहाँ अशुभभाव अमृत कैसे होगा? आहाहा! तो शुभ छोड़कर अशुभ करना, ऐसा नहीं कहा यहाँ। समझ में आया?

अरे! **तो फिर मनुष्य नीचे-नीचे गिरते हुए प्रमादी क्यों होते हैं?** अरे! हम तो आत्मा के निश्चय स्वभाव के भान में शुभभाव को जहर कहकर स्वरूप में ठहरने को कहते हैं। समझ में आया? भगवान आत्मा अन्तर्मुख साक्षात् परमात्मस्वरूप ही है, उसका—स्वभाव का अनुभव हुआ, तो शुभ को जहर कहने (का अर्थ) उसे छोड़कर स्वरूप में लीन होना, वह हम कहते हैं। शुभ को छोड़कर अशुभ में आना, ऐसा है? ऐसा कहाँ आया तेरे स्वच्छन्द में? समझ में आया? आहाहा! ओहो! **वहाँ अप्रतिक्रमण अमृत कहाँ से होगा?** उसमें यह अर्थ किया है न? 'अप्रतिक्रमण सुधासार' यह अर्थ किया है। अप्रतिक्रमण, यह तीसरी चीज़ है। जो शुभ है, वह जहर है तो शुभ से रहित अन्दर स्थिरता करना, यह अप्रतिक्रमण कहा, निश्चय अप्रतिक्रमण, यह सुधा '**सुधा कुतः**' संस्कृत में ऐसा शब्द लिया है।

यह प्रश्न किया था भाई टीकमगढ़वाले पण्डितजी ने। गुजर गये न वे? ठाकुर। उसके साथ चर्चा हुई थी तो उसने कहा था। टीका में भी ऐसा अर्थ है। '**सुधा कुतः**' वहाँ ऐसे लेना। सुधा—अमृत है। कौन? यह शुभभावरहित अपने स्वरूप में ठहरना तीसरा अप्रतिक्रमण। अप्रतिक्रमण के दो अर्थ हैं—एक शुभ-अशुभ रहित होकर अपने

स्वरूप में (जमना) यह अप्रतिक्रमण और एक अशुभभाव करना, यह अप्रतिक्रमण। समझ में आया? यहाँ अप्रतिक्रमण, शुभ-अशुभ से रहित जो अप्रतिक्रमण है, वह तो अमृत का घड़ा है। **'सुधा कुतः'** ऐसा आता है संस्कृत में। समझ में आया?

यहाँ तीसरी (भूमि की) बात है। ऐसा कहा कि अरे रे प्रभु! तेरी शुद्ध चीज़ स्वद्रव्य के आश्रय से परमात्मा की जहाँ भेंट होती है, अपना परमात्मा, हों! पण्डितजी! आहाहा! भगवान! तेरी महाचीज़ है न अन्दर, उसकी जहाँ भेंट—भगवान का साक्षात्कार होता है, वहाँ तो अमृत ही बरसता है। वह तो अमृत ही है। समझ में आया? परन्तु बीच में शुभभाव आता है, वह जहर है। उसे छोड़कर अन्दर जम जाना, ऊँचे जाना—ऐसा हम कहते हैं। नीचे उतर जाना, ऐसा कहते हैं तुझे? समझ में आया? अरेरे! **फिर मनुष्य नीचे-नीचे गिरते हुए प्रमादी क्यों होते हैं?** अशुभभाव में क्यों आते हैं? ऐसा कहते हैं। हम तो शुभराग को जहर कहकर (ऊपर) चढ़ाना चाहते हैं—अन्दर में अनुभव में जाने को कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : शुभभाव हो और जरा पड़ जाये तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : पड़ जाये तो... सम्यग्दर्शन हो तो आनन्द है। सम्यग्दर्शन हो तो पण्डितमरण है, उस अपेक्षा से है। राग हो। समझ में आया? और सम्यग्दर्शन भी नहीं और अकेला शुभ है तो अकेला जहर है। यह तो अनन्त बार हुआ, दिगम्बर जैन साधु होकर नौवें ग्रैवेयक गया। २८ मूलगुण (पालन किये), चमड़ी उतारकर नमक छिड़के दे (तो भी) क्रोध नहीं किया। वह शुभभाव था। अपने द्रव्य के आश्रय बिना शुद्धता या धर्म होता नहीं। समझ में आया?

'सद्दव्वादो हु सुग्गई' ऐसा शब्द लिया है अष्टपाहुड़ में। समझ में आया? नया अष्टपाहुड़ आया है, हों! अष्टपाहुड़ है न, मोक्षपाहुड़ है, उसमें तो मोक्ष अधिकार ऐसा ही लिया है। आहाहा! **'सद्दव्वादो'** कहाँ आता है? १६वीं (गाथा)। पहले से आता है। **'परदव्वरओ बज्झजि विरओ मुच्चेइ विविहकम्मेहिं। एसो जिणउवदेसो... परदव्वरओ बज्झजि'** परद्रव्य के लक्ष्य से तो बन्धन ही होता है। आहाहा! १३वीं गाथा है।

परदव्वरओ बज्झजि विरओ मुच्चेइ विविहकम्मेहिं।
एसो जिणउवदेसो समासदो बंधमुक्खस्स॥१३॥

बन्ध-मोक्ष का संक्षेप में भगवान का यह कथन है। '**सद्दव्वरओ सवणो सम्माइट्ठी हवेइ साहू।**' देखो! '**सद्दव्वरओ सवणो**' स्वद्रव्य में रमण करनेवाला श्रमण वह '**सम्माइट्ठी**' है। आहाहा! भगवान कहते हैं कि हमारी ओर का लक्ष्य, हमारा स्मरण, वह भी पुण्यबन्ध का कारण है। आहाहा! तीन लोक के नाथ। दूसरा तो कहे, हमको तुम भजो, तुम्हारी मुक्ति होगी, हमारी भक्ति करो, हमको जिमाओ, तुम्हारी (मुक्ति होगी)। यहाँ तो कहते हैं कि हमको—मुनि को (आहार दो) तो भी शुभभाव है। भगवान को तो आहार है नहीं। सच्चे भावलिंगी मुनि की भक्ति, भोजन देना, वह शुभभाव है, धर्म नहीं। क्योंकि परद्रव्य है। वह परद्रव्य का लक्ष्य है। आहाहा! ऐ मणिभाई! मार्ग तो ऐसा है। आहाहा!

कहते हैं, '**जो पुण परदव्वरओ मिच्छादिट्ठी हवेई सो साहू**' देखो! इसके सामने। जो कोई परद्रव्य में लीन है, एकाग्र है, मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! तीर्थंकर कहते हैं, हमारे प्रति एकाग्रता, अपनी दृष्टि छोड़कर एकाग्र हो (तो) मिथ्यादृष्टि है। ऐ पन्नालालजी! बात ऐसी है। आहाहा! १६वीं गाथा।

परदव्वादो दुग्गइ सद्दव्वादो हु सुग्गई होई।
अय णाऊण सदव्वे कुणह रई विरई इयरम्मि॥१६॥

इतर परद्रव्य से विरक्त कर, तेरे घर में लीन हो भगवान! आहाहा! मोक्ष अधिकार। गजब बात! कुन्दकुन्दाचार्य तो ऐसा स्पष्ट (कहते हैं)। समाज की समानता रहेगी या नहीं, वह कोई लक्ष्य में नहीं। मार्ग यह है। समाज यह मानेगा या नहीं, समाज पक्ष में रहेगा या नहीं—(उसकी परवाह नहीं)। ऐ नन्दकिशोरजी! आहाहा! भगवान! मार्ग ऐसा है। तीन काल-तीन लोक में अनादि का ऐसा ही मार्ग चला आता है, यह नया नहीं है। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ...' वह तो तीन काल में एक ही पंथ है। आहाहा! अरे! तेरी प्रभुता तुझे भासित नहीं होती और पामरता के ऊपर तेरी दृष्टि है, वह तो मिथ्यात्वभाव है। आहाहा!

'**णाणविग्गहं**' देखो! कोई पुस्तक... १८वीं गाथा है, देखो! यहाँ। '**दुट्ठट्ठकम्मरहियं अणोवमं णाणविग्गहं णिच्चं**' आत्मा ज्ञानविग्रह है—ज्ञानशरीर उसका है। 'शरीर आद्यम् खलु धर्म साधनं...' सवेरे पूछते थे। शरीर, यह शरीर नहीं। वहाँ तो निमित्त का कथन है। शरीर की बात हो, निमित्त की बात है। यह तो '**णाणविग्गहं**' १८वीं गाथा है।

ज्ञानरूपी शरीर जिसका अन्दर में है, यह ज्ञानशरीर ही साधन है। समझ में आया? ओहोहो! अष्टपाहुड़ कुन्दकुन्दाचार्य... अलौकिक बात है। समझ में आया?

यहाँ मूल श्लोक सब आयेंगे उसमें—परमागम (मन्दिर के) संगमरमर में। मूल श्लोक आयेंगे। समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय के मूल श्लोक। मूल श्लोक आयेंगे, अष्टपाहुड़ टीका नहीं। टीका नहीं। टीका जरा कल कहा था न, वकीलजी! यह यहाँ... नहीं हुआ। क्या आया? उसने जरा भाषा ऐसी लिखी है। वहाँ ऐसा लिया है टीका में (भट्टारक श्रुतसागर कृत संस्कृत टीका में) दर्शनपाहुड़ में कि कोई प्रतिमा को पूजे नहीं, माने नहीं, शासन देव को माने नहीं, समझे? तो उसको जूते में विष्टा लगाकर मारना, (तो) पापं नास्ति। कैसी बात? प्रभु! वीतरागमार्ग में ऐसी भाषा होती है? नन्दकिशोरजी! दोपहर को बतायेंगे। अभी पुस्तक नहीं है। टीका संस्कृत में है, सब हमने तो देखा है न! एक-एक सारा, सबमें चिह्न भी कर दिया है। षट्पाहुड़, उसकी श्रुतसागर टीका है, वह टीका मान्य नहीं है। वह टीका यहाँ नहीं है।

यहाँ तो अमृत की अकेली भगवान की शैली, हों! भगवान के मुख से निकला, वह शास्त्र है सब। अमृतचन्द्राचार्य परमात्मा जैसे महामुनि थे, उनकी टीका और यह पद्मप्रभमलधारिदेव। आहाहा! गजब पंथ! मुनि छठवें-सातवें (गुणस्थान में) झूलनेवाले। आहाहा! धन्य अवतार! वह क्षेत्र, काल, भाव... आहाहा! ऐसे मुहामुनि की टीका देखो तो अमृत का सागर है। किसी व्यक्ति के प्रति द्वेष नहीं होना चाहिए। उल्टी मान्यता हो तो जवाबदारी उसको है। उसको मारना, जूता में विष्टा लगाकर... ऐसा पाठ है। ऐसे द्वेष होता है? यह तो वीतरागमार्ग है। वह तो इन्द्रों को खबर नहीं कि यह सब उल्टा है। क्यों मारने को आते नहीं? इन्द्र तो एकावतारी हैं, क्षायिक समकिती हैं। विरोधपंथ निकला दो-तीन... लो! कोई आया इन्द्र? और किसी को मारा?

पहले शुरुआत में हुआ था। ऋषभदेव भगवान के साथ जो चार हजार (दीक्षित) हुए। वे जब भ्रष्ट होने लगे, तब देव आये कि इस वेश में दूसरा नहीं होगा, कन्दमूल नहीं खाना। वेश बदल दो। चार हजार साधु बिगड़ गये। क्योंकि उसके...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहते हैं ? चौथे काल में क्या है ? चौथे काल में भी ऐसा हुआ। श्वेताम्बर तो अभी हुए, भगवान के ६०० वर्ष बाद। यह तो भगवान के समय में इतना अन्तर हुआ, वे कन्दमूल खाते थे, वेश नग्न था। देव कहे—नहीं बनेगा, छोड़ दो। वह काल अच्छा था तो भी ऐसा हुआ। यह तो भाई ! ... पड़ गये, खण्ड पड़ गये। आहाहा ! इन्द्रों को खबर है। तीन ज्ञान हैं, क्षायिक समकित है, परमात्मा के पास जाते हैं महाविदेह में। पंचम काल की खबर देते हैं लोकपाल देव। शास्त्र में पाठ है। ऐसे चारों दिशा की उनको खबर देते हैं कि यहाँ ऐसा हुआ, ऐसा होता है, ऐसा होता है। क्यों नहीं आते ? क्या आवे ? जिसकी पात्रता ऐसी नहीं तो समझाने पर समझ सकता नहीं। आहाहा !

मुमुक्षु : इन्द्र को केवलज्ञान थोड़े ही है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : इन्द्र को केवलज्ञान होता है ? और कुछ इतनी खबर नहीं। ज्ञान सही। केवलज्ञान तो मनुष्य को होता है। अभी अनजाने हैं न। थोड़ा अभ्यास करो, अभ्यास बराबर। केवलज्ञान तो मनुष्यपने में नग्नमुनि हो, अन्तर्ध्यान में चढ़े, उसको केवलज्ञान होता है। इन्द्र को तो साधुपद भी नहीं, श्रावक भी नहीं। यह दरबार जमींदार है। समझ में आया ? यहाँ तो उसको तीन ज्ञान है, क्षायिक समकित है, पति-पत्नी दोनों को। खबर नहीं है कि पंचम काल में ऐसा चलता है ? आहाहा ! परन्तु जिसका पाप का उदय ऐसा हो और उसका फल आनेवाला हो, उसमें इन्द्र क्या करे ? ओहोहो ! ... विराजते हैं, भगवान की भक्ति करते हैं, महाविदेह में आते हैं... आहाहा ! तो यहाँ भरत-ऐरावत में क्यों नहीं आते ? भाई ! ऐसा पुण्य का उदय नहीं और ऐसा कोई पात्र जीव नहीं कि उसको समझाने से समझेगा। समझ में आया ? नन्दकिशोरजी !

ओहोहो ! हे भाई ! **अप्रमादी होते हुए ऊँचे-ऊँचे क्यों नहीं चढ़ते ?** आहाहा ! हमने तुमको शुभभाव जहर कहा, तो छोड़कर पाप करना, ऐसा कहा तुमको ? वह तो अन्तर में जाने को स्थिरता करने को जैसा स्वरूप है, ऐसा बताया।

और (इसी ९२वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं):— लो, अब स्वयं पद्मप्रभमलधारिदेव (श्लोक कहते हैं)।

आत्मध्याना-दपर-मखिलं घोरसन्सारमूलं,
ध्यानध्येयप्रमुखसुतपः कल्पनामात्ररम्यम्।

बुद्ध्वा धीमान् सहज-परमानन्द-पीयूषपूरे,
निर्मज्जन्तं सहज-परमात्मान-मेकं प्रपेदे ॥१२३॥

आहाहा! **श्लोकार्थ : आत्मध्यान के अतिरिक्त...** भगवान सच्चिदानन्द प्रभु सत्-शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का ध्यान—उसकी एकाग्रता, स्व-स्वभावस्वरूप भगवान आत्मा का ध्यान (अर्थात्) ध्येय बनाकर एकाग्र होना, उससे अतिरिक्त—उससे दूसरी कोई भी चीज़ **अन्य सब घोर संसार का मूल है,...** शुभ और अशुभ दोनों भाव घोर संसार के मूल हैं। है? अरेरे! लोग ऐसा कहते हैं कि सोनगढ़ से यह बात निकली है। एकान्त... एकान्त... अरे! परन्तु यह कौन कहता है? भगवान! अरे! समझ में आया? यह तो आचार्य मुनि-महामुनि हैं। आगे कहेंगे। हमारे मुख में से परमागम झरता है, ऐसा कहेंगे। मुनि भावलिंगी सन्त, आहाहा! धन्य अवतार है। चारित्रसहित छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान। जिन्होंने अवतार सफल किया। आहाहा! जिन्होंने मोक्ष का मण्डप डाला। आहाहा!

चारित्र अर्थात् क्या! गजब बात है। सम्यग्दर्शनसहित स्वरूप की रमणता, यह चारित्र तो धन्य अवतार है, सफल अवतार है। जो भव होकर भव का अभाव कर दिया, आहाहा! इस बात की बात क्या! इन्द्र, गणधरों को पूज्य है। गणधर भी शास्त्र रचते हैं, तब 'णमो लोए सव्व साहूणं' कहते हैं या नहीं? या साधु को निकाल देते हैं? बड़े हैं न गणधर? चार ज्ञान (के धारक), चौदह पूर्व की रचना एक अन्तर्मुहूर्त में हुई, तो भी कोई सन्त सच्चे छठवें-सातवें गुणस्थानवाले, उनको गणधर कहते हैं 'णमो लोए सव्व साहूणं।' इस लोक में अपने आनन्दस्वरूप के साधन की क्रीड़ा में रमते हैं, उनके चरण में मेरा नमस्कार। आहाहा!

जिसको भगवान के वजीर, भगवान राजा, गौतम दीवान—प्रधान, वह दीवान अंजलि देते हैं। आहाहा! हे सन्त! तेरे चरणकमल में मेरा नमस्कार है। सीधा तो नमस्कार बाह्य न करे। बड़ा साधु है तो छोटे को नमस्कार न करे। परन्तु पंच नवकार में (करे)। दो घड़ी पहले भी छठवें-सातवें गुणस्थान में आत्मा के स्वसंवेदन आनन्द में आ गया हो और वह अरबों वर्ष से गणधर(पद) में हो... आहाहा! सेठ! आहाहा! ऐसी चारित्रदशा भगवान! धन्य अवतार! धन्य काल! धन्य भाव! ओहोहो! यह तो करना ही पड़ेगा। इसके बिना कभी मुक्ति नहीं होगी। आहाहा! अकेले सम्यग्दर्शन-ज्ञान से तो मुक्ति नहीं

होगी। साथ में चारित्र की रमणता प्राप्त किये बिना कभी केवलज्ञान नहीं होगा। आहाहा!

उसकी चारित्र की... चारित्र की जाति का चारित्र। अकेला पंच महाव्रत ले लिया और चारित्र है, धूल भी नहीं। पन्नालालजी! आहाहा! जिसको मुक्ति का सुख लेना हो, उसको ऐसी चारित्र की रमणता लिये बिना कभी मुक्ति मिलेगी नहीं। आता है या नहीं? वह अष्टपाहुड में आता है न। तीर्थंकर को ध्रुव मुक्ति है—निश्चय से मुक्ति है, तो भी जब तक गृहस्थाश्रम छोड़कर चारित्र अंगीकार नहीं करेंगे, तब तक उनको भी मुक्ति नहीं होगी। अष्टपाहुड़ में है। '**ध्रुवं तित्थयरे**' निश्चय से तो उनकी मुक्ति इस भव में है (फिर भी) जब तक वस्त्र (सहित) रहते हैं, गृहस्थाश्रम में वस्त्रादि से (सहित) हैं, मुक्ति नहीं होगी। आहाहा! अन्तर में रमणता करेंगे... ऐ नन्दकिशोरजी! बात तो जैसी है, वैसी आती है।

मुमुक्षु : साधु को मानते हैं या नहीं मानते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : साधु को नहीं मानते? आहाहा! धन्य अवतार, बापू! अरे! एकबार तो मैं जंगल में था। यहाँ आगे जंगल में गये थे। अकेला था। अभी साथ में आते हैं, पहले कोई साथ में नहीं आता था। अकेले आगे गये थे। ऐसा विकल्प आया कि अरे! कोई मुनि दर्शन तो दो इस पंचम काल में और आँख में से आँसू (बह गये)। अरे! कोई चारित्रवन्त—साक्षात् जिसको चारित्र है, ऐसे का दर्शन भरत में दुर्लभ हो गया। कोई ऊपर से तो उतरो, ऐसा हो गया। कोई चारण मुनि निकलते हों तो यहाँ आओ तो सही प्रभु! कैसे चारित्रवन्त होते हैं! समझ में आया? ऐसी भावना तो समकिती को होती है। ऐसा नहीं कि चारित्र बिना मुक्ति हो जायेगी हमारी। परन्तु वह चारित्र, यह चारित्र। ब्रह्मचारीजी! यह चारित्र अन्दर! आहाहा!

कहते हैं, अहो! शुभ को जहर कहकर अन्तर में रमणता करने को हम कहते हैं। अरे! तुम अधो... अधो... नीचे क्यों उतरे? क्योंकि वह तो घोर संसार का मूल है। आहाहा! यह पुण्य परिणाम, महाव्रत के परिणाम को घोर संसार का मूल कहा। राग है, उदयभाव स्वयं संसार है। राग, वह संसार है। आहाहा! घोर संसार... यह तो राग है। सारा उदयभाव ही संसार है।

मुमुक्षु : परन्तु घोर विशेषण क्यों प्रयोग किया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह घोर विशेषण है, स्वभाव की अपेक्षा घोर है। अशुभ की अपेक्षा शुभ ठीक है व्यवहार से। शुद्ध की अपेक्षा से तो घोर संसार है, भगवान! आहाहा! अरे! शुभभाव से तीर्थंकर बन जाये, लो! भावतीर्थंकर बन जाये तो इस भव में केवलज्ञान नहीं ले सकेगा। दूसरे भव में नहीं ले सकेगा, तीसरे भव में ले सकेगा। आहाहा! शुभभाव में तीर्थंकरगोत्र बँध गया, समाप्त हो गया, दो भव तो करने ही पड़ेंगे। आहाहा!

देखो! यहाँ पाण्डव। शत्रुंजय (पर) पाँच पाण्डव ध्यान में थे। अतीन्द्रिय आनन्द में रमते थे। उसमें दुर्योधन के भानेज ने आकर लोहे के गहने—लोहे के जेवर (पहनाये)। सहदेव और नकुल को विकल्प आया। मुनि हैं—भावलिंगी सन्त हैं। साधर्मी मेरे भाई और साधु, अरे! उनको क्या (होता) होगा, कैसे होगा ? ऐसा विकल्प आया। सर्वार्थसिद्धि का बन्ध पड़ गया। सर्वार्थसिद्धि। यह शत्रुंजय। शत्रुंजय से पाँच में से तीन मोक्ष में गये, दो सर्वार्थसिद्धि में गये। इतना विकल्प कि यह मुनि महाराज, आहा! मेरे बांधव हैं, साधु हैं। दो भव हो गये। है तो शुभभाव। आहाहा! तीन तो मोक्ष को गये केवलज्ञान (होकर)। क्या होता है... ? अरे! ऐसे सन्त मुनि महा धर्मराजा, भीम और अर्जुन चरमशरीरी। उनको देखकर... अपने भी थे लोहे के गहने। भाई को कैसा होता होगा ? बड़े भाई को। आहाहा! साधर्मीरूप से, हों! इतना विकल्प (हुआ), दो भव हो गये। समझ में आया ? ३३ सागर सर्वार्थसिद्धि में रहना पड़ेगा। आहाहा! संसार... संसार... संसार। वहाँ से निकलकर कहीं राजकुमार होंगे, वे तो आराधक हैं न! वहाँ से मोक्ष जायेंगे। सर्वार्थसिद्धि में एक ही भव होता है। मुनि पद्मप्रभमलधारि मुनिराज कहते हैं... अपनी मस्ती में आकर कहते हैं।

मुमुक्षु : कायम विकल्पवाले को तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प है, वह तो संसारी है। ऐसी बात ही क्या करना ?

आत्मध्यान के अतिरिक्त... भाषा कैसी है ? भगवान आत्मा में एकाग्रता के सिवाय कोई भी विकल्प शुभ-अशुभ हो, **अन्य सब...** दो भाग नहीं कर दिये कि अशुभभाव संसार का मूल है और शुभ संसार का मूल नहीं। यह मुनि को भी शुभभाव

से भव हो गया। आहाहा! ३३ सागर चौथे गुणस्थान में रहना पड़े। आनन्द की अल्पता, राग की (बहुलता)। तीन कषाय का राग है। सर्वार्थसिद्धि में तीन कषाय का राग है। अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानी और संज्वलन। आहाहा! राग दाह... सिंकना पड़े। स्वर्ग में सुख है। धूल भी नहीं सुख। सुख तो भगवान आत्मा में है। उसमें से हटकर ऐसा शुभभाव आया। आहाहा!

पुरुषार्थसिद्धिउपाय में अमृतचन्द्राचार्य महाराज से प्रश्न किया है। महाराज! यह आहारकशरीर और तीर्थंकरगोत्र तो समकिती को ही बँधते हैं। तीर्थंकरगोत्र समकिती को बँधता है, आहारकशरीर मुनि को होता है। तो उन्हें बन्ध का क्या कारण? अपने ज्ञान-दर्शन-चारित्र से बन्ध होता है या नहीं? नहीं, भाई! यह शुभोपयोग का अपराध है। समझ में आया? यह तीर्थंकरगोत्र सम्यग्दृष्टि को ही होता है, परन्तु है वह अपराध। आहारकशरीर भी मुनि को ही बँधता है। आहारकशरीर (निकलता) है न, वह प्रश्न हो तो। परन्तु है अपराध। आहाहा! ऐसा निर्लेप वीतरागमार्ग अन्दर, उसको अनादि काल से रुचा नहीं। कोई राग हो तो लाभ होगा, राग हो तो लाभ होगा, भाई! पुण्य बँधेगा। नन्दकिशोरजी! तो भगवान के पास जायेगा, महाविदेह में जायेगा। पुण्य बँधे तो स्वर्ग में जायेगा और ... जायेगा, लो! आहाहा!

मुमुक्षु : वायदा है वायदा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वायदा, यह वाफळ का वायदा है। वाफल क्या कहते हैं तुम्हारी भाषा में? वाफल काठियावाड़ी भाषा अपनी। वाफल वायदा करे।

मुमुक्षु : बोले और फले नहीं, वह वाफल।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! घोर संसार का मूल है। आहा! अरे! समकिती को, ज्ञानी को भी राग है, वह राग संसार का कारण है। स्वभाव जो है अपना, वह उसको मुक्ति का कारण है। दो धारा है—एक राग-कर्मधारा (और एक) स्वभाव के आश्रय की निर्मल ज्ञानधारा। आहाहा! दो धारा चलती हैं। और एक धारा तो संसार का कारण है। आहाहा! अपने आयेगा, नहीं? मोक्ष (अधिकार) में आ गया, (समयसार) नाटक में। प्रमादी, प्रमादी संसार की ओर झुकते हैं, अप्रमादी आत्मा की

ओर झुकते हैं। ऐसा आया। मोक्ष अधिकार में आ गया। प्रमादी छठवें गुणस्थान में हो, विकल्प... आहाहा! ऐसे झुकते हैं इस ओर। संसारपक्ष है यह राग। आदरणीय नहीं मानते। परन्तु है राग न? अप्रमादी आत्मा में झुकते हैं। समझ में आया? मार्ग ऐसा है, भगवान!

अरे! नियमसार में कहा है न भाई! यह नियमसार है न? पीछे। ऐसे मार्ग की कोई निन्दा करे, ईर्ष्या से निन्दा करे तो तू अभक्ति नहीं करना। ऐसा मार्ग आत्मा... ? ऐसा मार्ग? ईर्ष्या नहीं करना। है न अन्तिम... अन्तिम—आखिर की लाईन है न! आहा! १८६, लो।

ईसाभावेण पुणो केई णिंदंति सुंदरं मग्गं।
तेसिं वयणं सोच्चाऽभत्ति मा कुणह जिणमग्गे॥१८६॥

कुन्दकुन्दाचार्य पुकार करते हैं। लो, ऐसी वीतराग की बात सुनकर... लो, यह बड़ा हो गया, वीतराग... वीतराग... वीतरागभाव... ऐसे वीतरागमार्ग में राग से कुछ लाभ है नहीं? ऐसा कोई ईर्ष्याभाव से '**णिंदंति सुंदरं मग्गं**' ऐसा वीतरागमार्ग की कोई निन्दा करे, '**तेसिं वयणं सोच्चाऽभत्ति**' हे जीव! यह वचन सुनकर '**अभत्ति मा कुणह जिणमग्गे**' वीतरागमार्ग का बहुमान छोड़ना नहीं कि अरे! दुनिया तो... उसको लाखों मानते हैं, करोड़ों मानते हैं, राग से धर्म माननेवाले को करोड़ों मानते हैं। यह मानकर वीतरागमार्ग में तू अभक्ति नहीं करना। आहाहा! समझ में आया? यह राग को (धर्म) मनानेवालों को करोड़ों मानते हैं, हमको तो मानते नहीं, हमारी तो निन्दा करते हैं। भैया! वह (निन्दा) करो (तो) करो, परन्तु तेरी वीतरागभाव में कभी अभक्ति नहीं होनी चाहिए। आहाहा! चाहे तो संख्या थोड़ी हो या ज्यादा हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं है। अकेला होऊँ, परन्तु मार्ग तो यह ही है। समझ में आया? दूसरा साथ में न हो तो अभक्ति नहीं करना। अरे! ऐसे सत्य मार्ग को क्यों लोग नहीं मानते? क्यों नहीं हमारे साथ में आते? यह क्या मार्ग है? मार्ग तो है, वही है भगवान! आहाहा! 'एक होय तीन काल में, परमारथ का पंथ...' यह तो आयेगा। लो, समय हो गया। दूसरा आ गया।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल १३, बुधवार, दिनांक - ४-८-१९७१
श्लोक-१२३-१२४, गाथा-९३, प्रवचन-८५

मुक्ति का मार्ग, उसमें चारित्र अधिकार है। चारित्र के विषय में परमार्थ प्रतिक्रमण का अधिकार है। समझ में आया? सम्यग्दर्शनसहित अपना आत्मा शुद्धात्म—परमात्मस्वरूप, उसके सन्मुख दृष्टि होकर स्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन जो होता है, उस सम्यग्दर्शनपूर्वक और साथ में सम्यग्ज्ञान भी होता है, उस पूर्वक चारित्र कैसा है, उसकी बात चलती है। चारित्र का अन्तर्भेद परमार्थ प्रतिक्रमण। प्रत्याख्यान (आदि) यह सब चारित्र के भेद हैं। यहाँ १२३ कलश चलता है।

कहते हैं, **आत्मध्यान के अतिरिक्त...** भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध आनन्द की एकाग्रता, उसका आश्रय करना, वही सब धर्म है। इसके सिवाय **अन्य सब घोर संसार का मूल है,...** भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय शान्ति अर्थात् वीतरागता अन्दर पड़ी है। ऐसा जो द्रव्यस्वभाव—अपना वस्तुस्वभाव, उसके आश्रय से जो ध्यान होता है, वह धर्मध्यान है, वह मोक्ष का मार्ग है। वस्तु जो अखण्ड अभेद चैतन्यद्रव्य परमात्मस्वरूप ध्रुव है, उसका आश्रय करके जो भाव उत्पन्न हो, वही शुद्धभाव है, वही सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र है। आहाहा! उससे अतिरिक्त—**आत्मध्यान के अतिरिक्त अन्य सब...** चाहे तो पंच महाव्रत का विकल्प हो, गुण-गुणी के भेद का राग हो, अनेक प्रकार की व्यवहार समिति, गुप्ति का शुभराग—यह सब घोर संसार का मूल है। आहाहा! समझ में आया? परमपारिणामिक प्रभु सहज स्वभाव के आश्रय से जो भाव हो, वह एक ही धर्मध्यान और मोक्ष का मार्ग है। पर के लक्ष्य से पंच महाव्रतादि, २८ मूलगुणादि, भक्ति, पूजा आदि का भाव... ऐ पण्डितजी! क्या करना? रात्रि को प्रश्न आया था। होता है, परन्तु वह राग है, भाई! वह संसार का मूल है। भगवान आत्मा मोक्ष का मूल है। पूर्णानन्दस्वरूप, वह मोक्ष का मूल है, राग संसार का मूल है—दो भेद हैं। आहाहा! यह सब घोर संसार का मूल है।

(और) ध्यान-ध्येयादिक सुतप (अर्थात् ध्यान, ध्येय आदि के विकल्पवाला शुभ तप भी)... कहते हैं, व्यवहारचारित्र और व्यवहारमुनिपना **कल्पनामात्र रम्य है...** आहाहा! कल्पनामात्र रम्य कहने में आता है। व्यवहारमोक्षमार्ग कल्पनामात्र रम्य है। ध्यान-ध्येय के भेद पड़ते हैं न! विकल्प उठते हैं। **ध्यान-ध्येयादिक सुतप...** अर्थात् भेद, वह तो व्यवहार है। व्यवहारचारित्र कहो, व्यवहार तप कहो, शुभराग कहो—यह विकल्प है। पाठ है या नहीं? **सुतप**। ऐसा है न? आहाहा! **कल्पनामात्र रम्य है...** 'सुतप' का अर्थ निश्चय अपने स्वभाव के आश्रय से दृष्टि-ज्ञान आदि हुआ है और उस पर्याय में शुभविकल्प का भाव व्यवहारचारित्र का और व्यवहार ध्यान-ध्येय का आता है, वह व्यवहार सुतप कहने में आता है। व्यवहार सुतप, परन्तु है कल्पनामात्र रम्य। आहाहा! समझ में आया?

निजघर में गये बिना जितना परघर के लक्ष्य से उत्पन्न हुआ राग, वह कल्पनामात्र रम्य है। कल्पनामात्र मोक्षमार्ग कहने में आया है। रम्य का अर्थ वह है। कल्पनामात्र मोक्ष का मार्ग कहो या व्यवहार कहो। वह (मोक्षमार्ग) है नहीं। आहाहा! **ऐसा जानकर...** क्या कहा?—कि स्वद्रव्य के आश्रय से जो ध्यान उत्पन्न हो, वही मोक्ष का मार्ग है। परलक्ष्य से पंच महाव्रत, २८ मूलगुण, शास्त्रश्रवण, मनन, चिन्तवन, विकल्प इत्यादि को सुतप व्यवहार से कहा जाता है, परन्तु है अरम्य। आहाहा! समझ में आया? कल्पनामात्र रम्य है। रमनेयोग्य नहीं, ऐसा कहते हैं। उसमें एकाग्र होनेयोग्य नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह तो भाई! अन्तर का मार्ग है। कोई शब्द से, शास्त्र से वह चीज़ नहीं मिलती। वह तो अन्तर से मिलती है। समझ में आया?

ऐसा जानकर धीमान... धी—**(बुद्धिमान पुरुष)... ऐसा जानकर...** बुद्धिमान.. उसको बुद्धिमान कहते हैं। द्रव्य चिदानन्द भगवान अपने आनन्दस्वरूप का आश्रय लेकर ध्यान हुआ, वह मोक्षमार्ग है। विकल्प कल्पनामात्र रम्य है, वह मोक्षमार्ग नहीं। **ऐसा जानकर धीमान...** देखो! यह बुद्धिमान। समझ में आया? **सहज परमानन्दरूपी पीयूष के पूर में डूबते हुए (-निमग्न होते हुए)...** आहाहा! भगवान आत्मा स्वाभाविक परमानन्दरूपी अमृत है। कैसा है आत्मा अन्दर? विषयसुख आदि कीर्ति में तो सुख है

ही नहीं, वह तो अकेला दुःख है, परन्तु व्यवहारचारित्र जिसे व्यवहार से सुतप कहा, वह भी दुःखरूप है। आहाहा! भगवान आत्मा स्वाभाविक परमानन्दरूपी पीयूष—अमृत—पीनेयोग्य अमृत, पीनेयोग्य ऐसा आत्मा... आहाहा! 'आशा औरन की क्या कीजे, ज्ञान सुधारस पीजे, आशा औरन की क्या कीजे।' विकल्प आदि भाव में कुछ ठीक है, ऐसी आशा क्या करना? 'ज्ञान सुधारस पीजे...' ज्ञान अर्थात्? चैतन्य भगवान आनन्दकन्द, वह सुधारस—अमृत का रस है। वह निर्विकल्प रस पीना। आहाहा! स्वाभाविक परमानन्दस्वरूप... अरे! इसे विश्वास भी कहाँ बैठता है? मैं स्वाभाविक परम अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति हूँ। समझ में आया?

यह चूसते हैं न, क्या? लड़के आईसक्रीम या कुल्फी। तो कहते हैं... कुल्फी चूसते हैं न! भगवान कहते हैं, भगवान! तेरा अमृत से भरा... पीयूष—अमृत, परमानन्दरूपी अमृत को चूस न! पन्नालालजी! देखो! यह तुम्हारे धूल-बूल में सुख नहीं, ऐसा कहते हैं। बंगले में, फलाना में, धूल में। ऐसा सब सुना है। सुना है न? तुमको अनुभव बहुत हो गया है। कहो, समझ में आया? समझ में आता है? अरे! तेरे पास तो अमृत सागर पड़ा है न, कहते हैं। अरे! थोड़ा तो पी। यह जहर पीता है। राग का भाव पीता है, (वह) तो जहर पीता है। आहाहा! समझ में आया? यह शुभराग भी अनुभव में आता है तो वह तो जहर का अनुभव है। स्वस्वभाव के आश्रय से अन्तर में पर्याय उत्पन्न हो, ध्रुव के आश्रय से, ध्रुव के ध्यान से, ध्रुव के ध्येय से जो अमृतपर्याय उत्पन्न हो, आहाहा! यहाँ तो आनन्दरूपी पीयूष का पूर आत्मा अन्दर है। उसमें डूबते हुए (वह) पर्याय है। भाई! आहाहा!

इतने शब्द में दोनों मार्ग दे दिये। एक तो भगवान आत्मा स्वाभाविक परमानन्दरूपी अमृत का पूर। पानी का पूर आता है न नदी में, देखने को जाते हैं। ओहो! हमारे पानी का पूर आया, पूर तो आया। वह आया नहीं, वह जाता है। समझ में आया? उसके गाँव में दिखता है कि हमारे पूर आया। आया क्या? वह तो चलता जाता है। समझ में आया? तेरे गाँव का क्षेत्र तो अल्प क्षेत्र रोकता है, वह तो चलता जाता है। वह तो अनित्य पूर है। आहाहा! यह नित्य पूर आया वहाँ तो नजर दे। आहाहा! भाई! तेरी रुचि तो कर

वहाँ। तेरे अन्दर में पोषाण तो इस माल का है। व्यापारी का माल पोषाता है तो लेते हैं या नहीं? साढ़े तीन रुपये मण लावे और चार उपजे तो लावे। परन्तु चार रुपये में लावे और यहाँ पौने चार रुपये में बिके, वह माल 'पोषाता' कहने में आता है? आहाहा!

तेरे आत्मा का अमृत पीयूष—अमृतरूपी पीयूष, वह तुझे पोसाता है? तुझे रुचता है? तुझे आश्रय करना है? **डूबते हुए...** आहाहा! त्रिकाली भगवान परमानन्दरूपी अमृत, वह तो ध्रुव है, उसमें निमग्न होना, वह पर्याय है। **डूबते हुए...** अन्दर में प्रवेश करते हैं। आहाहा! **ऐसे सहज परमात्मा का—एक का आश्रय करते हैं।** देखो! आहाहा! मुनि भी तत्त्व के भाव में उछल गये हैं। ऐसे एक सहज परमतत्त्व अपना। ऐसा एक स्वाभाविक परमतत्त्व अपना, (उसका) **आश्रय करते हैं।** उसका आश्रय करते हैं। धर्मी उसका आश्रय करते हैं। आहाहा! एक। दूसरा व्यवहारतप का आश्रय करते नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? दूसरा व्यवहारतप, व्यवहारचारित्र निश्चयसहित हो, उसका भी ज्ञानी आश्रय करते नहीं। आहाहा! भारी कठिन जगत को। है तो तू ही उस स्वरूप। तेरे पास कहना, वह भी व्यवहार है। आहाहा! ऐसे एक... अर्थात् दूसरा नहीं। व्यवहारतप, व्यवहार कल्पना, ध्यान-ध्येय की विकल्प दशा—यह दूसरा नहीं। समझ में आया? आहाहा! निचोड़ है, भाई! बारह अंग का निचोड़ है यह। एक सहज परमस्वरूप भगवान आत्मा का आश्रय करता है, उसको आनन्द की दशा का वेदन होता है। यह आनन्द का वेदन, वह धर्म है। (कोई कहता है), 'धर्म दुःखदायक है और, अरे! चारित्र महादुःखदायक है।' वह चारित्र नहीं। चारित्र तो आनन्ददायक है। यह चारित्र की व्याख्या चलती है न!

छहढाला में आता है न? वह दुःखरूप, नहीं? ज्ञान-वैराग्य। 'आतम के हित हेतु विराग ज्ञान, ते लखे आपको कष्टदान।' (ढाल २, छन्द ६)। चारित्र तो कष्टदान है। अरेरे! तुझे चारित्र की खबर नहीं, भाई! 'आपको कष्टदान...' अरे! चारित्र कष्ट (दायक) है। अरे भगवान! तू चारित्र की असातना करता है। चारित्र तो आनन्ददायक है, उसको चारित्र कहते हैं। धर्म तो आनन्ददाता है। धर्म दुःखदाता है? हमें कितना कष्ट सहन करना पड़े, जंगल में रहना पड़े। अरे! कष्ट तो राग है अथवा द्वेष है। वह चारित्र है?

भगवान आत्मा आनन्द का धाम प्रभु है। धाम में निवास करता है, उसमें आनन्द आता है, उसका नाम चारित्र है। समझ में आया? शुद्धात्मानुभूति लक्षणवाली रमणता, वह चारित्र है। शुद्धात्मानुभूति की रमणता, वह चारित्र है। समझ में आया? आहाहा! यह राग में, महाव्रत में रमना, वह कोई चारित्र है नहीं। यह कलश पूरा हुआ १२३। गाथा ९३। यह ९२ का (कलश) था न? अब ९३। ध्यान एक उपादेय है। अपने स्वरूप की एकाग्रता करना, वह सर्व अतिचारों के नाश का उपाय है। देखो!

झाणणिलीणो साहू परिचागं कुणइ सव्वदोसाणं।
तम्हा दु झाणमेव हि सव्वदिचारस्स पडिकमणं॥९३॥

आहाहा! नियमसार अलौकिक रत्न है।

रे साधु करता ध्यान में सब दोष का परिहार है।
अतएव ही सर्वातिचार प्रतिक्रमण यह ध्यान है॥९३॥

आहाहा! **टीका—यहाँ (इस गाथा में), ध्यान एक उपादेय है, ऐसा कहा है।** उसका अर्थ? पूर्णानन्द प्रभु आत्मा में एकाग्रता, वह ध्यान, वही आदरणीय है। आदरणीय तो द्रव्य है, परन्तु राग की आदरणीयता छोड़ने की अपेक्षा से, व्यवहार से राग की हेयता की अपेक्षा से यह एक उपादेय कहने में आया है। समझ में आया? **जो कोई परमजिनयोगीश्वर साधु...** मुख्य तो साधु का अधिकार है न! गौण में समकिती और पंचम गुणस्थान का अधिकार भी आ जाता है। जितना अन्तर स्वद्रव्य का आश्रय लेता है, उतना सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र धर्म है। चौथा गुणस्थान हो, पाँचवाँ हो या छठवें में हो। बारहवें में आगे पूर्ण हो गया। वह तो साधक है तब तक। समझ में आया ?वह विकल्प है न साथ में। चौथे, पाँचवें, छठवें गुणस्थान में जितना स्वद्रव्य का आश्रय हुआ, उतना धर्म है। चौथे में भी इतना, पाँचवें में भी इतना (कि जितना) आश्रय लिया। समझ में आया?

सवेरे एक विचार आया था। वह आया था। आता है न कि अव्रत छोड़कर व्रत में आना। वह समाधिशतक में (आता है)। 'व्रतं आदायं...' अव्रत छोड़कर... छाया में रहना ठीक है, धूप में रहना ठीक नहीं। धूप में रहना ठीक नहीं। ऐसा आता है न,

समाधिशतक में आता है, अष्टपाहुड़ में आता है। वह पहले कहा था थोड़ा। वह अव्रत को छोड़कर, व्रत में रहने का अर्थ क्या? छाया-धूप का दृष्टान्त आया है न? छाया में खड़ा रहना, वह धूप से अच्छा है। तड़का समझे न? धूप। वैसे अव्रत में रहना, उस अपेक्षा व्रत में रहना अच्छा है। परन्तु उसका अर्थ क्या? जब सम्यग्दर्शन है और जब व्रत का विकल्प आता है, तब उसकी स्थिरता बढ़ गयी है। अकेला व्रत विकल्प नहीं। भाई! पहले कहा था एक बार। यहाँ एक बार अर्थ किया था।

आज और सवेरे रास्ते में वह याद आया। यह व्रत-तप... अव्रत को छोड़कर व्रत में... अन्दर शुद्धता बढ़ी है, तब वह व्रत का विकल्प होता है। बाबूभाई! यहाँ ऐसा कहा न, उसमें कहा है, दो-तीन जगह कहा है। अष्टपाहुड़ में भी है, समाधिशतक में है। 'व्रतं आदायं...' व्रत को छोड़कर... है न? अव्रत में रहना, समकिती को भी, हों! वह धूप में रहना है। और व्रत में आना है वह छाया में रहना है। जब तक शुद्धोपयोग पूर्ण न हो, तब तक उसे छाया में रहना। इसका अर्थ क्या? अपने स्वरूप का आश्रय लिया है और अव्रतत्याग में व्रत का विकल्प जब आत्मा को—ज्ञानी को आता है, जब भले पहले विकल्प आया, उस समय न हो, परन्तु यथार्थरूप से व्रत जब उसे कहा जाता है, तब स्वरूप के आश्रय से स्थिरता बढ़ गयी है। तब उस व्यवहारव्रत और विकल्प को व्यवहारव्रत कहा जाता है।

अकेला सम्यग्दर्शनसहित अव्रत छोड़ना, व्रत—अकेला व्यवहारव्रत लेना, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसा कहते हैं। समझ में आया? शास्त्रों के अर्थ में बहुत अन्तर है। ऐसे महाव्रत ले लो, चारित्र ले लो भैया! परन्तु किसको चारित्र (कहते हैं)? व्यवहारचारित्र भी किसको कहते हैं? जिसको अपने आत्मा के आनन्द का वेदन अनुभव में आया है, सम्यग्दर्शन में आत्मा का स्वाद आया है, ऐसे सम्यग्दृष्टि को जब अव्रत छोड़कर व्रत का विकल्प आता है, तब आत्मा का आश्रय उग्र हो जाता है। समझ में आया? परन्तु वह मुनि जैसा नहीं, इसलिए वहाँ छाया की बात की है। समझ में आया? श्रावक को होता है, ऐसा शुद्धोपयोग में अकेला रमता है, ऐसी दशा को देखे, परन्तु व्रत के विकल्प के काल में भी अन्दर स्वरूप की स्थिरता है, तब व्यवहारव्रत कहने में आता है। दो कषाय का नाश, अरे! तीन कषाय का नाश जब होता है, तब व्यवहारव्रत के विकल्प को

व्यवहार (मोक्षमार्ग) कहने में आता है। यह शुद्ध उपयोग की क्रीड़ा में-ध्यान में नहीं है, तब तक 'इसमें—(व्रत में आना)' ऐसा कहते हैं। आहाहा! पण्डितजी! ऐसा अर्थ है। नहीं तो करो निश्चित। उसमें अपने क्या है? यहाँ तो बात को छेड़कर निर्णय करने की बात है। यह कहीं गुप्त रखने की बात नहीं है।

सम्यग्दृष्टि को व्रत लेना और व्रत करना, उसकी व्याख्या क्या? आहाहा! क्या चौथे गुणस्थान में व्रत का विकल्प होता है? समझ में आया? व्यवहारचारित्र चौथे में आता है? पंचम से ही आता है और छठवें में विशेष (होता है)। समझ में आया? उसमें आत्मा का उग्र अवलम्बन लिया है। उग्र अवलम्बन है तो व्रत के विकल्प को व्यवहारचारित्र कहा जाता है। उसे छोड़कर जब शुद्धोपयोग में रमते हैं, ओहोहो! वह तो धन्य अवतार! वह तो शुद्ध उपयोग जो करना था, वह किया, अब उसका फल मोक्ष है। समझ में आया?

ध्यान एक उपादेय है... ऐसा कहा यहाँ तो। ऊपर प्रश्न आया न? स्वरूप में अन्तर ध्येय को पकड़ करके एकाग्र होना, वह एक ही उपादेय है। (ध्यान को) उपादेय कहने में आया, वह तो व्यवहारव्रत को हेय (कहा उस) अपेक्षा से उसको उपादेय कहा, वास्तव में उपादेय तो द्रव्य उपादेय है। यह पहले आ गया है। समझ में आया? यहाँ आ गया। परमात्मा का आश्रय करते हैं। एक परमात्मतत्त्व को ही उपादेय मानकर आश्रय करते हैं। परन्तु यहाँ वह व्यवहारतप... प्रतिक्रमण अधिकार है न! व्यवहारचारित्र और व्यवहारप्रतिक्रमण का जो विकल्प है, वह हेय है, ज्ञेय है, उस अपेक्षा से आत्मा का धर्मध्यान ज्ञेय है, परन्तु उपादेय है। समझ में आया? आहाहा! कठिन मार्ग! थोड़ा परन्तु सत्य मार्ग होना चाहिए। असत्य की गड़बड़ करे मार्ग हो जाये, ऐसा है नहीं। भैया! हमारी शक्ति नहीं। परन्तु शक्ति न हो तो प्रगट करना। उसके लिये तो बात चलती है। अनन्त काल से ऐसा ही बचाव किया है। समकिती को निरन्तर प्रतिक्रमण रहता है।

वह आता है, नहीं? समयसार में पीछे। 'नित्यं पडिकमणे कुणइ, नित्यं प्रत्याख्यान कुणइ' ऐसा पाठ आता है। मुनि तो नित्य प्रतिक्रमण और नित्य प्रत्याख्यान करते हैं, अपने द्रव्य के आश्रय से नित्य ही रमते हैं। ऐसा पाठ है, श्लोक है समयसार के अन्त

में। जिसमें ४९ भंग चले न! १४७ भंग उसके बाद है ऐसा। आहाहा! वह तो निश्चय स्वभाव के आश्रय से हर समय है। पश्चाताप करना, ऐसा भी कहाँ है? वह तो विकल्प है। समझ में आया? वह (बात) पहले आयी थी कल। पश्चाताप, निन्दा, गर्हणा, वह तो शुभभाव है, व्यवहारप्रतिक्रमण, वह शुभभाव है—वह (प्रतिक्रमण) नहीं। द्रव्य के आश्रय से द्रव्य की एकाग्रता जितनी प्रगटी, वह तो निरन्तर रहती है। आहाहा!

इसलिए तो ऐसा कहा न कि समकिती तो प्रशम है, शम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा... आता है न। वह प्रशम है, अनन्तानुबन्धी का अभाव हुआ, उतना प्रशम तो निरन्तर है। आहाहा! समझ में आया? आस्तिक्य भी निरन्तर है और पहली कषाय गयी, इतनी प्रशमता—शान्ति तो निरन्तर है। पंचम गुणस्थान में सम्यग्दर्शन तो निरन्तर है, परन्तु दो कषाय (चौकड़ी) गयी, उतनी शान्ति—प्रशान्ति निरन्तर है। आहाहा! चाहे तो दुकान के धन्धे पर बैठा हो, समझ में आया? अरे! विषय की वासना के संयोग में देखने में आवे, परन्तु दो कषाय (चौकड़ी) का अभाव है, इतनी शान्ति तो कायम रहती है। नन्दकिशोरजी! नन्द का आनन्द तो कायम रहता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! नन्दकिशोर है—बालक है। चौथे गुणस्थान में नन्दकिशोर है। वह आगे बढ़ते-बढ़ते पण्डित हो जाता है। आहाहा!

कहते हैं, **ध्यान एक उपादेय है...** आहाहा! तो फिर यह भगवान की मूर्ति और प्रतिमा और भगवान के दर्शन, वे उपादेय नहीं—यह तो वह आया। अरे पण्डितजी! क्या करना या नहीं अब? श्रावक को छह व्यवहार आवश्यक कायम कहते हैं। कहते हैं या नहीं? देवदर्शन, गुरुपूजा, स्वाध्याय, संयम, तप और दान—छह आवश्यक व्यवहार। वह आता है, ऐसा भाव उस भूमिका के योग्य आता है, परन्तु है हेय। आहाहा! गजब है न! छह आवश्यक कहना व्यवहार और (फिर) कहना हेय है। परन्तु व्यवहार है न?

सोगानी थे न, सोगानी, निहालचन्दभाई। उन्होंने एक आत्मधर्म लिया, पहले देखा। तो उसमें ऐसा आया आत्मधर्म में कि भाई! छह आवश्यक की अपेक्षा आत्मा में एकाग्र होना ही एक आवश्यक है। स्वभाव में अवश्य करनेयोग्य आत्मा का आश्रय, वही आवश्यक है। यह वाँचकर उनको ऐसा हो गया, ओहो! यह बात यथार्थ है। आत्मधर्म देखा। अर्घ्य चढ़ाया, जब आत्मधर्म देखा। समझ में आया? लिखा है दो-तीन जगह।

मुझे आत्मधर्म में 'एक आवश्यक' पढ़कर, ऐसा अन्तर में आनन्द आया कि मैं ही जानता हूँ, क्या आया? छह आवश्यक, वह तो विकल्प है, वह तो व्यवहार है। निश्चय से वह दुःखरूप है, निश्चय से वह अग्नि भट्टी है। पण्डितजी! गजब! शान्ति तो, जितनी कषाय गयी और आत्मा में एकाग्रता हुई, वह एक आवश्यक है। सेठ! पढ़ा है न? तुमको दिया है। व्यक्तिगत... दिया है तुमको। समझ में आया? तीसरा भाग है न, वह सेठ को दिया था। ... कोई साधारण को देते नहीं, ऐसी गुप्त चीज़ है यह। धारण करना कठिन है।

वहाँ तो (कहा कि) देव-गुरु-शास्त्र अनायतन है। जहाँ व्यवहारसमकित का कथन आया, वहाँ (आया कि) छह आयतन—देव-गुरु-शास्त्र और देव-गुरु-शास्त्र के माननेवाले, उनको मानना छह आयतन है, वह विकल्प है। वह आयतन नहीं। आयतन अर्थात् स्थान, आयतन अर्थात् घर, आयतन अर्थात् निलय—मकान। यह अपना आत्मा आयतन है। आहाहा! यह तो परद्रव्य है। परद्रव्य में रहने का स्थान वह आयतन है? ऐ नवरंगभाई! नवरंगभाई कहे, यह सुनकर... याद है या नहीं? छह आयतन आया था न रात्रि को? आहाहा! पण्डित लोग विरोध करेंगे, कहे। याद है नवरंगभाई? एकबार ख्याल में आया हो, फिर कुछ... स्वाध्यायमन्दिर में रात्रि को वाँचते थे। पाट के पास बैठे थे। यह आया कि देव-गुरु-शास्त्र भी अनायतन हैं। ऐ मूलचन्दभाई! नवरंगभाई आये। कहे, लोग विरोध करेंगे। मार्ग तो ऐसा है। यह तो क्या कहते हैं? देखो! आयतन तो आत्मा है। उसमें एकाग्र होना, वही निश्चय आयतन है। ऐसा विकल्प आता है। जब तक वीतरागता न हो, तब तक ऐसा भाव आता है, परन्तु वह वास्तव में आयतन नहीं। वहाँ रहने से यदि मुक्ति हो जाये, तब तो व्यवहार से मुक्ति हो गयी। वहाँ से लक्ष्य छोड़कर जब स्वरूप में एकाग्र होता है, तब मुक्ति होती है। वह आयतन तो आत्मा है। आहाहा! कहो, भीखाभाई! आहाहा!

जो कोई परमजिनयोगीश्वर साधु—अति-आसन्नभव्य जीव,... आहाहा! जिसका संसार का किनारा निकट आ गया है। कुन्दकुन्दाचार्य के लिये लिया है है न प्रवचनसार में कि संसार का किनारा आ गया है। आहाहा! मोक्ष का पाटन जिसको नजदीक हो गया

है। आहाहा! समझ में आया? अमृतचन्द्राचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य के लिये कहते हैं। पंच महाव्रतधारी हैं और तीन कषाय (चौकड़ी) का अभाव है अमृतचन्द्राचार्य को। समझ में आया? वे कहते हैं कि कुन्दकुन्दाचार्य ऐसे थे। अरे! परोक्ष हैं न? आपको और उनको ९०० वर्ष का अन्तर पड़ गया। तो ऐसा कैसे आपने निर्णय कर दिया? उनका भाव देखकर निर्णय कर दिया। समझ में आया? छद्मस्थ भी निर्णय कर सकते हैं। आता है या नहीं वह? प्रवचनसार।

संसार समुद्र का किनारा जिसको निकट है... संस्कृत टीका है, हों! '**कच्चिदं आसन संसार पारावारं पार**' संस्कृत टीका है। आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य भावलिंगी सन्त, (जिन्हें) सत्य का बोलना है और असत्य का त्याग है। वे कुन्दकुन्दाचार्य के लिये कहते हैं, 'जिनके संसार समुद्र का किनारा निकट है, सातिशय उत्तम विवेकज्योति प्रगट हो गयी है... ऐसे आसन्नभव्य महात्मा श्रीमद् भगवन्त कुन्दकुन्दाचार्यदेव...' आहाहा! उनकी ध्वनि सुने, उनका भाव देखे तो खबर पड़े कि क्या है यह चीज़! जिनको सातिशय विवेकज्योति... ऐसा लिखा है। ऐसी सातिशय विवेकज्योति कि जो ज्योति पड़नेवाली नहीं। ऐसे के ऐसे विवेक से केवलज्ञान लेंगे। आहाहा! समझ में आया?

'परम भेदविज्ञान का प्रकाश उत्पन्न हो गया है तथा समस्त एकान्तवादरूप विद्या का अभिनिवेश अस्त हो गया है...' एकान्तवाद नाश हो गया। अनेकान्तस्वरूप भगवान आत्मा... अपने में है, पर से नहीं, अपने से है और पर से नहीं, निश्चय से है और व्यवहार से नहीं।—ऐसी अनेकान्त विद्या जिनको प्रगट हुई है। 'पारमेश्वरी अनेकान्तवादविद्या को प्राप्त करके...' आहाहा! 'समस्त पक्ष का परिग्रह (शत्रु-मित्रादि समस्त पक्षपात)...' हमारे सम्प्रदाय के लिये ऐसा कहना, उसका... समभाव हो गया है। 'अत्यन्त मध्यस्थ होकर, सर्व पुरुषार्थ में सारभूत, होने से आत्मा के लिये अत्यन्त हिततम भगवन्त पंच परमेष्ठी के प्रसाद से उत्पन्न होनेयोग्य...' देखो! निमित्त हैं न परमात्मा। पंच परमेष्ठी निमित्त है। अपना आत्मा उपादान है। तो कहते हैं, अहो! भगवन्त पंच परमेष्ठी के प्रसाद—प्रसन्नता—भगवान की कृपा... वीतराग की कृपा होती है? वीतराग को प्रसन्नता होती है? आहाहा! हमारी निर्विकल्प प्रसन्नता हमको प्रगट हुई, भगवान के

ज्ञान में उस समय में ऐसा आया, वही हमारे प्रति भगवान की प्रसन्नता है। आहाहा! समझ में आया? सर्वज्ञ परमात्मा, पंच परमेष्ठी आदि सब, पंच परमेष्ठी की हमारे पर कृपा है, ऐसा कहते हैं।

'प्रसाद से उत्पन्न होनेयोग्य परमार्थ सत्य अक्षय मोक्षलक्ष्मी को उपादेयरूप से निश्चित करते हुए प्रवर्तमान तीर्थ के नायक (श्री महावीरस्वामी) पूर्वक भगवन्त पंच परमेष्ठी को प्रणमन और वन्दन से होनेवाले नमस्कार के द्वारा सन्मान करके सर्वारम्भ से (उद्यम से) मोक्षमार्ग का आश्रय करते हुए प्रतिज्ञा करते हैं।' आहाहा! मैं प्रवचनसार कहूँगा। आहाहा! देखो! मुनि की निश्चयदशा, वह मुनि को अनुभव में आ गयी, छद्मस्थ को। कोई कहते हैं न कि केवली जाने। द्रव्यलिंग है या भावलिंग है, (यह) केवली जाने। अरे भगवान! क्या कहते हो तुम? समझ में आया? बाबूभाई! यह भावलिंग है, वह निर्णय किया या नहीं छद्मस्थ ने? केवली हैं वे? अमृतचन्द्राचार्य छद्मस्थ हैं, आहाहा! भावलिंगी मुनि थे, संसार किनारा नजदीक आ गया है। मोक्ष के पाटन में पैर दिया है। आहाहा!

संसार दावानल का अन्त (और) अनन्त-अनन्त आनन्द की शुरुआत, ऐसा मोक्ष जिसको नजदीक है। एकाध भव में केवलज्ञान पायेंगे। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज वर्तमान में तो स्वर्ग में हैं। पंचम काल के मुनि थे, केवलज्ञान नहीं था। राग बाकी रह गया, शुभ का अपराध हुआ। आहाहा! अपराध का फल गति है। क्या निरपराध गुण का (-पर्याय का) फल गति है? निरपराध फल की गति है, परन्तु सिद्ध (गति है)। समझ में आया? चार गति तो अपराध का फल है। चाहे तो स्वर्ग में सर्वार्थसिद्धि में जाओ। आहाहा! सन्तों ने भारी गजब काम किया है न! आहाहा! प्रदेश, असंख्य प्रदेश खिल जाये, ऐसी बात है। समझ में आया?

अरे भगवान! कहते हैं कि एक ध्यान ही उपादेय है। भगवान! आप कहते हो कि आप हमको उपादेय नहीं? आप ऐसा कहते हो? भगवान! आपने तो कहा है न! तुम्हारे प्रसाद से तो पढ़ा है। यहाँ कहते हैं कुन्दकुन्दाचार्य कि ध्यान ही एक उपादेय है। **'झाणणिलीणो साहू'** तो प्रभु! आपकी वाणी और आप? आप कहते हो कि हम और

हमारी वाणी उपादेय नहीं।—ऐसा आप कहते हो? हाँ, हम ऐसा कहते हैं। नन्दकिशोरजी! आहाहा! यह तो मोक्षमार्ग की क्रीड़ा है। भजन गाते हैं न? वह नन्द श्रीकृष्ण, नहीं? नन्द का। परसों गाते नहीं थे वहाँ? वह एक भजन आता है। 'नन्दराज नहीं रे आवुँ, रे घरे काम छे।' यह गाते हैं वे लोग। भाषा भूल गये। यह गाते हैं अपने खाखरिया में किसान लोग सब।

मुमुक्षु : नन्दराज नहीं आऊँ रे....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह। 'नन्दराज नहीं रे आऊँ, रे घरे काम छे, काम छे, काम छे, काम छे रे, नन्दराज नहीं रे आऊँ, रे घरे काम छे।' इसी प्रकार यहाँ तो नन्दराज अर्थात् आत्मा, हों! मेरे घर में काम है, अब मैं राग में नहीं आऊँ, ऐसा। वह हरि अर्थात् यह आत्मा। 'पापं-ओघं हरति इति हरि।' पाप और पुण्य के ओघ को नाश करनेवाला भगवान आत्मा, वह हरि। पंचाध्यायी में लेख है। पंचाध्यायी में हरि की व्याख्या है। 'पापं हरति इति हरि।' ऐसा पंचाध्यायी में श्लोक है। भगवान आत्मा ही हरि है। अज्ञान और राग-द्वेष का हनन करनेवाला, वह हरि, वह हरि आत्मा है। आहाहा! उस आत्मा का ध्यान, आहाहा! एक उपादेय ऐसा कहा।

जो कोई परमजिनयोगीश्वर साधु... परम, जिन और योगीश्वर—इतने शब्द प्रयोग किये हैं। आहाहा! वह समकिती जिन है, योगी भी है, परन्तु परमजिनयोगीश्वर तो साधु हैं। समझ में आया? जितना स्वरूप में योग—एकाग्रता की है, उतना योगी तो समकिती भी है। परन्तु यहाँ तो परमजिनयोगीश्वर... आहाहा! 'सन्त निरन्तर चिन्तत ऐसे...' आता है या नहीं? भजन में आता है। आहाहा! 'सन्त निरन्तर चिन्तत ऐसे, आतमरूप अबाधित (ज्ञानी)।' आहाहा! परमात्मा निजानन्दस्वरूप जिसमें कोई बाधा, विघ्न, वैर-विरोध है ही नहीं। ऐसा आनन्द का कन्द नाथ, उसका चिन्तवन मुनि करते हैं। 'सन्त निरन्तर चिन्तत ऐसे...' आहाहा! ... रागादि।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बराबर है। राग... राग है। राग सब छोड़नेयोग्य है। उसका—व्यवहार का मेरे साथ काम नहीं। वह राग है।

जो कोई परमजिनयोगीश्वर साधु—अति-आसन्नभव्य जीव,... ओहो! जिसकी मुक्ति के आसन नजदीक आ गया है। आसन्न अर्थात् नजदीक। **अति-आसन्नभव्य जीव, अध्यात्म भाषा में पूर्वोक्त स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान में लीन होता हुआ...** देखो! यह धर्मध्यान, कहते हैं, शुभभाव वही धर्मध्यान है, ऐसा अभी चलता है। पत्रों में भी आता है। यहाँ भगवान कहते हैं कि पूर्वोक्त स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान... शुभभाव तो व्यवहार है। वह तो पहले कहा कि कल्पनामात्र रम्य है। स्वात्माश्रित—भगवान आत्मा के आश्रित निश्चयधर्मध्यान... देखो! आत्मा में, निश्चयधर्मध्यान आत्मा के आश्रय से होता है। **लीन होता हुआ अभेदरूप से स्थित रहता है,...** अभेद भगवान में स्थिर रहता है। आहाहा! जिसका निधान खुल गया है। आहाहा! अज्ञानी ने राग और स्वभाव की एकताबुद्धि में निधान को ताला लगा दिया है। कहते हैं कि मुनि और ज्ञानी को राग और स्वभाव (के बीच) की एकता टूट गयी है। आहाहा! निधान खुल गया है। बस जितना एकाग्र हो, उतनी शान्ति प्रगट होगी। समझ में आया? धर्मी को आत्मनिधान की चाबी खुल गयी है। ताला बन्द था, वह खोल दिया है। पुण्य के विकल्प की एकताबुद्धि से मिथ्यात्वरूपी ताला लगा दिया था। आहाहा! मलूकचन्दजी! आहाहा! अलौकिक बात है, भगवान! अरेरे! ऐसा अवसर कहाँ...? आहाहा! सुनने में ऐसी चीज़ (मिलती नहीं और) सुनने का काल भी बहुत थोड़ा मिलता है। आहाहा!

कहते हैं, **अभेदरूप से स्थित रहता है,...** अभेदरूप तो द्रव्य है, परन्तु उसमें अभेदरूप से स्थिर रहता है, भेद नहीं करता, ऐसा कहते हैं। विकल्प का और राग का भेद (खड़ा) नहीं करता। आहाहा! ऐसा निर्विकल्प अनुभव चौथे से होता है, परन्तु वहाँ स्थिरता अल्प है, पंचम में विशेष स्थिरता है, छठवें में विशेष, सातवें में विशेष। समझ में आया? **अभेदरूप से स्थित रहता है, अथवा सकल क्रियाकाण्ड के आडम्बर रहित...** वह धर्मध्यान की बात की पहले। अब शुक्लध्यान की। **सकल क्रियाकाण्ड के आडम्बर...** देखो! क्रिया में सब आडम्बर है विकल्प का। आहाहा! **और व्यवहारनयात्मक भेदकरण... भेदकरण=भेद करना वह; भेद डालना वह।(समस्त भेदकरण—ध्यान-ध्येय के विकल्प भी व्यवहारनयस्वरूप है।)** ध्यान करनेयोग्य ध्येय आत्मा और मैं ध्यान करता हूँ—वह भेद भी विकल्प-राग है, व्यवहारनयस्वरूप है। ओहोहो!

उससे रहित... उससे रहित **समस्त इन्द्रियसमूह से अगोचर...** इन्द्रिय से गम्य नहीं, **ऐसा जो परम तत्त्व—शुद्ध अन्तःतत्त्व,...** वापस 'परमतत्त्व' की व्याख्या... संवर, निर्जरा, मोक्ष, आस्रव, पुण्य-पाप, यह परमतत्त्व नहीं, यह अपरमतत्त्व है। आहाहा! त्रिकाली भगवान पूर्ण तत्त्व, **परम तत्त्व—शुद्ध अन्तःतत्त्व, तत्सम्बन्धी भेद-कल्पना से...** उस सम्बन्धी भेदकल्पना से रहित... **निरपेक्ष निश्चयशुक्लध्यानस्वरूप से स्थित रहता है,...** दो—एक स्वद्रव्याश्रित निश्चय धर्मध्यान और स्वद्रव्याश्रित विकल्परहित निर्विकल्प शुक्लध्यान। नीचे है न। **निरपेक्ष=उदासीन; निस्पृह; अपेक्षारहित। (निश्चयशुक्लध्यान शुद्ध अन्तःतत्त्व सम्बन्धी भेदों की कल्पना से भी निरपेक्ष है।)**

वह (साधु) निरवशेषरूप से अन्तर्मुख होने से... निरवशेषरूप से... बिल्कुल विकल्प का भाग नहीं। अन्तर्मुख... अन्तर्मुख... अन्तर्मुख... पर्याय को अन्तर्मुख किया (अर्थात्) द्रव्य के सन्मुख किया। आहाहा! भाषा भी कठिन। **प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त मोहरागद्वेष का परित्याग करता है;...** लो। शुभ और अशुभराग सर्व का त्याग हो जाता है। उपदेश तो क्या करे? **इसलिए (ऐसा सिद्ध हुआ कि) स्वात्माश्रित ऐसे जो निश्चयधर्मध्यान...** देखो! भगवान पूर्णानन्द प्रभु सच्चिदानन्दस्वभाव ऐसा अपना निज अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसके आश्रय से निश्चयधर्मध्यान—स्वात्माश्रित ऐसा निश्चयधर्मध्यान **और निश्चयशुक्लध्यान, वे दो ध्यान ही सर्व अतिचारों का प्रतिक्रमण है।** लो। मुझे पाप लग गया है तो मुझे प्रायश्चित दो, यह तो सब शुभविकल्प है। स्वरूप में लीन होना, ध्येय में ध्यान से लीन होना, यह सर्व पाप का नाश करने का उपाय है। उसको वाणी की भी आवश्यकता नहीं, गुरु के पास जाने की आवश्यकता नहीं, ऐसा कहते हैं। अपने गुरु के (—आत्मा के) पास जाकर लीन होना। पहले तो कहा कि गुरु की साक्षी से करना, यह शुभराग है। अपना गुरु भगवान आत्मा निजानन्द के समीप जाकर ध्यान करना, वह सर्व दोष का नाश करने का उपाय है, वह प्रतिक्रमण है। उसका नाम भगवान प्रतिक्रमण कहते हैं, लो।

[अब इस ९३ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं]:—

शुक्लध्यानप्रदीपोऽयं यस्य चित्तालये बभौ।
स योगी तस्य शुद्धात्मा प्रत्यक्षो भवति स्वयम्॥१२४॥

शुक्ल अर्थात् उज्ज्वल ध्यान। **श्लोकार्थः शुक्लध्यानरूपी दीपक जिसके मनोमन्दिर में प्रकाशित हुआ,...** ऐसा उज्ज्वल ध्यान, पवित्र ध्यान, आत्मा की ओर के झुकाव से उत्पन्न होनेवाला ध्यान, स्वद्रव्य के आश्रय से उत्पन्न होनेवाला ध्यान **प्रकाशित हुआ, वह योगी है;...** वह योगी, यह योगी कहने में आता है। वे प्राणायाम (करनेवाले को) योगी कहते हैं, वे योगी नहीं। समझ में आया? आहाहा! यह समाधि। वे तो ऐसा करके बैठे, ऐसा करके बैठे। क्या धूल है? एक आया था। यहाँ रामजीभाई को मिला था, भाई! पन्द्रह दिन तक यहाँ गड्ढा करके अन्दर रहता था। ऊपर धूल डाल ले धूल। पन्द्रह दिन। परन्तु आचरण समझने जैसा। व्यवहार की रीति-नीति में अन्तर। सब हमको खबर है। यहाँ आया था। पन्द्रह दिन तक... ऐसी विद्या है। पन्द्रह दिन बाल भी न बढ़े, क्षुधा, तृषा भी... नख न बढ़े पन्द्रह दिन। आया था। परन्तु वह तो अज्ञान है। समझ में आया? यहाँ गुरुकुल में आया था।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, वह तो उस प्रकार की विद्या।

यहाँ तो अन्तर का आनन्द ध्यान की गुफा में जाकर... ४९ गाथा समयसार में लिया है, जयसेनाचार्य ने लिखा है। 'निर्विकल्प ध्यानरूपी गिरिगुफा' ऐसा पाठ है। ४९ गाथा, जयसेनाचार्य (कृत टीका)। समझ में आया? ऐसी गुफा में जाकर **दीपक जिसके मनोमन्दिर में प्रकाशित हुआ,...** आत्मा.... आहाहा! जलहल ज्योति जिसके प्रकाश की पर्याय प्रगट हुई। **उसे शुद्ध आत्मा स्वयं प्रत्यक्ष होता है।** लो, उसको परमात्मा—आत्मा प्रत्यक्ष हो जाता है। आनन्द के वेदन में उसकी प्रत्यक्षता आ जाती है। उसका नाम ध्यान और उसका नाम यथार्थ प्रतिक्रमण कहने में आता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल १४, गुरुवार, दिनांक - ५-८-१९७१
श्लोक-१२५-१२६, गाथा-९४, प्रवचन-८६

नियमसार चलता है। नियम और सार—दो शब्द हैं न उसमें? निश्चय से कर्तव्य—(करने)योग्य जो है, उसको नियम कहते हैं। नियमसार मोक्षमार्ग की पर्याय का अधिकार है। नियमसार (का अर्थ) मोक्षमार्ग है न! मोक्षमार्ग तो पर्याय है, परन्तु वह नियमसार ऐसा मोक्ष का मार्ग, सार अर्थात् व्यवहाररहित... अकेला भगवान शुद्ध चैतन्यद्रव्य में अन्तर्मुख होकर अन्तर की एकाग्रता में ज्ञान-दर्शन-चारित्र की पर्याय होती है, उसको यहाँ नियमसार (कहा)। सार अर्थात् व्यवहाररहित। 'विपरीत के परिहार हेतु सार पद परिकथित है' यह आ गया है। तीसरी गाथा। अपना आत्मा पर से... प्रतिक्रमण है न! वह चारित्र का अन्तर्भेद है। जब आत्मा पर से हटकर—विकल्प से, निमित्त से और एक समय की पर्याय की रुचि से हटकर—अन्तर ज्ञायकभाव में अन्तर्मुख दृष्टि, ज्ञान और झुकाव को करता है, उसका नाम नियम है और व्यवहार से... वह व्यवहार परलक्षी है, उससे रहित ऐसा आत्मा की वीतरागी परिणति—व्यवहार के रागरहित आत्मा की वीतरागीदशा, वह नियमसार, वह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा!

सुबह में पूछते थे कि अन्तर्मुख कैसे होना? वह बात तो चलती है शाम-सवेरे। शाम-सवेरे वही चलती है। वर्तमान पर्याय परसन्मुख के लक्ष्य में है, उसको अन्तर में मोड़ना, उसका नाम अन्तर्मुख होना। (पहले की) पर्याय जो है, वह तो बहिर्मुख है। जो वर्तमान ज्ञानादि की पर्याय है, वह बहिर्मुख है। अब वह पर्याय तो अन्तर्मुख हो सकती नहीं। समझ में आया? और बाद की पर्याय अभी उत्पन्न हुई नहीं, तो पर्याय को अन्तर में मोड़ना, उसका अर्थ क्या? ऐ धन्नालालजी! समझ में आया? भगवान चैतन्यसागर प्रभु अनन्त आनन्द का धाम ध्रुवधाम, उस ओर पर्याय को झुकाना, उसका अर्थ क्या? वर्तमान पर्याय तो राग के ऊपर, पर के ऊपर है। वह पर्याय उत्पाद हो गयी, तो उस पर्याय को द्रव्य की ओर झुकाना होता नहीं। और बाद की पर्याय जो बाद में (आनेवाली)

है, वह तो उत्पन्न हुई नहीं, तो उस पर्याय को द्रव्य में मोड़ना कैसे, कहते हैं? उसका अर्थ यह है कि जो पर्याय परसन्मुख है, उस काल में पीछे अन्तर्मुख हो, अन्तर्मुख हो, तो वह पर्याय 'अन्तर्मुख लाये' ऐसा कहने में आता है। ऐसी बात है। धन्नालालजी! कौनसी पर्याय... ? आहाहा!

दोबारा। नये हैं न नये। पैसे में फँस गये हैं न! कमायी... कमायी। धन्नालालजी! दोबारा कहो, ऐसा कहते हैं। कहते हैं, जो यह आत्मा है, वह तो ध्रुव चिदानन्द आत्मा, वास्तव में तो परमात्मा है। उस ओर का झुकाव तो अनादि से है नहीं। झुकाव करनेवाली तो पर्याय है—अवस्था प्रगट है वह। वह पर्याय जो अवस्था है, वह तो राग के ओर के झुकाववाली है, वह बहिरात्मबुद्धि है। समझ में आया? बहिर् अर्थात् राग अपने में है नहीं, उस ओर ज्ञान की पर्याय झुक गयी, उसका नाम बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि है। अब उसे—अपनी पर्याय को द्रव्य-सन्मुख लेना। किस पर्याय को लेना? वह पर्याय तो बहिर्बुद्धि है। समझ में आया? परन्तु उसका अर्थ यह है कि जो पर्याय परसन्मुख है, उसका लक्ष्य छोड़ दो और द्रव्य का लक्ष्य करो अन्दर, तो लक्ष्य करने से जो पर्याय उत्पन्न होती है, वह पर्याय अन्दर में मुड़ी, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

वीतराग का मार्ग अमूल्य है। अमुलखचन्दजी! अमूल्य है। आहाहा! बाह्य वाणी से प्राप्त हो और विकल्प से प्राप्त हो, यह चीज़ ऐसी नहीं है। अन्तर में भगवान... यहाँ कहेंगे ९४ में। व्यवहार प्रतिक्रमण भगवान आचार्यों ने बताया है, ऐसा मुनि को व्यवहार विकल्प आता है। समझ में आया? परन्तु मुनि तो सम्यग्दृष्टि अनुभवी हैं। अपने आत्मा का आनन्द का स्वाद आ गया है और चारित्रदशा तीन कषाय के अभाव की है तो बहुत आनन्द का स्वाद आ गया है, प्रचुर स्वसंवेदन। परन्तु जब तक उसमें—अन्दर में स्थिर न हो सके, तो पहले व्यवहार प्रतिक्रमण का विकल्प आता है। पहले अर्थात् मिथ्यादृष्टि की बात नहीं यहाँ। समझ में आया? छठवें गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि मुनि को तीन कषाय के अभाव (रूप) प्रतिक्रमण—चारित्र तो है ही, परन्तु अन्दर में स्थिरतारूप शुद्ध उपयोग नहीं है, तो कहते हैं कि पहले अशुभ को छोड़कर प्रतिक्रमण में आना, ऐसा शुभभाव आता है, शुभभाव होता है और व्यवहारनय से ऐसा कहने में आता है कि व्यवहार प्रतिक्रमण करना—ऐसा बोलने में आता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रावक को भी होता है। दिगम्बर में प्रचार नहीं। श्वेताम्बर में बहुत है। शाम-सवेरे प्रतिक्रमण श्रावक भी करे। समझ में आया? ... तो वस्तुस्थिति नहीं। सामायिक है, प्रतिक्रमण भी है। अपने दिगम्बर में सब प्रतिक्रमण के पुस्तक हैं सारे। सामायिक में... सामायिक में क्या है तुम्हारे? सामायिक का पाठ है अन्दर में। लोग्गस्स का पाठ, नमोत्थुणं का पाठ। लोगस्स अर्थात् चौबीस तीर्थंकर की स्तुति का पाठ है। और नमोत्थुणं... 'नमोत्थुणं अरिहंताणं, भगवंताणं, आईगराणं...' ऐसा पाठ है। पुस्तक में है, परन्तु प्रचार नहीं। श्वेताम्बर में शाम-सवेरे करते हैं। वह सामायिक भी वे लोग करते हैं, परन्तु दृष्टि की तो खबर नहीं। चीज़ की खबर बिना सामायिक और प्रतिक्रमण कैसा? समझ में आया? यहाँ तो सच्ची चीज़ जहाँ अन्तर में स्वभाव-सन्मुख होकर, विभाव से विमुख होकर, भगवान सर्वज्ञदेव ने जो आत्मा कहा, उस ओर के झुकाव से लीनता से, जो शान्ति उत्पन्न हुई, वह तो निश्चय है, परन्तु उस शान्ति में जब तक स्थिर न हो, तब उसको व्यवहारप्रतिक्रमण का विकल्प आता है। दिगम्बर (नग्न) मुनि को भी आता है। परन्तु उस विकल्प के पीछे उसका फल क्या? उस व्यवहारप्रतिक्रमण का फल क्या? ऐसे विकल्प (आये), उसे छोड़कर स्थिर हो जाना। समझ में आया? वह कहते हैं ९४ में। देखो!

पडिकमणणामधेये सुत्ते जह वण्णिदं पडिक्कमणं।
तह णच्चा जो भावइ तस्स तदा होदि पडिक्कमणं॥९४॥

नीचे हरिगीत।

प्रतिक्रमणनामक सूत्र में प्रतिक्रमण वर्णित है यथा।
होता उसे प्रतिक्रमण जो जाने तथा भावे तथा॥९४॥

आहाहा! देखो! **टीका : यहाँ, व्यवहारप्रतिक्रमण की सफलता कही है...** सफलता का अर्थ कि व्यवहारप्रतिक्रमण निश्चय अनुभवी जीव को जो आता है तो उसे छोड़कर अन्दर में स्थिर होना, वह व्यवहारप्रतिक्रमण का फल है। भाई! एक ओर कहा कि व्यवहारप्रतिक्रमण का फल बन्ध है। किस अपेक्षा से कहा? व्यवहारप्रतिक्रमण

निश्चयप्रतिक्रमण से विरुद्ध है। व्यवहारप्रतिक्रमण से निश्चयप्रतिक्रमण विरुद्ध है। निश्चय आत्मा के स्वरूप की स्थिरता मुक्ति का कारण है और व्यवहार आवश्यकादि का फल तो बन्ध है। परन्तु यहाँ क्या कहते हैं? यहाँ तो यह कहा, देखो! व्यवहार प्रतिक्रमण की सफलता कही है। सफलता का अर्थ वह कहेंगे।

(अर्थात् द्रव्यश्रुतात्मक प्रतिक्रमण सूत्र में वर्णित प्रतिक्रमण को सुनकर... महा निर्यापक आचार्यों—सन्तों—भावलिंगी मुनियों ने जो प्रतिक्रमण रचा है, वह तो द्रव्यश्रुतात्मक है न। रचा है, उसको सुनकर—**जानकर, सकल संयम की भावना करना...** देखो! यह विकल्प आया है, परन्तु उसको छोड़कर स्थिर होना, वह सफल है, तो सफल है। तब वह निमित्त से हटकर... आहाहा! समझ में आया? पहले तो यह कहा था, प्रतिक्रमण अधिकार उठाया तब। है न वह? प्रतिक्रमण है न, कौनसी गाथा है? परमार्थ प्रतिक्रमण नहीं? पहली। पहली है न शुरुआत में, देखो! पहले पृष्ठ १४९ है। है। परमार्थ प्रतिक्रमण अधिकार शुरु।

सकल व्यावहारिक चारित्र से और उसके फल की प्राप्ति से प्रतिपक्ष... शुरुआत में है। प्रतिक्रमण का अधिकार। **सकल व्यावहारिक चारित्र...** अर्थात् प्रतिक्रमणादि **और उसके फल...** व्यवहार प्रतिक्रमण राग है, उसका फल बन्ध है। उससे **प्रतिपक्ष...** निश्चय उससे प्रतिपक्ष है। **ऐसा शुद्धनिश्चयनयात्मक परम चारित्र, उसका प्रतिपादन करनेवाला परमार्थ-प्रतिक्रमण अधिकार कहा जाता है।** लो, यहाँ ऐसा कहा। छह आवश्यक में भी ऐसा है। आगे आयेगा। छह आवश्यक है—सामायिक, चौविसंथो, वन्दन (आदि), वह तो विकल्प है। विकल्प से प्रतिपक्ष निर्विकल्प आत्मा की दशा श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र है। आहाहा! दोनों भाव भिन्न हैं, दोनों के फल भिन्न हैं। यहाँ जो कहते हैं कि आगम के जाननहार मुनियों ने, सन्तों ने, आचार्यों ने उन्होंने जो प्रतिक्रमण की रचना की, (वह) बराबर जानना। जानकर प्रतिक्रमण सुनना। ऐसा विकल्प भी आता है। परन्तु जानकर सकल संयम की भावना करना। आहाहा! पश्चात् उस राग को छोड़कर स्वरूप में लीनता होना, यह उसका फल है। अभाव किया, तब फल आया। बात यह है। यह तो दो थे, ऐसा बताया। समझ में आया? आहाहा!

शैली क्या है, (उसे) समझना चाहिए न पहले ? यह वस्तु तो महाप्रभु है। अरे! अन्तर्मुख होना, बहिर्मुख पर्याय को अन्तर्मुख लेना अर्थात् बाद की (पर्याय मोड़ना)—यह अलौकिक बात है। यही पुरुषार्थ है, यहीं मोक्षमार्ग की दिशा पलट जाती है। पर के ऊपर जो दिशा है, वह स्व के ऊपर आ जाती है। आहाहा! स्वद्रव्य के आश्रय से जो पर्याय उत्पन्न हुई, बस वही मोक्ष का मार्ग है। लोगों को कठिन (लगे) भगवान का सत्य मार्ग। परम सत्य प्रभु परमात्मा अपना निज स्वरूप उस ओर की दृष्टि करना (कि) क्या चीज़ है यह। समझ में आया ? एकदम बहिर्लक्ष्य है, उसे छोड़कर अन्तर ज्ञायकभाव में लक्ष्य करना। अनन्त काल में नहीं किया, ऐसा यह पुरुषार्थ है। समझ में आया ? और उसे करने से उसको सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! कहो, जेठाभाई! यह देव-गुरु-शास्त्र से नहीं होता है, ऐसा कहते हैं। कहाँ गये हीरालाल ? तुम्हारे पिता कहते थे न ? वे बदल गये हैं अब तो अन्दर। आहाहा!

कहते हैं, भाई! गुरु बिना ज्ञान नहीं, गुरु बिना ध्यान नहीं। आता नहीं है ? बहुत जगह आता है। आहाहा! आवे न! वस्तु है न! परन्तु उस ओर का लक्ष्य छोड़कर भगवान परमगुरु चिदानन्द, सर्वज्ञदेव परमगुरु, सर्वज्ञस्वभावी अपना परमगुरु, उस ओर का झुकाव हो... आहाहा! लाना तो पड़े न थोड़ा! ऐसा कि समझाया तुमने, परन्तु समझा कौन ? 'समझे' किसको कहने में आता है ? समझ में आया ? अन्तर्मुख दृष्टि करके ज्ञान हो, वह समझ में आया और 'समझे' कहने में आता है। आहाहा! यह मार्ग अशक्य नहीं, परन्तु दुर्लभ तो है। सकल (का अर्थ) मुनि है न! मुनि की व्याख्या है न! वह प्रतिक्रमण का राग है न, उतना दोष है, परन्तु आये बिना रहता नहीं, और छोड़कर अन्तर में गये बिना रहता नहीं। यह बात... आहाहा! व्यवहार तो आता है, ऐसा कहा न!

शास्त्र में ऐसा आता है, हों! भावपाहुड़ में। ओहोहो! पंच परमेष्ठी के विनय से ज्ञान होता है। कहो, ऐसा आता है। ... उसका विनय आता है या नहीं ? बीच में विकल्प बहु(मान का) भाव आता है, परन्तु वह छोड़कर जब अन्तर का आश्रय करता है, तब सम्यग्ज्ञान—आत्मा का विनय करने में आया। धन्नालालजी! यह करना है, वह बाकी हैरान... हैरान... दु:खी हो। ठीक है ? सब दु:खी हो तुम ? वे पैसे साथ में लगे हैं न ?

वच्छराजजी सेठ के पास बहुत रह गये। सुखी होगा? दुःखी है। कौन कहता था? आहाहा! कल बताया था न, उसका लड़का यहाँ है न, भानेज है। उसके मामा के पास दो अरब चालीस करोड़ रुपये। यहाँ है न, लड़का है... बहिन है परन्तु बालब्रह्मचारी है। उसकी बहिन की लड़की। उसके पास दो अरब चालीस करोड़। दो अरब... दो सौ चालीस करोड़। धूल है। कहाँ गये तुम्हारे? समझ में आया?

मुमुक्षु : तुम्हारे पास है नहीं, इसलिए धूल कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी के पास है नहीं। धूल किसके पास है? धूल तो धूल में है। पैसा पैसा का होकर रहा है या आत्मा का होकर रहा है? देखो! लक्ष्मी अजीव होकर रही है या लक्ष्मी अपनी पर्याय में आकर रही है? (जीव की) पर्याय तो अरूपी है। उसमें आकर रही हो तो वह अरूपी हो जाये। वह तो रूपी है। सेठ! मानता है, बस। मानता है कि मेरी है। धूल में है नहीं तेरी। शरीर तेरा नहीं, और लक्ष्मी कहाँ से आ गयी? जो सम्बन्ध में नजदीक में पड़ा है, वह भी अजीव होकर रहा है। आत्मा की अरूपी पर्याय होकर रहा है शरीर? आहाहा! यह तो प्रत्यक्ष देखने में आता है। वह तो जड़ होकर द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों जड़ होकर रहे हैं। अपनी पर्याय में वह आया नहीं। अपनी पर्याय में उसका तो अत्यन्त अभाव है। अत्यन्त अभाव है तो उसके 'पास है' ऐसा कहाँ से आया? आहाहा! नन्दकिशोरजी! आहाहा!

परमाणु का परिणमन होते-होते यहाँ रजकण की पर्याय ऐसे हो गयी है। वह तो पूरा अजीव तत्त्व है। उसका द्रव्य अजीव, गुण अजीव और पर्याय अजीव। भगवान का द्रव्य जीव, गुण जीव और पर्याय जीव। तो उसमें अजीव आया कहाँ से? समझ में आया? पद्मचन्दजी! पैसावाला कहते हैं न तुमको? धन्नालालजी आते हैं तुम्हारे वहाँ आगरा में बहुत (आते हैं)। मित्र है। कहो, यह पैसा किसका कहना? आहाहा!

कहते हैं... आचार्य कुन्दकुन्दाचार्य महाराज भगवान समान—परमेष्ठी समान हैं। 'णमो लोए सव्व आयरियाणं।' अरेरे! भरतक्षेत्र में तो विरह हो पड़ा। तीर्थंकरों का विरह, ऐसे सन्तों का विरह! आहाहा! समझ में आया? कहते हैं, भगवान! एक बार बात तो सुन न भाई! सन्त जो अपने स्वरूप का आनन्द का वेदन करते हैं, उनको जब

तक शुद्धोपयोग में रमणता न हो, तब तक आचार्यों ने रचा ऐसा व्यवहारप्रतिक्रमण के विकल्प में आते हैं। आहाहा! परन्तु उसे जाने। ऐसा 'जानकर' है न वापस? अन्तर जाने कि ऐसा है। आहाहा!

सकल संयम की भावना करना... (राग को) छोड़कर... सकल संयम की भावना करना। वह तो राग को नहीं करना (और) सकल संयम की भावना करना ऐसा कहा है, वरना तो द्रव्य की भावना करना, ऐसा है। समझ में आया? वह व्यवहार विकल्प की भावना छोड़ना है (अर्थात्) करना नहीं, तो कहते हैं कि सकल संयम की भावना करना। वह तो पर्याय की भावना है। समझ में आया? आहाहा! **वही व्यवहारप्रतिक्रमण की सफलता—सार्थकता है, ऐसा इस गाथा में कहा है)**। लो।

समस्त आगम के सारासार का विचार... महा सन्त, धर्मात्मा, चारित्रवन्त आचार्य वीतराग के पंथ में पाया पंथ जिन्होंने, ऐसे आगम के सारासार के विचार **करने में सुन्दर चातुर्य...** मुनि **तथा गुणसमूह के धारण करनेवाले निर्यापक...** देखो! शिक्षासूत्र को देनेवाले, उनको निर्यापक कहते हैं। समझ में आया? सम्यक् श्रुतज्ञान की शिक्षा देनेवाले मुनि—सन्त—ज्ञानी छठवें गुणस्थान में, आहाहा! इनको निर्यापक (कहते हैं)। यह गुणसमूह के धारक निर्यापक। आहाहा! गुण शब्द से (आशय है) पर्याय। गुण तो त्रिकाल है, परन्तु त्रिकाली के आश्रय से जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, आनन्द आदि अनन्त गुण की परिणति शुद्ध हो गयी, ऐसे गुणसमूह को धारण करनेवाले... आहाहा! जितनी संख्या शक्ति-गुण की आत्मा में है, उन सबकी वर्तमान पर्याय... गुणसमूह अर्थात् पर्यायसमूह। आहाहा!

निर्यापक आचार्यों ने जिस प्रकार द्रव्यश्रुतरूप प्रतिक्रमणनामक सूत्र में प्रतिक्रमण का अति विस्तार से वर्णन किया है,... आचार्यों ने, गुण के धारक धर्मात्मा, भावलिंगी सन्तों ने, दिगम्बर मुनियों ने। समझ में आया? बाहर से दिगम्बर थे, अन्तर से गुणसमूह के धरनेवाले थे। आहाहा! समझ में आया? उन्होंने रचा (हुआ) सूत्र, भाई! ऐसा कहना है। उन्होंने जो प्रतिक्रमणसूत्र की रचना की... अज्ञानी ने कल्पना से किया, वह प्रतिक्रमण नहीं, ऐसा बताते हैं। समझ में आया? आहाहा! सूत्र अर्थ से

भ्रष्ट... वह तो आया न भाई! अष्टपाहुड़ में। वह सूत्रपाहुड़। सूत्रपाहुड़ में आया है। जो कोई सूत्र और अर्थ से भ्रष्ट है, उसकी रचना, वह शास्त्र नहीं। समझ में आया? अष्टपाहुड़ में सूत्रपाहुड़ में है। **सुत्तत्थ...** सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा परम्परामार्ग, उसके सम्यग्ज्ञान से भ्रष्ट है और उसका अर्थ करने में भी भ्रष्ट है, उसका बनाया शास्त्र, वह शास्त्र नहीं। समझ में आया? यहाँ आयेगा। उसमें कहाँ होगा क्या खबर पड़े? अष्टपाहुड़ है, सूत्रपाहुड़ है। लो, यह गाथा आयी, भाई! ओहोहो! देखो! चिह्न भी किया है। यह सातवीं गाथा।

सुत्तत्थपयविणट्ठो मिच्छादिट्ठी हु सो मुणेयव्वो।
खेडे वि ण कायव्वं, पाणिप्पत्तं सचेलस्स॥७॥

सचेल हो और हाथ में आहार लेना... वह भी नहीं करना। समझ में आया? जिसके सूत्र का अर्थ और पद विनष्ट है। लो, चिह्न किये हैं यहाँ। समझ में आया? सातवीं गाथा, सूत्रपाहुड़। पहला दर्शनपाहुड़ है, दूसरा सूत्रपाहुड़ है, तीसरा चारित्रपाहुड़ है। आठ पाहुड़ हैं न! आहाहा! **सूत्र में मुनि का रूप नग्न दिगम्बर कहा है। जिसके ऐसा सूत्र का अर्थ तथा अक्षररूप पद विनष्ट है और आप वस्त्र धारण करके मुनि कहलाता है, जिनाज्ञा से भ्रष्ट हुआ प्रगट मिथ्यादृष्टि है।** उसका बनाया हुआ शास्त्र, वह शास्त्र नहीं। समझ में आया? मार्ग तो ऐसा है, भाई! यह तो स्पष्ट करते हैं। पदमचन्दजी! ऐसा है (तो) भ्रष्ट है, ऐसा कहते हैं। तो कोई कहे, ऐसा नहीं करना। वस्तु का स्वरूप नहीं बताना? समझ में आया? आहाहा! **जिनसूत्र से भ्रष्ट हरिहरादि के तुल्य हो तो भी मोक्ष नहीं पाता...** यह आठवीं गाथा है। यह सातवीं।

हरिहरतुल्लो वि णरो सग्गं गच्छेइ एइ भवकोडी।
तह वि ण पावइ सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो॥८॥

संसार है। भगवान की, सूत्र की आज्ञा (और) उसका भाव, उससे भ्रष्ट है। चाहे जो बड़ी क्रिया लाखों, करोड़ों, अरबों वर्ष करे, मुक्ति नहीं, उसको धर्म नहीं। समझ में आया? कल नया आया है। यह अष्टपाहुड़ नया प्रकाशित हुआ है। पुराना है? भाई हमारे धन्नालालजी सेठ हैं न, सेठ। स्पष्टीकरण तो करे न बराबर। न करे? देखो! सातवीं

देखो। उसमें भी चिह्न किया है, देखो! **'सुत्तत्थपयविणट्ठो मिच्छादिट्ठी हु सो मुणेयव्वो'** आगे कहा कि **सूत्र के अर्थ पद से भ्रष्ट है, उसको मिथ्यादृष्टि जानना।** यह पहला है। यह तो खोटा अर्थ करे न... यह जरा चरणानुयोग... **जो सूत्र के अर्थ और पद से विनष्ट है, वह प्रगट मिथ्यादृष्टि है। इसलिए जो सचेल है, वस्त्र सहित है...** लो। **हास्य कुतूहल में भी पाणिपात्र अर्थात् हस्तरूप पात्र से आहारदान नहीं करना।** कुतूहल से भी नहीं करना—कुतूहल से नहीं देना, ऐसा कहते हैं। अर्थ में ऐसा है। पीछे भी आया है। **'हरिहरतुल्लो वि णरो'** लो, आहाहा! गजब! यह तो बड़ा अक्षर है।

यहाँ तो कहते हैं, निर्यापक आचार्य, भगवान ने कहा ऐसे शास्त्र की रचना सन्तों ने की हो, उसका नाम प्रतिक्रमण कहा जाता है। वह द्रव्यश्रुतरूप प्रतिक्रमण... वह द्रव्यश्रुत हुआ न! भावश्रुत तो अन्दर में आनन्द में है। **द्रव्यश्रुतरूप प्रतिक्रमणनामक सूत्र में प्रतिक्रमण का अति विस्तार से वर्णन किया है, तदनुसार जानकर...** देखो! उस अनुसार जानकर, बस, **जिननीति को अनुल्लंघता हुआ...** जिननीति, व्यवहार प्रतिक्रमण वह व्यवहार जिननीति है, व्यवहार। यह व्यवहार नीति है। **जिननीति को अनुल्लंघता हुआ जो सुन्दरचारित्रमूर्ति महामुनि सकल संयम की भावना करता है,** सार और असार—दोनों का विचार करके सार बनाया है। ऐसा बनाया है। असार... सारासार का विचार करने में सुन्दर चातुर्य... यह तो मुनि कहते हैं, इतनी बात। मुनि कैसे हैं? कि सार-असार का विवेक जिनको है, उसने बनाया है, ऐसा। समझ में आया?

भगवान ने कहा वास्तविक मार्ग दर्शन-ज्ञान-चारित्र की खबर है, मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र की भी जिसे खबर है। ऐसा चातुर्य ज्ञानी—धर्मात्मा दिगम्बर मुनि, उसने रचा हुआ प्रतिक्रमण है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! इस चारित्र के बिना कभी मुक्ति नहीं होगी। पहले चारित्र क्या है, उसको समझना चाहिए। क्योंकि नौ तत्त्व में संवर-निर्जरा आते हैं या नहीं? तो संवर-निर्जरा, वह चारित्र है। उस नव तत्त्व के श्रद्धान में संवर-निर्जरा किसको होता है, कितने प्रकार से होता है—ऐसी उसकी श्रद्धा तो करनी चाहिए। समझ में आया? आहाहा! दुनिया के साथ तो... दुनिया प्रसन्न रहे, वह बात करना... लोक-ऐषणा—दुनिया कैसे प्रसन्न हो, यह मार्ग वह नहीं है। यह तो वीतराग का मार्ग है। आहाहा!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : सारासार—सार-असार अर्थात् सत्य क्या और असत्य क्या है? सार का सार उसका यहाँ प्रश्न है ही नहीं। यहाँ तो सार-असार शब्द है। 'सार-असार का विचार करने में तत्पर' ऐसी बात की है न! वह सार का सार... यह कोई दूसरी जगह 'दंसणसार, ज्ञानसार, चारित्रसार' गाथा है। यह अष्टपाहुड़ में है। यहाँ तो सार और असार—सत्य और असत्य जिसको विवेक है, ऐसा सुन्दर चातुर्य मुनि, उसने बनाया हुआ प्रतिक्रमण, ऐसा कहते हैं। व्यवहारप्रतिक्रमण भी उसने बनाया, वह व्यवहार है। समझ में आया?

और **तदनुसार जानकर जिननीति को अनुल्लंघता हुआ...** यह व्यवहार की नीति उसे होती है, ऐसा कहते हैं। **सुन्दरचारित्रमूर्ति...** आहाहा! व्यवहार विकल्प से भी उदास हो गया। **महामुनि सकल संयम की भावना करता है,...** वीतरागी पर्याय की भावना करते हैं, ऐसा कहते हैं। व्यवहार प्रतिक्रमण का विकल्प छोड़कर... आहाहा! उसके स्वरूप में स्थिर रह सके नहीं, तब ऐसा व्यवहार प्रतिक्रमण का विकल्प मुनि को आता है। सवेरे-शाम मुनि भी करते हैं, परन्तु राग से हटकर... आहाहा! सफलपना तो उसको ऐसा है कि उसको छोड़कर स्वरूप की रमणता करना, तो व्यवहार व्यवहार को निमित्त कहने में आता है। समझ में आया? आहाहा!

अरे! अनादि काल का प्राणी चौरासी लाख के... आहाहा! भावपाहुड़ में पाठ है न? तूने दिगम्बर (साधु)पना लिया। तेरी मोरपिच्छी का कटका-टुकड़ा एक-एक करके लो तो अनन्त मेरु भरे, उतना द्रव्यलिंग तूने धारण किया। एकबार द्रव्यलिंग (लिया तब का) एक मोरपिच्छी का टुकड़ा लें, ऐसा अनन्त बार द्रव्यलिंग लिया कि मोरपिच्छी के टुकड़ों के अनन्त मेरु भरे। आहाहा! परन्तु अपनी चीज़ क्या है, उस ओर का झुकाव हुआ नहीं। आहाहा! अनन्त बार चौरासी के अवतार में द्रव्यलिंगी भी किसी प्रदेश में जन्मा न हो, मरा न हो, ऐसा कोई प्रदेश नहीं। ऐसा पाठ है। द्रव्यलिंगी (होने के) बाद, हों! आहाहा! अरे! यह तो दूसरी चीज़ है। पंच महाव्रत के विकल्प और नग्नपना... द्रव्यलिंग तो तब कहने में आता है, जब बराबर निरतिचार आगम प्रमाण से

हो तो। दोनों को—भव्य और अभव्य दोनों को। द्रव्यलिंग अभव्य को भी हो और भव्य को भी होता है। भव्य अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गया। कहाँ से गया? भावलिंग से गया? भाव(लिंग) अनन्त बार होता ही नहीं। भाव(लिंग) तो २८... कितनी बार कहते हैं? २८ बार? ३२ बार। गोम्मटसार में पाठ है। भावसंयम ३२ बार आता है। गोम्मटसार। द्रव्यसंयम तो अनन्त बार हुआ। नौवें ग्रैवेयक में अनन्त बार कौन हुआ? भव्य और अभव्य दोनों गये। उसमें क्या है? वह कोई नयी चीज़ नहीं है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, सकलसंयम की भावना... **उस महामुनि को कि जो (महामुनि) बाह्य प्रपंच से विमुख है,...** आहाहा! **पंचेन्द्रिय के विस्तार रहित...** पंचेन्द्रिय का विस्तार गुम हो गया, अन्दर अतीन्द्रिय हो गया। **देहमात्र जिसे परिग्रह है...** यह देह तो छोड़ा जाता नहीं, इसलिए एक शरीरमात्र रह जाता है। देखो! वस्त्र नहीं, पात्र नहीं, यहाँ तो मोरपिच्छी (आदि) सबको निकाल दिया। आहाहा! समझ में आया? देहमात्र... परन्तु क्या (करे)? शरीर जाता नहीं। आहाहा! **और परम गुरु के चरणों के स्मरण में आसक्त जिसका चित्त है,...** देखो! ऐसा मुनि। महागुरु परमगुरु के चरण के स्मरण में आसक्त जिसका चित्त, ऐसे को प्रतिक्रमण है। उसको प्रतिक्रमण है। आहाहा!

[अब इस परमार्थ-प्रतिक्रमण अधिकार की अन्तिम गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव दो श्लोक कहते हैं]:—

निर्यापकाचार्यनिरुक्तियुक्ता-
मुक्तिं सदाकर्ण्य च यस्य चित्तम्।
समस्त-चारित्र-निकेतनं स्यात्,
तस्मै नमः संयम-धारिणेऽस्मै ॥१२५॥

पद्मप्रभमलधारिदेव भावलिंगी सन्त भी सन्तों को नमस्कार करते हैं। आहाहा! **श्लोकार्थः निर्यापक आचार्यों की निरुक्ति (-व्याख्या) सहित...** निरुक्ति का अर्थ व्याख्या। महामुनि—सन्त कुन्दकुन्दाचार्य जैसे, अमृतचन्द्राचार्य जैसे, पूज्यपादस्वामी... समझ में आया? नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती—महासन्त धर्म के स्तम्भ, केवलज्ञानी का पंथ जिन्होंने सम्हाल रखा है। ऐसे मुनियों ने रचे हुए व्याख्यासहित **(प्रतिक्रमणादि**

सम्बन्धी) कथन सदा सुनकर जिसका चित्त समस्त चारित्र का निकेतन (-धाम) बनता है,... देखो! 'सुनकर' लिया। 'करके' ऐसा नहीं लिया। सुना, तब वह विकल्प है न! सुबह-शाम प्रतिक्रमण बोलते हैं और प्रतिक्रमण व्याख्या, तब विकल्प है। **जिसका चित्त समस्त चारित्र का निकेतन...** ओहो! राग को छोड़कर अन्तर घर में रमने लगा **ऐसे उस संयमधारी को नमस्कार हो।** लो। मुनि कहते हैं। आहाहा! धन्य अवतार! सफल जिन्दगी! जिन्होंने आत्मा में चारित्र वीतरागी पर्याय (प्रगट की), आहाहा! उनको हम चरण में नमस्कार करते हैं, ऐसा कहते हैं। १२६ न?

यस्य प्रतिक्रमण-मेव सदा मुमुक्षो-
र्नास्त्यप्रतिक्रमणमप्यणुमात्रमुच्चैः।
तस्मै नमः सकल-संयम-भूषणाय,
श्रीवीरनन्दि-मुनि-नामधराय नित्यम्॥१२६॥

देखो! वह 'निर्यापक' (शब्द) आया न तो अपने गुरु को याद किया। पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि हैं, भावलिंगी सन्त हैं। **श्लोकार्थः मुमुक्षु ऐसे जिन्हें (-मोक्षार्थी ऐसे जिन वीरनन्दि मुनि को)...** आहाहा! **सदा प्रतिक्रमण ही है...** हमारे गुरु को सदा प्रतिक्रमण है। देखो! समझ में आया? **और अणुमात्र भी अप्रतिक्रमण बिल्कुल नहीं है,...** देखो! आहाहा! उनके गुरु ... लेते हैं, (ऐसा) उनको ख्याल में आ गया। केवली को ही ख्याल में आता है, ऐसा नहीं। समझ में आया? ये भावलिंगी हैं, ऐसा (मात्र) केवली ही जाने, ऐसा नहीं है। धर्मात्मा भी जान सकते हैं। समझ में आया? पद्मचन्दजी! कहाँ गये बाबूजी? देखो! यहाँ ऐसा आया। रतनलाल गंगवालजी! क्या कहते हैं? कि हमारे गुरु भावसंयमी थे, भावलिंगी थे, हमको खबर है। समझ में आया? दोनों पंचम काल के मुनि हैं। दोनों छद्मस्थ हैं। दोनों केवली नहीं हैं। कहते हैं कि हमारे वीरनन्दि गुरु को सदा प्रतिक्रमण ही है। झूठ बोलते हैं ये? आहाहा! हमारे ज्ञान में आ गया है हमारा दोष। सदा राग से रहित स्वरूप की रमणता में ही सदा विराजते हैं। आहाहा! समझ में आया? इतना मति-श्रुतज्ञान काम करता है। छद्मस्थ के मति-श्रुतज्ञान में भी, अपने गुरु ऐसे थे—ऐसा भान हो गया, प्रतिबुद्ध हो गया, समझ में आया? निःशंक रीति से हो गया। ओहो! **अणुमात्र भी अप्रतिक्रमण बिल्कुल नहीं है,...** गुरु तो अभी छद्मस्थ हैं। अन्तर में रमणता

है, निर्विकल्प प्रचुर स्वसंवेदन है, उसको जरा भी अप्रतिक्रमण नहीं है। आहाहा!

उन सकलसंयमरूपी भूषण के धारण करनेवाले श्री वीरनन्दि नाम के मुनि को नित्य नमस्कार हो। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द में रमनेवाले छद्मस्थ मुनि होकर भी स्वरूप में अप्रतिक्रमण जरा भी नहीं। आहाहा! उस समय में राग आता है, वह नहीं लिया, स्वरूप में स्थिरता, वही उस समय की चीज़ है। आहाहा! निर्विकल्प आनन्द आना। जिसको विकल्प छूटकर, व्यवहार प्रतिक्रमण का विकल्प छूटकर आनन्द का स्वसंवेदन तो है, परन्तु छूटकर विशेष आनन्द आया, ऐसे मुनि को मेरा नमस्कार। क्या राग को नमस्कार करना है? पंच महाव्रत के विकल्प को नमस्कार है? नमस्कार तो गुण को है। निर्मल वीतरागी पर्याय प्रगट हुई, उसे नमस्कार।

यह पाँचवाँ अधिकार पूरा हुआ। पाँचवाँ अधिकार है न! पहला जीव अधिकार, दूसरा अजीव अधिकार, तीसरा शुद्धतत्त्व (शुद्धभाव) अधिकार, चौथा व्यवहार (चारित्र) अधिकार, यह पाँचवाँ परमार्थ प्रतिक्रमण अधिकार। अब निश्चय प्रत्याख्यान अधिकार आया। लो, अपना दसवाँ दिन हुआ यहाँ। आज दसवाँ दिन है न कक्षा का। उसमें प्रतिक्रमण का अधिकार आया इतना। अब प्रत्याख्यान का अधिकार।

★★★

— ६ —
निश्चयप्रत्याख्यान अधिकार

छठवाँ निश्चय-प्रत्याख्यान अधिकार। **अब निम्नानुसार निश्चय-प्रत्याख्यान अधिकार कहा जाता है...** प्रत्याख्यान अर्थात् ज्ञान की रमणता। राग का त्याग और ज्ञानरूप परिणमन होना, उसका नाम प्रत्याख्यान कहने में आता है। प्रतिक्रमण (भूतकाल) का है, प्रत्याख्यान भविष्य का है। भविष्य में रागादि न होना, ऐसी वर्तमान में एकाग्रता है। भविष्य में नहीं होगा। समझ में आया? प्रतिक्रमण भूतकाल की अपेक्षा से है। प्रत्याख्यान भविष्यकाल की अपेक्षा, परन्तु है तो वर्तमान। पश्चात् आलोचना, वह वर्तमान की अपेक्षा से। हैं तो तीनों वर्तमान की अपेक्षा से, परन्तु उसे भूत की अपेक्षा, भविष्य की और वर्तमान। भूतकाल का प्रतिक्रमण, भविष्य का प्रत्याख्यान, वर्तमान में संवर—ऐसा शब्द आता है। भूतकाल का प्रतिक्रमण, भविष्य का प्रत्याख्यान और वर्तमान की आलोचना। कहते हैं कि अपने स्वरूप में प्रत्याख्यानरूप ज्ञान होना... आगे लेंगे। प्रत्याख्यान का अर्थ, यह विकल्प से प्रत्याख्यान लेना, वह प्रत्याख्यान नहीं है। हाथ जोड़ के लिया, वह प्रत्याख्यान नहीं है। स्वरूप में रागरहित परिणमन (कि) भविष्य के काल में मुझे शुभ-अशुभ होगा ही नहीं। समझ में आया? ऐसा जो वर्तमान में जोर डालकर अन्तर में एकाग्र होना, वह निश्चय प्रत्याख्यान—सच्चा प्रत्याख्यान है। आहाहा! गाथा रखेंगे समयसार की। **'सव्वे भावे जम्हा पच्चक्खाई'** आता है न? यह फिर आयेगा। ३४वीं गाथा आयेगी समयसार की।

कहते हैं, भगवान आत्मा अपना निश्चय सम्यग्दर्शन, अपना स्वाश्रयी निश्चयज्ञान और स्वरूप में स्थिरता (कि जिससे) भविष्य में राग-द्वेष न होना, ऐसा प्रत्याख्यान, वह कैसा है? **कि जो निश्चयप्रत्याख्यान सकल प्रव्रज्यारूप साम्राज्य की विजय-ध्वजा के विशाल दण्ड की शोभा समान है,...** आहाहा! सकल प्रव्रज्यारूप साम्राज्य... यह वीतरागी प्रव्रज्यारूप साम्राज्य। आहाहा! उसकी विजयध्वजा... साम्राज्य की विजयध्वजा... उसका दण्ड। ध्वजा को दण्ड होता है न! **विशाल दण्ड की शोभा**

समान है,... आहाहा! मुनि भी प्रमाद में आ गये हैं। सकल प्रव्रज्यारूप साम्राज्य... यह साम्राज्य धूल का नहीं। सेठ! बुन्देलखण्ड का बादशाह नहीं। यह सेठिया कहलाये वहाँ। शोभालाल भगवानदास। यह साम्राज्य है। सेठ!

वह कहा था न। हम जामनगर... करोड़ का तालुका है न? करोड़ रुपये का तालुकादार है। जामनगर। हम गये थे (संवत्) २०१० के वर्ष में। उसको—दरबार को खबर पड़ी। उसकी आँख दुःखती थी। महाराज! ...उसके बँगले के पास हम जंगल—दिशा जाते थे सुबह में। पाँच मिनिट का रास्ता था, उसके बँगले से। उसको खबर पड़ी कि महाराज यहाँ सुबह में जंगल जाने को आते हैं। तो (उसके) व्यक्ति से कहलवाया, महाराज! बँगले में दर्शन देना। हम जाते थे (वहाँ से) पाँच मिनिट का रास्ता था। हम गये अन्दर। दरबार बैठा था। उसकी रानी होशियार। गुलाबरानी कहलाये। गुलाबरानी बहुत क्रोधी थी—बहुत क्रोधी थी। गये थे तो रंगोली की थी। रंगोली समझे? आँगन में रंगोली की थी। हम गये, रानी आयी सामने। ... वह खड़ा था अन्दर। गये, पाव घण्टे (१५ मिनिट) सुनाया।

कहा, दरबार! यह साम्राज्य नहीं। यह तो पाप का साम्राज्य है। रानीसाहेब तो... थे। सुबह में, अभी तो दूध भी नहीं पिया था। सवेरे गये थे। यह साम्राज्य नहीं। साम्राज्य अनन्त गुण का नाथ आत्मा, उसका साम्राज्य का पता लग जाये तो वह साम्राज्य है। रानी बोली, हाँ! महाराज! साम्राज्य तो वह है, यह साम्राज्य नहीं। ऐसा बोली... थी। १५ मिनिट बैठे। एक हजार रखे, एक हजार। १५ मिनिट गये न। ज्ञान खाते रखना। अपने डाला है, भाई सत्तास्वरूप में, मोक्षशास्त्र में डाले हैं। दरबार ने १००० दिये। १५ मिनिट बैठे, वे एक हजार रखे। वह तो बड़ा करोड़पति है, उसे हजार की कहाँ (गिनती)? परन्तु साम्राज्य यह नहीं, कहा। धूल का साम्राज्य है। चला जायेगा... को छोड़कर। आहाहा!

यहाँ क्या कहते हैं? प्रव्रज्यारूप साम्राज्य। आहाहा! जिसकी प्रव्रज्या चारित्र हुआ, वह साम्राज्य हुआ। आहाहा! धन्य अवतार! समझ में आया? अनन्त गुण का साम्राज्य हाथ में ले लिया। ऐसा प्रव्रज्यारूप... यहाँ तो प्रव्रज्या को, भाई! साम्राज्य कहा है। आहाहा! चारित्ररूपी धन प्राप्त हुआ। तपोधन कहते हैं न! आहाहा! अतीन्द्रिय

आनन्द की चारित्र में रमणता, वह उसका धन है। यह धूल का धन—मिट्टी का धन तो किसी का है नहीं, वह तो उसका—जड़ का है। साम्राज्य की विजयध्वजा... फिर कहते हैं, हमारा चारित्र विजयध्वजा है। हमारी जीत हुई है। अज्ञान और राग-द्वेष की पराजय हुई है। हमारी जय से हम मोक्ष लेंगे। ऐसी प्रव्रज्या से मोक्ष लेंगे। हमारी विजयध्वजा फहराती है। समझ में आया?

चारित्र मुक्ति का कारण है न, मूल तो सम्यग्दर्शन। 'चरितं खलु धम्मो।' आता है न (प्रवचनसार, गाथा ७)। चारित्र, सम्यग्दर्शन-ज्ञान हो तो चारित्र है। उसके बिना चारित्र-फारित्र होता नहीं। विजयध्वजा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मुनि तो देखो! हमारी प्रव्रज्या यह साम्राज्य है, विजयध्वजा है। हमारी विजय हुई है। उसे विजय से हम केवलज्ञान लेंगे। आहाहा! **विशाल दण्ड की...** देखो! वापस। यह प्रव्रज्या की ध्वजा, उसका विशाल दण्ड। दण्ड होता है न। आहाहा! **दण्ड की शोभा समान है,...** आहाहा! यह प्रव्रज्या।

समस्त कर्मों की निर्जरा के हेतुभूत है,... आहाहा! अपने द्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन प्रगट किया, द्रव्य में से ज्ञान आया और द्रव्य के आश्रय से लीनता हुई, वह सब कर्मों की निर्जरा का हेतु है। संवर है न वह? चारित्र संवर है। कर्म की निर्जरा कहे कोई। यह **मोक्ष की सीढ़ी है...** आहाहा! कौन वह? निश्चय प्रत्याख्यान, ऐसा कहते हैं। निश्चय प्रत्याख्यान कैसा है? कि सकल प्रव्रज्या के साम्राज्य की विजय ध्वजा के दण्ड की शोभा समान। यह निश्चय प्रत्याख्यान ऐसा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! स्वरूप में रमणता, ज्ञान ज्ञानरूप रहना, उसका नाम प्रत्याख्यान है। आहाहा! यह मोक्ष की सीढ़ी है। आहाहा! निसरणी—सीढ़ी। निश्चय प्रत्याख्यान रागरहित अपना शुद्ध परिणमन हुआ, तो वह सीढ़ी मुक्ति की है। उस श्रेणी से केवलज्ञान लेगा। उस धारा से मुक्ति लेगा। हमारी मुक्ति फिरे नहीं, ऐसी हमारी विजय है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

और मुक्तिरूपी स्त्री के प्रथम दर्शन की भेंट है। कौन? निश्चय प्रत्याख्यान। आहाहा! राग—विकल्प से रहित, आकुलता से रहित, अपना अनाकुल आनन्द का परिणमनरूपी नित्य निश्चय प्रत्याख्यान, वह मुक्तिरूपी स्त्री के प्रथम दर्शन की भेंट है।

आहाहा! प्रथम भेंट। आहाहा! विवाह में पहले दिन की भेंट करते हैं न! क्या कहते हैं? यह कहते हैं। आहाहा! वह राजा था न? विवाह किया, पहली रात्रि में एक करोड़ रुपये खर्च किये। एक करोड़। क्या दिन कहा जाता है उसे?

मुमुक्षु : ईराक का राजा

पूज्य गुरुदेवश्री : ईराक का राजा। परन्तु नाम कहलाता है... पहली रात्रि का नाम कहलाता है। अपने भूल गये।

मुमुक्षु : सुहागरात।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुहागरात। यह दुनिया की बात अपने को याद नहीं रहती। वह सुहागरात कहलाती है। यहाँ कहते हैं, हमारी सुहागरात... आहाहा! निश्चय प्रत्याख्यान, यह हमारी प्रथम मुक्तिरूपी स्त्री की भेंट है। समझ में आया? ऐसा कहते हैं कि हमें कितना आनन्द है और कितने आनन्द की भेंट हो जायेगी एक निश्चय प्रत्याख्यान के कारण से। आहाहा! समझ में आया? वह गाथा आगे कहेंगे, लो।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल १५, शुक्रवार, दिनांक - ६-८-१९७१
गाथा-९५, प्रवचन-८७

यह नियमसार सिद्धान्त है, प्रत्याख्यान अधिकार चलता है। आज श्रावणी (रक्षा) पूर्णिमा है न श्रावणी पूर्णिमा? रक्षाबन्धन। उसका अर्थ क्या? उस समय सात सौ मुनि थे... उज्जैन नगरी में पहले थे न? उनके साथ बलि मन्त्री का विरोध हुआ। शास्त्रार्थ किया एक मुनि ने (तो) विरोध हुआ। मारने को आये, परन्तु नगर के देव ने उसका हाथ पकड़ लिया तो अपमान हुआ। गाँव का सारा... निकल गये। हस्तिनापुर में गये। सात सौ मुनि आत्मध्यान में विचरते-विचरते वहाँ आ गये। उसको (-राजा को) खबर पड़ी। सारे लोग दर्शन करने को जाते थे। राजा ने पूछा मन्त्री को (कि) क्या है? कि जैन के नग्न मुनि आये हैं, उनके दर्शन करने को जाते हैं। विरोधी था न, वह तो विरोधी था। आहाहा! ऐसे काल में भी ऐसे सन्त, उनका भी विरोधी था। आत्मध्यान में अमृत के स्वाद में सन्त मस्त थे।

विरोधी को तो पहले सात दिन का वचन दिया था न पहले। तो राज माँग लिया। सात दिन में तो नरयज्ञ शुरु कर दिया। त्रास... त्रास। सन्त तो ध्यान में बैठे थे। चारों ओर हड्डियाँ, माँस और लकड़ियाँ सुलगती थीं। जला दिया... जब क्षुल्लक को खबर पड़ी कि (मुनि को) त्रास है। नक्षत्र भी काँप उठे, श्रवण नक्षत्र। क्या है? यह श्रावण है न? तो रात्रि का श्रवण नक्षत्र होता है। उसको ऐसा लगा कि यह क्या है? उपद्रव है। मुनि को कैसे बचाऊँ? आचार्य को पूछा कि क्या है? हस्तिनापुर नगर में बड़ा उपद्रव है। विष्णुकुमार के पास जाओ। विष्णुकुमार को विक्रियालब्धि थी, वह भी (स्वयं को) खबर नहीं थी। अपने स्वरूप का ध्यान करने में यह (लब्धि) हो, उसमें क्या है? अपना स्वरूप केवलज्ञान को साधना हो, साधे (सो) साधु। अपना निज स्वरूप का साधन करते थे, उसमें लब्धि हो या न हो, खबर ही कहाँ है? आहाहा!

वहाँ क्षुल्लक ने जाकर कहा कि साहेब! आपको विक्रियालब्धि है। सात सौ

मुनियों पर बड़ा उपद्रव हो गया है, त्रास है। हस्तिनापुर में श्रावकों ने अन्न-पान त्याग कर दिया है। जब तक मुनि का उपसर्ग न टले, तब तक (के लिये) श्रावकों ने आहार-पानी छोड़ दिया है। बड़ा उपद्रव है, आप पधारो। ओहोहो! हाथ लम्बा किया तो लम्बा हो गया। ओहो! है विक्रियालब्धि। तब तक खबर भी नहीं थी। आहाहा! इतने निस्पृही सन्त हैं। अपनी विक्रियालब्धि उत्पन्न हुई, इतनी भी खबर नहीं थी। क्या काम है परन्तु उसमें? आहाहा! अपने निर्मल आनन्दस्वरूप की साधना अन्दर में करते थे, वही उनका कर्तव्य था। आहाहा! खबर पड़ी, फिर साधुपना छोड़ दिया। नहीं तो ऐसा नहीं करना चाहिए। परन्तु ऐसा प्रसंग आ गया तो उनको वात्सल्य आ गया। वात्सल्य आ गया। राग आया... राग आया। (ऐसा) शुभराग का विकल्प उस भूमिका में शोभता नहीं मुनि को, परन्तु आ गया (और) मुनिपना छूट गया। आहाहा! ब्राह्मण का वेश लिया। कपट हो गया न, कपट। और वहाँ जाकर बलिराजा को... बहुत लम्बी कथा है। यह तो सुनी है सबने। यहाँ तो इतना कहना है कि कितना प्रेम! ओहो! धर्मात्मा के प्रति धर्मात्मा का प्रेम कितना! वात्सल्य। समझ में आया? अपना मुनिपद छोड़कर भी उनको—सात सौ मुनियों को वात्सल्य किया। आहाहा! वह तो ऐसे ही बनना था, परन्तु उनको ऐसा विकल्प आये बिना रहता नहीं।

मुमुक्षु : आपको भी तो हम लोगों के प्रति वात्सल्य भाव है....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा विकल्प हो, परन्तु है बन्ध का कारण। नन्दकिशोरजी! आता है, आये बिना रहता नहीं। (पूर्ण) वीतराग नहीं है, (तब तक) धर्मात्मा के प्रति प्रेम आये बिना रहता नहीं। आहाहा! धन्य अवतार! जो आत्मा का साधन करते हैं, ऐसे के प्रति प्रेम, उत्साह, वात्सल्य आता है। यह समकित के आठ आचार हैं। है या नहीं? निःशंक, निःकांक्षित, ... वात्सल्य आता है। हो भले व्यवहार, परन्तु आये बिना रहे नहीं। व्यवहार है, व्यवहार नहीं है, ऐसा नहीं है। आहाहा! है, परन्तु उसका अर्थ क्या है? उससे कोई आत्मा का निश्चय लाभ हुआ? आता है, आता है, जबतक (पूर्ण) वीतराग नहीं।

धर्मात्मा के प्रति..., अहो! धर्म की जिसकी अन्दर रुचि है... 'न धर्मो धार्मिके

बिना' आता है या नहीं? रत्नकरण्ड श्रावकाचार। धर्म धार्मिकजीव के बिना होता नहीं कहीं। धार्मिक जीव के प्रति प्रेम नहीं तो धर्म के प्रति उसको प्रेम नहीं। आहाहा! रत्नकरण्ड श्रावकाचार। समन्तभद्र आचार्य। ओहो! दिगम्बर सन्त महा भगवतीस्वरूप, जो अपना भगवान साक्षात् साधते हैं, उनको भी ऐसा भाव हो गया—विष्णुकुमार को। फिर तीन पैर (कदम) भूमि ली, वामन शरीर बड़ा लम्बा किया। यह कोई मुनि की दशा में होता है? ऐसा वात्सल्यभाव आया और उस समय वहाँ (मुनियों का) जीवन रहने का था, निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध ऐसा हो गया। आहाहा! देखो! ऐसे अच्छे काल में ऐसे मुनि को उपद्रव... वह काल तो बड़ा (अच्छा) था न। ओहोहो! अच्छे काल में सात सौ... सात सौ मुनियों को जलाने की (चेष्टा)। गजब बात है। समझ में आया?

प्रेम से सब काम किया, परन्तु (बाद में) मुनिपना ले लिया। (ब्राह्मण वेश) छोड़ दिया। वह मेरा कर्तव्य नहीं। वात्सल्य आ गया था। फिर से मुनिपना ले लिया, आत्मसाधना कर ली। समझ में आया? ऐसे धर्मी के प्रति धर्मात्मा को वात्सल्य (आना), यह समकित के आठ लक्षण में से (एक) लक्षण है। आठ आचार में से आचार है। समकित के आठ चिह्न, उसमें वह चिह्न है। समझ में आया? व्यवहार के स्थान में व्यवहार होता है, परन्तु वह समझता है धर्मात्मा कि यह राग है। हेयबुद्धि से आये बिना रहता नहीं। शान्ति कितनी! अमृत के स्वाद में अन्दर आनन्द में रहते थे सात सौ मुनि और अग्नि जलती थी चारों ओर। आहाहा! और अग्नि नजदीक आती थी जलते-जलते। अमृत के सरोवर में, जैसे (पानी के सरोवर में) डुबकी लगाते हैं, वैसे अन्दर में डुबकी लगाते थे। हमें कुछ है नहीं। आहाहा!

धन्य अवतार! जिसने अपना स्वरूप साधन करके जीवन सफल किया। समझ में आया? यह वात्सल्य स्मरण के लिये यह दिन है। आहाहा! बालक हो आठ वर्ष का और समकित हो जाये, बालिका हो शरीर से (और) समकित हो जाये। उसके प्रति भी... बड़ा राजा हो, चक्रवर्ती हो, तो भी धर्म के प्रति धर्मी (को) प्रेम होता है। उसके प्रति (द्वेष कि) छोटी बालिका को इतना धर्म हो गया। समझ में आया? हम तो इतने-इतने वर्ष से करते हैं, अभी आगे बढ़े नहीं और इसे हो गया—ऐसे धर्मी के प्रति अनादर—तिरस्कार नहीं होता। वात्सल्य धन्य अवतार, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

क्षायिक समकित हो जाये आठ वर्ष के बालक को, अन्तर्मुहूर्त में केवल (ज्ञान), मोक्ष। ओहोहो! निगोद में से निकलकर भरत चक्रवर्ती के ९२७ पुत्र, ९२७। आहाहा! निगोद में से निकलकर गिजाई हुए। ममोला समझते हो? वह लाल नहीं होता? लाल कीड़ा होता है मक्खन जैसा। निगोद में से निकलकर उसमें वहाँ आये और ... चक्रवर्ती के... चक्रवर्ती के यहाँ ९२७ राजकुमार। ओहोहो! देखो! कितनी... एक निगोद में से सीधे गिजाई। ...कहते हैं हमारे यहाँ। आहाहा! लाल होता है मक्खन जैसा। ....का चूरा होकर वहाँ ९२७ उत्पन्न हुए। ओहोहो! कुदरत परिणाम तो देखो! और बोले नहीं— भाषा नहीं। चक्रवर्ती के सब पुत्र भगवान के पास गये वन्दन करने को। भरत ने प्रश्न किया, प्रभु! चक्रवर्ती के पुत्र कितनी ऋद्धि, कितनी सम्पदा, कितनी शरीर की सुन्दरता! आहाहा! मतिरत्न के पुतले जैसे थे। महाराज! मेरे घर पुत्र आये और बोलते नहीं, क्या है? ऐसा प्रश्न किया।

एकदम कुँवर उठे, खड़े हो गये। महाराज! हमको दीक्षित करो। लो, यह बोले। आहाहा! हम हमारा आत्मसाधन करेंगे। क्षणभर भी हमको बाहर की रुचि रही नहीं अब। आहाहा! हम तो अन्दर साधन करेंगे। अरे! तुम मणिरत्न के मकान में रहनेवाले, भोजन बत्तीस प्रकार के अनुकूल लेनेवाले, क्या... ? ओहोहो! हमारा आनन्द, अन्तर में अमृतरूपी पीयूष को हम पियेंगे, निर्विकल्प आनन्द पियेंगे, उसमें हमारी मस्ती है। आहाहा! एक क्षण में राज... छोड़ दिया। जिसको आत्मा का... दूसरा आता है न, भरत के पुत्र। कौन? हाँ, वे। नाम क्या? रविकीर्ति। रविकीर्ति आदि १०८ राजकुमार, हों! स्वर्ण की गिल्ली से ऐसे खेल रहे थे। खेलते थे, उसमें जयकुमार की खबर मिली। सेनाधिपति मुनि हो गये। आता है न! सुलोचना... क्या? जयकुमार और वह स्त्री सुलोचना। हमको इतिहास का नाम बहुत नहीं आता। भाव आता है।

वह जयकुमार दीक्षित हो गया। यह राजकुमार १५-१५, १६-१६ वर्ष की उम्र के, मणिरत्न के पुतले। हाथ में रत्न के डंडे (उससे) खेलते थे। सुना कि जयकुमार मुनि हो गये। ओहोहो! साथ में पुलिस (सैनिक) था न। रक्षण के लिये रखा था न उनके माँ-बाप ने। चलो भैया! अपने यहाँ से... चलो भैया यहाँ से। भगवान के पास

जायें। करते-करते ले गये भगवान के पास। वहाँ जाकर मुनिपना ले लिया। एक साथ। उसमें क्या है ? आहाहा! अरेरे! करना हो तो यह कर्तव्य है। एक रजकण भी उसका नहीं, शरीर का टुकड़ा नहीं, मरते समय श्वास भी उसकी क्रिया नहीं करे। आहाहा! अकेला छोड़कर चले जाना है, तो अपने अन्दर में चले जा न, पर को छोड़कर। आहाहा! ऐसे कितने वैराग्य के अधिकार शास्त्र में हैं। बहुत... बहुत पड़े हैं। सब दीक्षित हो गये, नग्न मुनि (हो गये)। १६-१६ वर्ष की उम्र राजकुमार। समझ में आया ?

एक तो बात ऐसी आती है कि राजकुमार जब दीक्षित होता है, माता के पास जाता है। माता कहे, आज्ञा कैसे दूँ ? भाई! ऐसी सुन्दर अवस्था है। एक शर्त पर आज्ञा दूँ, माता कहती है। क्या ? बेटा! फिर से माता नहीं बनाओ तो आज्ञा दूँ। माता कहती है, मुझे रुदन आता है, बेटा! आज्ञा दूँ, परन्तु फिर से माता न बनाओ तो आज्ञा दूँ। माता! कोलकरार करते हैं कि फिर से माता नहीं, अवतार नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

हमारे जीवराजजी हैं न, जीवराजजी। पत्नी है अभी। दीक्षित हुए ५६ वर्ष हुए, ५६। अभी पत्नी है, माता थी। (दीक्षा के समय) आठ वर्ष का विवाह था, आठ वर्ष। स्त्री उनसे छह महीने बड़ी है। उनकी १३ वर्ष की उम्र थी, उनकी पत्नी की १३.५ वर्ष की थी। विवाह हुआ और आठ वर्ष विवाह को हुआ, वहाँ वैराग्य हो गया। माता-पत्नी और वे—तीन थे घर में। माता! मुझे आज्ञा दो। माता कहे, भाई! तू रोना नहीं, हों! भद्रिक थे वे लोग। स्थानकवासी में दीक्षा ली थी न। माता कहे, बेटा! रोना नहीं, हों! तुझे आज्ञा दूँगी। अकेली स्त्री और स्वयं सासु—दो। घर में कोई तीसरा नहीं था। अभी ऐसी भी स्थिति है न! उस समय तो आत्मज्ञानसहित... आहाहा! भानसहित माता कहती है, बेटा! एक शर्त से आज्ञा दूँ कि दूसरी माता नहीं करना। माता! कोलकरार करते हैं। 'अजेव धम्मं परिवज्याम् जहि पवन्ना न पुणम भवामो।' आज ही हम चारित्र अंगीकार करेंगे, माता! कोलकरार करते हैं, माता! जननी! 'जहि पवन्ना न पुणम भवामो।' हम चारित्र अंगीकार करेंगे, कोलकरार करते हैं कि फिर से भव नहीं करेंगे, जाओ। इस भव में मैं केवल (ज्ञान) लेकर सिद्धपद प्राप्त करूँगा। आहाहा! समझ में आया ?

आत्मा में कितना पुरुषार्थ है! आज सवेरे 'पुरुषार्थ' आया। गौतम(स्वामी) तो

मिथ्यादृष्टि थे और क्षण में मुनि हो गये। गृहीत मिथ्यादृष्टि थे गौतमस्वामी। आत्मा में अनन्त पुरुषार्थ पड़ा है। आहाहा! पुरुषार्थ करना है, वह तो पुरुषार्थ जो पड़ा है, उसके अनन्तवें भाग में पुरुषार्थ है। क्या कहा? आहाहा! अन्दर में भगवान आत्मा तो वीर्य का—पुरुषार्थ का पिण्ड है। अनन्त-अनन्त वीर्य पुरुषार्थ का... अभी आयेगा। '**केवलणाणसहावो केवलदंसणसहावसुहमइओ केवलसत्तिसहावो**' ९६ में आयेगा। आहाहा! अनन्त-अनन्त वीर्यशक्ति आत्मा में है कि पुरुषार्थ करनेवाले को जो अनन्त बल प्रगट होता है, वह तो अनन्त शक्ति के अनन्तवें भाग में है। क्या कहा? समझ में आया?

जो अनन्त वीर्य प्रगट होता है केवली को, वह भी जो अनन्त-अनन्त वीर्य (शक्ति) है, उसके अनन्तवें भाग में है। यह तो पर्याय है और वह तो गुण है। आहाहा! तेरी खान में अनन्त ज्ञान, आनन्द, अनन्त पुरुषार्थ पड़ा है, प्रभु! आहाहा! उसमें वर्तमान पुरुषार्थ करना, वह तो अनन्तवें भाग में है। आहाहा! अनन्तवें भाग में, समझे? बहुत थोड़ा। आहाहा! केवल वीर्य किसे कहते हैं, भगवान का अनन्त वीर्य? वह भी जो अनन्त वीर्यगुण है, उसके अनन्तवें भाग में पर्याय है और यह तो गुण है। आहाहा! ऐसे आत्मा का अन्तर में विश्वास लाकर स्वरूप में रमना, उसका नाम प्रत्याख्यान और चारित्र कहने में आता है। यह अधिकार अपने चलता है। आहाहा!

हम तो सम्प्रदाय में कहते थे। एक बारह कड़ी कही न? उत्तराध्ययन के १४वें अध्ययन में है, उत्तराध्ययनसूत्र है ४५ सूत्र में। उसका १४वाँ अध्याय है। सारा कण्ठस्थ बहुत किया था न, उस समय। सारे छह-सात हजार श्लोक कण्ठस्थ किये थे, छह-सात हजार। यह कड़ी बोलते थे, हम तो ८० के वर्ष पहले, ५० वर्ष पहले। 'छह जीवनिकाय...' छह जीव थे—राजा, रानी, ब्राह्मण, पत्नी और उसके दो पुत्र। दो पुत्र को जातिस्मरण हुआ था। जातिस्मरण होकर माता-पिता के पास आज्ञा लेते हैं। माता! आज्ञा दो। हम आज ही चारित्र अंगीकार करेंगे। 'अजेव धम्मं पडिवज्ज्यामो।' यह शब्द है उत्तराध्ययन में। १४वाँ अध्याय। कण्ठस्थ किया था सारा। 'जहि पवन्ना न पुणम भवामो, अणागयं नैव अस्ति तेंसि...' माता! अप्राप्त जगत की कोई चीज़ बाकी रही नहीं। जगत में अनन्त चीज़ अनन्त बार हमें सब प्राप्त हो गयी है। 'अणागयं नैव अस्ति

तेंसि...' अप्राप्त जगत की चीज़ कोई भी बाकी रही नहीं। हमारा आत्मा एक बाकी रहा है। आहाहा! ... हे माता! विश्वास कर, विश्वास कर। हमारे प्रति राग छोड़कर... अनन्त बार अनन्त चीज़ें मिली हैं। एक आत्मा का अनुभव नहीं मिला। समझ में आया? वह अपूर्व चीज़ हमको प्राप्त हुई है तो साधने के लिये हम निकल जाते हैं। वन में चले जाते हैं। आहाहा! समझ में आया?

अपने यहाँ प्रत्याख्यान का अधिकार चलता है। देखो! त्याग। यह त्याग। स्वरूप में रमणता—ज्ञान में रमणता करना, वह प्रत्याख्यान है। प्रत्याख्यान कोई बाह्य का त्याग और विकल्प उठाना कि यह छोड़ दूँ, छोड़ दूँ—यह प्रत्याख्यान नहीं। आहाहा! प्रत्याख्यान समझे? पचक्खाण नहीं करते? हमें पचक्खाण है—त्याग है। परन्तु किसका? अपने स्वरूप में राग नहीं लाना, ऐसा हमें प्रत्याख्यान है। आहाहा! यह कहते हैं, देखो! गाथा नहीं बोली गयी न? ९५।

सूत्रावतार: भाषा देखो! सूत्र का अवतार।

मोत्तूण सयलजप्पमणागयसुहमसुहवारणं किच्चा।
अप्पाणं जो झायदि पच्चक्खाणं हवे तस्स॥९५॥

भावी शुभाशुभ छोड़कर तजकर वचन विस्तार रे।
जो जीव ध्याता आत्म, प्रत्याख्यान होता है उसे॥९५॥

टीका : यह, निश्चयनय के प्रत्याख्यान के स्वरूप का कथन है। राग का—विकार का, त्याग और वीतराग की परिणति, ऐसा सच्चा प्रत्याख्यान, उसका स्वरूप है। आहाहा! समझ में आया? आचार्य मुनि जरा व्यवहार समझाते हैं पहले। **यहाँ ऐसा कहा है कि—व्यवहारनय के कथन से, मुनि दिन-दिन में (प्रतिदिन) भोजन करके फिर योग्य कालपर्यन्त अन्न, पान, खाद्य और लेह्य की रुचि छोड़ते हैं;...** एक बार मुनि भोजन लेते हैं। व्यवहार विकल्प आता है। और आहार आया (तो) २४ घण्टे, ४८ घण्टे, ७२ घण्टे इत्यादि अन्न-पानी का त्याग कर देते हैं। यह व्यवहार, यह शुभविकल्प है। समझ में आया? हमारा अनाहारी पद... अनाहारी पद—जिसमें आहार नहीं और आनन्द का जिसका नित्य भोजन है।

'नित्यभोजी' आता है न कलश (१६३) में। बन्ध अधिकार। 'नित्यभोजी'। आनन्द का नित्यानन्द भोजी प्रभु तू है। आहाहा! सुधारस। हमने तो हमारा अमृतरस पिया। अमृत पिया। हमारा अमृत का प्याला—पेय पीते हैं। रागादि, वह जहर है। आहाहा! उसे छोड़ देते हैं, वह तो यहाँ कथनमात्र है। परन्तु अन्तर आनन्द का प्याला पीते मस्ती हो जाये अन्दर... 'जैसे अमली अमल करत समय लाग रही खुमारी।' अमली। आहाहा! मदिरा-बदिरा पीते हैं न? अमल पीते हैं। आँखें लाल ऐसे, खुमारी चढ़ जाती है। 'जैसे अमली अमल करत समय लाग रही खुमारी, तैसे जिनराज सुजस सुन्यो मैं...' अच्छा सुयश वीतरागभाव का सुना, उसका प्याला हमको अन्दर में से चढ़ गया। समझ में आया? 'काहू के कहे कबहूं न छूटे, लोकलाज सब डारि...' दुनिया क्या कहेगी? क्या है? हमें कोई दरकार नहीं। हमें तो हमारे आनन्दस्वरूप भगवान का सम्यग्दर्शन हुआ, तब उसमें लीन होने का, आनन्द पीने का प्रयत्न है। उसका नाम प्रत्याख्यान है। ऐ नन्दकिशोरजी! कायर का तो हृदय काँप उठे, अररर! आहाहा! समझ में आया? वीतराग का मार्ग अलौकिक है। आहाहा! मुनि के प्रति वात्सल्य हुआ, वहाँ आत्मा के प्रति वात्सल्य (हुआ)।

मुमुक्षु : किसके आत्मा के प्रति?

पूज्य गुरुदेवश्री : अपना। दूसरा क्या? आहाहा! ज्ञान और आनन्द के पुरुषार्थ का पिण्ड आत्मा। आनन्द से लो तो आनन्द का पिण्ड, पुरुषार्थ से लो तो पुरुषार्थ का पिण्ड, ज्ञान से लो तो ज्ञान का पिण्ड, श्रद्धा से लो तो श्रद्धा का पिण्ड, चारित्र से लो तो शान्ति का पिण्ड। स्वच्छता से लो तो स्वच्छता का पिण्ड, प्रभुता से लो तो प्रभुता का पिण्ड। शक्ति है न सब। ४७ शक्ति आयी है। आत्मवैभव देखा है? आत्मवैभव (४७ शक्तियों के प्रवचन की पुस्तक) पढ़ा है? ४७ शक्ति। ... आया है। एक पहले आत्मप्रसिद्धि आयी थी हिन्दी में। यह गुजराती में है। नहीं, अभी आत्मवैभव नया प्रकाशित हुआ है। वह आत्मप्रसिद्धि है, वह नहीं। वह साधारण बात है। पहले बहुत वर्ष पहले... यह तो अभी गुजराती में प्रकाशित हुआ है आत्मवैभव। बहुत... जैसे-जैसे आगे बढ़ते हैं, वैसे विशेष स्पष्टता होती है न! आत्मप्रसिद्धि तो बहुत वर्ष पहले आयी थी। वह तो हिन्दी है। यह तो आत्मवैभव है। बड़ी पुस्तक है।

आत्मा का वैभव तो, आत्मा में अनन्त ज्ञान, आनन्द, वह आत्मा का वैभव है। आहाहा! उसमें मुनि चार प्रकार के आहार की रुचि... एक बार भोजन होता है, फिर छोड़ देते हैं। २४ घण्टे, ४८ घण्टे... १५ दिन या महीने आहार नहीं लेना, वह व्यवहार प्रत्याख्यान कहा जाता है। वह शुभविकल्प है। **यह व्यवहार-प्रत्याख्यान का स्वरूप है।** है उसमें? देखो! आहाहा! परन्तु वह निश्चय है तो यह व्यवहार है, ऐसा कहते हैं।

अब निश्चय। **निश्चयनय से, प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त वचनरचना के प्रपंच के परिहार द्वारा...** वचन कहा, परन्तु राग अन्दर में, हों, यहाँ तो वचनप्रपंच कहा है। **प्रपंच=विस्तार। (अनेक प्रकार की समस्त वचनरचना को छोड़कर शुद्ध ज्ञान को भाने से...** देखो! **उस भावना के सेवन की कृपा से—भावकर्मों का तथा द्रव्यकर्मों का संवर होता है।)** क्या कहते हैं? देखो! **प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त वचनरचना...** वह तो वाणी का कथन है, परन्तु प्रशस्त-अप्रशस्त सब परिणाम शुभ और अशुभ। **प्रपंच के परिहार द्वारा...** शुभ-अशुभ विकल्प प्रपंच है। आहाहा! विभाव है, प्रपंच है, दुःख है। भगवान शान्तसरोवर में से बाहर आता है तो वह प्रपंच में आया, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

शुद्धज्ञानभावना की सेवा के प्रसाद द्वारा... देखो! भाषा। सच्चा प्रत्याख्यान, सच्चा त्याग, सच्चा चारित्र कैसे होता है? **शुद्धज्ञानभावना की सेवा...** देखो! आहाहा! व्यवहार विकल्प प्रत्याख्यान तो राग था। अब कहते हैं, उसको भी छोड़कर, अपनी शुद्धज्ञानभावना... त्रिकाल ज्ञायकमूर्ति प्रभु की भावना की सेवा... कहो, गुरु की सेवा, अरिहन्त की सेवा, वह (चारित्र) नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **शुद्धज्ञानभावना की सेवा के प्रसाद द्वारा...** देखो! आहाहा! देखो! यह चारित्र, उसका नाम प्रत्याख्यान, उसका नाम राग का त्याग। यह नास्ति से बात है, अस्ति से तो वीतराग परिणति का होना, यह अस्ति से प्रत्याख्यान है। आहाहा! अन्तर की चीज़ की खबर नहीं और अकेले बाहर से क्रियाकाण्ड करे, उसमें कुछ आत्मा है नहीं। आहाहा! जिसमें आत्मा का स्पर्श न हो, वह क्रिया ही झूठी क्रिया है। व्यवहाररत्नत्रय की क्रिया कथनमात्र है। आया था न पहले। नियमसार में आ गया है। व्यवहाररत्नत्रय कथनमात्र है। वह वस्तु ही झूठी है। आहाहा! भगवान अपना शुद्धज्ञानभाव, ज्ञान की मूर्ति आत्मा है। ज्ञानविग्रहं—

ज्ञान जिसका शरीर है। विग्रह अर्थात् शरीर। आहाहा! ये हड्डियाँ (आदि) यह तो जड़ का शरीर है। समझ में आया?

ओहो! जिसकी दृष्टि शरीर, राग और पर्याय से उठ गयी है और त्रिकाली ज्ञायकभाव की सेवा के प्रसाद से... यह सेवा के प्रसाद से... देखो! आहाहा! **प्रसाद द्वारा...** आहाहा! हमारा आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप प्रभु की सेवा में, भावना की ऐसा में, एकाग्रता की सेवा में... इस सेवा के प्रसाद द्वारा... आहाहा! **जो नवीन शुभाशुभ द्रव्यकर्मों का तथा भावकर्मों का संवर होना सो प्रत्याख्यान है।** जड़कर्म भी आते नहीं, भावकर्म होता नहीं। आहाहा! 'आते नहीं' का अर्थ आनेवाले थे और आते नहीं—ऐसा नहीं। उस समय आनेवाले ही नहीं थे। आहाहा! कठिन मार्ग वीतराग का। अरे! अन्तर चीज़ का पता आये बिना जो कुछ करे, वह सब संसार के खाते है। समझ में आया? **शुभाशुभ द्रव्यकर्मों का तथा भावकर्मों का संवर होना, सो प्रत्याख्यान है।** संवर अर्थात् रुक जाना। राग का रुक जाना और द्रव्यकर्म का रुक जाना और स्वरूप में आनन्द की लहर—मौज आना। आहाहा! सुखरूप है चारित्र। प्रत्याख्यान सुखरूप है, दु:खरूप नहीं। समझ में आया?

यह भगवान विशल्यस्वरूप है। वह विशल्या आती है न विशल्या? जिसके स्नान (स्पर्श किये हुए) पानी छिड़कने से लक्ष्मण जाग गये। यह आत्मा तो विशल्यस्वरूप ही है। समझ में आया? आहाहा! वह विशल्या की (कथा) में आता है न! कहो, स्त्री! पूर्व में चक्रवर्ती की पुत्री थी। जंगल में छोड़ दिया था। तो अजगर ने... उसका पिता शोधते हुए आया। ओहोहो! ऐसे मारने को बाण उठाया। पिताजी! बाण मारना नहीं। मैंने तो चार (प्रकार के) आहार का त्याग किया है। मैं यहाँ से बाहर निकलूँ तो भी मुझे आहार-पानी तो लेना नहीं है। इस अजगर को मारकर क्या करोगे? समझ में आया? चक्रवर्ती की लड़की, चक्रवर्ती... आहा! देखो! इतने भाव से ऐसा पुण्य आया कि जिसके शरीर के, (स्पर्श किये हुए पानी से) लक्ष्मण जैसा वासुदेव (जिसे) रावण की शक्ति लगी थी... सब उपद्रव में थे। रामचन्द्रजी जैसे महापुरुष, पुरुषोत्तम पुरुष, मोक्षगामी अन्तिम—चरम शरीर है। आहाहा! वे भी विचार में पड़ गये कि अरेरे! ... क्या होगा? लक्ष्मण बोलता नहीं। समझ में आया?

यह तो भाई! हम वहाँ दुकान पर यह बोलते थे। ६४, संवत् १९६४ का वर्ष है। समझ में आया? रामचन्द्रजी कहते हैं लक्ष्मण को। शक्ति लगी है न, 'आये थे तब तीन जनें अरु जाऊँगा एकाएक।' सीताजी रावण ले गया, तू जाता है तो मुझे क्या करना? 'आये थे तब तीन जनें अरु जाऊँगा एकाएक, ये माताजी खबर पूछेगी उन्हें क्या क्या उत्तर दूँगा, लक्ष्मण जागने रे जी, बन्धु एक बार बोल दे एकबार जी।' यह हम दुकान पर बोलते थे। थोड़ा-थोड़ा तो समझ लेना तुम्हारे। रामचन्द्रजी कहते हैं लक्ष्मण को, बन्धव! हम वन में तीन आये थे। सीताजी रावण के घर में, तुम ऐसे पड़े हो। यहाँ से हम घर जायेंगे, माताजी पूछेगी (तो) क्या उत्तर दूँगा? भाई! एकबार तो बन्धव! जवाब दे। ... है। 'भाई मूअे भव हारीये, बेनी मूअे दिश जाय, नानपणामां जेनी मा मरे अेने चारों दिशाना वा वाय लखमण।'

यह ६४ की बात है। कितने वर्ष हुए? ६३। प्रतिक्रमण करें न शाम को। ओहो! आठ दिन पर्यूषण के आवे न श्वेताम्बर के। चार अपवास करते, हों! चार तब। आठ दिन में चार अपवास। एक अपवास और एक... चतुर्विध आहार त्याग, हों! पानी-बानी नहीं। ६४ के वर्ष की बात है। पानी नहीं। हम तो पानी नहीं पीते थे। हम चतुर्विध आहार त्याग तो, लगभग ६६ के वर्ष से रात्रि के आहार-पानी का त्याग है। ६६ के वर्ष दीक्षा के चार वर्ष पहले। पानी नहीं और आहार नहीं रात्रि को। हम तो पहले से भगत थे न! दूध-बूध पीते नहीं। हम तो कुछ पीते नहीं। पानी नहीं, आहार नहीं, कोई चीज़ नहीं। ६२ वर्ष हुए। रात्रि को प्रतिक्रमण करके ऐसा बोलते थे। 'भाई मूअे भव हारीअे, बेनी मूअे दिश जाय,' 'दिश जाय' समझते हो? दो की जहाँ हो और मर जाये, उस दिशा ओर जाना पड़े न। और 'नानपणामां जेनी मा मरे अेने चारे दिशाना वा वाय।' चारों ओर अरे! माँ कहीं नहीं मिलती। बोलते थे वैराग्य की बातें। लक्ष्मण और राम की, हों! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, भगवान आत्मा की सेवा करता है। आहाहा! भगवान... भगवान तीर्थंकर की नहीं, राग की नहीं। आहाहा! कैसे शब्द रखे हैं, देखो! लोग कहते हैं न कि किसी की सेवा करना। यह सेवा है। पर की सेवा कौन करता है? पर की सेवा कर कौन

सकता है? विकल्प आओ, (तो) राग है शुभ। समझ में आया? यहाँ, अपनी सेवा कर सकता है—यह बात है। कहो, भीखाभाई! सेवा-बेवा हीराभाई नहीं करे और कोई नहीं करे, ऐसा कहते हैं।

शुद्धज्ञानभावना की सेवा के प्रसाद द्वारा... आहाहा! भाषा तो देखो! पहले शुद्धज्ञान में आत्मा, ऐसा अनुभव हुआ हो, वह आत्मा की सेवा कर सकता है। क्योंकि सेवा जिसकी करना हो, वह ख्याल में आया नहीं तो सेवा करना किसकी? समझ में आया? पहले, यह आत्मा ज्ञान और आनन्दमय है, उसमें संसारमात्र नहीं। आहाहा! संसार से मुक्त प्रभु है। तीनों काल संसार से मुक्त प्रभु आत्मा है। आहाहा! ऐसी वस्तु दृष्टि में आये बिना... यह मनुष्य की सेवा करना रोगी की, परन्तु रोगी पहले है, उस पर नजर पड़े, फिर सेवा (करे) न? इसी प्रकार यह आत्मा, सच्चिदानन्दस्वरूप शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का धाम, यह आत्मा, उसकी सेवा। इस आत्मा का भान तो सम्यग्दर्शन में होता है, ऐसा कहते हैं, परन्तु सेवा, वह चारित्र है। आहाहा! देखो! सन्तों की व्याख्या तो देखो! दुनिया से, सारी दुनिया से उल्टी है। आहाहा!

प्रसाद द्वारा जो नवीन शुभाशुभ द्रव्यकर्मों का तथा भावकर्मों का संवर होना, सो प्रत्याख्यान है। आहाहा! **जो सदा...** उसका नाम प्रत्याख्यान और त्याग कहने में आता है। बाहर का त्याग करके बैठे, वह त्याग नहीं। आहाहा! **जो सदा अन्तर्मुख परिणमन से परम कला के आधाररूप अति-अपूर्व आत्मा को ध्याता है,...** आहाहा१ देखो, भाषा! और सदा अन्तर्मुख परिणमन से... अन्तर्मुख, भगवान वीतरागमूर्ति जहाँ अन्तर्मुख है, उस ओर अन्तर्मुख करके... परिणमन से, **अन्तर्मुख परिणमन से...** आहाहा! व्यवहार प्रत्याख्यान है, वह तो बहिर्मुख परिणमन है, राग का परिणमन है। आहाहा! यह तो **अन्तर्मुख परिणमन से...** लो। कोई पूछता था (कि) अन्तर्मुखदृष्टि कैसे करना? भाई! वह तो चलता है शाम-सवेरे। पहले त्रिकाली चीज़ क्या है—यह पहले भाव में ख्याल में आना चाहिए। राग नहीं, शरीर नहीं, वाणी नहीं, कर्म नहीं, एक समय की पर्याय भी नहीं। ऐसी चीज़ क्या है—ऐसा पहले शास्त्रज्ञान से सुनकर, विकल्प द्वारा उस चीज़ का पहले निर्णय होना चाहिए। फिर उस विकल्प को छोड़कर अन्तर्मुख—अन्तर में दृष्टि लगाना। कैसे लगाना? आज तक लगा नहीं कैसे लगाने का? भाषा तो, भाव

समझे तो यह समझे। अन्तर चीज़ है महाप्रभु द्रव्यस्वभाव, उसके ऊपर दृष्टि देना। .... पर्याय को अन्दर में लाना। यह क्या भाषा... भाषा? अनुभव तो अपने से होता है या कोई कर दे तो होता है? और सुनने से ज्ञान हुआ, उससे भी नहीं होता है। आहाहा! समझ में आया?

सदा अन्तर्मुख परिणमन से... आहाहा! दिगम्बर मुनि की व्याख्या तो देखो! श्वेताम्बर में यह झलक नहीं मिलती। आहाहा! वस्तु का सत्य स्वरूप ऐसा है। समझ में आया? आहाहा! अन्य में तो है ही नहीं कहीं। ऐ पूनमचन्दजी! सब समान धर्म है ही नहीं। विश्वधर्म...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नाम 'धर्म' में क्या आया? नाम लक्ष्मीचन्द हो और हो भिखारी। आता है न कहीं? विद्यालय में आता था। ....ऐसा कुछ आता था। धनपाल नाम हो और भीख माँगता हो, लक्ष्मीचन्द हो और लकड़ियाँ.... क्या कहते हैं? लकड़ी बेचता है वह। उसमें क्या आया? वह आता है धनपाल न। धनपाल... वह आता है। लोग बातें करते हैं। आहाहा!

सदा अन्तर्मुख परिणमन से परम कला के आधाररूप... आहाहा! क्या कहते हैं? वर्तमान सम्यग्ज्ञान की जो परमकला, उसका आधार वह द्रव्य। आहाहा! वर्तमान मोक्षमार्ग की पर्यायरूप कला... नियमसार है न! वर्तमान सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र परमकला, उस कला द्वारा केवलज्ञान कला प्राप्त होती है, परन्तु उस कला का आधार द्रव्य है। आहाहा!

मुमुक्षु : वर्तमान में तो राग है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग है ही नहीं अन्दर में। अपनी पर्याय है, वह तो रागरहित है। वह पर्याय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परमकला है और उस कला का आधाररूप **अति-अपूर्व आत्मा को ध्याता है,...** आहाहा! **अपूर्व आत्मा को...** यह भाई आत्मा में अपूर्व... ? इसका अर्थ कि कभी आत्मा है, ऐसा ध्याया ही नहीं। जो कुछ किया, वह पुण्य-पाप की क्रिया और परिणाम किया। वह कोई चीज़ नहीं, वह तो संसार है।

आहाहा! यह प्रत्याख्यान देखो! समझ में आया? चारित्र का अन्तर्भेद है यह। **परम कला के आधाररूप...** कौन? **अति-अपूर्व आत्मा...** अति अपूर्व आत्मा। पूर्णानन्द का नाथ ध्रुवस्वरूप भगवान, वह अपनी मोक्षमार्ग की पर्यायरूप परमकला का आधार है। उसके आधार से परमकला प्रगट होती है। कोई व्यवहाररत्नत्रय के राग के आधार से परमकला उत्पन्न होती नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहते हैं न, देखो न, कल बहुत आया है। मक्खनलाल बहुत... सोनगढ़ का तो बिल्कुल पूर्ण असत्य है—झूठा है। अरे भगवान! तूने सुना नहीं, नाथ! तेरी चीज़ क्या है?

मुमुक्षु : वह झूठा बतावे, आप भगवान कहो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यकीन कैसे करे? 'जामे जितनी बुद्धि है, इतनो दियो बताय, वाको बुरो न मानिये और कहाँ से लाय।' आहाहा! व्यवहार को तो हेय कहते हैं, ऐसा आया है। व्यवहार हेय कहते हैं, (परन्तु) व्यवहार ही धर्म है पहले छठवें गुणस्थान में, ऐसा (वे) कहते हैं। अरर! भगवान! प्रभु! यह तुझे शरण नहीं होगा भाई! यह दुनिया में बाहर में लोग भले मान ले, परन्तु चीज़ हाथ नहीं आयेगी। (तुझे) तेरी दया नहीं है, भगवान! भाई! आहाहा!

यहाँ तो क्या कहते हैं? देखो! **सदा अन्तर्मुख परिणमन से परम कला के आधाररूप अति-अपूर्व आत्मा...** ऐसे नहीं कहा कि व्यवहार आधार है, व्यवहार... वह कारण कहा न, इसलिए लिखा है। व्यवहार साधन कहा है, निश्चय साध्य कहा है। साधन पहले होता है, साध्य बाद में होता है। अरे, भगवान! भाई! तेरी सब बात की हमको खबर है, सुन तो सही। समझ में आया? हमने तो सम्प्रदाय में भी सारे दिगम्बर ग्रन्थ—शास्त्र सब देखे हैं। सम्प्रदाय में देखे थे, सब देखे थे। ओहोहो! वाह! यह तो हमारी (चीज़ है) यह तो अशरीरी (होने की) चीज़ है। यह तो ७८ में कहा था, हों! आहाहा! यह तो हमारे घर की चीज़ है।

पहले एक समयसार देखा। नादका है नादका। महाराष्ट्र में एक नाद हुआ। नाद नाम का पण्डित गृहस्थ था। उसने समयसार नाटक बनाया। यहाँ है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, अपना दिगम्बर गृहस्थ। पण्डित हो या गृहस्थ हो। उसे पण्डित कहा जाता है। पहले बनाया था। हमको पहले ७८ में मिला था। यहाँ है। समयसार नाटक। नादका है। यहाँ तो सब प्रकार का मिला है न! बताया था वहाँ। नीचे पंक्ति आयी देखने में। यह समयसार नाटक क्यों मान्य है? लाईन है, देखना। वहाँ लाईन की है। यहाँ है। पहले देखा था ७८ में। वह मान्य क्यों है? कि कुन्दकुन्दाचार्य महाविदेह में गये थे और वहाँ से आये, इसलिए समयसार नाटक मान्य है। समझ में आया? ऐसा देखकर हमको... हम तो स्थानकवासी थे, ढुंढिया थे। बात यह सत्य है।

मुमुक्षु : पन्ने बहुत पुराने हो गये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री: नहीं, यह तो ठीक है... सम्यग्ज्ञानदीपिका... सम्यग्ज्ञानदीपिका, वह भी ७८ में देखी थी। पुरानी पहली बड़े अक्षर। वह जीर्ण हो गयी। ... नीचे लाईन है तीसरे पृष्ठ पर, नीचे। कुन्दकुन्दाचार्य महाविदेह में गये थे, इसलिए यह बात मान्य है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....भी लिखा होगा महाराज?

पूज्य गुरुदेवश्री : .... नहीं लिखा है। इतना लिखा है। वह खबर नहीं। पुस्तक में क्या लिखा है, (उसकी) मुझे खबर नहीं। मुझे तो भाव की खबर है।

यहाँ कहते हैं... कितने शब्द समाहित कर दिये कि प्रत्याख्यान चारित्र इसको कहते हैं कि सदा अन्तर्मुख परिणमन और परिणमन, वह परमकला। **परिणमन से परम कला के आधाररूप...** यह परिणमन जो है, वह परमकला है। वीतराग सम्यग्दर्शन, वीतराग ज्ञान और वीतराग चारित्र, यह **परिणमन से परम कला के आधाररूप...** आहाहा! वीतरागी श्रद्धा, सम्यग्दर्शन वीतरागी श्रद्धा होती है। सराग समकित-फमकित होता नहीं। वह तो उपचार से कथन है। सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थान से वीतरागी सम्यक् होता है, स्वसंवेदन वीतरागी होता है, चारित्र का अंश भी चौथे से स्वरूपाचरण वीतरागी होता है। यह तो मुनि की बात है। कहते हैं, **परम कला के आधाररूप...** कौन? **अति-अपूर्व आत्मा...** पर्याय में व्यक्त नहीं—अव्यक्त (और) वस्तुरूप से व्यक्त। पदार्थरूप से व्यक्त, प्रगटरूप से पर्याय व्यक्त और यह (द्रव्य) व्यक्त। वस्तुरूप से व्यक्त है तीनों

काल। ऐसा अति अपूर्व आत्मा को परमकला के द्वारा **ध्याता है।** आहाहा! **उसे नित्य प्रत्याख्यान है।** उसे चौबीसों घण्टे प्रत्याख्यान है। समझ में आया?

संवर-निर्जरा की व्याख्या तो सुने पहले कि क्या है। यह संवर आया न! प्रत्याख्यान कहो या संवर कहो। आहाहा! विकल्प से हटकर, अपनी निर्मलपर्याय का आधार द्रव्य, उसके अवलम्बन से शुद्ध परिणमन जो वीतरागी होता है, उसका नाम नित्य प्रत्याख्यान कहने में आता है। आहाहा! यह दिगम्बर सन्तों में होता है, दूसरे कहीं होता नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐ पदमचन्दजी! सबमें होता है, ऐसे में होता है—ऐसा नहीं। सर्वज्ञ ने पूर्णात्मा देखा, अनुभव किया और प्रगट किया, उन्होंने जो कहा, उस मार्ग में जो परिणमा, वह धन्य है। अन्यत्र यह मार्ग होता नहीं। वह भी सच्चा और वह भी सच्चा—ऐसा यहाँ वीतरागमार्ग में है नहीं। समझ में आया?

इसी प्रकार (श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत) श्री समयसार में (३४वीं गाथा द्वारा) कहा है कि:— आधार देते हैं। है न गाथा ३४वीं समयसार की।

सव्वे भावे जम्हा पच्चक्खाई परेत्ति णादूणं।
तम्हा पच्चक्खाणं णाणं णियमा मुणेदव्वं॥

लो, ज्ञान, वह प्रत्याख्यान, आत्मा ज्ञानमूर्ति में स्थिर होना, वह ज्ञान, सो प्रत्याख्यान। स्थिर समझते हो? ज्ञान में ज्ञान जम जाना, बस वह प्रत्याख्यान। आहाहा!

गाथार्थ : 'अपने अतिरिक्त सर्व पदार्थ पर हैं'... लो, अपना आनन्दस्वरूप भगवान, उसमें सब पर हैं। विकल्पमात्र सब चीज़ पर है। देव-गुरु-शास्त्र, सम्मेदशिखर, शत्रुंजय और व्यवहाररत्नत्रय, सब पदार्थ पर है। **ऐसा जानकर प्रत्याख्यान करता है—त्याग करता है,...** पर है, वह मेरी चीज़ नहीं। दृष्टि हटाकर स्वरूप में स्थिर होता है, उसका नाम प्रत्याख्यान। आहाहा! **ऐसा जानकर प्रत्याख्यान करता है, इसलिए प्रत्याख्यान ज्ञान ही है...** देखो! बस ज्ञान, ज्ञान ही ज्ञान। भगवान ज्ञान—आनन्द की मूर्ति अनन्त गुण का परिणमन जो निर्मल हो, वह सब ज्ञान की धारा कहने में आती है। राग की नहीं, तो ज्ञान की। ज्ञान के साथ श्रद्धा, शान्ति, चारित्र, वीतरागता, आनन्द, स्वच्छता, प्रभुता सब है। ऐसा जानकर त्याग करता है अथवा लक्ष्य छोड़ देता है और उसमें स्थिर होता है,

यह प्रत्याख्यान तो ज्ञान ही है। **(अर्थात् अपने ज्ञान में त्यागरूप अवस्था ही प्रत्याख्यान है)...** अपने स्वभाव में राग के अभावरूप स्वभाव का परिणमन, वह प्रत्याख्यान है। आहाहा!

व्यवहार के अभावरूप स्वभाव का परिणमन, वह प्रत्याख्यान है। अब यह कहते हैं कि व्यवहार से निश्चय होता है। आहाहा! व्यवहार क्या? भाई! (तुझे खबर नहीं)? यह साधन-कारण कहा, वह तो निमित्त का ज्ञान कराया है। अरे! भगवान तो प्रत्यक्ष स्वभावी है। अपने स्वभाव से प्रत्यक्ष जाना जाता है, उसका नाम आत्मा। परोक्ष में व्यवहार का अवलम्बन लेने जाना पड़े, वह आत्मा ही नहीं। ऐसा अलिंगग्रहण में कहा है। २० बोल में छठवाँ बोल है। **ऐसा नियम से जानना।** ऐसा आया न? **'णाणं णियमा मुणेयव्वं'** अपना ज्ञानानन्दस्वभाव, उसमें ज्ञान की लीनता, श्रद्धा की, स्थिरता की हुई, वह पर्याय जो हुई, वही चारित्र है, यह प्रत्याख्यान। इस श्लोक द्वारा अमृतचन्द्राचार्य आगे कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण २, रविवार, दिनांक - ८-८-१९७१
श्लोक-१२७, गाथा-९६, प्रवचन-८८

नियमसार शास्त्र है, निश्चय-प्रत्याख्यान अधिकार। यह २२८ श्लोक आया है न समयसार का, नहीं ?

प्रत्याख्याय भविष्यत्कर्म समस्तं निरस्तसंमोहः।
आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते।

चारित्र किसको कहते हैं, प्रत्याख्यान किसको कहते हैं, वह बात चलती है। प्रत्याख्यान (का) विकार के त्याग से कथन करते हैं, वास्तव में तो भगवान आत्मा अनन्त आनन्द और ज्ञान की मूर्ति है, उसका अनुभव करके उसमें स्थिर होना, रमणता करना, इसका नाम चारित्र है। यह बात रास्ते में चलती थी कि आप चारित्र का तो त्याग कराते हो। कौनसा चारित्र ? पंच महाव्रत, २८ मूलगुण जो है, वह तो विकल्प—राग है, वह चारित्र नहीं। समझ में आया ? चारित्र तो अपना निजानन्द सहजानन्दस्वरूप ऐसा प्रथम अनुभव करना। अनुभव किये पहले उसका निर्णय करना। समझ में आया ? यह आत्मा तो अकेला ज्ञान और आनन्दमय है, उसमें पंच महाव्रत का विकल्प या देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग है नहीं। ऐसा पहले विकल्प से—रागमिश्रित विचार से जैसा वस्तु का स्वरूप है, ऐसा निर्णय करके, फिर विकल्प छोड़कर निर्विकल्प अनुभव करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया ? विकल्प अर्थात् राग को छोड़कर... उपदेश की शैली तो ऐसी आती है न! अर्थात् अन्दर आनन्द में रमना, तो विकल्प छूट जाते हैं, उत्पन्न नहीं होते, (उसे) 'छोड़ते हैं' ऐसा कहने में आता है। चारित्र, कोई बाह्य क्रियाकाण्ड या शरीर की क्रिया, वह चारित्र नहीं। अभी श्रद्धा में भी ठिकाना नहीं कि चारित्र किसको कहते हैं ? आहाहा!

मुमुक्षु : चारित्र जाने बिना चारित्र का अंगीकार नहीं होता ?

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र किसको कहना, इसकी खबर नहीं और चारित्र तो

सम्यग्दर्शन हो उसको प्रथम उत्पन्न होता है। अन्तर आनन्द का अनुभव किये बिना, यह 'आत्मा सारा आनन्दमय है' ऐसी प्रतीति हुए बिना 'उसमें लीन होना, वह चारित्र है' ऐसी श्रद्धा कहाँ से आयेगी? समझ में आया? निरालम्बी मार्ग है, भगवान! आहाहा! सत्य तो यह है। अपना निजस्वरूप अत्यन्त ज्ञानमय, अतीन्द्रिय आनन्दमय, अकेला शुद्ध पूर्ण स्वभाव, उसके अन्तर्मुख होकर, निर्विकल्प (अर्थात्) राग का अवलम्बन छोड़कर, निर्विकल्प वेदन, श्रद्धा, ज्ञान और अनुभव करना, वह प्रथम श्रेणी का सम्यग्दर्शन धर्म है। पहले निर्णय तो करे कि क्या चीज़ है। निर्णय का ठिकाना नहीं। परलक्ष्यी ज्ञान के निर्णय में जिसको अयथार्थता है, उसको यथार्थ दृष्टि कभी होती नहीं।

मुमुक्षु : आप कह रहे हो, वह हमको याद है बराबर।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह याद है, ऐसे नहीं। याद (करना) तो बोझा है। ऐसी बात है। याद रखना, वह तो विकल्प है। आहाहा! मार्ग प्रभु! जन्म-मरण का अन्त लाना है, चौरासी के अवतार में अनन्त काल से घानी में जैसे तिल पिलते हैं, तिल पीलते हैं न घानी में? वैसे दु:ख में पिलता है अनादि से। खबर नहीं। कषाय अग्नि से—जलहल अग्नि से जलता है आत्मा। आहाहा! उसे चौरासी के अवतार में कहीं सुख नहीं। सुख तो भगवान आत्मा आनन्द में है। आनन्द में है, वहाँ सुख है। आहाहा! ऐसी दृष्टि करके पहले निर्विकल्प भान होना कि सारा आत्मा शुद्ध और ध्रुव आनन्दकन्द है। ऐसी प्रथम प्रतीति हो तो उस प्रतीति में ऐसा आता है कि उसमें मैं लीन होऊँगा, तब मुझे अशुद्धता नाश होगी। ऐसे मैं लीन होऊँ तो अशुद्धता का नाश होगा, ऐसा प्रतीति में—सम्यग्दर्शन में आता है। नन्दकिशोरजी! आहाहा! ऐसी चीज़ न सुनी हो, उसको ऐसा लगे कि क्या है यह? यह कहते हैं देखो!

श्लोकार्थ : (प्रत्याख्यान करनेवाला ज्ञानी कहता है कि—) भविष्य के समस्त कर्मों का प्रत्याख्यान करके (-त्यागकर),... शुभ-अशुभ विकल्प भी उत्पन्न नहीं होगा मुझे अब। आहाहा! ऐसा लक्ष्य छोड़कर **जिसका मोह नष्ट हुआ है...** मोह अर्थात् मिथ्यात्व। राग की एकता जो थी, वह मिथ्यात्वभाव था। स्वभाव की एकता करके जिसका मोह नष्ट हुआ है। आहाहा! ऐसे सम्यग्दृष्टि को चारित्र और प्रत्याख्यान होता है। आहाहा!

जिसका मोह... देखो! यहाँ यह याद किया है कि मिथ्यात्व का नाश हुआ है। जिसकी निमित्तबुद्धि, रागबुद्धि और एक समय की पर्याय की रुचि नाश हो गयी है। अपना पूर्णानन्द प्रभु ध्रुव अखण्ड अभेद, वही आत्मा—ऐसी अन्तर में स्ववस्तु का ज्ञान करके रुचि अन्दर हो, उसका मोह का नाश होता है। धन्नालालजी! सूक्ष्म बात है।

ऐसा मैं... देखो! भाषा कैसे की है! आचार्य स्वयं कहते हैं, **ऐसा मैं...** आहाहा! खबर पड़ गयी? छद्मस्थ को खबर पड़ती है कि मेरा मोह नाश हो गया और मैं स्वरूप में रमण करनेवाला, राग का त्याग करके रमण करनेवाला मैं चारित्रवन्त हूँ? आहाहा! कोई कहते हैं न कि द्रव्यलिंग और भावलिंग केवली जाने। यहाँ तो कहते हैं कि मैं भावलिंगी हूँ। मेरा मोह नष्ट हुआ है। कहा न अमरचन्दभाई? आहाहा! इसमें लिखा है, वही सब सत्य है। आहाहा! है या नहीं नन्दकिशोरजी? अभी समकित है या नहीं, वह केवली जाने। अरे, गजब भाई!

मुमुक्षु : किसी से पूछ लिया होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूछ लिया क्या? पूछे कैसे? आहाहा!

पहले आता है। ...में आता है न? दूसरे को न पूछ। भाई! आता है न? आहाहा! निर्जरा अधिकार में (आता है)। दूसरे को न पूछ। तेरे आनन्द के अनुभव में तू जा। तेरा सब समाधान हो जायेगा। समझ में आया? यह पूछने का प्रश्न है। समयसार है न! २०६ गाथा। निर्जरा अधिकार है। निर्जरा अधिकार है न! बहुत बार यहाँ तो चल गया है न! देखो! आता है २०६ (गाथा)। 'हे भव्य! इतना सत्य आत्मा है, जितना यह ज्ञान है।' 'इतना ही सत्य आत्मा...' भाषा देखो! सत्य आत्मा। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य, यह समयसार। कहते थे न कल भैया? रात्रि को याद किया था। वह हीरालालजी कहते थे न। समयसार... भाई! नन्दकिशोरजी को। आहाहा! समयसार कोई ऐसी चीज़ है। क्या कहते थे?

मुमुक्षु : तीन लोक में ऐसी कोई पुस्तक का निर्माण आजतक हुआ नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हुआ नहीं है। हीरालालजी यहाँ आये थे। ... यह तो बहुत वर्ष हो गये। यहाँ कहते हैं, भगवान! तुम इतने हो कि जितना ज्ञान। जानन... जानन... जानन

स्वभावी इतना आत्मा, इतना सत्य आत्मा। आहाहा! 'ऐसा निश्चय करके...' देखो! 'ऐसा निश्चय करके ज्ञानमात्र में ही सदा रति कर।' भगवान ज्ञानस्वरूप में प्रेम कर, रुचि पा। एक बोल। 'इतना सत्य कल्याण है, जितना यह ज्ञान है।' आहाहा! समझण... समझण ज्ञान का पिण्ड इतना कल्याण। तो कल्याण, कोई पुण्य-पाप के विकल्प से कल्याण है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

और 'ऐसा निश्चय करके...' मैं तो ज्ञानस्वरूपमूर्ति हूँ, ऐसा निश्चय करके... वही कल्याण है, दूसरा कोई कल्याण नहीं। 'ज्ञानमात्र से ही सदा सन्तोष पा।' ज्ञानमात्र से सन्तोष कर... सन्तोष कर। सन्तोष—आनन्द। तेरे अतीन्द्रिय आनन्द में सन्तोष कर। इच्छा और बाह्य संयोग में कहीं सुख और कल्याण है नहीं। 'इतना ही सत्य अनुभवनीय है...' दूसरा बोल। 'इतना ही सत्य अनुभवनीय है, जितना यह ज्ञान है...' आहाहा! ज्ञान... ज्ञान... ज्ञानस्वभाव, वही अनुभव करनेयोग्य है। पुण्य-पाप के विकल्प, वह अनुभव करनेयोग्य नहीं। पर का तो अनुभव होता नहीं। शरीर, मन, वाणी, कर्म, माँस, हड्डियाँ, उसका तो अनुभव होता ही नहीं आत्मा को। विकार का अनुभव होता है तो वह अनुभवनीय नहीं, वह तो जहर है। आहाहा! 'ऐसा निश्चय करके ज्ञानमात्र से ही सदा तृप्ति प्राप्त कर। इस प्रकार सदा ही आत्मा में रत, (आत्मा से) सन्तुष्ट (और आत्मा से) तृप्त ऐसे तुझको वचन से अगोचर सुख होगा।' आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य टीका करते हैं। 'और उस सुख को उसी क्षण तू ही स्वयमेव देखेगा, दूसरों से मत पूछ।' वह आया लो! पन्नालालजी! आनन्द का स्वाद तुझे आयेगा, तू दूसरों से न पूछ। तेरे पास है अर्थात् तू ही है, परन्तु तेरी पर्याय के पास है। आहाहा! क्या देखते हैं?

देखो! अमृतचन्द्राचार्य, हों! '**तत्तु तत्क्षण एव त्वमेव स्वमेव द्रक्ष्यसि, मा अन्यान् प्राक्षीः...**' '**मा अन्यान् प्राक्षीः...**' दूसरे को न पूछ, भाई! है तेरी चीज़, तुझमें है। आहाहा! समझ में आया? पहले सम्यक् श्रद्धा में ऐसा व्यवहार में निर्णय तो करे। आहाहा! मैं तो ज्ञान, वह सत्य आत्मा; ज्ञान, वह कल्याण आत्मा; ज्ञान, वह अनुभवनीय है। यह अनुभव करके तुझे सुख होगा तो तू सुख को देखेगा। सुख के अनुभव में तुझे सुख का आनन्द आयेगा। दूसरे को न पूछ। आहाहा! टीका तो टीका है न! अमृतचन्द्राचार्य,

कुन्दकुन्दाचार्य। कुन्दकुन्दाचार्य ने पंचम काल में तीर्थंकर जैसा काम किया है और अमृतचन्द्राचार्य ने तीर्थंकर के गणधर जैसा काम किया है। यह कुन्दकुन्दाचार्य के गणधर थे। आहाहा! समझ में आया? 'दूसरे से किसलिए पूछना पड़ेगा?' ऐसा लिखा है। दूसरों को क्या पूछनेयोग्य है तेरी चीज़? भगवान! तू तो ज्ञानमय है न! कल्याणस्वरूप ही तू है न! अनुभव करनेयोग्य तू चीज़ है तेरे पास। पर्याय के पास अनुभव करने की चीज़ है, दूर नहीं है वह। आहाहा! समझ में आया?

तो कहते है, **जिसका मोह नष्ट हुआ है...** आहाहा! **ऐसा मैं...** आचार्य कहते हैं कि **ऐसा मैं...** आहाहा! यह पंचम काल के मुनि! अमृतचन्द्राचार्य तो अभी ९०० वर्ष पहले हुए, कुन्दकुन्दाचार्य २००० वर्ष पहले हुए। वे कहते हैं कि **ऐसा मैं निष्कर्म (अर्थात् सर्व कर्मों से रहित)...** राग से रहित, ऐसी मेरी चीज **चैतन्यस्वरूप आत्मा में...** निश्चय लिया है। मैं कैसा हूँ? मैं तो चैतन्यस्वरूप आत्मा हूँ। व्यवहाररत्नत्रय विकल्पस्वरूप मैं नहीं। यह नास्ति आ जाती है। अस्ति में, मैं तो चैतन्यस्वरूप आत्मा हूँ। आत्मा की व्याख्या की। **चैतन्यस्वरूप आत्मा में आत्मा से ही...** ऐसा पड़ा है। क्या कहते हैं? मैं आत्मा में आत्मा से ही—वीतरागी निर्विकल्प परिणति से मैं आत्मा में रमण करता हूँ। यह आत्मा। आहाहा! पाठ में है न, देखो! '**निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते...**' '**आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते...**' आहाहा! भगवान आत्मा... यह प्रत्याख्यान, उसका नाम चारित्र, उसका नाम संवर और उसका नाम निर्जरा। आहाहा! अभी संवर-निर्जरा कैसे होती है, इसकी खबर नहीं, श्रद्धा का ठिकाना नहीं, उसको सम्यग्दर्शन कैसे हो? आहाहा! समझ में आया?

तो कहते हैं, **(स्वयं से ही)...** आत्मा से ही, ऐसा कहते हैं न! **(स्वयं से ही)...** स्वयं अर्थात् आत्मा आत्मा से ही। आत्मा त्रिकाली वस्तु है, तो आत्मा से ही (अर्थात्) निर्विकल्प वीतराग परिणति से ही **निरन्तर वर्तता हूँ।** आहाहा! मोह नष्ट हुआ, वह भी मैंने किया और यहाँ कहा कि मैं निरन्तर वर्तता हूँ, (ऐसा) भान है। पण्डितजी! आहाहा! ९०० वर्ष पहले भरतक्षेत्र में चलते सिद्ध। मुनि अर्थात् क्या? आहाहा! जिसका कपाट खुल गया है, राग की एकता में निधान को ताला लगाया था... आहाहा!

पुण्य के विकल्प के साथ स्वभाव का एकत्व मानना, यह तेरे निधान की चाबी बन्द कर दी थी, खोलने का (प्रयास) बन्द कर दिया था। आहाहा! विकल्प और स्वभाव दो भिन्न हैं, ऐसा अन्तर में भान हुआ (तो) निधान खुल गया। तो निधान में से सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र परिणति (आयी), उसमें वर्तता हूँ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अपने को खबर पड़ती है या नहीं? डालचन्दजी! यह छद्मस्थ, पंचम काल के (सन्त)... अरे भगवान! तेरी तुझे खबर नहीं, महिमा न हो। क्या न जाने, क्या न देखे और क्या अन्दर अनुभव में अपनी चीज़ न आवे? अलौकिक चीज़ है।

और (इस ९५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं):— अब स्वयं। वह (श्लोक) तो अमृतचन्द्राचार्य का था, अब यह पद्मप्रभमलधारिदेव (का कलश है)।

सम्यग्दृष्टिस्त्यजति सकलं कर्म-नोकर्म-जातं,
प्रत्याख्यानं भवति नियतं तस्य सज्ज्ञानमूर्तेः।
सच्चारित्राण्यघकुलहराण्यस्य तानि स्युरुच्चैः,
तं वन्देऽहं भव-परिभव-क्लेशनाशाय नित्यम्॥१२७॥

आहाहा! मुनि, मुनि को (नमस्कार करते हैं)। देखो! प्रमोद आया है। मुनि हैं भावलिंगी सन्त, वे कहते हैं (कि) ऐसे चारित्रवन्त को मैं नमन करता हूँ।

आहाहा! देखो! क्या कहते हैं? **श्लोकार्थ : जो सम्यग्दृष्टि...** पहले सम्यग्दृष्टि तो होना चाहिए, उसके बिना चारित्र होता नहीं। आहाहा! **जो सम्यग्दृष्टि समस्त कर्म-नोकर्म के समूह को छोड़ता है,...** समस्त। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, उस भाव को भी दृष्टि में से छोड़ता है। आहाहा! कर्म—भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म—शरीर आदि छोड़ता है। छूट जाता है, उसको 'छोड़ता है' ऐसा कहने में आता है। उपदेश कैसे करे? **उस सम्यग्ज्ञान की मूर्ति को...** सम्यग्ज्ञान की मूर्ति भगवान आत्मा, उसमें जिसकी दृष्टि और रमणता है, वह **सदा प्रत्याख्यान है...** चौबीसों घण्टे चारित्र और प्रत्याख्यान है। दृष्टि में से, स्थिरता में से अस्थिरता छूट गयी है, परपरिणति छूट गयी है। आहाहा! अपनी परिणति ने निजघर देखा। उसमें उत्कृष्ट... उत्कृष्ट परिणति हुई, उसका नाम प्रत्याख्यान और चारित्र है। समझ में आया?

लोग उलझते हैं। लोग (कहे), यह नहीं यह... महाव्रत, वह चारित्र, २८ मूलगुण वह चारित्र। तो कहते हैं कि वह छोड़नेयोग्य है, वह चारित्र नहीं, वह तो राग है। ऐसा पंच महाव्रतादि तो अभव्य ने भी अनन्त बार किया है और करता है। अभी भी अभव्य करता है। अरे! भव्य भी करता है। आहाहा!

मुमुक्षु : अन्तर क्या है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर, अन्दर अनुभव में अन्तर है। जब तक भव्य को भी अनुभव नहीं, वह भी अभव्य जैसा है। ऐसा कहा है प्रवचनसार में। भाई! अभव्य जैसा है वहाँ तक तो।

दूरभव्य और भव्य आया है न? है न! आसन्नभव्य, दूरभव्य और अभव्य। जहाँ तक भान नहीं... अहो! अभव्य को भी भान नहीं और तुझे भी भान नहीं। भान की अपेक्षा तुम दोनों समान हो। आहाहा! अपना निज निधान भगवान, निज पूँजी की जहाँ परख नहीं... निज पूँजी की परख नहीं और पर की परख करने गया। ...बात है। निजवैभव अपना भगवान अनन्त-अनन्त... एक मकान में भी लाख-दो लाख का फर्नीचर लगाता है या नहीं? फर्नीचर कहते हैं न? बड़ा गृहस्थ हो तो... पाँच लाख-दस लाख लगावे। शोभा, वह तो बाह्य की शोभा है, भगवान! तुझमें फर्नीचर पड़ा है, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त कर्ता, अनन्त कर्म स्वभाव (आदि) अनन्त शक्ति का वैभव तुझमें पड़ा है। आहाहा! यह वैभव, कहते हैं कि सम्यग्ज्ञान की मूर्ति को यह वैभव है। वैभव ख्याल में, श्रद्धा में, अनुभव में नहीं आया तो 'यह वैभव है' उसकी प्रतीति हुई नहीं। आहाहा!

यह **सदा प्रत्याख्यान है...** देखो! **और उसे पापसमूह का नाश करनेवाले ऐसे सत्-चारित्र अतिशयरूप से हैं।** पापसमूह शब्द से पुण्य-पाप दोनों। यहाँ तो पुण्य को भी पाप कहा है। आहाहा! है न! आहाहा! पुण्य-पाप के अधिकार में अन्त में लिया है जयसेनाचार्य ने (कहा है), व्यवहाररत्नत्रय व्यवहार से पवित्र कहने में आता है, निश्चय से तो व्यवहाररत्नत्रय पाप है। आहाहा! समझ में आया? जयसेनाचार्य। यह लिखा है। रामजीभाई कोर्ट में निकालते होंगे न सब?

मुमुक्षु : इसके बिना वे मानते नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : माने नहीं। वह कितनी गाथा? आहाहा! पुण्य-पाप अधिकार (में अन्त में है)। पीछे है। यह आया। २३४ पृष्ठ पर। '**व्यवहाररत्नत्रयव्याख्यानं कृतं, तिष्ठति कथं पापाधिकार इति ?**' महाराज! व्यवहाररत्नत्रय का अधिकार है और आपने पाप अधिकार क्यों चलाया (कहा)? व्यवहार सम्यग्दर्शन, व्यवहार ज्ञान और व्यवहार महाव्रत का तो अधिकार चलता है और आप कहते हो कि यह पाप अधिकार है? धर्मी की बात है, अज्ञानी को है ही कहाँ? समझ में आया? '**तत्र परिहारः यद्यपि व्यवहारमोक्षमार्गो निश्चयरत्नत्रयस्योपादेयभूतस्य कारणभूतत्वादुपादेयः....**' व्यवहार से कहने में आता है। '**परंपरया जीवस्य पवित्राकारणत्वात् पवित्रस्तथापि बहिर्द्रव्या-लंबनत्वेन पराधीनत्वात्पतति नश्यतीत्येकं कारणं। निर्विकल्पसमाधिरतां व्यवहार-विकल्पावलंबनेन स्वरूपात्पतितं भवतीति द्वितीय कारणम्। इति निश्चयनयापेक्षया पापम्।**' समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : अपेक्षा से पाप है, वैसे नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपेक्षा का क्या अर्थ? अपनी पवित्रता से विरुद्ध, इसलिए पाप। व्यवहार से पुण्य। व्यवहार से पुण्य और निश्चय से पाप।

मुमुक्षु : अपेक्षा की कोई वैल्यू नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : है न। यहाँ क्या कहा? निश्चयनय अपेक्षा... व्यवहार अपेक्षा कहो व्यवहार पुण्य। निश्चय की अपेक्षा पाप है। आहाहा! जयसेनाचार्य की टीका है, देखो! यहाँ तो सब चिह्न किया है, देखो! समझ में आया?

भाई! तेरी चीज़ में से निकलना, वही पाप है। आहाहा! अमृत का सागर प्रभु, उसमें डुबकी मारना (नहीं और) उसे छोड़कर बाहर में जाना, वह तो विकल्प, पाप, जहर है। आहाहा! यह अध्यात्म का मार्ग लोगों को पचता नहीं। सुनने में आया नहीं, समझ में आया नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : परम्परा का भी लिया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह व्यवहार परम्परा। उसका अभाव हो तो... निश्चय से

तो वर्तमान पाप ही है। ऐसा व्यवहार से पहले कहा। राग छोड़कर आगे जायेगा, परन्तु निश्चय से वर्तमान पाप ही है। आहाहा!

मुमुक्षु : परम्परा का क्यों अर्थ किया महाराज?

पूज्य गुरुदेवश्री : परम्परा व्यवहार। कहा न? व्यवहार पवित्र। निश्चय पवित्र है तो उसका आरोप देकर व्यवहार (को पवित्र) कहा, परन्तु उसको छोड़कर जायेगा, इसलिए व्यवहार से परम्परा कहने में आया। परन्तु निश्चय से साक्षात्... साक्षात् पाप है। आहाहा!

अजर प्याला है। पच जाये, ऐसा है। पच जाये क्या? आहाहा! प्रत्यक्ष तैयार करे तो सब पच जाये। बादाम की रोटी भी पच जाती है। बादाम... बादाम। रोटी नहीं बनाते बादाम की? भावनगर बहुत आती है। खबर है न! भावनगर गये थे एक बार बहुत वर्ष पहले। हमें पालेज जाना था। कहीं गये थे, सेर-दो सेर ली थी। पूड़ी आती है न बादाम की? मैंने बराबर नहीं देखा हो, उस सगा को डाला बीच में। वह थोड़ासा चार आना खा गया बीच में। यह दुकान की खबर नहीं मुझे। वह ली थी। पालेज ले जानी थी। बहुत वर्ष (पहले) की बात है। ६४-६५ की बात है। ६०-६० की। वे सगे थे खास, हों! उन्होंने उसमें से चार आना खाये। बहुत वर्ष की बात है। बादाम की पूड़ी वह भी पच जाती है धर्मी को तो। अर्थात्? पवित्रता पच जाती है। वह बादाम की पूड़ी है। आहाहा! ऐई! भावनगर में बीच में दुकान खचाखच... ऊँचे थड़े... चाहे जो हो। यह तो बहुत वर्ष की... जरा थड़ा ऊँचा है ऐसा।

मुमुक्षु : आज बादाम की पूड़ी परोसी गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बादाम की पूड़ी परोसी जाती है। बहिन का जन्मदिन है न आज। आहाहा! यह बादाम की पूड़ी है, भाई! मलीदा है अन्दर। हजम हो गया, सम्यग्दृष्टि को हजम हो गया।

एक बार कहते थे। वह ... है न? अमरेली। अमरेली चातुर्मास। वे रामजी हंसराज। पैसे तब दस लाख थे। अब दो-तीन करोड़ हो गये होंगे। दस लाख रुपये। परन्तु तब ८६ में दस लाख। यहाँ सुनने आवे दोनों भाई। नारणभाई कहे, महाराज!

आपका उपदेश जठर में पचता नहीं। अजीर्ण हो जाता है, ऐसा उपदेश है, कहते हैं। भैया! बादाम खाने की चीज़ हो तो जठर तैयार करते हो या नहीं? ऐसी चीज़ (के लिये) जठर तैयार करो। रामदेव हंसराज पैसेवाले कहलाते थे। अभी दो-तीन करोड़ है। तब दस लाख थे। ८६ का चातुर्मास। पहले तब पैसे बहुत कहाँ थे? अब पैसे हो गये। (संवत्) १९८६ अर्थात् १४ और २७ = ४१ वर्ष हुए। आपका उपदेश ऐसा है कि पचता नहीं। करो जठर तैयार। बादाम खाने को तैयार क्यों होता है? कि हमारा जठर काम नहीं करता (इसलिए) बादाम नहीं खायेंगे, ऐसा कहते हैं? वहाँ तो तैयार है तैयार। पचेगा, लाओ। मैसूर लाओ।

मैसूर आता है या नहीं? एक सेर आटा और चार सेर घी। चने का आटा। गेहूँ खाते हैं। गेहूँ का आटा, एक सेर आटा और चार सेर घी, उसको शक्करपारा कहते हैं। गेहूँ का होता है, एक सेर आटा। लोट समझे? आटा। चार सेर घी। यह गेहूँ का आटा होता है। एक सेर गेहूँ का आटा और चार सेर घी, उसको शक्करपारा कहते हैं। और मैसूर, चने का आटा। लोट, क्या कहते हैं? आटा। एक सेर बेसन, चार सेर घी, उसको मैसूर कहते हैं। समझ में आया? यहाँ तो सब देखा है—देखा है। खाया है, सब देखा है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, ओहोहो! देखो! यह पाप-पुण्य परचला (बहिर्मुख)। पुण्य और पाप दोनों पाप हैं। उस **समूह का नाश करनेवाले ऐसे सत्-चारित्र अतिशयरूप से हैं। भव-भव के क्लेश का नाश करने के लिए उसे मैं नित्य वन्दन करता हूँ।** ऐसे चारित्र को मैं वन्दन करता हूँ, है तो यह विकल्प, परन्तु अन्दर में आदर है। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ मेरी चीज़, उसमें मैं रमता हूँ, वही मेरा वन्दन चारित्र का है। आहाहा! ९५ हुई, ९६ (गाथा)।

केवलणाणसहावो केवलदंसणसहावसुहमइओ।
केवलसत्तिसहावो सो हं इदि चिंतए णाणी॥९६॥

यह तो द्रव्यस्वभाव की बात करेंगे, हों! पाठ में द्रव्यस्वभाव लेंगे। दोनों लेंगे, टीका में दोनों लेंगे। पाठ त्रिकाल की बात है।

कैवल्य दर्शन-ज्ञान-सुख कैवल्य शक्ति स्वभाव जो।
मैं हूँ वही, यह चिन्तवन होता निरन्तर ज्ञानि को॥९६॥

आहाहा! **टीका : यह, अनन्त चतुष्टयात्मक निज आत्मा के ध्यान के उपदेश का कथन है।** आत्मा में अनन्त चतुष्टय अनादि-अनन्त पड़ा है। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य। वह अनन्त चतुष्टयी की मूर्ति आत्मा अनादि से है। उसका ध्यान... उसका ध्यान करना, उसमें एकाग्र होना, वह प्रत्याख्यान है। अब जरा थोड़ी व्यवहार की बात करेंगे। पाठ तो ऐसा ही है निश्चय का। निश्चय...

समस्त बाह्य प्रपंच की वासना से विमुक्त,... देखो! समस्त बाह्य प्रपंच की वासना से मुक्त... शुभ-अशुभ विकल्प जो है, वह बाह्य वासना है। बाह्य प्रपंच की वासना। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प भी बाह्य का प्रपंच है। ऐसी वासना से विमुक्त **निरवशेषरूप से अन्तर्मुख...** बिल्कुल बाकी रखे बिना—सर्वथा अन्तर्मुख। **परमतत्त्व-ज्ञानी जीव को शिक्षा दी गयी है।** परमतत्त्वज्ञानी जीव को शिक्षा दी है कि तेरा स्वरूप ऐसा है। **किस प्रकार? इस प्रकारः—सादि-अनन्त अमूर्त अतीन्द्रियस्वभाववाले...** केवलज्ञान है, वह सादि है। उत्पन्न हुआ, परन्तु अन्त नहीं है। केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, वह उत्पन्न हुआ, इस अपेक्षा से सादि है। गाथा में त्रिकाली की बात की है, परन्तु टीका में दोनों बात करते हैं। अनन्त चतुष्टय जो प्रगट है, उसकी बात पहले करते हैं। उसकी भावना धर्मी भाये, ऐसा पहले परमात्मा कहते हैं।

सादि-अनन्त अमूर्त अतीन्द्रियस्वभाववाले शुद्धसद्भूतव्यवहार से,... देखो! आत्मा में केवलज्ञान प्रगट हो, केवलदर्शन, आनन्द, वीर्य—यह सद्भूतव्यवहार है। निश्चय नहीं। पर्याय है न, देखो! ऐसे **स्वभाववाले शुद्धसद्भूतव्यवहार...** समझ में आया? आहाहा! केवलज्ञान, केवलदर्शन परमात्मा की दशा हो, सिद्ध की दशा, अरिहन्त की दशा। केवलज्ञान, कहते हैं कि वह तो शुद्धसद्भूतव्यवहारनय है (क्योंकि) एक समय का अंश है। आहाहा! पूर्ण अंश है, परन्तु शुद्धसद्भूतव्यवहार कहने में आया है। **शुद्ध स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण के आधारभूत...** दृष्टान्त देते हैं। जैसे परमाणु शुद्ध स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण... शुद्ध अर्थात् अकेला परमाणु, ऐसा। विभाव—दो (मिलकर स्कन्ध) आदि नहीं, दो परमाणु नहीं।

शुद्ध स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण के आधारभूत शुद्ध पुद्गलपरमाणु की भाँति,... क्या कहते हैं? अकेला परमाणु है अकेला, उसमें जो वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श है शुद्ध, उसका वह परमाणु आधार है। समझ में आया? अकेले परमाणु की बात है यहाँ। दो परमाणु हो तो विभाव हो जाये। एक परमाणु है, उसमें स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण है, वह शुद्ध है, उसका आधार परमाणु है। वह भी सद्भूतव्यवहार हुआ। आहाहा! समझ में आया? निश्चय से परमाणु में वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श शुद्ध है, उसका वह (परमाणु) आधार—यह व्यवहार हो गया। व्यवहार पर्याय का आधार द्रव्य। **परमाणु की भाँति—** उसकी भाँति। भगवान आत्मा में जो केवलज्ञान... आहाहा! एक समय की पर्याय में त्रिकाल सर्व द्रव्य-गुण-पर्याय (जानने में आये), ये पर में नहीं, परन्तु अपनी पर्याय में इतनी सामर्थ्य है। समझ में आया?

ऐसा **केवलज्ञान,...** ऐसा **केवलदर्शन, केवलसुख... केवलसुख तथा केवलशक्ति...** अर्थात् वीर्य ऐसा **युक्त परमात्मा, सो मैं हूँ,...** पर्यायपरमात्मा की बात करते हैं। समझ में आया? हाँ, वह तो कार्य है, वह पर्याय है, वह मैं हूँ—ऐसा पहले भावना करते हैं। त्रिकाल मैं हूँ, ऐसी भावना पीछे करेंगे। समझ में आया? मैं अल्पज्ञ मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, वह नहीं और मैं चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, वह नहीं और मैं अल्प वीर्यवाला भी नहीं, रागवाला तो नहीं। सम्पूर्ण ज्ञान, सम्पूर्ण दर्शन प्रगट की अपेक्षा से, सम्पूर्ण सुख और सम्पूर्ण शक्ति, यह परमात्मा, वह मैं हूँ। अल्पज्ञता, राग का निषेध हो गया। ऐसी पूर्ण पर्याय, वह मैं हूँ।

ऐसी ज्ञानी को भावना करनी चाहिए;... धर्मी को ऐसी एकाग्रता अन्तर में करनी चाहिए। आहाहा! कठिन बात, भाई! क्या है वस्तु? अलौकिक बात! आत्मा की बात और आत्मा के घर की बात लोगों को सुनने में नहीं आयी, इसलिए उसे लगता है कि आहाहा! यह सब व्रत पाले और अपवास करे, तप करे, वह गजब करते हैं। धूल भी नहीं। वह तो अभव्य ने भी ऐसा अनन्त बार किया है। आहाहा! चैतन्यमूर्ति भगवान मैं परमात्मा जैसा हूँ, ऐसी कभी भावना की नहीं। समझ में आया? पौने आठ हैं न! पौने नौ। क्या कहा, समझ में आया? मैं केवलज्ञान आदि... अल्पज्ञान होने पर भी, वर्तमान

में अल्पज्ञान, अल्पदर्शन, अल्पवीर्य और राग होने पर भी मैं यह नहीं हूँ। आहाहा! मैं तो प्रगट होनेयोग्य पर्याय, यह मैं हूँ। समझ में आया? आहाहा!

तो उसकी दृष्टि द्रव्य पर जाती है, ऐसा कहते हैं। ऐसी दृष्टि द्रव्य पर जाती है, तो उस पर्याय जितना मैं हूँ, वही परमात्मा मैं हूँ। आहाहा! और... वह व्यवहार हुआ। केवलज्ञान, केवलदर्शन, यह व्यवहार है। सद्भूतव्यवहार आया न पहले? शुद्धसद्भूत-व्यवहार। मतिज्ञानादि अशुद्धसद्भूतव्यवहार। यथार्थ अनुपचार सद्भूत रखे बिना... मैं ऐसा हूँ। उसको प्रत्याख्यान और चारित्र होता है। मैं अल्पज्ञ, अल्पदर्शी और अल्पवीर्य, सम्यग्दृष्टि की बात चलती हों, यह नहीं। मैं तो पूर्ण ज्ञान, पूर्ण दर्शी, पूर्ण वीर्य, पूर्ण सुख, यह मैं हूँ। उसका झुकाव द्रव्य के ऊपर जाता है। समझ में आया? उसको चारित्र और प्रत्याख्यान होता है। आहाहा!

और निश्चय से... अब निश्चय लिया। पाठ में है वह। पाठ में है यह। '**चिंतए णाणी**' था न? '**चिंतए णाणी**' त्रिकाल... त्रिकाल पूर्ण स्वरूप मेरा। निश्चय से मैं सहजज्ञानस्वरूप हूँ। यहाँ त्रिकाली स्वभाव आया। केवलज्ञानादि व्यवहार आया। वह सादि-अनन्त है, यह अनादि-अनन्त है। समझ में आया? कल आया था। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यय है न सम्यक्, यह सादि-सान्त है। उत्पन्न होता है और अन्त होता है। केवलज्ञान सादि-अनन्त है। भगवान आत्मा के गुण जो ज्ञान (आदि) हैं, वे अनादि-अनन्त हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह बात अभी नहीं। यह तो १५वीं गाथा में थी। यहाँ तो कहते हैं... कारणपर्याय तो अनादि-अनन्त ध्रुव है। यहाँ तो गुण की बात चलती है।

मैं निश्चय से सहज... सहज... स-ह-ज... द्रव्य के साथ सहज ज्ञानभाव त्रिकाल अविनाशी, यह ज्ञानस्वरूप हूँ, यह मैं हूँ। आहाहा! **मैं सहजदर्शनस्वरूप हूँ,...** मैं स्वाभाविक त्रिकाल दृष्टा-दर्शनगुण स्वभाव त्रिकाली, वह मैं हूँ। **मैं सहजचारित्रस्वरूप हूँ...** त्रिकाली की बात है यहाँ। जिसमें चारित्र नहीं लिया था, सुख लिया था केवलसुख। सुख में दर्शन-ज्ञान समा गये। मैं सहजचारित्र स्वाभाविक... स्वाभाविक... अविनाशी

त्रिकालीस्वरूप रमणतारूप भाव, वह त्रिकाल चारित्र मैं हूँ। मैं त्रिकाल ऐसा हूँ। आहाहा!

मुमुक्षु : अखण्डानन्द....

पूज्य गुरुदेवश्री : 'अखण्डानन्द' यह भाषा ऐसी नहीं, इस प्रकार से है। यह वापस भाषा में आया। मिलान करना जरा कठिन है। अनन्त... एक-एक गुण चार किये... कारण कि वह चार व्यवहार लिया था न! अखण्ड त्रिकाल केवलज्ञानमय हूँ, उसमें से केवलज्ञान होता है। केवलदर्शनमय हूँ, उसमें से दर्शन होता है, केवलचारित्रमय हूँ, उसमें से सम्यग्दर्शन और सुख होता है। समझ में आया? भाई! विचार बहुत समझ अपेक्षित है। यह तो जैनदर्शन ऐसी सूक्ष्म... गम्भीर चीज़... गम्भीर चीज़। आहाहा!

अखण्डानन्द तो सब वेदान्तवाले भी कहते हैं। अखण्डानन्द तो सब कोई कहे। मासिक है, वह नहीं। अखण्डानन्द, वह द्रव्यस्वभाव है, उसमें एक-एक गुण अखण्ड है, पूर्ण है। पर्याय से ऐसा चिन्तवन होता है, ऐसा कहते हैं। जिसने पर्याय मानी नहीं, उसको ऐसा आया कहाँ से? समझ में आया? मैं यह हूँ, वह तो पर्याय में होता है। समझ में आया? पर्याय में ऐसा होता है कि मैं तो त्रिकाल ज्ञानमय हूँ। पर्याय ऐसा जानती है। आहाहा! पर्याय तो एक समय की है, परन्तु पर्याय ऐसा जानती है कि मैं त्रिकाल ज्ञानस्वरूप हूँ। ध्रुव में, मैं त्रिकाल ज्ञानस्वरूप हूँ—ऐसा तो आता नहीं, (क्योंकि) परिणति तो उसमें है नहीं। वह तो त्रिकाल ज्ञानस्वरूप है, वह परिणति—पर्याय कहती है कि मैं त्रिकाल ज्ञानस्वरूप हूँ। आहाहा! समझ में आया? कठिन बात! पर्याय है, त्रिकाल गुण है, उन गुण का पिण्ड द्रव्य अनादि-अनन्त है।

मुमुक्षु : आपके पास समझने आये हैं, आप पार लगाओ महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : पार लगाने की चीज़ भी अन्दर पड़ी है। दूसरे से पार लगाना है?

मैं सहजदर्शनस्वरूप हूँ,... मैं सहजदर्शनस्वरूप हूँ, यह ध्रुव कहता है? ध्रुव जानता है? मैं यह हूँ। मैं पर्याय हूँ—ऐसा नहीं। पर्याय ऐसा जानती है, परन्तु (ऐसा नहीं), कहती कि मैं ऐसी (-पर्याय) हूँ। मैं यह (त्रिकाली) हूँ। समझ में आया? आहाहा! **मैं सहजचारित्रस्वरूप हूँ...** आहाहा! ज्ञान की वर्तमान पर्याय में ऐसा भान

होता है कि मैं तो त्रिकाल चारित्रस्वरूप ही हूँ। चारित्र की पर्याय निकली, वह तो अनन्तवें भाग में आयी है। आहाहा! केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, वह तो अनन्तवें भाग में, गुण में से अनन्तवें भाग में आया है। केवलदर्शन भी अनन्त दर्शनस्वरूप है, (उसके) अनन्तवें भाग में केवलदर्शन आया। आहाहा!

मैं सहजचित्शक्ति... इसमें सुख नहीं लिया। मैं सहजचित्‌शक्ति... वह सुख चारित्र में आ गया, सुख और सम्यग्दर्शन। **सहजचित्शक्तिस्वरूप हूँ,...** मैं तो स्वाभाविक ज्ञान, वीर्यस्वरूप हूँ। चित्‌शक्ति है न! ज्ञान का वीर्यस्वरूप हूँ, कोई राग के वीर्य में और निमित्त के वीर्य में काम करता हूँ, ऐसा मैं नहीं हूँ। आहाहा! मैं सहजचित्‌शक्तिरूप... **ऐसी भावना...** सम्यग्दृष्टि को **करनी चाहिए।** सम्यग्दृष्टि को ऐसी भावना करनी चाहिए। यह पंचम काल के मुनि पंचम काल के प्राणी को कहते हैं। या यह बात चौथे काल के लिये है? सेठ! अभी कहते हैं, तू कर। भावना करनी चाहिए। आहाहा! यह उपदेश पंचम काल के साधु पंचम काल के प्राणी को देते हैं या चौथे काल(वाले को) देते हैं? आहाहा! भाई! भगवान आत्मा कहाँ चौथा काल या पंचम काल का है? आत्मा तो काल से अतीत है। आहाहा!

कहते हैं, अरे भगवान! तू ऐसी भावना कर। मैं पूर्ण ज्ञान, पूर्ण दर्शन, पूर्ण चारित्र, पूर्ण वीर्य, ज्ञान का वीर्य, हों! इसलिए चित्‌शक्ति लिया न! ऐसी भावना... बस भावना, वह चारित्र है, वह प्रत्याख्यान है। समझ में आया? यह भावना, वह पर्याय है। अभी चार बोल कहे, वह त्रिकाली द्रव्य का स्वभाव अविनाशी है। पोपटभाई! बहुत सूक्ष्म। आहाहा!

अब आचार्य महाराज एकत्वसप्तति का आधार देते हैं। एकत्वसप्तति है न, पद्मनन्दि... पद्मनन्दि पंचविंशतिका का आधार देते हैं।

केवलज्ञानदृक्सौख्यस्वभावं तत्परं महः।
तत्र ज्ञाते न किं ज्ञातं दृष्टे दृष्टं श्रुते श्रुतम्॥

देखो! आया। अरे भगवान! **श्लोकार्थ :— वह परम तेज केवलज्ञान,...** परम तेज केवलज्ञान अन्दर। परम तेज केवलज्ञानस्वरूप चैतन्यबिम्ब भगवान... **केवलदर्शन...** केवल तेज दर्शन अन्दर... **केवल सौख्यस्वभावी...** केवल आनन्दस्वभावी मैं। **उसे**

जानते हुए क्या नहीं जाना ? उसे जाना तो क्या नहीं जाना ? आहाहा ! तीन लोक का नाथ जाना, अब क्या नहीं जाना ? ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा ! यह पद्मनन्दिपंचविंशति आती है न ! अधिकार छब्बीस हैं, परन्तु उसका नाम ऐसा है। अहो ! उसे जानकर क्या न जाना ? पूर्णानन्द प्रभु की भेंट हुई तो अब किसकी भेंट न हुई ? **उसे देखते हुए क्या नहीं देखा ?** और **उसका श्रवण करते हुए क्या नहीं सुना ?** ऐसी बात सुनने में आयी कि पूर्ण भगवान आनन्दकन्द है, ऐसा सुनने में आया तो अब क्या नहीं सुना ? सब आ गया। समझ में आया ? ऐसी आत्मा की भावना अन्तर में करना, वह प्रत्याख्यान और चारित्र कहा जाता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

श्रावण कृष्ण ३, सोमवार, दिनांक - ९-८-१९७१
श्लोक-१२८, गाथा-९७, प्रवचन-८९

नियमसार, प्रत्याख्यान अधिकार। १२८ कलश है। प्रत्याख्यान, कहते हैं कि त्याग। किसका त्याग? रागादि का त्याग, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। वस्तुस्वरूप है उसमें एकाग्रता होना, उसमें राग की उत्पत्ति नहीं होना, उसका नाम त्याग और प्रत्याख्यान कहते हैं। कलश १२८।

जयति स परमात्मा केवलज्ञानमूर्तिः,
सकलविमलदृष्टिः शाश्वतानन्दरूपः।
सहजपरमचिच्छक्त्यात्मकः शाश्वतोऽयं,
निखिलमुनिजनानां चित्तपङ्केजहन्सः ॥१२८॥

जरा अध्यात्म की सूक्ष्म बात है, अन्तर की मूल बात। यह तो होशियार है, यह तो होशियार लिखते हैं। समझ में आया? आत्मा है न! वह कहते हैं, देखो! **श्लोकार्थः— समस्त मुनिजनों के हृदयकमल का हंस...** ओहो! भगवान आत्मा राग और स्वभाव को भिन्न करनेवाला है, ऐसा हंस है। भिन्न करना नहीं, यह ऐसा ही है हंस, ऐसा कहते हैं। वस्तु भगवान आत्मा द्रव्यस्वभाव वस्तु हृदयकमल में हंस, ऐसा जो यह शाश्वत हंस है। जैसे हंस (अनाज) का चारा करता है, उससे रहित है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? जैसे हंस अनाज का चारा करता है, ऐसा तो नहीं, उसी प्रकार आत्मा हंस समान, राग को तो लेता नहीं, परन्तु अन्तर निर्मल पर्याय को भी ग्रहण करता नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी चीज़ है, भाई! आहाहा!

मुनिजनों के हृदयकमल का हंस... आहाहा! प्रत्येक भगवान आत्मा चैतन्य आनन्द का धाम, वह हंस है। आहाहा! कैसा है? **शाश्वत, केवलज्ञान की मूर्तिरूप,...** है यह तो। केवल ज्ञान, वह पर्याय की बात नहीं है। केवलज्ञानपर्याय की बात नहीं। एक ज्ञानमूर्ति वस्तु ध्रुव है। ओहोहो! एक ही केवलज्ञानमूर्ति-स्वरूप... मूर्ति अर्थात् स्वरूप।

सकलविमल दृष्टिमय (-सर्वथा निर्मल दर्शनमय)... ज्ञानमय, ऐसा दर्शनमय, ऐसा कहते हैं। त्रिकाल ज्ञानमय है और त्रिकाल दर्शनमय आत्मा है।

शाश्वत आनन्दरूप,... तीसरा (बोल) लिया। त्रिकाल जिसमें आनन्द पड़ा है त्रिकाल अतीन्द्रिय आनन्द... स्वभाव ध्रुवस्वरूप, नित्यस्वरूप, पूर्ण ज्ञानमय, पूर्ण दर्शनमय, अतीन्द्रिय आनन्दमय। आहाहा! **सहज परम चैतन्यशक्तिमय...** वीर्य लिया। परम चैतन्य के वीर्यमय... परम चैतन्य की शक्तिमय... आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा अनादि-अनन्त नित्यानन्द प्रभु **परमात्मा, वह जयवन्त है।** मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं, आहाहा! यह चीज़ तो जयवन्त त्रिकाल विराजती है। जयवन्त ही है। ध्रुव वस्तु नित्य। आहाहा! जयवन्त का अर्थ, यह 'है'। ऐसी कायम जयवन्त विराजती है। अनादि-अनन्त केवलज्ञान की मूर्ति, दर्शनस्वरूप, आनन्दरूप, चित्‌शक्तिरूप—चित्‌शक्तिमय... मय अर्थात् अभेद लेना है न! आहाहा! ऐसा आत्मा अथवा वह परमात्मा, अपना स्वरूप, वह **परमात्मा, वह जयवन्त है।** सम्यग्दृष्टि के दर्शन में—सम्यक् में वह ध्रुव चीज़ जयवन्त वर्तती है। आहाहा! समझ में आया? अलौकिक बात है। नियमसार है न! मोक्षमार्ग की व्याख्या है न, तो मोक्षमार्ग का ध्येय क्या? ध्रुव ऐसा अनादि-अनन्त, वह मोक्षमार्ग का ध्येय है। आहाहा! नन्दकिशोरजी! ऐसी बात सुनी—सुनी नहीं और बाहर से ऐसा वाड़ा बाँधकर... आहाहा!

मुमुक्षु : आज तक प्रत्याख्यान नहीं किया?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं किया कभी। वह कहते हैं। अभी ९७ में आयेगा। उस वस्तु को ग्रहण किया ही नहीं, फिर क्या प्रत्याख्यान करना? ऐसा कहते हैं। ऐसी चीज़ सत्-शाश्वत वस्तु अपनी ज्ञान, दर्शन, आनन्द और वीर्य की मूर्ति वह तो है प्रभु। वह जयवन्त वर्तती है। ऐसी दृष्टि अन्दर में करना, वह दृष्टि ऐसा कहती है कि यह जयवन्त वस्तु ऐसी त्रिकाल विराजती है। आहाहा!

मुमुक्षु : दृष्टि बिना जयवन्त वर्ते तो प्रतीति.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करे? कौन जाने? आहाहा! अन्तर की प्रतीति, यह प्रतीति पर्याय है। और अन्तर का सारा ज्ञेय बनाकर ज्ञान जो स्वसंवेदन हुआ, वह है पर्याय,

परन्तु पर्याय कहती है कि वह जयवन्तध्रुव विराजता है। आहाहा! समझ में आया? मैं तो नयी पर्याय उत्पन्न हुई, सम्यग्दर्शन-ज्ञान तो नयी पर्याय उत्पन्न हुई, परन्तु वह (ध्रुव) तो जयवन्त विराजता है। आहाहा! देखो! परमात्मा का पंथ। आहाहा! जिनेन्द्रदेव जिनवर त्रिलोकनाथ इन्द्रों और गणधरों के समक्ष दिव्यध्वनि द्वारा ऐसा कहते थे। सेठ! आहाहा! ऐसे परमात्मा 'यह' ऐसा वापस है न? कहाँ से निकाला यह? '**अयं... शाश्वतोयं... अयं**' में से निकाला 'यह'। दृष्टि और ज्ञान की पर्याय में आया है कि यह जयवन्त वर्तता है। आहाहा! यह तो समझाने में क्या कहे? विकल्प नहीं है। आहाहा! पहले निर्णय में तो ले कि यह चीज़ ही ऐसी है। समझ में आया? परमात्मा, दूसरा परमात्मा नहीं, यह (स्वयं) परमात्मा।

मुमुक्षु : '**अयं**' शब्द प्रत्यक्ष के अर्थ में लिया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रत्यक्ष है। ज्ञान की पर्याय में—मति-श्रुतज्ञान की पर्याय में भी वह प्रत्यक्ष होता है। आहाहा! समझ में आया? '**अयं शाश्वत्**' किसने जाना? अपनी ज्ञानपर्याय ने, राग की अपेक्षा छोड़कर, मन की अपेक्षा छोड़कर, ज्ञान की पर्याय ने सीधा शाश्वत् को जाना, तो कहते हैं कि 'यह आत्मा मुझे प्रत्यक्ष है', वह जयवन्त वर्तता है। आहाहा! देखो! वीतरागस्वरूप आत्मा। आहाहा! अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य और अनन्त सुख—यह चार लिये, चतुष्टय त्रिकाल। त्रिकाल चतुष्टयमय प्रभु 'यह' प्रत्यक्ष... मेरे ज्ञान में 'यह' प्रत्यक्ष जयवन्त वर्तो। ९७।

यह प्रत्याख्यान का अधिकार है न। कोई राग को छोड़ना है या लेना है, ऐसा द्रव्य में है नहीं, यह पहले बताते हैं। आहाहा! किसको छोड़े? जो चीज़ अन्दर में है ही नहीं, शरीर, वाणी, मन, कर्म, (फिर) किसको छोड़ना? यहाँ तो कहते हैं कि राग को—किसको छोड़ना? उसके ग्रहण—त्यागरहित ही आत्मा है। राग को कभी ग्रहण किया नहीं और अपना निजस्वभाव कभी छोड़ा नहीं। आहाहा! मूलचन्दभाई!

मुमुक्षु : कितना प्रतिशत?

पूज्य गुरुदेवश्री : इतना स्वतन्त्र... इतना स्वतन्त्र। डंके की चोट यहाँ कहते हैं। भगवान! तू ऐसा ध्रुवस्वरूप है। '**णियभावं णवि मुच्चइ...**' ९७, पहला पद। यह तो

अध्यात्म के मन्त्र हैं। समझ में आया? जैसे सर्प बिल में गया हो, वह गारुड़ी मन्त्र करके... चलम... चलम मन्त्रते हैं न। गारुडी अन्दर में चले जाये (उसे) पकड़कर लाये—खींचकर लाये। ऐसा मन्त्र है यह। अरे भगवान! तुम कैसे हो? मेरे ज्ञान में आये, तुम आश्रय हो, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

णियभावं णवि मुच्चइ परभावं णेव गेण्हए केइ।
जाणदि पस्सदि सव्वं सो हं इदि चिंतए णाणी॥९७॥

नीचे हरिगीत। यह तो हिन्दी बनाया है। हमारे पण्डितजी ने तो गुजराती बनाया है, उसमें से हिन्दी बना है। हमारे पण्डितजी हिम्मतभाई, उन्होंने सब बनाया है।

निजभाव को छोड़े नहीं, किंचित् ग्रहे परभाव नहिं।
देखे व जाने मैं वही, ज्ञानी करे चिन्तन यही॥९७॥

टीका : यहाँ, परम भावना के सम्मुख ऐसे ज्ञानी को शिक्षा दी है। यह समझाने में तो ऐसी चीज़ (आवे) न! जिसका आत्मा पूर्णानन्द की ओर झुकाव है, शुद्ध ध्रुव चैतन्य भगवान की ओर जिसका झुकाव है, उसको समझाते हैं, ऐसा कहते हैं। यह तो समझावे न कि तेरी चीज़ ऐसी है। समझ में आया?

जो कारणपरमात्मा... भगवान ध्रुवस्वरूप सत् का पिण्ड, शाश्वत् वस्तु, उत्पाद-व्यय रहित... समझ में आया? यह कारणपरमात्मा अपना स्वरूप कारणपरमात्मा **(१) समस्त पापरूपी बहादुर शत्रुसेना की विजय-ध्वजा को लूटनेवाले,...** है। ओहोहो! समसत पाप और पुण्य ऐसी बहादुर शत्रुसेना... बहादुर शत्रुसेना... इतना तो विशेषण दिया है। आहाहा! उसकी विजयध्वजा... यह अनादि से विकार की पर्याय की विजयध्वजा फहराती थी। मैं हूँ, विकार मैं ही हूँ। समझ में आया? दुश्मन की विजयध्वजा फहराती थी। मिथ्यात्व, राग-द्वेष, विषयवासना आदि विकार—पुण्य-पाप आदि सब बहादुर शत्रुसेना की विजयध्वजा फहराती थी। उसको लूटनेवाला आत्मा है। अनादि से लूटनेवाला है, ऐसा कहते हैं। उसको नाश करके प्रगट करना, ऐसा भी नहीं यहाँ तो। आहाहा! विकार की विजय जो पर्याय में दिखती थी, द्रव्य में वह है ही नहीं। विकार का लूटनेवाला द्रव्य है अर्थात् कि द्रव्य में विकार है नहीं। विकार का त्रिकाल अभाव है। आहाहा! कठिन बात, भाई!

कितनों को ऐसा लगे कि यह सब मानो वेदान्त होगा? अरे भाई! यह तो अलौकिक वीतरागदर्शन है। वेदान्त में यह बात कैसी? पर्याय कैसी? द्रव्य त्रिकाली ध्रुव कैसा? समझ में आया? भूल होती है, वह कैसी? भूल नाश होती पर्याय में, वह कैसा? यह तो है नहीं उनमें। आहाहा! यह तो वीतरागदर्शन का अन्तर मर्म है। समझ में आया? कहते हैं, अहो! **त्रिकाल निरावरण...** पुण्य-पाप तो जिसमें है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वास्तव में तो त्रिकाली भगवान आत्मा, वह मोक्ष की पर्याय में भी नहीं आता। आहाहा! समझ में आया? बन्ध में तो आता नहीं, राग के बन्धभाव में तो आता नहीं अथवा लूटनेवाला है, परन्तु वास्तव में त्रिकाली वस्तु तो मोक्ष की पर्याय से भी रहित है। समझ में आया? त्रिकाल कहा न! कारणपरमात्मा, पहले सामान्य बात की, फिर 'त्रिकाल' लगा दिया। त्रिकाल निरावरण। आवरण था और आवरणरहित हुआ—ऐसा है नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई! भगवान! तेरी कितनी बलिहारी है, इसकी खबर नहीं। **त्रिकाल निरावरण...** त्रिकाल निरावरण... द्रव्य को आवरण कैसा? यह तो पर्याय में राग का सम्बन्ध और भाव-आवरण कहने में आता है। पर्याय में है, द्रव्य में कैसा? आहाहा! समझ में आया?

जो सम्यग्दर्शन का विषय, मति-श्रुतज्ञान का ध्येय ऐसी चीज़ है, वह चीज़ तो त्रिकाल निरावरण है। और **निरंजन—**अंजन है ही नहीं। आवरण है नहीं और मैल नहीं है। **निज परमभाव को कभी नहीं छोड़ता;...** आहाहा! निज परमभाव, शुद्धभाव, त्रिकाल शुद्धभाव, त्रिकाल परमभाव, त्रिकाल सदृश गुणस्वभावभाव को कभी नहीं छोड़ता। समझ में आया? आहाहा! **कभी नहीं छोड़ता...** क्या छोड़े? द्रव्य छोड़े? द्रव्य छोड़े तो द्रव्य का अभाव हो जाये। उसका क्या अर्थ? उसका अर्थ क्या? कि द्रव्य कभी अपने स्वभाव को त्रिकाल छोड़ता नहीं। ऐसा का ऐसा है। आहाहा! यह वीतरागमार्ग तो देखो! सर्वज्ञ परमात्मा... रात्रि को प्रश्न हुआ था न कि व्यवहार साधन कहा है, कारण कहा है, हेतु कहा है। ऐ पन्नालालजी! आता है शास्त्र में, व्यवहार साधन। परन्तु वह तो निमितत का ज्ञान कराया है। यहाँ तो कहते हैं कि द्रव्यस्वभाव में साधनपना अनादि-अनन्त पड़ा है। आहाहा! उस साधन ने कभी अपना साधनस्वभाव छोड़ा नहीं। आहाहा! अनादि-अनन्त उसमें कर्ता, कर्म, करण (आदि) छह शक्ति है न! कर्ता, कर्म, करण...

करण कहो या साधन कहो। छह शक्ति अनादि-अनन्त पड़ी है अन्दर। त्रिकाल पड़ी है। समझ में आया? शुद्ध परिणमन का कर्ता, परन्तु वह शक्ति त्रिकाल पड़ी है। शुद्ध परिणमन का कार्य का कर्म होना, ऐसी कर्मशक्ति त्रिकाल पड़ी है। शुद्ध परिणमन का साधन होना, ऐसी शक्ति साधन की आत्मा में त्रिकाल ध्रुव पड़ी है। आहाहा! बात भारी कठिन। बात तो ऐसी है। सत्य तो ऐसा है। सर्वज्ञ ने कहा और सर्वज्ञ ने जाना और सर्वज्ञ ने प्रसिद्ध किया। आहाहा! कहो, नेमचन्दभाई! आहाहा!

कभी अपने भाव को छोड़ा नहीं। अपना भाव—वस्तु शाश्वत है, वह कहाँ छूटे? आहाहा! समझ में आया? **निज परमभाव को...** भाषा देखो! क्या लिया है? **जो कारणपरमात्मा...** ऐसा लिया न भाई? कारणपरमात्मा ने निजभाव को छोड़ा नहीं, ऐसा कहते हैं। कारणपरमात्मा, यह द्रव्य हुआ वस्तु, परन्तु उसका जो त्रिकाली स्वभाव... कारणपरमात्मा, वह तो स्वभाववान हुआ, उसका स्वभाव अनादि-अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्द आदि जो स्वभाव, कारणपरमात्मा ने उस स्वभाव को कभी छोड़ा नहीं। आहाहा! अरे! भाग्यवान को ही सुनने में मिले, ऐसी चीज़ है। मार्ग ऐसा है, भगवान! वस्तु तो ऐसी है भाई! सब भगवान हैं। पर्याय में भूल है, वह दृष्टि छोड़ दे। आहाहा! सेठ! सब भगवान... भगवान... भगवान हैं। किसको अपूर्ण मानना, किसको शत्रु मानना किसको? आहाहा! पूर्णानन्द प्रभु... आहाहा! सब भगवान आत्मा पूर्णानन्द से भरे हुए हैं। सब आत्मा ने अपना त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव को कभी छोड़ा नहीं। आहाहा!

भाषा क्या की है? **जो कारणपरमात्मा...** ओहोहो! टीका वह भी! समस्त पुण्य-पाप का विकार उसमें है ही नहीं। और **त्रिकाल-निरावरण, निरंजन, निज परमभाव...** भगवान आत्मा ने अपना स्वभाव—अपना भाव—अपनी त्रिकाल शक्तियाँ कभी छोड़ी नहीं। आहाहा! समझ में आया? परन्तु क्या छोड़े? द्रव्य स्वभाववान और स्वभाव, स्वभाव और स्वभाववान—एक ही है। छोड़े किसको? आहाहा! समझ में आया? कहो, हीराभाई! यह पर्याय की तो बात भी ली नहीं।

मुमुक्षु : पर वह ग्रहा ही नहीं तो छोड़े.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बात तो ली है।

मुमुक्षु : बात तो है, परन्तु द्रव्यस्वभाव त्रिकाल ऐसा पड़ा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रिकाली त्रिकाल पड़ा है। वह त्रिकाल पड़ा है, ऐसी दृष्टि करनेवाला कहता है कि त्रिकाल मैं हूँ ऐसा। ऐसी की ऐसी चीज़ है वह तो। ओहोहो! समझ में आया? मेरी चीज़ ने संसार छुआ ही नहीं और मेरी चीज़ मोक्ष की पर्याय में आती ही नहीं। पर्याय की नास्ति है। आहाहा! समझ में आया? यह देखो तो सही प्रभु का मार्ग! प्रभु अर्थात् तेरा मार्ग। आहाहा! कहते हैं, **निज परमभाव को कभी नहीं...** कभी अर्थात् एक समय भी क्या छोड़े? वस्तु शाश्वत् है, ज्ञान शाश्वत्, आनन्द शाश्वत्, श्रद्धा शाश्वत्, शान्ति अर्थात् चारित्र शाश्वत्—ऐसा जो अपना स्वभाव है, वह स्वभाववान ने—कारणपरमात्मा ने स्वभाव को कभी छोड़ा नहीं। क्या स्वभाव को छोड़े? समझ में आया?

और (२) पंचविध (-पाँच परावर्तनरूप) संसार की वृद्धि के कारणभूत,... अब ग्रहण की बात है, वह छोड़ने की बात थी। अरे! मोह और राग-द्वेष उसने कभी ग्रहण किया ही नहीं। आहाहा! **पंचविध (-पाँच परावर्तनरूप) संसार की वृद्धि के कारणभूत,...** देखो! संसार की वृद्धि के कारणभूत। कौन? **विभाव-पुद्गलद्रव्य के संयोग से जनित...** यह विभावपुद्गलद्रव्य नहीं। विभावपुद्गलद्रव्य से जनित **रागादि-परभाव को ग्रहण नहीं करता;...** भगवान शाश्वत् वस्तु ने कभी विकल्प को—राग को, विभावरूप पुद्गल परमाणु—कर्म से जनित—उससे उत्पन्न हुआ विभाव, उस विभाव को कभी द्रव्य ने ग्रहा नहीं। उदयभाव को कभी आत्मा ने ग्रहा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

उदय (आदि) के बोल आते हैं न? कितने? २१। क्षयोपशम के १८। आहाहा! यह विश्वास तो लावे विश्वास कि तेरी चीज़ ऐसी है। आहाहा! निज का विश्वास नहीं और पर का विश्वास (आवे)। समझ में आया? पर से मैं प्रगट होऊँगा, पर से मैं प्रगट होऊँगा। यह पर में सामर्थ्य मानता है। मैं राग से प्रगट होऊँगा तो राग में सामर्थ्य मानी। आहाहा! मुझमें इतनी सामर्थ्य है कि मैंने कभी राग ग्रहण किया ही नहीं। ऐसी मेरी चीज़ पर दृष्टि देते ही, राग पर्याय में है, उसका अभाव हो जाता है। अन्दर में तो है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा!

मेरी चीज़ ने कभी राग ग्रहा नहीं। आहा! अर्थात् उदयभाव, विकारी उदयभाव, हों, जड़कर्म तो भिन्न ही हैं। जड़कर्म के निमित्त के संग में उत्पन्न होनेवाला विकार, वह कभी मैंने वस्तुस्वभाव को ग्रहा नहीं। ऐसा कौन जानता है? ज्ञान की पर्याय। आहाहा! ज्ञान की, श्रद्धा की पर्याय ऐसा जानती है। जाने तो ज्ञान की पर्याय। मैं... मैं... मैं कौन? मैं तो ध्रुव आत्मा हूँ। पर्याय ऐसा जानती है कि मैं... 'यह पर्याय मैं' ऐसा नहीं। गजब बात है। मैं ध्रुव हूँ। 'मैं ध्रुव हूँ', (ऐसा) कौन जानता है? पर्याय तो ध्रुव नहीं। परन्तु वह पर्याय ऐसा कहती है कि मैं यह (द्रव्य)। मैं जो द्रव्य हूँ, यह मैं। मैंने कभी राग को ग्रहा नहीं, ऐसा पर्याय जानती है। आहाहा!

भगवान! तेरी चीज़ ही ऐसी है, नाथ! आहाहा! तेरा कौन रक्षण करे? और तुझे कौन ले जाये? और तुझमें कहाँ से संसार आ जाये? आहाहा! उदयभावरूपी संसार... द्रव्य को पर्याय कहती है, जानती है कि मेरा द्रव्य मेरा स्वामी द्रव्य। आहाहा! उदयभाव तो कभी किया ही नहीं, हों! ग्रहण नहीं किया तो छोड़ना क्या? ऐसा कहते हैं। यह वीतराग का मार्ग ऐसी चीज़ है, वस्तु का स्वरूप ऐसा है। यह कोई कल्पित कहना है, अनुमान करके कहना है—ऐसा है? यह तो वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। सर्वज्ञ ने जाना त्रिकाल, यह जाना त्रिकाल। वाणी निकली, इच्छा बिना वाणी निकली। वह कहते हैं, परमागम ऐसा कहते हैं कि पर्याय ऐसा जानती है कि, ज्ञान की पर्याय ऐसा जानती है कि ध्रुव मैं हूँ जो चीज़, उसने उदय को कभी ग्रहा नहीं। यह लॉजिक से बात चलती है। आहाहा!

भगवान का मार्ग निरालम्ब है। न्याय से (कहा है), ऐसा कचड़-मचड़ करके कहना, यह बात नहीं। न्याय अर्थात् 'नि' धातु है। तो जैसी सब चीज़ है, ऐसे ज्ञान को ले जाना, उसका नाम न्याय, यह सर्वज्ञ का न्याय। यह सब वकीलों के बाहर के बाँधे हुए न्याय सरकार के। वे तो बदल जाये सब। नहीं, नहीं, यह तो कानून सब बदल जाते हैं न! एक राजा निकले, फिर दूसरा करे... उसमें क्या? उसमें है क्या? आहाहा! अफर! आहाहा! बदले नहीं तीन काल में। दो और दो चार बदलते हैं कभी? कभी दो और दो, तीन होगा? कभी दो और दो, पाँच होगा? ऐसी, वस्तुस्थिति ऐसी है। आहाहा!

मुमुक्षु : नया पन्थ तो नहीं है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पन्थ पर्याय में नया है, द्रव्य में नया नहीं। पर्याय में नया है, पर्याय अभूतपूर्व निकली, पूर्व में नहीं थी। वस्तु तो है वह है, कहा न! 'अभूत चीज़' कहा है शास्त्र में। अभूतपूर्व सिद्ध होंगे। पंचास्तिकाय में पाठ है। सब पड़ा है शास्त्र में है। ओहोहो! 'अभूतपूर्व सिद्धं।' पूर्व में कभी सिद्धपर्याय नहीं हुई, ऐसी सिद्धपर्याय होगी। हम त्रिकाल शुद्ध ध्रुव है, उसमें तो अनन्त सिद्धपर्याय का पोटला अन्दर पड़ा है। हमारी दृष्टि ने पूरे द्रव्य को कब्जे में कर लिया है। उसमें से केवलज्ञान आये बिना रहेगा नहीं। समझ में आया?

यह क्या करते हैं, नहीं सरकार? .... बाँधे न क्या? आवे फिर जप्त करे। फौजदार आवे न, जप्त करे। जप्ती करे, बाहर निकलने न दे एक भी माल को। पड़ा रहने दो, बाद में निकालो। ऐसे कितने... ? फलाना है, गहने उसमें... इसी प्रकार सम्यग्दर्शन ने पूरे द्रव्य को जप्त कर लिया है। अब माल लिखो। नोंध करो, कहे, इतना ज्ञान निकला, इतनी श्रद्धा हुई, इतनी शान्ति हुई, इतना आनन्द आया। पूनमचन्दजी! यह पूनम की बात चलती है। पूर्ण... पूर्ण... पूनम को पूर्ण कहते हैं न! पूनम को पूर्णमास कहते हैं और अमावस्या को अधमास कहते हैं। हमारे काठियावाड़ में उल्टा है। पहले सुद बैठती है। पूनम में पूर्ण आत्मा। पूनम में महीना पूर्ण हो जाता है और अमावस्या में आधा मास हुआ। पहले कृष्ण (पक्ष) में आधा मास और पूनम में पूरा मास। ऐसा पूर्णानन्द भगवान आत्मा है। आहाहा!

कहते हैं कि संसार की वृद्धि का कारण कौन? मोह और राग-द्वेष। समझ में आया? संसार की वृद्धि, भटकने का कारण कौन? राग और द्वेष। यह विभाव पुद्गल से उत्पन्न—संयोग से जनित, ऐसा। स्वभावजनित नहीं। संयोग से जनित—उत्पन्न हुआ, ऐसा मिथ्यात्व रागादि। उस रागादि में मिथ्यात्व आ गया। **रागादि परभाव को ग्रहण नहीं करता;...** भगवान ने अपने निज स्वरूप से कभी संसार को ग्रहण किया ही नहीं। संसार किसको कहते हैं? स्त्री-कुटुम्ब, पैसा-लक्ष्मी संसार नहीं। संसार जीव की उल्टी पर्याय है। तो संसार जीव की पर्याय में रहता है। समझ में आया? संसार पर में

नहीं रहता, संसार द्रव्य में है नहीं। आहाहा! संसार यदि स्त्री-परिवार और शरीर हो, तब तो देह छूटने के काल में छूट जाता है। तो संसार छूट गया? मुक्ति हो जायेगी। यह संसार ही नहीं। संसार (अर्थात्) विपरीत मान्यता और राग। प्रसिद्ध हो कि मिथ्यात्व, वह संसार है। समझ में आया? यह संसार जीवद्रव्य ने कभी ग्रहा नहीं। आहाहा! समझ में आया? विशेष लेते हैं।

निरंजन सहजज्ञान-सहजदृष्टि-सहजचारित्रादि... आनन्द की बात की। सहजज्ञान त्रिकाली, सहजदृष्टि त्रिकाली, सहजचारित्र त्रिकाली। **स्वभाव धर्मों के आधार...** ये स्वभाव धर्म हैं और कारणपरमात्मा धर्मी आधेय है—ऐसा भी विकल्प जिसमें नहीं। कारणपरमात्मा लिया था न पहले? तो वह कैसा है? कि वह स्वभाव आधेय है और भगवान कारणपरमात्मा आधार है। ऐसा आधार... **स्वभाव धर्मों के आधार...** ऐसा लिया है। स्वभावधर्म है, उसका आधार आत्मा और स्वभावधर्म आधेय—ऐसा जिसमें भेद नहीं। आहाहा! समझ में आया? **निरंजन सहजज्ञान-सहजदृष्टि...** त्रिकाली, हों! **सहजचारित्रादि स्वभाव धर्मों के आधार...** आधेय आत्मा और यह (स्वभाव) आधार—उस **सम्बन्धी विकल्पों रहित,...** आहाहा!

सदा मुक्त... सदा मुक्त... और आत्मा, वह आनन्द। **सदा मुक्त तथा सहज मुक्तिरूपी स्त्री के सम्भोग से उत्पन्न होनेवाले सौख्य के स्थानभूत...** आनन्द लेना है। त्रिकाली हों त्रिकाली आनन्द। कहते हैं, **सहज मुक्तिरूपी स्त्री...** अन्तर मुक्तरूप स्वभाव। आहाहा! मुक्तिरूपी स्त्री, उसके संभोग से उत्पन्न होनेवाला सौख्य, उसके स्थानभूत... उसका स्थान—ठिकाना यह आत्मा है। अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभवरूप—स्वरूप आत्मा, वह द्रव्यस्वभाव है, ऐसा कहते हैं। पर्याय की बात नहीं। पर्याय तो जानती है। अतीन्द्रिय आनन्द जिसकी सुखस्वरूप परिणति से... ध्रुव में, हों! उत्पाद-व्यय में नहीं। ध्रुव में ध्रुव का अनुभव होकर अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव हो, ऐसा स्थान, वह मैं हूँ। आहाहा! समझ में आया?

अन्दर में और अन्दर में मुक्त आत्मा और मुक्तरूपी दशा। अन्दर की, अन्दर की बात है, हों! बाहर की दूसरी बात नहीं। उसमें एकाग्र होने से आनन्द की उत्पत्ति का

स्थान वह द्रव्य है, उसका क्षेत्र वह द्रव्य है। आहाहा! कहाँ ले जाना चाहते हैं, देखो न! गहरे जा... गहरे जा... गहरे तेरा आत्मा रहा है। समझ में आया? अन्दर। गहरा। नहीं, नहीं, यह 'ऊंडा' शब्द अपने गुजराती में है। गहरा। उसमें है। २७ है न? २७ पृष्ठ पर है? प्रवेश होता है। 'प्रवेश' लिया। गहरा। 'गहरा' लिया, देखो! अपने गुजराती 'ऊंडा' लिया। देखो! यह २७ पृष्ठ। गहरा। १०वीं गाथा है न! '**विशति**' न? (१७वाँ श्लोक) हाँ, परन्तु उस विशति का अर्थ है।

'**सपदि विशति यत्चित्चमत्कारमात्रं**' 'विशति' का अर्थ है प्रवेश करता है। गहरे जाता है—गहरे में जाता है। यह '**विशति**' शब्द पड़ा है संस्कृत में। '**सपदि विशति यत्चित्चमत्कारमात्रं**' आहाहा! मुनि ने भी गजब काम किया है! '**विशति**' भगवान ध्रुव में प्रवेश कर। वहाँ जा, गहराई में जा—गहराई में जा। समुद्र में गहराई में जाते हैं तो मोती मिलते हैं, वैसे भगवान ध्रुवस्वरूप है, वहाँ तेरी पर्याय को ले जा। आहाहा! समझ में आया? यह हमारे गुजराती में 'ऊंडाई' शब्द है। यहाँ 'गहराई' है न। ऊंडो उतर जाता है। यह गुजराती है न! ऊंडो उतर जाता है। गुजराती याद रहे न! देखो! गहरा उतर जाता है। चैतन्यचमत्कारमात्र तत्त्व में प्रविष्ट हो जाता है। '**विशति**' गहरा उतर जाता है—गहराई में उतर जाता है। यहाँ 'ऊंडा' है गुजराती में। पृष्ठ वही है। क्या कहते हैं, समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा अपने-अपने स्थान में अपने अनुभव में ध्रुव में, हों! मुक्तिरूपी स्त्री अपने अन्दर, उसका सौख्य—उत्पन्न होनेवाला आनन्द, यह आनन्द का स्थान आत्मा है। ध्रुव... ध्रुव... **ऐसे कारणपरमात्मा को...** देखो! '**स्वयं आधार है और स्वभावधर्म आधेय हैं' ऐसे विकल्पों रहित है, सदा मुक्त है और मुक्तिसुख का आवास है।** ऐसा। सदा मुक्त है आत्मा और मुक्तिसुख का स्थान है। आवास कहा न, स्थान। पाठ में स्थान (शब्द) है। सदा यह है, लो। '**निलयं**' है न? '**निलयं**' '**संभोगसंभवपरतानिलयं कारणपरमात्मानं**' आहाहा! टीका भी की है, गजब की है! दिगम्बर सन्त, वे तो धर्म के स्तम्भ हैं। आहाहा! धर्म को ऐसे टिका रखा है। यह वस्तु... यह वस्तु... पद्मचन्दजी! केवलियों के पथानुगामी... केवलियों के मार्गानुसारी। ...यह वस्तु नहीं। यह तो किया है यह। यह वाँचने का है न राजकोट, नियमसार की गाथा, उसमें लिखा है। कहते हैं...

राजकोट में जायें न तो क्या-क्या वाँचना, यह लालुभाई तैयार करते हैं गाथायें। परमात्मप्रकाश में से, नियमसार में से ये वाँचना। मक्खन मक्खन निकालते हैं।

कहते हैं, **ऐसे कारणपरमात्मा को निश्चय से निज निरावरण परमज्ञान द्वारा जानता है...** देखो! यह भी त्रिकाल की बात है, हों! **निज निरावरण परमज्ञान द्वारा जानता है...** अन्दर में। ज्ञान है, वह त्रिकाली द्रव्य को जानता है, ऐसी शक्ति है, उसकी बात है। आहाहा! पर्याय की बात नहीं। पर्याय तो कहती है कि यह मेरा भवान निरावरण परमात्मा परमज्ञान द्वारा... वह अपने ज्ञान द्वारा अपने को जानता है, ऐसा ध्रुव है।

मुमुक्षु : पर्याय में क्षायिकज्ञान नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह क्षायिकज्ञान नहीं, यह तो त्रिकाली ज्ञान की बात है। पारिणामिकभाव की बात है। पारिणामिकभावरूपी जो ज्ञान, वह अपने द्रव्य को जानता है, ऐसा कहते हैं। पर्याय तो कहती है। त्रिकाली ज्ञान अपने को जानता है, ऐसा लेना है। समझ में आया? वह पहले अधिकार में आ गया है। १०-११ गाथा में आ गया है उपयोग (के वर्णन) में। उपयोग में आ गया है। आत्मा त्रिकाली ज्ञान द्वारा त्रिकाली को जानता है। त्रिकाली दर्शन द्वारा त्रिकाली द्रव्य को देखता है। आहाहा! उपयोग में है। अभी वाँच नहीं। उसमें है... समझ में आया? ज्ञान द्वारा अर्थात् अन्दर ध्रुव त्रिकाल। पर्याय नहीं। सम्यग्ज्ञान की पर्याय ऐसा जानती है कि यह द्रव्य अपने त्रिकाली ज्ञान से अपने को जानता है। त्रिकाली निरावरण लिया न यहाँ। आहाहा! समझ में आया?

ऐसे कारणपरमात्मा को निश्चय से निज निरावरण परमज्ञान... जो त्रिकाली निरावरण द्रव्य है, ऐसा ज्ञान भी त्रिकाली निरावरण है। आहाहा! इन्द्र जिसको सुनते होंगे, वह वाणी कैसी होगी? साधारण कथा हो तो इन्द्र तो तीन ज्ञान के धनी हैं और शकेन्द्र तथा (उसकी) पत्नी दोनों एकावतारी हैं। शकेन्द्र... एक भव में मोक्ष जानेवाले हैं। अभी जो है शकेन्द्र और उसकी शचि। पति-पत्नी दोनों एक भव में मोक्ष जानेवाले हैं। भगवान के (शास्त्र में ऐसा है)। ओहो! और दोनों अवधिज्ञानी। मति, श्रुत, अवधि... भगवान के पास सुनने जाते हैं। बापू! वह कथा कैसी होगी? आहाहा! जिसको तीन तो ज्ञान और शकेन्द्र तो क्षायिक समकिती। स्त्री को क्षायिक समकित नहीं होता। वह

(समकित) लेकर नहीं गयी थी। समकित लेकर नहीं गयी थी। स्त्री में उत्पन्न हुई न। मिथ्यात्व(दशा) में गयी थी। फिर समकित प्राप्त किया है। एकावतारी—एक भव में दोनों मोक्ष जानेवाले हैं। भगवान के समवसरण में खड़े होंगे और सन्तों के पास भी जाते हैं। आहाहा! बापू! यह धर्मकथा अलौकिक है। समझ में आया?

वीतराग के श्रीमुख से दिव्यध्वनि द्वारा जो सारा मार्ग आया, वह अलौकिक है। वह भी बारम्बार सुनने को जाते हैं, हों! सीमन्धर भगवान के पास जाते हैं। क्योंकि उसका आयुष्य तो दो सागरोपम है। दो सागरोपम में असंख्य तीर्थंकर मोक्ष जाये। कहाँ से? महाविदेह में से। क्या कहा यह? असंख्य। क्योंकि तीर्थंकर का आयुष्य ८४ लाख पूर्व या करोड़ पूर्व का (होता है)। ऐसे करोड़पूर्व तो एक पल्य में असंख्य आते हैं। एक पल्य में असंख्य करोड़ पूर्व। ऐसे दस करोड़ाकरोड़ी पल्योपम का सागरोपम। ऐसा दो सागरोपम का आयुष्य शकेन्द्र का। असंख्य तीर्थंकर के जन्म महोत्सव आदि में जाते हैं। समझ में आया? वहाँ भगवान विराजते हैं। (एक मोक्ष) जाये तो दूसरे (तीर्थंकर)। ऐसे असंख्य... एक भव में असंख्य तीर्थंकर के जन्म महोत्सव, दीक्षा महोत्सव, केवल (ज्ञान) महोत्सव, गर्भ महोत्सव। आहाहा! समझ में आया? ओहोहो! उसकी आस्था तो करे कि यह वह क्या चीज़ है। आहाहा!

आयुष्य इतना कि एक पल्य के असंख्य भाग में असंख्य अरब वर्ष जाते हैं। एक पल्य के असंख्य भाग में असंख्य अरब वर्ष जाते हैं। ऐसा एक पल्योपम, ऐसे दस करोड़ाकरोड़ी पल्योपम का एक सागरोपम। ओहोहो! इसलिए उसे अमर कहने में आया है न! अमर तो है नहीं। दो सागर में देह छोड़ देंगे। इतना लम्बा (आयुष्य), ओहोहो! एक भगवान का जन्मोत्सव करे, ऐसे दूसरे का, (ऐसे) असंख्य का। आहाहा! वहाँ हों महाविदेह में। यहाँ तो दस करोड़ाकरोड़ी सागरोपम में २४ तीर्थंकर होते हैं। दस करोड़ाकरोड़ी सागरोपम में २४ तीर्थंकर होते हैं। यह तो बहुत लम्बा (काल) है। उसका (आयुष्य) दो सागर ही है। यहाँ तो दस करोड़ाकरोड़ी सागरोपम में एक चौबीसी होती है। दस करोड़ाकरोड़ी सागरोपम में एक चौबीसी। एक करोड़ाकरोड़ी... एक करोड़, ऐसा लाख करोड़, ऐसा एक करोड़करोड़, दस करोड़ाकरोड़ी, ऐसा सागरोपम।

(उतने काल में) ऐसे इन्द्र तो बहुत होते हैं। परन्तु यह तो एक इन्द्र के (काल में) महाविदेह में असंख्य तीर्थंकर होते हैं। आहाहा! समझ में आया या नहीं?

यह तो गणित का विषय है। जन्म और तप का प्रसंग इन्द्रों के एक भव में असंख्य। आहाहा! हजार नेत्र से ऐसा करके देखे, (फिर भी) तृप्ति न हो, इतनी तो पुण्य की प्रकृति है। पवित्रता की बात तो क्या करना? हजार नेत्र से बाल (तीर्थंकर) को देखे। ऐसे असंख्य तीर्थंकर को एक भव में (देखे)। उस कारण से एकावतारी है, ऐसा नहीं। उसके साथ देवता भी बहुत जाते हैं भगवान के पास। (उसमें) कितने ही मिथ्यादृष्टि हों। इन्द्र भी जाते हैं तो अपने भी चलो। जाए, हो मिथ्यादृष्टि, कुछ अड़ने न दे कुछ। अड़ने न दे—छूते नहीं। आत्मा को छूते नहीं। यह तो आत्मा को छूनेवाला वहाँ जाता है।

यह कहते हैं, ऐसे निज **निरावरण परमज्ञान द्वारा जानता है और उस प्रकार के सहज अवलोकन द्वारा...** वह भी त्रिकाल। **(-सहज निज निरावरण परमदर्शन द्वारा) देखता है;...** भगवान त्रिकाली अपना ज्ञान त्रिकाली और त्रिकाली दर्शन से जानता है—देखता है, वह आत्मा। आहाहा! त्रिकाली की बात चलती है न। आहाहा! धीरे-धीरे कहते हैं। सब विचार करे तो समझ में आये, पकड़ में आये, ऐसा है। एकदम वे प्रोफेसर घटे भर (भाषण) बोले...

मुमुक्षु : वाचक शब्द में वाच्य पकड़ा ही न जाये तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, इसे ख्याल में आना चाहिए यह भाव... भाव... यह भाव। मूल चीज़ है। अनन्त काल से उसे उस भाव का माहात्म्य आया ही नहीं। पर्याय का माहात्म्य आया, राग का आया, निमित्त का आया, तीर्थंकर का आया। उसमें क्या? वह तो पुण्यभाव हुआ। समझ में आया? आहाहा!

वह कारणसमयसार मैं हूँ... देखो! अब भाषा यहाँ। जो द्रव्य अपने त्रिकाली ज्ञान द्वारा और त्रिकालीदर्शन द्वारा अपने को जानता-देखता है, ऐसा जो त्रिकाली स्वभाव... **वह कारणसमयसार मैं हूँ...** कौन ध्रुव कहता है कि मैं हूँ? (पर्याय)। ऐ अमरचन्दजी! आहाहा! यह मैं हूँ, यह मैं हूँ। पर्याय कहे कि द्रव्यस्वभाव, यह मैं हूँ। आहाहा! समझ

में आया? **देखता है; वह कारणसमयसार मैं हूँ...** यह कारणसमयसार, ऊपर में कारणपरमात्मा कहा था। समझ में आया? अन्दर में अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्दादि गुण लिये थे, परन्तु स्वभाव, गुण कहो या स्वभाव कहो, और स्वभाववान—दो का भेद नहीं उसमें। ऐसी अभेद चैतन्यमूर्ति कारणसमयसार मैं हूँ। समझ में आया?

सम्यग्ज्ञान की पर्याय—वर्तमान सम्यग्ज्ञान की स्वसंवेदनपर्याय, वह पर्याय ऐसी जानती है कि मेरा कारणसमयसार, यह मैं हूँ। आहाहा! 'मैं हूँ' शब्द आया न? ध्रुव कहता है कि मैं हूँ? ध्रुव तो कूटस्थ है। आहाहा! अरे! तेरी बलिहारी है न! तेरी चीज़ क्या है, उसकी खबर नहीं और चारों ओर दौड़ादौड़ करे। यहाँ से आयेगा... यहाँ से आयेगा। धूल में नहीं, तेरे पास सब है। आहा! यहाँ से खूँटी खोल, निकल जायेगा सारा। आहाहा! भाषा टीका कैसी की है! उसमें आता है न भाई सोगानी में। ऐसा कि यह मैं नहीं, यह मैं नहीं। प्रश्न उठा कि यह मैं नहीं, परन्तु ध्रुव में तो ऐसा है नहीं। तो यह क्या कहते हैं? ऐई सेठ! यह मैं हूँ, मैं त्रिकाली हूँ। ऐसा बहुत आता है। मैं किसका ध्यान करूँ? पर्याय मेरा ध्यान करे तो करो।—ऐसा आता है। ऐ सेठ! मैं किसका ध्यान करूँ? मैं तो ध्रुव हूँ। मैं ध्रुव हूँ, यह जानता कौन है? (पर्याय)।

सोगानी हुए न सोगानी? निहालचन्द्र सोगानी। आत्मज्ञानी। और स्वर्ग में चले गये। कलकत्ता। कलकत्ता न? वह मूल अजमेर के थे। बहुत आत्मजागृति, पुरुषार्थ। यहाँ (आत्मा का) स्पर्श किया अपने (समिति के) कमरे में। समिति—भोजनशाल है न? ...जीमे। इतना कहा था, भैया! राग और ज्ञान भिन्न है—भिन्न है। यहाँ गुजराती भाषा है न! यह ज्ञान और यह विकल्प अत्यन्त भिन्न हैं। बस, इतना सुनकर धुन लग गयी। राग और चैतन्य भिन्न करके अनुभव किया। अनुभव करके शरण ढूँढ ली। वह तो अपनी शक्ति है, अपनी वस्तु है, वह क्या न करे? केवलज्ञान लेना, वह भी एक समय की पर्याय है। ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड जहाँ प्रतीति में, अनुभव में आया, लेना क्या? वह तो आयेगा ही। आहाहा! समझ में आया?

केवलज्ञान आयेगा ही। कहाँ जायेगा? पकड़ा है न यहाँ। ज्ञान की पर्याय ने पकड़ा है कि यह आत्मा गुण का पिण्ड है, वह मैं हूँ, पर्याय जितना मैं नहीं। यद्यपि जानती है

पर्याय कि यह मैं हूँ, उस पर्याय जितना भी मैं नहीं। आहाहा! कठिन बातें! शिखरचन्दजी! यह वीतराग का मार्ग गणधरों ने आगम में रचा, कुन्दकुन्दाचार्य ने स्पष्ट करके समयसार में बताया। आहाहा! ऐसी चीज़ अभी कहीं है नहीं। आहाहा! समयसार! उनका नियमसार... गजब बात है। कापड़िया कहते हैं न? 'गजब' बहुत कहते हैं। मूलचन्द कापडिया है न! 'गजब की बात है' ऐसा बहुत बोलते हैं। उन्हें आदत पड़ गयी है। वे गजब बहुत बोलते बारम्बार। आहाहा! गजब की बात, यह भगवान ने कही, वह गजब की बात है। **ऐसी सम्यग्ज्ञानियों को सदा भावना करना चाहिए।** लो, मैं त्रिकाल ऐसा हूँ—ऐसी अन्तर में एकाग्रता कायम करना चाहिए। एकाग्रता, वही प्रत्याख्यान है। राग की उत्पत्ति न होना और स्वभाव की एकाग्रता होना, वही प्रत्याख्यान और वह धर्म और मोक्ष का मार्ग है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण ४, मंगलवार, दिनांक - १०-८-१९७१
श्लोक-१२९-१३०, प्रवचन-९०

यह नियमसार, मोक्ष के मार्ग की व्याख्या है। निश्चयप्रत्याख्यान। स्वरूप के आनन्द के भान में रमण करना और उस समय रागादि की उत्पत्ति न होना, उसका नाम त्याग और उसका नाम प्रत्याख्यान कहते हैं। यह बात चलती है। ऐसा एक श्लोक आया। समाधिशतक। यह आया न २०वाँ।

यदग्राह्यं न गृह्णाति गृहीतं नापि मुञ्चति।
जानाति सर्वथा सर्वं तत्स्वसम्वेद्यमस्म्यहम्॥

धर्मात्मा, उसका विचार और दृष्टि कैसी होती है? कि **श्लोकार्थः—जो अग्राह्य को (-ग्रहण न करनेयोग्य को) ग्रहण नहीं करता...** मैं जो आत्मा ध्रुव नित्य अविनाशी, ऐसा शाश्वत असल स्वभाव हूँ, उसने ग्रहण नहीं किया—संसार का विकल्प—उदयभाव ग्रहण कभी किया नहीं। परचीज़ तो ग्रहण की नहीं, वह तो दूर रही, धर्मी ऐसा विचार करता है कि मैं जो हूँ, वह तो ध्रुव, सहज अविनाशी आत्मा हूँ, जैसा तीर्थंकर सर्वज्ञदेव ने देखा है। ऐसा मैं, **न ग्रह्णति...** विकार को कभी मैंने ग्रहण किया ही नहीं। मेरी पंचमशक्ति, पंचमभाव ऐसा तत्त्व, ऐसा मैं अग्राह्य को ग्रहण नहीं करता। मैंने कभी भी संसार के विकल्प को ग्रहण किया ही नहीं, (तो) क्या छोड़ूँ? आहाहा! ऐसा मार्ग सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा ने कहा, ऐसा मार्ग अन्यत्र कहीं है नहीं। पर्याय में रागादि है, वह भी, कहते हैं कि मेरी चीज़ में मैंने राग का ग्रहण किया ही नहीं। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि धर्मीजीव धर्मात्मा अपने को ऐसा मानता है कि मैंने तो अग्राह्य को कभी ग्रहण किया ही नहीं। आहाहा! और ग्राह्य को कभी छोड़ा ही नहीं। मेरा शाश्वत् स्वभाव, ज्ञान और आनन्दादि अनन्त गुण शाश्वत्, (ऐसा) अपना स्वभाव कभी छोड़ा नहीं। स्वभाव को कभी छोड़ा नहीं, विभाव को कभी ग्रहण नहीं किया, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

ऐसा मैं हूँ... ऐसा मैं हूँ। मैं तो ध्रुवतत्त्व है, वह मैं हूँ। समझ में आया? ऐसा अपना निज नित्यानन्द भगवान आत्मा, उसने उदयभाव को ग्रहण किया नहीं, अरे! उसने अपनी अविकारी पर्याय का भी ग्रहण किया नहीं। समझ में आया? ध्रुव में कहाँ उत्पाद का ग्रहण है? और ध्रुव में विकार कहाँ था कि व्यय करना है? ऐसा कहते हैं। सम्यग्दृष्टि की दृष्टि अन्तर्मुख भगवान पूर्णानन्द का नाथ, आहाहा! समझ में आया? उसमें पड़ी है, तो वह जो चीज़ है, उसने कभी संसार पकड़ा नहीं, संसाररूप कभी द्रव्य हुआ ही नहीं और मेरी चीज़ है शुद्ध आनन्दघन, उसको कभी एक सेकेण्डमात्र भी छोड़ा नहीं। छोड़े तो अभाव हो जाये। आहाहा! सेठ! ऐसी चीज़ है, भगवान!

सर्व को सर्व प्रकार से जानता है... यह चीज़ हों! सर्व को जानने का स्वभाव रखता है, वह मैं हूँ। पर्याय की बात यहाँ नहीं। सर्व को, सर्वथा—दो प्रकार हैं न! **सर्व को सर्व प्रकार से... 'सर्वथा सर्वं'** ऐसा शब्द पड़ा है। आहाहा! कभी मैंने राग को ग्रहण नहीं किया। मैं तो सर्वथा सर्व त्रिकाली जानने का स्वभाव रखता हूँ। आहाहा! ऐसी चीज़, देखो! सर्वज्ञ परमात्मा ने पर्याय प्रगट की, परन्तु कहते हैं कि मैंने संसार कभी ग्रहा नहीं था और पर्याय को कभी पकड़ा नहीं था, पर्यायरूप मैं कभी हुआ ही नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़ पर दृष्टि देने से मोक्षमार्ग की पर्याय प्रगट होती है। साधारण जनता को दूसरे रास्ते ले गये हैं (और) मार्ग दूसरा रह गया है। बराबर है?

भगवान अन्तर्मुख प्रभु शाश्वत् स्वभाव का पिण्ड है। तो कहते हैं कि मैंने अपनी चीज़ छोड़ी नहीं—त्यागी नहीं और राग का मैंने ग्रहण किया नहीं। किसको मैं छोड़ूँ? समझ में आया? अपना स्वभाव सर्वथा सर्व प्रकार से जानना-देखना, यह मेरी चीज़ है। ऐसी दृष्टि करने से अपने में आनन्द की पर्याय प्रगट हो, उसका नाम मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? आहाहा! देखो! **वह स्वसंवेद्य (तत्त्व) मैं हूँ।** ऐसा शब्द है न वापस। **'तत्स्वसम्वेद्यमस्म्यहम्'** स्वसंवेद्य—अपनी पर्याय से मैं अनुभवनेयोग्य ऐसा मैं हूँ। मैं मेरी मति और श्रुतज्ञान की प्रत्यक्षता से स्व-अपने से, सम्-प्रत्यक्ष... स्वसंवेद्य है न? अपनी चीज़ अपनी ज्ञान की पर्याय स्व से और सम्-प्रत्यक्ष से वेदनेवाली वह पर्याय। ...है, वह तो छूती नहीं, राग को ग्रहण किया नहीं। (वस्तु) पर दृष्टि देने से अपनी

पर्याय में स्वसंवेद्य आनन्द का वेदन–अनुभव हो, तो उस द्वारा कहते हैं कि यह मैं हूँ। समझ में आया? आनन्द के वेदन द्वारा कहते हैं कि यह मैं हूँ, ध्रुव मैं हूँ। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : आनन्द न हो तो फिर क्या.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आनन्द के अंश द्वारा वेदन हुआ, परन्तु उस आनन्द के अंश से ऐसा जानने में आया कि त्रिकाल ध्रुव मैं हूँ। आहाहा! जैसा आनन्द का अंश सम्यग्दर्शन में आया, ऐसा ही पूर्णानन्द मैं हूँ, मैं पूर्णानन्द हूँ। आहाहा!

देखो! शब्द ऐसा है न? स्वसंवेद्य मैं हूँ। ध्रुव अपने से वेदनेयोग्य है। वेदन तो पर्याय का अनुभव है। समझ में आया? ध्रुव का अनुभव नहीं होता। बहुत सूक्ष्म बात है। आहाहा! यह मार्ग दूसरे में है कहीं? समझ में आया? रात्रि को कहा था एक बोल। कि कर्म का उदय जो है, वह जड़ की पर्याय है, उसको राग स्पर्शता नहीं और उदय की पर्याय राग को स्पर्शती नहीं। आहा! परन्तु अस्तित्व रखती है। अभाव है न। राग में उदय का अभाव है, उदय में राग का अभाव है। भावकर्म विकारी पर्याय है, अस्ति है और कर्म का उदय अस्ति—सत्ता है, परन्तु उस सत्ता को स्पर्श राग का नहीं और राग को स्पर्श उदय का नहीं। आहाहा! और राग का स्पर्श ज्ञान की पर्याय को नहीं और ज्ञान की पर्याय का स्पर्श द्रव्य को नहीं। यह वह कहीं...! आहाहा! समझ में आया? डालचन्दजी! ऐसा है भगवान... आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने परमात्मा (ने कहे हुए तत्त्व) की रेलमछेल कर दी है। आहाहा!

देखो! तेरा सत्। राग के सत् में अजीव के सत् का स्पर्श नहीं और राग का स्पर्श चैतन्य की पर्याय को नहीं और चैतन्य की पर्याय का स्पर्श द्रव्य को नहीं। द्रव्य, पर्याय को स्पर्श (करता) नहीं, पर्याय राग को स्पर्श (करती) नहीं, राग उदय को स्पर्श (करता) नहीं। आहाहा! अस्तित्व स्वीकार किया। ऐसी भिन्न चीज़ है, ऐसा भान होते ही ये चार भिन्न–भिन्न हैं, ऐसा स्वसंवेदन में आ जाता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अलौकिक मार्ग है, भाई! लोकोत्तर मार्ग का लौकिक के साथ मिलान नहीं करना।

हम तो सम्प्रदाय में कहते थे। आचारांग है न, कण्ठस्थ किया था आचारांग।

अध्यात्म का थोड़ा है। मूल तो कथन श्वेताम्बर... परन्तु उसमें कोई-कोई बोल ऐसा आया है व्यवहार का। एक शब्द ऐसा था, नोलोयस्स ऐसणं चरे, ऐसा एक टुकड़ा था। हे गौतम! उसमें तो कहाँ गौतम (को सम्बोधन) है? वह तो दिव्यध्वनि आती है, परन्तु वह श्वेताम्बर में ऐसा आता है। हे गौतम! हमारा मार्ग नोलोयस्स—लौकिक के साथ मिलान नहीं करना। पर के साथ कितना मिलान होता है? मिलान नहीं करना। हमारा मार्ग स्वतन्त्र भगवान आत्मा का है। समझ में आया? नन्दकिशोरजी! सम्प्रदाय में बहुत चलता था... आहाहा! नोलोयस्स... नोलोयस्स ऐसणं चरे... लोक की ऐषणा करना नहीं। लोक में क्या-क्या कहते हैं, उसके साथ भगवान के मार्ग का मिलान कैसे होता है—ऐसा मत करना। पद्मचन्दजी! ५०-५० वर्ष पहले की बात है, ५० वर्ष पहले की। सभा तो बहुत भरती थी न! सम्प्रदाय में हमारी प्रतिष्ठा बहुत थी न! यह तो मुँहपत्ति उतर गयी तो सब लोग भड़क गये। बहुत लोग, हजार-हजार, पन्द्रह सौ-पन्द्रह सौ लोग। बोटाद में बैठे प्रवचन में... चींटियों की तरह लोग आते थे। इतने लोग कि समाय नहीं।

खेद हो गया, अरेरे! टुकड़ा आता है, भाई! ....भगवान की आज्ञा में आता है। वहाँ शब्द ऐसे नहीं आते, वह तो दिव्यध्वनि है। हे सन्तो! हमारी आज्ञा में अनुत्साह, अनुद्यमी नहीं होना और आज्ञा के बाहर में उद्यम नहीं करना। हमारी आज्ञा है, उससे बाहर उद्यम बाह्य लौकिक के साथ नहीं करना। और हमारी आज्ञा है, उसमें उद्यम किये बिना रहना नहीं—अनुद्यमी नहीं रहना। आहाहा! आचारांग के पहले टुकड़े में है। आठ अध्याय है न! कण्ठस्थ किये थे न छह-सात हजार श्लोक। सारे कण्ठस्थ थे। वह टुकड़ा आवे लोग सभा ऐसे.... और उसमें मूर्ति आयी और मुँहपत्ति गयी, वहाँ वह.... फड़फड़ाहट। अपने मूर्ति मानते नहीं, स्थानकवासी कहे, अपना तो (मार्ग) मुँहपत्ति का है। आहाहा! अरे भगवान! सुन तो सही प्रभु! सन्तों ने शान्ति के मार्ग का प्रवाह जगत में कर दिया है। सन्तों ने मार्ग सरल कर दिया है। वह आता है न दीपचन्दजी (कृत) अनुभवप्रकाश। सन्तों ने—दिगम्बर मुनियों ने धर्म का मार्ग सरल कर दिया है। सहज में समझ में आये ऐसा कर दिया है। देखो! कितनी भाषा! आहाहा! यह समाधिशतक में पूज्यपादस्वामी कहते हैं, हों! पूज्यपादस्वामी। मैं तो स्वसंवेदन हूँ, राग से जानने में

आवे, ऐसा मैं नहीं, निमित्त से जानने में आवे, ऐसा मैं नहीं। मेरी चीज़ जो ध्रुव चिदानन्द भगवान... आहाहा!

राजकुमार जब दीक्षित होते थे, दीक्षित। माता को कहते थे, माता! मेरी रुचि अन्तर में जमी है, (और) कहीं रुचि जमती नहीं। माँ! मुझे एक बार आज्ञा दो। मैं तो अपने आत्मा का वनवास में साधन करूँगा, माता! समझ में आया? और माता! हम कोलकरार करते हैं कि दूसरी जननी हम नहीं करेंगे। (दूसरी) माता हम नहीं करेंगे। इसी भव में केवलज्ञान लेकर मुक्ति जायेंगे। अजैव धम्मं परिवज्जयामो जहि पवन्ना पुण भवामो... ऐसी एक लाईन आती है। वह सब कण्ठस्थ थे न, आज ही हम आत्मा के आनन्दस्वरूप का वेदन... वह आता है न, भाई! चरणानुयोग में। हमारी अनुभूति अनादि की... चरणानुयोग (सूचक चूलिका) में आता है, प्रवचनसार में। माता-पिता से आज्ञा लेता है न! स्त्री से आज्ञा लेता है। चरणानुयोग (सूचक चूलिका) में पाठ है, प्रवचनसार। स्त्री से आज्ञा लेता है। अरे! इस शरीर की स्त्री! शरीर की स्त्री है, हमारी—आत्मा की कहाँ है? इस शरीर को रमानेवाली... मेरी अनुभूति स्त्री तो अनादि की पड़ी है अन्दर में, उसके पास मैं तो जाऊँगा, आज्ञा दे दे। समझ में आया? आहाहा!

यह वैराग्य और यह अन्तर में जाने की धगश। धगश समझते हो? यहाँ कहेंगे अभी। वह कहेंगे अभी। लगन... लगन। हमको हमारा प्रभु आत्मा शाश्वत् भाव का भण्डार, उस ओर हमारी दृष्टि झुक गयी है। अब हमारी रुचि में कोई पदार्थ प्रसन्नता ले लेवे, ऐसी चीज़ नहीं है। समझ में आया? कहते हैं, मैं तो सर्व का सर्व प्रकार से जाननेवाला... त्रिकाली की बात है, हों! पर्याय की नहीं। त्रिकाली मैं तो जानने-देखनेवाला चैतन्यभगवान हूँ, मेरे स्वसंवेदन में, मैं जानता हूँ, वह मैं हूँ। मेरी पर्याय स्व-प्रत्यक्ष आनन्द का वेदन करती है, उससे मैं जानता हूँ कि यह ध्रुव, मैं हूँ। एक समय की पर्याय जितना भी नहीं। टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज अब पद्मप्रभमलधारिदेव... टीका करनेवाले हैं न, वे चार श्लोक कहते हैं। १२९ कलश।

आत्मानमात्मनि निजात्मगुणाढ्यमात्मा,
जानाति पश्यति च पञ्चम-भाव-मेकम्।

तत्याज नैव सहजं पर-भाव-मन्यं,
गृह्णाति नैव खलु पौद्‌गलिकं विकारम्॥१२९॥

आहाहा! **श्लोकार्थः—आत्मा आत्मा में...** ओहोहो! पद्मप्रभमलदेव भी मुनि थे, हों! आचार्य नहीं थे। परन्तु मुनि वे मुनि हैं न। मुनि अर्थात् अपने स्वरूप में रमण करनेवाले, आनन्द की मौज करनेवाले। आहाहा! निजानन्द की शैय्या में लीन होनेवाले। समझ में आया? ऐसे मुनि कहते हैं, **आत्मा, आत्मा में...** लो, भगवान आत्मा, आत्मा में—आत्मा के अन्दर **निज आत्मिक गुणों से समृद्ध आत्मा को...** निज आत्मिक गुणों से समृद्ध आत्मा है। वह राग से, निमित्त से समृद्ध नहीं। अपने अनन्त गुण से समृद्ध आत्मा है। अनन्त गुण हैं।... कितने गुण हैं? अनन्तानन्त। आ गया था पहले व्याख्यान में। अनन्त-अनन्त हैं। गिनने में कितने आवें? आहाहा!

निज आत्मिक गुणों से... ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शान्ति-चारित्र, स्वच्छता, प्रभुता, कर्ता, कर्म, करण,... ऐसे-ऐसे अनन्त-अनन्त गुण की समृद्धि... गुण से भरा हुआ समृद्ध हूँ। आहाहा! मेरी समृद्धि अनन्त गुण की है। आहाहा! साम्राज्य, वह कहेंगे। अहो! वस्तु एक मैं, परन्तु अनन्त गुण की समृद्धिवाला मैं हूँ। कोई मानता है कि अकेला हूँ—ऐसा नहीं। मुझे पुत्र है, पुत्री है, दामाद है, पैसा है, लक्ष्मी है, इज्जत है, साम, दाम, ठाम... कहते हैं या नहीं? साम है, दाम है और ठाम है। ठाम अर्थात् सेठ का मकान। यहाँ कहते हैं कि मेरी समृद्धि मुझमें अनन्त है। आहाहा! कौनसी समृद्धि? **निज आत्मिक गुणों से समृद्ध...** आहाहा! समझ में आया?

आकाश का प्रदेश है व्यापक। कोई मर्यादा है आकाश की कि कहाँ पूरा होगा? कहाँ पूरा होगा? ऐसे अमाप आकाश, उस पर एक पॉईन्ट रखो परमाणु का, वह प्रदेश है। इतनी संख्या के प्रदेश सारे आकाश के, उससे अनन्तगुणे आत्मा में गुण हैं। उससे अनन्तगुणे एक आत्मा में गुण हैं और इतने ही गुण परमाणु में हैं। परमाणु में अचेतन हैं, इसमें चेतन आदि। आहाहा! समझ में आया? **एक पंचम भाव को...** समृद्ध आत्मा को अर्थात् (पंचम भाव को), ऐसा। एक पंचम भाव... त्रिकाली ज्ञायकभाव, आत्मस्वरूपलाभ—अस्तिरूप भाव। वह पंचास्तिकाय में कहा है, द्रव्य-आत्मलाभ। द्रव्य के स्वरूप की अस्ति त्रिकाली, वह पंचम भाव।

जानता है और देखता है;... पंचम भाव, पंचम भाव को जानता है, देखता है। आहाहा! पर्याय की बात नहीं है। समझ में आया? भाव साधारण लिया। पंचम भाव तो परमाणु में भी है। द्रव्यपरमाणु, धर्मास्ति आदि सब पंचम भाव हैं। परन्तु वह पंचम भाव जानने-देखनेवाला मेरा पंचम भाव है। समझ में आया? अनन्त-अनन्त जानना, अनन्त-अनन्त देखना, ऐसी शक्तिरूप स्वभाव, ऐसे **सहज एक पंचमभाव को उसने छोड़ा नहीं ही है...** ऐसे अनन्त ज्ञान और दर्शन ऐसा मेरा पंचम भाव। वह चार भाव नहीं—उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक। चार भाव पर्याय हैं, यह गुण है त्रिकाली भाव, स्वभाव। पाँच भाव हैं। समझ में आया? इसमें चार भाव पर्यायभाव हैं। एक उदयभाव विकारीपर्यायभाव है, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक, यह अविकारी निर्मल पर्यायभाव है, परन्तु है पर्याय। मेरी चीज़ तो पंचम भाव ध्रुव है। समझ में आया?

अरे! इसका गाना सुना नहीं उसने। भगवान तीन लोक का नाथ अन्दर स्थित है। समझ में आया? अपना देहस्थ—देह में रहा हुआ भगवान। यह आता है मोक्षपाहुड़ में। देहस्थ है। ऐसी चीज किसी दूसरे में कहीं है नहीं। देहस्थ रहा भगवान ने पंच परमेष्ठी का पद धारण करके रखा है, ऐसा कहते हैं। क्या? अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु का पद अन्दर पड़ा है। आहाहा! समझ में आया? अन्दर स्वभाव ही पंच परमेष्ठी का है। आहा! और मेरा आत्मा, जो नमन करनेयोग्य तीर्थंकर हैं, वे तीर्थंकर भी उस आत्मा को नमते हैं। छद्मस्थ हैं... स्तुतियोग्य जो देव हैं, वे देव भी जिस आत्मा को नमते हैं, ऐसा मैं हूँ। '**णवणणविएहिं जं णविज्जइ**' ऐसा आता है। समझ में आया? अष्टपाहुड़ में, मोक्षपाहुड़।

णवणणविएहिं जं णविज्जइ झाइज्जइ झाइएहिं अणवरयं।
थुव्वंतेहिं थुणिज्जइ देहत्थं किं पि तं मुणह॥१०३॥

इस देह में भगवान विराजता है। स्थ... देहस्थ... हे भव्यजीवो! इस देह में स्थित ऐसा जो कुछ है... कुछ क्यों है, क्या है—उसे जानो। लोक में नमस्कार करनेयोग्य इन्द्रादि हैं, उनसे तो नमस्कार करनेयोग्य आत्मा है। ध्यान करनेयोग्य है। अरिहन्त का आत्मा ध्यान करनेयोग्य है, परन्तु वे अरिहन्त भी... आत्मा ही अरिहन्त है अन्दर,

आहाहा! ध्यान करनेयोग्य है। स्तुति योग्य—करनेयोग्य तीर्थंकरादि, उनसे भी स्तुति करनेयोग्य, यह आत्मा है। ऐसा कुछ है तो देह ही में... इस देह ही में... देह ही में स्थित है, उसको यथार्थ जानो। लो, यही गाथा है। १०४ में यही है ना, मोक्षपाहुड।

अरुहा सिद्धायरिया उज्झाया साहु पंच परमेट्ठी।
ते वि हु चिट्ठहि आदे तम्हा आदा हु मे सरणं॥१०४॥

आहाहा! है पाठ? देखो! १०४, मोक्षपाहुड। १०४ गाथा। १०३ गाथा, वह '**णविएहिं**'। यह १०४। बहुत सरस आया है। अभी अष्टपाहुड़ में आया न, नया प्रकाशित हुआ है। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु—पंच परमेष्ठी हैं, वे भी आत्मा में ही चेष्टारूप हैं। आत्मा में रहे हैं। '**ते वि हु चिट्ठहि आदे तम्हा आदा हु मे सरणं**' इसलिए मेरा आत्मा ध्रुव अखण्डानन्द प्रभु वह मुझे शरण है। लो, 'अरिहन्ता शरणं, सिद्धा शरणं' आता है न! यहाँ तो आत्मा शरण है। वह तो व्यवहार शरण कहने में आया है। आहाहा! १०४ है। फिर यह लिया १०५।

सम्मत्तं सण्णाणं सच्चारित्तं हि सत्तवं चेव।
चउरो चिट्ठहि आदे तम्हा आदा हु मे सरणं॥

यह भी लिया है कि सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र, सम्यक्तप '**चउरो चिट्ठहि आदे तम्हा आदा हु मे सरणं**' आदा अर्थात् आत्मा। अर्थ में लिया है। आहाहा! अन्त में-आखिर में है।'**एवं जिणपण्णत्तं**' ऐसा '**जिणपण्णत्तं**'—त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने समवसरण में कहा, '**मोक्खस्स य पाहु सुभत्तीए। जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ सासयं सोक्खं।**' यहाँ भी ऐसा लिया है। ऐई! जो '**पढइ**'—पढ़े, सुने और भावे। लिया है न... ऐई! है न वह निहालभाई का? पढ़ना, वह भी आत्मा का नाश करता है। क्योंकि विकल्प उठते हैं, इस अपेक्षा से। सहन करना कठिन बात है। समझ में आया? सुनना, वह (आत्मा का) नाश होता है, कहते हैं। आहाहा! राग होता है। दृष्टि में, वह विकल्प है, वह आत्मा को लाभदायक नहीं, इतना बताना है। समझ में आया?

यहाँ तो आचार्य स्वयं कहते हैं दोनों पाहुड में—भावपाहुड और मोक्षपाहुड। यह शब्द है, हों! मोक्षपाहुड में। **जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ सासयं सोक्खं।**'

अन्तर भी, सुन-पढ़कर... तो होगा न, भावे तो होगा न। यह शब्द भावपाहुड में थे। यह मोक्षपाहुड है। भावपाहुड में अन्तिम शब्द है। गाथा बहुत है १०६ और (वहाँ) १६५ गाथा है। भावपाहुड में १६५। बड़े में बड़ा है। उसमें भी है। '**इय भावपाहुडमिणं सव्वंबुद्धेहि देसियं सम्मं।**' अनन्त तीर्थंकरों ने कहा, वह मैंने कहा है। **जो पढइ...** कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि पढ़े, पढ़े '**सुणइ भावइ सो पावइ अविचलं ठाणं।**' पहले पढ़े, सुने, सुने, तब अन्दर ऐसा ख्याल आवे, तब अन्तर की भावना करे। समझ में आया? किसी को ऐसा लगे कि इसमें पढ़ई, सुणई का ऐसा कहा है। किस अपेक्षा से है, ऐसा मिलान करना चाहिए न! ऐ पण्डितजी! सुनने में (आत्मा का) नाश होता है, ऐसा लिखा है। तीसरे भाग में निहालभाई ने (लिखा है)। सुनना, वह अपना नाश है, पढ़ना...

मुमुक्षु : यहाँ पावे शाश्वत् सुख (कहा है)।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों का मिलान करना चाहिए न! विकल्प की अपेक्षा से वहाँ छोड़ने को कहा है। यहाँ विकल्प आत्मा है, उसको समझाया पहले। समझ में, पढ़ने में, सुनने में आता है, परन्तु फिर भावना करे, तब विकल्प छूट जाता है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **और देखता है; उस सहज एक पंचमभाव को उसने छोड़ा नहीं ही है...** आहाहा! **तथा अन्य ऐसे परभाव को—कि जो वास्तव में पौद्गलिक विकार है...** लो, यह रागादि-विकल्पादि सब पौद्गलिक विकार है। आहाहा! पंच महाव्रत का परिणाम, भगवान की भक्ति, यह परिणाम पुद्गल विकार है। विकल्प है न, राग है न। यह चैतन्य की जाति कहाँ है?

मुमुक्षु : पौद्गलिक विकार यह समझने में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पौद्गलिक विकार ही है। निमित्त के लक्ष्य से उत्पन्न हुआ निमित्त की जाति का है, अपनी जाति का नहीं। मूलचन्दभाई! मूलचन्दभाई कहते थे कल। अरे! वर्ष चले गये। गये उनकी बात नहीं। ऐसा कि व्यर्थ गये अभी तक। गये उनका कुछ नहीं, यह योगफल अच्छा आया, इसका लेना। क्यों मूलचन्दभाई? आये न,

अन्त में यहाँ आये न सुनने! बस हो गया। गया उसका क्या है? यह बात ऐसी है। तब तो पहले तो सब यही था न? उसमें क्या? आहाहा!

मुमुक्षु : तीर्थंकरों को ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तीर्थंकर पहले अज्ञान में थे। तीर्थंकर होने से पहले निगोद में थे। और कुलिंग की क्रिया गृहीतमिथ्यात्व अनन्त बार ग्रहण किया था। महावीर का जीव भी गया था अनन्त बार। ऋषभदेव के समय में मारीचि, भगवान का (पौत्र) मारीचिकुमार। भगवान से विरुद्ध सांख्य की प्ररूपणा की थी। आत्मा कूटस्थ है, परिणमन नहीं। तब वह प्रकृति के धर्म है, आत्मा में नहीं। भगवान की अस्ति थी। क्या करे? समझ में आया? और वह भगवान होनेवाला था चौबीसवाँ तीर्थंकर। एक करोड़ाकरोड़ी सागरोपम का अन्तर। ऋषभदेव से महावीरपर्यन्त एक करोड़ाकरोड़ी सागरोपम का अन्तर है। बीच में कितने भव किये? समझ में आया? भगवान ने समवसरण में कहा था भरत को। समझ में आया? हे भरत! तेरा मारीचि भविष्य में मेरे जैसा तीर्थंकर होगा। लो, ऐसा कहा, वह सुनकर नाच उठा। इतना तो ख्याल आया कि मुझे यह है। परन्तु प्ररूपणा सब उल्टी। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, अरे! मैंने पंचमभाव को कभी छोड़ा नहीं और परभाव को— पौद्‌गलिक विकार को मैंने वास्तव में कभी ग्रहण नहीं किया। आहाहा! ऐसा अन्दर प्रतीति में आना, यह कोई अल्प पुरुषार्थ है? समझ में आया? मैंने संसार ग्रहा ही नहीं। आहाहा! और मेरी चीज़ ऐसी की ऐसी है, कभी छूटी ही नहीं। आहाहा! किसकी प्रतीति में ऐसा आता है? सम्यग्दर्शन की प्रतीति में ऐसा आता है। समझ में आया? यह १२९। १३० श्लोक मुनिराज का है।

मत्स्वान्तं मयि लग्नमेतदनिशं चिन्मात्रचिन्तामणा-
वन्यद्रव्यकृताग्रहोद्भवमिमं मुक्त्वाधुना विग्रहम्।
तच्चित्रं न विशुद्ध-पूर्ण-सहज-ज्ञानात्मने शर्मणे,
देवाना-ममृताशनोद्भव-रुचिं ज्ञात्वा किमन्याशने॥१३०॥

मत्स्व अंत मयि... लो, लगन आया। आहाहा! भगवान पद्मप्रभमलधारिदेव सन्त

मुनि दिगम्बर मुनि हैं। आहाहा! जिन्हें भारी अमृत का प्याला प्रस्फुटित हो गया है अन्दर से। अमृत का प्याला पीते हैं। तृषा लगी हो और मौसम्बी पीवे न। गट... गट... गट। और गन्ना... गन्ना। तृषा बहुत लगी हो, गन्ना पीते हैं न गन्ना। हमारे (गुजराती में) शेरडी कहते हैं। घूँट के ऊपर घूँट पीते हैं। भाई में आया है—निहालभाई में। निहालभाई में यह आया है। जैसे गन्ना का रस घूँट... घूँटकर पीते हैं, वैसे हमारे अनुभव में आनन्द का घूँट-घूँट पीते हैं (तो) बाहर निकलने की इच्छा होती नहीं। समझ में आया? परन्तु अन्त में जीत राग की हो जाती है, ऐसा कहते हैं। बाहर में निकले (तो) राग हो जाता है। इतने स्थिर रह नहीं सकते। समझ में आया?

कहते हैं, **श्लोकार्थ:—अन्य द्रव्य का आग्रह करने से उत्पन्न होनेवाले...** १३० है न। **इस विग्रह को अब छोड़कर,... आग्रह...** अर्थात् **पकड़; ग्रहण; लगे रहना वह।** आग्रह। आग्रह की व्याख्या है। आग्रह को छोड़कर... पहले आग्रह है न। **विग्रह** अर्थात् **शरीर** अथवा **राग-द्वेषादि कलह।** आग्रह से उत्पन्न होनेवाला विग्रह, ऐसा कहते हैं न। अज्ञान से उत्पन्न होनेवाला कषाय अथवा शरीर **अब छोड़कर, विशुद्ध-पूर्ण-सहजज्ञानात्मक सौख्य की प्राप्ति के हेतु,...** अरे! मैं तो निर्मल पूर्ण सहजज्ञानस्वरूप सौख्य की—आनन्द की मूर्ति, उसकी प्राप्ति हेतु... **मेरा यह निज अन्तर...** देखो! पहला शब्द है न '**मत्स्वान्तं**' मेरा यह निज अन्तर... **मुझमें—चैतन्यमात्र-चिन्तामणि में निरन्तर लगा है।** ओहोहो! मेरा अन्तर मुझमें लगा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? देखो, यह मुनि! मेरा अन्तर मुझमें लगा है आनन्द में। समझ में आया? (समकिती) को रुचि में तो आनन्द जमा है। कहीं (और) उसको आनन्द दिखता नहीं। आ गयी न बात!

'चिन्मूर्ति (दृग)धारी की मोहे रीत लगत है अटापटी, बाह्य नारकीकृत दुःख भोगे, अन्तर सुखरस गटागटी...' ऐसे भोग भोगने पर भी आस्रव की झटाझटी... आस्रव खिर जाते हैं। आहाहा! आनन्द के प्रेम में कहीं (और) आनन्द भासता नहीं। विषय की वासना काले नाग जैसा जहर दिखे। परन्तु छूट सके नहीं (क्योंकि) पुरुषार्थ की कमी है। समझ में आया? चारित्र हो, तब तो वह भाव होता नहीं। चारित्र नहीं तो इतनी कमजोरी ऐसी वासना जिसको हो, काला नाग—सर्प फुंफकार मारे तो जैसा दुःख लगे,

वैसा दु:ख लगता है। समकिती को विषयवासना में इतना दु:ख है। कहीं मजा और सुख समकिती मानता नहीं। आहाहा! मिथ्यादृष्टि, जहाँ-तहाँ सुख है, मजा है (मानता है तो) दृष्टि मिथ्यात्व है। आत्मा को छोड़कर कहीं भी पुण्यभाव में, पापभाव में, संयोग में सुख मानना, महामिथ्यात्व है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, अरे! मेरे चित्त में **यह निज अन्तर मुझमें—चैतन्यमात्र-चिन्तामणि में निरन्तर लगा है।** मेरी अवस्था, मेरी अवस्था वह तत्त्व में लगी है, ऐसा कहते हैं। मेरी दशा दशावान में लगी है। बीच में यह बोलते हैं और लिखते हैं, (ऐसा) विकल्प, उसमें भी मेरी अन्तर लगनी है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **मेरा यह निज अन्तर मुझमें...** मुझमें अर्थात् **चैतन्यमात्र-चिन्तामणि में...** ऐसा। चैतन्यमात्र ऐसा चिन्तामणि में **मेरा यह निज अन्तर...** अरे! मेरी अन्तर धारा, परिणति की—दशा की मेरी धारा भगवान चैतन्यमूर्ति चिन्तामणि आत्मा में निरन्तर लगी है, वहाँ लगी है। आहाहा!

लागी लगन हमारी जिनराज सुजश सुन्यो मैं,
काहूके कहे कबहू न छूटे लोकलाज सब डारी,
जैसे अमली अमल करत समै लाग रही खुमारी....

अफीम पीते हैं न अफीम। मस्त... अफीम करते हैं न अफीम। लो, भाई! चाँदी की राब, ऐसा कहते हैं। ऐसा कहे, चाँदी की राब। रूपा समझे? चाँदी। महँगा है न अफीम। यह तो हमने नजरों से देखा है। रीबडा था। गोण्डल और राजकोट के बीच। चोरा में उतरे थे और बाबा बराबर अफीम लेकर बैठा था। चढ़ाओ... चढ़ाओ... महाराज! गाँव में तो कहाँ मकान उपाश्रय का हो? चोरा हो, चोरा। बाबा फिर, चाँदी की राब बापू! ऐसा बोले। रूपुं समझे? चाँदी। महँगा है न। महँगाई... यह बात तो (संवत्) १९७१ के वर्ष की बात है, ७१ की। ५६ वर्ष हुए। अभी तो बहुत महँगा हो गया न अफीम। उसमें एक जमींदार साथ में था। जो उसे अफीम पीते-पीते ऐसा कहे कि चढ़ा... चढ़ा... चढ़ा... तो चढ़े। उतरा कहे तो हो गया। हाय... हाय! चढ़ा, वह चढ़ा अमल, उसका अमल उतरता नहीं। आहाहा!

कहते हैं, मेरा अन्तर, चैतन्य चिन्तामणि ऐसा मेरा आत्मा उसमें मेरा अन्तर लगा

है। आहाहा! वहाँ वीणा की झनझनाहट बजती है वहाँ। समझ में आया? हमारा आनन्दमूर्ति भगवान, उसमें हमारी अन्तरदृष्टि लगी है। वहाँ हमारे आनन्द की वीणा बजती है, वहाँ हम हैं। हम राग में, शरीर में, वाणी में हैं नहीं। समझ में आया? समकिती भी ऐसे हैं। राग या शरीर में आत्मज्ञानी है ही नहीं। अपना द्रव्य और गुण और निर्मल पर्याय में आत्मा है। **उसमें आश्चर्य नहीं है,...** ऐसा कहते हैं। हमारा अन्तर ध्रुव में लगा, उसमें कोई आश्चर्य नहीं। वह तो वस्तु की स्थिति है। मुनि की धारा तो देखो! आहाहा! **उसमें आश्चर्य नहीं...** यह मुनिपना। प्रत्याख्यान अधिकार है न।

कारण कि अमृत भोजनजनित स्वाद को जानकर... अरे! देवों को कण्ठ में अमृत के भोजन का स्वाद आता है। **देवों को अन्य भोजन से क्या प्रयोजन है?** उसको दूधपाक और रोटी से क्या प्रयोजन है? एक सागर (आयुष्य) वाले को हजार वर्ष में आहार की इच्छा उठती है, दो सागरवाले को दो हजार, ३३ सागरवाले को ३३ हजार। एक पखवाड़े में तो श्वास लेते हैं। एक सागर (आयुष्य) वाला देव एक पखवाड़े में... एक पखवाड़े में—पन्द्रह दिन में श्वास लेता है। पन्द्रह दिन। आहाहा! इतना तो पुण्य फल में है। यह तो आत्मा को अन्तर लगनी लगी, उसकी बात यहाँ है। जो देवों ने **अमृत भोजनजनित स्वाद को जानकर...** आहाहा! अन्य भोजन से क्या प्रयोजन है? रोटी और दूधपाक से क्या प्रयोजन है? दूधपाक भी धूल है। आहाहा! समझ में आया?

जिस प्रकार अमृत भोजन के स्वाद को जानकर देवों का मन अन्य भोजन में नहीं लगता, उसी प्रकार ज्ञानात्मक सौख्य को जानकर... समकिती ज्ञानस्वरूप आनन्दमूर्ति भगवान को जानकर... **हमारा मन उस सौख्य के निधान चैतन्यमात्र-चिन्तामणि के अतिरिक्त अन्य कहीं नहीं लगता।** आहाहा! समझ में आया? राजकुमार जब अन्तर में उतरने आते हैं, अनुभव हुआ, नीलम की... ...क्या कहते हैं? पत्थर नीचे... जिनके महल में नीलम की टाईल्स, हीरा की पाट, अरबोंपति राजकुमार... धूल भी नहीं, यह कहते हैं। उसमें दु:ख लगता है, माता! अरे! यह स्त्री जवान। ७२-७२ स्त्री है पद्मनि जैसी। माँ! मेरे आनन्द के आगे सब जहर लगता है। संसार में रहते हुए भी... वह कहते हैं, देखो! मैं तो चैतन्यमात्र चिन्तामणि का निधान (हूँ)। ज्ञानस्वरूप के निधान के समक्ष—ऐसी रुचि के समक्ष मेरा मन कहीं नहीं लगता। कहीं मेरे मन का एकत्व तो होता नहीं। आहाहा!

छह खण्ड का राज भरत को... मुझे कहीं मन नहीं लगता। मेरा मन जहाँ लगा है, वहाँ से हटता नहीं-हटता नहीं। पर से उदास... उदास... अपनी—सम्यग्दृष्टि की अन्तर में ध्रुव पर लगन लगी है। नित्यानन्द भगवान पर जिसकी रुचि और प्रेम है। उसका प्रेम कोई लूट जाये-हिस्से कर दे—ऐसी कोई चीज़ जगत में नहीं है। आहाहा! समझ में आया? कोई पुण्य में भी स्वाद दिखता है, वह मिथ्यादृष्टि है। अपना चैतन्यमात्र आनन्द ऐसा स्वभाव, उसका प्रेम छोड़कर कहीं भी प्रेम लगा, (तो) व्यभिचारी मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? आहाहा! व्यभिचार संयोग में होता है न! ऐसे राग की एकता की, राग में सुख है, (ऐसा माना तो) व्यभिचार है। आहाहा! ... गाथा में है। व्यभिचार है, हों! आहाहा! समझ में आया?

समयसार (गाथा) २०३। 'वास्तव में भगवान आत्मा में...' ऐसा शब्द लिया संस्कृत टीका में। '**भगवत्यात्मनि बहूनां**' 'द्रव्य-भावो के मध्य अतत्स्वभाव के अनुभव में आते हुए अनियत अवस्थावाले अनेक, क्षणिक, व्यभिचारी भाव' है। संस्कृत। दया, दान, व्रत का विकल्प व्यभिचारभाव है। अमृतचन्द्राचार्य ने खुल्ला कर दिया है। गुप्त कहाँ रखना है? पाँच बोल लिये हैं। पुण्यभाव अनियत है—अनियत अवस्थावाला है, अनेक है, क्षणिक है और पर है और व्यभिचारी है। 'वह अस्थायी होने से...' स्थायी रहने का स्थान नहीं। अस्थिर है, वह स्थायी रहने का स्थान (नहीं)। स्थायी यह भगवान आत्मा है। जो स्थिर रहने का स्थान है... ऐसा पाठ है, देखो! यह स्थाता का स्थान नहीं। आहाहा! 'एक ही स्वयं स्थायी होने से स्थाता का स्थान है।' संस्कृत है। रहनेवाले का—रहने का स्थान तो ध्रुव है। आहा! लो, यह मकान-बकान नहीं। भाई ने मकान बनाया है न! ३६ हजार की जमीन ली है। जमीन ली है ३६ हजार की। पीछे बँगला बनायेगा। यह रहने का स्थान है न? पोपटभाई!

मुमुक्षु : व्यवहार...

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार धूल भी नहीं। बोलने की पद्धति है। आहाहा!

यहाँ तो कहा, स्थाता का स्थान... टीका है, २०३। रहनेवाले का स्थान तो ध्रुव है। रागादिभाव भी रहनेवाले का स्थान नहीं। तो फिर शरीर, वाणी, धूल, मकान कहाँ

रहा? वह तो कहीं रह गये। यह निर्जरा का अधिकार है। निर्जरा का अधिकार। अरे! अमृत का भोजन जिसको—देव को मिलता है, उसे अन्य भोजन से क्या (प्रयोजन)? समझ में आया? दूधपाक मिले, उसके (आगे) वह ज्वार की, लाल ज्वार की छिलके की रोटी क्या? यहाँ तो आत्मा के आनन्द के समक्ष दूधपाक (तो) भी क्या? समझ में आया? सुन्दर शरीर, खाना-पीना, मक्खन, कोमल गद्दे, वाजिंत्र बजे, सुगन्ध आवे, प्रकाश हो... आहाहा! धूल भी सुख नहीं है। सुन तो सही! भिखारी! तुझमें आनन्द नहीं है कि बाहर आनन्द देखने जाता है? स्वयमेव देव... जिसमें ज्ञान और आनन्द भरा है। बाहर कहाँ है? रुचि में विपरीतता है। साधु होकर भी पुण्यभाव में प्रेम लगे तो मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। वह व्यभिचारी है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण ५, बुधवार, दिनांक - ११-८-१९७१
श्लोक-१३१-१३३, गाथा-९८, प्रवचन-९१

निश्चय प्रत्याख्यान अधिकार। आत्मा में सच्चा राग का त्याग किसको कहते हैं और चारित्र का अन्तर्भेद ऐसा प्रत्याख्यान, यह क्या चीज़ है, वह बताते हैं। अपने कलश आ गया है, १३० आ गया है। १३१ कलश... कलश। १८८ पृष्ठ।

निर्द्वन्द्वं निरुपद्रवं निरुपमं नित्यं निजात्मोद्भवं,
नान्य-द्रव्य-विभावनोद्भव-मिदं शर्मामृतं निर्मलम्।
पीत्वा यः सुकृतात्मकः सुकृत-मप्येतद्विहायाधुना,
प्राप्नोति स्फुटमद्वितीयमतुलं चिन्मात्रचिन्तामणिम्॥१३१॥

आहाहा! देखो! कैसा है भगवान आत्मा अन्दर? **श्लोकार्थः—द्वन्द्व रहित,...** चैतन्यमूर्ति, आनन्दकन्द अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति आत्मा है, उसमें राग-द्वेष का द्वन्द्व नहीं, पुण्य-पाप के विकल्प का भेद उसमें नहीं। यह आत्मा **उपद्रव रहित...** जिसमें किसी प्रकार का उपद्रव नहीं, आकुलता नहीं। ऐसा भगवान नित्यानन्द प्रभु ध्रुव **उपमा रहित**—जिसको उपमा नहीं। अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति प्रभु आत्मा को उपमा क्या? ऐसी चीज़ उपमारहित प्रभु **नित्य...** त्रिकाल ध्रुव है वह तो। जिसमें राग-द्वेष तो नहीं, कर्म-शरीर तो नहीं, एक समय की अवस्था भी जिसमें नहीं, आहाहा! ऐसा नित्य भगवान **निज आत्मा**—अपना आत्मा... भगवान का आत्मा भगवान के पास रहा। ऐसे **निज आत्मा से उत्पन्न होनेवाले,...** आनन्द... ऐसा आत्मा उसमें एकाग्र होने से अतीन्द्रिय आनन्द जो उत्पन्न होता है, वह प्रत्याख्यान और वह चारित्र और वह धर्म है। आहाहा! समझ में आया? **निज आत्मा से उत्पन्न होनेवाले,...** अपना भगवान नित्यानन्द प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द से पूरा भरा पड़ा है। आहाहा! उसकी एकाग्रता अन्तर में उत्पन्न होकर जो अतीन्द्रिय आनन्द उत्पन्न होता है, वही प्रत्याख्यान और वही धर्म और वही मोक्ष का मार्ग है। आहाहा!

अन्य द्रव्य की विभावना से (-अन्य द्रव्यों सम्बन्धी विकल्प करने से) उत्पन्न न होनेवाले—देखो! अन्य द्रव्यों सम्बन्धी विकल्प करने से नहीं उत्पन्न होनेवाला... जो राग का अंश है, उससे आनन्द उत्पन्न नहीं होता। अपने आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द है, उसमें एकाग्र होने से अतीन्द्रिय आनन्द उत्पन्न होता है। आहाहा! भारी कठिन मार्ग! पहले जगत को समझना कठिन। समझ में आया? ऐसे अन्य द्रव्यों की विभावना... विभावना अर्थात् विकल्प, उससे नहीं उत्पन्न होनेवाला... धर्मी को अपने भगवान आत्मा में से जो अतीन्द्रिय आनन्द उत्पन्न होता है, वह अन्य द्रव्य के विकल्प से उत्पन्न नहीं होता अर्थात् व्यवहार विकल्प व्यवहाररत्नत्रय से भी उत्पन्न नहीं होता। आहाहा! समझ में आया?

(-अन्य द्रव्यों सम्बन्धी विकल्प करने से) उत्पन्न न होनेवाले—ऐसे इस निर्मल सुखामृत को पीकर... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द अमृत रस का घूँट पीकर... गजब भाई धर्म! ऐसा धर्म! कहते हैं कि दया, दान और व्रत, भक्ति, तप, यह तो सब अन्य द्रव्य का विकल्प है। आहाहा! समझ में आया? इससे उत्पन्न नहीं होनेवाला, परन्तु अपना ज्ञायकमूर्ति चिदानन्द प्रभु, उसकी एकाग्रता से उत्पन्न होनेवाला... कैसे? **ऐसे इस निर्मल सुखामृत...** आहाहा! 'आशा औरन की क्या कीजे, ज्ञान सुधारस पीजे...' आत्मा में ज्ञानस्वभाव अमृत से भरा है। आहाहा! उस सन्मुख दृष्टि करके अमृत का पीना—निर्विकल्प आनन्द का घूंट लेना। आहाहा! कठिन मार्ग, भाई! समझ में आया? पोपटभाई! ऐसी बात है यह... अरे! आहाहा!

निर्मल सुखामृत को पीकर (-उस सुखामृत के स्वाद के निकट सुकृत भी दुःखरूप लगने से),... आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, पूजा का विकल्प है, वह भी अपने आत्मा की एकाग्रता के आनन्द के समक्ष दुःख है। आहाहा! भारी कठिन बात है। समझ में आया? यह तो राग है। राग दाह आग... छहढाला में आता है। 'राग दाह दहे...' राग तो दाह है। आहाहा! उस रूप कर्तव्य जो है, वह भी विकल्प है, राग है, दुःख है। आहाहा! अपना निजात्म भगवान द्वन्द्व—उपमा (रहित) और कल्याणमूर्ति, उसमें एकाग्र होने से जो अमृत का घूंट लेता है, अमृत को पीता है, उसको धर्मी कहने में आता है। आहाहा! गजब! समझ में आया?

जो जीव सुकृतात्मक है, वह अब इस सुकृत को भी छोड़कर... आहाहा! जो कोई शुभ विकल्प उठते हैं, मुनि को पंच महाव्रतादि, गृहस्थ को भक्ति आदि, वह सब विकल्प—राग और दु:ख है। आहाहा! श्रावक का षट् आवश्यक जो है, वह विकल्प है, वह भी दु:ख है, कहते हैं। गजब बात है। आहाहा! जैनदर्शन वीतरागमार्ग... पूरा भगवान आत्मा निर्विकल्प अतीन्द्रिय आनन्द से भरा पड़ा प्रभु अपना निज स्वरूप है, उसमें एकाग्र होने से जो आनन्द आता है, वही धर्म, वह सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र, वही निश्चय सुकृत। व्यवहार सुकृत के विकल्प को छोड़कर... ऐसा कहते हैं। पाठ में है न, देखो!

'सुकृतमप्येकद्विहयाधुना...' तीसरा पद है न। अभी छोड़कर... आहाहा! **'सुकृतात्मकः सुकृतमप्येकद्विहयाधुना...'** आहाहा! भाषा भी कैसी ली है! सन्तों—दिगम्बर मुनि आनन्द में झूलनेवाले, अतीन्द्रिय आनन्द में झूलते थे, अतीन्द्रिय आनन्द के झूले में झूलते थे, ऐसी दशा चारित्र है। आहाहा! यह चारित्रवन्त ऐसा कहते हैं कि जिसको आत्मा की शान्ति लेना हो, वह अपना निर्द्वन्द्व, निरुपद्रव, उपमा रहित प्रभु, ऐसे स्वभाव-सन्मुख में एकाग्र होना। उस आनन्द के पीने में सुकृत जो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा—शुभविकल्प भी जिसके आगे दु:खरूप लगे। आहाहा! भारी कठिन। ऐ सेठ! 'आस्रव दु:खकार घनेरे...' पुण्य-पाप दोनों आस्रव हैं। आहाहा! अरे भगवान! तेरी चीज़ आस्रव-राग से तो भिन्न है, भगवान! अरे! यह चीज़ सुनने में भी न आवे, तो उस चीज़ की प्राप्ति कैसे हो? समझ में आया? यहाँ तो परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतराग जिनवरदेव ने केवलज्ञान से जाना और जो कहा, वह सन्त कहते हैं। समझ में आया? वही दिगम्बर सन्त मुनि पद्मप्रभमलधारिदेव हैं।

कहते हैं, जो जीव सुकृत स्वरूप... नीचे है। **सुकृतवाला; शुभकृत्यवाला; पुण्यकर्मवाला; शुभभाववाला।** आहाहा! छोड़कर.. यह शुभ विकल्प है, वह भी अपने आनन्द की अपेक्षा से आस्रवरूप, दु:खरूप है। अभी तो श्रद्धा का ठिकाना नहीं, उसको चारित्र और शान्ति कहाँ से मिले? समझ में आया? अभी तो यह पुण्य किया है, वह धर्म है। उसके कारण से धर्म होगा (अर्थात्) दु:ख से सुख होगा। समझ में आया? परसन्मुख का जो शुभ विकल्प है, वह तो दु:ख है। उस दु:ख से सुख होगा? तो कहते

हैं कि दृष्टि में इस शुभविकल्प को भी छोड़कर निजानन्द भगवान में लिपट जा। आहाहा! लिपट कहते हैं? हमारे में लपेट कहते हैं। तुम्हारी हिन्दी नहीं आती। थोड़ी-थोड़ी आती है। समझ में आया? आहाहा!

भगवान! यह तो तेरे घर की बात है, नाथ! तेरी चीज़ में तो अतीन्द्रिय आनन्द छलाछल—लबालब भरा है। जैसे मधु के घड़े में मधु भरा हो, मधु... मधु कहते हैं न? शहद। शहद के घड़े में शहद ही भरा हो, वैसे चैतन्य असंख्य प्रदेशी शरीर से भिन्न अपना निज घट, अपने घट में तो अतीन्द्रिय आनन्द छलाछल भरा है। समझ में आया? ऐसा पहले सम्यग्दर्शन होना चाहिए। पहले सम्यग्दर्शन में 'मैं पूर्ण आनन्द और पूर्ण शुद्ध हूँ' ऐसा अनुभव में आता है, तब स्वरूप में लीनता करता है, तब उसको प्रत्याख्यान और चारित्र होता है। त्रिकाल पूर्ण शुद्ध हूँ। पूर्ण शुद्ध कहना (क्या)? यह तो है वह है। आहाहा! समझ में आया? यह तो अपूर्ण की अपेक्षा से पूर्ण कहने में आता है। वस्तु पूर्ण भरी ही है। अरे भगवान! तेरा स्वभाव, ज्ञानस्वभाव, दर्शनस्वभाव, आनन्दस्वभाव, शान्तस्वभाव, वीतरागस्वभाव ऐसे एक-एक स्वभाव में अनन्तता—अपरिमितता—बेहदता है। आहाहा!

ऐसे भगवान आत्मा में सुकृत को भी छोड़कर **अद्वितीय अतुल चैतन्यमात्र-चिन्तामणि को...** अद्वितीय—दूसरी ऐसी चीज़ नहीं, अतुल अर्थात् तुलना नहीं—ऐसे **चैतन्यमात्र-चिन्तामणि को स्फुटरूप से (-प्रगटरूप से) प्राप्त करता है।** आहाहा! यह चिन्तामणि रत्न भगवान शुभविकल्प को छोड़कर अन्तर में एकाग्र होता है, उसको शुद्ध चैतन्य चिन्तामणि प्राप्त होता है। आहाहा! समझ में आया? पहले समझ में तो यथार्थता करे कि चीज़ यह है। और आत्मा के आश्रय से धर्म होता है, दूसरे शुभविकल्प से भी धर्म नहीं होता। परन्तु जिसको पुण्य की मिठास अन्दर है न, उस मिठासवाले को ऐसा लगे, आहाहा! ऐसा मार्ग... एकान्त निश्चयाभास है।

अरे! सुन तो प्रभु! सुन तो सही! जहाँ आनन्द का स्वाद आता है, वहाँ निश्चयाभास रहे कैसे? समझ में आया? आनन्द का स्वाद न हो और अकेली निश्चय की बात करे और अन्दर है नहीं अनुभव और राग की रुचि छूटी नहीं है, तो निश्चयाभास है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भगवान! अहो! तेरी महिमा क्या! तेरी चीज़

की महिमा सर्वज्ञ भी गा नहीं सके। आहाहा! ऐसी चीज़ (कहने में) आचार्यों को शब्दों की कमी पड़ती है। चीज़ कहने में शब्दों की कमी पड़ती है। क्या कहे, क्या कहे आत्मा? क्या कहे? शब्द जड़, भगवान चैतन्य। चैतन्य से दुश्मन भाषा जड़। आहाहा! भाषा द्वारा भगवान को कहना... ईशारा आता है। नन्दकिशोरजी! आहाहा! श्रीमद् ने कहा न, 'जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में, जो स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा ज्ञान में, कह सके नहीं वह भी श्री भगवान जब, उस स्वरूप को अन्य वाणी वह क्या कहे?' यह गूँगे का गुड़ है। गूँगा गुड़ को खाये, परन्तु गूँगा (कह नहीं सकता कि) स्वाद कैसा। सेठ! बोल नहीं सकता। गुड़ का स्वाद ले। कैसे भैया कैसा गुड़ है?

मुमुक्षु : ज्ञानवन्त अपनी कथा कहै आपसे आप...

पूज्य गुरुदेवश्री : आपसे आप। आहाहा! सम्यग्दर्शन का विषय ऐसा प्रभु कैसा है और उसमें क्या है। कभी उसकी रुचि और सन्मुख हुआ ही नहीं। उसके सन्मुख हुए बिना सब क्रियाकाण्ड कर-करके मर गये। समझ में आया? निर्जरा अधिकार में आता है, सब क्लेश है। क्लेश किया। पंच महाव्रतादि क्लेश... आहाहा! आनन्दनाथ प्रभु, सच्चिदानन्द नाथ के सन्मुख कभी देखा नहीं और राग से कभी विमुख हुआ नहीं। आहाहा! पहले दृष्टि में तो निश्चित करे कि मेरे सन्मुख जाना, वही धर्म है। समझ में आया?

कहते हैं, अरे! **अद्वितीय अतुल चैतन्यमात्र-चिन्तामणि...** चिन्तामणि में, जैसे इच्छा करे वैसे मिले। वह देव अधिष्ठित होता है। यह भी देवाधिदेव भगवान आत्मा है, उसकी जिसको दृष्टि हुई, चिन्तामणिरत्न प्राप्त हुआ। इसमें जितनी एकाग्रता करे, इतनी आनन्द की लहर आती है। समझ में आया? आहाहा! व्यवहार की रुचिवाले को यह बात सुहावे—रुचे नहीं। व्यवहार होता है, परन्तु वह है राग और उसकी रुचि छोड़नेयोग्य है, प्रभु! जब तक वीतरागता पूर्ण न हो, तबतक व्यवहार बीच में आता है, परन्तु है वह राग, वह हेय है और दुःखरूप है। अपने आत्मा का अनादर होकर राग उत्पन्न होता है। जबतक राग का आदर है, तबतक आत्मा का अनादर है। समझ में आया? कहते हैं, अहो! भाषा कितनी की है!

अजोड़ **अतुल चैतन्यमात्र-चिन्तामणि...** जो अन्तर में एकाग्र होते हैं और

सुकृत को छोड़ते हैं दृष्टि में से, उनको चैतन्य चिन्तामणिरत्न की प्राप्ति होती है। उनको आत्मा की प्राप्ति होती है, ऐसा कहते हैं। आत्मा की प्राप्ति स्थिरता में, वह चारित्र। चारित्र, कोई क्रियाकाण्ड चारित्र है नहीं। आहाहा! पहली बात रुचना ही कठिन है। ओहोहो! समझ में आता है न भैया? ऐसी बात है। आहाहा! यह देह तो (हाड़)पिंजर जड़ हड्डियाँ, माँस और चमड़ी... उस पर चमड़े की गार (मिट्टी) है। गार क्या कहते हैं? लीपण। अन्दर हाड़-माँस है, ऊपर चमड़ी का लीपण है। एक चमड़ी खींचे... ऐसी धूल है यह तो। आहाहा! अमृत का सागर देह-देवल की मूर्च्छा में... आया है न वहाँ? मूर्च्छित... देह में मूर्च्छित होकर, अमृतसागर देह में मूर्च्छित होकर अमृत स्वरूप को खो बैठा है। आहाहा! समझ में आया?

काया... आता है न वह ९६ गाथा में, भाई! (समयसार गाथा) ९६ में आता है। 'अमृतसागर प्रभु देह में—मृतक कलेवर में मूर्च्छित हुआ' ऐसा पाठ है। आहाहा! समझ में आया? समयसार तो भगवान साक्षात्, वाणी वीतराग की वाणी अच्छी है। ९६ देखो। 'केवल बोध (-ज्ञान) ढँका हुआ होने से और मृतक कलेवर (-शरीर) द्वारा परम अमृतरूप विज्ञानघन (स्वयं) मूर्च्छित हुआ होने से...' संस्कृत टीका है '**मृतक-कलेवरमूर्च्छितपरमामृत-विज्ञानघनतया च तथाविधस्य भावस्य कर्ता प्रतिभाति...**' भगवान आत्मा अपना अमृतस्वरूप, अमृतस्वरूप, वह मृतक कलेवर में मूर्च्छित हुआ कि यह मैं हूँ। राग भी मृतक कलेवर है, राग वह अचेतन है। व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प अचेतन है, उसमें ज्ञान की पर्याय नहीं। आहाहा! ऐसे राग अचेतन और शरीर अचेतन मृतक कलेवर है, उससे मूर्च्छित हुआ... मृतक कलेवर में मूर्च्छित हुआ... आहाहा! अमृतरूप विज्ञानघन... भगवान आत्मा तो अमृत विज्ञानघन है। आहाहा! यह मूर्च्छित हुआ (तो) राग का कर्ता अज्ञानी प्रतिभासित होता है। व्यवहाररत्नत्रय का कर्ता भी अज्ञानी प्रतिभासित होता है। आहाहा! कठिन काम, भाई! बहुत कठिन काम है।

मुमुक्षु : ज्ञानी को क्या दिखता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञानी को आनन्द दिखता है। अमृतस्वरूप में भगवान कभी मरता नहीं। ऐसी ९६ गाथा है, समयसार। टीका भी अलौकिक! अमृतचन्द्राचार्य। लगभग

चार हजार (शब्दों की) टीका है। ४१५ (गाथा) हैं कुन्दकुन्दाचार्य की। भरतक्षेत्र में अमृत का झरना है वह। समझ में आया? वह दिव्यध्वनि का धोध है। कहते हैं, अरे भगवान! तेरी चीज़ की तुझे महिमा नहीं और रागादि और पुण्यादि की महिमा है, बड़ा मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, चैतन्यमात्र चिन्तामणि ऐसा भगवान स्फुटरूप से प्राप्त होता है। प्रत्यक्ष भास में... आनन्द के अनुभववाले ज्ञानी को आत्मा प्रगट-प्रगट भासित होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! १३१ कलश हुआ। १३२।

को नाम वक्ति विद्वान् मम च परद्रव्यमेतदेव स्यात्।
निजमहिमानं जानन् गुरुचरणसमर्चनासमुद्भूतम्॥१३२॥

उत्पन्न हुआ। अहो! ज्ञानी धर्मात्मा, सन्त ऐसे **गुरुचरणों के सर्मचन से...** ऐसे धर्मात्मा के चरण की पूजा से... देखो भाषा! समझ में आया? **उत्पन्न हुई निज महिमा...** सन्तों ने आत्मा की महिमा बतायी। सन्तों का विनय किया, बहुमान किया तो सन्तों ने बताया कि भगवान! तेरी चीज़ महामहिमावन्त है, प्रभु! आहाहा! समझ में आया? **गुरुचरणों के सर्मचन से... समर्चन=सम्यक् अर्चन; सम्यक् पूजन; सम्यक् भक्ति। उत्पन्न हुई निज महिमा...** गुरुमुख से सुना, आहाहा! भगवान! तेरी चीज़ क्या कहें! वाणी का विलास जहाँ पहुँचता नहीं, विकल्प जहाँ छूता नहीं, ऐसी चीज़ की महिमा गुरु की भक्ति से उत्पन्न होती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **निज महिमा को जाननेवाला कौन विद्वान 'यह परद्रव्य मेरा है' ऐसा कहेगा?** राग मेरा है, पुण्य मेरा है (—ऐसा) कौन कहेगा? आहाहा! अपना स्वद्रव्य, उसकी महिमा जिसने गुरुमुख से सुनी और निज महिमा का भान हुआ, ऐसा विद्वान, 'व्यवहाररत्नत्रय का राग मेरा है' ऐसा कौन कहेगा? और व्यवहाररत्नत्रय से मुझे धर्म होगा, ऐसा कौन कहेगा? कहो, पूनमचन्दजी! क्या है यह? दिगम्बर सन्तों ने यह बात (कहकर) सनातन केवली का प्रवाह बहाया है। ऐसी चीज़ कहीं तीन काल—तीन लोक में दूसरे में है ही नहीं। दूसरे से समन्वय करो। किसके साथ करें भगवान? समझ में आया? मलमल का एक टुकड़ा और एक सूत से... क्या कहते हैं? शण... शण। शण का टुकड़ा। दोनों की सन्धि करे।

हमारे सम्प्रदाय में थे न गुरु...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु पहले श्रद्धा तो करे ऐसी। नहीं 'रहता' का प्रश्न कहाँ है ? तेरी श्रद्धा भ्रष्ट है। श्रद्धा का ठिकाना नहीं। श्रद्धा तो पहले निश्चित करे कि ऐसा है, पश्चात् न रह सके तो ऐसा शुभभाव आता है। आता है, परन्तु वह दुःखरूप है—ऐसा जाने। वह हेय है। मुनि को भी पंच महाव्रत का शुभभाव आता है, २८ मूलगुण का (भाव आता है)। नहीं आता है ? भगवान की भक्ति का (भाव) नहीं आता है ? आता है, परन्तु पहले श्रद्धा में लेना कि दुःखरूप है। उससे मुझे धर्म का लाभ नहीं होगा। ऐसी श्रद्धा तो पक्की करे पहले। यह तो श्रद्धा का ठिकाना नहीं और अब उसमें रह सकता नहीं... यह तो हमारे करना न ? 'करना' यह कर्तृत्वबुद्धि, वही मिथ्यात्वभाव है। करना, वह तो मरना है। हमारे भाई—सोगानी कहते हैं।

सोगानी हैं न, हो गये हैं न ? क्या नाम है ? निहालभाई, कलकत्ता। आत्मज्ञान पाकर स्वर्ग में चले गये हैं। बहुत लाखोंपति थे। कलकत्ता में बड़ी दुकान है और यहाँ आये थे। एक दिन में अनुभव हो गया, एक रात्रि में। ३२-३५ की उम्र में आये थे, ५३ वर्ष में देह छूट गया। मुम्बई आये थे अन्त में। भान लेकर चले गये। उनकी ऐसी कोई शक्ति थी। वे ऐसा कहते थे कि करना, वह मरना है। बराबर न जाने तो आत्मा का पता नहीं लगेगा। मूलचन्दभाई ! यह सब पुरानी रूढ़ि के मनुष्य थे सब। अब वह समय गया, कहते हैं। उसका कुछ नहीं। सुल्टा आया न अब। आहाहा ! जगे तब से सवेरा। अब क्या है ? करना, वह मरने बराबर है, ऐसा लिखा है, तीसरे भाग में। वह तीसरा भाग है न उनका (द्रव्यदृष्टिप्रकाश का)।

मुमुक्षु : सबके मुँह में पानी आया था कि तीसरा भाग तो बताओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे कहाँ निवृत्ति है ? यह दिया है उसको। निवृत्ति कहाँ है ? पन्द्रह दिन के बाद तो आया। यहाँ तो ऐसी बात है। सेठिया को भी उड़ा देते हैं। सेठिया है कहाँ ? सेठ तो उसको कहते हैं कि अपना साम्राज्य अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसका स्वामी हो, तो सेठ कहा जाता है। बाकी सब हेठ है। बाकी सब हेठ है। भगवान

आत्मा... कहा था न कल। अपना स्वरूप अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द— ऐसी अनन्त शक्तियाँ पड़ी हैं। ऐसा शक्ति(वान) चिन्तामणिरत्न भगवान का स्वामी हो, सन्मुख होकर और राग का स्वामी(पना) छूट जाये, उसका नाम भगवान 'सेठ' कहते हैं। समझ में आया ?

सेठिया ने लिखा है न, सेठिया ने लिखा है। सरदारशहरवाले। आया न उसमें। .... अपना स्वरूप सम्हारे सो सेठ, बाकी अनुचर जाणजो। बाकी सब भिखारी है। ऐ सेठ! यह तुम सब करोड़पति को भिखारी कहते हैं। है या नहीं है ? कितना में है वह ? पहले में। यह दूसरा भाग है। यह भाग दूसरा यह। तेरहवें पृष्ठ पर, नहीं ? 'गुणीजन सम्हाले सो ही है सेठ...' सरदारशहरवाले दीपचन्दजी हैं न, उन्होंने बनाया है। गृहस्थ हैं। स्थानकवासी थे, अभी तो... उसके मामा के पास ४० वर्ष पहले ६० लाख रुपये थे। ६० लाख देते थे। ले भैया! मुझे पुत्र नहीं है। ६० लाख। चालीस वर्ष पहले ६० लाख अर्थात् ? तुम्हारे पास करोड़ हों तो पूर्व के पाँच लाख (के बराबर कहलाये)। २०-२० (वाँ भाग) हो गया। पहले के एक लाख, अभी के २० लाख अर्थात् बीसवाँ भाग हुआ। तो ६० लाख थे, देते थे। नहीं लिये। क्या करें हम ? मुझे जाना है परलोक... ६० लाख। वह यहाँ आते हैं... उन्होंने बनाया है। वह कहते हैं, देखो!

'गुणीजन सम्हाले सो ही छे सेठ....' गुणीजन आत्मा। अनन्त गुण का पिण्ड, उसकी सम्हाल करे, वह सेठ। 'अन्य तो अनुचर जाणजो जी, म्हारा ज्ञान।' यह कब बनाया था ? उसके लड़के का लड़का गुजर गया छोटी उम्र में। डॉक्टर... कुछ खबर नहीं। गुजर गया। बड़ा घर था। सेठिया का घर था तो... बहुत लोग आये। तो उसकी माँ को कहा, क्यों बेटा ? रोना है ? रोते हैं न। हमारे यहाँ कहते हैं न, यहाँ हमारे काठियावाड़ में भाषा है। तुम्हारी भी होगी अवश्य। 'म्हारा पेट' ऐसा रोवे। मर जाये न (तब रोवे)। 'ऐ म्हारा पेट' ऐसा करके रोवे। म्हारा पेट अर्थात् पेट में जन्मा हो न लड़का, इसलिए म्हारा पेट कहे। ऐसा गायन है रोने का। तो (इन्होंने) बनाया 'म्हारा ज्ञान।' पेट तेरा कैसा ? 'म्हारा ज्ञान' बनाया, देखो! 'अन्य तो अनुचर जाणजो जी...' दूसरे तो अनुचर, भिखारी हैं। ऐ सेठ! निजसम्पदा का भान नहीं और परसम्पदा की प्रीति है, (तो) भिखारी है। बाहर से माँगते हैं, ऐसा लाओ... ऐसा लाओ... ऐसा लाओ।

यहाँ राजा आया था। भावनगर दरबार है न। एक करोड़ का तालुका है। एक करोड़ की आमदनी। दरबार आये थे व्याख्यान में। तो मैंने उसको कहा—दरबार! ...दरबार नरम थे बेचारे। एक करोड़ का तालुका। यहाँ दो बार आ गये। एक महीने में पाँच हजार माँगे, वह छोटा-नाना भिखारी है। माँगण समझे न ? भिखारी। छोटा भिखारी। और एक लाख महीने में माँगे, वह बड़ा भिखारी और करोड़ माँगे वह (उससे) बड़ा भिखारी है। थोड़ा माँगे (वह छोटा) भिखारी—कम भिखारी। यह पुस्तक है अपने। दूसरा भाग है या एक ही है ? दूसरा भाग है ? दूसरा भाग होगा। पहला भाग। पहला भाग समाप्त हो गया है। दूसरा भाग है। यह गुजराती है। लिया है ?

यहाँ कहते हैं, वह स्फुटरूप से—प्रगट(रूप से) प्राप्त होता है। भगवान परमानन्द की मूर्ति दृष्टि में से राग का भी त्याग करके... छोड़ राग दृष्टि में से, रुचि छोड़। भगवान आनन्दकन्द की दृष्टि में आया तो चिन्तामणि रत्न प्राप्त हुआ। उसको समकिती और धर्मी कहते हैं। और पश्चात् स्वरूप में रमणता करने से आनन्द... आनन्द... आनन्द... आहाहा! धन्य अवतार! चारित्र। उसको प्रत्याख्यान और चारित्र कहते हैं। यह बाह्यक्रिया है करे द्रव्यलिंग की और (कहे) चारित्र है। यह चारित्र-फारित्र है ही नहीं। समझ में आया ? लो, ऐसे **गुरुचरणों के सर्मचन से... निज महिमा को जाननेवाला कौन विद्वान 'यह परद्रव्य मेरा है' ऐसा कहेगा ?** राग—विकल्प मेरा है, यह कौन कहे ? ऐसा कहते हैं। आहाहा! मेरा तो पूर्ण आनन्दघन, ज्ञानघन, विज्ञानघन, वह मैं हूँ। उसके अतिरिक्त कोई दूसरी चीज़ मैं हूँ नहीं। ऐसी पहले सम्यग्दर्शन में पक्की श्रद्धा अनुभव करके होना चाहिए। अनुभव करके, हों! ऐसी श्रद्धा ऊपर से नहीं। समझ में आया ? बस १३२ हुआ। ९८ गाथा। ९७ (गाथा) पूरी हुई।

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधेहिं वज्जिदो अप्पा।
सो हं इदि चिंतिज्जो तत्थेव य कुणदि थिरभावं॥९८॥

आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, ऐसे आत्मा का चिन्तवन करो। मैं तो चार—प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभाग बन्ध से रहित हूँ। **'सो हं इदि चिंतिज्जो तत्थेव य कुणदि थिरभावं'** और अन्तर का ज्ञान करके स्थिर होना... स्थिर होना, वह चारित्र है, वह प्रत्याख्यान है।

जो प्रकृति स्थिति अनुभाग और प्रदेशबंधविन आत्मा।
मैं हूँ वही, यों भावता ज्ञानी करे स्थिरता वहाँ॥९८॥

टीका : यहाँ (-इस गाथा में), बन्धरहित आत्मा भाना चाहिए... आहाहा! देखो! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य पंचम काल के आत्मा को कहते हैं। **बन्धरहित आत्मा...** भगवान तो राग और कर्म के बन्धरहित है। भावकर्म और जड़कर्म के बन्धरहित है। ऐसा वर्तमान में बन्धरहित है। देखो! **'जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं।'** १५वीं गाथा है न! जैनशासन वह जानता है। १५वीं गाथा है। जो कोई अपने आत्मा को अबद्धस्पृष्ट—पर से स्पर्शा ही नहीं, पर से बन्ध है ही नहीं। ऐसे अपने आत्मा को अनुभव से जानता है, उसने सारे जैनशासन को जाना। समझ में आया? आहाहा! कठिन परन्तु! यह कर्म है, निमित्त सम्बन्ध है। पर्याय, पर्याय को निमित्त सम्बन्ध है। द्रव्य में कहाँ है? समझ में आया? एक समय की पर्याय नैमित्तिक, उसमें कर्म का निमित्त, बस इतना सम्बन्ध है, वह तो व्यवहार है, अभूतार्थ है। समझ में आया? भूतार्थ भगवान आत्मा बन्धरहित है। आहाहा!

जैसे जल में कमल... दृष्टान्त दिया है (समयसार) १४वीं गाथा में। जल में कमल दिखता है। बाहर से देखो तो ऐसे जल में कमल है, ऐसा दिखता है, परन्तु कमल के स्वभाव से देखो तो कमलस्वभाव में पानी का लेप है ही नहीं। समझ में आया? कमल के रोम ऐसे रूखे होते हैं, रूखे... रूंवाटी समझे? रोम... रोम... रोम—बारीक रोम ऐसे रूखे होते हैं कि जल में से ऊपर करो, लेप (हुआ ही नहीं—पानी) छुआ ही नहीं। इसी प्रकार भगवान आत्मा का ऐसा स्वभाव है कि जरा दृष्टि में से ऊपर कर दे राग से अधिक-भिन्न (तो) कभी राग में लिप्त हुआ ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? जल से ऊपर ले कमल को (तो) छुआ ही नहीं। ऐसे देखे संयोग से तो जल में समाहित दिखे। कमल की दृष्टि से देखे तो कभी कमल छुआ ही नहीं कभी जल को। उसी प्रकार कर्मसम्बन्ध की वर्तमान दृष्टि से देखो तो कर्म का सम्बन्ध दिखता है, परन्तु स्वभाव की दृष्टि से देखो, दृष्टि स्वभाव (सन्मुख) करके देखो तो स्वभाव कभी राग से लिप्त हुआ ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! क्या समयसार! अजोड़... अजोड़ शास्त्र है। नियम से...

नियमसार, कुन्दकुन्दाचार्य अर्थात् ओहोहो! भगवान के पास से भेंट होकर आये

थे। महाविदेह में गये थे भगवान के पास। यह अभी लोग शंका करते हैं। भगवान के पास गये नहीं, महाविदेह में गये नहीं। अरे भगवान! पंचास्तिकाय में टीका में है। टीका में है। जयसेनाचार्य ९०० वर्ष पहले (कहते हैं कि) सीमन्धरस्वामी के पास गये थे, उपदेश लेकर आये और शास्त्र बनाया। ऐसी संस्कृत टीका ९०० वर्ष पहले की आचार्य की है। आहाहा! दर्शनपाहुड़ में है, देवसेन आचार्य (कृत दर्शनसार में है)। अरे! पद्मनन्दि आचार्य भगवान (कुन्दकुन्दाचार्य) सीमन्धर प्रभु के पास जाकर यह बोध न लाये होते (तो) मुनि कैसे धर्म प्राप्त करते? ऐसा पाठ है।

मुमुक्षु : भक्ति में बहुमान होता है न। भक्ति में अपने आदमी की बहुत-बहुत....

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत अर्थात् अधिक झूठी या सच्ची? ऐसा कि महाविदेह में गये नहीं थे, परन्तु यह भक्ति का वचन है, ऐसा कहता है। अरे भगवान! इसमें है। अरे! परन्तु गृद्धपिच्छ लिखा है न, कुन्दकुन्दाचार्य का 'गृद्धपिच्छ' पाँच नाम में से (एक नाम) है। वे जाते थे, पिच्छी गिर गयी तो गिद्ध (पंख) की पिच्छी ली थी। भगवान के पास गये थे। सर्वत्र आता है, बहुत आता है। और षट्पाहुड़ है। षट्पाहुड़ में प्रत्येक पाहुड़ के पीछे लिखा है श्रुतसागर ने (कि) सीमन्धरस्वामी सम्बोधित कुन्दकुन्दाचार्य। यहाँ आये कलिकाल सर्वज्ञ। ऐसा लिखा है। कलिकाल सर्वज्ञ। आहाहा! समझ में आया? ओहोहो! महाविदेह में भगवान के पास भेंट हुई।

इतिहास में भी आता है अपना दिगम्बर इतिहास। वहाँ गये। छोटा शरीर था पतंग जैसा। वहाँ तो ५०० धनुष का देह (और इनका) छोटा देह। ... नीचे बैठ गये कुन्दकुन्दाचार्य। चक्रवर्ती ने हाथ में लिया। महाराज! यह कौन है? यह पतंगिया... ऐसा कौन है? यह छोटा मनुष्य कौन दिखता है? भगवान की वाणी में आया, अरे चक्रवर्ती! भरतक्षेत्र के आचार्य, नेता, (समर्थ) आचार्य हैं। भरतक्षेत्र के आचार्य हैं। ऐसा आता है, इतिहास में आता है। लोगों को कुछ श्रद्धा का ठिकाना नहीं होता। कुन्दकुन्दाचार्य भगवान के पास (गये थे, वह) सिद्ध हो जाये तो दिगम्बर धर्म ही सत्य होगा, दूसरा खोटा होगा, इसलिए उड़ाओ। महाविदेह में गये नहीं थे। महाविदेह में गये थे, आठ दिन रहे थे। वहाँ से आकर यह शास्त्र पोन्नूर हिल पर्वत में बनाया। मद्रास से ८० मील इस ओर है पोन्नूर हिल नाम का पर्वत। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, अरे आत्मा! तुझे बन्धरहित आत्मा भाना चाहिए। आहाहा! भावना, यह कि अन्तर्मुख बन्धरहित मैं हूँ, ऐसी आत्मा में एकाग्रता करना चाहिए, उसका नाम प्रत्याख्यान है। ऐसी **भव्य को शिक्षा दी है।** अभव्य को शिक्षा तो लागू पड़ती नहीं। भव्य प्राणी—जिसका मोक्ष नजदीक है, संसार किनारा आ गया है, चौरासी के अवतार छूटने की तैयारी हो गयी है। उसको यह उपदेश कुन्दकुन्दाचार्य देते हैं। **शुभाशुभ मन-वचन-काय सम्बन्धी कर्मों से प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध होता है;...** शुभ और अशुभ परिणाम का जो भाव, उससे कर्म में प्रकृति अर्थात् स्वभाव और प्रदेश—संख्या बँधती है। **चार कषायों से स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध होता है;...** वह द्रव्यसंग्रह में आता है। द्रव्यसंग्रह। कषाय—क्रोध, मान, माया, लोभ चाहे तो पुण्य हो या पाप है सब कषाय है। उससे स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध होता है। **इन चार बन्धोंरहित...** आहाहा! अरे! बन्ध व्यवहार से होने पर भी निश्चय से बन्धरहित है।

ऐसा बन्धरहित और **सदा निरुपाधिस्वरूप...** सदा निरुपाधिस्वरूप... बन्ध की उपाधि और राग की उपाधि नहीं है, ऐसी मेरी चीज़ है। सम्यग्दृष्टि को ऐसा आत्मा, वह मैं हूँ... यह **आत्मा सो मैं हूँ—ऐसी सम्यक्ज्ञानी को निरन्तर भावना करनी चाहिए।** लो। आहाहा! निरन्तर... किसी समय में बन्ध है और किसी समय में अबन्ध है—ऐसा नहीं। समझ में आया? परन्तु कहते हैं कि रह नहीं सकते। (भले) रह नहीं सकते, परन्तु पहले निर्णय तो करे कि मैं ऐसा ही हूँ, मुझमें बन्ध नहीं, राग नहीं। आहाहा! अज्ञानी को भान कहाँ है? अपना स्वभाव निर्लेप अबन्धस्वरूप, वह आत्मा मैं हूँ। **ऐसी सम्यक्ज्ञानी को निरन्तर भावना करनी चाहिए।** अज्ञानी को तो खबर नहीं। राग मेरा है, शरीर मेरा है, (ऐसा मानता है) तो अज्ञानी है। उसको तो अन्दर उससे रहित है, ऐसी श्रद्धा-ज्ञान है नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ऐसा कह लेने से अबन्ध हो जायेगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुभव करता है। कहने की—भाषा की बात है या अन्तर की बात है? अन्दर में बन्धरहित हूँ, ऐसी दृष्टि करना और अन्दर में लीन होना—यह भाव है। भाषा तो जड़ है। भाषा में क्या है? आहाहा! राग और कर्म के सम्बन्ध की रुचि छोड़कर, अबन्धस्वरूपी भगवान की रुचि कर, यह बात कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : अबन्धस्वरूप भगवान आत्मा तो सिद्ध परमेष्ठी हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, आत्मा अबन्ध है। पहले यह लेना। सब आत्मा अबन्ध ही हैं, द्रव्य से तो। वह तो कहा न १५वीं गाथा में?

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।
अपदेससंतमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं॥१५॥

सम्पूर्ण जैनशासन को जानता है। जो आत्मा को अबद्ध देखे, वह सम्पूर्ण जैनशासन को देखता है। जैनशासन में आत्मा अबद्ध कहा है। आहाहा!

मुमुक्षु : क्या करना चाहिए?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर्मुख दृष्टि करना चाहिए। समझ में आया? अन्तर भगवान आत्मा अस्ति—सत्तावान, चैतन्य सत्तावान, सत्ता जिसका रूप है, आनन्द जिसका स्वरूप है, ज्ञान जिसका भाव है—ऐसा भगवान आत्मा मैं बन्धरहित हूँ, ऐसी श्रद्धा में दृष्टि लगाकर, श्रद्धा की दृष्टि अबन्ध में लगाकर एकाकार होना, इसका नाम समकित और चारित्र है। समझ में आया?

सदा निरुपाधिस्वरूप जो आत्मा सो मैं हूँ—ऐसी सम्यक्ज्ञानी को निरन्तर भावना... भावना शब्द से एकाग्रता। कल्पना नहीं। आहाहा! चैतन्यबिम्ब प्रभु चिन्तामणि भगवान, वह बन्धरहित स्वरूप है, उसकी निरन्तर भावना अर्थात् एकाग्रता करनी चाहिए। आहा! उसका नाम सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र है। राग में एकाग्रता, वह मिथ्यात्व, अज्ञान और अचारित्र है। समझ में आया? आहाहा! राग में एकाग्रता तो मिथ्यात्वभाव है; ज्ञान, वह अज्ञान है और एकाग्रता, अचारित्र है। भगवान बन्धरहित ऐसी श्रद्धा करके अबन्धस्वभाव में लीन होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र है। बहुत संक्षिप्त और बहुत मीठा! मीठा, हों! लोगों को यह बात सुनने को मिलती नहीं न, फिर बेचारों को ऐसा लगे कि यह तो निश्चय... निश्चय... निश्चय... निश्चय। व्यवहार की तो बात आती नहीं।

अरे भगवान! सुनना, यह व्यवहार नहीं है? यह सुनना, वह विकल्प व्यवहार नहीं है? व्यवहार आता है, परन्तु बन्धरहित दृष्टि करना, वह व्यवहार बताता है। समझ में आया? सुनने में विकल्प आता है, विकल्प में ऐसा बताना है कि तेरी चीज़ विकल्प

से रहित है। वहाँ दृष्टि करना, इसकी श्रद्धा कर। आहाहा! इस श्रद्धा बिना, सम्यग्ज्ञान बिना उसने व्रत नियम अनन्त बार लिये हैं। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायौ।' आतमज्ञान, वह आत्मा की ओर झुके तो आनन्द आता है। पंच महाव्रत की ओर झुके तो दु:ख है, राग है, (वह तो) अनन्त बार हुआ। समझ में आया?

[अब इस ९८ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:] लो!

प्रेक्षावद्भिः सहज-परमानन्द-चिद्रूप-मेकं,
सङ्ग्राह्यं तैर्निरुपममिदं मुक्तिसाम्राज्यमूलम्।
तस्मादुच्चैस्त्वमपि च सखे मद्वचःसारमस्मिन्,
श्रुत्वा शीघ्रं कुरु तव मतिं चिच्चमत्कारमात्रे॥१३३॥

आहाहा! मुनि सखारूप से बुलाते हैं, हों! हे सखे! हे मित्र! समझ में आया? हमारी चीज़ जैसी तेरी चीज़ है। इस चीज़ में तुम दृष्टि लगाओ, स्थिर हो, हमारे सखा— मित्र हो, तुम। आहाहा! मुनि को भी इतना प्रेम आता है, देखो! आहाहा!

श्लोकार्थ:—जो मुक्तिसाम्राज्य का मूल है,... जो मुक्ति साम्राज्य का मूल है, कौन? आत्मा। यह मुक्तिरूपी साम्राज्य का मूल शुद्धात्मा। राग संसार का मूल है। आत्मा मुक्तिसाम्राज्य का मूल है। आहाहा! **ऐसे इस निरुपम, सहजपरमानन्दवाले चिद्रूप को (-चैतन्य के स्वरूप को)...** आहाहा! उपमा किसकी देना? रागरहित, बन्धरहित चीज़ आत्मा है, उसको उपमा क्या देना? **सहजपरमानन्दवाले चिद्रूप...** कैसा है ज्ञानरूप? स्वाभाविक आनन्दवाला ज्ञानरूप, ऐसा। स्वाभाविक अतीन्द्रिय आनन्दवाला ज्ञानरूप **(-चैतन्य के स्वरूप को) एक को बुद्धिमान पुरुषों को...** एक भगवान अपना चिदानन्द आनन्दसहित प्रभु ऐसे एक को ही **बुद्धिमान पुरुषों को सम्यक् प्रकार से ग्रहण करना योग्य है;...** बुद्धिमान, मतिज्ञानी धर्मात्मा को तो द्रव्य ही ग्रहण करनेयोग्य है। समझ में आया? **सम्यक् प्रकार से ग्रहण करना योग्य है;...** ग्रहण करना अर्थात् एकाग्र होना। आहाहा!

मुमुक्षु : मुनियों की बात है....

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनियों की बात की है, परन्तु सखा (कहकर) भव्य को उपदेश देना है न, ऐसी भव्य को शिक्षा दी है। मुनि की प्रधानता से सब भव्य को उपदेश दिया है। समझ में आया?

सखारूप से मित्र (कहा है न!) **बुद्धिमान पुरुषों को...** देखो! सम्यग्ज्ञानी को। इस सम्यक् प्रकार से अपना आत्मा ग्रहण करनेयोग्य है। **इसलिए, हे मित्र! तू भी मेरे उपदेश के सार को सुनकर,...** आहाहा! उपदेश का सार यह है कि द्रव्यस्वभाव में घुसना। अपना द्रव्य चैतन्यस्वभाव में अन्दर प्रवेश करना और राग से प्रवेश हटा देना। आहाहा!

मुमुक्षु : उस समय परिस्थितियाँ कैसी बनाना चाहिए?

पूज्य गुरुदेवश्री : एकाग्र होना वह।

मुमुक्षु : शरीर की क्रिया कैसी.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर की क्रिया क्या? शरीर अर्थात् आत्मा। ज्ञानशरीर वह आत्मा। यह उसका शरीर है। 'ज्ञानविग्रहं'। ज्ञान में एकाग्र होना, यह ज्ञानशरीर की क्रिया है। जड़ की क्रिया, वह तो मिट्टी-धूल है। कौन करे? आहाहा!

देखो न! हमारा २४ वर्ष का लड़का बेचारा रोटी की तरह वणाई गया। बीसेक दिन हुए। २४ वर्ष का, हों। दो वर्ष का विवाह। ऐसा ट्रक आ गया, उसकी आँत निकल गयी। बाहर बैठा था। दो मिनिट में, रोटी बेले वैसे पिस गया। यह तो देह की स्थिति होनेवाली है, वह होती है। आहाहा! वह तेरे रोकने से रुकती नहीं (और) तुझसे हो, ऐसा हो ही नहीं (सकता)। तू रोक रखे कि ऐसा होता है... यह तो उस समय में देह की अवस्था होनेवाली थी। तेरी दृष्टि उससे हटाकर आत्मा के ऊपर ले जा। इसके अतिरिक्त तेरा उद्धार है नहीं। विशेष कहेंगे.... !

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण ६, गुरुवार, दिनांक - १२-८-१९७१
गाथा-९९, प्रवचन-९२

नियमसार सिद्धान्त शास्त्र हैं। सिद्धान्त उसको कहते हैं कि सर्वज्ञ की वाणी में जो निश्चय होकर तत्त्व आया, उसका जो आगम में उद्धरण हुआ, उस आगम को सिद्धान्त कहा जाता है। यह वस्तु की सिद्धि सिद्ध हुई है। द्रव्य, गुण, पर्याय, विकारादि जैसे हैं, वैसे सिद्ध—साबित हुए, यह भगवान की वाणी में आया, उसको यहाँ सिद्धान्त कहते हैं। इस सिद्धान्त में नियमसार सिद्धान्त है। ९९ गाथा। प्रत्याख्यान का अधिकार है। चारित्र का अधिकार है। चारित्र का अन्तर्भेद है प्रत्याख्यान।

ममत्तिं परिवज्जामि णिम्ममत्तिमुवट्ठिदो।
आलंबणं च मे आदा अवसेसं च वोसरे॥९९॥

मैं त्याग ममता, निर्ममत्व स्वरूप में स्थिति कर रहा।
अवलम्ब मेरा आतमा अवशेष वारण कर रहा॥९९॥

टीका:—यहाँ सकल विभाव के संन्यास की (-त्याग की) विधि कही है। चारित्र है न! सकल विभाव के संन्यास—त्याग का। संन्यास की विधि—त्याग की विधि। सम्यग्दर्शन में सकल विभाव की रुचि का त्याग है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन में, सब पुण्य-पाप आदि सर्व विभाव की दृष्टि का त्याग है और स्वभाव की दृष्टि का आदर है और चारित्र में यह पुण्य-पाप की ममता का त्याग है और स्वरूप में लीनता, वह चारित्र है। समझ में आया?

मुमुक्षु : दृष्टि का त्याग और ममता के त्याग में अन्तर है?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों में अन्तर है। दृष्टि में तो पहले पुण्य-पाप के भाव होने पर भी उनका आश्रय और रुचि छोड़कर अन्तर अखण्ड आनन्द प्रभु पूर्णानन्द की अन्तर्दृष्टि और अनुभव करना, उसमें पुण्य-पाप का त्याग दृष्टि में आया, परन्तु अभी पुण्य-पाप का भाव नाश नहीं हुआ। समझ में आया? और यहाँ तो चारित्र का अधिकार

है। पुण्य-पाप जो ममता है, उसका भी अभाव, उसका नाम चारित्र है। आहाहा! क्या कहते हैं? देखो! विधि कहते हैं न? विधि कही है, ऐसा है। देखो! **सकल विभाव के त्याग की विधि कही है।**

सुन्दर कामिनी—सुन्दर स्त्री, **कांचन**—स्वर्ण आदि धन **आदि समस्त परद्रव्य...** उसका गुण और उसकी पर्याय... परद्रव्य का द्रव्य, उसके **गुण** और उसकी **पर्याय**—अवस्था, उसके **प्रति ममकार को मैं छोड़ता हूँ।** ममकार को मैं छोड़ता हूँ। आहाहा! चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र हो या स्त्री-कुटुम्ब-परिवार हो—सब परद्रव्य-गुण-पर्याय, वह मेरे हैं—ऐसी दृष्टि तो गयी है, समझ में आया? परन्तु उसकी ओर जो ममता—आसक्ति, अस्थिरता थी, वह कहते हैं कि मैं ममकार को छोड़ता हूँ। आहाहा! प्रत्याख्यान... यह एक उपदेश की पद्धति है। **परमोपेक्षालक्षण से लक्षित...** देखो! निर्ममत्व का स्वरूप क्या? निर्ममत्व का स्वरूप क्या? कि **परमोपेक्षालक्षण से लक्षित...** रागादि कोई भी शुभविकल्प हो, उससे उपेक्षा और त्रिकाली ज्ञायकभाव की अपेक्षा, समझ में आया? सम्यग्दर्शन में भी सकल विभाव की उपेक्षा दृष्टि में है और पूर्णानन्द भगवान की अपेक्षा दृष्टि में है। और चारित्र में, ममत्व का जो आसक्तिभाव था, उस सर्व की उपेक्षा और स्वरूप की अपेक्षा और स्थिरता। आहाहा! ऐसा... है न?

परमोपेक्षालक्षण से लक्षित... पुस्तक नहीं है? **परमोपेक्षालक्षण से लक्षित...** नीचे है। निर्ममकारात्मक का लक्षण क्या? देखो! नीचे। **निर्ममत्वमय; निर्ममत्वस्वरूप। (निर्ममत्व का लक्षण परम उपेक्षा है।)** समझ में आया? सम्यग्दर्शन और चारित्र दोनों में अन्तर क्या है? तो कहे, सम्यग्दर्शन में अपना पूर्ण आत्मा की अपेक्षा अर्थात् श्रद्धा है और आत्मा के अतिरिक्त, चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प हो, उसकी भी रुचि का त्याग है। कहाँ गये हीराभाई? बापू कहते हैं, बहुत जोरदार काम है। कहो, समझ में आया? आहाहा! अरे! जिसमें एक समय की पर्याय की रुचि का त्याग है। भगवान पूर्णानन्द एक समय में—सूक्ष्म काल में ध्रुव चिदानन्द, ध्रुव नित्यानन्द प्रभु की दृष्टि में विकल्प और निमित्त और एक समय की पर्याय की रुचि का त्याग (हो), तब सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? और चारित्र... चारित्र बाकी है। सम्यग्दर्शन हुआ तो चारित्र हो गया साथ में, (ऐसा नहीं है)। स्वरूपाचरण आंशिक हुआ है। पश्चात्

चारित्र बिना मुक्ति नहीं और चारित्र, सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना नहीं और सम्यग्दर्शन-ज्ञान आत्मा के आश्रय बिना नहीं।

है, पाठ में है न? '**आलंबणं च मे आदा...**' तीसरा पद है। मेरा आत्मा ही मुझे आलम्बन है। आहाहा! समझ में आया? मैं नित्यानन्द प्रभु परमस्वभावभाव ऐसा परिपूर्ण प्रभु, वह मुझे दृष्टि में आलम्बन है। मेरी दृष्टि में आलम्बन कोई दूसरी चीज़ नहीं। आहाहा! अब यहाँ तो दूसरी बात विशेष कहते हैं। चारित्र में भी आलम्बन मैं आया। प्रथम मेरे स्वरूप का आश्रय जो कम उग्रता से लिया था, (अब) विशेष उग्रता से मैं आत्मा का आश्रय लेता हूँ, उसका नाम चारित्र है। तीसरा पद है न! '**आलंबणं च**' यह तो भाई! श्लोक स्थानकवासी में यह चले, भाई! यह सब। वह छोटे-छोटे श्लोक होते हैं न, पहले से चलते हैं, (संवत्) १९६८ के वर्ष से। स्थानकवासी में यह सब गाथायें आती हैं। यह निर्ममत्व और यह सब... वह नहीं, परन्तु दूसरे आते हैं। हाँ, सब ... '**एगो मे मरदि जीवो एगो य जीवदि, एगो मे सासदो अप्पा...**' यह १०२। यह सब आती हैं। स्थानकवासी में भी कुछ-कुछ गाथायें हो न। मूल पाठ में नहीं उसे। कुछ-कुछ गाथा होती है उसमें से वाँचे। परन्तु उसका अर्थ स्थूल करते हैं।

यहाँ तो कहते हैं कि मेरे आत्मा में, मैं सुन्दर, स्त्री शरीर की सुन्दरता, कोमलता—उसके प्रति भी मेरी उपेक्षा है। मेरी नहीं है, यह तो दृष्टि में पहले आ गया। समझ में आया? यह स्त्री मेरी नहीं, मेरा तो आत्मा आनन्दकन्द है—ऐसा तो पहले दृष्टि में आया है। यह तो उसके प्रति जरा आसक्ति थी, ममत्व था, वह भी मैं छोड़ता हूँ। समझ में आया? आहाहा! **परमोपेक्षालक्षण से लक्षित निर्ममकारात्मक आत्मा में स्थित रहकर तथा आत्मा का अवलम्बन लेकर,...** देखो! मैं तो नित्यानन्द प्रभु हूँ, उसका अवलम्बन तो मुझे सम्यग्दर्शन में है ही, परन्तु विशेष उग्रपने मैं अवलम्बन लेता हूँ। समझ में आया? ममता की उपेक्षा और स्वभाव की अपेक्षा का आलम्बन लेता हूँ, ऐसी चीज़ है। चारित्र कोई साधारण चीज़ नहीं।

जिसको गणधर नमस्कार करे। शास्त्ररचना करते हैं तो 'णमो लोए सव्व साहूणं' (बोले)। बाह्य में उनसे छोटे को वन्दन न करे, बाह्य में व्यवहार में, परन्तु पंच नमस्कार जहाँ आता है 'णमो लोए...' अरे सन्त! तेरे चरण में मेरा नमस्कार है। तीर्थंकर के

वजीर... तीर्थंकर राजा परमात्मा, उनके दीवान गणधर, धर्म के दीवान। चार ज्ञान (धारक) और चौदह पूर्व की एक अन्तर्मुहूर्त में रचना करनेवाले। ऐसी सामर्थ्य और उसी भव में मोक्ष जानेवाले। वे जब तक छद्मस्थ हैं और शास्त्र की रचना जब करते हैं 'णमो अरिहंताणं, णमो लोए सव्व अरिहंताणं' ऐसा अर्थ है। 'अरिहंताणं' ... अन्तिम का जो 'लोए सव्व' है न, वह सबमें लागू होता है। धवल में ऐसा पाठ है। 'णमो लोए सव्व अरिहंताणं..' गणधर ऐसा कहते हैं। 'णमो लोए सव्व सिद्धाणं।' आहाहा! 'णमो लोए सव्व आईरियाणं, णमो लोए सव्व उवज्झयाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।' कैसे साधु?

कोई कहते हैं कि देखो! 'णमो लोए सव्व साहूणं' कहा है, उसमें कोई जैन का ही साधु आता है, ऐसा नहीं। अरे भगवान! समझ में आया? ऐसा अर्थ करते हैं। एक है न सुशीलकुमार दिल्ली में, स्थानकवासी। ऐसा अर्थ करते हैं। देखो! 'णमो लोए सव्व साहूणं' कहा है। परन्तु 'लोए सव्व साहूणं' कौन? जैन परमेश्वर का जो भाव है, उसे जो अन्तर अनुभव में लिया है और भगवान ने जो कहा, ऐसा चारित्र—स्वरूप में स्थिर हुआ है, उसको यहाँ साधु कहते हैं। समझ में आया? अन्यमत में ऐसा साधु होता नहीं। 'णमो लोए सव्व साहूणं' कहा न! उसमें क्या आया? कि 'णमो लोए सव्व जिनसाहूणं।' अरे! जैन का ही साधु कहने में आता है, सुन तो सही! ऐसी गड़बड़ करे। लोगों को बहुत समन्वय लगे न! समन्वय मीठा लगे। आहाहा! कठिन भाई! विशाल हों! ऐसा मार्ग है नहीं।

चार ज्ञान, चौदह पूर्व की रचना अन्तर्मुहूर्त में करनेवाले (कहे), 'णमो लोए सव्व साहूणं।' हे सन्त! ...दो घड़ी पहले भी मुनिपना—आत्मा के आनन्द की रमणता में आये हो, गणधर कहते हैं कि तेरे चरण में मेरा नमस्कार हो। 'णमो लोए' में से निकाल देगा उसको? आहाहा! अन्तर में, आनन्दधाम का भान (होकर) आनन्द की दशा अनुभव में हुई है और अनन्त आनन्द में जिसकी मस्ती है, अनन्त आनन्द में जिसकी मस्ती चढ़ गयी है, पावर चढ़ गया अन्दर में, ऐसी रमणता (और) परपदार्थ का द्रव्य-गुण-पर्याय के ममत्व छोड़कर—उसकी उपेक्षा करके, आत्मा का उग्र अवलम्बन लेकर मैं स्वरूप में स्थिर होता हूँ। आहाहा! सेठ!

... बताते हैं न? यह दे देते हैं? हमारी ... तुम्हारे पास है? भगवान कहे, तेरे

पास पूरा पड़ा है प्रभु! तुझे स्वीकार करना—न करना, अधिकार तेरा है। आहाहा! दिशा बदल डालना। 'आशा औरन की क्या कीजे, ज्ञानसुधारस पीजे, आशा...' अभी आयेगा पुण्य-पाप अधिकार में। महाराज! शिष्य पूछता है। यह श्लोक आयेगा समयसार में। आप तो पुण्य और पाप दोनों का निषेध करते हो प्रभु! तो श्रावक और मुनि का शरण क्या? जो शुभक्रिया है, उसका तो तुम निषेध करते हो कि यह धर्म नहीं। वह आयेगा कलश में। समयसार का कलश है। समझ में आया? उसका उत्तर देंगे। अरे! मेरा आत्मा मुझे शरण है। आहाहा! समझ में आया? पूर्णानन्द का नाथ, नित्यानन्द सहजानन्द की मूर्ति, अपना सहजानन्दस्वभाव, वह मेरे आलम्बन में आया और उसका मुझे आश्रय है। श्रावक को भी वह आश्रय है, ऐसा लिया है। यह श्लोक में आयेगा। श्लोक है न १०४, समयसार का। समयसार नाटक में है। देखो! क्या है?

सिष्य कहै स्वामी तुम करनी असुभ सुभ,
कीनी है निषेध मेरे संसै मन मांही है।

यह श्लोक आयेगा अभी। भगवान! आप तो कहते हो कि शुभक्रिया, शुभराग का धर्म की दृष्टि में निषेध है, वह धर्म नहीं। ऐसे निषेध किया तो '**मेरे संसै मन मांही है। मोखके सधैया ग्याता देसविरती मुनीस...**' समकिती, श्रावक पंचम गुणस्थानवाले तथा छठवें (गुणस्थानवाले) मुनि।'**मोखके सधैया ग्याता देसविरती मुनीस, तिनकी अवस्था तो निरालंब नांही है।**' वे कोई केवली नहीं हुए हैं। उनको आलम्बन क्या? भाव शुभ है, (उसका) तो तुम निषेध करते हो कि वह धर्म नहीं, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह धर्म नहीं, पंच महाव्रत धर्म नहीं। तो हमें किसका आश्रय लेना? शिष्य प्रश्न करता है।

'**कहै गुरु करमकौ नास अनुभौ अभ्यास...**' आहाहा! पंचम गुणस्थानवाले को भी, हों! वास्तव में तो ज्ञाता, देशविरति और मुनि—तीनों ले लिये हैं। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को भी अपना चिदानन्दस्वभाव ही आलम्बन और आश्रय—आधार है। पुण्य-पाप का परिणाम, वह आश्रय—आधार है नहीं। आहाहा! होता है बीच में, परन्तु वह जाननेवाला है। आहाहा! समझ में आया? भूमिका प्रमाण से राग की मन्दता की मर्यादा आती है, वे ज्ञाता-दृष्टा रहते हैं। अपने में नहीं गिनते। समझ में आया? '**ऐसौ अवलंब उनहीकौ उन पांही है...**' स्पष्टीकरण किया। धर्मी को कर्म का नाश, पुण्य-पाप

के विकार का अभाव करके अनुभव अभ्यास... अपने आनन्द का अनुभव का अभ्यास करते हैं। '**ऐसौ अवलंब उनहीकौ उन पांही है...**' धर्मात्मा का अवलम्बन आत्मा ही है उसको। कोई दूसरा आलम्बन है नहीं। '**निरुपाधि आतम समाधि सोई सिवरूप, और दौर धूप पुद्‌गल परछांही है।** आहाहा! पुण्य और पाप के विकल्प, वह पुद्‌गल की छाया है, अपनी चीज़ है नहीं। आहाहा! यहाँ कहते हैं, देखो!

मैं तो **निर्ममकारात्मक आत्मा में स्थित रहकर तथा आत्मा का अवलम्बन लेकर, संसृतिरूपी स्त्री के सम्भोग से उत्पन्न...** उदय, राग, संसार, पुण्य-पाप का भाव दोनों ही संसार है। शुभ-अशुभ का विकल्प संसार है। उससे उत्पन्न **सुख-दुःखादि...** उससे उत्पन्न सुख-दुःख... कल्पना में यह 'सुख है' ऐसा और कल्पना में 'दुःख है' ऐसा। **अनेक विभावरूप परिणति को मैं परिहरता हूँ।** उदय की परिणति पुण्य-पाप की, उसको मैं छोड़ता हूँ। समझ में आया? आहाहा! बापू! मार्ग तो कोई अलौकिक है। पहले अभी निर्णय में ठिकाना नहीं, उसको सम्यग्दर्शन कैसे हो? आहाहा! वस्तु सत् का पुकार है अन्दर में। मैं तो शुद्ध आनन्दघन हूँ, मुझमें कुछ रागादि—विकल्पादि नहीं है। ऐसा आत्मा ही पुकार करके उठता है। ऐसा भगवान... शिष्य पूछते हैं तो भगवान उत्तर देते हैं कि उसका आलम्बन ऐसे आत्मा में है। वह (बाह्य का) आलम्बन छूट गया है, इसलिए आलम्बन नहीं है कुछ, ऐसा नहीं है। आहाहा! मैं परिहरता हूँ।

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद्‌अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में... यह अभी पढ़ा न, **१०४ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:—**

निषिद्धे सर्वस्मिन् सुकृतदुरिते कर्मणि किल,
प्रवृत्ते नैष्कर्म्ये न खलु मुनयः सन्त्यशरणाः।
तदा ज्ञाने ज्ञानं प्रति-चरित-मेषां हि शरणं,
स्वयं विन्दन्त्येते परम-ममृतं तत्र निरताः॥

शिष्य प्रश्न करता है। आहाहा! छन्द शिखरणी है न? शिखरणी है, शिखरणी। यह श्रीखण्ड। श्रीखण्ड भी देशी (-राग) है। श्रीखण्ड खाते हैं तो कैसा मजा आता है अज्ञान का। ....अज्ञान है न। यह तो आत्मा का श्रीखण्ड खाता है। अमृत पीता है आत्मा, ऐसा कहते हैं।

श्लोकार्थ : देखो! **शुभ आचरणरूप...** कार्य, **कर्म...** अर्थात् कार्य... है न? शुभ आचरण—दया, दान, व्रत, पूजा, भक्ति, नामस्मरण आदि शुभराग **और अशुभ आचरणरूप कर्म...** हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, काम, क्रोध।**—ऐसे समस्त कर्मों का निषेध किया जाने पर...** सर्व कार्य का तो आपने निषेध किया। जो करना था, वह तो निषेध किया। हमारी नजर में कर्तव्य तो यह दिखता था। तो उस कर्तव्य का तो निषेध किया कि वह धर्म नहीं, वह धर्म नहीं। तो अब हमें करना क्या? समझ में आया? यह प्रश्न उठता है न सबको? भाई! धर्मी को शरण तो, भगवान सच्चिदानन्द प्रभु, जिसको दृष्टि में उपादेयरूप ग्रहण किया है, वही उसको शरण है। आहाहा! चौथे गुणस्थान से आत्मा उपादेयरूप ग्रहण किया, उसमें दृष्टि पड़ी है ज्ञानी की। राग का आदर चौथे से है नहीं, परन्तु आये बिना रहता नहीं। (पूर्ण) वीतराग न हो तो क्या करे? समझ में आया? परन्तु उसका आश्रय, शरण नहीं। आहाहा!

कहते हैं, **ऐसे समस्त कर्मों का निषेध किया जाने पर और इस प्रकार निष्कर्म अवस्था वर्तने पर,...** देखो! निष्कर्म अवस्था चौथे से... जितनी पुण्य-पाप के विकल्प से रहित दृष्टि करके निष्कर्म अवस्था वर्तती है, वही धर्म है, वह शरण है। आहाहा! पन्नालालजी! यह कठिन बात कठोर! लोगों को बैठना कठिन पड़े। कहते हैं, निष्कर्म अवस्था वर्तती है... यह क्या कहते हैं? समकिती को तो पुण्य-पाप दृष्टि में हेय हैं और चारित्रवन्त को तो चारित्र की दशा में पुण्य-पाप उत्पन्न होता ही नहीं। उत्पन्न नहीं होता है, तब शरण क्या? कि निष्कर्म अवस्था शरण है। आहाहा! जितनी निर्विकल्प स्थिरता हुई, वह निष्कर्म दशा है, वह सम्यग्दर्शन है, सम्यग्ज्ञान है, सम्यक्चारित्र है, वह मोक्ष का मार्ग है।

मुमुक्षु : राग का....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अपनी पुरुषार्थ की कमी से आता है। जबरदस्ती का अर्थ—कर्म के कारण से नहीं। अपनी रुचि नहीं है, तो भी आसक्ति है तो जबरदस्ती से राग आता ही है, परन्तु ज्ञानी उसको हेय मानते हैं। आये बिना रहे? भगवान का स्मरण आता है, यात्रा का भाव आता है। वह पुरुषार्थ की कमी से आता है। समझ में आया?

धर्मी को उसका आदर नहीं। आदर तो त्रिकाली ज्ञायकभाव निष्कर्म अवस्था में आदर(मान) आत्मा है। पण्डितजी! आहाहा!

यह श्लोक ही ऐसा है। **'निषिद्धे सर्वस्मिन् सुकृतदुरिते'** सुकृत-दुष्कृत दोनों का आपने निषेध कर दिया। प्रभु! क्या करते हो आप? अब शरण क्या? शरण हम मानते थे, वह तो आप छुड़ाते हो। भगवान! शुभ और अशुभ दोनों आचरण तो कर्म है, राग है। आहाहा! यहाँ तो बापू! वीतरागमार्ग है। वीतरागमार्ग वीतरागभाव से शुरु होता है। राग से शुरु होता है? तो वीतरागभाव कैसा? अपनी चीज़ वीतरागस्वरूप ही अनादि-अनन्त है। अकषायस्वभाव ऐसा आत्मा, उसके आश्रय से निष्कर्म अवस्था जो उत्पन्न हो, बस वही आत्मा अथवा वही धर्म। रागादि आते हैं बीच में, परन्तु हेय हैं।

मुनि कहीं अशरण नहीं हैं;... देखो! अरे! व्रतादि के विकल्प को छोड़ते हैं, तो (भी) कोई अशरण नहीं है। भगवान (आत्मा) अन्दर शरण पड़ा है। आहाहा! अरे! चैतन्य की कीमत नहीं लोगों को। महाप्रभु आनन्द का चोसला, आनन्द का धाम पड़ा है अन्दर। नित्यानन्द शाश्वत प्रभु... पुण्य-पाप के विकल्प की रुचि छूटी तो अन्तर के आनन्द की—पूर्णानन्द की रुचि हुई और आसक्ति की जितनी अस्थिरता छूटी तो स्वरूप में स्थिरता का आनन्द आया। क्योंकि आसक्ति थी पुण्य-पाप की, वह तो जहर था, और वह छोड़ा तो आत्मा में अमृत आया। आहाहा! गजब बात, भाई! देखो न! पर्याय सिद्ध करते हैं, विकार का व्यय सिद्ध करते हैं, निर्विकार निष्कर्म अवस्था सिद्ध करते हैं, और निष्कर्म अवस्था का आलम्बन ध्रुव है, यह सिद्ध करते हैं। आहाहा! यह उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य। ऐसी चीज़ वीतराग के सिवा कहीं नहीं होती। 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्' और 'सत्द्रव्यलक्षणम्'। वह बात की बात है। समझ में आया? उमास्वामी सत् का अर्थ करते हैं। देखो! ओहोहो! गजब बात है। सारा जैनशास्त्र भर दिया है, गागर में सागर भर दिया है। एक-एक शब्द का एक-एक सूत्र का बड़ा गम्भीर... है।

वह कहते हैं यहाँ। महाराज! प्रभु! आप तो शुभ-अशुभ दोनों आचरण का धर्म में तो निषेध करते हो। अब क्या करना धर्मी को? धर्मी को निष्कर्म अवस्था धारण करना। निष्क्रिय आत्मा जो शुद्ध भगवान आत्मा अन्दर में ऊंडा—गहरे में अन्दर गहरे जाते हैं, आश्रय (लेते हैं) तो निष्कर्म अवस्था—अमृतमय निष्कर्म अवस्था प्रगट होती

है। पुण्य-पाप की आसक्ति जहर है, (वह) छूट गयी—व्यय हो गया, स्वरूप का आश्रय लिया (तो) अमृतमय दशा प्रगट होती है। आहाहा! देखो! वीतरागमार्ग, जिनवरदेव ने कहा हुआ मार्ग। परमात्मा त्रिलोकनाथ सीमन्धर भगवान महाविदेह में विराजते हैं। ऐसे अनन्त तीर्थंकर यही बात करते हैं। बीस तीर्थंकर विराजते हैं। .... की सभा में तो लाखों केवली विराजते हैं। तीर्थंकर लाखों नहीं होते। तीर्थंकर तो बीस ही हैं। सभा में केवली लाखों होते हैं। सुनने के लिये नहीं, (परन्तु) ऐसे सभा में बैठते हैं। समझ में आया? लाखों सन्त हैं, अनेक गणधर हैं और तीन ज्ञान के धनी इन्द्र भी सुनने को आते हैं। वह पाठ भगवान ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....सुनने से तो (सम्यग्दर्शन) हो जाता होगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनने से क्या हो? सुनना तो विकल्प है। सेठ कहते हैं, यह सुनने से होता है या नहीं? ऐसा स्पष्ट कराते हैं। शुभराग है, भैया! सुनना, वह विकल्प-राग है। कहना भी अन्दर विकल्प-राग है। वह तो कहते हैं यहाँ कि दृष्टि को बदल दो। राग के ऊपर जो रुचि है, वह द्रव्य के ऊपर रुचि ले जाओ। यह अनन्त पुरुषार्थ है। उसमें अनन्त-अनन्त पुरुषार्थ है। आहाहा! दिशा बदलना और दशा बदल जाये। दिशा बदलने से दशा बदल जाती है। यह क्या कहा? जो पुण्य-पाप की दशा में दिशा थी, पर दिशा सन्मुख की दशा थी, वह दिशा पलटी कि यह मैं नहीं। 'मैं तो अखण्ड आनन्दकन्द हूँ' ऐसी दिशा में गया, दशा पलट गयी। सम्यग्दर्शन दशा पलट गयी। आहाहा!

नन्दकिशोरजी! ऐसे नन्द की बात आत्मा ने कभी सुनी ही नहीं, आनन्द की बात। यह तो सरल व्यक्ति है न! पहले से कहते थे। परन्तु अभी तक नहीं की। कठिन चीज़ है भगवान! तुम कौन हो? आहाहा! विकल्प द्वारा तेरा पता न लगे, ऐसे तुम हो; वाणी द्वारा पता न लगे। परमात्मप्रकाश में लिखा है, दिव्यध्वनि से भी समझ में नहीं आता, मुनियों की वाणी से भी समझ में नहीं आता। परमात्मप्रकाश। ऐसा स्वसंवेद्य आत्मा... स्व-संवेद्य... भगवान पूर्णानन्द के ऊपर दृष्टि पड़ने से स्व अर्थात् अपने से, सम् अर्थात् सम्यक् पुरुषार्थ से और प्रत्यक्ष आनन्द का वेदन होना, वह तेरी चीज़ है। सेठ! यह सब दान-बान देने से धर्म होता है, उसकी मना करते हैं। चौथे काल की कथनी? यह पंचम काल के साधु है। ये पंचम काल के साधु हैं कुन्दकुन्दाचार्य।

भगवान के ६०० वर्ष बाद हुए। उस समय पंचम काल था, चौथा काल नहीं था। और ये अमृतचन्द्राचार्य तो अभी ९०० वर्ष पहले हुए। ये पद्मप्रभमलधारिदेव भी अमृतचन्द्राचार्य के बाद थोड़े वर्ष में हुए। सब पंचम काल में (हुए) हैं।

मुमुक्षु : उस समय का पंचम काल....

पूज्य गुरुदेवश्री : 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।' परमार्थ के पन्थ दो होते नहीं। सुखड़ी (मिष्ठान्न) बनती है आटा, घी और शक्कर से। सुखड़ी नहीं समझते? यह पकवान। हलुवा कहो, हमारे सुखड़ी कहते हैं। हलुवा तो शीरा को कहते हैं। हलुवा होता है। यह सुखड़ी कैसे होती है? घी में गेहूँ का आटा सेंककर ऐसे-ऐसे पाक करते हैं, उसे सुखड़ी कहते हैं। परन्तु हलुवा लो। हलुवा आटा और घी और गुड़ तीनों से बनता है। पाँचवें काल में दूसरे से हो जाये (ऐसा नहीं है)। घी के बदले पेशाब, पानी, आटा के बदले धूल, गुड़ के बदले गारा—कीचड़, ऐसा होता है? पाँचवें काल में दूसरी सुखड़ी या हलुवा होता है (और) चौथे काल में दूसरा हलुवा होता है? मिठास में अन्तर हो, परन्तु वस्तु बदल जाये—दूसरी हो जाये, (ऐसा नहीं होता)। (दूसरा हो तो वह) हलुवा नहीं। हाँ, गरीब मनुष्य घी न डाले तो तेल डाले। तेल का भी हलुवा बनता है। तेल समझते हैं? तेल... तेल का। गरीब मनुष्य। तेल का भी हलुवा बनाते हैं। परन्तु तेल चाहिए न? अभी बनाते हैं। ऐसा लेना। तेल के बदले कोई पानी डाले तो हलुवा होता है—हलुवा होता है? ऐसे तीन काल—तीन लोक में एक हो परमार्थ का पन्थ। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।'

यहाँ कहते हैं, आहाहा! पंचम काल के समकिती को जो आनन्द का अनुभव हो और चौथे काल के समकिती का आनन्द अनुभव हो, कोई अन्तर होगा? पंचम काल के समकिती को आत्मा की दृष्टि होकर अनुभव आनन्द हो और चौथे काल का हो और तिर्यंच हो। समझ में आया? यह तो अतीन्द्रिय आनन्द भगवान सच्चिदानन्द प्रभु, ऐसी जहाँ दृष्टि जमी, पूरा। आहाहा! चौथा काल का हो, पाँचवें काल का हो, पशु हो, मनुष्य हो, देव हो या नारकी हो। वह आया है 'बाह्य नारकीकृत दुःख भोगत...' समकिती को अन्दर में सुख की गटागटी। आता है न? (बाहर नारकीकृत दुःख भोगत, अन्तर सुखरस गटागटी) गटागटी। 'चिन्मूरत दृगधारी की मोहे रीत लगत है अटापटी।'

चिन्मूर्तिधारी की... बापू! यह चीज़ दूसरी है। सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है? समझ में आया? नारकी भी दुःख भोगते हुए भी... ऐसा दिखता है बाहर में, अन्दर में आनन्द की गटागटी है। आहाहा! चौथे गुणस्थान में। वह तो चौथे में है। वहाँ तो पाँचवाँ, छठवाँ भी नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : चौथा गुणस्थान क्लिष्ट है....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्लिष्ट है? चौथे में आनन्द है। छठ्ठे में विशेष आनन्द की जमावट है। परमात्मप्रकाश में लिया है। चौथे में आनन्द है, पाँचवें में इससे विशेष है, छठवें में इससे विशेष है, सातवें में (इससे विशेष)। जाओ। बारहवें में पूर्ण (आनन्द) है। ऐसा लिया है। है न, परन्तु ऐसा वस्तु का स्वरूप है न्याय-लॉजिक से। बारहवें में पूर्ण सुख है, अनन्त नहीं। केवलज्ञान हो तो अनन्त (सुख)। समझ में आया? वह छहढाला में नहीं आता?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, वह नहीं।

मुमुक्षु : ज्ञान समान न आन....

पूज्य गुरुदेवश्री : 'ज्ञान समान न आन जगत में...' (ढाल ४, छन्द ४)। समकित शब्द (ख्याल में) रहा। ज्ञान समान न सुख... अमृतस्वरूप... ज्ञान का भान हुआ सम्यक्त्व में, ऐसा सुख कोई जगत में तीन काल में कहीं है नहीं। लिया है वह छहढाला में। दौलतरामजी ने बहुत काम किया है। गागर में सागर भर दिया है। परन्तु अर्थ नहीं करते। कण्ठस्थ करते हैं, पहाड़े बोलते हैं। मुनि को भी ऐसा कहा है। पिछली रात्रि में... नहीं पण्डितजी? रयनि में... एक करवट। (ढाल ६, छन्द ५)। निद्रा पौन सेकेण्ड की। छठवें गुणस्थान की दशा इतनी है। भावलिंगी सन्त किसको कहें? मुनि को पौन सेकेण्ड की निद्रा अन्दर में। आहाहा! ... आनन्द में... ...रहित अन्दर में चारित्र है, परन्तु थोड़ा राग है, इतनी थोड़ी निद्रा... यह दशा मुनि की है, परमात्मा के वजीर—दीवान। परमात्म(पद) लेने की तैयारी। समझ में आया?

यह चारित्र की भावना समकिती को क्यों न हो? छहढाला में आता है न? '...पै

सुरनाथ जजै हैं।' समकिती चारित्र की भावना रखते हैं। राग की भावना रखते हैं कि राग रहो? पुरुषार्थ की कमी है तो राग होता है। चारित्र की भावना समकिती को होती है। कब चारित्र मेरी आनन्ददशा में रमूँ? ओहो! यही मेरी दशा में चरण अर्थात् रमना... वह यहाँ कहते हैं, देखो! आहाहा! इस प्रकार निष्कर्म अवस्था वर्तने पर मुनि कोई अशरण नहीं है। विकल्प को छोड़ दिया तो कोई शरण नहीं है, ऐसा नहीं है। क्या शरण है? ऐसा। **तब ज्ञान में आचरण करता हुआ...** देखो! **जब निष्कर्म अवस्था वर्तती है,...** विकल्प से रहित स्वभाव-सन्मुख की निर्विकल्प अवस्था वर्तती है, **तब ज्ञान में आचरण करता हुआ...** देखो! ज्ञान में आचरण करता... ज्ञानानन्दस्वभाव में आचरण कर रमता... आहाहा!

मुमुक्षु : .... आचरण होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार आता है या नहीं? वह व्यवहार है, यह निश्चय है। समझ में आया? अन्तर भगवान ज्ञानस्वरूप में रमना, यह निश्चय ज्ञानाचार है। व्यवहार अर्थात् विकल्प है (कि) मैं पढ़ूँ, पढ़ूँ। ज्ञानाचार... कहा था न। विकल्प होता है, परन्तु वह विकल्प बन्ध का कारण है। आहाहा! ...ढीला करना... यहाँ कहीं बनिया जैसी पद्धति है?

मुमुक्षु : परम्परा....

पूज्य गुरुदेवश्री : परम्परा का अर्थ यह हुआ कि उससे नहीं हुआ। यह छोड़ देगा। पहले अशुभ छोड़ा है स्वरूप के भानसहित, फिर शुभ छोड़ देगा, उस कारण से परम्परा कहा है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, भगवान! तेरी चीज़ अतीन्द्रिय आनन्द का धाम, उसका शरण तुझे है। **ज्ञान में आचरण करता हुआ...** भाषा देखो! जो पुण्य-पाप राग था, वह विभाव में आचरण था। आहाहा! उसकी उपेक्षा करके भगवान आत्मा आनन्दकन्द में जहाँ रमता है, ज्ञान में रमण करना, वह शरण है। कोई चीज़ है या नहीं त्रिकाली? उसमें रमना, उसका नाम चारित्र है।

रमण करता हुआ—परिणमन करता हुआ ज्ञान ही उन मुनियों को शरण है;... लो, यह ज्ञानस्वभाव त्रिकाल है, वही मुनियों को शरण है। आहाहा! आया न 'अरिहंता शरणं, सिद्धा शरणं', वह तो सब व्यवहार की बात है। विकल्प हो तो ऐसा कहने में आता है। चिदानन्द से भरा पड़ा आत्मा का ज्ञान, वह शरण है। समझ में आया? जैसे

अमृत से घड़ा भरा हो, वैसे अतीन्द्रिय आनन्द से आत्मा भरा पड़ा है। उस ओर की दृष्टि करने से अमृत का झरना झरता है, उसका शरण है। आहाहा! देखो! पुण्य-पाप के अधिकार में यह गाथा है। समयसार, पुण्य-पाप के अधिकार की। पुण्य-पाप दोनों का निषेध करते हैं। क्या करना अब श्रावक को? छह आवश्यक करना, उसको तो तुम राग कहते हो। शोभालालजी! देवदर्शन, गुरुपूजा, दान, दया, संयम, तप, आते हैं न सब। छह आवश्यक आते हैं न? आप तो छह आवश्यक के राग को शुभ आचरण कहकर निषेध करते हो, वह तो धर्म नहीं। तो अब करना क्या? भीखाभाई!

'ज्ञाने ज्ञानं... तदा ज्ञाने ज्ञानं प्रतिचरितमेषां हि शरणं' आहाहा! सन्तों को जब यह कलश चलता होगा। जंगल में बनाया है। वे तो वनवासी साधु हैं न! नग्न दिगम्बर वनवासी। यह कलश जब हुआ होगा, विकल्प जो निकलते हैं... **'ज्ञाने ज्ञानं... तदा ज्ञाने ज्ञानं प्रतिचरितमेषां हि शरणं, स्वयं विंदंत्येते'** यह तो अनुभवी अमृत को जाने। अज्ञानी क्या जाने? कहते हैं। **'स्वयं विंदंत्येते'** ऐसा कहा न? **'परममृतं तत्र निरताः'** धर्मी जीव—अपने मुनियों को शरण... ज्ञान में लीन होते हुए... ज्ञान शब्द से भगवान आत्मा। ज्ञान शब्द से राग के परिणाम की क्रियारहित। आहाहा! अरे! अभी उसकी प्रतीति में न बैठे कि ऐसी चीज़ है। विकल्परहित वह चीज़ आत्मा है। उसमें तो अकेला ज्ञान और आनन्द ही भरा है, आहाहा! दूसरा प्रकार है ही नहीं उसमें। वह तो आस्रव हुआ। राग तो आस्रव है। आस्रवतत्त्व भिन्न है, ज्ञायकतत्त्व भिन्न है। (भिन्न न हो) तो दोनों एक हो जाते हैं। आहाहा! भिन्न तत्त्व को जानने से क्या शरण है? कहते हैं। आहाहा!

ज्ञान में लीन होते हुए... ज्ञान अर्थात् बोलना, समझना, यह नहीं। अन्दर ज्ञानस्वभाव में लीन होते हैं, ऐसा कहते हैं। अकेला शास्त्र का जानपना, वह ज्ञान नहीं है। समझ में आया? बोलना आया, वह ज्ञान नहीं है। अन्तर स्वरूप जो ज्ञान से भरा चैतन्यबिम्ब प्रज्ञाब्रह्मा, उसमें—**उस ज्ञान में लीन होते हुए परम अमृत का स्वयं अनुभवन करते हैं...** देखो! आहाहा! पंचम गुणस्थानवाले और छठवेंवाले... चौथेवाला भी ले लेना। ज्ञाता, देशविरति, मुनि—सब तीनों ले लिये। .... में ले लिया। **परम अमृत का स्वयं अनुभवन करते हैं...** धर्मी जीव पुण्य-पाप के विकल्प से रहित अपने आत्मा में लीनता करता है तो परम अमृत में निरत है। **'तत्र निरताः'** विशेष रत हो गया है। आहाहा! समझ में

आया? यह परम अमृत का आस्वादन करते हैं, यह आनन्द का आस्वादन करते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : आनन्द का आस्वादन करते हैं तो कर्म रोकता नहीं होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन रोके? धूल रोके? कोई रोकता नहीं। यह तो पहले कहा था न, 'कर्म बिचारे कौन, भूल मेरी अधिकाई...' चन्द्रप्रभ भगवान के स्तवन में आता है। 'कर्म बिचारे कौन...' भिखारी जड़ है, मिट्टी। 'भूल मेरी अधिकाई...' मैंने भूल की तो कर्म को निमित्त कहने में आया है। कर्म भूल कराते हैं? दोपहर में आयेगा वह। समझ में आया?

टोडरमलजी ने तो वहाँ तक कहा है, अरे! यदि तुम जिन आज्ञा मानो तो 'कर्म से विकार होता है', ऐसी अनीति सम्भवे नाहीं। ऐसा लिखा है। तुम अनीति करते हो ऐसी? दोष करते हो तुम और कर्म के ऊपर डालते हो। बड़ा अन्याय करते हो। जिन-आज्ञा व्यवहार से यदि माने तो ऐसा अन्याय हो नहीं सकता। सेठ कहते हैं कि विस्तार करो। ऐसा कहते हैं। टोडरमलजी में आया है। ....ऐसे नहीं कहा। राग करना तेरी भूल है और तुम डालते हो कर्म के ऊपर। यदि जिनाज्ञा माने तो ऐसी अनीति सम्भवे नाहीं। यह है। सातवें (अधिकार) में है। नौवें अध्याय में है। टोडरमल, मोक्षमार्गप्रकाशक। हिन्दी है या नहीं? हिन्दी कहाँ है यहाँ? गुजराती है। नौवाँ। कितना (पृष्ठ) ? ३१३। कोई कोई... बराबर, ३१३ बराबर है। देखो! 'तत्त्वनिर्णय न करने में कर्म का तो दोष है नहीं, परन्तु तेरा ही दोष है। तू स्वयं तो महन्त रहना चाहता है...' यह दोष हुआ (वह) कर्म से हुआ। महन्त रहना चाहता है। वाह! 'तू स्वयं तो महन्त रहना चाहता है और अपने दोष कर्मादिक में लगाता है, परन्तु जिनाज्ञा माने तो ऐसी अनीति सम्भवे नाहीं।' सेठ!

यह तो हमारे (संवत्) १९८२ के वर्ष से (पढ़ा) है। सैकड़ों बार पढ़ा है, सैकड़ों बार। ८२ के वर्ष में पहले मिला था। समयसार ७८ के वर्ष में मिला था। ७८। ४९ वर्ष हुए। इसको (मोक्षमार्गप्रकाशक को मिले) ४५ वर्ष हुए। समझ में आया? ८२ के वर्ष। १८ और २७ = ४५ वर्ष। गुजराती हमको मिला था। यह नहीं, दूसरा मिला था।

लाहौर से प्रसिद्ध हुआ था। यह तो पुस्तक है, ऐसे पृष्ठ... वह पहले मिला था ८२ के वर्ष। संवत् १९८२। यहाँ राजकोट में अपने है न दामोदरभाई। ....पैसेवाला है। एक पुस्तक घर में रखी थी। ....मोक्षमार्ग (प्रकाशक) लाओ भाई! घर में था। आहाहा! उस समय धुन लगी थी। खाना-पीना-सोना नहीं। ...ऐसी धुन लगी थी। जीवणलालजी थे न, उन्हें और कुत्ता काट गया था, इसलिए बाहर जा नहीं सकते आहार लेने। सारा मोक्षमार्गप्रकाशक ८२ के वर्ष में देखा था।

समयसार ७८ में मिला था। उससे पहले समयसार ७७ में मिला था। ७७ में पढ़ा नहीं था। हाथ में लेकर छोड़ दिया। ७८ में पढ़ा था जंगल में जाकर। दामनगर। यह देखो! ....कहाँ लिखा है? सेठ! तेरा दोष... महन्त रहना चाहते हो और अपना दोष कर्मादिक में लगाते हो। कर्मादिक क्या? उसने मुझे गाली दी तो मुझे क्रोध हुआ, कर्म का उदय आया... पर से दोष है तुझे? हमें कुगुरु मिले तो हम क्या करें? ऐई सेठ! हमारा उल्टा मानना हुआ। अरे! तेरे दोष कर्मादिक में लगाता है, परन्तु जिनाज्ञा माने तो ऐसी अनीति सम्भवे नाहीं। तुझे विषयकषायरूप रहना है, इसलिए ऐसा झूठ बोलता है। तेरी रुचि है, इसलिए मुझे रहना है वहाँ। तो कर्म कराते हैं, ऐसा मानकर भूल स्वीकार नहीं करता। कितना लिखा है!

मुमुक्षु : पण्डित लोगों के लिये है सब?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहते हैं? यह तो भगवान का कहा हुआ है। सबके लिये है। पण्डितों के लिये नहीं, सबको समझने के लिये है। उलहाना है। समझ में आया? आहाहा! देखो! झूठ बोलता है? ऐसी युक्ति किसलिए बनावे? विषयकषाय के लिये ऐसा झूठ बोलता है। मोक्ष की सच्ची अभिलाषा हो तो तू ऐसी युक्ति किसलिए बनावे? संसार के कार्य में अपने पुरुषार्थ से सिद्धि होती न जाने तो (भी) पुरुषार्थ करे और उद्यम किया करे। 'यहाँ पुरुषार्थ गँवा बैठता है, इसलिए ज्ञात होता है कि तू मोक्ष को देखा देखी के लिये उत्कृष्ट कहता है।' कितना काम किया है! मोक्षमार्गप्रकाशक में तो हजारों बोल का स्पष्टीकरण किया है। ओहोहो! टोडरमल ने आचार्यकल्प जैसा कार्य किया है। एक-एक बोल ऐसा तो हजारों बोल सातवें अध्याय में, पाँचवें में और छठवें में। ओहोहो!

मुमुक्षु : पूरा ग्रन्थ हो गया उद्धरण।

पूज्य गुरुदेवश्री : हो, उद्धरण है, सार है। हमको तो मिला, देखा। यह रखने का विचार हुआ तो पुस्तक तो हम रखते नहीं थे और पुस्तक रखने की इच्छा भी नहीं थी तो यह सातवाँ अध्याय लिख लिया। ८४ के वर्ष। पूरा लिख लिया सातवाँ अध्याय। सातवाँ (अध्याय) हों! मोक्षमार्गप्रकाशक नहीं, सातवाँ है न वह सारा लिख लिया। बगसरा है। बगसरा.... हमारे जीवणलालजी थे, वे गुजर गये। पुस्तक पड़ी है अभी। सातवाँ अध्याय लिख लिया। ८४ के वर्ष। १६ और २७ = ४३ वर्ष पहले सातवाँ अध्याय (लिख लिया)। ओहो! पूरा सातवाँ अध्याय गजब की बात है! आहाहा! वीतराग के मार्ग का रहस्य खुल गया है। समझ में आया?

क्या कहते हैं? देखो! **परम अमृत का स्वयं...** 'स्वयं' भाषा देखो! आहाहा! पुण्य-पाप के विकल्प को छोड़कर समकिती ज्ञानी और मुनि अपने स्वरूप के अमृत का स्वाद लेते हैं। **स्वयं अनुभवन करते हैं**—आस्वादन करते हैं। अज्ञानी को क्या पता लगे कि वह चीज़ क्या है? अज्ञानी तो ऊपर-ऊपर से देखते हैं। यह चीज़ तो अन्दर की है। आहाहा! समझ में आया? इतना श्लोक है। आहाहा!

मुमुक्षु : मुनियों के लिये सम्बोधन क्यों किया है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। यहाँ तो मुनि के लिये मुख्यपने है। गृहस्थ का लड़का हो चार, तो बड़े लड़के को सम्बोधन करे (तो) सबको समझना। आहाहा! भैयाजी! समझ में आया? भैया! चार लड़के हों पिताजी को, तो चारों लड़कों को छोटे को (अलग-अलग) कहाँ कहे? जो बड़ा हो, उसे कहे और सब सुनते हों तो सबको लागू पड़ता है। ऐसा आता है। बड़े को समझावे, उसमें सब नहीं आ जाते? कि अपना घर का रिवाज है, भैया! अपने घर का यह रिवाज है। सेठिया के लड़के का विवाह होता है तो उसे नारियल और पाँच रुपये अपन देते हैं। अपना भी लड़का विवाह करता है तो पाँच रुपया और एक नारियल देना पड़ता है, ऐसा कहे। एक को कहे तो सब समझ लेना। मुख्य तो मुनि है न! मुनिमार्ग, वह मुख्य है। चारित्र, मुक्ति का कारण है। चारित्रवन्त को पहले वह चीज़ कहकर सबको कहते हैं। यह ९९वीं गाथा पूर्ण करते हुए मुनिराज श्लोक कहते हैं, लो। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण ८, शुक्रवार, दिनांक - १३-८-१९७१
श्लोक-१३४, गाथा-१००, प्रवचन-९३

नियमसार, निश्चय-प्रत्याख्यान अधिकार। सच्चा त्याग और सच्चा प्रत्याख्यान किसको कहते हैं, वह अधिकार है। १३४ कलश है।

अथ नियतमनोवाक्कायकृत्स्नेन्द्रियेच्छो,
भव-जलधि-समुत्थं मोहयादःसमूहम्।
कनक-युवति-वाञ्छा-मप्यहं सर्वशक्त्या,
प्रबल-तर-विशुद्ध-ध्यानमय्या त्यजामि॥१३४॥

प्रत्याख्यान है न। तो कहते हैं, **श्लोकार्थः—मन-वचन-काया सम्बन्धी...** जो कोई इच्छा **और समस्त इन्द्रियों सम्बन्धी इच्छा जिसने नियन्त्रण किया है,...** आत्मा ने सब इच्छा को नियन्त्रण में ले लिया है। समझ में आया? अन्तर में इन्द्रियाँ सम्बन्धी और मन-वचन-काय सम्बन्धी इच्छा को नियन्त्रण—संयमित और काबू में ले लिया है और आत्मा का अन्दर आश्रय किया है। आहाहा! **ऐसा मैं...** मुनि स्वयं अपनी बात कहते हैं। अपने को खबर पड़ती है या नहीं? पूछते हैं न कि समकित (हुआ) हो तो केवली जाने। यहाँ कहते हैं, हमने... पंचम काल के मुनि हैं पद्मप्रभमलधारिदेव... हमने नियन्त्रण किया है। योग की इच्छा और इन्द्रिय की इच्छा मैंने छोड़ दी है। और मैं **अब भवसागर में उत्पन्न होनेवाले मोहरूपी जलचर प्राणियों के समूह को...** आहाहा! मोहरूपी जलचर प्राणी पुण्य-पाप के विकल्प आदि।

तथा कनक और युवती की वाँछा को अतिप्रबल-विशुद्ध-ध्यानमयी सर्व शक्ति से... अन्तर के आनन्दस्वभाव भगवान के अवलम्बन और आश्रय से यह इच्छा छोड़ता हूँ। आहाहा! उसका नाम प्रत्याख्यान और चारित्र है। आहाहा! समझ में आया? **सर्व शक्ति से छोड़ता हूँ।** अपना स्वरूप ज्ञान और आनन्द का धाम प्रभु, उसका ध्यान करके सर्व शक्ति—पुरुषार्थ का वीर्य स्वरूप-सन्मुख झुकने से सर्व का त्याग करता हूँ। इस

ओर स्थिर होता हूँ तो अस्थिरता का त्याग हो जाता है, उसका नाम सम्यग्दर्शनसहित प्रत्याख्यान और त्याग और चारित्र कहने में आता है। आहाहा!

अब (गाथा १००)। यह ९९ गाथा (हुई)। सर्व पुरुषार्थ अपना वीर्य स्वरूप सन्मुख झुकता है एकाकार होकर... पुस्तक-बुस्तक नहीं चाहिए सेठी? पुस्तक। चश्मा भूल गये। इतने दूर से आये और चश्मा भूल गये? कहो, समझ में आया? अब १०० गाथा। अलौकिक गाथा १००। यह समयसार में २७७ गाथा है, भावपाहुड़ में ५८ गाथा है, यहाँ १०० गाथा है। यह की यह गाथा तीन जगह आयी है। समयसार २७७, भावपाहुड़ ५८। ५८ समझे? साठ में दो कम। और यह १००। ५८—पाँच और आठ। हमारी गुजराती थोड़ी-थोड़ी भाषा समझ लेना। सब तो आती नहीं है। १०० गाथा।

आदा खु मज्झ णाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य।
आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगो॥१००॥

नीचे हरिगीत

मम ज्ञान में है आतमा, दर्शन चरित में आतमा।
है और प्रत्याख्यान, संवर, योग में भी आतमा॥१००॥

आहाहा! मेरे ज्ञान के कार्य में आत्मा कारण है, ऐसा कहते हैं। अभी आयेगा। देखो! पहले। मैं कैसा हूँ, वह पहली बात करते हैं। आत्मा वास्तव में... देखो! **टीकाः—यहाँ (-इस गाथा में), सर्वत्र आत्मा उपादेय (-ग्रहण करनेयोग्य) है ऐसा कहा है। सर्वत्र...** कोई भी धर्म की पर्याय में आत्मा ही उपादेय और आत्मा ही कारण है। विकल्प, सुनना और निमित्तादि कोई कारण है नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? इस गाथा में सर्वत्र—सर्व धर्म की दशा में आत्मा ही एक ग्रहण करनेयोग्य है। अथवा धर्म की दशा में आत्मा ही समीप—सन्निहित—निकट वर्तता है। समझ में आया? आहाहा! **आत्मा वास्तव में—** यथार्थ में **अनादि-अनन्त...** मैं तो अनादि-अनन्त हूँ और **अमूर्त...** हूँ। रंग-गन्ध-रस-स्पर्श उसमें है नहीं। अरूपी... 'चेतनरूप अनूप अमूरति... सदा...' वर्ण, गन्ध, स्पर्श है नहीं। मैं अमूर्त चीज़ हूँ। कैसा हूँ? **अतीन्द्रिय-स्वभाववाला...** आहाहा! मेरा अतीन्द्रिय स्वभाव है। इन्द्रिय से गम्य नहीं, विकल्प से

गम्य नहीं। समझ में आया? ऐसा मेरा भगवान आत्मा अतीन्द्रिय स्वभाववाला है।

शुद्ध... हूँ। मैं तो अत्यन्त पवित्रता का पिण्ड हूँ। और **सहज-सौख्यात्मक है।** स्वाभाविक आनन्दरूप मैं तो हूँ। मेरे स्वभाव में अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है। समझ में आया? ऐसा पद्मप्रभमलधारि मुनि टीका करते हुए अपनी बात साथ में कहते हैं और प्रत्येक को ऐसा समझाते हैं। कहते हैं, ऐसा भगवान आत्मा सौख्यात्मक अतीन्द्रिय आनन्द के स्वभाव की मूर्ति मैं हूँ। ऐसे प्रत्येक आत्मा की बात करते हैं। यह आत्मा... कैसा आत्मा? ऐसा। स्वाभाविक शुद्ध ज्ञानचेतनारूप से परिणम गया मैं... देखो! कहते हैं, **सहज शुद्धज्ञानचेतना...** यह स्वाभाविक वर्तमान पर्याय की बात है। सम्यग्ज्ञान जो है, वह सम्यग्ज्ञान जो सहजज्ञानचेतनारूप परिणमन है, वह जो मैं हूँ, उसमें—मेरे **सम्यग्ज्ञान में सचमुच वह (आत्मा) है;...** मेरे सम्यग्ज्ञान में एक आत्मा ही कारण है। मेरे सम्यग्ज्ञानरूपी कार्य में आत्मा ही कारण है। आहाहा!

'सचमुच' शब्द प्रयोग किया है न? खलु अर्थात् निश्चय। खलु तो निश्चय आत्मा। वह सचमुच—वास्तविक। क्या कहा? मक्खन है अकेला, सम्पूर्ण बारह अंग का सार! कहते हैं, मेरे ज्ञान का परिणमन—ज्ञानचेतना... अवस्था है, हों! सम्यग्ज्ञान स्वसंवेदनज्ञान, सम्यग्ज्ञानरूपी परिणमन पर्याय में मेरा आत्मा कारण है। मेरे सम्यग्ज्ञान की पर्याय में आत्मा सन्निहित—समीप में है, मेरे सम्यग्ज्ञान के कारण में आत्मा ही नजदीक में पर्याय में वर्तता है। आहाहा! समझ में आया? मेरे ज्ञान में—सम्यग्ज्ञान में... सम्यक् मति और श्रुत... यहाँ मति-श्रुतज्ञान है न छद्मस्थ को? मेरे मति और श्रुतज्ञान में और मेरे मति-श्रुतज्ञानरूपी कार्य में, मेरे मति-श्रुतरूपी स्वसंवेदनरूपी वर्तमानभाव में वह त्रिकाली... (आत्मा) ऊपर कहा, ऐसा त्रिकाली आत्मा मुझे कारण है। सुनना-बुनना कारण नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

भगवान की वाणी सुनी तो सम्यग्ज्ञान हुआ... अज्ञानी को गिना ही नहीं। अज्ञानी को ज्ञान है ही कहाँ? यह तो ज्ञानी की बात चलती है। अज्ञानी को... श्रुतज्ञान होता है न। जो होता है तो अज्ञान में अपनी पर्याय के क्षयोपशम से होता है, परन्तु है अज्ञान। यह तो सम्यग्ज्ञान। चैतन्यमूर्ति ऐसा... ऊपर कहा न? मैं अनादि-अनन्त, अमूर्त सिद्ध

स्वभाववाला शुद्ध सहजस्वरूप ऐसा आत्मा मेरा वर्तमान सम्यग्ज्ञान—मति-श्रुतज्ञान के कार्य में, मति-श्रुत की दशा में, वर्तमान मेरे स्वसंवेदन सम्यग्ज्ञान—मोक्ष के अवयव में मेरा आत्मा कारण है। आहाहा! कारण-फारण दूसरा है ही नहीं। यह तो आरोप से कहने में आया। ऐसी बात है। गजब काम कुन्दकुन्दाचार्य का! ऐसे अन्तर में पहले समझ में तो बात ले। बात ऐसी है। आहाहा!

मुमुक्षु : समझ में आये तभी ले....

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में आये तो कभी पुरुषार्थ करके प्रयोग करे। परन्तु समझ में ही नहीं कि चीज़ क्या है, वह क्या पुरुषार्थ करे और क्या प्रयोग करे? सुनने में आया न अभी तो। सेठ कहे, अभी तक सुना नहीं था। ऐसा कहते हैं। शोभालालजी! पैसे का सुना था न कि ऐसे मिलता है, ऐसे मिलता है धूल का। आहाहा! गजब बात है, अद्‌भुत बात! ...धूल में है नहीं। धुँए की बाँथ है। धुमाडा समझते हो? धुँए का कोथला भरे। ... कोथला भरे, यहाँ सुख है। धूल में है, पैसे में है, मकान में है, शरीर के भोग में है। धूल में नहीं, मूढ़ अज्ञानी यह मान लेता है। आहाहा!

अहो! मेरा आत्मा... पहली लाईन में आत्मा की व्याख्या की। '**आदा**' शब्द पड़ा है न पहला। **आदा... आदा** की पहली व्याख्या की। अब '**आदा खु मज्ज णाणे**' उसका अर्थ करते हैं। '**आदा**' अर्थात् आत्मा। कैसा? अनादि-अनन्त सुखस्वरूप, अतीन्द्रिय स्वभाववाला, शुद्ध सहजानन्द की मूर्ति। आहाहा! वह आत्मा। यह आत्मा... पहली '**आदा**' की व्याख्या की। '**खु**'—निश्चय से '**मज्ज णाणे**' मेरी सम्यग्ज्ञान की दशा में निश्चय से आत्मा कारण है। उसका ही आश्रय है, उसका अवलम्बन है, उसका आधार है, वह आत्मा अपने सम्यग्ज्ञान में निकट वर्तता है। बाकी विकल्प और वाणी सब दूर रहते हैं। आहाहा! समझ में आया? सर्वज्ञ की त्रिलोकनाथ परमात्मा की दिव्यध्वनि भी मेरे सम्यग्ज्ञान में कारण नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! अमरचन्दभाई! क्या मैं परिपूर्ण नहीं हूँ? और मेरे पास क्या नहीं है कि मैं पर का आश्रय लूँ? गजराजजी! वाणी-बाणी जड़ है, वाणी का आधार हमको नहीं। भगवान की वाणी का आधार हमको नहीं। वाणी सुनने में जो विकल्प आता है, वह विकल्प भी मेरे सम्यग्ज्ञान में कारण नहीं है।

मुमुक्षु : अविनय हो जाता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे ही विनय कहते हैं भगवान। उसकी—वीतराग की आज्ञा वह है कि हमारे सन्मुख (देखना) छोड़कर तेरे सन्मुख देख। वही हमारी आज्ञा और विनय है। सेठ! आहाहा! व्याख्या तो देखो टीका! **आदा—**आत्मा वास्तव में अनादि-अनन्त, अमूर्त अतीन्द्रिय स्वभाववाला, शुद्ध और सहजसुखस्वरूप—वह आत्मा की व्याख्या की। उस आत्मा में जब सम्यग्ज्ञान हुआ... मति-श्रुतज्ञान—सम्यग्ज्ञान मोक्ष के मार्ग का अवयव—अंश। सम्यग्दर्शन एक अवयव, एक सम्यग्ज्ञान अवयव, एक सम्यक् चारित्र अवयव—तीनों मिलकर मोक्ष का मार्ग है। तो उसमें कहते हैं, सम्यग्ज्ञान कैसे हुआ? क्या पढ़ने से हुआ? सुनने से हुआ? याद करने से हुआ? वह सुनने का विकल्प आया तो विकल्प से हुआ?

मुमुक्षु : भगवान को जानना जरूरी नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : इस भगवान को जाना, तब हुआ। आहाहा!

सहज शुद्ध ज्ञानचेतनारूप से परिणमित जो मैं,... आहाहा! एक सम्यग्ज्ञानरूप से परिणमित मैं, (ऐसा) भान हो गया। भगवान को पूछना नहीं पड़े कि मुझे सम्यग्ज्ञान है या नहीं। ऐसा कहते हैं, देखो! समझ में आया? कितने ही कहते हैं न कि सम्यग्दर्शन अभी है या नहीं—वह केवली जाने, अपने को खबर नहीं पड़ती। मूढ़ है। वह तो प्रत्यक्ष मिथ्यादृष्टि है। ऐई! कहते हैं, स्वाभाविक शुद्धज्ञानचेतनारूप से... अपना भगवान आत्मा अपने मति-श्रुतज्ञान का निर्मल सम्यग्ज्ञानरूपी कार्य, उसमें जो आत्मा पहले कहा, वह कारण है, वह निकट में है। अपनी पर्याय के समीप में वह आत्मा है। अपनी पर्याय के समीप में विकल्प और वाणी है तो ज्ञान हुआ है—ऐसा नहीं है। डालचन्दजी! आहाहा! यह सर्राफे का धन्धा है। किसी का आश्रय नहीं। घर की पूँजी में से निकाला है, ऐसा कहते हैं। मूडी समझते हो? पूँजी। आहाहा! गजब बात! ऐसी चीज़ सुनने मिलना भी महा पुण्योदय है, भाई! ऐसी चीज़ है भैया! क्या करे? आहाहा!

'आदा खु मज्झ णाणे' बस। आहाहा! भाई! पहले ज्ञान से शुरु किया है। मुझको मेरे में मेरे कारण से मेरे आधार से मेरा ज्ञान—सम्यग्ज्ञान मुझमें हुआ (कि) जो

मोक्ष का मार्ग है, उसमें तो मेरा आत्मा कारण है। उसका लक्ष्य किया तो सम्यग्ज्ञान हुआ। वाणी का लक्ष्य किया और श्रवण किया और विकल्प किया तो उससे ज्ञान हुआ—ऐसा तीन काल में है नहीं। आहाहा! देखो! वीतरागी मार्ग! देखो! भगवान का निरपेक्ष निरालम्बी मार्ग। समझ में आया? मेरी शुद्धज्ञानचेतना... शुद्ध क्यों लिया? कि राग का परिणमन है, वह कर्मचेतना और कर्मफलचेतना है। वह नहीं। व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प जो है, वह तो कर्मचेतना है, अशुद्धचेतना है। उसका मैं कारण नहीं। समझ में आया? मैं तो मेरी शुद्ध ज्ञान सम्यक् परिणति—सम्यग्ज्ञान अपूर्व—अनन्त काल में कभी हुआ नहीं, ऐसे सम्यग्ज्ञान की कला में मेरा आत्मा ही कारण है। कलाबाज भगवान आत्मा। समझ में आया?

है न, देखो! अन्दर पाठ है। इसीलिए तो पुस्तक सामने रखते हैं। नहीं तो पुस्तक नीचे और ऊपर बैठना... परन्तु उसमें स्पष्टता का कारण विनय है कि इसका क्या (अर्थ) है। समझ में आया? पुस्तक नीचे और ऊपर बैठना यह ठीक नहीं। परन्तु यह तो पुस्तक—शास्त्र का विनय है। शास्त्र क्या कहता है, उसको समझने में उसका विनय है। समझ में आया? ओहो! यह शब्दों में ऐसा भाव कहने में आया है, तो उसको बहुमान आता है। आहाहा! हमको ख्याल नहीं है कि ऐसे (ऊपर बैठने से) क्या होता है? उसका हेतु है। समझ में आया?

मैं उसके (अर्थात् मेरे) **सम्यग्ज्ञान में सचमुच... खलु**—निश्चय से **वह (आत्मा) है...** आहाहा! सब निकाल दिया। मैंने विकल्प किया, मनन किया, सुना और शास्त्र पढ़ा, भगवान के समवसरण में गया और सत्समागम में आया तो मुझे ज्ञान हुआ (ऐसा है नहीं)। गजब बात करते हैं। चिमनभाई! यह सब हो, परन्तु सब व्यवहार है। उसका लक्ष्य छोड़कर जब आत्मा का अन्तर लक्ष्य और आश्रय किया, तब सम्यग्ज्ञान हुआ। मेरे ज्ञान की प्राप्ति में समीप में—नजदीक में—निकट में, आश्रय में—आधार में वह तो आत्मा है। पोपटभाई! तब कहे कि सुनने से आता नहीं तो सुनना नहीं न? सुनने का (भाव) आये बिना रहता नहीं। विकल्प भी आत्मा है, परन्तु जब प्राप्त होता है, तब तो सम्यग्ज्ञान आत्मा के आश्रय से होता है। आहाहा! कहो, सेठ! कभी सुना ही नहीं, कहते हैं। ऐसा अब क्या निकाला? पैसा?

मुमुक्षु : धीरे-धीरे...

पूज्य गुरुदेवश्री : धीरे-धीरे नहीं, एकदम होना, यहाँ कहते हैं। प्रवचनसार में अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं 'आज ही' ऐसी टीका है। आहाहा! आज ही तैयारी कर। कल कैसा? वायदा करे वह घूम जानेवाला है। वायदा... ऐसा पाठ है।

मुमुक्षु : अभी कर, ऐसा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ.... प्रवचनसार के अन्त में है। आहाहा!

वह ज्ञान की बात आयी। पहले ज्ञान की बात ली, क्योंकि ज्ञान में जानने में आता है न आत्मा। जाना हुआ प्रतीति में आता है। जाने बिना प्रतीति किसकी? जो चीज़ जानने में न आयी तो श्रद्धा किसकी? ससले के—खरगोश के सींग जैसा हो। यहाँ तो कहते हैं, पहले भगवान आत्मा जैसा है, ऐसा सम्यग्ज्ञान में आया और वह सम्यग्ज्ञान में कारणरूप द्रव्य आत्मा हुआ। कारणपरमात्मा, वह सम्यग्ज्ञान की पर्याय में कारण हुआ। भगवान या विकल्प या वाणी कोई कारण नहीं पड़ते। आहाहा! अब सम्यग्दर्शन की बात करते हैं। मेरा सम्यग्दर्शन—श्रद्धा—आत्मा की निर्विकल्प प्रतीति, ऐसे सम्यग्दर्शन के ध्येय में, विषय में कौन आधार है?

पूजित परम पंचमगति की प्राप्ति के हेतुभूत... देखो! सम्यग्दर्शन को विशेष बताते हैं। सम्यग्ज्ञान से विशेष कहा। **पूजित परम पंचमगति**—सिद्धपद... **पूजित परम पंचमगति की प्राप्ति के हेतुभूत पंचमभाव की भावनारूप से...** वह भावना। पंचम भाव जो पहले कहा आत्मा, वह पंचम भाववाला आत्मा। पहले कहा न? त्रिकाली पंचम भाव अमूर्त सौख्यस्वरूप ऐसा स्वभाव—ऐसे पंचम भाव की भावना; भावना अर्थात् उसकी एकाग्रता... त्रिकाली ज्ञायकभाव की एकाग्रता। ऐसी भावनारूप से परिणमित... मैं सम्यग्दर्शनरूप से परिणमित... आहाहा! **जो मैं...** ऐसे परिणमित। **जो मैं, उसके सहज सम्यग्दर्शनविषय में...** ऐसा स्वाभाविक सम्यग्दर्शन। स्वाभाविक अर्थात् वर्तमान पर्याय। त्रिकाली नहीं। स्वाभाविक सम्यग्दर्शन के विषय में **(अर्थात् मेरे सहज सम्यग्दर्शन में) वह (आत्मा) है;...** आहाहा! खबर पड़ती है या नहीं? पंचम काल के मुनि हैं। ९०० वर्ष पहले हुए हैं। आचार्य तो '**आदा सो मज्झं णाणं**' कहते हैं, वे दो हजार वर्ष

पहले हुए। ये कहते हैं कि मेरे सम्यग्दर्शन के विषय में... जो पंचम भाव की भावना, यह सम्यग्दर्शन। आहाहा! समझ में आया?

पूजित पंचम गति जो मुक्ति, उसका कारण पंचम भाव की भावना, ऐसा जो सम्यग्दर्शन, ऐसे सम्यग्दर्शन में मेरा आत्मा कारण है। समझ में आया? यह देव-गुरु-शास्त्र भी मेरे सम्यग्दर्शन में कारण नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐ भीखाभाई!

मुमुक्षु : ....विकल्परूप है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गले उतरना... गले कहाँ उतारना है? यहाँ तो आत्मा में उतारना है। गला तो जड़ है। ऐसा कहकर कुछ ढीला करना था, परन्तु बोला गया दूसरा। आहाहा! गजब बात है। ऐसी चीज़... दर्शन लिया... वह जानने में आता है, ऐसा आता है न! परन्तु जाना, उसकी प्रतीति, ऐसा। यह आत्मा ज्ञेय पूर्णानन्द प्रभु है, ऐसा ज्ञान में आया तो प्रतीति हुई, ऐसा। वह समयसार १७-१८ गाथा में ऐसा लिया है। १७-१८ गाथा है न। पहले जानता है तो फिर श्रद्धा होती है, ऐसा लिया है। जाने बिना की श्रद्धा कैसी? गधे का सींग जाना ही नहीं, परन्तु मानो। परन्तु किसको माने? जो विषय दृष्टि में आया नहीं, जो ज्ञान में ज्ञेय आया नहीं, 'यह जीव है' ऐसा आया नहीं, (तो) किसकी प्रतीति करना? समझ में आया? आहाहा! गजब बात है।

मुनि कहते हैं कि मेरे सम्यग्दर्शन के विषय में अर्थात् मैं पंचम भाव ध्रुवभाव, उसकी भावना—उसकी एकाग्रता अथवा सम्यग्दर्शन का विषय जो ध्रुव, उसमें मेरी एकाग्रता—ऐसे मेरे सम्यग्दर्शन में आत्मा कारण है। मेरा सम्यग्दर्शनरूपी कार्य, उसमें मेरा आत्मा कारण है। लो, दूसरी जगह लिया है न, देवदर्शन, देवऋद्धि, जातिस्मरण, वेदना—नरक में वेदना आदि। वह तो सब निमित्त का कथन है। आत्मा कारण है, वह यथार्थ कारण है। वह तो (अन्य तो) व्यभिचार कारण है। वह हो और उसमें (सम्यग्दर्शन) न हो, परन्तु यह तो आत्मा के आश्रय से होता है, होता है और होता है। समझ में आया? आहाहा! सर्वार्थसिद्धि (टीका) में ऐसा लिया है। जातिस्मरण से होता है, नरक में वेदना से होता है। वेदना तो अनन्त बार हुई, क्यों नहीं हुआ? यह तो जब अपने आश्रय से होता है, तब वेदना का लक्ष्य था, (वह) छूट गया, तो वह निमित्तकारण कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया?

मैं... आहाहा! जहाँ-तहाँ मैं। पाठ में है न। '**आदा खु मज्ज... मज्ज णाणे**' मेरे ज्ञान में—सम्यग्ज्ञान में मेरा आत्मा। '**आदा में दंसणे**' मेरे सम्यग्दर्शन में '**आदा**' ही कारण है—आत्मा कारण है। समझ में आया? मेरे सम्यग्दर्शन के विषय में अर्थात् कि सम्यग्दर्शन में, ऐसा। यह आत्मा है। मेरे सम्यग्दर्शन में आधार समीप—सन्निहित... सन्निहित, आगे आयेगा। (गाथा १२७) समीप... पाठ है। '**जस्स सण्णिहिदो अप्पा**' ऐसा है। '**जस्स सण्णिहिदो अप्पा**' जिसका आत्मा धर्म की पर्याय में सन्निहित—निकट है, उसको सम्यग्दर्शन-ज्ञान की पर्याय कहा जाता है। समझ में आया? यह भगवान ने क्या कहा? अज्ञानी कहे आत्मा... आत्मा... वह (वास्तविक) आत्मा नहीं। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने जो आत्मा असंख्यप्रदेशी अनन्त गुण का धाम सहजानन्द (देखा), वह चीज़ सर्वज्ञ के सिवाय किसी ने देखी नहीं है। समझ में आया? उन्होंने कहा, ऐसा सम्यग्दृष्टि अन्तर अनुभव में मानता है। आहाहा! सम्यग्दर्शन में... वह विषय लिया था न? सम्यग्दर्शन का विषय न लेकर सम्यग्दर्शन में, ऐसा। **वह आत्मा है।** अब चारित्र।

साक्षात् निर्वाण प्राप्ति के उपायभूत,... देखो! यह भाषा प्रयोग की है। चारित्र तो साक्षात् मोक्ष का कारण है। सम्यग्दर्शन, चारित्र का कारण है; परन्तु मोक्ष का कारण तो चारित्र है। आहाहा! वीतराग परिणति अन्दर निर्विकल्प आनन्द की शान्ति, समझ में आया? वह **साक्षात् निर्वाण प्राप्ति के उपाय...** ऐसा लिया। देखो! भाषा। सम्यग्दर्शन-ज्ञान में ऐसा नहीं लिया था। परन्तु यहाँ तो हेतु तो तीनों में आत्मा है, परन्तु यह चारित्र मोक्ष का साक्षात् हेतु है। साक्षात् निर्वाणप्राप्ति का हेतु। सम्यग्दर्शन तो अभी परम्परा कारण है। समझ में आया? '**दंसण मूलो धम्मो**' आता है न अष्टपाहुड़ में। '**दंसण मूलो धम्मो।**' धर्म, यह चारित्र, परन्तु उसका मूल सम्यग्दर्शन। परन्तु यह चारित्र साक्षात् मुक्ति का कारण है। आहाहा! '**चरित्तं खलु धम्मो**' प्रवचनसार '**धम्मो जो सो समो... मोहक्खोहविहीणो परिणामो**' (गाथा ७) ऐसा पाठ प्रवचनसार में है। आहाहा! कहते हैं, साक्षात् मुक्ति का कारण—उपाय... प्राप्ति का उपाय... उपाय कहो या कारण कहो।

निज स्वरूप में अविचल स्थितिरूप... देखो! यह चारित्र। आहाहा! भगवान! ऊपर कहा, शुद्ध सहज आनन्दरूप उसमें—ऐसे स्थित वस्तु में—निज स्वरूप में...

भगवान अरिहन्त परमात्मा के स्वरूप में लीन नहीं। अपना निज स्वरूप शुद्ध वीतरागस्वभाव, अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द—दल। दल का लड्डू होता है, नहीं? हमारे यहाँ काठियावाड़ में होता है। ... गेहूँ के दल के लड्डू बनावे। दल के लड्डू बनावे। कसदार हो, कसदार। इसी प्रकार आत्मा सारा आनन्द का कसदार है, उसमें कस... कस भरा है। कस समझते हो? निचोड़। कस अर्थात् सत्त्व। सारा आनन्द के सत्त्व से भरा है। सार। आहाहा! कहते हैं, **साक्षात् निर्वाण प्राप्ति के उपायभूत, निज स्वरूप में...** पंच महाव्रतादि विकल्प में नहीं, वह चारित्र नहीं। आहाहा! **निज स्वरूप में अविचल स्थितिरूप...** अविचल—न चले—न अस्थिर हो। ऐसी अन्दर आनन्द में स्थिति... परमानन्द भगवान आत्मा में लीनता, वीतरागता, शान्ति की स्थिरता। **सहज-परमचारित्रपरिणतिवाला...** परमचारित्र (अर्थात्) स्वाभाविक परमचारित्र, ऐसा। पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण (का) विकल्प है तो (वह) व्यवहारचारित्र कहने में आया। वह चारित्र नहीं। वह तो कथनमात्र कहने में (आया है)। स्वाभाविक परमचारित्र परिणतिवाला... आहाहा! देखो! मुनि कहते हैं कि हमारी चारित्र की परिणति ऐसी है। हमको भान है, हमको खबर है।

सहज-परमचारित्रपरिणतिवाला जो मैं,... आहाहा! समझ में आया? आहाहा! दिगम्बर मुनि तो आभना थांभला (अर्थात्) आकाश के स्तम्भ (हों), ऐसे धर्म के स्तम्भ हैं। मैं ऐसा हूँ—ऐसा कहते हैं। आहाहा! मुझे चारित्र परिणति है या नहीं? भगवान जाने—ऐसा नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा अपने निज स्वरूप में अविचल—चलित नहीं, ऐसी स्थितिरूप सहजपरमचारित्र परिणति... चारित्ररूपी परिणति... पर्याय है न! चारित्र पर्याय है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-(चारित्र)—तीनों पर्याय है, तीनों मोक्षमार्ग अवस्था है। अवस्थायी नहीं। अवस्थायी तो त्रिकाली है। आहाहा! सुनने में आया नहीं। गजराजजी! ऐसी बात सुनने में आयी नहीं। गड़बड़ी बात सुने तो मुक्ति होवे नहीं। आहाहा! तीन लोक के नाथ तीर्थंकर भगवान के समीप में आये कुन्दकुन्दाचार्यदेव, (वहाँ से) यहाँ आकर यह (शास्त्र) बनाया। आहाहा! देखो! प्रत्येक मुनि ऐसा मानते हैं, हों! (जो) सच्चे मुनि हैं। अपने ज्ञान में आत्मा, अपने दर्शन में आत्मा, अपनी चारित्र परिणति में, मैं (आत्मा)।

उसके (अर्थात् मेरे) सहज चारित्र में भी... दो आये न ? ज्ञान और दर्शन आये। मैं भी **वह परमात्मा सदा सन्निहित (-निकट) है;...** लो, परमात्मा मैं हूँ पूर्णानन्द। सेठ! '**अप्पा सो परमप्पा**' आता है। तारणस्वामी में बहुत आता है यह शब्द। खबर नहीं ? '**अप्पा सो परमप्पा**' इसकी खबर नहीं, पैसा कितना है, (उसकी) खबर है। '**अप्पा सो परमप्पा**' ऐसा आता है तारणस्वामी में। ऐ सेठ! उसको खबर है। यह थोड़ा-थोड़ा ताजा है। किसमें आता है ? ममलपाहुड़ में, ज्ञानसमुच्चय(सार) में। '**अप्पा सो परमप्पा**' आत्मा, वह परमात्मा है। वह आया, देखो!

मेरा परमात्मा ध्रुव चैतन्य भगवान, परम आत्मा अर्थात् परमस्वरूप। एक समय की पर्याय तो अपरमस्वरूप है। समझ में आया ? मेरा परमस्वरूप परमात्मा, वह मेरे चारित्र में सदा... सदा—निरन्तर मेरे चारित्र में परमात्मा निकट है। पंच महाव्रत का विकल्प है तो मेरे चारित्र में निकट है, ऐसा नहीं। आहाहा! मेरी चारित्र परिणति से विकल्प तो दूर वर्तते हैं। वह मेरे समीप में नहीं। २८ मूलगुण और पंच महाव्रत का विकल्प है तो यहाँ चारित्र है, ऐसा नहीं। मेरे चारित्र में तो भगवान आत्मा समीप में वर्तता है। आहाहा! समझ में आया ?

मुनि हैं यह तो, आचार्य नहीं, अमृतचन्द्राचार्य (आदि) तो सब आचार्य थे और यह मुनि हैं। परन्तु मुनि भी पंच परमेष्ठी में हैं न! उसमें क्या है ?

मुमुक्षु : गुणस्थान.... है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुणस्थान दोनों का एक ही है। आचार्य-उपाध्याय का गुणस्थान आठवाँ-नववाँ और साधु का छठवाँ-सातवाँ—ऐसा है ? आचार्य-उपाध्याय-मुनि तीनों का छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान है। समझ में आया ? वास्तव में तो जब केवलज्ञान की श्रेणी धारते हैं, तो आचार्य-उपाध्याय पद को छोड़कर ध्यान में बैठते हैं तो ध्यान आता है—ऐसा है। शास्त्र में ऐसा है। समझ में आया ? पंचाध्यायी में है विस्तार। पंचाध्यायी है न! आचार्य-उपाध्याय सब पदवी छोड़ देते हैं। साधु... साधु... भगवान आत्मा को त्राटक करके ध्येय में लेकर साधते हैं, वे साधु हैं। आहाहा! समझ में आया ?

मेरा भगवान आत्मा... 'सदा' शब्द प्रयोग किया है, देखो! किसी समय मेरी

चारित्र परिणति में राग आया तो मेरी चारित्र परिणति ऐसी है—ऐसा नहीं। मेरी चारित्र परिणति तो सदा स्वभाव के आश्रय से रहती है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, सदा रहती है सदा सन्निहित। परमात्मा सदा सन्निहित, मेरी परिणति में सदा नजदीक ही है। मेरी चारित्र की परिणति में सदा नजदीक ही है। मेरा आत्मा ही चारित्र में निकट है, मेरे चारित्र में। मेरे चारित्र में पंच महाव्रत निकट है तो चारित्र टिकता है—(ऐसा नहीं)। आहाहा! यह तो राग है। चारित्र तो वीतरागी दशा है। ऐ पूनमचन्दजी! दुनिया को दुःख लगे... पगड़ी नहीं दिखती... कहो, समझ में आया? आहाहा!

यह तीन बोल हुए। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्‌चारित्र, तीनों में—मेरी शुद्ध परिणति में—मेरा आत्मा आधार और कारण है। तीनों कार्य हैं। पर्याय कहो या कार्य कहो। समझ में आया? अपनी निज परिणति की पर्याय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की, पर्यायरूपी कार्य में कारण द्रव्य है। आहाहा!

मुमुक्षु : परम चारित्र क्यों कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्मल है न, निर्मल पड़ा है न! स्वरूपाचरणचारित्र तो चौथे में होता है, पाँचवें में थोड़ा (विशेष) होता है और यह तो मुनि का परमचारित्र है। चारित्र का अंश भी चौथे में भी होता है। क्योंकि अनन्त गुण जितने हैं, सबकी व्यक्त दशा आंशिक चौथे गुणस्थान में हो जाती है। यह तो परमचारित्र है, परम उपयोग है। शुद्ध लो न! **सहज-परमचारित्रपरिणतिवाला जो मैं,...** हूँ। विकल्प में तो दिखते हैं। लिखते समय विकल्प में हैं, तथापि उस विकल्प में मैं नहीं। मेरे चारित्र के समीप में तो भगवान (आत्मा) वर्तता है। यह विकल्प हुआ तो मुझे चारित्र में निर्मलता होती है—(ऐसा है नहीं)। आहाहा! पण्डितजी! है पुस्तक? आहाहा! अमृत का सागर उछलता है।

अब, मेरे प्रत्याख्यान में... '**आदा पच्चक्खाणे**' यह शब्द आया न? चौथा आया, चौथा। यह प्रत्याख्यान भी वीतराग परिणति है। इस वीतराग परिणति के कार्य में मेरा आत्मा कारण है। व्यवहार प्रत्याख्यान का विकल्प कारण है और निश्चय प्रत्याख्यान

(कार्य) है, ऐसा नहीं है। आहाहा! मैं **भेदविज्ञानी...** देखो! मैं तो भेदविज्ञानी हूँ, राग से भिन्न पड़ा ऐसा मैं आत्मा हूँ। आहाहा! **परद्रव्य से पराङ्मुख....** देखो! मैं परद्रव्य से तो उल्टा हूँ—पराङ्मुख हूँ। मेरा मुख ही बदल गया है। राग और निमित्त की ओर जो मेरा मुख—दिशा थी, वह दिशा बदल गयी है। समझ में आया? आहाहा! एक टीका तो देखो! ऐसी टीका में समझकर वाँचने में आयी नहीं। समझ में आया? वाँचे तो ऐसे बिना भान के... वाँच लिया। एक महीने में नियमसार वाँच लिया। परन्तु अरे भैया!

एक कहता था कि महाराज! आप समयसार की बहुत महिमा करते हो, हमने तो पन्द्रह दिन में पढ़ लिया। परन्तु पन्द्रह दिन में वाँचे या आठ दिन—रात-दिन वाँचे, उसमें क्या हुआ? एक आत्मा का वाँचन यथार्थपने करे, अरे! लाख वर्ष वाँचे, परन्तु एक घण्टे में उसका अनुभव करे (तो) आत्मा का भान हो जाये, ऐसी चीज़ है। अन्तर का अभ्यास (करे)। कहते हैं कि मेरे प्रत्याख्यान में (आत्मा) क्यों है? कि मैं भेदविज्ञानी हूँ। राग का त्याग करना है न! राग के त्याग (स्वरूप) ही मैं हूँ—राग के अभाववाला ही मैं हूँ। मैं भेदविज्ञानी हूँ। राग और दया-दान का विकल्प मेरा है, ऐसा मैं नहीं। आहाहा!

भेदविज्ञानी, परद्रव्य से पराङ्मुख... देखो! भेद तो किया राग से, पर से भिन्न, अब पर से पराङ्मुख। रागादि भाव से मैं उल्टा हो गया हूँ। पहले स्वभाव से उल्टा था और राग के सन्मुख था, अब राग से विमुख हुआ (और) स्वभाव के समीप आया। आहाहा! समझ में आया? **तथा पंचेन्द्रिय के विस्तार रहित...** पाँच इन्द्रिय का विस्तार भी मुझे नहीं है। मैं तो अणीन्द्रिय हूँ। समझ में आया? मुनि अपनी बात कहते हैं, देखो! **पंचेन्द्रिय के विस्तार रहित देहमात्रपरिग्रहवाला...** एक देहमात्र परिग्रह रह गया है। मुनि को दूसरा—वस्त्र, पात्र और यह और वह और मेरा संघ है, मेरा शिष्य है—यह कुछ है नहीं। आहाहा! समझ में आया? जिसके प्रत्याख्यान में आत्मा कारण है, ऐसा प्रत्याख्यान कैसा?—कि देहमात्र परिग्रहवाला मैं हूँ। एक देह छोड़ा नहीं जाता, पड़ा रहा है। अपूर्व अवसर में ऐसा आता है—'मात्र देह वह संयम हेतु होय जब।' क्या आया? मात्र देह... 'मात्र देह वह संयम हेतु होय जब।' श्रीमद् राजचन्द्र सम्यग्ज्ञानी, चारित्र की भावना भाते हैं। 'मात्र देह वह संयम हेतु होय जब, अपूर्व अवसर ऐसा कब आयेगा? कब

होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जब... सर्व भाव से औदासिन्य वृत्ति करि, मात्र देह वह संयम हेतु होय जब...'

देखो! श्रीमद् ने ऐसा लिया है, तथापि यह शिष्य कहते हैं कि नहीं, वस्त्र देखा, वस्त्र देखा। भाई! आता है न ऐसा? 'जाति वेश का भेद नहीं, कहा मार्ग जो होय।' अब वहाँ यह लगावे कि देखो! श्रीमद् यह कहते हैं कि जाति और वेष चाहे जो हो, परन्तु केवलज्ञान हो जाता है, मुनिपना आ जाता है। परन्तु यहाँ तो लिया, देह मात्र संयम का हेतु होय, दूसरी कुछ चीज़ मुनि को होती नहीं। समझ में आया? वेश-बेश कैसा? कपड़ा और फपड़ा। मुनिपना किसको कहे? अन्तर जहाँ चारित्रदशा तीन कषाय के अभावरूप परिणमन हुआ, वहाँ वस्त्र-पात्र लेने का विकल्प आया कहाँ से? उस भूमिका में ऐसा विकल्प होता ही नहीं। ऐसा विकल्प है, वहाँ मुनिपना नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसा विकल्प हो तो कमजोरी मानी....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, मुनिपना नहीं है। आहार का, सुनने का विकल्प आता है, परन्तु वस्त्र-पात्र लेने का विकल्प आया, (तो वह मुनि) है ही नहीं। कमजोरी नहीं, मुनिपना नहीं है। वस्त्र का एक टुकड़ा रखने का विकल्प है, वह मुनिपना नहीं है। वह तो वस्तु की स्थिति ऐसी है। यह कोई किसी ने बनायी नहीं है। वस्तु ऐसी है। समझ में आया? **जो मैं...** भाषा कैसी है? **'आदा पच्चक्खाणे आदा मे' 'आदा मे'** है न? ओहोहो! मेरा शुद्ध परिणतिरूप चारित्र, उसमें मेरा आत्मा कारण है। इस चारित्र के कार्य में आत्मा कारण है, उस प्रत्याख्यान में। प्रत्याख्यान के कार्य में मेरा आत्मा कारण है, प्रत्याख्यान के कार्य में विकल्प और निमित्त कारण-फारण है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

जो मैं, उसके निश्चय-प्रत्याख्यान में—कि जो (निश्चयप्रत्याख्यान),... अब विस्तार करते हैं। आहाहा! **शुभ, अशुभ,...** भाव, **पुण्य, पाप,...** कर्म, **सुख और दुःख...** संयोग—**इन छह के सकल संन्यासस्वरूप है (अर्थात् इन छह वस्तुओं के सम्पूर्ण त्यागस्वरूप है)....** समझ में आया? शुभ-अशुभ परिणाम का त्याग है। प्रत्याख्यान में शुभ-अशुभ परिणाम का त्याग है और शुभ-अशुभ कर्म हैं न बँधे हुए, उसका अभाव

है और संयोग जो शुभ-अशुभ पुण्य-पाप से मिलता है, उससे भी मेरा अभाव है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में नहीं आया। रात्रि को प्रश्न करना।

शुभ-अशुभ, पुण्य-पाप—दोनों से रहित मेरा प्रत्याख्यान है। समझ में आया? पुण्य-पाप कर्मबन्धन—दो, उससे रहित मेरा प्रत्याख्यान है और सुख-दुःख का संयोग, उससे भी रहित मेरा प्रत्याख्यान है। छह टुकड़े हुए छह। समझ में आया?

इन छह के सकल संन्यासस्वरूप... देखो! छह का सर्वथा त्याग—सम्पूर्ण त्याग। आहाहा! ऐसी मेरी दशा... चारित्रवन्त मुनि सन्त कहते हैं। 'सन्त निरन्तर चिन्तत ऐसे' आता है न? 'सन्त निरन्तर चिन्तत ऐसे।' क्या है बाद में? 'आतमरूप अबाध...' आहाहा! मेरी चीज़ में राग का विघ्न कैसा? कर्म का बन्धन कैसा? मेरी चीज़ तो अन्दर आनन्दकन्द शुद्ध है, ऐसा दृष्टिवन्त धर्मात्मा अपने स्वरूप की रमणता में—प्रत्याख्यान में जब हो, तो सम्पूर्ण त्याग के समय में **वह आत्मा सदा आसन्न (-निकट) विद्यमान है;...** लो। मेरे प्रत्याख्यान में आत्मा निकट है। समझ में आया? अपना शुद्धस्वरूप ध्रुव, उसका कारण है और कार्य हुआ प्रत्याख्यान। राग का अभावस्वभावरूप वीतराग परिणति। वीतराग परिणतिरूपी कार्य में मेरा आत्मा कारण है। समझ में आया?

अब, '**आदा मे संवरे**' संवर आया न, संवर? संवर में कौन है निकट? संवररूपी कार्य में कारण कौन है? समझ में आया? **सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का शिखामणि,...** आहाहा! चारित्र लेना है न? उत्कृष्ट संवर लेना है न? कैसा हूँ मैं? सहज वैराग्यरूपी महल का शिखर, उसका शिखामणि—टोंच। आहाहा! पर के अभावस्वभावरूप वीतरागभाव, वह वैराग्य। आहाहा! समझ में आया? पुण्य-पाप अधिकार में तो ऐसा लिया है भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने कि शुभ-अशुभराग से रहित होना, वही वैराग्य है। वैराग्य तो स्त्री-पुत्र छोड़कर चल निकले, वह वैराग्य-फैराग्य नहीं। वे सब बेरागी हैं। समझ में आया? आहाहा! अन्तर में पुण्य और पाप का विकल्प अर्थात् राग, बन्ध का दो भाव, उससे विरक्त है, वह वैरागी है। और आत्मा में रत है, राग से विरक्त है, वह वैरागी है। यह पुण्य-पाप अधिकार में आया है। समझ में आया?

‘**वैराग्य संपत्तो...**’ ऐसा पाठ है। आहाहा! गजब काम किया है। ‘कुन्दकुन्द आचार्य न हुए न होयेंगे।’ वृन्दावनदास कहते हैं न! ‘न हुए न होयेंगे।’ जैसा (कहा) ऐसे तो वे हैं न। मुनि हुए हैं, परन्तु उनकी दशा में तो वही आता है। आहाहा! जिनकी पवित्रता और जिनका भगवान के समीप में जाना और जिनके मुखकमल से परमागम का झरना... वह भी कहते हैं अभी। सहज वैराग्य... हठ का वैराग्य नहीं, श्मशान वैराग्य नहीं। पच्चीस वर्ष का लड़का मर जाये और ऐसे जलता हो तो आहा! यह तो श्मशान वैराग्य है। समझ में आया? घर में आये और वापस समाप्त, जाओ। दो वर्ष में फिर (दूसरे) लड़के का विवाह करे और धूमधाम हाथी और घोड़ा। कहाँ गया तेरा वैराग्य? छोटे लड़के का विवाह करे, भूल जाये उसको। अरे पुत्र! आहाहा! ‘हाड़ जले ज्यों लकड़ी, केश जले ज्यों घास...’ घर जले ऐसा वहाँ देखे, अररर! आहाहा! यह तो क्षणिक वैराग्य है। पुण्य और पाप के विकल्प से हटकर स्वभाव में लीनता करना, यह यथार्थ वैराग्यता है। समझ में आया? यह विशेष व्याख्या है, लो।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण ९, शनिवार, दिनांक - १४-८-१९७१
गाथा-१००, प्रवचन-९४

यह नियमसार, निश्चय-प्रत्याख्यान अधिकार। प्रत्याख्यान, यह त्याग के भाव की नास्तिकता सूचन करता है। इसका अर्थ कि अपने आत्मा में शुद्धता और ध्रुवता जो त्रिकाल है उसका आश्रय करके परिणति में वीतरागता प्रगट हो, वह प्रत्याख्यान है और उस प्रत्याख्यान में आत्मा समीप है। प्रत्याख्यान की पर्याय में आत्मा ध्येय है, आत्मा का आश्रय है, आत्मा का शरण है। प्रत्याख्यान शुभ-अशुभ विकल्प से उत्पन्न होता है, ऐसा नहीं। यह चारित्र का अन्तर्भेद प्रत्याख्यान आत्मा के आश्रय से उत्पन्न होता है। यह प्रत्याख्यान आ गया। संवर की व्याख्या है अभी। संवर, मुनि अपनी अपेक्षा रखकर दुनिया को संवर क्या है, वह बताते हैं।

सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर का शिखामणि,... पुण्य और पाप के राग से विरक्त जिसकी बुद्धि है, उसे यहाँ वैराग्य कहते हैं। शुभ-अशुभराग से विरक्त... रक्तबुद्धि है, वह मिथ्यादृष्टि है और शुभाशुभपरिणाम से विरक्त ऐसा सहज वैराग्य का महल, उसके शिखर का शिखामणि। **स्वरूपगुप्त...** मैं तो, स्वरूप से बाहर निकलने का भाव शुभाशुभ, वह मैं नहीं। आहाहा! यह संवर। **स्वरूपगुप्त...** मैं तो अन्तर में गुप्त हूँ। **और पापरूपी अटवी को जलाने के लिए पावक समान...** आहाहा! पाप शब्द से शुभ और अशुभराग दोनों पाप हैं। जलाने को मैं तो पावक—अग्नि समान हूँ। ऐसा **जो मैं, उसके शुभाशुभसंवर में (वह परमात्मा है),...** लो, शुभ-अशुभ परिणाम को रोकने में कारण आत्मा है। समझ में आया? शुभ-अशुभभाव जो आस्रव है, उसको रोकने में कारणपरमात्मा कारण है। आहाहा! समझ में आया? यह संवर का रूप—संवर का स्वरूप। संवर, कोई बाह्यक्रियाकाण्ड करना, वह संवर है नहीं। समझ में आया?

पंच महाव्रत का परिणाम, वह शुभभाव आस्रव है और हिंसा, झूठ, चोरी, विषयवासना अशुभभाव—पापभाव है। दोनों को यहाँ पाप कहते हैं। इसको रोकने में,

परमात्मा है। मेरा परमस्वरूप जो नित्यानन्द ध्रुव, वह संवर में कारण है। उसके आश्रय से संवर उत्पन्न होता है। आहाहा! लो, समझ में आया? तो भगवान की भक्ति करने से आस्रव रुकता है और संवर होता है, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भगवान परमात्मा अपना निज स्वरूप, वही शरण और आश्रय है जिसको, ऐसी मेरी शुभ-अशुभराग को रोकनेवाली निर्मलदशा, उस निर्मलदशा में कारण, परमात्मा है। आहाहा! समझ में आया?

तथा... अब योग... योग। योग है न अन्तिम शब्द? योग की व्याख्या... यहाँ समयसार में यही गाथा है, वहाँ योग की व्याख्या समाधि और ध्यान की है। यहाँ उसकी व्याख्या शुद्ध उपयोग (की है)।—दोनों एक ही बात है। शुद्ध उपयोग। पुण्य-पाप का विकल्प है अशुद्ध उपयोग, वह तो आस्रव है। उससे रहित अपना शुद्धस्वभाव का उपयोग अर्थात् आचरणरूप परिणाम, ऐसे शुद्ध उपयोग में भी आत्मा—परमात्मा ही कारण है। शुभराग था, तो शुद्ध उपयोग हुआ, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? शुभ उपयोग था, तो शुद्ध उपयोग का कारण शुभराग हुआ, ऐसा नहीं। आहाहा! अपना... कहते हैं, **अशुभोपयोग से...** तो **पराङ्मुख...** हूँ मैं। अशुभ उपयोग तो मेरे में है नहीं। और **शुभोपयोग के प्रति भी उदासीनतावाला...** आहाहा! योग वर्णन करना है न योग। उपयोग, ध्यान और समाधि। तीनों एक अर्थ में हैं। उदासीनवाला, शुभ उपयोग से भी मैं उदासीन हूँ। उससे मेरा आसन भिन्न पड़ा है। समझ में आया?

और साक्षात् शुद्धोपयोग के सम्मुख... यह योग की व्याख्या। **जोगे...** साक्षात् शुद्ध उपयोग... देखो! मुनि अपनी चीज़ (-बात) कहते हैं। आहाहा! अशुभ उपयोग से तो मैं पराङ्मुख हूँ—विमुख हूँ परन्तु शुभ उपयोग परिणाम, पंच महाव्रत से भी मैं उदासीन हूँ। आहाहा! समझ में आया? और अपनी खबर भी पड़ी है उनको कि मैं तो शुद्धोपयोग के सन्मुख हूँ। आहाहा! ऐसा **जो मैं...** शुद्ध उपयोग का कारण जो परमात्मा, ऐसा जो मैं .... आहाहा! **परमागमरूपी पुष्परस जिसके मुख से झरता है,...** देखो! मुनि कहते हैं, परमागमरूपी मकरन्द—फूल का रस—पुष्प का रस, जिसके मुख से झरता है, **ऐसा पद्मप्रभ...** ऐसा पद्मप्रभ मुनि... समझ में आया? **उसके शुद्धोपयोग में भी...** शुद्ध उपयोग ही धर्म है, चारित्र है, प्रत्याख्यान है। तो उस शुद्धोपयोग में भी **वह**

परमात्मा विद्यमान है... अर्थात् शुद्धोपयोग के कारणरूप आत्मा है। मेरे शुद्धोपयोग के समीप में आत्मा नजदीक में वर्तता है। आहाहा!

कारण कि वह (परमात्मा) सनातन स्वभाववाला है। ध्रुव चैतन्यस्वभाव सनातन स्वभाव है, अनादि का वह स्वभाव है। अपना निज स्वभाव, निज परमात्मा, निज त्रिकाली स्वरूप, सनातन स्वरूप है। वह कोई नया उत्पन्न हुआ है और नाश होगा, ऐसी चीज़ नहीं है। सनातन। आहाहा! देखो! यह सनातन धर्म। आहाहा! मेरी चीज़ सनातन है। उसके आश्रय से जो परिणाम उत्पन्न होता है, वह सनातन धर्म है। समझ में आया? दया, दान और व्रत, भक्ति, पूजा, नामस्मरण, यह तो सब विकल्प-राग है, उससे मेरे संवरदशा या शुद्धोपयोग उत्पन्न होता है, ऐसा नहीं। यह योग, समाधि, ध्यान और शुद्धोपयोग। शुद्धोपयोग है पर्याय।

मुमुक्षु : प्रत्यक्ष दर्शन होंगे?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रत्यक्ष ही है। सुख है न। हाँ, हाँ, साक्षात् है न! '**परमात्मा सनातनस्वभावत्वात्तिष्ठति**' ऐसा है। '**आदा मे संवरे जोगे**' मेरा आत्मा ही साक्षात् शुद्धोपयोग का कारण है, ऐसा कहते हैं। शुद्धोपयोग में धर्म है, शुद्धोपयोग वह मुनिपना है, परमशुद्धोपयोग परिणाम, वह मुनिपना है, परन्तु परमशुद्धोपयोग का कारण द्रव्य-आत्मा है, व्यवहारचारित्रादि शुद्धोपयोग का कारण है, ऐसा नहीं। आहाहा! मूलचन्दभाई! ऐसा मार्ग है। आहाहा! भगवान आत्मा... सनातन कहा न? पाठ में सनातन शब्द है। संस्कृत में सनातन है। '**सनातनस्वभावत्वात्तिष्ठति**' आहाहा! संस्कृत में है। सब संस्कृत में है, (उसमें से) हिन्दी बनाया है। मेरी चीज़ जो निज परमात्मा निज स्वरूप, वह तो सनातन है। उस सनातन के आश्रय से जो धर्म—शुद्धोपयोग हुआ, तो उस शुद्धोपयोग—समीप में तो भगवान विराजता है। मेरे पास है, शुद्धोपयोग कहे, मेरे पास परमात्मा है। आहाहा! अर्थात् शुद्धोपयोगरूपी चारित्र जो धर्म, उसका कारण तो परमात्मा द्रव्यस्वरूप है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ विद्यमान परमात्मा विद्यमान है। देखो! साक्षात् शुद्धोपयोग कहा न उसमें? साक्षात् उपयोग अर्थात् सीधा शुद्धोपयोग। देखो! वर्तमान है साक्षात् शुद्धोपयोग परिणाम।

आत्मा त्रिकाल उपयोगस्वरूप है। यह तो त्रिकाल उपयोगस्वरूप। त्रिकाल शुद्धोपयोग... '**उवओगे उवओगो**' आता है न संवर अधिकार में? (गाथा १८१-१८३)। उपयोग में उपयोग है, उपयोग में क्रोधादि नहीं। उपयोग में उपयोग है अर्थात् शुद्ध परिणतिरूपी संवर में आत्मा है। वहाँ ऐसा लिया है, भाई! संवर अधिकार। पहली ही गाथा। '**उवओगे उवओगो**' उपयोग में उपयोग। अर्थात्? अर्थात् मेरा शुद्ध परिणाम, जो उपयोग, उसमें आत्मा उपयोग है। आहाहा! समझ में आया? अरे! मार्ग तो देखो! वीतरागी मार्ग यह है। लोगों को यह बात ऐसी लगे कि यह क्या है? व्यवहार क्रियाकाण्ड के रुचिवाले को यह बात... आहाहा! व्यवहार हो, परन्तु व्यवहार, वह आस्रव है। आहाहा!

मार्ग तो यह है, प्रभु! अरेरे! जन्म-मरण का काल... चौरासी के अवतार कर-करके मर गया। दुःखी... दुःखी... यह राजा दुःखी, सेठिया दुःखी। ऐ सेठ! दुःखी है। धूल में भी सुखी नहीं। लोग सुखी कहे, मूर्ख है। वह भी मूर्ख है, उसमें सुख माने तो। ऐ सेठ! वस्तु तो जो हो, वह होगी या नहीं? आहाहा! जिसमें सुख नहीं, उसमें सुख मानना, यह मूर्खता है।

मुमुक्षु : जब तक नहीं जानेंगे तब तक....?

पूज्य गुरुदेवश्री : तब तक मूर्खाई है, यह तो कहते हैं। वे अनजाने मूर्ख हैं। आहाहा!

तीन लोक का नाथ, त्रिलोक का नायक परमात्मा अपना निजस्वरूप, उसमें सुख है तो उसके आश्रय से परिणति में सुख और आनन्द प्रगट होता है। यह शुद्धोपयोग में आनन्द है। शुभ-अशुभ परिणाम में दुःख है। समझ में आया? दुःख, वह कोई बाहर की चीज़ में नहीं रहता। दुःख तो अपने परिणाम में, शुभ और अशुभ परिणाम, वही दुःख है और सुख कोई बाहर में से नहीं आता। भगवान आत्मा सनातन आनन्द की मूर्ति प्रभु, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द है। यह शरीर माँस का चूथना, हड्डियों का चूथना और उसमें माने कि मुझे मजा है, मूढ़ है-मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! कितने छह-छह लड़के हों, पैसे लाखों हों, मजा कितना लगे? लो। छह मंजिल ऊपर... लगे मजा। मजा था कब? ऐ चिमनभाई! यह दोनों समधी हैं पैसेवाले। लो, धूलवाले। मानते हैं न? था कब? रागवाला भी आत्मा नहीं तो फिर धूलवाला कहाँ से आया? आहाहा!

कहते हैं आचार्य... टीका तो देखो! मेरे शुद्धोपयोग में तो मेरा परमात्मा निकट में है, हों! उस कारण से—परमात्मा ध्रुवस्वरूप के कारण से मेरा शुद्धोपयोग उत्पन्न हुआ है। यह शुभ परिणाम है तो शुद्धोपयोग उत्पन्न हुआ है—(ऐसा नहीं है)। समयसार में वह डाला है... कैसा? मोक्षमार्गप्रकाशक में। कोई कहते हैं कि शुभोपयोग कारण है और शुद्धोपयोग कार्य है। ऐसा है नहीं। लिया है, मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में बहुत लिया है। हजारों बोल का स्पष्टीकरण मोक्षमार्गप्रकाशक में है। सातवें अध्याय में। कहते हैं, ओहो! मेरा आत्मा, सनातन प्रभु परमेश्वर मेरा आत्मा है। आहाहा! मैं ही देवाधिदेव हूँ। समझ में आया? ऐसा देवाधिदेव परमात्मा अपना निज स्वरूप सनातन, उसके साक्षात् शुद्धोपयोग में कारण तो यह आत्मा है। समझ में आया?

यह एकत्वसप्तति का आधार देते हैं। पद्मनन्दिपंचविंशति है न? अधिकार छब्बीस है, परन्तु उसका नाम पच्चीस चलता है। 'पद्मनन्दिपंचविंशति' है न नाम? अधिकार छब्बीस है, परन्तु पद्मनन्दिपंचविंशति ऐसा नाम प्रसिद्ध है। यह ग्रन्थ प्रसिद्ध ऐसा है। अधिकार तो छब्बीस हैं। एकत्वसप्तति नाम का अधिकार, वह यहाँ वाँचा है। एकत्वसप्तति। व्याख्यान नहीं दिया। यह ९५वें में वहाँ रास्ते में चला था। रास्ते में वह गाँव नहीं? विद्यालय में चला था। एकत्वसप्तति। कैसा? ९५ में तुम नहीं थे। (संवत्) १९९५ में अपने यहाँ बाहर काठकोरडा... बाहर... वह आया था। ... जमादार के मकान में नहीं? वह डाकू आया नहीं था पानी पीने? कोटडापीछा।

कोटडापीछा में बाहर एक थे न, एक डाकू आया था। एक डाकू को रखा हुआ... तुम्हारे क्या कहलाता है कोर्ट में उसे? साक्षी। ताज का साक्षी। वरना था तो बड़ा डाकू। और हम जहाँ उतरे थे, वहाँ पानी पीने आया था। जीवोबचियो। यह तो वे कहें, महाराज! यह डाकू है, बड़ा लुटेरा। परन्तु उसे सरकार का ताज... क्या कहा? ताज का साक्षी करके हमने पृथक् किया है, इतनी सब माहिती चोरी की जानकर देगा। नाम जीवाबचिया। परन्तु उसे सरकार को कहे, ताज का साक्षी ऐसा है न! वह चोर हो, गुनहगार बहुत बड़ा हो, परन्तु सब गुनहगार... और सच्ची साक्षी दे तो उसे ताज का साक्षी... ऐसा कुछ है, माणेकचन्दभाई और रामजीभाई... कहो, समझ में आया? उसके पहले अपने ९५ में विद्यालय में गये थे। तुम थे तब। उस विद्यालय में वहाँ यह वाँचा

था। एकत्व (सप्तति) अधिकार। ९५। सब थे, दामोदरभाई थे खाटडियावाले। दूसरी बार उतरे थे बाहर। पहले ९५ में तब तुम नहीं थे। यह अधिकार।

इस प्रकार एकत्वसप्तति में (-श्री पद्मनन्दि-आचार्यवरकृत पद्मनन्दिपंच-विंशतिका के एकत्वसप्तति नामक अधिकार में ३९, ४० तथा ४१वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:— लो,

तदेकं परमं ज्ञानं तदेकं शुचि दर्शनम्।
चारित्रं च तदेकं स्यात् तदेकं निर्मलं तपः ॥१८३॥

आहाहा! क्या कहते हैं? पद्मनन्दि महाराज दिगम्बर सन्त वनवासी। जिनके शास्त्र को श्रीमद् (राजचन्द्र) वनशास्त्र कहते हैं। पद्मनन्दि शास्त्र को वनशास्त्र कहते हैं। यह पद्मनन्दि। यह कुन्दकुन्दाचार्य नहीं। ९०० वर्ष पहले वनवास में रहनेवाले। मुनि तो जंगल में (जहाँ) मनुष्य का पगरव नहीं, वहाँ ध्यान में मस्त रहते थे। समझ में आया? यह पद्मनन्दि आचार्य, उन्होंने श्लोक बनाया। श्रीमद् राजचन्द्र पद्मनन्दि (पंचविंशति) को वनशास्त्र कहते हैं, वनशास्त्र। वन समझे? जंगल। जंगल में बनाया, इसलिए जंगल का शास्त्र है वह। यह नहीं। यह तो कुन्दकुन्दाचार्य। ये दूसरे। दूसरे कहा न? वह तो पद्मनन्दि ९००-१००० वर्ष पहले हुए और ये २००० वर्ष पहले हुए। कुन्दकुन्दाचार्य का नाम (भी) पद्मनन्दि है, ये वह नहीं। समझ में आया? ऊपर श्लोक।

श्लोकार्थः— वही एक (-वह चैतन्यज्योति ही एक) परम ज्ञान है,... उसका अर्थ कि अपने सम्यग्ज्ञान की दशा चैतन्यज्योति के आश्रय से उत्पन्न होती है। श्लोक में ऐसा है न? '**तदेकं परमं ज्ञानं**' वह यह। आत्मा ही परमज्ञान अथवा आत्मा का भान हुआ, उस ज्ञान में परमज्ञान ऐसा आत्मा कारण है, तो उसको ही परमज्ञान कहा जाता है। पर्याय को परमज्ञान कहने में आता है, सम्यग्ज्ञान। समझ में आया? ओहो! ज्ञान का निधान भगवान, अपनी ज्ञानदशा में तो ज्ञान का निधान ही आश्रय, कारण है। वह तो पहले आ गया १०० गाथा में। '**आदा खु मज्ज णाणे**' मेरे ज्ञान की सम्यक् दशा के कार्य में कारण तो मेरा आत्मा है। गुरु नहीं, देव नहीं, शास्त्र नहीं, विकल्प नहीं, एक समय की पर्याय नहीं। आहाहा! वही एक चैतन्यज्योति एक परमज्ञान है। वह पर्याय है। यह पर्याय है। आ गया यहाँ अधिकार। १००वीं गाथा का आधार देते हैं।

वही एक पवित्र दर्शन है,... '**शुचि**' है न? '**शुचि दर्शनम्**' सम्यग्दर्शन। पवित्र सम्यग्दर्शन, वह आत्मा ही है। क्योंकि आत्मा के आश्रय से उत्पन्न हुआ, वह आत्मा है। वह तो समयसार में लिया है। ज्ञान, वह आत्मा; दर्शन, वह आत्मा; चारित्र, वह आत्मा। आहाहा! समझ में आया? त्रिलोकनाथ तीन लोक का ज्ञायक प्रभु अपना निज स्वभाव, वही परमज्ञान का कारण है। मतिज्ञान का वह कारण, श्रुतज्ञान का वह कारण, अवधि का वह कारण, मन:पर्यय का वह कारण और केवलज्ञान का वह कारण है। आहाहा! समझ में आया? केवलज्ञान के पूर्व में चार ज्ञान हो और व्यय होकर केवलज्ञान उत्पन्न हो—ऐसा नहीं, यहाँ तो कहते हैं। पूर्व के ज्ञान के कारण से केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, ऐसा नहीं है। यह केवलज्ञान त्रिकाली ज्ञायकभाव से उत्पन्न हुआ है। आहाहा! समझ में आया?

मोक्ष, मोक्षमार्ग से उत्पन्न नहीं होता, ऐसा कहते हैं। गजब बात है न!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, मोक्ष कहो या केवलज्ञान कहो या अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य, अनन्त दर्शन कहो। ऐसी अनन्त चतुष्टय पर्याय, उसका कारण द्रव्य है—वस्तु—ध्रुव है। जिसकी खान में अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान पड़ा है, ऐसा मेरा सनातन प्रभु अनादि-अनन्त... आदि नहीं, अन्त नहीं, अपूर्णता और विकार नहीं। आहाहा! भाव में इतना आना चाहिए, हों! भाषा वह दूसरी चीज़ है। समझ में आया न? समझ में अन्तर में भान... आहाहा! अन्तर्मुख चीज़ जो परमज्ञान का कारण... यह ज्ञान का कारण अन्तर्मुख चीज़ है, कहते हैं। ज्ञान उत्पन्न हुआ पर्याय में, परन्तु पर्याय का कारण द्रव्य है, ऐसा कहते हैं।

'**आदा खु मज्झ णाणे**' ऐसे सम्यग्दर्शन में भी हमारा आत्मा ही कारण है। वही चारित्र। आत्मा चारित्र है। उसका अर्थ (यह कि) चारित्र का आश्रय आत्मा है। समझ में आया? वीतराग अतीन्द्रिय आनन्द की दशा, ऐसा चारित्र... आहाहा! उस चारित्र का... चारित्र ही आत्मा, बस। अर्थात् आत्मा के आश्रय से उत्पन्न होता हुआ तो वह आत्मा ही है। आहाहा! चारित्र कोई देह की क्रिया, पंच महाव्रत का विकल्प, वह चारित्र कोई है नहीं और उस कारण से चारित्र है, ऐसा भी नहीं। आहाहा! यहाँ तो भगवान पद्मनन्दि, जैसे कुन्दकुन्दाचार्य... दिगम्बर सन्तों की प्रत्येक की एक ही बात है। किसी में कोई

अन्तर है नहीं। आहाहा! दो हजार वर्ष पहले हो या कल के हों, सच्चे हों, या अनन्त काल के हों, बात तो सर्व सन्तों की 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।' आहाहा!

वही एक चारित्र है तथा वही एक निर्मल तप है। देखो! अमृत की धारा बहे, वह तप। अमृत की धारा सुख के साथ... सुख का फव्वारा फूटे। समझ में आया? जिसमें से अनन्त आनन्द का फव्वारा फूटे (उस) फव्वारे का आत्मा कारण है। लोगों को व्यवहार ऐसा लगता है... हो व्यवहार, परन्तु वह (व्यवहार) कारण कुछ नहीं है और कहीं कारण कहने में आया हो और हेतु, वह तो निमित्त का ज्ञान कराने को कहा है। वह आया न छहढाला में? 'हेतु नियत को होई...' (ढाल ३, छन्द २)। ज्ञान तो, निमित्त है तो ज्ञान तो (होता है)।'सत्यार्थ सो निश्चय, कारण सो व्यवहारो।' (ढाल ३, छन्द १)। यह आता है। छहढाला में। हाँ, यह। परन्तु वह कारण अर्थात् असत्यार्थ। खींचतान, वह असत्यार्थ। आहाहा! सत्यार्थ भगवान आत्मा त्रिकाली के आश्रय से उत्पन्न हुआ मोक्षमार्ग, वह सत्यार्थ (और) पर के लक्ष्य से उत्पन्न हुआ व्यवहार मोक्षमार्ग वह मोक्षमार्ग असत्यार्थ और झूठा है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : कथंचित् कारण.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कथंचित् कारण नहीं, एकान्त कारण आत्मा। पर का कारण नहीं। सर्वथा पर का कारण नहीं, ऐसा आत्मा का चारित्र-ज्ञान-तप, उसका आधार सर्वथा आत्मा है। थोड़ा-सा जहर कारण और थोड़ा-सा अमृत कारण—ऐसा है।

मुमुक्षु : व्यवहार कारण जहर है?

पूज्य गुरुदेवश्री : जहर है। विषकुम्भ कहा नहीं? शुभराग, वह तो जहर का घड़ा है। जहर का घड़ा। मीठा... मीठा... लगे। वैरी मीठा लगे। आत्मा के स्वभाव से विरुद्ध वैरी—दुश्मन राग मीठा लगे। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है, भाई! अरे! चौरासी के अवतार में दु:खी होकर भटका। सम्यग्दर्शन की कितनी कीमत! जो सम्यग्दर्शन द्रव्य के आश्रय से प्रगट हो कि जिससे भव-भय का नाश हो जाये। आहाहा! समझ में आया?

वही एक निर्मल तप... ऐसा है न? '**निर्मलं तपः**' तप की व्याख्या आज कोई पूछता था। 'तपसा निर्जरा' कहा न तत्त्वार्थसूत्र में? यह तो निमित्त का कथन है, यह तप नहीं। 'नहीं' को कहना, यह व्यवहार। भगवान आत्मा में उग्ररूप से शुद्धता के आश्रय से निर्मल अमृत की धारा बहे, उसका नाम सच्चा तप है और उस तप का कारण प्रभु आत्मा है। समझ में आया? 'इच्छा निरोध तप' कहते हैं या नहीं? इच्छा का निरोध—रुक जाती है तो उत्पन्न क्या होता है? अनिच्छा अर्थात् अमृत की धार बहे। आहाहा! अमृत की धार। अमृत का सागर नाथ, निज स्वरूप अमृत का—अतीन्द्रिय सुख का सागर उसका आश्रय लेकर जो अमृतधारा उत्पन्न हुई, तो कहते हैं, वह आत्मा ही है। आत्मा से उत्पन्न हुआ वह आत्मा है। पुण्य-पाप जो पर से उत्पन्न हों, वे आत्मा नहीं। आहाहा! अरे! इसने निजशक्ति का माहात्म्य सुना नहीं। माहात्म्य कभी आया नहीं। बाहर का माहात्म्य विरोधी विकल्प, निमित्त और यह और वह... दुश्मन का माहात्म्य। कहते हैं, निर्मल... दूसरा श्लोक। पहले ३९ में आया, अब ४० में।

नमस्यं च तदेवैकं तदेवैकं च मङ्गलम्।
उत्तमं च तदेवैकं तदेव शरणं सताम्॥

यह 'अरिहंता शरणं, अरिहंता मंगलं' यह सब व्यवहार। यह भगवान आत्मा... **श्लोकार्थः—सत्पुरुषों को वही एक नमस्कारयोग्य है,...** नमनेयोग्य, ढलनेयोग्य, झुकनेयोग्य, आदरनेयोग्य हो तो आत्मा।

मुमुक्षु : सबका निषेध हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब छूट गया। हो विकल्प भगवान को नमस्कार आदि का, परन्तु वह व्यवहार है। आहाहा! यह तो '**णविजिय**' आता है अष्टपाहुड में।

मुमुक्षु : ऐसा मत ही कहो महाराज! मन्दिरों में ताले लग जायेंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मन्दिर में ताला... कौन जाते हैं मन्दिर में? आहाहा! सत्य को सुनने से, सत्य का भान होने से, ऐसा बहुमान का शुभभाव आये बिना नहीं रहता। अज्ञानी को सच्चा बहुमान आता ही नहीं। पंचास्तिकाय में कहा है, टीका। पंचास्तिकाय में टीका में लिखा है, ज्ञानी की भक्ति, वही सच्ची भक्ति है। अज्ञानी की भक्ति रागमय भक्ति है। आहाहा!

अरे! महा प्रभु विराजता है अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसका आश्रय लिये बिना दूसरा मांगलिक हो, उसकी मना करते हैं। आहाहा! सत्पुरुषों... लिखा न उसमें? '**सताम्... सताम्**' अर्थात् सत्पुरुष। '**सताम्**'—सत्—चैतन्यपुरुष का आश्रय जिसने लिया है, ऐसे **सत्पुरुषों को वही एक नमस्कारयोग्य है,...** भगवान पूर्णानन्द का नाथ, वह नमस्कार योग्य है। नमस्कार की पर्याय उसके आश्रय से होती है। वीतराग की पर्याय वीतराग आत्मा के आश्रय से होती है। '**नमः समयसाराय**' नहीं आता? पहला श्लोक। '**नमः समयसाराय**' समयसार को मैं नमस्कार करता हूँ। यह आत्मा समयसार। उसमें मैं ढलता हूँ, झुकता हूँ, उसमें मैं नमन करता हूँ—नम जाता हूँ। राग से जो नमन है, उससे छूट जाता हूँ। आहाहा! समझ में आया?

अरे! थोड़ा दुःख सहन हो नहीं, वह मिथ्यात्व जैसे बड़ा दुःख पाता है, फिर भी उसकी दरकार नहीं। थोड़ी प्रतिकूलता आ जाये तो सहन न हो। शरीर में आलस-विलस हो जाये, तृषा लगे ऐसी लगे, फाट... फाट... बुखार आवे लो न। १०६-१०८ डिग्री। वह हमारे यहाँ कहते हैं काठियावाड़ में कि धाणी फूटे ऐसा बुखार आया। धाणी समझते हो? नहीं समझते। वह ज्वार नहीं होती। ज्वार। ज्वार को भुनने से धाणी होती है। वह फूली... फूली... वह ज्वार का फूल। हमारे यहाँ धाणी कहते हैं। भूंजते हैं न, उसमें से वह धाणी फूल... फूल जैसा लगता है। यहाँ कहते हैं, अरे! जगत में धाणी जैसा पिल जाये चौरासी के अवतार में। भाई! तुझे खबर नहीं। जन्म-मरण करना, उसका जो भाव मिथ्यात्व महा दुःख का दायक है और प्रीति से उसको भेंटता है। ....मिथ्यात्व छोड़ा अच्छा है। अरे! मिथ्यात्व का भेंटा, उसके फल में अनन्त आकुलता वर्तमान में भी है और भविष्य में भी होगी। आकुलता का कारण है। आहाहा!

दुःखफला आया न? '**दुखफलादिणादोणं निवत्ते ते ही**' पुण्यभाव, वह दुःखरूप है और दुःख का कारणरूप है। भगवान आत्मा सुखरूप और आनन्द का कारणरूप है। आहाहा! **वही एक मंगल है....** यह मांगलिक है। मंग अर्थात् पुण्य / पवित्रता और ल अर्थात् लाति। पवित्रता की प्राप्ति, वह भगवान आत्मा से होती है। तो पवित्रता, वह मंगल, वही आत्मा है। आहाहा! वीतरागी पर्याय वह मंगल और वही मंगल का कारण आत्मद्रव्य है। 'अरिहंता मंगलं' यह तो विकल्प है। आहाहा! समझ में आया? 'मंगलं'।

मंगल... मंगल के दो अर्थ होते हैं न? मम्-पाप, उसको गाले, वह मंगल अथवा मंगल-पवित्रता, ल-लाति-प्राप्ति करे, वह मंगल। अस्ति-नास्ति से। आहाहा!

'सताम्'—सत्पुरुषों को... देखो! यहाँ भाषा। अरे! धर्मात्मा सत्पुरुषों को मंगल तो आत्मा है और उसके आश्रय से मांगलिक दशा उत्पन्न होती है, वही आत्मा है। मंगल के परिणाम के समीप में तो आत्मा है। मंगल परिणाम के समीप में अरिहन्त हैं (नहीं)। आहाहा! वह तो परमात्मा (ने) कहा और परमस्वरूप ही है। आहाहा! ऐसा विश्वास लाना, यह कोई साधारण चीज़ नहीं। उसका फल भव का अभाव। आहाहा! वह कोई बात से, विकल्प से पूरा नहीं पड़ता। कहते हैं कि यह मांगलिक है। भगवान आत्मा मांगलिक, परन्तु मंगल परिणाम का कारण आत्मा है, इसलिए आत्मा मांगलिक है। अपना आत्मा ही मांगलिक का कारण है, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया?

वही एक उत्तम है... मांगलिक में चार आते हैं न? वही उत्तम और शरण और... लोगुत्तमा, मांगलिक और शरण—तीन आते हैं। 'चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं...' चत्तारि शरणं, चत्तारि लोगुत्तमा...' परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि यह सब व्यवहार है। अपना भगवान आत्मा, उसके आश्रय से जो अविकारी वीतरागी परिणति उत्पन्न हुई, वह मंगल और उत्तम है और उस उत्तम का आधार भगवान है। अपना आत्मा उत्तम आधार है। आहाहा! गजब! एकत्वसप्तति अधिकार में ८० गाथायें हैं। पद्मनन्दि। यह है न। कहा न उसमें एकत्वसप्तति नाम का अधिकार है। ना, यह तो गाथा। अधिकार कितना? यह तो गाथा का नाम है। गाथा का नम्बर। कितना अध्याय है? ऐसा मैं कहता हूँ। अपने वाँचन हो गया है। ओहोहो!

वही एक उत्तम... आत्मपदार्थ महा उत्तम—महान उत्तम। और उसके आश्रय से दशा उत्पन्न हो, वह उत्तम। उस उत्तम का आधार आत्मा, वह उत्तम। शुभादि परिणाम, वे उत्तम नहीं। अरिहन्त भगवान भी आत्मा के उत्तम परिणाम में वे उत्तम नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया? यह यात्रा का भाव—राग, वह उत्तम नहीं—ऐसा कहते हैं। यह सुनने का भाव विकल्प, वह उत्तम नहीं।

मुमुक्षु : मध्यम तो है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पण्डित मार्ग निकालते हैं। उत्तम नहीं, वह अनुत्तम है। मध्यम-फध्यम है नहीं। आहाहा!

वही एक उत्तम... भगवान आत्मा के आश्रय से जो विज्ञानघन की पर्याय उत्पन्न हुई, वही उत्तम है और उस उत्तम में आधार भगवान आत्मा उत्तम है। गजब बात! देव-गुरु-शास्त्र उत्तम, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। लोगों को बात कठिन लगे। भीखाभाई! आहाहा! **वही एक शरण है।** पर्याय में—वर्तमानदशा में त्रिकाली भगवान आत्मा के आश्रय से जो विज्ञानघन शान्ति की धारा आयी, वह शरण और उस शरण में आत्मा शरण। उसका शरण आत्मा। समझ में आया? बात ऐसी है, भाई! यह तो जड़ की भाषा कहीं... पर पर्यायरूप हुआ, वह शक्तिरूप है। अपना आत्मा साक्षात् हुआ, वह पर्याय हुई। अपने में, हों! पर साक्षात् हो, वह तो पर है। पर साक्षात् परमात्मा समवसरण में विराजमान, उनकी शरण लेने जाये तो शुभराग है। ऐ पण्डितजी! पण्डितजी ने मार्ग निकाला था कि उत्तम नहीं तो मध्यम है या नहीं?

मुमुक्षु : पहले जाना तो पड़ेगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन जाये? अपने स्वरूप में जाना पड़ेगा। समझ में आया? विकल्प हो और ऐसी देह की क्रिया होनेवाली हो, वहाँ भी अपने समीप में जायेगा तो लाभ होगा। भगवान के समीप में जायेगा तो लाभ होगा, (ऐसा नहीं है)। निज भगवान आत्मा... पन्नालालजी! कठिन बात, भाई! लोगों ने... शास्में सब बात पड़ी है, परन्तु वाँचते नहीं। फिर (कहे), सोनगढ़ एकान्त है, सोनगढ़ एकान्त है। आहाहा!

इस निश्चय के आगे व्यवहार तो तुच्छ चीज़ है। समझ में आया? समाधिशतक में लिया है, इसमें अपने अष्टपाहुड में लिया है। जो मनुष्य एक दिन में पाँच सौ योजन (मार्ग) तय करे, उसको एक कोस काटना, एक कोस काटना (तय करना), उसकी क्या विशेषता है? इसी प्रकार जिस परिणाम से आत्मा को मुक्ति मिले, उसको स्वर्ग के परिणाम की क्या कीमत है? वह तो अन्दर आयेगा ही... पाठ है। अष्टपाहुड़ में है और समाधिशतक, पूज्यपादस्वामी (कृत में है)। पूज्यपादस्वामी सर्वार्थसिद्धि टीका। आहाहा! एक-एक शास्त्र अमृत है, परन्तु समझे उसे। ना समझे उसे जड़ पृष्ठ है। आहाहा! कहते हैं, जिसकी शक्ति एक दिन में पच्चीस कोस चलने की है, वह क्या एक कोस का... एक

घण्टे में एक कोस चलना मुश्किल है? समझ में आया? इसी प्रकार जिसे आत्मा के आश्रय से परिणाम में मुक्ति लेने की सामर्थ्य है, उसमें बीच में स्वर्ग लेने का परिणाम तो सहज आये बिना रहेगा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

स्वर्ग की ऋद्धि तो समकिती को तो दाह समान है। कहा न उसमें। 'चक्रवर्ती की सम्पदा, इन्द्र सरीखे भोग, काग वीट सम मानत है वे सम्यग्दृष्टि लोक।' आहाहा! सेठी! वहाँ मन्दिर में लिखा है अजमेर में... वह क्या कहलाता है? इन्दौर में। काँच के (मन्दिर) में। 'चक्रवर्ती की सम्पदा, इन्द्र सरीखे भोग, काग वीट...' मनुष्य की विष्टा तो अभी सूकर खाता है। काग विष्टा तो कोई खा नहीं सकता। ऐसी सूखी और ऐसी खराब। काग... काग—कौआ। ऐसे भाग्योदय को समकिती काग वीट सम मानते हैं। आहाहा! अपने आनन्द के उदय को अमृत का सागर उछलता है, ऐसा मानते हैं। समझ में आया? **तथा वही एक शरण है।** यह पद्मनन्दिपंचविंशति में से निकाला है।

आचारश्च तदेवैकं तदेवावश्यकक्रिया।
स्वाध्यायस्तु तदेवैक-मप्रमत्तस्य योगिनः॥

आहाहा! **श्लोकार्थः—अप्रमत्त योगी को...** जिसकी धारा शुद्ध उपयोग में पड़ी है... आहाहा! **वही एक आचार है,...** स्वरूप में एकाग्रता के आनन्द का आचार, वह एक आचार है। व्यवहार आचार, वह तो विकल्प है ही। आहाहा! ज्ञानाचार, दर्शनाचार आते हैं या नहीं? चारित्राचार, वीर्याचार, तपाचार—यह तो विकल्प और राग है। यह एक आचार है, आनन्दकन्द सनातन प्रभु में एकाग्रता हो और अमृत की धारा बहे, वह आचार है। इस आचार का आधार आत्मा है। इस आचार का आधार व्यवहार (आचार) का विकल्प नहीं। आहाहा! प्रवचनसार में ऐसा लिया है, चरणानुयोग (सूचक चूलिका) में। पंच व्यवहार आचार का हो। मैं जानता हूँ, तुम मेरी चीज़ नहीं हो, मेरा स्वरूप नहीं हो, परन्तु जब तक मुझे (पूर्ण) वीतरागता न हो, तब तक तेरे प्रताप से मैं अन्दर में जाऊँ—ऐसा चरणानुयोग में व्यवहार का कथन है। पंचाचार व्यवहार, हों! कहते हैं मुनि कि तुम मेरी चीज़ नहीं। मुझे ख्याल है, परन्तु तुम आये बिना रहते नहीं। तुम्हारे आधार से हम निश्चय में जायेंगे, ऐसा व्यवहार का कथन वहाँ किया है। चरणानुयोग (सूचक चूलिका), प्रवचनसार तीसरा भाग। समझ में आया?

यह आचार। जिसके पास निश्चय आचार है, स्वभाव के आश्रय से निर्विकल्प आनन्द की अनुभूति, आनन्द की अनुभूति आत्मा, आनन्द की अनुभूति, आनन्दमय, उसकी अनुभूति, यह आत्मा का आचरण है। और इस आचरण की भूमिका में ज्ञानाचार, विनय, तप आदि आता है न? विनय से पढ़ना, आचरण, सूत्र, अर्थ... यह सब विकल्प है। व्यवहार है, परन्तु वह व्यवहार वास्तविक तत्त्व नहीं है। वह आचार नहीं, ऐसा कहते हैं। 'नहीं' उसको कहना, उसका नाम व्यवहार है। आहाहा!

मुमुक्षु : .... कहना व्यवहार से, यह बात ही गले उतरती नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : गले उतरती नहीं, सच्ची बात है। वह कहा न मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में। व्यवहार कारण-कार्य को... कारण-कार्य को एक-दूसरे में मिलाकर कहता है। यह मान्यता मिथ्यात्व है। ऐसा लिया है।

मुमुक्षु : पक्की-पक्की बात बताओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या बताते हैं? यहाँ कच्ची तो चलती ही नहीं। आया या नहीं उसमें? पक्की लगाओ पक्की, ऐसा कहते हैं, सेठ!

देखो! क्या कहते हैं? क्या आया? यहाँ २५५ देखो! व्यवहार का श्रद्धान छोड़कर निश्चय का श्रद्धान करना। व्यवहारनय स्वद्रव्य-परद्रव्य को, उसके भाव को कारण-कार्य को किसी को किसी में मिलाकर निरूपण करता है। ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व है। (पृष्ठ) २५५, मोक्षमार्गप्रकाशक। भगवान कहते हैं यह आधार। भगवान कहते हैं, उसका स्पष्टीकरण किया इन्होंने। घर का कुछ कहा है कहीं? समझ में आया? सब शास्त्र के आधार से लिखा है सब। हाँ, है न प्रत्येक में। व्यवहार हेय है, जहर है। व्यवहार वह हेय और निश्चय वह उपादेय है तो उसका अर्थ क्या हुआ? समझ में आया? व्यवहार बात करता है, ऐसा मानना, वह मिथ्यात्व है। देखो! व्यवहारनय स्वद्रव्य-परद्रव्य को... एक द्रव्य में दूसरे द्रव्य की बात करे, एक भाव में दूसरे भाव की बात करे, एक कारण में दूसरे कारण की बात करे, एक कार्य में दूसरे का कार्य बतावे—ऐसा निरूपण करता है। ऐसे श्रद्धान से मिथ्यात्व है। इसलिए उसका त्याग करना और निश्चय यथायोग्य निरूपण करता है, किसी का किसी में मिलान नहीं करता—ऐसे श्रद्धान से समकिती होता है। कितना स्पष्ट कर दिया है, देखो! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, एक ही आचार... आहाहा! **वही एक आवश्यक क्रिया है...** यह सामायिक, चौविसंथो यह सब... आत्मा वीतरागमूर्ति के आश्रय से वीतरागता प्रगट हो, वह आवश्यक क्रिया। आहाहा! कहो, समझ में आया? यह श्रावक को आवश्यक है न छह? वह तो विकल्प है, व्यवहार है। एक ही आवश्यक यह है।

मुमुक्षु : यह तो मुनि के लिये अर्थ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! समकिती को, सबको। सराग की बात करते हैं, नीचे में गौण में सब आ जाते हैं। परन्तु सम्यग्दृष्टि को श्रद्धा में तो ऐसी बात है न उसको। व्यवहार नहीं, व्यवहार नहीं। निश्चय आवश्यक क्रिया तो, हमारे ज्ञानानन्द के आश्रय से हो, वह आवश्यक क्रिया है। यह उसमें है न। यह नियमसार है न, उसमें आया न! '**णियमेण य जं कज्जं**' तीसरी गाथा। '**णियमेण य जं कज्जं**' वहाँ नियम क्या कर्तव्य है? निश्चय की बात है। नियम से करनेयोग्य... देखो! '**णियमेण य जं कज्जं तं णियमं णाणदंसणचरित्तं**' निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का आधार भगवान आत्मा है और वही नियम से करनेयोग्य है। समझ में आया? '**विवरीयपरिहरत्थं**' और निश्चय से विरुद्ध राग को छोड़ने के लिये '**भणिदं खलु सारमिदि**' नियमसार—नियम अर्थात् निश्चयमोक्षमार्ग, सार अर्थात् व्यवहाररहित, उसका नाम नियमसार कहने में आता है। आहाहा! बहुत कठिन। कुन्दकुन्दाचार्यादि दिगम्बर सन्तों ने बहुत स्पष्ट किया है! बहुत स्पष्ट किया है! कुछ मुद्दा रहने नहीं दिया। समझ में आया?

वीतरागी सन्त थे न! वीतराग की बात करे, उसे गुरु कहते हैं। आता है न आत्मावलोकन में। आत्मावलोकन है न दीपचन्दजी (कृत), उसमें श्लोक लिखा है। गुरु किसको कहते हैं? 'मुहु मुहु वीतरागभाव कहे' बारम्बार वीतरागता की ही बात करे, उसको गुरु कहते हैं। आत्मावलोकन। दीपचन्दजी साधर्मीकृत। आहाहा! '**मुहु मुहु**'—बारम्बार वीतराग... वीतराग... वीतरागभाव, वह धर्म; राग, वह धर्म नहीं। बारम्बार कहे, वह गुरु। परन्तु राग से धर्म माने और मनावे, वह कुगुरु है। भाई! परन्तु उसको ऐसा हो। आहाहा! देखो! व्यवहार से लाभ नहीं होता, कहते हैं। यह कहे, व्यवहार से लाभ होता है। कारण है, हेतु है। यह तो निमित्त का ज्ञान कराया है। राग कोई हेतु होता है आत्मा का? वीतराग... यह तो पहले लिया उसमें। पर से निरपेक्ष

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है। राग की अपेक्षा उसको है नहीं। वह तो आया है पहले शुरुआत की गाथा में। समझ में आया? आहाहा! अमृत भरा है, अमृत।

वही एक आवश्यक क्रिया है... कौनसी आवश्यक क्रिया? अवश्य करनेयोग्य वीतरागी पर्याय, वह आवश्यक क्रिया, उसका आधार भगवान आत्मा है। उसकी धारा में से धारा निकलती है। व्यवहार राग से आवश्यक क्रिया होती नहीं। आहाहा! भाई ने कहा न उन निहालचन्दभाई (ने)। निहालचन्दभाई ने यहाँ का एक पढ़ा आत्मधर्म में कि आवश्यक छह नहीं, एक आवश्यक अन्तर का आश्रय करना, वह आवश्यक है। ऐसा सुनकर तो उनको ऐसी लगी, ऐसा आनन्द आया। आहाहा! देखा है उनको? यह आनन्द क्या कहूँ? एक आवश्यक है। अपने स्वभाव का आश्रय लेकर स्थिरता करना, वह आवश्यक है। ... व्यवहार उसमें हो, वह अवश्य करनेयोग्य चीज़ है नहीं। समझ में आया? और **तथा वही एक स्वाध्याय है।** अपने आनन्दकन्द की एकाग्रता करना, वह एक स्वाध्याय है। समझ में आया? स्व-अध्याय—अपना अध्याय। अपना स्वरूप, उसमें वीतरागता प्रगट करना, वह स्वाध्याय है और उस स्वाध्याय का कारण त्रिकाली द्रव्य है। आहाहा! अब टीकार स्वयं.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण १०, रविवार, दिनांक - १५-८-१९७१
श्लोक-१३५, १३६, गाथा-१०१, प्रवचन-९५

यह नियमसार, निश्चय चारित्र अधिकार में अन्तर्भेद प्रत्याख्यान है। उसमें १३५ श्लोक है, कलश १३५।

मम सहज-सुदृष्टौ शुद्ध-बोधे चरित्रे,
सुकृतदुरितकर्मद्वन्दसन्न्यासकाले।
भवति स परमात्मा सम्वरे शुद्ध-योगे,
न च न च भुवि कोऽप्यन्योऽस्ति मुक्त्यै पदार्थः॥१३५॥

सम्यग्दृष्टि धर्मी जीव अपने में क्या विचार करते हैं? जिसको आत्मा शुद्ध अखण्ड आनन्द अभेद का अनुभव होकर प्रतीति हुई, वे ऐसा विचार करते हैं। **श्लोकार्थः—मेरे सहज सम्यग्दर्शन में,...** परमात्मा है। मेरा स्वाभाविक निश्चय... 'सहज' शब्द पड़ा है न? निश्चय है उसका अर्थ। सहज अर्थात् निश्चय। निश्चय सम्यग्दर्शन में मेरा भगवान आत्मा ही समीप है, सम्यग्दर्शन में आत्मा ही आश्रय है। आहाहा! देखो! यह मुद्दे की रकम। रागादि कषाय की मन्दता, वह मेरे सम्यग्दर्शन में कारण है, ऐसा नहीं। सम्यग्दर्शन में देव-गुरु-शास्त्र कारण हैं, ऐसा भी नहीं। कर्म का उपशम—उपशम उसके घर रहा, वह भी कारण नहीं यहाँ तो। मेरा सम्यग्दर्शन अखण्ड आनन्द शुद्ध चैतन्य प्रभु, उसके अवलम्बन से उत्पन्न हुआ। दर्शन में आधार और अवलम्बन तो आत्मा—परमात्मा मेरी चीज़ है। आहाहा!

और **शुद्धज्ञान में...** उसमें 'सहज' शब्द प्रयोग किया है और यहाँ 'शुद्ध' प्रयोग किया है, अर्थात् सम्यग्ज्ञान। शुद्ध अर्थात् सम्यग्ज्ञान, वह निमित्त से, श्रवण से—सुनने से, विकल्प से, विचार-मनन से नहीं होता, ऐसा सम्यग्ज्ञान चैतन्य सम्यक् स्वरूप शुद्ध ज्ञानघन विज्ञानपिण्ड, वह मेरे सम्यग्ज्ञान में आश्रय और आधार है। उससे मेरा सम्यग्ज्ञान प्रगट हुआ है। आहाहा! गुरु के पास कहना कि आपकी कृपा से हमको सम्यग्दर्शन

हुआ (और) अन्दर में ऐसा समझना कि अपने आश्रय से सम्यग्दर्शन (हुआ)—वह माया नहीं? वह कहता था कोई। नाम नहीं लेते। तुम ऐसा कहो... अन्दर में ऐसा समझो कि हमारा सम्यग्ज्ञान-दर्शन हमारे आश्रय से हुआ, बाहर में ऐसा कहना कि गुरु! आपकी कृपा से हुआ है। यह तो माया है। इसलिए निश्चित करो कि निमित्त से उत्पन्न होता है, यह बराबर है। ऐसा है नहीं। समझ में आया?

यह उत्तर खण्ड... उत्तर खण्ड में से आयी थी बात। तुम्हारा उत्तर... अपना परमात्मा ही कारण है। देव-गुरु-शास्त्र ये कारण है ही नहीं। यह तो उपचार से कारण कहा गया है। सम्यग्ज्ञान में वास्तविक कारण भगवान आत्मा है। पूर्णानन्द का नाथ अखण्ड अभेद चीज़ पर की तो कर्ता नहीं, परन्तु राग की कर्ता नहीं और एक समय की पर्याय की कर्ता नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़ है। अपने सम्यग्ज्ञान में अपना भगवान परमात्मा आधार है। अन्त में है, देखो! **वह परमात्मा ही है...** तीसरी लाईन। वही परमात्मा... एक समय में—सेकेण्ड का असंख्यवाँ भाग एक समय—काल, उसमें पूर्णानन्द प्रभु अपना निजात्मा ध्रुव, वही सम्यग्ज्ञान में हेतु है।

लो, उसमें कहा न कि निश्चय का व्यवहार हेतु है। कहाँ कहा? छहढाला। 'हेतु नियत को होई...' कहो, पण्डितजी! नियत (का हेतु) यह तो व्यवहार से कथन है। मेरे सम्यग्ज्ञान में और सम्यग्दर्शन में हेतु अर्थात् कारण तो अपना परमात्मा है, जहाँ नजर डालने से निधान खुलते हैं, यह निधान मेरे सम्यग्ज्ञान में कारण है। आहाहा! शास्त्र में कहाँ ज्ञान है? व्यवहारमोक्षमार्ग विकल्प-राग है, उससे भी होता नहीं, ऐसा कहते हैं। मूलचन्दभाई! व्यवहारमोक्षमार्ग, वह तो राग है, बन्ध का कारण है, परलक्ष्य से... परलक्ष्य से उत्पन्न हुआ है। वह आत्माश्रयी भाव कहाँ है? समझ में आया? सूक्ष्म बात है। भगवान अन्तर द्रव्यस्वभाव में अन्तर्मुख होने से सम्यग्ज्ञान-दर्शन की पर्याय प्रगट होती है। बाहर से होती नहीं। आहाहा!

और मेरे **चारित्र में...** मुनि है न। मेरी स्वरूप की रमणता में, मेरी अतीन्द्रिय आनन्द की मौज में मेरा परमात्मा समीप है। आहाहा! समझ में आया? पंच महाव्रत का विकल्प या २८ मूलगुण का शुभराग, वह मेरे चारित्र में कारण नहीं है। आहाहा! खजाने में कहाँ कमी है कि पर का आश्रय ले? अपना खजाना परिपूर्ण पड़ा है। अतीन्द्रिय ज्ञान,

अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय शान्ति और अतीन्द्रिय प्रभुता—परमेश्वरता। आहाहा! अतीन्द्रिय प्रभुता आत्मा में पूर्ण पड़ी है। उस प्रभुता के आश्रय से मुझे ज्ञान और चारित्र होता है। आहाहा! यह संहनन के कारण—वज्रनाराचसंहनन के कारण केवलज्ञान होता है, मनुष्यपना हो तो केवलज्ञान है, मनुष्यपने में क्षयोपशम मिला तो ही उसको केवलज्ञान होता है—यह सब बात उपचार से कथन है। ऐसा है नहीं। आहाहा! सत्य भगवान सत्यार्थ प्रभु, भूतार्थ—विद्यमान—अस्ति—मौजूदगीवाला पूर्ण तत्त्व अनादि-अनन्त, वही तत्त्व मेरे चारित्र में कारण और हेतु है। देखो! यह निश्चय सत्य की बात। बाकी सब उपचार की व्यवहार की बात। ऐसा मान ले व्यवहार से तो मिथ्यात्व है, ऐसा कहते हैं। पर से होता नहीं। स्व से होता है, उसका तो अनादर करता है। पर से होता नहीं, (परन्तु) पर से होता है, ऐसा मानता है। समझ में आया?

मेरे **सुकृत और दुष्कृतरूपी कर्मद्वन्द्व के संन्यास काल में (अर्थात् प्रत्याख्यान में),...** शुभ और अशुभ जो विकल्प-राग है, वह कर्मद्वन्द्व है। वह कर्म के दो जोड़े हैं। समझ में आया? मेरा नहीं। शुभ-अशुभभाव कर्मद्वंद्व, वह कर्म की दो जोड़ियाँ-दशा है। आहाहा! भावकर्म, हों! धर्म है ही नहीं। उसके संन्यासकाल में... ऐसा कहते हैं। शुभ-अशुभभाव के त्याग के काल में मेरा परमात्मा आश्रय है, आधार है। वैद्यराजजी! ऐसी चीज़ है। यह दवा करे शरीर की। कैप्सूल... आहाहा! यह दवा तो अन्दर की... आहाहा! लागू ही पड़े। उसमें (लागू) न पड़े, ऐसा (है नहीं)। वह (बाहर की दवा) तो लागू न भी पड़े, मर जाये, इन्जेक्शन लगाया और मर गया। बाहर में क्या करे?

वैद्य-डॉक्टर नहीं था बड़ा सर्जन भावनगर में? डॉक्टर था, परन्तु उसकी औरत 'वैद्य' थी। वैद्य... वैद्य। था डॉक्टर, यहाँ सर्जन था भावनगर के बड़े हॉस्पीटल में। ऑपरेशन करता था किसी का। ऐसे बैठ गया। पर का ऑपरेशन करता था, वहाँ अपना हो गया। प्रेम चला गया। ऐसे... यहाँ। स्वयं बैठने जाता है, वहाँ समाप्त हो गया। यहाँ आया था, दो-तीन बार आया था। व्याख्यान में आया था एक बार। वैद्य 'डॉक्टर' कहलाता वैद्य। कैसा? हेमन्तकुमार। हेमन्तकुमार सर्जन। क्या करे? देह की स्थिति पूरी होने का जो समय है, उसमें कोई रख सके? आहाहा! कहते हैं, शुभ और अशुभभाव के त्याग के काल में शरण कौन? आधार कौन? आश्रय कौन? आश्रय परमात्मा मेरी चीज़। मैं

पूर्णानन्दस्वरूप हूँ, उसका आश्रय लेते ही शुभाशुभभाव का त्याग हो जाता है, वह प्रत्याख्यान है। समझ में आया?

और **संवर में और शुद्ध योग में (-शुद्धोपयोग में)...** अपनी वीतरागी संवरदशा और शुद्धोपयोग... शुद्धोपयोग में **वह परमात्मा ही है...** 'परमात्मा ही है' ऐसा लिखा है। दूसरा नहीं। 'ही' है न? '**भवति स परमात्मा**' '**न च न च भुवि कोऽप्यन्योऽस्ति मुक्त्यै पदार्थ:**' आहाहा! अर्थात् **(अर्थात् सम्यग्दर्शनादि सभी का आश्रय—अवलम्बन...** भगवान **शुद्धात्मा ही है);...** शुद्धस्वरूप जो त्रिकाल वही, धर्म की—प्रत्येक धर्म की पर्याय का आश्रय वह शुद्धात्मा है। धर्म की पर्याय में कोई भेद या पर्याय या राग अथवा निमित्त (आश्रय) है ही नहीं। अस्ति-नास्ति की है, देखो! आश्रय शुद्धात्मा ही है। **मुक्ति की प्राप्ति के लिए जगत में अन्य कोई भी पदार्थ नहीं है, नहीं है।** '**न च न च**' यह अनेकान्त किया। ऐसा नहीं कि व्यवहार से भी होता है और निश्चय से भी होता है, वह अनेकान्त है। यह अनेकान्त नहीं, यह तो फुदड़ीवाद हुआ। फुदड़ी समझते हैं न? चक्कर... चक्री। समझ में आया? आहाहा!

मुक्ति अर्थात् अपनी परमानन्द सिद्धदशा की **प्राप्ति के लिए जगत में अन्य कोई भी पदार्थ नहीं है, नहीं है।** तीन लोक के नाथ तीर्थंकर भी मेरी मुक्ति के हेतु नहीं हैं। ऐ सेठ! है या नहीं उसमें? पढ़ा नहीं कभी? ऐसा कि देश-देश की भाषा सीखी है न। देश-देश का भाव अलग है, ऐसा सेठ कहते हैं। देश-देश की भाषा अलग है और देश-देश की श्रद्धा और प्ररूपणा भी अलग-अलग है, ऐसा ये कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! देश-देश में जहाँ जाओ, वहाँ हलुवा तो आटा, घी और गुड़ से ही होता है। यथार्थ देश में तो यह चीज़ है। **मुक्ति की प्राप्ति के लिए जगत में अन्य कोई भी पदार्थ...** आहाहा! सम्मेदशिखर और शत्रुंजय और गिरनार और तीन लोक के नाथ समवसरण में—कोई कारण (नहीं)।

मुमुक्षु : दिव्यध्वनि...

पूज्य गुरुदेवश्री : दिव्यध्वनि आ गयी या नहीं? दिव्यध्वनि नहीं, शास्त्र का वाँचन नहीं, शास्त्र का सुनना सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में कारण नहीं। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : हमारा दिमाग खराब हो गया है जो हम यहाँ आये हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : यथार्थ क्या है, वह समझने आये हो। समझ में आया? भगवान ऐसा कहते हैं... वह तो वीतराग एक ही कहे कि हमारे सन्मुख देखने से तुझे सम्यग्दर्शन नहीं होता। हमारे सन्तों को आहार-पानी देने से—सुपात्र (दान) देने से भी तुझे सम्यग्दर्शन नहीं होता। समझ में आया? यह तो एक वीतराग कहे और वीतराग का श्रद्धावन्त समकिती कहे। दूसरा तो न कहे। आहाहा!

अस्ति-नास्ति किया, देखो! मेरा परमात्मा... श्रद्धा में तो (निश्चित्) करे कि स्वसन्मुख से सब प्राप्त होता है। परसन्मुख से बिल्कुल कुछ भी प्राप्त नहीं होता। धर्म का लाभ, हों! प्राप्त तो होता है परसन्मुखता से राग। समझ में आया? आहाहा! पदार्थ, कोई भी पदार्थ... दो बार नकार किया। '**न च न च**' नहीं रे नहीं। मैं हूँ पूर्ण परमात्मा, ध्रुव नित्यानन्द, सहजानन्द की मूर्ति। यह मेरी प्रत्येक धर्म-वीतरागी पर्यायरूपी धर्म—सम्यग्दर्शन, वीतरागी पर्याय; सम्यग्ज्ञान, वीतरागी पर्याय, चारित्र, वीतरागी पर्याय; प्रत्याख्यान, वीतरागी पर्याय; संवर, वीतरागी पर्याय; शुद्धोपयोग, वीतरागी पर्याय। समझ में आया? उसमें मेरा आत्मा ही कारण है, आश्रय है। दूसरी कोई चीज़ नहीं, नहीं। आहाहा! तीन लोक के नाथ ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वह मुनि कहते हैं (और) ऐसी चीज़ है। १३६ कलश।

क्वचिल्लसति निर्मलं क्वचन निर्मलानिर्मलं,
क्वचित्पुन-रनिर्मलं गहन-मेव-मज्ञस्य यत्।
तदेव निज-बोध-दीप-निहताघ-भूछायकं,
सतां हृदयपद्मसद्मनि च सन्स्थितं निश्चलम्॥१३६॥

'**अज्ञस्य**' अर्थात् अज्ञानी। **श्लोकार्थः—जो कभी निर्मल दिखायी देता है,...** भगवान आत्मा। अपने सन्मुख देखने से तो वह निर्मल देखने में आता है। समझ में आया? अपना निर्मलानन्द शुद्ध प्रभु ध्रुव की ओर देखने से तो पर्याय में भी निर्मलता और वस्तु भी निर्मल दिखती है। **कभी निर्मल तथा अनिर्मल दिखायी देता है,...** द्रव्यस्वभाव से देखो तो निर्मल दिखता है, पर्याय में रागादि है तो अनिर्मल दिखता है। ऐसे प्रमाणज्ञान में दोनों दिखते हैं। आहाहा! अपने में अपने कारण से है; पर के कारण से नहीं—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भगवान आत्मा ज्ञानानन्द प्रभु, उस ओर देखने

से तो निर्मल है और कभी उस ओर भी देखे और राग की ओर देखता है तो निर्मल और अनिर्मल दोनों देखने में आते हैं। समझ में आया? पर्याय में भी निर्मल और अनिर्मल दोनों देखने में आते हैं। देखो! तेरे घर की बात है न! आहाहा!

तेरे द्रव्य की बात... जो अपने सम्यग्दर्शन में देखते हैं तो सम्यग्दर्शन निर्मल, वस्तु निर्मल, परन्तु पर्याय में राग है तो अनिर्मल भी देखने में आता है। देखने में आता है, जानने में आता है। समझ में आया? यह अनिर्मलता पर के कारण से नहीं। अपनी पर्याय में अपराध राग का होता है तो ऐसा भी देखने में आता है। आहाहा! **तथा कभी अनिर्मल दिखायी देता है...** और कभी अकेले राग पर दृष्टि हो तो मलिन ही देखने में आवे। सम्यग्दृष्टि की बात चलती है, हों! आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन में राग नहीं है, वह दूसरी बात है। समझ में आया? वह तो स्वभाव में नहीं है, परन्तु पर्याय में राग है, ऐसा सम्यग्दृष्टि अपनी पर्याय में अनिर्मलता है, वह भी देखता है। अरे! गजब है। समझ में आया?

और इससे अज्ञानी के लिए जो गहन है,... है न? **'गहनमेवमज्ञस्य'** **'गहनमेव-मज्ञस्य'** अज्ञानी को तो गहन है। क्या यह चीज़ है? ऐसी क्या है? वस्तु शुद्ध, गुण शुद्ध, पर्याय में शुद्धता और अशुद्धता—यह क्या? जितनी पर्याय निर्मल हुई, वह शुद्ध, बाकी अशुद्ध, (ऐसे) एक समय की पर्याय में दो भाग।

मुमुक्षु : पर्याय में अशुद्धदशा है या ज्ञाता-दृष्टाभाव है?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञाता-दृष्टा है और मानता है कि मुझमें निर्मलता और अनिर्मलता है, ऐसा वह जानता है। जानता है न? ज्ञाता-दृष्टारूप से, परन्तु अनिर्मलता है, ऐसा जानता है न? अनिर्मलता न हो तो वीतराग हो जाये। यह तो साधक है। साधक है तो बीच में बाधकता है—राग है। मुनि भी कहते हैं कि मेरी पर्याय में अनिर्मलता भी है। पंच महाव्रत का परिणाम, वह मलिनता है। समझ में आया? वह विकल्प है—राग है, अनिर्मल है, अज्ञानी के लिये तो गहन है।

वही—कि जिसने निजज्ञानरूपी दीपक से... वह निज ज्ञानस्वभाव के भान में कि जिसने **पापतिमिर को नष्ट किया है,...** पुण्य-पाप मेरी चीज़ में है नहीं। नष्ट किया है। **वह (आत्मतत्त्व) ही सत्पुरुषों के हृदयकमलरूपी घर में निश्चलरूप से संस्थित**

है। परमात्मा। अन्तर हृदयकमल में पूर्णानन्द का नाथ प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द... अतीन्द्रिय आनन्द का दल ज्ञानीपुरुष के हृदयकमल में ऐसा परमात्मा विराजता है। यह परमात्मा अर्थात् आत्मा। आहाहा! समझ में आया? निश्चल संस्थित है। **हृदयकमलरूपी घर में..** अपना ज्ञानरूपी कमल, उसमें परमात्मा विराजमान है, शुद्ध आत्मा ध्रुव विराजमान है। आहाहा!

अलख नाम धुनी लगी गगन में, मगन भया मन मेरा,
सुरत धारी... सुरत आसन दृढधारी, किया अगम घर डेरा,
देख्या अलख दिदारा....

अलख दिदारा चिदानन्द प्रकाशमूर्ति प्रभु। 'आसन मारी सुरत दृढधारी...' ऐसा कहते हैं। मेरा भगवान मुझमें दिखता है मुझे, ऐसा कहते हैं। उसमें आता है न समयसार नाटक में, नहीं? 'मेरो धनी नहीं दूर देशांतर, मोही में है मोहे सूझत नीकै।' बनारसीदास में है, पहले आ गया है। मेरो धनी है मेरे पास। मेरा धनी कोई शत्रुंज्य में, गिरनार में, समवसरण में है नहीं। 'मोहे सूझत नीकै...' मुझे सूझत नीकै—बराबर समझ में आता है। मेरा परमात्मा तो मैं यह हूँ। मेरा परमात्मा—मेरा धनी कोई बाहर है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

और एक ओर ऐसा भी ले। उसमें आया है न पहले नियमसार में। शुरुआत में, नहीं? कौन सी गाथा? उपाय। उसके प्रताप से मुझे होता है। यह नियमसार है न? इसमें आया न। आप्तमीमांसा में गाथा है, नहीं? वह देखो, १६ पृष्ठ देखो! **इष्टफल की सिद्धि का उपाय सुबोध है।** १६ पृष्ठ। विद्यानन्दिस्वामी श्लोक १२ में कहते हैं कि इष्टफल की सिद्धि का उपाय सुबोध—सम्यग्ज्ञान है। **(मुक्ति की प्राप्ति का उपाय सम्यग्ज्ञान है)।** देखो! एक ही सम्यग्ज्ञान है। आहाहा! **सुबोध सुशास्त्र से होता है।** लो, और यहाँ कहे कि मेरा सम्यग्ज्ञान पर से होता नहीं। वह तो निमित्त से यहाँ कहते हैं। सर्वज्ञ का कहा हुआ सूत्र—शास्त्र, वही अपने ज्ञान में—सम्यग्ज्ञान में निमित्तपने कहने में आता है। देखो! **सुशास्त्र की उत्पत्ति आप्त से होती है।** लो, इष्टफल की सिद्धि का उपाय सम्यग्ज्ञान है और सम्यग्ज्ञान सुशास्त्र से होता है और सुशास्त्री की उत्पत्ति आप्त से होती है।

मुमुक्षु : दोनों कथन आ गये। वहाँ व्यवहार से कर दिया, यहाँ निश्चय से कर दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार जानने में आया, निमित्त है—ऐसा जानने में आया। उससे हुआ नहीं, परन्तु निमित्त है—ऐसा ज्ञान किया। वहाँ (व्यवहार पक्ष) डाला है और यहाँ (निश्चय पक्ष) डाला है। व्यवहार का कथन है।

और **आप्तपुरुष बुधजनों द्वारा पूजनेयोग्य है।** देखो! **उनके प्रसाद के कारण आप्तपुरुष... मुक्ति सर्वज्ञदेव की कृपा का फल होने से...** देखो! निमित्त का ज्ञान कराया है, आहाहा! **सर्वज्ञदेव ज्ञानियों द्वारा पूजनीय हैं, क्योंकि किये हुए उपकार को साधु पुरुष (सज्जन) भूलते नहीं।** जिससे उपकार हुआ है, उसको भूलते नहीं। व्यवहार सिद्ध करते हैं। व्यवहार सिद्ध करते हैं। आहाहा! निश्चय में उत्पन्न हुआ अपने आश्रय से। यहाँ तो (कहा), नहीं, नहीं। आता है न। व्यवहार है न। सर्वज्ञ परमेश्वर ही धर्म के मूलनायक हैं। धर्म की उत्पत्ति सर्वज्ञ परमेश्वर से ही हुई है। समझ में आया?

सुशास्त्र की उत्पत्ति सर्वज्ञ से होती है और सुशास्त्र से सुबोध होता है, सुबोध से मुक्ति की प्राप्ति होती है। इसलिए धर्मात्मा को सर्वज्ञ परमात्मा उपकारी है। देखो! उपकारी हैं। व्यवहार। समझ में आया? निश्चय में अपने से उत्पन्न हुआ है। बताया तो उन्होंने कि यह चीज़ तेरी है, अन्दर में जा तो मिलेगा। ऐसा निमित्त से समझाया है। समझ में आया? यहाँ ऐसा और यहाँ कहे, नहीं, नहीं। विरोध है दोनों में? विरोध नहीं। सुनने में व्यवहार पहले सर्वज्ञ की वाणी... (सर्वज्ञ) एक समय में तीन काल, तीन लोक देखते हैं। ऐसी वाणी—ध्वनि भगवान की, मुनियों की वाणी... यह सब वाणी तो भगवान की है न। यह वाणी सुनने से ज्ञान होने में अपना आश्रय है, परन्तु वे निमित्त बनते हैं। ऐसा निमित्त होता है, दूसरा निमित्त होता नहीं—यह बताने को व्यवहार कहा। आहाहा!

सत्पुरुषों के हृदयकमलरूपी घर में निश्चलरूप से संस्थित है.... शुद्ध भगवान आत्मा उत्पाद-व्यय की पर्याय के पीछे... उत्पाद-व्यय जिसमें से उत्पन्न होता है... लो! फिर (कहे), जिसमें से उत्पन्न होता है! (दूसरी ओर कहे), उत्पाद-व्यय पर्याय से उत्पन्न होता है। क्या अपेक्षा है समझना चाहिए न! समझ में आया? यह और दूसरी बात। यहाँ तो उत्पाद की पर्याय-परिणति द्रव्य में से आती है न! अध्धर से कहाँ से आवे? ऐसा द्रव्य की पर्याय सिद्ध करना है। बाद में (कहे), पर्याय, पर्याय से उत्पन्न होती है; द्रव्य से भी नहीं। वहाँ ऐसा कहा, (वह) किस अपेक्षा से? ध्रुव भगवान में

पड़ी है अनन्त पर्याय शक्तिरूप, उसमें से उस समय—काल में वह पर्याय प्रवर्तती है। समझ में आया? सामान्य ध्रुवरूप से कहो तो ध्रुव से पर्याय हुई नहीं। वह तो ध्रुव में शक्तिरूप अनन्त है, (ऐसा कहो) तो भेद हो गया। समझ में आया? एकरूप त्रिकाल ध्रुव भगवान, वह पर्याय का भी कर्ता नहीं। आहाहा! वह ध्रुव तो पर्याय का भी दाता नहीं। समझ में आया? आहाहा! आत्मा दाता नहीं अपनी निर्मल पर्याय का। गजब बात है! योगसार में आया है। आत्मधर्म आ गया है। सब बात बहुत आ गयी है। ३७ वर्ष हुए।

आत्मा की पर्याय है न वीतरागी सम्यग्दर्शन-ज्ञान, उसका दाता आत्मा नहीं। निमित्त तो नहीं, विकल्प तो नहीं, पर्याय का दाता पर्याय है, द्रव्य भी नहीं। यह तो वीतरागमार्ग। समझ में आया? वह बात चली थी पहले। आत्मधर्म में आ गया है। उसमें योगसार में आया है। योगसार है, अमितगति आचार्य। योगसार नामक अध्यात्म ग्रन्थ में यह बात है कि अपनी धर्मपर्याय का दाता गुरु नहीं, शास्त्र नहीं और (स्वयं) आत्मा भी नहीं। क्योंकि आत्मा तो अखण्ड अभेद है। वह यदि पर्याय दाता हो तो एक-सरीखी होनी चाहिए, परन्तु एक-सरीखी होती नहीं, इसलिए त्रिकालीद्रव्य दाता नहीं है, अपनी पर्याय, पर्याय का दाता है।

मुमुक्षु : तो करना कुछ रहा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करना रहा न पर्याय। योगसार। कहा न, योगसार। गाथा यहाँ कुछ खबर है? बताया था, बताया था। एक बार बताया था कक्षा में। योगसार, अमितगति आचार्य (कृत)। पुस्तक दोपहर को देखेंगे। संवर अधिकार। नीचे इस ओर है। इस पृष्ठ पर, इस ओर। १९। आत्मधर्म में डाला है।

कहते हैं, अरे! मेरा प्रभु मेरे पास है। वह मेरी धर्मपर्याय का आश्रय है। यहाँ आश्रय कहा न, देखो! समझ में आया? '**भवति च परमात्मा संवरेषुभियोगी**' आहाहा! यहाँ तो द्रव्य... द्रव्य... द्रव्य... द्रव्य ध्रुव जो है, बस वही निर्मल वीतरागी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, धर्मध्यान, शुक्लध्यान या केवलज्ञान, सबका आधार, वह द्रव्यस्वभाव है। उससे उत्पन्न होता है। समझ में आया? गहरे... गहरे... उंडे—गहरे जा। आता है न! उसमें आया है। २७ पृष्ठ पर है न? २७ पृष्ठ है न, (श्लोक १७)। **गहरा उतर जाता है...** देखो! **जिनेन्द्र कथित समस्त ज्ञान के भेदों को जानकर जो पुरुष परभावों**

का परिहार करके निज स्वरूप में रहते हुए शीघ्र चैतन्यचमत्कारमात्र तत्त्व में प्रविष्ट हो जाता है—गहरा उतर जाता है... गहरा-गहरा उतर जाता है अन्दर में। उंडा अर्थात् गहरा। समझ में आया? आहाहा!

समुद्र में नीचे मोती हो समुद्र में, तो अन्दर में तल में जाये तो मोती मिले। ऊपर से मोती मिले? समझ में आया? इसी प्रकार भगवान आत्मा उंडे अर्थात् गहराई अन्दर ध्रुव में—अन्दर में गहराई में जाये तो उसको धर्म की—आत्मा की प्राप्ति होती है। आहाहा! गजब बात, भाई! **गहरा उतर जाता है...** देखो! **वह पुरुष परमश्रीरूपी कामिनी का वल्लभ होता है।** परमश्री अर्थात् मुक्तिरूपी कामिनी का वल्लभ होता है अर्थात् मुक्ति की पर्याय उसको कभी छोड़ेगी नहीं। समझ में आया? अपना आत्मा पूर्ण ध्रुव, उसमें अपनी पर्याय को गहराई में अन्दर डालकर—अन्दर गहरे-गहरे जाकर आत्मा प्राप्त जो हुआ, उसको मुक्ति होती है। और वह मुक्तिरूपी स्त्री—कामिनी द्रव्य को कभी छोड़ती नहीं। उत्पन्न हुआ वह हुआ, कभी नाश होता नहीं। आहाहा! श्लोक १३६ हुआ। १०१, गाथा १०१।

एगो य मरदि जीवो एगो य जीवदि सयं।
एगस्स जादि मरणं एगो सिज्झदि णीरओ ॥१०१॥

मरता अकेला जीव एवं जन्म एकाकी करे।
पाता अकेला ही मरण अरु मुक्ति एकाकी करे ॥१०१॥

कोई किसी को सहाय कहीं नहीं। **टीका:—यहाँ (-इस गाथा में), संसारावस्था में और मुक्ति में जीव निःसहाय है, ऐसा कहा है।** संसार में रुलने में भी निःसहाय है। किसी की सहायता है नहीं। आहाहा! और मुक्ति में भी निःसहाय और मुक्ति के कारण में भी निःसहाय है। समझ में आया? **नित्य मरण में...** यह समय-समय में आयुष्य नाश होता है न, उसे नित्यमरण कहने में आता है। पूर्व का कर्म का आयुष्य है न, उसको आवीतिमरण कहते हैं। १७ प्रकार का मरण है। अष्टपाहुड़ में है। उसमें आवीतिमरण... आवीति अर्थात् क्षण-क्षण में, जैसे पानी में तरंग उठती है, वैसे क्षण-क्षण में पूर्व आयुष्यकर्म के रजकण समय-समय में खिर जाते हैं, वह समय-समय में मरण कहने में आता है—आवीतिमरण। आहाहा!

और उस भव सम्बन्धी मरण में... दूसरा, देह छूटने के काल का मरण। अरे! किसी की सहायता के बिना व्यवहार से जीव अकेला मरता है, श्वासोच्छ्वास छूट जाता है। समझ में आया? श्वासोच्छ्वास आदि प्राण छूटने में अकेला है। कोई वहाँ मददगार-सहायक है नहीं। हजारों परिवारी इकट्ठे हुए हों, क्या करे? हिरण के ऊपर जहाँ सिंह की थाप पड़ी, दूसरे हिरण क्या करें? हिरण समझे? मृग। पूँछ लेकर भागे। इसी प्रकार कुटुम्ब-कबीला क्या करे? देखे भाई को। अब नहीं निभेगा, ऐसा लगता है। आहाहा! अब नहीं निभेगा। सगे-सम्बन्धियों को बुलाओ, कुटुम्बियों को बुलाओ। पुत्र-पुत्रियों को बुलाओ। कहो, चन्द्रकान्तभाई! ऐसा कहे, कोई किसी का सगा नहीं—ऐसा कहते हैं। बुलाओं सबको अब, देखें मेरा मरण। आहाहा! सेठ! यह एक दिन आयेगा, हों!

मुमुक्षु : यहाँ तो सब कबूल करके जाते हैं। इस बाउण्ड्री में तो सब कबूल करे....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा होगा? अपना नाम भूलता है कभी? स्वप्न में भी कहे, भगवानदास! (तो कहे), हाँ। नाम भी मुफ्त का है। नाम न ले तो हें... हें... हो जाता है। यह तो आत्मा... वस्तुस्थिति है। आहाहा! संसार में क्षण-क्षण में आयुष्य छूटे और मरण समय...

(अन्य किसी की) सहायता के बिना व्यवहार से (जीव) अकेला ही मरता है;... व्यवहार है न श्वासोच्छ्वास आदि... **तथा सादि-सांत मूर्तिक विजातीय विभावव्यंजनपर्यायरूप नरनारकादिपर्यायों की उत्पत्ति में, आसन्न-अनुपचरित-असद्भूत-व्यवहारनय के कथन से (जीव अकेला ही) स्वयमेव जन्मता है।** कोई साथी नहीं। आहाहा! माता के गर्भ में अकेला आवे, अकेला जन्मे। बाह्य की अपेक्षा बात करते हैं। **स्वयमेव जन्मता है।** आहाहा! **सर्व बन्धुजनों से रक्षण किया जाने पर भी,...** स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, भाई से रक्षण किया जाने पर भी... भाई! क्या करे? डॉक्टर बुलातें हैं, ऐसा करे, ऐसा करे।

ऐसा होने पर भी **महाबल-पराक्रमवाले जीव का अकेले का ही, अनिच्छित होने पर भी, स्वयमेव मरण होता है;...** आहाहा! महापराक्रमी भगवान आत्मा अनन्त पुरुषार्थ का धनी, आहाहा! **सर्व बन्धुजनों से रक्षण किया जाने पर भी,...** पैर दबावे, ऐसा करे, ऐसा करे और यह करे। समझ में आया? पैसा, पैसे के घर में; इज्जत, इज्जत

के घर में; मकान, मकान के घर में; शरीर, शरीर के घर में। अपना अकेला देह छूट जाता है। कोई शरण है नहीं। पोपटभाई!

मुमुक्षु : पीछे की व्यवस्था....

पूज्य गुरुदेवश्री : पीछे की व्यवस्था करे। मूढ़ पीछे कहाँ था वह? पीछे वह कहाँ था? पीछे तो दूसरी चीज़ थी। मूढ़ वही व्यवस्था करने जाता है कि मेरे मरण के बाद ऐसा भोजन करना, ऐसा करना। अब जाने के बाद क्या करना, उसकी तुझे क्या पड़ी है? मर न......।

यह सब शिक्षा कर जाये। हमारे शान्तिभाई थे, वे शिक्षा करके गये थे। शान्तिभाई थे न। ऐसा करना, पैसा अधिक हो तो जीमण करना, घटे तो घर-घर में करना। परन्तु यह होली तेरे किसकी? हाय... हाय! मार डाले जगत को। ठगों की टोली... आयेगा, अभी आयेगा। इसके बाद ही आयेगा कलश। सोमदेव पण्डित। आजीविका (के लिये) ठगों की टोली मिली है सब तुझे। आहाहा! वह लिखा है, देखो! ११९ श्लोक। कहते हैं, **स्वयं किये हुए कर्म के फलानुबन्ध हो स्वयं भोगने के लिये तू अकेला जन्म में तथा मृत्यु में प्रवेश करता है,...** आहाहा! **अन्य कोई (स्त्री-पुत्र-मित्रादिक) सुख-दुःख के प्रकारों में बिल्कुल सहायभूत नहीं होता...** आहाहा! **अपनी आजीविका के लिये (मात्र अपने स्वार्थ के लिये स्त्री-पुत्र-मित्रादिक) ठगों की टोली तुझे मिली है।** यह मर जाता हूँ... परन्तु तुमने लड़के का क्या किया? फलाना कैसे हुआ? मरने तो दे। मर जाता है और तू पूछता है यह। समझ में आया? सब ठगों की टोलियाँ हैं स्त्री और पुत्र। छह व्यक्ति हैं। चार उठावे, एक सामने आगे और एक पीछे। आहाहा!

मुमुक्षु : उसे कहाँ उठाते हैं? वे तो शरीर को उठाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर, परन्तु वह शरीर मेरा माने न! मुझे ऐसा करना, फिर जलाना। किसे जलावे....? किसकी सम्हाल करने जाये? मेरे पीछे ऐसा करना। दाडो... दाडो कहते हैं? जीमण करे न पीछे—मृत्युभोज। हमारे (गुजराती में) दाडो कहते हैं। मेरे पीछे मैसूर और ऐसा करना, ब्राह्मण को एक-एक रुपया देना, ब्राह्मण को भोजन देना। अरे! मर जा न, कहाँ जायेगा। यहाँ कहाँ तेरी पड़ी है? ऐसी मूर्खाई के कोई अलग गाँव होंगे?

मुमुक्षु : आप फरमाते हैं न, रजकण तेरे भटकेंगे....

पूज्य गुरुदेवश्री : भटकेंगे। आहाहा!

अपनी आजीविका के लिये (मात्र अपने स्वार्थ के लिये स्त्री-पुत्र-मित्रादिक) ठगों की टोली तुझे मिली है। आहाहा! बापूजी! मुझे तो इतना चाहिए, हों! इतना तो मेरे लिये तुम्हें करना पड़ेगा। लड़के को पढ़ाना पड़ा या नहीं रामजीभाई को? वह कहीं रोटियाँ खाये किसी की बनायी हुई और यह भी कहीं खाये किसी की बनायी हुई। उसमें कहीं है किसी का कुछ? ऐई चिमनभाई! तुम्हारे क्या है? तुम्हारे लड़के कहीं और तुम कहीं।... गर्मी होती है। लड़के की बहुएँ घर में रही। आये हैं। आहाहा! यह आचार्य कहते हैं, हों! आजीविका (के लिये) ठगों की टोली है सब। आहाहा! ठगमण्डली। लिखा है न, देखो न! '**विटपेटकं**' ऐसा है न! '**विटपेटकं स्वाजीवनाय मिलितं विटपेटकं**' विट अर्थात् आजीविका की टोली है। पेट भरने आये हैं सब। हमारे लिये ऐसा करना, हमारा लिए ऐसा करना। आहाहा!

एक व्यक्ति ९० में मरता था न वह प्रेमचन्द, नहीं? अपने राजकोट। क्या कहलाता है? म्युनिसिपालिटी में था। प्रेमचन्द। म्युनिसिपालिटी में सेक्रेटरी था। बड़ा जाडा शरीर और मेरा चातुर्मास वहाँ ९० के वर्ष में सम्प्रदाय में। अन्त में बुलाने आये। ऐसे मरने की तैयारी। बुलाओ महाराज को। आँख में से आँसू (बहते) जायें। स्त्री ऊपर पूछे, कुछ बाकी रहा है? ....! क्या करते हो परन्तु यह तुम? यह अन्तिम स्थिति, यह श्वास उठा है। और एक ओर रायबहादुर का इल्काब आया। रायबहादुर? रावसाहेब। रावसाहेब का इल्काब वह लेकर आया। मैं वहाँ था, और लेकर आया साईकिल में। रावसाहेब का इल्काब। यहाँ मरने का इल्काब। मर गया। आहाहा! स्त्री सिर पर बैठी उस पर। अरे! क्या करते हो तुम अब परन्तु यह? अब इसकी अन्तिम स्थिति है। इसे कुछ भगवान का स्मरण करो, इसका कुछ भला हो। हमारा इसका क्या हुआ? अनजाना हो न तो पूछ ले। वह गहना कहाँ रखा है? लड़कियों को क्या-क्या देना? लड़के के... मरने दे न अब...। आहाहा! यह सब आजीविका की टोलियाँ इकट्ठी हुई हैं। स्त्री-पुत्र और... कहते हैं।

ठगों की टोली, ऐसा कहा न? '**स्वाजीवनाय मिलितं विटपेटकं**' '**विटपेटकं**' इसका अर्थ किया न! विट... विट... विट अर्थात् हल्के पुरुष। ठग... ठग... आहाहा!

कहो, चिमनभाई! कोई है सगा? यह सब स्वार्थ के टोले हैं सब। आहाहा! शरीर के रजकण–रजकण... ऐसे चले... ऐसे चले... आहाहा! श्वास न लिया जाये तो ऐसे हो। एक व्यक्ति मरता था तो ऐसे रजाई पर पड़ा हुआ, परन्तु रह न सके इतनी पीड़ा। नीचे गोते खाये, ऐसा गोते खाये... ७६ के वर्ष में था। संघवी था कोई संघवी। आहाहा! उसकी पीड़ा... गद्दे में था तो गद्दे में रह न सके, इतनी पीड़ा। ऐसे से ऐसे, ऐसे से ऐसे। आहाहा! अरे भगवान! तुझे अकेले को सहन करना है। अकेले को जन्मना है और अकेले को मरना और अकेले को वर्तमान में रहना है। कोई दोकला—साथ है ही नहीं। क्या करे? आहाहा!

कहते हैं, बन्धुजनो... **सर्व बन्धुजनों से रक्षण किया जाने पर भी, महाबल-पराक्रमवाले जीव...** आहाहा! अनन्त पराक्रम का धनी भगवान एक क्षण में केवलज्ञान लेकर अनन्त वीर्य प्रगट करे, ऐसा प्रभु निःसहाय देह छोड़ता है। आहाहा! **अनिच्छित होने पर भी,...** इच्छा नहीं देह छोड़ने की। देह छोड़ने की इच्छा है? **स्वयमेव मरण होता है;**—देह छूट जाता है। आहाहा! पीछे कहते हैं कि अकेला ही, मुक्ति भी अकेला आत्मा ही करता है, ऐसा कहते हैं। **(जीव) अकेला ही परम गुरु के प्रसाद से प्राप्त...** देखो! ऐसे निमित्त से... परमगुरु ने ऐसा कहा, तेरा आत्मा अखण्डानन्द भगवान की शरण ले—ऐसी निमित्त से बात ली। अकेले परमगुरु के प्रसाद से... अकेला कहाँ लगाना?

स्वात्माश्रित निश्चय शुक्लध्यान के बल से निज आत्मा को ध्याकर रजरहित होता हुआ शीघ्र निर्वाण प्राप्त करता है। अकेला निर्वाण प्राप्त (होता है) वहाँ लेना। **अकेला ही...** आहाहा! **परम गुरु के प्रसाद से प्राप्त...** पहले कहने में आया कि गुरु का उपदेश, स्व-आत्मा आश्रय करने का उपदेश है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? सन्तों का, समकिती का उपदेश **परम गुरु के प्रसाद से प्राप्त स्वात्माश्रित निश्चय शुक्लध्यान...** देखो! अन्त में कहा न शुक्लध्यान। शुक्लध्यान के प्रताप से... स्वात्माश्रित शुक्लध्यान के प्रताप से... आहाहा! **बल से निज आत्मा को ध्याकर...** अपने आत्मा का ध्यान करके... परमात्मा का स्मरणादि नहीं। समझ में आया? **निज आत्मा को ध्याकर रजरहित होता हुआ...** कर्मरूपी रजरहित होकर अकेला निर्वाण को प्राप्त होता है। सिद्धपद की प्राप्ति भी अकेले को होती है, अपने शुक्लध्यान के बल से। संसार में भी अपने अकेले से

जन्म और मरण होता है। कोई तेरा है नहीं। आहाहा! ऐसी दृष्टि द्रव्य के ऊपर कराने को यह बात की है।

इसी प्रकार (अन्यत्र श्लोक द्वारा) कहा है कि:—

स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयं तत्फलमश्नुते।
स्वयं भ्रमति सन्सारे स्वयं तस्माद्विमुच्यते॥

श्लोकार्थ:—आत्मा स्वयं कर्म करता है,... विकारादि परिणाम का कर्ता है। जड़ का कर्ता व्यवहार से कहने में (आया है)। स्वयं कर्म करता है और **स्वयं उसका फल भोगता है,...** विकार भी अपने से भोगता है। **स्वयं संसार में भ्रमता है...** अकेला चौरासी के अवतार में। आहाहा! भरे घर में से निकल जाये अकेला। जाओ, कपड़ा भी नहीं लगाना। जले नहीं, कपड़ा हो तो यह शरीर जले नहीं। कपड़ा छोड़ दो, नहीं तो जलेगा नहीं। आहाहा! गजब बात है। 'रजकण तेरे भटकेंगे, ज्यों भटकती रेत...' रेत... रेत... 'फिर नर तन पाये कहाँ, चेत चेत नर चेत।' यह चला जायेगा, धूल होकर उड़ जायेगा फू... फिर कहेंगे, यह पूर्व में गये, फलाना गये। ऐसी बातें करेंगे बातें। पोपटभाई! आहाहा! अपने लिये कर गये हैं, बापू। पैसा रख गये, इज्जत रख गये। रख गये न? ले गये नहीं न? आहाहा! तेरा भाव तेरे से होता है और तेरे भाव का फल तेरे से भोगा जाता है। मुक्ति भी तेरे से तेरे कारण से होती है, किसी पर के कारण से होती नहीं। आहाहा!

तथा स्वयं संसार से मुक्त होता है। यह लिखा है न? स्वयं संसार में भ्रमता है। देखो! कर्म के, पर के कारण से नहीं; अपने कारण से भ्रमता है, ऐसा आया न? जड़ के कारण से नहीं, पर के कारण से नहीं। स्वयं अपने कारण से संसार में परिभ्रमण करता है। निगोद में भी रहता है तो अपने कारण से रहता है। 'भावकलंक पहुरा' आता है न! कलंक प्रचूर... क्या है? 'भावकलंक पहुरा...' ऐसा है। निगोद में। कलंक प्रचूर भाव। स्वयं से निगोद में रहा है। कोई कर्म से रहा है, ऐसा नहीं। आहाहा! **स्वयं संसार में भ्रमता है तथा स्वयं संसार से मुक्त होता है।** अकेला आत्मा आत्मा के आश्रय से, राग और निमित्त और पर की अपेक्षा बिना, अपने स्वयं से मुक्ति को प्राप्त करता है। उसमें दूसरे की कोई सहायता है ही नहीं। सोमदेव का विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण ११, सोमवार, दिनांक - १६-८-१९७१
श्लोक-१३७, १३८, गाथा-१०२, प्रवचन-९६

(नियमसार) शास्त्र है। निश्चय-प्रत्याख्यान अधिकार चलता है। सोमदेव... पण्डित सोमदेव ने (लिखा हुआ) यह कलश है। १०१ (गाथा) का दूसरा कलश।

एकस्त्व-माविशसि जन्मनि सङ्क्षये च,
भोक्तुं स्वयं स्वकृतकर्मफलानुबन्धम्।
अन्यो न जातु सुख-दुःख-विधौ सहायः,
स्वाजीवनाय मिलितं विटपेटकं ते॥

श्लोकार्थः—स्वयं किये हुए कर्म के फलानुबन्ध को... क्या कहते हैं? स्वयं किये हुए कर्म... पोते—स्वयं आप बाँधे हुए कर्म, उनके फलानुबन्ध को—उनके फल के भोगने में... **स्वयं भोगने के लिए तू अकेला जन्म में तथा मृत्यु में प्रवेश करता है,... 'आविशसि'** है न? समझ में आया? यहाँ तो एकत्व अधिकार है। अकेला कर्म बाँधे और उसके फल के काल में अकेला जन्म और मृत्यु में भोगता है। कोई सहायक है नहीं। मददगार—सहायक कोई नहीं? इस शरीर में जन्म में-मरण में उसमें कोई है साथ? ऐसा कहते हैं। अकेला जन्मता और अकेला (मरता है)। संसार की यह बात है न! संसार अवस्था में भी अकेला स्वाधीन जन्मे और मरे, मोक्ष की अवस्था में भी अकेला शुक्लध्यान से केवलज्ञान पाकर मुक्ति को प्राप्त करे। दूसरा कोई सहायक है नहीं, ऐसा कहते हैं। यह निमित्त से बात की न! मृत्यु और जन्म में अकेला जाये, कोई नहीं मिलता। अपने बाँधे हुए भाव से, जो कर्म हैं, उसे बाँधे स्वयं, फल भोगे स्वयं और उसके फलरूप से जन्म और मृत्यु में स्वयं प्रवेश करे। आहाहा!

अन्य कोई (स्त्री-पुत्र-मित्रादिक) सुख-दुःख के प्रकारों में बिल्कुल सहायभूत नहीं होता;... स्त्री हो, पुत्र हो—वे सब दूर रहकर दुःखरूप भोगे, उसे देखे। क्यों? **अपनी अजीविका के लिये (मात्र अपने स्वार्थ के लिये स्त्री-पुत्र-मित्रादिक) ठगों**

की टोली तुझे मिली है। 'विटपेटकं' ठगमण्डली। स्त्री, पुत्र—लड़का, बहू, यह सब ठग हैं, कहते हैं। हमको पालन करो, हमको रखो, तुम्हारा चाहे जो हो, मरकर चाहे जहाँ जाओ, हमारे कुछ है नहीं स्नानसूतक। बोले नहीं, परन्तु अन्दर मन में यह। तुम हमको बड़ा करो, पालन-पोषण करो, पढ़ाओ-लिखाओ, विवाह करो, मकान दो। छह-छह लड़के या आठ हों तो सबके अलग-अलग मकान, उनके अलग पायखाना, अलग उनके क्या कहलाते हैं नहाने के? बाथरूम। बराबर बनाओ। तुम्हारा चाहे जो हो, परन्तु हमारे लिये करते जाओ। कहो, पोपटभाई! लुटता है। प्रसन्न होकर लुटता है। ठगों की... समझे न? अपने स्वार्थ के लिये स्त्री-कुटुम्ब-मित्रादिक ठगों की टोली तुझे मिली है। यहाँ है न दो का दूर... ? क्या कहा? क्या कहे वह मर गया उसे? ....

एक ब्राह्मण था हलकारा... हलकारा समझे? यह पोस्ट का टपाली... टपाली। टपाली था ब्राह्मण। यहाँ है दो कोस दूर उसकी मृत्यु हुई, वहाँ यादगिरी के लिये छोटी देहरी... छोटी देहरी। हलकारो... हलकारो समझे? यह पोस्टमैन। पोस्टमैन निकला, एक गाँव से दूसरे गाँव जाता था। पहले तो टोकरी बाँधते। हलकारा निकले तो खबर पड़े। टोकरी समझे? घण्टी। वह निकला उसमें एक राजपूत और उसकी बहू दो निकले। राजपूत और उसकी बहू छोटी उम्र की जवान। रात्रि का भाग अन्धेरा, उसमें दोनों निकले। उसमें आये चोर। चोर आये तो बाई को लूटने लगे। वह राजपूत था, वह भाग गया। मार डालेंगे यह तो... स्त्री को छोड़कर भाग गया राजपूत। वहाँ है देहरी है। उसका पति भाग गया। उसमें हलकारा निकला। आहाहा! पोस्टमैन निकला, उसने रक्षण किया बाई का। मैं हूँ, तब तक उसे लूटने नहीं दूँगा। ब्राह्मण, हों! वह हलकारा था न। 'झटा हलकारा' उसका नाम। यहाँ देहरी है यहाँ।

फिर वे लोग जो थे डाकू, उन्होंने हलकारा को मार दिया। उसका पति—बाई का पति तो चला गया। ऐसा कि यह मुझे मार डालेंगे। बाई का चाहे जो हो। देखो! यह ठगों की टोली। यहाँ है। रामपरा की इस ओर है न? रामधरी... रामधरी... नेरा ऊपर एक छोटी-सी देहरी है। वह वहाँ उसे जलाया था। उसे डाकू ने मार दिया। फिर स्त्री के पास वह आया—वह उसका पति आया वापस। डाकू चले गये लेकर। पति आया, (कहे), चल। अरे कायर! यहाँ जब लूटते थे, तब तू यहाँ खड़ा नहीं रहा। अब कैसे

आऊँ? यह तो मैं मेरे इस भाई के साथ मरनेवाली हूँ। वहाँ हलकारा मर गया था न! उसे जलाया वहाँ उसके साथ स्वयं जल गयी। जब लूटते थे, तब खड़ा नहीं रहा। अब लुट जाने के बाद आया तू हमारे पास। सेठ! इसी प्रकार यह सब लुटेरे हैं, यह सब। हिन्दी में नहीं चले। अब गुजराती चले।

मुमुक्षु : दृष्टान्त...

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टान्त-बृष्टान्त नहीं। अब गुजराती चलेगा दस दिन। समझ में आया? यह दृष्टान्त गुजराती में... जिसे गरज हो बीस दिन में आवे। तुम्हारे जैसे प्रमादी पीछे आवे। ऐ सेठ! हमारे सेठ तो सबसे पहले आ जाये। आहाहा!

वहाँ है उसकी छोटी देहरी। पोस्टमैन को डाकू ने मार दिया। इतनी भाषा नहीं समझते? पहले से 'हमको समझ में नहीं आता' ऐसा करके छोड़ दे। आहाहा! मार डाला और वह राजपूत फिर आया उसकी बहू को लेने। कहे, चल। आया, आया। कायर! मार डालते थे, तब तू तो आता नहीं था। यह मेरा भाई है। मेरा रक्षण किया पोस्टमैन ने। पोस्टमैन को जलाया, साथ में स्वयं जल गयी। दोनों जले। यहाँ है। परन्तु यह ठगों की टोली का दृष्टान्त है। आहाहा! यहाँ तुम्हारे हुआ था न भाई! मलूकचन्दभाई हैं या नहीं? नहीं वहाँ मांडळ? मांडळ न? मांडळा। मांडळा में थे... बहुत रोग या कुछ क्या था? सरकार की ओर से कुछ था। रास्ते में कोलेरा हुआ, एक सेठिया के पुत्र को, दो पुत्र। जवान व्यक्ति दोनों लड़के। पाँच-पाँच, छह-छह कोस चलना और साथ में पच्चीस-पच्चीस, पचास सौ-सौ व्यक्ति। तुम थे साथ में? ये साथ में थे। जंगल। कहीं रहा जाये नहीं, छह-छह कोस चले और कुछ साथ में हो चावल या वह खाये। अब करना क्या? उसमें उन दो को कोलेरा निकला, दोनों लड़कों को। जवान लड़के। अब उनके माँ-बाप को क्या? यदि यहाँ रुके तो मर जाये जंगल में।

दोनों लड़कों को वहाँ छोड़कर... जवान लड़के। कोलेरा हुआ, चल सके नहीं। छह-छह कोस चलने का और जंगल। दोनों व्यक्तियों को छोड़कर, पानी का कलश रखकर चलते बने। ऐ माँ! ऐ बापू! हम मर जायेंगे अकेले। बापू कहे, भाई! हम यहाँ रहेंगे तो हम मर जायेंगे। हमारे जाना है। तुम मरगो और हम मरेंगे। अकेले जंगल में दो जवान मनुष्य, हों! कलशा पानी का रखा। एक के बाद एक मर गये होंगे। हो गया। यह

सब ठगों की टोली है। मूलचन्दभाई! देखो! अवसर आया तो माँ-बाप छोड़कर चले गये। सब स्वार्थ के पुतले हैं यह। आहाहा! दूसरे के लड़के अर्थात् हमारे नहीं, ऐसा। सब समझे अन्दर में, हों! बोले नहीं, परन्तु समझे। अपने ठीक लगे वहाँ तक रखना, नहीं तो भले मरे। ऐ पोपटभाई! आहाहा! इन्हें कुत्ते ने काट खाया, क्या हुआ?.....

ठगों की टोली मिली है, कहते हैं। वह कलकत्ता की (बात)। कलकत्ता में छोटी नाव थी नाव। छोटी नाव। घूमने निकले शाम को। दस-बारह लोग होंगे। उसमें माँ-बाप, लड़का साथ में छोटा आठ-दस वर्ष का। वह नाव आगे गयी, वहाँ लड़के ने पैर बाहर निकाला हुआ। पैर निकाला तो उसमें मगरमच्छ ने पैर पकड़ा। नाववाला कहे, लड़के को डाल दो, नहीं तो अभी खींचेगा तो सब मर जायेंगे। बारह व्यक्ति मर जायेंगे वहाँ। नहीं तो मैं डाल देता हूँ। माँ ने उठाया एक हाथ और एक बाप ने उठाया ऐसे हाथ। उठाकर समुद्र में डाला। लड़का चिल्लाहट मचाये। ऐ बापू! ऐ बापू! भाई! क्या करें? कोई उपाय नहीं अब। जरा दो मिनिट यदि रखें तो अभी खींचेगा। मगरमच्छ ने पैर पकड़ा हुआ। बड़ा मगरमच्छ। वह ऐसे खींचे इतनी देर। उन माँ-बाप ने उठाकर डाल दिया समुद्र में जीवित आठ वर्ष के लड़के को। क्या करना? देखो! यह ठगों की टोली। ऐ सेठ!

मुमुक्षु : ऐसा होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा होता ही है। माने राग के कारण। न माने तो... ?

स्त्री को भी जब तक शरीर में हो रक्त आदि, तब तक ठीक। नहीं तो फिर हो गया, जाओ। अब यह मरने का तो है। घर में थोड़ा खर्च है। डॉक्टर को कहे, मेरे पास कुछ नहीं है, हों! ऐसा कहे। हमारे पास कुछ नहीं। यह कुछ कमाकर रख नहीं गये। अरे! मर जाने के बाद खापण चाहिए। खापण समझते हो? कफन। मर जाने के बाद कफन चाहिए। बाई कहे, भाई कफन लाना है, परन्तु मेरे पास कुछ पैसे नहीं हैं। यह कुछ रख नहीं गये। तुम्हें लाना हो तो लाओ, जलाना हो तो जलाओ। अरर! यह सब बना हुआ है। आहाहा! समझ में आया? कफन चाहिए। जिस बेचारे ने कमाकर पैसे दिये, इतने मकान बनाये, फलाना-ढींकणा किया। मर गया, फिर कफन के लिये स्त्री

इनकार करे कि मेरे पास पैसा नहीं है। ऐ सेठ! सब ऐसे हैं, हों! तुमको वर्तमान में ऐसा लगे कि आहा! डालचन्दजी ऐसे हैं, फलाना-ढींकणा है। अन्दर में सब ठग है। शोभालालजी! स्वार्थी है। बस, बात यह है। आहाहा! यहाँ कहते हैं, अपनी आजीविका के लिये ठगों की टोली तुझे मिली है। अब टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं। १३७। १३७ कलश।

और (इस १०१ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं):—

एको याति प्रबल-दुरघाज्जन्म मृत्युं च जीवः,
कर्मद्वन्द्वोद्भवफलमयं चारुसौख्यं च दुःखम्।
भूयो भुङ्क्ते स्वसुखविमुखः सन् सदा तीव्रमोहा-
देकं तत्त्वं किमपि गुरुतः प्राप्य तिष्ठत्यमुष्मिन्॥१३७॥

श्लोकार्थः—जीव अकेला प्रबल दुष्कृत से जन्म और मृत्यु को प्राप्त करता है;... अकेला कठोर कर्म से उदय होकर... यहाँ सब पाँच-पचास लाख इकट्ठे किये हों, वह पाप के परिणाम मरते हुए आवे, आहाहा! कहाँ जाऊँगा? मुझे कुछ सुख नहीं होता। अन्दर में कुछ... मरकर जाये अकेले। **प्रबल दुष्कृत से जन्म और मृत्यु को प्राप्त करता है; जीव अकेला सदा तीव्र मोह के कारण स्वसुख से विमुख होता हुआ...** भगवान आत्मा में आनन्द है, अतीन्द्रिय आनन्द, उसे भूलकर मिथ्यात्व के कारण... तीव्र मोह अर्थात् मिथ्यात्व। **सदा तीव्र मोह के कारण स्वसुख से विमुख होता हुआ कर्मद्वन्द्वजनित फलमय...** कर्म से उत्पन्न होते **(-शुभ और अशुभकर्म के फलरूप) सुन्दर सुख और दुःख को बारम्बार...** सुख अर्थात् यह देव (गति)। स्वसुख से विमुख— अपना सुख आनन्द है, उससे उल्टा। कोई पुण्य करे, स्वर्ग में सुख भोगे (कि जो) अज्ञानरूप से दुःख है, उस आकुलता को भोगे। आहाहा! और नरक में-पशु में जाये, दुःख को बारम्बार भोगे। आहाहा!

जीव अकेला... चाहे जैसे करके... देखो! **किसी भी प्रकार गुरु द्वारा एक तत्त्व को (-चैतन्यतत्त्व को) प्राप्त करके...** वह अकेला है, कोई सहायक—मददगार नहीं

है। आहाहा! चाहे जैसे करके पुरुषार्थ द्वारा... **गुरु द्वारा (किसी भी प्रकार) एक तत्त्व को...** भगवान चैतन्य प्रभु ध्रुव मेरी चीज़ अनादि-अनन्त सनातन सत्य है, ऐसा गुरु के निकट सुनकर... दूसरे प्रकार से ऐसा कहा कि गुरु ने यह उसे ऐसा कहा (कि) तेरा चैतन्यतत्त्व, उसकी शरण में जा। हमारी शरण से तुझे कुछ मिले, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? **एक तत्त्व...** गुरु ने कहा हुआ एक तत्त्व, ऐसा कहना है। भाई! तू चैतन्यमूर्ति प्रभु पूर्णानन्द का धाम, वहाँ आश्रय ले, उसे प्राप्त कर और मुक्ति को अंगीकार कर। आहाहा!

एक तत्त्व को प्राप्त करके उसमें स्थित रहता है। गुरु ने कहा ऐसा ज्ञानानन्दस्वभाव अन्तर में अनुभव में लेकर उसमें स्थिर रहता है। उसमें कोई गुरु आदि सहायक है नहीं। कहो, समझ में आया? 'अरिहंता शरणं' आता है न। लोगुत्तमा, मांगलिक। 'अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं।' यह सब मांगलिक तू है, कहते हैं। कोई अरिहंत-बरिहंत देनेवाला है नहीं। आहाहा! अब १०२ गाथा।

एगो मे सासदो अप्पा णाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा॥१०२॥

नीचे हरिगीत।

दृग्ज्ञान-लक्षित और शाश्वत मात्र-आत्मा मम अरे।
अरु शेष सब संयोग लक्षित भाव मुझसे है परे॥१०२॥

टीका : एकत्वभावनारूप से परिणमित... धर्मी जीव—सम्यग्ज्ञानी... मैं तो अकेला आत्मा अखण्ड ध्रुव चैतन्य हूँ। आहाहा! ऐसा द्रव्यस्वभाव, अपना ज्ञायकभाव, अपना ध्रुवभाव, नित्यानन्द प्रभु में परिणमित, उस ओर के झुकाव से परिणमन हुआ सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का, ऐसे परिणमित **सम्यग्ज्ञानी के लक्षण का यह कथन है।** कैसा हूँ मैं? धर्मी सम्यग्ज्ञानी, सम्यग्दृष्टि कैसा विचार करता है, अपने आत्मा के लिये? **त्रिकाल निरुपाधिक स्वभाववाला...** मेरी चीज़ ज्ञान, आनन्द के सत्त्ववाला तत्त्व, ज्ञान और आनन्द के सत्त्ववाला तत्त्व, त्रिकाल निरुपाधिक स्वभाववाला हूँ। तीनों काल वस्तु के स्वभाव में आवरण, उपाधि है नहीं। ऐसी दृष्टि रखनेवाला **निरावरण-ज्ञानदर्शनलक्षण**

से लक्षित... देखो! मेरे ज्ञान और दर्शन के लक्षण से ज्ञात हो, ऐसा हूँ। कोई विकल्प और निमित्त और संयोग और शास्त्र से ज्ञात हो, ऐसा मैं नहीं। आहाहा!

तीनों काल में उपाधिरहित स्वभाववाला... भाषा देखो! **निरुपाधिक स्वभाववाला...** ऐसा। **होने से निरावरण-ज्ञान...** मैं स्वयं ही निरुपाधि हूँ, ऐसा न लेकर, तीनों काल में आत्मा निरुपाधि स्वभाववाला, ऐसा लिया। समझ में आया? भगवान आत्मा का स्वभाव तीनों काल में निरुपाधि, आवरणरहित.... **निरावरण-ज्ञानदर्शनलक्षण से लक्षित ऐसा जो कारणपरमात्मा...** लो! आहाहा! प्रत्याख्यान के अधिकार में यह (बात है)। पर का त्याग और स्व का ग्रहण। स्व का ग्रहण कौन? कि यह मैं त्रिकाल निरावरणस्वभाववाला मैं, यह मेरी चीज़ और उसे ग्रहण करने का उपादेय है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म। अपनी वर्तमान उपयोग पर्याय को अन्तर्मुख त्रिकाल ज्ञायकभाव में लेने से—झुकाने से एक ही वस्तु ग्रहणयोग्य रह गयी। बाकी दया, दान, व्रत के आदि विकार शुभाशुभभाव, वह संयोगी लक्षण... संयोगी लक्षण है, मेरे स्वभाव लक्षणवाली वह चीज़ नहीं है। आहाहा!

मैं तो जानने-देखने के लक्षणवाला... जानने-देखने के लक्षणवाला स्वभाव त्रिकाल निरुपाधि निरावरण, ऐसा मैं कारणपरमात्मा **वह, समस्त संसाररूपी नन्दन वन के वृक्षों की जड़...** समस्त संसाररूपी नन्दनवन भटकने का... आहाहा! नन्दनवन भटकने का... नन्दनवन में मजा मनाते हैं न लोग। जहाँ-तहाँ भटककर परिभ्रमण में आनन्द मानते हैं। भटकने का वन, ऐसा। नन्दन वन—भटकने का सुन्दर वन। आहाहा! विष्टा का कीड़ा विष्टा में मजा मानता है। मिर्ची होती है न? मिर्ची। उसमें कीड़ा हो। उसमें मजा माने। दृष्टान्त आता है न एक?

एक राजा था। फिर उसे किसी बाबा ने या ज्योतिषी ने कहा कि तुम मरकर यह तुम्हारी कुत्ती है, उसकी (कूख से) बच्चा होनेवाले हो। तुम्हारे घर की जो कुत्ती है न कुत्ती, वहाँ बच्चा होनेवाले हो। कोई लक्षण? तुम मरकर वहाँ जाओगे तो तुम्हारे यहाँ सफेद टीका होगा। यह चमड़ी की निशानी। वह तुम मरकर वहाँ जानेवाले हो। राजा ने हुकम किया कि जब मैं यहाँ मरकर वहाँ होऊँ तो मुझे वहाँ मार डालना। कुत्ती... अरर!

जन्मा वहाँ और बराबर वह टीका। मारने आया तो भागा। पहले कहता था कि मुझे मार डालना। राजा (मरकर) कुत्ती के गर्भ में गया। कुतरी समझते हो? कुत्ता? जन्मा तो मुझे मार डालना। गया, मारने आये वे छुरी लेकर, भागा। जहाँ माने वहाँ मजा ही मानता है वह। आहाहा!

यहाँ तो संसाररूपी नन्दनवन के वृक्ष... नन्दन क्यों कहा? वे वृक्ष सूखते नहीं, ऐसा कहते हैं। नन्दन वन में वृक्ष सूखते नहीं न, इसी प्रकार इस संसार के वृक्ष सूखते नहीं अनादि के। इसलिए नन्दन वन कहा। इन वृक्षों के मूल **आसपास क्यारियों में...** इस मूल के फिरते क्यारियाँ होती हैं न क्यारियाँ पानी डालने को। उसमें **पानी भरने के लिए जलप्रवाह से परिपूर्ण नाली...** जल की नालियाँ संसार के नन्दन वन के वृक्ष सूखे नहीं इसलिए। आहाहा! हरा-भरा रखे चौरासी के अवतार, ऐसा कहते हैं। इसलिए उसे नन्दन वन कहा। नन्दन के वन सूखते नहीं। शाश्वत् है न नन्दन वन। मेरु पर्वत... मेरु पर्वत में नन्दन वन शाश्वत् है। कहते हैं कि ऐसा यह संसार है। जैसे वे वृक्ष सूखते नहीं, उसी प्रकार इस संसार के एक के बाद एक... एक के बाद एक अवतार... हरे-भरे जैसे रहा ही करते हैं अवतार। आहाहा!

उसके फिरते क्यारियों में पानी भरने के लिये जलप्रवाह से परिपूर्ण नालियाँ **समान वर्तता हुआ जो शरीर,...** यह शरीर चार गति में भटकने का यह साधन है, कहते हैं। आहाहा! चार गति में जल के प्रवाह के नालियाँ फूटने का कारण यह शरीर है। इसकी ममता से संसार बढ़ जाता है। आहाहा! **उसकी उत्पत्ति में हेतुभूत द्रव्यकर्म-भावकर्म रहित होने से...** यहाँ सिद्ध तो यह करना है कि शरीर की उत्पत्ति के हेतुभूत जो नन्दनवन के वृक्ष, उसे सूखने नहीं दे, ऐसा शरीर, इस शरीर का कारण द्रव्यकर्म और भावकर्म। इसके बिना का **होने से...** इसके बिना का होता है भगवान (आत्मा) तो। **एक...** आहाहा! है न एक उसमें 'मैं एक' आया था न? ७३ (गाथा समयसार)। यहाँ ऐसा आया 'एक'। **'एगो मे सासदो अप्पा'** इस शरीर का कारण... नालियाँ बहे पानी के भटकने के, ऐसा शरीर, उस शरीर का कारण द्रव्यकर्म और भावकर्म। परन्तु वह द्रव्यकर्म और भावकर्मरहित मैं हूँ। आहाहा! एक हूँ... एक हूँ... मुझमें दूसरा विकल्प द्वैत भी है नहीं। आहाहा!

और वही (कारणपरमात्मा)... भगवान मेरा सच्चिदानन्द प्रभु ध्रुव, नित्यानन्द-स्वभाव, कायम रहा हुआ, रहता है और रहेगा, ऐसी मेरी चीज़ कि कारणध्रुवस्वरूप है, वह **समस्त क्रियाकाण्ड के आडम्बर के विविध विकल्परूप कोलाहल से रहित...** लो! आहाहा! **समस्त क्रियाकाण्ड....** व्यवहार के दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा इत्यादि क्रियाकाण्ड। आहाहा! उनके आडम्बर... यह क्रियाकाण्ड सब आडम्बर है। आहाहा! **आडम्बर के विविध विकल्प...** उसके आडम्बर के विविध विकल्प... ओहोहो! मानो क्या करता हो? यह मैंने किया, मैंने पूजा की, भक्ति की, व्रत पालन किये, मैंने दया पालन की—ऐसे आडम्बर से... **विविध विकल्परूप कोलाहल से रहित...** यह व्यवहार के विकल्प कोलाहल हैं, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? प्रत्याख्यान कहना है न? यह पुण्य के विकल्पों के कोलाहल... झुण्ड—बड़ी सेना है कोलाहल की, ऐसा कहते हैं।

समस्त क्रियाकाण्ड के आडम्बर के विविध विकल्परूप कोलाहल से रहित... कैसी चीज़ है मेरी त्रिकाली? यहाँ त्रिकाली की बात चलती है, हों! त्रिकाली मेरा भगवान ध्रुव जो सम्यग्दर्शन का विषय, आहाहा! जिसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है, जिसके आश्रय से सम्यग्ज्ञान होता है, जिसके अवलम्बन से सम्यक्चारित्र होता है—ऐसा जो मेरा भगवान। आहाहा! **सहजशुद्ध-ज्ञानचेतना को अतीन्द्रियरूप से भोगता हुआ...** क्या कहते हैं? यह द्रव्यस्वभाव तो त्रिकाली अतीन्द्रिय आनन्द को भोगता ही है। आहाहा! आनन्दस्वभाव भगवान आत्मा वह **सहजशुद्ध-ज्ञानचेतना...** देखो! कायमी, हों! अन्दर की। यह पर्याय की बात नहीं। स्वाभाविक शुद्धज्ञानचेतना... एक ली है। उसे अतीन्द्रियरूप से भोगता हुआ... आहाहा! इन्द्रिय बिना त्रिकाली वस्तु शुद्धज्ञानचेतना, उस अतीन्द्रिय के अनुभवरूप से भोगता हुआ... **शाश्वत् रहकर...** मेरा प्रभु इस प्रमाण शाश्वत् है, कहते हैं। आहाहा! गाथा तो देखो!

भगवान आत्मा त्रिकाली अपनी चीज़, उस शुद्धज्ञानचेतना को अतीन्द्रियरूप से अनुभवता... अनुभवता अर्थात् इस रीति से उसका स्वरूप त्रिकाली है। आहाहा! ज्ञान और आनन्द दोनों डाले। स्वाभाविक मेरा स्वरूप असली अविनाशी, शुद्धज्ञानचेतना को—ज्ञानचेतना को,... ज्ञानरूपी चेतना अर्थात् एकाग्र होना, ऐसा त्रिकाल पड़ा ही है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वस्तु त्रिकाली आत्मा, वह मैं हूँ—ऐसा उसे उपादेय ग्रहण

करने के लिये, उसकी व्याख्या ली है यह। ऐसा भोगता हुआ **शाश्वत् रहकर...** मेरा आत्मा शाश्वत् रहता है अकेला। अतीन्द्रिय शुद्धज्ञानचेतना को भोगता हुआ शाश्वत् रहता है। आहाहा! जिसमें इन्द्रिय के भोग नहीं, राग के भोग नहीं। वह सब विकल्प में अज्ञान में है; वस्तु में है नहीं। अरे! सब समकिती की बात है। मुख्यरूप से मुनि की (बात है)। उसके गर्भित में कहा नहीं था? बड़े लड़के को कहे वहाँ दूसरे तीन लड़के उसमें आ जाते हैं।

धर्मी ऐसा अन्दर अनुभव करता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह तो समकिती के लिये भी ऐसा है। चौथे गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि अपना त्रिकाली आत्मा शुद्धज्ञानचेतना को अतीन्द्रियरूप से अनुभव करनेवाली चीज़, वह तो समकिती को वह है। मिथ्यादृष्टि को वह चीज़ है, परन्तु उसकी खबर नहीं है, ऐसा कहते हैं। चीज़ तो ऐसी ही है। अतीन्द्रिय ज्ञान को भोगता हुआ, परन्तु उस भोगनेसहित रहनापना शाश्वत् वह चीज़ है, अज्ञानी को वह है, अभव्य को भी वह है। आहाहा! यहाँ उसे भान नहीं, उसकी बात नहीं लेनी है। यह 'है' ऐसा भान न हो, तब उसे 'है' यह कहाँ से आया? ऐसा कहते हैं। ज्ञान में और अनुभव में यह चीज़ ऐसी है, ऐसे भान बिना, यह चीज़ है, ऐसी सत्ता का स्वीकार कौन करे? समझ में आया? कठिन बात, भाई! बहुत महँगा।

यह सामायिक और प्रौषध में भी ऐसे धर्मी का विचार होता है, ऐसा कहते हैं। बाहर की यह सामायिक करके बैठे दो घड़ी की, वह सामायिक-फामायिक नहीं है। वह तो विकल्प है—राग है। वह सामायिक कैसी? त्रिकाली ज्ञायकभाव, अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभवस्वरूप त्रिकाली, उसके ऊपर आश्रय करके, दृष्टि करके, उसे आधार बनाकर पर्याय प्रगट करे, उसका नाम कारणपरमात्मा का आधार लिया और अनुभव अतीन्द्रिय... स्वयं अतीन्द्रिय भोगता है सुखरूप त्रिकाली वस्तु, उसका आश्रय लेने से धर्मी अतीन्द्रिय आनन्द को भोगता है, वह पर्याय है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव अन्दर न हो तो पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव कहाँ से आयेगा? ऐसा कहते हैं। जगत को (कठिन पड़े)। धर्म समझना और धर्म प्राप्त करना, वह चीज़ इतनी अधिक दुर्लभ हो पड़ी है। कुछ का कुछ मानकर बैठे, उसे यह बात (ऐसी लगती है कि) यह तो आठवें (गुणस्थान) की बात है, यह तो मुनि की बात

है, आठवें गुणस्थान की बात है। यह गुणस्थान जिसे नहीं, उसकी बात है, ले। देवीलालजी! उसमें गुणस्थान ही नहीं। चौदह गुणस्थान से पार है। आहाहा!

मुमुक्षु : विकल्प बिना रह सके तो.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विकल्प हों, परन्तु है दुःखदायक, ऐसा जाने न! पहले निर्णय तो करे कि यह चीज़ ही अनुभवनेयोग्य है, इसके अतिरिक्त कोई विकल्पादि अनुभवनेयोग्य है नहीं। यह आवे तो सही न, वीतराग कहाँ हो गये हैं? आवे, तथापि वह जहर का अनुभव है। आहाहा! चाहे तो शुभराग, परमात्मा तीन लोक के नाथ की भक्ति का राग (हो), वह राग भी जहर का अनुभव है। आवे तब तो यह मुनि निषेध करते हैं। उससे रहित कहा न? देखो न! आता है।

शाश्वत् **मेरे लिए उपादेयरूप से रहता है;...** देखो! भाषा तो देखो! समकिती, सम्यग्ज्ञानी ऐसा विचारता है कि मेरा त्रिकाली भगवान अतीन्द्रिय शुद्ध आनन्द को भोगता हुआ मेरे लिये उपादेयरूप से रहता है। मुझे अंगीकार करनेयोग्य चीज़ कायम रही हुई है। आहाहा! समझ में आया? माल—निधान पड़ा है, ऐसा कहते हैं। मेरे उपादेयरूप से अंगीकार करने के लिये पड़ी हुई चीज़ है। कुछ लेने जाये तो वह चीज़ होवे तो ले न? मेरे लिये पड़ी हुई ही है वह चीज़। आहाहा! समझ में आया? इसके बिना सब थोथा है।

स्वाभाविक शुद्धज्ञानचेतना को... उसके सामने लिया न? क्रियाकाण्ड के विकल्प से रहित, है क्या वह चीज़? सहज शुद्धज्ञानचेतना को अतीन्द्रियरूप से भोगता होगा, ऐसा का ऐसा? आनन्द का ही उसका स्वरूप अनुभव में पड़ा है त्रिकाल, ऐसा जो स्वरूप, वह मेरे लिये शाश्वत् रहा हुआ है। आहाहा! मेरे लिये शाश्वत... देखो! शाश्वत् तो था, अंगीकार किया, तब मेरे लिये यह शाश्वत् रहा हुआ है। सूक्ष्म तो है, भाई! मार्ग तो ऐसा, वीतराग का मार्ग अपूर्व है। सन्तों ने तो जाहिर कर दिया है, प्रसिद्ध किया है। बापू! मार्ग तो यह है, भाई! अन्तर की दृष्टि में ले और उस दृष्टि में लिये बिना तुझे कोई दूसरा शरण है नहीं। आहाहा! **शाश्वत् रहकर...** भाषा क्या करते हैं? यह चीज़ ऐसी की ऐसी शाश्वत् पड़ी है, मेरे लिये वह उपादेय है। मेरे लिये उपादेयरूप से वह रहती

है, ऐसा। अन्दर दृष्टि में त्रिकाली स्वभाव अंगीकार हुआ, वह सम्यग्दर्शन। वह सम्यग्दर्शन। सेठ! मुनि की बात नहीं, यह सम्यग्दर्शन की बात पहली है। आहाहा! मेरे लिये अंगीकार करनेयोग्य शाश्वत् वस्तु पड़ी ही है, कहते हैं। उपादेयरूप से रहती है, वापस ऐसा। आदरनेयोग्य होकर रहती है, ऐसा। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ऐसा उसने निर्णय किया?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अनुभव करते हैं ऐसा। आहाहा! पहले निर्णय करना। विकल्पसहित पहले निर्णय करे। यह तो विकल्परहित उपादेयपने रहा है, ऐसा कहा। इसलिए विकल्प छोड़कर उपादेयपने ग्रहण करता है, उसकी यहाँ बात ली है। शाश्वत् रहा हुआ मेरे लिये, उसमें क्या है? उसमें कहाँ प्रश्न है? मेरे लिये शाश्वत् है, मैं अंगीकार करके बैठा इसलिए। उसकी ही बात है न! पहले से कहा ऊपर, नहीं? सम्यग्ज्ञानी के लक्षण का यह कथन है। **एकत्वभावनारूप से परिणमित सम्यग्ज्ञानी के लक्षण का यह कथन है।** समझ में आया? उसकी चीज़ यह है। ऐसी अनुभव में आयी है कि मेरे लिये शाश्वत् तत्त्व उपादेयपने रहा हुआ है। आहाहा!

जो शुभाशुभ कर्म के संयोग से उत्पन्न होनेवाले शेष बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह,... बाह्य में शरीर, लक्ष्मी आदि (और) अभ्यन्तर में पुण्य-पाप के विकल्प—यह सब परिग्रह **वे सब निज स्वरूप से बाह्य हैं।** ऐसा मेरा निश्चय है। देखो!—**ऐसा मेरा निश्चय है।** कारणपरमात्मा शाश्वत् रही हुई चीज़ है और वह मेरे लिये उपादेयरूप से रहा है। मात्र जानने के लिये रहता है, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। यह प्रत्याख्यान है सही न! अंगीकार करने के लिये वह रहता है। यह रागादि छोड़ने के लिये है। परिग्रह तो सब मेरे स्वरूप से बाह्य है। आहाहा! अरे! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव मेरे स्वरूप से बाह्य है। पंच महाव्रत के विकल्प मेरे स्वरूप से बाह्य है—बाहर है। विकल्प और बाह्य? बाह्य है। मेरे स्वरूप में नहीं है। **ऐसा मेरा निश्चय है।** लो। **'इति मम निश्चयः'** संस्कृत है। इस प्रकार समकिती ने ऐसा निर्णय किया हुआ होता है और समकित प्राप्त करनेवाले को भी पहले ऐसा निर्णय करना चाहिए। यह निर्णय करे, तब उसे यथार्थ उपदेश उपादेय मानने में आता है, यह करे तब। उपदेश तो निमित्त हुआ।

आहाहा! सूक्ष्म बात है। अन्दर ज्ञान की पर्याय में, यह द्रव्य मेरे लिये शाश्वत् रहा हुआ है और वह उपादेयरूप से रहा हुआ है, ऐसा सम्यग्ज्ञान में अन्तर द्रव्य का आश्रय लिया, उसकी यहाँ बात है। आहाहा! समझ में आया?

कितनी बात की है! आहाहा! नन्दनवन। नन्दनवन के वृक्ष नहीं सूखते, इसी प्रकार शरीर की ममता से संसार के वृक्ष नहीं सूखते। यह मेरा... यह मेरा, भूल गया, मेरा चैतन्यशरीर अनादि-अनन्त शाश्वत् भूल गया। यह मेरा अर्थात् इस शरीर को मेरा मानने से उसके चौरासी के अवतार को पोषण मिला उसे। चौरासी के अवतार ताजा रहनेवाले हैं, वे सूखेंगे नहीं अब। ऐसे शरीर से भी मैं भिन्न हूँ, ऐसे शरीर का कारण ऐसा द्रव्यकर्म-भावकर्म... देखो! दो लिये। वे संसार को पोषण देनेवाले, उनसे तो रहित हूँ और ज्ञायक त्रिकालीस्वभाव अतीन्द्रिय आनन्दरूप से भोगनेवाला तत्त्व कायम वह मैं हूँ। आहाहा! दृष्टि को बदल डालना। जो दृष्टि संयोग को, राग को, अल्प ज्ञान-दर्शन-वीर्य की पर्याय को स्वीकार करे, वह मिथ्यात्वभाव है। शाश्वत्भाव वह है। अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव स्वरूप ही त्रिकाल है। उसका स्वीकार, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया?

[अब इस १०२वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:]

अथ मम परमात्मा शाश्वतः कश्चिदेकः,
सहजपरमचिच्चिन्तामणिर्नित्यशुद्धः।
निरवधि-निज-दिव्यज्ञानदृग्भ्यां समृद्धः,
किमिह बहुविकल्पैर्मे फलं बाह्यभावैः ॥१३८॥

कथंचित् एक लिया। गुण है सही न साथ में, (परन्तु) वस्तुरूप से एक।

आहाहा! क्या फल है उसका? टीकाकार पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि भी आह्लाद में आकर वर्णन करते हैं।

श्लोकार्थः—अहो! मेरा परमात्मा शाश्वत है,... लो, मेरा परमात्मा शाश्वत् है। ले! किसने यह निर्णय किया? पर्याय ने। पर्याय कहती है कि मेरा परमात्मा शाश्वत् है।

पर्याय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, वह ऐसा जानती है कि मेरा परमात्मा शाश्वत् है। वह ध्रुव है, वह 'मैं शाश्वत् हूँ' ऐसा कहीं जानता है? जानता है, वह तो त्रिकाली जानपना रहा, परन्तु वर्तमान में जानता है (कौन)? मैं त्रिकाली ध्रुव हूँ, ऐसा वर्तमान में जानता है वह? वर्तमान जाननेवाला है वह ज्ञानपर्याय है। वह ऐसा कहती है कि मेरा परमात्मा शाश्वत् है। मेरा परमात्मा अर्थात् यह ध्रुव, वही मेरा परमात्मा है, ऐसा। आहाहा! मेरी पर्याय का स्वामी—मालिक वह है। आहाहा! ज्ञान मति-श्रुतज्ञान... मति-श्रुतज्ञान की पर्याय से, 'मेरा यह परमात्मा... मेरा यह परमात्मा शाश्वत् है' ऐसा सम्यग्ज्ञान की पर्याय में 'ध्रुव मेरा शाश्वत है' ऐसा निर्णय किया हुआ है।....ध्यान लेना पर्याय में और मानना कि मेरा आत्मा परमात्मा है। आहाहा! पर्याय कहती है कि मेरा आत्मा परमात्मा शाश्वत् है। सम्यग्ज्ञान की वर्तमान पर्याय ऐसा कहती है कि मेरा यह परमात्मा शाश्वत् है। परन्तु तू कौन? वह मैं नहीं, वह मेरा परमात्मा शाश्वत् है। आहाहा!

कथनी तो देखो! एक वाच्य को कहने का वाचक। आहाहा! अकेला मक्खन है। भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप ऐसा मेरा आत्मा अर्थात् परमस्वरूप त्रिकाली। वह त्रिकाली परमस्वरूप, वह मेरा आत्मा शाश्वत् है, वह मेरा आत्मा। आहाहा! पर्याय कहती है कि मैं आत्मा, ऐसा नहीं। (पर्याय) एक अंश है। पर्याय कहे, यह भगवान अन्तर्मुख वस्तु जो है, वह मेरा परमात्मा शाश्वत् है। ऐसा का ऐसा कायम रहता है। कथंचित् **एक है।** द्रव्य की अपेक्षा से एक है। गुणभेद से अनेक है, वस्तु की अपेक्षा से एक है। उसमें एक की व्याख्या साधारण की है। एक ऐसा 'कथंचित्' नहीं लिया था, टीका में।

पर्यायसहित है; परन्तु द्रव्य है, वह एक है, ऐसा कहते हैं। पर्यायसहित, अनेक—अन्य पर्याय—सम्यग्ज्ञान की पर्यायसहित है, परन्तु वह कथंचित् एक और द्रव्य है, वह कथंचित् एक ही है। यह तो मैं सम्मिलित होऊँ तो अनेक कहलाये, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह तो एक ही है। पर्याय विचारती है न! पर्याय में (ऐसा है कि) यह एक है... यह एक है। पर्याय है सही, परन्तु पर्यायसहित हूँ, वह नहीं, अकेला द्रव्य मैं अकेला एक शाश्वत् हूँ। शाश्वत् द्रव्य—वस्तु, उसका निर्णय, उसका ज्ञान, उसके सन्मुख की वेदनदशासहित हो तो द्रव्य और पर्याय अनेक हो जाते हैं। समझ में आया?

परन्तु मैं, 'यह मैं और मेरा' छोड़कर, यह मेरा आत्मा कथंचित् एक है। मेरी अवस्था बिना का वह एक है। आहाहा! समझ में आया? ... टीका भी... कथंचित् एक लिया है, देखो!

सहज परम चैतन्यचिन्तामणि है,... कैसा है भगवान? सहज-स्वाभाविक... सहज-साथ में रहा हुआ भाव, परम चैतन्यचिन्तामणि... परम चैतन्यचिन्तामणि। वह पत्थर चिन्तामणि, वह नहीं, ऐसा। चैतन्यचिन्तामणि... आहाहा! जिसमें एकाग्र होऊँ, उतनी दशा प्रगट होती है, ऐसा वह चिन्तामणि रत्न है। धूल का रत्न है, वह तो भटकने के लिये है। **सहज**—स्वाभाविक **परम चैतन्यचिन्तामणि...** आहाहा! परम चैतन्य-चिन्तामणि... त्रिकाल ध्रुवस्वरूप चैतन्यचिन्तामणि **सदा शुद्ध है...** त्रिकाल शुद्ध है। शुद्ध का भान आया सम्यग्ज्ञान में, तब कहा कि यह त्रिकाल शुद्ध है। शुद्ध का ज्ञान हुआ, तब 'यह त्रिकाल शुद्ध है' ऐसा पर्याय पुकारती है। पर्याय पुकारती है कि त्रिकाल शुद्ध है मेरा आत्मा।

और अनन्त निज दिव्य ज्ञानदर्शन से समृद्ध है। समुच्चय लिया था वह चैतन्य-चिन्तामणि, अब उसके अन्तर्भेद किये। **अनन्त निज दिव्य ज्ञानदर्शन...** कैसा है मेरा त्रिकाली शाश्वत् स्वरूप? दिव्यज्ञान-दर्शन... प्रधान मेरा ज्ञान और दर्शन से समृद्ध हूँ, ज्ञान-दर्शन की समृद्धिवाला हूँ। देखो! ज्ञान-दर्शन की समृद्धिवाला हूँ। लो, यह समृद्धि चाहिए हो तो यह है। समृद्धि-ऋद्धि... अन्तरऋद्धि। बाहर में नहीं कहते? इसे समृद्धि बहुत है। पैसा और बंगला, कीर्ति, फलाना-ढींकणा। इसे समृद्धि बहुत है, कहते हैं न! ऋद्धि... 'ऋद्धि सिद्धि वृद्धि दिसे घट में प्रगट सदा...' वह आता है या नहीं?

ऋद्धि सिद्धि वृद्धि दीसै घटमैं प्रगट सदा,
अंतरकी लच्छिीसौं अजाची लच्छपती हैं।
दास भगवन्तके उदास रहैं जगतसौं,
सुखिया सदैव ऐसे जीव समकिती हैं।

(नाटक समयसार, मंगलाचरण, पद ७)

वापस **अनन्त निज दिव्य ज्ञानदर्शन...** ऐसा। निज दिव्य ज्ञान-दर्शन की समृद्धि

मेरी है, मुझमें। आहाहा! **ऐसा है तो फिर...** ऐसा मैं हूँ तो फिर **बहु प्रकार के बाह्य भावों से मुझे क्या फल है ?** ऐसा कहा न अन्दर ? फल बाह्य संयोगी... कर्ताकर्म में आया न पहले यह। पुण्य और पाप के भाव संयोगीभाव हैं, स्वभावभाव नहीं। जैसे यह चीज़ संयोगी है, आत्मा के ऊपर यह जैसे (द्रव्यकर्म, शरीरादि) संयोगी है, वैसे पुण्य-पाप के भाव त्रिकाली स्वभाव की अपेक्षा संयोगी भाव हैं, उसका स्वभावभाव नहीं। आहाहा! पंच महाव्रत के भाव, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, नामस्मरण के भाव, कहते हैं कि संयोगी है। संयोगी लक्षण उनका है। है न पाठ ? '**सव्वे संजोगलक्खणा**' ऐसा है। वे संयोगी लक्षण है। स्वभावलक्षणवाली चीज़ नहीं। आहाहा!

तो फिर बहु प्रकार के बाह्य भावों से... वह बाह्य में दोनों आ गये। **मुझे क्या फल है ?** अर्थात् कि बाह्यभाव पुण्य, उसमें से क्या फल ? और उसके फलरूप से स्वर्ग मिले, उसमें क्या फल ? ऐसा। पुण्य है, उसमें क्या फल ? और उसके फलरूप से स्वर्ग मिले, उसमें क्या फल ? भगवान परमानन्द की मूर्ति शाश्वत् मेरे लिये तो पड़ी ही है। .... आहाहा! मेरे लिये अंगीकार करने का है। पर को अंगीकार करना, वह तो उसका आत्मा। वह अंगीकार करे तो अंगीकार करनेयोग्य है। मैं तो यह आत्मा हूँ, जिसे त्रिकाल ज्ञानदर्शन की समृद्धि पड़ी है। आहाहा! अनन्त... अनन्त.. ऐसा लिया न वापस ? आहाहा! दुनिया की पाँच करोड़, दस करोड़, अरब फलाना-ढींकणा... वह तो अनन्त निज ज्ञान-दर्शन (से समृद्ध हूँ)। इस कारण से मुझे बाह्यभाव से क्या काम है ? अरे! मेरा प्रयोजनभूत तो भगवान आत्मा है, उसके साथ मुझे तो प्रयोजन है। मेरा प्रयोजन तो द्रव्यस्वभाव के साथ है। मुझे ऐसे विकल्प के साथ क्या प्रयोजन है ? ऐसी अन्तर में रमणता करे, उसे समकित और चारित्र होता है और वह मोक्ष का मार्ग है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण १२, मंगलवार, दिनांक - १७-८-१९७१
गाथा-१०३, प्रवचन-९७

१०२ पूरी की, कलश भी पूरा हो गया। यह राजकोट में छोड़ दी थी, जरा सूक्ष्म पड़े, ऐसा विचार कर। परन्तु यहाँ तो अब लेना चाहिए न सब।

जं किंचि मे दुच्चरितं सव्वं तिविहेण वोसरे।
सामाइयं तु तिविहं करेमि सव्वं णिरायारं॥१०३॥

जो कोई भी दुष्चरित मेरा सर्व त्रयविधि से तजूं।
अरु त्रिविधि सामायिक चरित सब, निर्विकल्पक आचरूँ॥१०३॥

यह प्रत्याख्यान की व्याख्या है। धर्मी को आत्मस्वरूप के अनुभवपूर्वक स्वरूप में स्थिरता हो, आनन्द की उग्रता प्रगट हो, उसे चारित्र का अन्तर्भेद प्रत्याख्यान कहने में आता है। बाहर से अकेले विकल्प से प्रत्याख्यान करे, वह कहीं प्रत्याख्यान नहीं है। अन्तर में आत्मा में अभेदरूप से परिणमन करके जो स्वरूप में लीनता, आनन्द की उग्रता, वीतरागतपर्याय प्रगट हो, उसे यहाँ प्रत्याख्यान..., लो, पोपटभाई! उसे प्रत्याख्यान कहते हैं। वह प्रत्याख्यान कितनी बार किये? देखो! आहाहा!

टीकाः—आत्मगत दोषों से मुक्त होने के उपाय का यह कथन है। आत्मा की पर्याय में जो कुछ पुण्य-पाप के विकल्प हैं, वे दोषस्वरूप हूँ। उनसे निवृत्त होने के उपाय की यह बात है। अब स्वयं अपना नाम लेकर भाव... कहते हैं। **मुझे...** मुनि कहते हैं कि मुझे—**परम-तपोधन को...** मेरे पास परम तपरूपी धन है, अतीन्द्रिय आनन्द की दशारूपी मुझे धन है, ऐसा कहते हैं। कहो, सेठ! यह धूल का धन नहीं, ऐसा कहते हैं। यह धन नहीं। **परम-तपोधन...** वस्तु भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की पूँजी से—मूडी से भरा पड़ा है। उसका आदर करके, उसमें एकाग्र होकर जो कुछ वीतरागी परिणति प्रगट हो, उसे तपरूपी धन कहा जाता है। यह धन। आहाहा! कि जिस धन के मोल में केवलज्ञान प्राप्त होता है। आहाहा!

ऐसे मुझे **भेदविज्ञानी होने पर भी,...** देखो! पहले से बात तो करते हैं कि मैं हूँ तो राग से भिन्न भेदविज्ञानी। सम्यग्दर्शन से (-द्वारा) राग-विकल्प व्यवहार से भिन्न (और) स्वरूप का भान, उसे यहाँ सम्यग्दृष्टि अथवा भेदविज्ञानी कहते हैं। **मुझे परम-तपोधन...** वापस परम तपोधन... साधारण तो चौथे गुणस्थान में भी समकित में ज्ञान और आनन्दादि अल्प अपनी लक्ष्मी-धन प्रगट होता है। श्रावक को—सच्चे श्रावक को भी अन्तर की लक्ष्मी प्रगट होती है। 'अन्तर की लच्छीसों अजाची लच्छपति है...' आता है न समयसार नाटक में? 'अन्तर की लच्छीसों अजाची लच्छपति है...' सेठ! अन्तर की लक्ष्मी। यह तुम्हारी धूल की नहीं, ऐसा कहते हैं। बँगला चाहिए न।

मुमुक्षु : अन्तर की लक्ष्मी से मकान नहीं बनता।

पूज्य गुरुदेवश्री : बनता नहीं। परन्तु यह मकान रहने में काम आता नहीं। वह तो धूल है।... जहाँ अन्तर में रहने का स्थान है, अतीन्द्रिय आनन्द का बँगला अन्दर पड़ा है। आहाहा! 'आनन्दघन प्रभु के घर द्वारे रटण करूं गुणधामा...' ऐसे स्वरूप के नजदीक में—पर्याय में उस गुण को याद करके—स्मरण करके, उसमें रहता हूँ, वह आत्मा की लक्ष्मी और धन है। आहाहा! कि जो साथ में रहती है, साथ आवे और मुक्ति के कारणरूप हो, उसे लक्ष्मी कहा जाता है। आहाहा!

यहाँ तो परम-तपोधन मुनि हैं। परम-तपोधन... उग्र विकाररहित तीन कषाय के अभाव की जो दशा प्रगट हुई है, उसे **भेदविज्ञानी होने पर भी,...** यह क्या कहते हैं? यह राग का विकल्प जो उठता है, उससे भिन्न हूँ। धर्मी की दृष्टि और धर्मी का हृदय, राग से हृदय—ज्ञान भिन्न होता है, तथापि ऐसा भेदविज्ञान... राग से, पुण्य से, विकल्प से भिन्न होने पर भी, **पूर्वसंचित कर्मों के उदय के कारण चारित्रमोह का उदय होने पर...** कुछ चारित्र का उदय आवे, **यदि कुछ भी दुःचारित्र...** हो जाये रागादि का विकल्प **तो उस सर्व को मन-वचन-काय की संशुद्धि से मैं सम्यक् प्रकार से छोड़ता हूँ।** लो, **'वोसरे'** की व्याख्या हुई।

इसमें—स्थानकवासी में बहुत (वोसरे) शब्द प्रयुक्त होता है। ...पेशाब करने जाये वहाँ वोसरे... वोसरे करे। वोसरे (अर्थात्) छोड़ता हूँ, तजता हूँ। यहाँ कहते हैं, मैं आत्मा भेदविज्ञानी शरीर-वाणी से तो भिन्न हूँ, परन्तु दया, दान, व्रत के विकल्प से भी

मैं भिन्न हूँ। उसे यहाँ भेदविज्ञानी और सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। तदुपरान्त, कहते हैं कि मुझे चारित्र भी है। 'तपोधन' कहा है न! वस्तु के स्वरूप में अतीन्द्रिय आनन्द की झलक पर्याय में उग्ररूप से आती है। प्रचुर स्वसंवेदन है। वह है पर्याय—अवस्था। बहुत अतीन्द्रिय वेदन आता है, कहते हैं। ऐसा होने पर भी और राग से भिन्न पड़ा होने पर भी, राग में, चारित्रमोह के उदय में जरा जुड़ जाने से दोष होता है—दुःचारित्र होता है, उस सर्व को छोड़ देता हूँ। मेरे स्वभाव का आश्रय करके उसे छोड़ देता हूँ। प्रत्याख्यान है न इसलिए... आहाहा! उसका नाम प्रत्याख्यान है। भारी ऊँची व्याख्या।

मैं मन-वचन-काय की संशुद्धि से... ऐसा। सम्यक् प्रकार से स्वभाव की शुद्धि से तजता हूँ, ऐसा कहते हैं। अन्तर की संशुद्धि—स्वभाव की निर्मलता द्वारा मैं सम्यक् प्रकार से दोष के भाव को छोड़ता हूँ। देखो! यह दोष छोड़ने की पद्धति। अकेला 'मिच्छामि दुक्कडम्' (कह) दे, इसलिए दोष छूट नहीं जाता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? मन, वचन और काया का अन्तर में उसका लक्ष्य छोड़कर, स्वभाव की संशुद्धि—सम्यक् प्रकार से शुद्धि प्रगट करके, उसे मैं छोड़ता हूँ (अर्थात्) दोष को छोड़ता हूँ।

मुमुक्षु : स्वभाव का आश्रय किया....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोष छूट जाते हैं। दोष उत्पन्न नहीं होते तो छूट जाते हैं, ऐसा कहने में आता है। भाषा तो देखो! उपदेश की शैली कैसी है!

और **'सामायिक' शब्द से चारित्र कहा है,...** ऐसा कहते हैं। 'सामायिक' शब्द है न दूसरे पद में। वह सामायिक कहने से चारित्र की व्याख्या है, ऐसा कहते हैं। वह चारित्र तीन प्रकार का है। **सामायिक, छेदोपस्थापन और परिहारविशुद्धि**—यह तीन प्रकार हैं। **तीन भेदों के कारण तीन प्रकार का है। (मैं उस चारित्र को निराकार करता हूँ।)** अभेद, अखण्ड, निर्विकल्प करता हूँ। **अथवा मैं जघन्य रत्नत्रय को...** व्यवहाररत्नत्रय के (लिये) यहाँ जघन्य शब्द प्रयोग किया है, मानो कि उत्कृष्ट रत्नत्रय का एक छोटा भाग हो। यहाँ जघन्य का अर्थ वास्तव में 'छोटा' ऐसा नहीं, परन्तु हल्का। शब्द ऐसा है जरा। **जघन्य रत्नत्रय को...** व्यवहार देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा... आयेगा नीचे। नौ पदार्थ की श्रद्धा, उसका ज्ञान, आचरण—यह सब व्यवहाररत्नत्रय है। शुभविकल्प का शुभरराग है। आहाहा! कहा न। अभी यह बात की। सुनी या नहीं? उत्कृष्ट में का यह

नहीं, परन्तु कहने में ऐसा आवे। वह 'रत्नत्रय' शब्द प्रयोग किया है न, इसलिए रत्नत्रय में का यह व्यवहाररत्नत्रय जघन्य, ऐसा। परन्तु वह उत्कृष्ट का निर्विकल्पभाव है, उसका यह जघन्य भाव है, ऐसा नहीं। भीखाभाई! क्या है? जघन्य का अर्थ... स्वयं करेंगे। परद्रव्य की श्रद्धा, ऐसा उसका अर्थ करेंगे। समझ में आया?

ऐसे जघन्य रत्नत्रय को मैं **उत्कृष्ट करता हूँ...** अर्थात् कि? अर्थात् कि... ऐसा। अब इसका अर्थ चलता है। **नव पदार्थरूप परद्रव्य के श्रद्धान...** देखो! नौ पदार्थरूप परद्रव्य है वह। आहाहा! उसका श्रद्धान, नौ पदार्थ का **ज्ञान,...** नौ पदार्थ में व्यवहार **आचरणस्वरूप रत्नत्रय साकार...** अर्थात् विकल्पवाला है। वह रागवाला भाव है। **उसे निजस्वरूप के श्रद्धान...** उसमें पदार्थ **परद्रव्य के श्रद्धान-ज्ञान-आचरण...** यहाँ निज स्वरूप के **श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानरूप...** मैं मेरे स्वरूप का, निज स्वरूप का श्रद्धान-ज्ञान और अनुष्ठान ऐसा स्वभाव रत्नत्रय... तब वह विभाव रत्नत्रय हुआ। व्यवहाररत्नत्रय वह विभाव है, विकार है, राग है। उसे छोड़कर, मैं निज स्वरूप का श्रद्धान... मेरा भगवान... अरे! मेरा भगवान... और मैं तथा मेरा—दो आये? भाषा क्या आवे? मेरा स्वरूप... स्व-रूप... निज आनन्द और ज्ञानरूपी मेरी चीज़, वह मैं, उसकी श्रद्धा-निर्विकल्प निश्चय सम्यग्दर्शन। वह व्यवहार सविकल्प था। समझ में आया?

यह व्यवहार-निश्चय के बड़े झगड़े हैं न! जैन संस्कृति में आया है बड़ा बहुत कल बहुत। अब सब सुना, सुनकर यह! वह तो ज्ञान कराया है। ऐसा व्यवहार होता है, परन्तु वह सच्चा रत्नत्रय है, ऐसा नहीं। दोनों सच्चे हों, तब तो दो पड़े किसलिए? व्यवहाररत्नत्रय तो दुःख, विकल्प है। निश्चयरत्नत्रय सुख और आनन्द है। आहाहा! भारी कठिन पड़े। पण्डितों को खलबलाहट हो गयी है। ऐ सेठ!

मुमुक्षु : साकार और निराकार का भेद....

पूज्य गुरुदेवश्री : भिन्न है—भिन्न है। आहाहा! क्या कहा साकार और निराकार? तुम्हारे भाई ने कहा। परन्तु उसका अर्थ तो करो तुम। लो, वहाँ बैठे रहता होगा पैसे में? फट-फट वहाँ पूछते होंगे? तुम्हारे भाई ने कहा, साकार-निराकार का अर्थ क्या किया उसमें? व्यवहार के विकल्प को साकार कहा और स्व के आश्रय से जो निश्चय हो, उसे निर्विकल्प—निराकार कहा। दोनों को—श्रावक को और मुनि को, दोनों को।

सबकी बात है न, यहाँ कहाँ... ? यह कहे निकाल डालो मुनि को। जितना मुनि का आचरण है, उसका एकदेश भाग पंचम गुणस्थान में तो सब लागू पड़ता है। है, पुरुषार्थसिद्धि उपाय में है। मूल गाथा। पुरुषार्थसिद्धि उपाय, अमृतचन्द्राचार्य (कृत)। जितना भाव का लेखन मुनि के लिये है, उसका प्रत्येक का एक अंश—देशभाग श्रावक को होता है। समझ में आया ?

यहाँ तो साकार कहा न ? उसका सविकल्प... विकल्प अर्थात् रागवाला। देव-गुरु की श्रद्धा, नौ तत्त्व की श्रद्धा, नौ तत्त्व का ज्ञान, नव तत्त्व में व्यवहार पंच महाव्रत का विकल्प—यह सब राग है। **निजस्वरूप के श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानरूप...** आहाहा! उसे अब 'छोड़कर' ऐसा नहीं आया, परन्तु अर्थ हुआ कि उस परद्रव्य की ओर के लक्ष्यवाली श्रद्धा थी, ज्ञान था, महाव्रत के परिणाम थे। स्वद्रव्य भगवान आत्मा अन्तर्मुख में प्रभु विराजता पूर्ण परमात्मा स्वयं, ऐसा निज स्वरूप का श्रद्धान, उसका नाम निश्चय सम्यग्दर्शन; निज स्वरूप का ज्ञान—भगवान ज्ञाता-दृष्टा ज्ञायक का ज्ञान। आहाहा! उस स्वसन्मुख देखे बिना वह ज्ञान होता नहीं। आहाहा! स्वसन्मुख की प्रतीति किये बिना वह सम्यग्दर्शन नहीं होता, ऐसा कहते हैं। व्यवहार में पर का लक्ष्य है, निश्चय में स्व का लक्ष्य होता है। स्वाश्रित निश्चय, पराश्रित व्यवहार। अब पराश्रित व्यवहार से निश्चय स्वाश्रित होगा ? ऐसे देखते-देखते ऐसा देखने का प्रगटेगा ? शास्त्र में लेख है, इसलिए लोग उलझते हैं। नियत (का) हेतु है और कारण है और यह है और वह है। वह तो ऐसे देखने का है। ऐसे देखते-देखते अन्दर में उतरा जाता है ? या उसे छोड़ते हुए उतारा जाता है ? समझ में आया ?

मंजिल में चढ़ना हो और बीच में कमरा हो—कमरा, नीचे हो भोंयरा। भोंयरे में उतरते-उतरते ऊपर चढ़ा जाता है ? इसी प्रकार व्यवहाररत्नत्रय तो राग-भोंयरा है... भोंयरा समझते हैं ? भोंयरा कहते हैं न ? तलघर। घर। तल का घर। भोंयरा कहते हैं हमारे। भोंयरा है यहाँ। कमरा और भोंयरा है। यह कमरा है न अन्दर, उसमें नीचे भोंयरा है—तल है। रखा हुआ, परन्तु कुछ काम नहीं आया। बिगड़ जाता है अन्दर। दबता है न। बन्द रहे और गर्मी हो जाये। धूल आवे... पुस्तक-पुस्तक बिगड़ जाये। ...लगा काम सीखने के लिये... अन्तिम कमरे में है न नीचे।

तलघर—नीचे का घर। अब जिसे ऊपर मंजिल पर जाना हो मंजिल पर। कमरे में यहाँ जाना और यहाँ जाना (ऐसे) दो सीढ़ियाँ हैं। जिसे ऊपर जाना हो उसे पहले नीचे उतरकर ऊपर जाया जाता होगा? वहाँ खबर पड़े कि ऐसे नहीं जाया जाता। इसी प्रकार यह जघन्य रत्नत्रय, वह नीचा पर का लक्ष्यवाला भाव है। वह पर के लक्ष्यवाला भाव अन्तर में जाने में कारण होगा? आहाहा! तुम सब ऐसे थे, इसलिए क्या करे वहाँ? सुनकर सब हाँ... हाँ... करते। उसमें... अभी सब गप्प मारते हैं न? व्यवहार से निश्चय होगा, व्यवहार आचरण करते-करते निश्चय प्रगट होगा। परन्तु व्यवहार आचरण तो शुभराग है और उस राग का लक्ष्य तो परदिशा की ओर है। परदिशा देखते-देखते अन्तरदशा—अन्दर में जाने का होगा? या उसे छोड़कर होगा? मूलचन्दभाई! उसकी दिशा अलग है। अरे! उसे घर में जाना, उसमें परघर थोड़ा जा आऊँ तो घर में जाया जाये, ऐसी उसकी मान्यता है। परघर जा आऊँ तो फिर निजघर में जाया जाये। अरे! परघर तो अनन्तबार गया है। परलक्ष्यी शुभ-अशुभभाव तो अनादि के किये हैं। उसके कारण अन्तर में जाना होता होगा? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि जो नौ पदार्थ की परद्रव्य की... मैं जीव हूँ, ऐसा विकल्प आदि, वह नौ पदार्थ परद्रव्य है। एक समय की पर्याय, वह भी परद्रव्य है, परपदार्थ है। त्रिकाल द्रव्य नहीं, ऐसा। नौ पदार्थ लिये न! तो एक समय की पर्याय है, वह भी परपदार्थ है। कहीं निश्चय स्वद्रव्य नहीं, निजद्रव्य नहीं। पर्याय की श्रद्धा, वह भी विकल्प है। व्यवहार आत्मा की श्रद्धा हुई वह। आहाहा! गजब! नौ पदार्थ लिये न? जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। तो जीव भी आया अन्दर। कौन सा जीव? एक समय की पर्यायवाला जीव। उसकी श्रद्धा, वह व्यवहारश्रद्धा है। क्योंकि पर्याय स्वयं व्यवहार है। आहाहा! समझ में आया? अपनी पर्याय भी द्रव्य की अपेक्षा से व्यवहार है। उस व्यवहार की श्रद्धा, रागवाली श्रद्धा है। आहाहा! कठिन बात की है। समझ में आया? पन्नालालजी! यह सब ऐसी बात है, परन्तु .....

मुमुक्षु : शास्त्र में तो परम्परा ऐसा लिखा है....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, लिखा है। परम्परा का अर्थ कि साक्षात् नहीं। फिर छोड़कर होगा। परम्परा, वह व्यवहारनय का कथन है। व्यवहारनय का कथन अर्थात्

कि वह ऐसा नहीं, परन्तु राग को छोड़कर होगा, इसलिए परम्परा कहने में आता है। ऐसी बात है। क्या हो? आता है न, तीर्थंकरप्रकृति परम्परा है। जड़प्रकृति परम्परा कारण होती होगी? परन्तु आती है यह बात। यह सब पकड़कर बैठे हैं...। वह मानो कि कुछ खबर नहीं और सुननेवाले सब मूर्ख हैं, ऐसा मानते हैं। आहाहा! उसे बैठा नहीं। यह बात थी नहीं न।

यह भगवान पूर्णानन्द का नाथ **निज स्वरूप...** भाषा देखो! वह सब परस्वरूप हुआ। नौ पदार्थ की अपेक्षा से परस्वरूप हुआ। आया या नहीं? परन्तु नौ पदार्थ में पर्याय भी परद्रव्य में गयी। आहाहा! एक समय की पर्याय। आहाहा! और नौ की श्रद्धा, वह रत्नत्रय सविकल्प, रागवाली श्रद्धा, विभाववाली श्रद्धा है। आहाहा! पराश्रित व्यवहार। पर के आश्रय से उत्पन्न होनेवाला व्यवहार सम्पूर्ण त्याज्य है। बन्ध अधिकार (कलश १७३, समयसार) में आया है न? त्याज्य है, धर्मी को त्याज्य है। निष्कम्प भगवान आत्मा में स्थित क्यों नहीं रहता? कहते हैं। बन्ध अधिकार में आया है। अन्तर्मुख भगवान विराजता है, जिसकी भेंट से तुझे आनन्द आवे, उस ओर क्यों नहीं देखता? यह वह कहीं साधारण बात है? वह कहीं पढ़ने-गुनने से प्राप्त हो, ऐसा है? वह कहीं चारित्र के व्रत-नियम पाले, तपस्या करे तो प्राप्त हो, ऐसा है? आहाहा!

यहाँ तो **उसे निजस्वरूप के श्रद्धान...** आहाहा! व्यवहार जो विकल्प है... यहाँ तो '*छोड़कर*' पाठ है न गाथा में? '**तिविहेण वोसरे सामाइयं, तु तिविहं**' तीन प्रकार की सामायिक करता हूँ, ऐसा है। '**करेमि सव्वं णिरायारं**' वापस ऐसा। उसे निराकार करता हूँ। अर्थात् इसका अर्थ हुआ कि सविकल्प जो है, उसे छोड़कर मैं मेरे स्वरूप की निराकार—निर्विकल्प श्रद्धा करता हूँ। ऐसा है, उसका अर्थ। समझ में आया? और यह विवाद निकाला है। एक यह और दूसरा यह। व्यवहार और निश्चय दोनों एकसाथ हैं। खोटी बात है। परन्तु एकसाथ (अर्थात्) यहाँ निश्चय हो, तब राग को व्यवहार कहा जाता है। सुन न! 'सहचर' मोक्षमार्गप्रकाशक में लिया है। साथ में होता है और यह द्रव्यसंग्रह में कहा। '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि मुणि णियमा।**' (गाथा ४७)। परन्तु वस्तु को जहाँ मुद्दे की रकम रखी हो, उसके अर्थ की खबर नहीं होती। जहाँ वह व्यवहार हेतु—कारण आया, परन्तु किस अपेक्षा से, उसकी खबर नहीं होती।

मुमुक्षु : जघन्यवादियों के लिये सम्यग्दर्शन हेतु.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, जघन्य सम्यक्त्व अर्थात् विकल्प। यह विकल्प है राग। व्यवहार है ही नहीं। उपचार है न! व्यवहार कहा न! उपचार है, वह सम्यग्दर्शन है ही नहीं, वह तो राग है।

मुमुक्षु : ऐसा पूछते हैं कि सम्यग्दृष्टि को ऐसा व्यवहार होता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, व्यवहार होता है, परन्तु वह व्यवहार बन्ध का कारण, ऐसा जानते हैं। वह कहा न, पहले कहा था कि जघन्य का उत्कृष्ट करना अर्थात् उस व्यवहार को छोड़कर उत्कृष्ट करना—निर्विकल्प करना, ऐसा।

मुमुक्षु : ....थोड़ा शुद्ध तत्त्व अधिक ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ना, ना, यह तो पहला कहा मैंने। जघन्य, वह उत्कृष्ट का भाग है नहीं। पहले कहा था। रत्नत्रय का नाम उसमें आया, वह जघन्य है, ऐसा। जो निर्विकल्प है, उसका भाग है, ऐसा नहीं। परन्तु रत्नत्रय जो है, ऐसे नामवाला वह है, इसलिए ऐसा जघन्य कहने में आता है, बाकी है राग।

मुमुक्षु : रत्नत्रय, वह नाममात्र का रत्नत्रय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नाममात्र का रत्नत्रय है। ऐसा है। यहाँ उसका अर्थ ही करते हैं दोनों का। दोनों का अर्थ है। मैं जघन्यरत्नत्रय को उत्कृष्ट करता हूँ, इसका अर्थ क्या ? ऐसा। जघन्य रत्नत्रय को उत्कृष्ट करता हूँ, इसका अर्थ क्या ? यह अर्थ टीकाकार करते हैं।

कि **नव पदार्थरूप परद्रव्य के श्रद्धान-ज्ञान-आचरणस्वरूप रत्नत्रय साकार (-सविकल्प) है, उसे निजस्वरूप के श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानरूप स्वभावरत्नत्रय के स्वीकार (-अंगीकार) द्वारा निराकार—शुद्ध करता हूँ,...** ऐसा इसका **अर्थ है।** टीकाकार ने उसका स्पष्ट किया है। 'जघन्य को उत्कृष्ट करूँ', इसकी व्याख्या क्या ? ऐसा। उसका अर्थ क्या ? आहाहा! भाषा तो भाई जैसी है, वैसी आवे। बस, यह तो एक विकल्प है। परन्तु निराकार अन्दर निजस्वरूप की श्रद्धा-ज्ञान-आचरण रत्नत्रय... वह **स्वभावरत्नत्रय...** देखो! इसका अर्थ क्या हुआ ? वह जघन्य हुआ, वह विभावरत्नत्रय हुआ। **निराकार—**

शुद्ध करता हूँ। उस विकल्प को छोड़कर भगवान आत्मा पूर्ण स्वरूप का आश्रय लेकर निर्विकल्प-शुद्ध करता हूँ। ऐसा अर्थ है, देखो! अमृतचन्द्राचार्य की शैली डाली है न इन्होंने। चारित्र का अर्थ ऐसा है। प्रवचनसार। आचार्यों ने अनुपम... अमृतचन्द्राचार्य। ऐसे 'स्वसमय' इसका अर्थ है। स्वरूप में रमना, इसका नाम चारित्र है। होवे न! आचार्य अमृतचन्द्राचार्य ने तो गजब काम किया है! ओहो! अद्‌भुत काम! गजब का काम! गजब मोती .... लाये। '**अद्‌भूतादद्‌भूतः**' आता है न कलश में। दोनों शब्द। '**अद्‌भूतम्**' (समयसार कलश २७३) और '**अद्‌भूतादद्‌भूतः**' (कलश २७४) दोनों।

यह व्यवहाररत्नत्रय जो जघन्यरत्नत्रय अर्थात् हल्का रत्नत्रय अर्थात् रागवाला रत्नत्रय। आहाहा! उसे यहाँ छोड़कर, ऐसा कहा न वापस? '**तिविहं करेमि सव्वं णिरायारं**' पाठ में यह है न? मैं निराकार करता हूँ, इसका अर्थ कि यहाँ से हटकर यहाँ जाता हूँ। आहाहा! यह तो और उस दोष को तजता हूँ, यह इसका अर्थ हुआ। यह तो '**सामाइयं तु तिविहं करेमि सव्वं णिरायारं**' ऐसा। वह '**दुच्चरितं सव्वं तिविहेण वोसरे**' उस दोष को तीन प्रकार से छोड़ता हूँ। मन-वचन-काया से। यहाँ '**सामाइयं तु तिविहं करेमि सव्वं णिरायारं**' ऐसा। समझ में आया? अरे! शास्त्र के अर्थ में भी वह अपनी कल्पना से अर्थ करना... महा भगवान की पेढ़ी है यह तो, सर्वज्ञ की पेढ़ी है। उस पेढ़ी को तेली जैसा... अरबोंपति की पेढ़ी में तेली को बैठावे पच्चीस (रुपये) वेतनवाला मुनीम। आवे भी नहीं निकालना, कमाना भी आवे नहीं, देना भी आवे नहीं। निकाले क्या? उलझे, यह क्या है? अपने को कुछ सूझ पड़ती नहीं। लो!

५०० मनुष्य... उस लड़के को पूछे। एक लड़का है आंकडिया में। सेठ! आंकडिया में एक लड़का है। कृषिकार—किसान का लड़का है नौ-दस वर्ष का। करोड़ों-अरबों की गणित बोले। पुस्तक दूसरी पढ़ता था दूसरी (कक्षा)। पूर्व के संस्कार। अमेरली के बड़े अधिकारी आये थे अमलदार-अधिकारी। वे जवाब पूछने लगे। स्वयं पूछा लड़के ने। एक हजार को... इत्यादि ऐसा कुछ बड़ा अंक। १००० ट्रक के... खटारो समझे न यह? ट्रक। एक ट्रक के एक हजार और साढ़े सैंतलीस रुपये, ऐसा कुछ अंक था। एक ट्रक के इतने, तो हजार ट्रक के कितने? वे कहें, कागज-पेन्सिल... अधिकारी कहे, कागज-पेन्सिल से हम कहते हैं। तुम कहो! यह कहे...

जाओ। कृषिकार का लड़का है। साहेब ने बुलाया। पानी... पानी भरता था। खेत में पानी पिलावे न! अपने यह भाई यहाँ जीमने ले आये। दूसरी पुस्तक पढ़ता था। पहली और बीजी—दूसरी। परन्तु हिसाब वह अरबों-अरबों के। सेठ! यह पूर्व के (संस्कार) लेकर आया इतना। अमलदार—अधिकारी ने भी हाथ घिस डाले। ओहो! दूसरा कुछ नहीं आता, धर्म-बर्म का कुछ नहीं। यह एक गणित का... इतना... आया, पढ़कर आया। एक ट्रक के एक हजार और साढ़े सैंतीस और तीन आना तो एक हजार ट्रक के कितने? अधिकार कहे, हम तो सीसपेन... तुम कहो!

यह भी तुम्हारा एक लड़का, नहीं? क्या नाम? वह थोड़ासा बोलता है। ...ऐसे देखो तो साधारण जड़भरत जैसा दिखाई दे। अखबार बेचता है। साधारण दिखता है। यह लोग गृहस्थ प्रमाण लड़के का दिखाव भी नहीं। ऐई! नहीं? इनके भाई का लड़का है। वे बेचारे साधारण हैं। इनके भाई ने दीक्षा ले ली है श्वेताम्बर में। वह तो छोड़कर... जानते हो न उसको? मुम्बई से... १५०० वेतन मासिक। १५०० मासिक वेतन था प्लेन में। मासिक १५०० वेतन छोड़ दिया, नौकरी छोड़ दी। निवृत्ति के लिये (छोड़ दी)। यह पाप का धन्धा करना, इसकी अपेक्षा छोड़ दें। प्लेन में था। हम जब प्लेन में... बराबर... लकड़ी घुमाना है। आहाहा! उसका भाई का लड़का है। साधारण बोले और दिखे। तिथि कहे, २५ वर्ष पहले यह वार और तिथि—तारीख कौनसी थी, वह बोले। भगवानजीभाई पूछे, भगवानजीभाई अपने। भगवानजीभाई मोम्बासावाले—अफ्रीकावाले गृहस्थ व्यक्ति, ५०-६० लाख। उसने पूछा कि मेरा जन्मदिन फलाने वार और तारीख कौनसी थी? वह तुम्हारे लड़के को पूछा था। ऐसे देखो तो कुछ भान नहीं होता। धर्म-बर्म का कुछ भान नहीं होता। उस प्रकार का उघाड़ लेकर आया। क्या है? वह चीज़ क्या है उसमें? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं भगवान, **स्वभावरत्नत्रय...** देखो तो सही! इस पर्याय को स्वभावरत्नत्रय कहा है। त्रिकाल तो द्रव्य है। आहाहा! **स्वभावरत्नत्रय के स्वीकार द्वारा...** देखो! उस द्वारा, ऐसा। उस व्यवहाररत्नत्रय के स्वीकार द्वारा यह नहीं, ऐसा। उसमें यह आ गया। व्यवहाररत्नत्रय सविकल्प है। वह है, इतना कहा बस। अब इस निजस्वरूप के श्रद्धान-आचरण में **स्वभावरत्नत्रय के स्वीकार द्वारा निराकार—शुद्ध**

करता हूँ,... करता हूँ। आहाहा! ऐसा अर्थ है। यह व्यवहार-निश्चय का यह अर्थ है, ऐसा कहते हैं। अब दूसरे प्रकार से। वे तीन डाले थे, उसमें एक अब डाला अब चारित्र।

और (दूसरे प्रकार से कहा जाये तो), मैं भेदोपचार चारित्र को अभेदोपचार करता हूँ... पंच महाव्रत का जो विकल्प है, वह भेदोपचारचारित्र है, वास्तविक चारित्र नहीं। भेदवाला व्यवहारचारित्र कहने में आता है। उसे अभेदोपचार करता हूँ। उस चारित्र को मैं निर्विकल्प स्थिरता करता हूँ। विकल्प से छूटकर निर्विकल्प स्थिरता करता हूँ। **तथा अभेदोपचार चारित्र को अभेदानुपचार करता हूँ...** उस पर्याय को द्रव्य में एकाकार करता हूँ। ज्ञायक में—अभेद में एकाकार करता हूँ। समझ में आया? विकल्प पंच महाव्रत, वह भेदोपचार चारित्र था—व्यवहार। उसे छोड़कर अभेदोपचार अर्थात् आत्मा के तीन प्रकार के उस चारित्र को शुद्ध करता हूँ, वह अभेदोपचार हुआ। उन तीन को—चारित्र को अब अन्तर में अवस्थितरूप निश्चल करता हूँ आत्मा में, वह अभेदानुपचार हुआ। यह तीनों में कहा जाता है। चारित्र की पर्याय निर्मल हो, वह विकल्प है और भेदोपचार चारित्र है और निर्विकल्प हो, वह अभेदोपचार चारित्र। और उस चारित्र में विशेष दृढ़ता आत्मा के साथ जुड़ जाये, वह अभेदानुपचार चारित्र है। आत्मा स्वयं चारित्र, ऐसा अभेद आता है न? व्यवहाररत्नत्रय... उसमें द्रव्यसंग्रह में है न, द्रव्यसंग्रह। इसमें भी आया। परन्तु 'एकाकार करता हूँ' ऐसा। अभेद (अर्थात्) तीन के भेद नहीं रहते, ऐसा। यह राग का भेद अलग, तीन का भेद अलग। वह भेद छोड़कर अभेद करता हूँ अन्दर।

—इस प्रकार त्रिविध सामायिक को (-चारित्र को) उत्तरोत्तर स्वीकृत (अंगीकृत) करने से... लो, उसमें स्वीकृत तो आया तीनों में। पहला व्यवहार, फिर अभेदोपचार, फिर अभेदानुपचार। अर्थ करना हो तो जैसा हो वैसा सब करना चाहिए न! **उत्तरोत्तर स्वीकृत करने से...** ऐसा। पंच महाव्रत का स्वीकार किया व्यवहार से, फिर निश्चय अभेदोपचार—निर्विकल्प चारित्र कहा। और फिर चारित्र आत्मा के साथ उग्ररूप से अभेद हो गया—ऐसे तीन प्रकार के स्वीकार द्वारा, बस। **सहज परम तत्त्व में अविचल स्थितिरूप...** भगवान आत्मा परमपारिणामिकस्वभाव ऐसा सहज परमतत्त्व... आहाहा! भाषा भी समझना कठिन पड़े।

सहज—स्वाभाविक **परमतत्त्व... अविचल स्थितिरूप**—उसमें चलित नहीं, ऐसी स्थितिरूप **सहज निश्चयचारित्र होता है।** लो, स्वाभाविक चारित्र होता है। आहाहा! समझ में आया? **कि जो (निश्चयचारित्र) निराकार तत्त्व में लीन होने से...** निराकार तत्त्व में लीन होने से **निराकार चारित्र है,...** ऐसा कहना है। वीतरागी आत्मा में—निर्विकल्प भगवान आत्मा में—निर्विकल्प त्रिकाली आत्मा है उसमें—लीन होने से निर्विकल्पचारित्र है। उसकी पर्याय में राग बिना का चारित्र है। उसे मोक्ष का मार्ग कहते हैं। समझ में आया? टोडरमलजी ने स्पष्ट स्पष्टीकरण किया है कि मोक्षमार्ग दो नहीं हैं। अब यह मानना नहीं, उनसे अधिक होशियार हो गये। आचार्य की परम्परा क्या खोटी होगी? सच्ची यह है। ... आचार्य की परम्परा रखो। व्यवहार से लाभ नहीं होता, (ऐसा कहने से) आचार्य की परम्परा टूट जाती है (ऐसा अज्ञानी कहते हैं)। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, निराकार तत्त्व भगवान आत्मा ध्रुव परमस्वभावभाव, आत्मा की शाश्वत् अस्तिरूप भाव, अविनाशी स्वभाव, उसमें लीन, वह पर्याय। 'निराकार तत्त्व' वह वस्तु, 'लीन होने से' वह पर्याय। आहाहा! द्रव्य और पर्याय। **निराकार चारित्र है।** उसे वीतरागी निर्विकल्प चारित्र होता है। **निराकार तत्त्व में लीन होने से निराकार चारित्र होता है।** ऐसा कहते हैं। आहाहा! व्यवहारचारित्र में लीन होने से राग होता है। निर्विकल्प... नहीं होती, ऐसा कहते हैं। कठिन बातें! थोड़ी-थोड़ी बात में भी बहुत अन्तर है, यह खबर पड़ती नहीं। ऐसा माना, दोनों सच्चे मोक्षमार्ग हैं, ऐसा लिखा, लो!

अब यहाँ टोडरमलजी कहते हैं, दोनों उपादेय माने, वह भ्रम है। यह भी सच्चा और यह भी सच्चा माने... एक निश्चयमोक्षमार्ग है और एक व्यवहारमोक्षमार्ग है, ऐसा लिखा है। एक निश्चयमोक्षमार्ग है, वह भी सच्चा है, एक व्यवहारमोक्षमार्ग (है, वह भी सच्चा है)—ऐसा माने वह भ्रम है। पण्डित सब नाम धरानेवाले (मानते हैं)। यह जैन संस्कृति इसके लिये निकाला है। आहाहा! अरे! जैन के संस्कार, वह वीतरागभाव के संस्कार होंगे या रागभाव के संस्कार होंगे? आहाहा! कहा न यहाँ, **निराकार तत्त्व...** वस्तु है, वह निराकार तत्त्व है। भगवान वीतरागमूर्ति है। उसके आश्रय से चारित्रदशा प्रगट हो, वह निर्विकल्प अथवा निराकार चारित्र कहने में आता है। पर के लक्ष्य से उत्पन्न हो वह विकल्प, वह राग। वह वास्तव में चारित्र नहीं है। आहाहा!

अभी तो चारित्र किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती और चारित्र लेकर बैठे। लो, पंच महाव्रत वह हमारा चारित्र। **निराकार तत्त्व में लीन होने से निराकार चारित्र....** ऐसा वापस। कारण दिया। निर्विकल्प भगवान आत्मा है। ऐसे आत्मा में लीन होने से—निराकार वीतरागी आत्मा में लीन होने से वीतरागी चारित्र है। निराकार कहो या वीतराग कहो या निर्विकल्प चारित्र कहो। आहाहा! अभी टीका समझने में देरी लगे। घर के अर्थ करे, उलझावे फिर अपने आत्मा को। आहाहा!

इसी प्रकार श्री प्रवचनसार की (अमृतचन्द्राचार्यदेवकृत तत्त्वदीपिका नामक) टीका में (१२वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:—दृष्टान्त (उद्धरण) देते हैं। प्रवचनसार।

द्रव्यानुसारि चरणं चरणानुसारि,
द्रव्यं मिथो द्वयमिदं ननु सव्यपेक्षम्।
तस्मान्मुमुक्षु-रधिरोहतु मोक्षमार्गं,
द्रव्यं प्रतीत्य यदि वा चरणं प्रतीत्य॥

यह चरणानुयोग का उपोद्घात का श्लोक है। प्रवचनसार, चरणानुयोग (सूचक चूलिका)। पहला ज्ञान अधिकार, फिर ज्ञेय अधिकार, पश्चात् चारित्र का (अधिकार)। **श्लोकार्थः—चरण द्रव्यानुसार होता है...** वस्तु जो भगवान आत्मा जैसी निराकार—निर्विकल्प वस्तु है, उसके आश्रय से चरण होता है। द्रव्य के अनुसार चरण होता है। अथवा जो द्रव्यानुसार पर्याय निर्मल प्रगट हुई, उसके प्रमाण में **चरण द्रव्यानुसार होता है...** उसके प्रमाण में उसके विकल्प की मर्यादा हदवाली होती है। फिर से। **चरण द्रव्यानुसार होता है...** चरण अर्थात् पंच महाव्रत के विकल्प की मर्यादा द्रव्यानुसार (अर्थात् जितनी) द्रव्य को अनुसरकर निर्मलता प्रगट हुई है, उसके प्रमाण में वहाँ चरण अर्थात् विकल्प की मर्यादा होती है। समझ में आया? क्या कहा? किसके अनुसार? द्रव्य अर्थात्? यह कहा, याद रहा नहीं। नहीं, नहीं, यह तो यहाँ बहुत ध्यान रखना पड़े, ऐसा है। कहाँ गये? वह नया आवे न!

द्रव्यानुसार अर्थात् जो द्रव्य त्रिकाली है, उसे अनुसरकर होनेवाली जो निर्मल पर्याय, वह निर्मल पर्याय द्रव्यानुसार कहने में आती है। निर्मल पर्याय के प्रमाण में उसे चरण अर्थात् विकल्प की दशा होती है। जैसे कि छठवें गुणस्थान में मुनि को द्रव्य के

आश्रय से जितनी निर्मलता प्रगट हुई, वह निर्मल पर्याय प्रगट हुई, वह द्रव्यानुसार। उस पर्याय के प्रमाण में उसे विकल्प होता है। अर्थात् २८ मूलगुण के, पंच महाव्रत के विकल्प उसकी मर्यादा प्रमाण होते हैं। उसे वस्त्र लेने के, पात्र लेने के, ऐसे विकल्प की मर्यादा (नहीं होती)। जिसे यहाँ द्रव्य के आश्रय से निर्मलता की हद प्रगट हुई है, उसके प्रमाण में उसे विकल्प की हद होती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? इसलिए इनको पूछा न जरा। पोपटभाई! बात तो हो गयी है।

चरण द्रव्यानुसार होता है, इसकी व्याख्या। चरण अर्थात् व्यवहार क्रिया, विकल्प। उस विकल्प की व्यवहारता द्रव्य के आश्रय से जो निर्मलदशा हुई, उसे द्रव्यानुसार (कहे)। द्रव्य के अनुसार... अनुसार करना, ऐसा नहीं। द्रव्य के अनुसार हुई जो निर्मलदशा, उसे द्रव्यानुसार कहा जाता है। निर्विकल्प वीतराग परिणति मुनि के योग्य जो प्रगट हुई है, उसे द्रव्यानुसार कहने में आता है। ऐसी निर्मल अनुसार की परिणति के प्रमाण में उसे विकल्प की हद उस प्रमाण की होती है। अमरचन्दभाई! उसके प्रमाण में विकल्प होते हैं। छठवें गुणस्थान की द्रव्यानुसारी परिणति है और ऐसा कहे कि हमारे वस्त्र लेने का विकल्प है, भोग लेने का विकल्प है। झूठी बात है। उसकी पवित्रता की हद प्रमाण वह विकल्प दूसरे उसे होते ही नहीं। ऐसे ही विकल्प होते हैं पंच महाव्रतादि के, बस। सेठी! समझ में आया?

मुमुक्षु : दोनों साथ रहते हैं, ऐसा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : साथ में हैं न। साथ ही है यह सब। क्या है? परस्पर है न, **'द्रव्यं मिथो...'** एक साथ हैं दोनों। पहले-बाद में कुछ है ही नहीं। यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि चौथे गुणस्थान में जो निर्मलदशा प्रगट हुई, उसके प्रमाण में उसे विकल्प तीन कषायादि के होते हैं। समझ में आया? पाँचवें में (निर्मलदशा) प्रगट हुई, उसे दो कषाय (चौकड़ी) के विकल्प उस जाति के होते हैं। छठवें में (निर्मलदशा) प्रगट हुई, उसे संज्वलन की जाति के विकल्प वे भी उसके हद प्रमाण पंच महाव्रत, २८ मूलगुण के होते हैं। उसे अध:कर्मी—उसके लिये बनाया हुआ आहार लेने का विकल्प या वस्त्र लेने का विकल्प (होता नहीं)। उस निर्मल परिणति के योग्य व्यवहार है, वैसा व्यवहार उसे होता है, परन्तु ऐसा व्यवहार उसे नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कठिन बात भाई!

यह चरणानुयोग की उत्थानिका का श्लोक है। प्रवचनसार। कोई कहे कि हमको मुनिपने की दशा निर्मल प्रगट हुई है, परन्तु भाव में अभी विकल्प हमारे लिये बनाया हुआ आहार लेने का, वस्त्र-पात्र लेने का और किसी को कहना कि भाई यह धन्धा करना... यह तुम्हारे दो घर की कन्या वर बराबर व्यवस्थित विवाह करना, दोनों की शोभा है—ऐसा विकल्प हमारे आवे, यह बात झूठी है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : मन्दिर बनाने के वास्ते....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो कहते हैं, विकल्प है। ऐसा विकल्प हो। भगवान का मार्ग ऐसा है। वे स्वयं भगवान की पूजा करे, वन्दन करे, ऐसा विकल्प आता है। बनाओ और नया (मन्दिर) करो, यह नहीं। उनकी भूमिका प्रमाण में निर्मल भूमिका को द्रव्यानुसार कहा है।

मुमुक्षु : इसलिए महाराज को आदेश देने का अधिकार नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आदेश नहीं, उपदेश का है। भगवान का मार्ग ऐसा था। गृहस्थों ने इस प्रमाण पूजा-भक्ति की है, मन्दिर थे, बने थे और इस प्रमाण पूजा करे—ऐसा विकल्प होता है बस। ऐसा तू कर दे—ऐसा नहीं होता उसे मुनि की हद में। वह विकल्प की मर्यादा ही नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ अटका, लो। कहो, भीखाभाई! ऐसा है। उसमें आया है उसे। ऐसा आवे तो कहे न। आहाहा!

चरण द्रव्यानुसार होता है... अर्थात् कि किसी के अन्दर ब्रह्मचर्य का भाव प्रगट हुआ, स्थिरता का अन्दर, हों! उसे विषय का विकल्प आवे, ऐसा नहीं हो सकता। समझ में आया? इसी प्रकार जिसे चारित्रदशा—निर्मल निर्विकल्पदशा—वीतरागी परिणति प्रगट हुई, उसके अनुसार उसे चरण अर्थात् पंच महाव्रतादि के विकल्पादि की मर्यादा होती है। विशेष राग की उत्पत्ति उसके स्थान में नहीं हो सकती। जैसे सम्यग्दर्शन, उसकी भूमिका में निर्मल परिणति प्रगट हुई तो उसके प्रमाण में उसे सुदेव-सुगुरु-सुशास्त्र की श्रद्धा का उसे विकल्प होता है, परन्तु उसकी भूमिका में कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र की श्रद्धा का राग नहीं हो सकता। समझ में आया? इसी प्रकार पंचम गुणस्थान में जितनी निर्मल परिणति प्रगट हुई है, वह द्रव्यानुसार कहलाती है, उसके प्रमाण में

उसे विकल्प होता है। धन्धादि के विकल्प अमुक हों, परन्तु माँस खाना, शिकार करना या यह लड़ाई करना ऐसा मारो—ऐसे विकल्प की मर्यादा वहाँ नहीं हो सकती। समझ में आया? समझ में आता है? तुमको तो गुजराती कहाँ आती है? आहाहा!

मुमुक्षु : व्यवहार का आश्रय हो गया महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : आश्रय नहीं। आश्रय का अर्थ ऐसा ज्ञान करना—ऐसा कहते हैं। यह आता है। अभी आता है। आश्रय का अर्थ दूसरा है। ऐसा उसे ज्ञान हो कि ऐसी निर्मलता हो, तब ऐसा विकल्प होता है—ऐसा उसे ज्ञान होता है, ऐसा।

और द्रव्य चरणानुसार होता है... देखो! अर्थात् जितने प्रकार का विकल्प हो मुनि को, उसके प्रमाण में वह द्रव्य की शुद्धि भी स्वयं के कारण से होती है। महाव्रत के परिणाम प्रगट हुए और शुद्धि अल्प हो, ऐसा नहीं होता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? देखो! यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि चरण द्रव्य प्रमाण होता है। उसके विकल्प की मर्यादा, उसे शुद्धि जो प्रगट हुई है, उसके प्रमाण में विकल्प की मर्यादा होती है। कोई ऐसा कहे कि हमको वस्त्र-पात्र लेने का राग भी है और निर्मल चारित्र प्रगट हुआ है, तो उसे एक भी तत्त्व की सच्ची श्रद्धा नहीं है। उसे निर्मल परिणति के समय ऐसी निर्मलता हो तो उसके प्रमाण में ऐसा ही राग होता है, (उसकी खबर नहीं) तो उस राग की श्रद्धा और आस्रव की खबर नहीं, उसे संवर की खबर नहीं। अजीव का संयोग इतना ही होता है और दूसरा नहीं होता (—इसकी खबर नहीं) तो अजीव की खबर नहीं। एक वस्त्र-पात्र लेकर साधु नाम धरावे तो निगोद जाये, ऐसा जो कहा है, (उसका कारण कि) उसे नौ तत्त्व की श्रद्धा में अन्तर है। समझ में आया? यह कहीं ककड़ी के चोर को फाँसी की सजा नहीं है। सेठ! क्या कहते हैं? ककड़ी का चोर... (ककड़ी के चारे को कटार मारना), ऐसा नहीं है।

उसे जितनी निर्मलता जिस भूमिका की है, उसके प्रमाण में उसे राग की मन्दता होती है और राग की जिस प्रकार की मन्दता होती है, उसके प्रमाण में अपनी शुद्धता यहाँ होती है। पाँच महाव्रत के विकल्प हों और शुद्धता विशेष न हो—ऐसा नहीं होता। वह द्रव्यलिंगी है, वह अलग वस्तु है। यह सिद्धान्त... यहाँ तो समान दोनों को लेना है।

आहाहा! कठिन बात, भाई! **चरण द्रव्यानुसार होता है** विकल्प की मर्यादा शुद्धि के प्रमाण में होती है। **और द्रव्य चरणानुसार...** शुद्धि की विशुद्धि, यहाँ शुद्धि की विशुद्धि, वह राग की मन्दता के प्रमाण में शुद्धि की विशुद्धि अपने कारण से होती है। समझ में आया? यह बहुत बार तो कहा गया दो-चार, पाँच-छह बार।

—इस प्रकार वे दोनों परस्पर अपेक्षासहित हैं;... देखो! दोनों। दोनों साथ में अपेक्षासहित होते हैं। निश्चय ऐसी निर्मलता प्रगट हुई हो मुनि को, उसके प्रमाण में व्यवहार के विकल्प की मर्यादा होती है और व्यवहार के विकल्प की मर्यादा हो, उसके प्रमाण में शुद्धि होती है। निश्चय-व्यवहार दोनों साथ में होते हैं। आहाहा! अब कोई वाँचे नहीं, विचारे नहीं। यह गाथा जरा ऐसी है। मूलचन्दभाई! प्रवचनसार की गाथा (कलश)। समय हो गया। विशेष कहा जायेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण १३, बुधवार, दिनांक - १८-८-१९७१
श्लोक - १३९, प्रवचन-९८

यह नियमसार, निश्चय प्रत्याख्यान अधिकार चलता है। प्रत्याख्यान अर्थात् राग का त्याग। नास्ति से कथन है, हों! आत्मा में जो राग होता है, उसका त्याग और स्वरूप में अरागी परिणति (हो), उसे प्रत्याख्यान कहा जाता है। यह पचख्खाण। पहले मिथ्यात्व का त्याग और समकित का ग्रहण अर्थात् शुद्ध चैतन्य द्रव्यस्वभाव का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन हो, वह मिथ्यात्व का प्रत्याख्यान है। वह मिथ्यात्व का त्याग है। और फिर रागादि का—अस्थिरता का त्याग और अन्दर स्थिरता की शुद्धि की वृद्धि होना, उसका नाम प्रत्याख्यान, चारित्र की अपेक्षा का प्रत्याख्यान है। अब यहाँ अपने श्लोक अधूरा रह गया है न अभी।

इसी प्रकार श्री प्रवचनसार की (अमृतचन्द्राचार्यदेवकृत तत्त्वदीपिका नामक) टीका में (१२वें श्लोक द्वारा) कहा है किः— क्या कहते हैं?

चरण द्रव्यानुसार होता है... अर्थात्? चारित्र की वीतराग निर्मलता द्रव्यानुसार होती है, ऐसा यदि कहें तो दूसरा (पहलू) नहीं मिलता। समझ में आया? **चरण द्रव्यानुसार होता है...** वहाँ तो .... ऐसा होता है कि चारित्र की वीतरागता, वह द्रव्य के अनुसार होती है। ऐसा यहाँ अर्थ करने जाये तो दूसरा अर्थ नहीं मिलेगा। इसलिए वहाँ ऐसा अर्थ करना कि चरण द्रव्यानुसार होता है अर्थात् कि चैतन्यद्रव्य को अनुसरकर वीतराग परिणति हुई, उसके अनुसार विकल्प की मर्यादा होती है। कहो, देवीलालजी! चरण अर्थात् कि उस-उस गुणस्थान की मर्यादा में, जैसे कि चौथे गुणस्थान में उसे अन्याय और अभक्ष्य और अनुपसेव्य आदि विकल्प नहीं होते। दूसरे विकल्प हों, सुदेव-सुगुरु-सुशास्त्र की श्रद्धा का, भक्ति का वह राग होता है, परन्तु चरण द्रव्यानुसार अर्थात् शुद्ध की परिणति सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ है, उसके प्रमाण में उसे राग की मन्दता का भाव होता है। समझ में आया?

चरण अर्थात् कि वर्तमान राग की मन्दता का भाव चौथे, पाँचवें और छठवें में, यहाँ विशेष छठवें की बात है। उसके प्रमाण में चरण, वह चरण अर्थात् राग की मन्दता द्रव्यानुसार होती है, अर्थात् द्रव्य को अनुसरकर शुद्ध परिणति हुई, उसके प्रमाण में उसका चरण अर्थात् राग की मन्दता होती है।

मुमुक्षु : चरणानुयोग का चारित्र लेना....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। कहा न पहले। समझे नहीं ? यहाँ बाधा आती है। (यहाँ कहा कि) द्रव्य चरणानुसार होता है। द्रव्य चरणानुसार होता है ? शुद्ध परिणति उसके अनुसार द्रव्य होता है ? क्या कहा ? द्रव्य तो द्रव्य ही है। परन्तु यहाँ द्रव्य जो लिया है, वह शुद्ध परिणतिवाला द्रव्य, उस शुद्ध परिणति को द्रव्य लिया है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : पर्याय में क्यों नहीं लिया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ कौनसी पर्याय ? कहा न, शुद्ध परिणति की पर्याय ली है। शुद्ध परिणति...

मुमुक्षु : द्रव्य किसलिए लिया ? यहाँ भूल में पड़ जाते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। यह भूल में... ऐसा शब्द स्पष्ट है न। क्या ? कि चरण द्रव्यानुसार होता है। अर्थात् कि विकल्प की मर्यादा, उसकी शुद्ध परिणति की मर्यादा प्रमाण विकल्प की मर्यादा होती है। ऐसा अर्थ न करे तो फिर दूसरा नहीं मिलता। **द्रव्य चरणानुसार होता है...** अर्थात् वस्तु त्रिकाली चारित्र की परिणति की अपेक्षा से रहती है, ऐसा है ? ऐसा नहीं है। द्रव्य तो द्रव्य ही है। द्रव्य तो, निगोद की दशा हो तो भी द्रव्य तो द्रव्य ही है और सिद्ध की दशा हो तो भी द्रव्य तो द्रव्य ही है। यह यहाँ बात नहीं है। समझ में आया ?

यहाँ तो पर्याय की राग की मन्दता की मर्यादा इतनी होती है कि जितनी यहाँ द्रव्य के आश्रय से शुद्ध परिणति प्रगट हुई, उसके प्रमाण में (होती है)। उस शुद्ध परिणति में द्रव्य लिया है। पण्डितजी ! व्यवहार विकल्प... व्यवहार विकल्प की मर्यादा निश्चय की शुद्धता के प्रमाण में होती है। शुद्धता छठवें गुणस्थान की हो और राग की तीव्रता कुदेव-कुगुरु मानने की हो या वस्त्र-पात्र लेने की हो—ऐसा हो नहीं सकता,

ऐसा कहते हैं। थोड़ी सूक्ष्म बात है। ज्ञेय अधिकार के पश्चात् चरण की (बात) चरणानुयोग में ली है, वह यहाँ व्यवहार की बात ली है। तीसरा अधिकार व्यवहार का है। चरण अर्थात् चारित्र है, वह तो शुद्ध परिणति है। समझ में आया? आहाहा! चरण अर्थात् कि महाव्रत के विकल्प आदि की मर्यादा छठवें में जो हो, वह द्रव्य की शुद्धि की प्रमाण में उसे महाव्रत के ही विकल्प होते हैं। समझ में आया? उसे वस्त्र-पात्र लेने के या धन्धा करने के या भोग भोगने के भाव नहीं होते। शुद्धि की परिणति प्रमाण उसे राग की मन्दता होती है। उसे उल्लंघकर राग तीव्र हो, ऐसा नहीं हो सकता। इस प्रकार निश्चय और व्यवहार की ऐसी सन्धि की है निमित्त-नैमित्तिक। समझ में आया? गजब।

चरण अर्थात् व्यवहार चारित्र के विकल्प की हद, द्रव्य की शुद्धि के प्रमाण में उसमें वह राग की मन्दता होती है। समझ में आया? भीखाभाई! शुद्धि अनुसार... बहुत शुद्धि प्रगट हुई हो और राग तीव्र हो, ऐसा नहीं बनता, ऐसा कहते हैं। सम्यग्दर्शन की शुद्धि प्रगट हुई और पर्याय में अन्याय और अभक्ष्य का भाव हो, ऐसा नहीं होता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? इसी तरह पंचम गुणस्थान में, वस्तु भगवान आत्मा के अवलम्बन से निर्मल अवस्था जो प्रगट हुई पंचम गुणस्थान की, उसके योग्य राग की मन्दता होती है, उसे अव्रत के तीव्र राग उसकी भूमिका में नहीं होते, ऐसा कहते हैं। क्या कहा, समझ में आया इसमें? अटपटी बात लगे ऐसी है, परन्तु है तो बहुत सीधी।

मुमुक्षु : .... वह सापेक्ष।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और अलग। सापेक्ष नहीं। वह और अलग। उसके कारण वह है, वह व्यवहार है। ऐसा यहाँ नहीं। ऐसा भी नहीं, कहते हैं। यहाँ गाथा अटपटी है, इसका अर्थ सूक्ष्म है। यह तो दोनों होते हैं... यहाँ आत्मा अखण्ड आनन्द प्रभु का आश्रय लेकर—अवलम्बन लेकर आत्मा के स्वाद के भान में प्रतीति हुई, वह सम्यग्दर्शन। अब उस सम्यग्दर्शन की परिणति के प्रमाण में उसे राग की मन्दता होती है। उसे कहीं कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र को मानने का राग और अन्याय और अभक्ष्य (सेवन) करने का राग उसे नहीं हो सकता, ऐसा कहते हैं। व्यवहार विकल्प की बात है। आहाहा! समझ में आया?

और छठवाँ गुणस्थान मुनि को, जो तीन कषाय के अभाव की शुद्ध परिणति हुई,

वह द्रव्यानुसार उसे कहा जाता है। यहाँ उसके प्रमाण में उसे २८ मूलगुण के विकल्प, वस्त्र नहीं, पात्र नहीं, एक बार आहार, खड़े-खड़े (आहार)—ऐसी विकल्प की हद, वह चरण अर्थात् विकल्प—व्यवहारचारित्र कहा जाता है। परन्तु वह व्यवहारचारित्र शुद्ध की परिणति की मर्यादा प्रमाण होता है। कोई कहे, हमको शुद्ध परिणति मुनि की प्रगट हुई है, परन्तु हमको विकल्प में हमारे वस्त्र-पात्र, अन्याय आदि का भाव होता है। तो वह निश्चय-व्यवहार एक भी बात को समझते नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जेठाभाई! समझ में आया? मुनिपना हमको है, परन्तु हमारे लिये अध:कर्मी—उद्देशिकादि आहार लेने का भाव है, तो कहते हैं कि वह झूठा है। जहाँ निश्चय की भूमिका मुनियोग्य जहाँ परिणति प्रगट हुई, उसे राग की मन्दता की मर्यादा होती है। ऐसा राग उसे होता नहीं। आहाहा! यह तो वीतराग में मार्ग में हो ऐसी सन्धि करते हैं। समझ में आया?

निश्चय... निश्चय करे। एक व्यक्ति यहाँ आया था। मोक्षमार्गप्रकाशक वाँचा। स्थानकवासी साधु था, फिर मन्दिरमार्गी हो गया। मोक्षमार्गप्रकाशक वाँचा। चातुर्मास था न उसमें। आये यहाँ। निश्चय हो, उसे फिर माँस-शराब खाना या नहीं खाना (पीना), उसकी मर्यादा क्या? ठीक! उसे निश्चयवाले को (व्यवहार) क्या फिर? अरे! सुन तो सही! जिसे निश्चयसम्यग्दर्शन—आत्मा के आश्रय से प्रतीति और अनुभव हुआ, ऐसी शुद्ध परिणति के काल में उसे माँस और मदिरा खाने (-पीने) का भाव हो, ऐसा विकल्प उसे होता ही नहीं। ऐसा उसे चरण उस प्रकार का होता नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह तो वीतरागमार्ग है। यह कहीं कल्पित... कल्पित नहीं कि यह ऐसा होता है और वैसा होता है। यह तो ऐसा ही वस्तु का स्वरूप है। सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने केवलज्ञान में देखा कि सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा, जिसे शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान प्रगट हुए हैं, उसके प्रमाण में उसे राग (होता है)। परस्त्री का सेवन, अन्याय और अभक्ष्य हो, ऐसा भाव वहाँ व्यवहार में होता नहीं। चौथे गुणस्थान में युद्ध आदि का हो, इन्द्रिय के विषय का राग हो, समझ में आया? परन्तु वह कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र मानता हो, ऐसा उसे विकल्प हो, तो वह निश्चय प्रमाण उसे व्यवहार नहीं (तो) दोनों झूठे हैं। समझ में आया?

दूसरा। **द्रव्य चरणानुसार होता है...** अब द्रव्य चरणानुसार होता है, इसका अर्थ

करो। द्रव्य अर्थात् त्रिकाली वस्तु, वह चारित्र की निर्मल परिणति प्रमाण द्रव्य होता है, ऐसा होगा? अथवा व्यवहार के विकल्प प्रमाण द्रव्य होता है, ऐसा होगा? नहीं, नहीं। यहाँ तो व्यवहार के विकल्प चारित्र की हदवाले हों, उसके प्रमाण में द्रव्य रहे—ऐसा है? द्रव्य तो द्रव्य ही है, परन्तु उसका अर्थ यह कि द्रव्य अर्थात् कि द्रव्य की शुद्ध परिणति। सेठ! यह बहुत सूक्ष्म है। यह तो कुन्दकुन्दाचार्य के शास्त्र गम्भीर पेट (अभिप्राय) से भरपूर हैं। बहुत गम्भीर, ओहोहो! पर्याय-पर्याय की जहाँ निर्मलता प्रगट हुई है, जिसके प्रमाण में, उसके प्रमाण में राग की—कषाय की मन्दता या तीव्रता होती है। समझ में आया? उससे मर्यादा उल्लंघकर हो तो वह निश्चय भी झूठा और व्यवहार भी झूठा। समझ में आया? हीराभाई! यह तो अधिक स्पष्ट (होता है, जिससे) वे लोग उलझन में न आवें।

द्रव्य अर्थात्? द्रव्य अर्थात् कि द्रव्य की शुद्ध परिणति—सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र। जो वस्तु त्रिकाल भगवान आत्मा उसके अवलम्बन से उसके स्वाद का भान और उग्र स्वाद की दशा वह, कहते हैं कि उसे द्रव्य कहा जाता है। द्रव्य की शुद्ध परिणति जो चारित्र—वीतरागी चारित्र है, उसे यहाँ द्रव्य कहा गया है। भाई! आहाहा! ऐसी वीतरागी निर्विकल्पदशा (और) उसके प्रमाण में विकल्प—इन दो को निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध सिद्ध किया है। आहाहा! सेठी! यह प्रवचनसार तो है या नहीं? सेठी की ओर से प्रकाशित हुआ है या नहीं? नहीं हिन्दी? नेमिचन्द पाटनी की ओर से। ऐसा नहीं, वह विभाग .... नया करेंगे... ऐसा कि नेमिचन्द पाटनी की ओर से प्रकाशित हुआ इतना इस शैली का। सबको देते थे न। समझ में आया? नेमिचन्द पाटनी की ओर से प्रकाशित हुआ यह प्रवचनसार पहले? यहाँ कहते हैं... आहाहा! गजब बात वीतरागमार्ग की शैली!

कहते हैं कि जैसा उसका चरण होता है, अर्थात् कि विकल्प—व्यवहारचारित्र का राग, उसके अनुसार द्रव्य होता है अर्थात् कि उसके अनुसार उसकी शुद्ध की परिणति होती है। द्रव्य अर्थात् वह (परिणति)। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : महाव्रत हो और यहाँ शुद्ध परिणति न हो तो वस्तु ही नहीं है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : जब महाव्रत (का आचरण हो, परन्तु) यहाँ स्वरूपाचरण या देशचारित्र हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा होता नहीं। वह अभी नहीं लेना। पाँचवें गुणस्थानवाला जब आगे जाये, उसे वह निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध का मेल नहीं है। इसलिए उसे द्रव्यलिंगी कहा जाता है। अन्तर में चौथा गुणस्थान हो शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान का परिणमन और ऐसे विकल्प में छठवें गुणस्थान के विकल्प की मर्यादा हो, परन्तु उसे द्रव्यलिंगी कहा है। यह तो भावलिंग का नैमित्तिक-निमित्त। नैमित्तिक और निमित्त का मेल कैसा होता है, उसकी बात करते हैं। अमरचन्दभाई! आहाहा! यह ऐसे का ऐसा मान ले न कितने ही कि अपने तो निश्चय ऐसा आया, (फिर) व्यवहार चाहे जिस प्रकार का हो। ऐई चेतनजी! कहा था न कि उपादान (है फिर) निमित्त चाहे जैसा हो। उसने—एक व्यक्ति ने कहा था। ऐसा हो, फिर (निमित्त) चाहे जैसा हो।—ऐसा नहीं होता। समझ में आया? समकित प्राप्त करनेवाले को कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र का निमित्त हो, ऐसा नहीं हो सकता। क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : शरीर की दवा.... कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र....

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर का यहाँ काम नहीं। वह शरीर की दवा नहीं, वह विकार की दवा है मिथ्यात्व। मिथ्यात्व में कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र निमित्त होते हैं। कहा है, नहीं? गोम्मटसार में कहा है न! नोकर्म... नोकर्म। वह मिथ्यात्व का नोकम कुदेव-कुगुरु हैं। नोकर्म अर्थात् निमित्त। सम्यग्दर्शन में निमित्त तो सच्चे देव, गुरु और शास्त्र का निमित्त होता है, वह उसका नोकर्म है और उसकी मर्यादा में उसे सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का विकल्प होता है। ऐसी उसकी मर्यादा है। यहाँ सम्यक्त्व प्रगट हुआ और यहाँ कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र की श्रद्धा का भी विकल्प रहे—दोनों झूठी बात है।

मुमुक्षु : यहाँ द्रव्य अर्थात् त्रिकाली द्रव्य लेना है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। कहा न, त्रिकाली द्रव्य तो द्रव्य है, उसे क्या करना है? चरणानुसार द्रव्य रहे? यह तो अर्थ चलता है। विकल्प के अनुसार द्रव्य रहे, ऐसा है? नहीं। और निर्विकल्प के अनुसार द्रव्य रहे, ऐसा है? केवलज्ञान प्रगट हुआ, तो भी

द्रव्य है, वही है। उससे कुछ द्रव्य में सुधारा हुआ है? और अक्षर के अनन्तवें भाग में केवलज्ञान का अंश निगोद में रहा, इससे द्रव्य में कमी हुई है कुछ? केवलज्ञान हुआ तो उसमें—द्रव्य में सुधरा क्या? और अज्ञान तथा मिथ्यात्व हुआ तो द्रव्य में बिगड़ा क्या? द्रव्य में सुधरता-बिगड़ता है ही नहीं। ऐ सेठ! यह सब समझना पड़ेगा। बाहर में स्थूल बुद्धि बितायी है न बीड़ियों में, इसलिए यह सब समझना पड़ेगा। ऐसा का ऐसा नहीं चलेगा।

मुमुक्षु : प्रत्येक समय सूक्ष्म बात.... सूक्ष्म बात....

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा सूक्ष्म है न, भाई! सेठ! आहाहा! उसकी बातें भी अलौकिक वीतरागदेव की। आहाहा! सर्वज्ञदेव परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकर की वाणी और उनके आगम और उनका कहा हुआ भाव! भीखाभाई! समझ में आया?

यह चरणानुयोग की पहली गाथा है... ज्ञेय का अधिकार पूरा किया, तब यह (श्लोक) आया। चरणानुयोग (सूचक चूलिका) शुरु किया तब दूसरा (श्लोक) आयेगा। दूसरे प्रकार से कही है वहाँ। यह तो दोनों की सन्धि करने का (श्लोक) है। वह अन्तिम... क्योंकि ज्ञेय अधिकार दर्शन का पूरा करके, अब चरणानुयोग अर्थात् विकल्प की मर्यादा की बात करनी है, इसलिए यहाँ (श्लोक) दूसरे अधिकार का अन्तिम और दूसरे अधिकार का पहला (श्लोक) यह दूसरा है। आहाहा! कहते हैं... धीरे-धीरे समझो। अपने उतावल कुछ नहीं करते। सेठ! धीरे-धीरे तो बात चलती है इसमें। विचार में भी रखी जाये। आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमात्मादेव के अतिरिक्त यह बात कहीं तीन काल—तीन लोक में हो नहीं सकती।

नैमित्तिक शुद्धपरिणति, वह तो पर्याय ली। द्रव्य तो त्रिकाली है। अब जो द्रव्य त्रिकाली है, उसके आश्रय से जो शुद्ध परिणति निर्मल निर्विकारी आनन्द के स्वाद की आयी, वह परिणति सिद्ध की। पर्याय है, ऐसा सिद्ध किया। यहाँ द्रव्य है, जितना आश्रय लिया, उतने प्रमाण में यहाँ शुद्ध परिणति है और जितनी शुद्ध परिणति है, वह वास्तविक धर्म है। उसे शुद्ध परिणति है, उसके प्रमाण में राग की मन्दता का व्यवहार विकल्प होता है। आहाहा! अशुद्धता का विकल्प भी शुद्धता की परिणति की मर्यादा प्रमाण होता है। देखो तो एक बात! आहाहा! चिमनभाई! कहाँ गये शान्तिभाई? है? ऐसा सब

समझना पड़ेगा। वह झबेरी बाजार में, जवाहरात में धूल में भी नहीं वहाँ। आहाहा!

तीसरा। कि जितनी द्रव्य—वस्तु के आश्रय से शुद्ध परिणति प्रगट हुई, यह पर्याय सिद्ध की और उसके प्रमाण में उसे विकल्प की मर्यादा (होती है), ऐसा सिद्ध किया। वह तो फिर सिद्ध हो गया कि उसे वस्त्र-पात्र का—अजीव का योग—संयोग नहीं होता। समझ में आया? और वस्त्र ओढ़ा हुआ, विकल्प से ओढ़ा हुआ, ऐसा संयोग उसे नहीं होता। आहाहा! ऐसी जिसे दशा प्रगट हुई है... समझ में आया? जिसे आत्मदर्शन, आत्मा का ज्ञान हुआ है, उसे हनुमान और सिकोतेर और अम्बाजी के पास बैठा हो और भक्ति करता हो, ऐसा भाव होता (नहीं)। वह भाव नहीं होता और वह संयोग उसे नहीं होता। आहाहा! कहो!

ऐई! तुम्हारे बहुत चलता है वहाँ काँप में अम्बाजी का। बढवाण में और क्या कहलाये? बूटमाता चले तुम्हारे। बन्ध हो गया अब। परन्तु मैं जब चातुर्मास में था, तब बहुत लोग दो-दो हजार। स्थानकवासी आवे, जैन आवे। कुछ भान नहीं होता। व्यवहार का भी भान नहीं होता। वह लालपर का एक आया था। बड़ा गृहस्थ हो गया करोड़पति। क्या नाम था? मीठाभाई। मीठाभाई का पुत्र निकला था। मीठाभाई थे, तब तो बहुत प्रेम। करोड़पति हो गये अफ्रीका में। उनका लड़का मस्तिष्क का अस्थिर था। वह आया था। फिर मर गया। ऐई! परन्तु यह तुम क्या करते हो यह? जैन नाम धराकर बूटदेवी, अंबाजी, सिकोतेर... यह तो मिथ्यात्व का भाव है, उसे जैन की श्रद्धा है नहीं। समझ में आया? गाथा अटपटी... उसका मेल है वहाँ। बात सच्ची भाई की। सम्यग्दर्शन का अधिकार पूरा किया है। ज्ञेय अधिकार कहो या सम्यग्दर्शन कहो। दूसरा भाई! पहला ज्ञान अधिकार, दूसरा सम्यग्दर्शन अधिकार, तीसरा चरणानुयोग व्यवहार अधिकार। उसके पहले इन दो की सन्धि की है। प्रवचनसार। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि आत्मा पूर्णानन्द शुद्ध... पर्याय और राग की रुचि छूट गयी है, ऐसी जिसकी सम्यग्दर्शन की परिणति—पर्याय प्रगट हुई, उसे यहाँ द्रव्य कहा जाता है। क्योंकि द्रव्य का भाव शुद्ध, इसलिए उसे द्रव्य (कहा), ऐसा। द्रव्य का भाव अर्थात् त्रिकाली नहीं, वर्तमान शुद्ध परिणति। ऐसे समकिती को चरण अर्थात् व्यवहार का राग कितनी मर्यादावाला होता है, उसे यहाँ नैमित्तिक शुद्ध परिणति, राग की मर्यादा वह निमित्त, यह

निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध का ज्ञान कराया है। पण्डितजी! आहाहा! यह वस्तु अन्यत्र कहीं (नहीं है)। संयोग में कैसी दशा होती है, उसके विकल्प में कितनी मर्यादा होती है, उसकी निर्विकल्प परिणति की हद कितनी होती है, राग की मर्यादा और संयोग—ऐसा यहाँ सब स्पष्ट करके बताया है। आहाहा! समझ में आया?

द्रव्य अर्थात् कि जो द्रव्य तुम ऐसा लो कि शुद्ध परिणति यहाँ, समझ में आया? वह पहला चरण में शुद्ध परिणति लो, तो यहाँ वापस 'द्रव्य चरणानुसार होता है' (ऐसा कहा)। इसलिए द्रव्य नहीं, परन्तु द्रव्य की शुद्ध परिणति। समझ में आया? वीतराग जैसा आत्मस्वभाव है, वीतराग जैसा स्वभाव है, उसका तो और जितनी वीतरागता दर्शन-ज्ञान-चारित्र के प्रमाण में प्रगट हुई, उसे यहाँ द्रव्य कहा जाता है। और वह द्रव्य चरणानुसार होता है। उसकी राग की—कषाय की तीव्रता चौथे (गुणस्थान में) भी होती है, परन्तु वह हदवाली होती है, अनन्तानुबन्धी का तीव्र राग उसे नहीं होता। समझ में आया? अथवा अन्याय और असेव्य को वह सेवन करे और माँस तथा मदिरा आदि अभक्ष्य (सेवन करे) और शिकार आदि का भाव हो और यहाँ समकित हो, ऐसा तीन काल में नहीं होता। समझ में आया? आहाहा! वीतरागमार्ग कोई अलग प्रकार का है। समझ में आया?

अन्यत्र तो एकान्त—या आत्मा एक है, या शुद्ध है, हो गया। उसे पर्याय नहीं, विकार की मर्यादा नहीं और संयोग की हद कितनी, वह कुछ नहीं होती। परन्तु यही मार्ग है, बापू! आहाहा! अरे! वीतराग त्रिलोकनाथ के पंथ का निश्चय और उनके पंथ का व्यवहार और उस व्यवहार के प्रमाण में संयोगी स्थिति कैसी होती है—यह वीतराग मार्ग में है, अन्यत्र कहीं हो नहीं सकता। जेठालालभाई! ऐसे बाहर में कहे कि हम वस्त्र-पात्र सब रखते हैं और मुनिपना अन्दर में हो, तो कहते हैं कि संयोग की मर्यादा की उसे खबर नहीं। दूसरी बात। और उस संयोग का विकल्प जो है उसे, वह छठवें गुणस्थान में ऐसी विकल्प की मर्यादा हो सकती ही नहीं। भाई!

इसलिए एकबार कहा था कि कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं कि (मुनि नाम धराकर) वस्त्र का धागा रखे और निगोद में जाये, यह अतिश्योक्ति कही है? नहीं। न्यायसर की कही है। क्योंकि उसे नौ तत्त्व में भूल होती है। पण्डितजी! यह कह गये

न। बहुत बार कहा गया है। वह तो यहाँ आया कि जिसे द्रव्य की शुद्धि की परिणति छठवें गुणस्थानयोग्य हुई, उसे विकल्प की मर्यादा पंच महाव्रत या २८ मूलगुण या श्रवण करना या उपदेश करना, इस प्रकार के विकल्प होते हैं। उसे विकल्प, उसके लिये बना हुआ आहार और पानी का विकल्प अथवा वस्त्र-पात्र लेने का विकल्प होता नहीं। तो जिसने वह मर्यादा नहीं जानी, उसे शुद्ध परिणति कैसी होती है, उसकी खबर नहीं। छठवें गुणस्थान में शुद्ध परिणति कैसी होती है, उसकी खबर नहीं और संवर-निर्जरा की खबर नहीं, कितना उग्र आश्रय द्रव्य का लिया है, ऐसे जीव की भी खबर नहीं और ऐसी संवर-निर्जरा की दशा में उसे कितने प्रकार की मर्यादावाला राग होता है, तीव्र राग होता नहीं। तो उसे आस्रवतत्त्व की खबर नहीं और संयोग उसे—ऐसे मुनिदशावाले को वस्त्र-पात्र का संयोग नहीं होता तो अजीव का संयोग कितना होता है, उसकी भी उसे खबर नहीं। अजीवतत्त्व की खबर नहीं, आस्रव की खबर नहीं, बन्ध की खबर नहीं, संवर-निर्जरा की खबर नहीं और जीव का उग्र आश्रय इतना लिया हो तो जीव की ऐसी परिणति होती है—उसकी उसे खबर नहीं। अमरचन्दभाई!

मुमुक्षु : सारी बात मर्यादा में रहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा कि ऐसी पर्याय मेरी चाहे जैसी हो।

एक व्यक्ति कहता था कि क्षुल्लक हो और उस प्रकार का एक प्रकार का उदय न हो... परमार्थ वचनिका में आता है न! परमार्थ वचनिका है अपने अन्त में। हिन्दी हो गया है अब। उसमें है कि उदय एक प्रकार का नहीं होता, केवली को भी उदय अनेक प्रकार का होता है। इसलिए क्षुल्लक को भी एक प्रकार का उदय नहीं होता, पैसा भी रखे, ऐसा भी करे, ऐसा भी उदय होता है। अरे! होता नहीं। यह क्या गप्प मारते हो? वह बेचारा मर गया। परन्तु ऐसा कहता था एकबार। एकान्त में मुझे कहे, जो ऐसा आया है न उसमें। कहा, सब खबर है मुझे कि क्या लिखा है उसमें? परमार्थ वचनिका है न भाई! उसमें यह लिखा है। केवली को भी एक सरीखा उदय नहीं होता। परन्तु समान न हो, उसका अर्थ क्या? वैसे क्षुल्लक नाम धराते और पैसे रखना और पैसे की व्यवस्था करना। क्या कहा जाता है उसे? वह पैसे का... सम्हाल। सम्हाल करना, उसके लिये मालिकी रखना—ऐसा राग नहीं होता। ऐसा राग हो तो उसे मुनिपना नहीं और श्रावकपना नहीं है।

मुमुक्षु : जहर से.... चलती हो तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो बात चलती है। यह भाषा .... सेठ! सेठ ने खुल्ला किया अन्दर का। ग्रन्थमाला चलाते हों तो? ऐसा कहे। पैसा इकट्ठा करावे और यह करावे, ऐसा विकल्प उसे होता नहीं। यह कहते हैं वह।

मुमुक्षु : वह तो तीव्र राग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तीव्र राग है। शुद्ध की परिणति है, उसकी (भूमिका के) प्रमाण में ऐसा तीव्र राग हो सकता ही नहीं। आहाहा!

गजब किया है न कुन्दकुन्दाचार्य ने! गजब बात है। आहाहा! उसकी हद संयोग की, राग की परिणति की, आश्रय की गजब बात है। ओहो! सन्तों ने तो मार्ग को सरल कर दिया है। समझ में आया? ऐसी गम्भीरता की यह गाथा है कि द्रव्य कैसा? और उस द्रव्य का उग्र आश्रय या मन्द आश्रय हो तो उसकी परिणति कितनी? और उसके प्रमाण में राग की मर्यादा कितनी? उसके प्रमाण में उसे संयोग कितना और उसका अभाव कितना? समझ में आया? मीठालालभाई! ऐसा यह मार्ग है। आहाहा! यह दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त यह मार्ग कहीं... कहीं हो सकता नहीं। समझ में आया? बिना भान के कहे कि आत्मा है और ऐसा है और वैसा है, आत्मा शुद्ध निर्मल है, वेदान्त कहे, एक ही निर्मल है। उसमें भेद-बेद नहीं। परन्तु समझने बैठा है, वह क्या चीज़ है? वह तो भेद है, राग है। है को नहीं (कहना), वह तो प्रत्यक्ष मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया?

मुमुक्षु : तीर्थंकर को सिंहासनादि हों और मुनियों....

पूज्य गुरुदेवश्री : उन्हें कहाँ बुद्धिपूर्वक था? वे पुण्य के संयोग तो अघाति का फल है। यहाँ तो इसका विकल्प है लेने का और छोड़ने का, यह बात है। इसका सम्बन्ध है। वह सम्बन्ध झूठा है। वस्त्र-पात्र लेने का विकल्प और संयोग—दोनों मुनियोग्य दशा को झूठे हैं। उन्हें शुद्ध परिणति की खबर नहीं, उसे द्रव्य की खबर नहीं, उसे राग की मर्यादा कितनी होती है, उसकी खबर नहीं। और जहाँ तीव्र संवर-निर्जरा प्रगट हुई है छठवें में, उसके प्रमाण में राग हो तो छठवें की दशा है, वह मोक्ष का कारण है। राग की तीव्रता, वह बन्ध का कारण है। अल्प बन्ध का कारण हो, उसके बदले

तीव्र बन्ध का कारण रचना, उसे तो बन्धतत्त्व की भी खबर नहीं।

मुमुक्षु : मूर्च्छा न हो और ले....

पूज्य गुरुदेवश्री : मूर्छा (होवे तो) लिये बिना रहे नहीं। मूर्च्छा बिना, राग बिना विकल्प आते होंगे? देवानुप्रिया! यह तो कहते हैं न कि मूर्च्छा परिग्रह होता है। मूर्च्छा न हो तो परिग्रह नहीं, ऐसा कहते हैं। अरे! होगा? ब्रह्मचर्य का भाव अन्दर हो और वाणी में ऐसा आवे कि विषय भोगने में बाधा नहीं—ऐसी वाणी होगी? वाणी का संयोग ही ऐसा नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह कर्ता नहीं वाणी का। परन्तु जिसे अन्दर में सम्यग्दर्शन और ब्रह्मचर्य का भाव प्रगट हुआ, उसकी वाणी में ऐसा आवे कि कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र को माने तो वह दिक्कत नहीं? यह वाणी का संयोग उसे होता ही नहीं। समझ में आया? पोपटभाई! परन्तु बहुत सूक्ष्म, भाई!

यह तो जरा वह विचार आया न, भाई! इस चरण में शुद्ध परिणति यदि रखो तो मेल नहीं खाये और द्रव्य पूरा रखो तो मेल नहीं खाये। जरा खटका था लोगों को कल कि किस प्रकार यह? यह देवीलालजी जैसे पण्डित लोग कहलाये वे कहें, गजब यह गम्भीर! वस्तुस्थिति ऐसी है। आहाहा! केवलज्ञान प्रगट हुआ और उसे आहार लेने का विकल्प हो और आहार हो संयोग में—यह वस्तु की खबर ही नहीं उसे। समझ में आया? जिसे केवलज्ञान—पूर्ण परिणति उग्र प्रगट हो गयी, उसे आहार के ग्रास का संयोग हो नहीं सकता। दवा-फवा का उसे होता नहीं। आहाहा! समझने की बात है, बापू! इसमें कोई पक्ष की बात नहीं। यह तो वस्तु की मर्यादा है। द्रव्य की, गुण की, पर्याय की और विकल्प की और संयोग की यह पूरी स्थिति है। समझ में आया? मनुभाई! समझ में आता है या नहीं? बराबर समझ में आता है ऐसा बोले। ठीक! अब सुनते तो हैं। वहाँ पड़े रहते हैं, उसकी अपेक्षा यहाँ पड़े रहे तो सुने तो सही। परन्तु यहाँ कहाँ ऐसा कि.... आहाहा! अभी तीसरी बात आयेगी इसमें। हाँ, उसमें बाकी बहुत है।

कहते हैं कि **द्रव्य चरणानुसार होता है...** अर्थात् कि चरण अर्थात् राग की क्रिया पंच महाव्रतादि के परिणाम उसके प्रमाण में उसे द्रव्य की शुद्धि होती है। इसके कारण होती है, ऐसा प्रश्न नहीं। इसके कारण होती है, ऐसा नहीं, परन्तु ऐसा जहाँ हो, वहाँ

ऐसा उसे द्रव्य के कारण से होता है। और ऐसे द्रव्य के कारण से जहाँ शुद्धि हो इतनी, तब उसे राग की मन्दता व्यवहार के कारण से—उसके कारण से होती है। शुद्ध परिणति है, इसलिए यहाँ ऐसा राग आता है, ऐसा नहीं है। यहाँ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध (सिद्ध) करना है न! तो निमित्त ऐसा है, इसलिए नैमित्तिक ऐसा है, ऐसा नहीं। उसके कारण से है, ऐसा नहीं, परन्तु निमित्त ऐसा ही होता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

इस प्रकार... दो हो गये न। **वे दोनों... 'मिथो'** है न? **'मिथो'... परस्पर अपेक्षासहित है...** यह हो, इतना हो तो इतना हो और इतना हो तो इतना हो—इतनी अपेक्षा है व्यवहार की। निश्चय में तो निरपेक्ष है, परन्तु परस्पर जब ऐसी निर्मलता प्रगट हुई जिसे भगवान आत्मा की, उसे अनन्तानुबन्धी की तीव्रता का राग होता नहीं, ऐसा कहते हैं। जिसे श्रावकपना प्रगट हुआ सच्चा अन्तर समकितसहित का, उसे राग की तीव्रता कुदेव, कुगुरु का और अव्रत का ऐसा राग उसे होता नहीं। ऐसा निमित्त-नैमित्तिक का सम्बन्ध है। **वे दोनों परस्पर अपेक्षासहित...** ऐसा है न? **'द्वयमिदं ननु सव्यपेक्षम्'** अर्थात् कि ऐसा हो वहाँ ऐसा होता है। ऐसा हो निर्मल वहाँ इतनी ही राग की मन्दता होती है, इतनी अपेक्षा है। निश्चय नहीं, यहाँ तो व्यवहार सिद्ध करना है न इसमें। इसलिए 'अपेक्षा' लिया है। आहाहा!

दोनों परस्पर अपेक्षासहित हैं;... जहाँ आत्मा की वीतराग निर्मल धर्म की दशा जितने प्रमाण में प्रगटी हो, उतने ही प्रमाण में उसे राग की तीव्रता और मन्दता का भाग होता है। इसलिए उसे उल्लंघ जाये, ऐसा मन्द या तीव्र होता नहीं। और राग की मन्दता और तीव्रता जितने प्रमाण में है, उसके प्रमाण में वह शुद्ध की परिणति द्रव्य के आश्रय से—अपने कारण से ऐसी वीतरागता होती है। आहाहा! हमको प्रगट हुआ, अब हमारे निश्चय है, फिर माँस खाना, मदिरा पीना, लम्पटपना, चाहे जो स्वच्छन्दपने वर्ते—ऐसा हो नहीं सकता। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मुनिपना प्रगट हुआ, पश्चात् हमारे चाहे जिस प्रकार से, हमारे लिये आहार बनाया हो, चौका (करके) बनाया हो... क्या कहलाता है? वस्त्र-पात्र इत्यादि, इत्यादि... हमारे लिए बने हुए हों तो भी ले सकते हैं क्योंकि उसमें निश्चय में कहाँ बाधा है? ऐसा है ही नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : हल्का काल....

पूज्य गुरुदेवश्री : हल्का काल कब था? हल्का काल अर्थात् आटे के बदले मिट्टी डालो हलुवा में? यह हल्का काल है। हलुवा बनावे न हलुवा! सेठ! यह हलुवा बनता है या नहीं? शीरा। तो आटा के बदले धूल डाली कहीं? काल हल्का है। घी के बदले पेशाब डाला कहीं हलुवा में? और शक्कर के बदले कीचड़? या गुड़ के बदले कीचड़ डाला? हल्का काल है। हल्का काल का भान कब है? ऐई मूलचन्दभाई!

मुमुक्षु : मुनि महाराज .... आहार बनावे?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उनके लिये बनाया है, इसकी खबर नहीं? पाँच व्यक्ति हैं, घर के चार व्यक्ति हैं, यह चौका करके बैठे हैं। खबर नहीं इतनी? इन्होंने सब गड़बड़ की होगी न? सेठ! गड़बड़ ही की है न! यह सब करते हों और न करे तो अलग पड़ जाये। वह भागकर चले आये। कहो, समझ में आया इसमें?

तीन बोल हुए, अब चौथा। यह चौथा भी कठोर है जरा। **इसलिए या तो द्रव्य का आश्रय करके...** अर्थात् कि द्रव्य की शुद्धि की परिणति का ज्ञान रखकर... ऐसी शुद्धि है, उसे ऐसा ही राग होता है, ऐसे द्रव्य की शुद्धि का ज्ञान रखकर... 'आश्रय करके' का अर्थ ज्ञान करके। **द्रव्य का आश्रय करके...** अर्थात् कि द्रव्य की शुद्धि की परिणति सम्यग्दर्शन की, पंचम गुणस्थान की, छठवें गुणस्थान की, उसकी परिणति का ज्ञान रखकर... **अथवा जो चरण का आश्रय करके...** उस भूमिका में राग की मन्दता का भाव, उसका ज्ञान रखकर... कि ऐसा ही राग होता है, उसका ज्ञान रखकर... आश्रय करके, इसका अर्थ कि... यह एक शब्द नहीं लिया यहाँ। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कथन है, व्यवहार के कथन ऐसे होते हैं। ठीक! पूछते हैं बराबर। मूलचन्दभाई! इसका अर्थ यह है। द्रव्य का आश्रय करके अर्थात्? द्रव्य की शुद्धि प्रगटी है सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रादि जितने प्रमाण में, उसका ज्ञान रखकर कि ऐसी ही शुद्धि होती है, उसका ज्ञान ऐसा होता है। और या **चरण का आश्रय करके...** उस शुद्धदशा की भूमिका में जिस प्रकार का राग होता है, ऐसा ही राग होता है, ऐसा ज्ञान करके... यह चारों पद की व्याख्या अलग है। देवीलालजी!

मुमुक्षु : इसके लिये द्रव्य का आश्रय करके पाप से बचने के लिये पुण्य का आश्रय....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह बिल्कुल बात है नहीं यहाँ। आश्रय-फाश्रय की बात नहीं। आश्रय का अर्थ 'ज्ञान' है। '**प्रतीत्य**' शब्द पड़ा है न? '**द्रव्यं प्रतीत्य यदि वा चरणं प्रतीत्य**' यह चौथा पद है। पण्डितजी! चौथा पद है। यह अर्थ हमारे पण्डितजी ने किया था स्पष्ट पहले, हों! यह हमारे पण्डितजी। यह पूछा था कि यह क्या? ऐई! पोपटभाई! यह तुम्हारे मित्र। इन्होंने पहला अर्थ किया था पण्डितजी ने। नहीं तो अपने को तो शब्द का अर्थ आवे नहीं, व्याकरण-ब्याकरण आवे नहीं। भाव का ख्याल हो, परन्तु भाव में मिलान कैसे खाये? उसमें द्रव्य का आश्रय कहा है। आश्रय का अर्थ प्रतीत। द्रव्य का ज्ञान अर्थात् शुद्ध परिणति ऐसी होती है, उसका ज्ञान करके और अशुद्धता का राग ऐसा होता है, उसका ज्ञान करके, बस। समझ में आया?

मुमुक्षु : शुद्ध परिणति आश्रय करनेयोग्य नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आश्रय का यहाँ प्रश्न ही नहीं है। यहाँ तो 'प्रतीत' का अर्थ जानना। उसके (लिये) 'आश्रय' शब्द प्रयोग किया है। इतनी शुद्ध परिणति हो छठवें में, उसकी शुभ परिणति ऐसी ही होती है, ऐसा जानकर—ज्ञान करके और उस काल में राग ऐसा ही होता है, ऐसा ज्ञान करके, बस। अब फिर अन्तर में उतर जा, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यह वाँचना न घर में। यह पुस्तक रखी है सब बहुत। एक-एक शब्द का क्या (अर्थ) है, वह वाँचना पड़े या नहीं? नामा लिखे तो कितना जाँचते हैं। इस बीड़ी के नामा के समक्ष... देखो! शोभालाल सेठ जाते हैं वहाँ कानपुर। कितने ही रुपये ले आवे। सब नामा मिलाते होंगे या नहीं? तुम्हारे पास हमारा लेना इतना पाँच हजार का। वह कहे कि पौने चार हजार निकलते हैं। सवा हजार की दिक्कत है कहीं देखो। लो जाँचो। कहीं रह गयी होगी सवा हजार की रकम। सेठ! पैसे के लिये छोटे सेठ आगे जाये न कानपुर। यह कोई बात करता था। अपने को कहाँ खबर हो? वे रतनलालजी थे, नहीं? कानपुर थे न। मंजिल पर आहार करने गये थे। तब सेठ थे। वह जल्दी खबर पड़े। वहाँ

ध्यान रखते हैं या नहीं, इतना यहाँ कहना है। तो यहाँ ध्यान रखना, ऐसा कहना है। आहाहा! इसकी रुचि हो तो जल्दी खबर पड़े। खबर पड़े बिना रहे नहीं। आहाहा!

लो, या तो द्रव्य का ज्ञान करके अर्थात् शुद्ध परिणति की ऐसी मर्यादा गुणस्थान में होती है, उसका ज्ञान करके। चौथे में शुद्ध परिणति तीन कषाय के अभाव की न हो। एक कषाय के अभाव की और मिथ्यात्व के अभाव की हो। दूसरे में (-पंचम गुणस्थान में) दो कषाय की और मिथ्यात्व के अभाव की हो, तीसरे (छठवें गुणस्थान में) तीन कषाय के और मिथ्यात्व के अभाव की परिणति हो, ऐसा बराबर ज्ञान करके... समझ में आया?

मुमुक्षु (ज्ञानी, मुनि)... धर्मात्मा मोक्षमार्ग में आरोहण करो। आहाहा! स्वरूप में अन्दर आरोहण करो और व्यवहार का विकल्प है, उसमें भी आरोहण करो, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? लो, यह गाथा पूरी हुई। पचास मिनिट चली। हमारे चिमनभाई प्रसन्न हुए। वस्तु तो वस्तु है भगवान आत्मा, परन्तु उसका जितना आश्रय लेकर आश्रय में उग्रता या मन्दता जो परिणति जितनी प्रगट हुई, उतनी शुद्धता उसे ऐसा बराबर जानना। और उसके प्रमाण में शुद्धि की बहुत उग्रता हो तो राग की बहुत ही मन्दता हो (और) शुद्धि थोड़ी हो तो राग की कुछ तीव्रता भी हो। ऐसी दोनों की मर्यादा बराबर जानना। और ऐसी हो उसे संयोग का काल भी कुदरत से हो सहज। वह यहाँ नहीं डाला, क्योंकि सहज आता है। यहाँ तो पुरुषार्थ से हो दो बात, इतनी डाली है। भाई! वे संयोग आना-जाना, वह कोई व्यवहार के विकल्प से आना-जाना होता नहीं। (इसलिए) उस बात को यहाँ नहीं डाला। समझ में आया?

मुमुक्षु : .... सहज हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बाहर तो सहज हो नग्नदशा। वह कहीं विकल्प से वस्त्र छूट जाते हैं, ऐसा है? विकल्प कर्ता और वस्त्र का छूटना कार्य—ऐसा है? इसलिए यह बात ली नहीं। मात्र दो में अन्दर निमित्त-नैमित्तिक लिया। समझ में आया? भाई! वीतरागमार्ग गम्भीर है, गहरा है। पाताल कुँए में से आयी हुई बात है। समझने के लिये बुद्धि को गूँथना पड़े। यह आटा बाँधते हैं न। आटा—लोट उसे गूँथे, फिर रोटी होती

होगी या ऐसे के ऐसे बाँधकर रोटी होती होगी? गूँथना पड़े। गूँथे तेल डालकर ऐसे, तब मुश्किल से रोटी व्यवस्थित आवे। इसी प्रकार यहाँ वस्तु, उसकी परिणति शुद्ध और राग की मर्यादा, उसे शिक्षा से बराबर जानना चाहिए। आहाहा! ऐसा ही मार्ग है और इसके अतिरिक्त दूसरा कोई... कम, अधिक और विपरीत कहे (तो) सब विपरीत मार्ग है। ऐसा भान हुए बिना उसे विपरीतता का त्याग नहीं हो सकता। समझ में आया?

मुमुक्षु : कोई अपवाद को स्थान है ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें हो? परन्तु सत्य को क्या अपवाद? जीव है, वह जीव है, अपवाद से भी अजीव हो (ऐसा होगा)? शुद्ध परिणति भी स्वयं अपवाद से शुभ हो, ऐसा होगा? शुद्ध परिणति के काल में ऐसा राग होता है, वह अलग बात हुई, वह अपवाद हो गया। वह अपवाद है। वह स्वयं अपवाद है। समझ में आया? अरे गजब! लो, यह गाथा पूरी हुई।

और (इस १०३ वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं):—१३९।

चित्तत्त्वभावनासक्तमतयो यतयो यमम्।
यतन्ते यातनाशील-यम-नाशनकारणम्॥१३९॥

आहाहा! **श्लोकार्थः—जिनकी बुद्धि चैतन्यतत्त्व की भावना में आसक्त (रत, लीन) है,...** आहाहा! सम्यग्दृष्टि को चैतन्य की भावना में तीव्ररस—लीनता नहीं। लीनता है, परन्तु तीव्र नहीं। इससे यहाँ विशेष आसक्त—रक्त—लीन कहना है मुनि को। जिनकी बुद्धि चैतन्यतत्त्व भगवान आत्मा की भावना अर्थात् एकाग्रता में जिनकी लीनता है... लो, भावना में आसक्त... आसक्त.... आहाहा! यहाँ आसक्त। वह आसक्ति, यहाँ आसक्त। चैतन्यवस्तु वीतरागभावस्वरूप की भावना (अर्थात्) अन्तर्मुख एकाग्रता में जो लीन है **ऐसे यति...** ऐसे यति—ऐसे मुनि **यम में प्रयत्नशील रहते हैं...** देखो! यम में अर्थात् रागादि रहित शुद्ध परिणति में प्रयत्नशील रहते हैं।

(अर्थात् संयम में सावधान रहते हैं)... ऐसा कहते हैं। समकिती सम्यग्दर्शन, ज्ञान और आंशिक स्थिरता में सावधान है। श्रावक सम्यग्दर्शन, ज्ञान और आंशिक

स्वरूपाचरणचारित्र ऊपर शान्ति, उसमें लीन होता है। मुनि संयम में महाप्रयत्नशील... भाषा है न? उसका प्रयत्न का स्वभाव ही ऐसा हो गया है, ऐसा कहते हैं। इसलिए संयम में सावधान हरते हैं। आहाहा! **कि जो यम (-संयम)...** वह संयम अर्थात् स्वरूप में आनन्द के अनुभवसहित की जहाँ रमणता ऐसी... यह तो लोग सम्यग्दर्शन की बात छोड़ दे और ऊपर की सब बातें। देखो, भाई! यह स्वर्ग में चारित्र नहीं। इसलिए चारित्र महाव्रत ले लो। मुनिपना दूसरी गति में नहीं, देव में भी नहीं, इसलिए मनुष्यपने में ले लो। परन्तु क्या ले लेवे? पंच महाव्रत के विकल्प लिये (और) नग्नपना, वह है चारित्र? वह तो राग है। समझ में आया? अकेली शुद्ध परिणतिरहित राग, उसे तो व्यवहाराभास हो गया है। समझ में आया? राग की ऐसी अकेली क्रिया हो और शुद्धता का भान नहीं, वह व्यवहाराभास है। और शुद्ध परिणति उसकी इतनी हो तो उसके प्रमाण में राग की तीव्रता-मन्दता हो, ऐसी खबर नहीं, इसलिए मिथ्याभासी है। समझ में आया?

मुमुक्षु : मुनि उपदेश ही क्यों करे, चारित्र नहीं जानता हो तो ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उपदेश तो जो है, वह सबका, समकिती का भी यह आवे। मुनि का उपदेश पहला, परन्तु मुनिपना कैसा? सम्यग्दर्शनसहित का या सम्यग्दर्शन बिना का? यह ले लो, वस्त्र छोड़े। आहाहा! रत्नकरण्ड श्रावकाचार, पुरुषार्थसिद्धिउपाय में पहले सम्यग्दर्शन की बात ली। पश्चात् उसके व्रत के विकल्प की बात ली है। रत्नकरण्डश्रावकाचार। राग-द्वेष के नाश के लिये मुनिपना अंगीकार करना, ऐसा है वहाँ। भान है न कि राग-द्वेष मुझमें नहीं, ऐसा भान है। वह राग-द्वेष के नाश के लिये वीतरागता अंगीकार करता है।

यह यम... **यातनाशील यम के (-दुःखमय मरण के) नाश का कारण है।** आहाहा! यह दुःखमय मरण... यातनाशील यम... यम अर्थात् मरण। दुःखमय यम। यम के—मरण के नाश का कारण है। आहाहा! स्वरूप की अनुभव दृष्टि और संयमदशा, वह दुःखमय पीड़ा मरण के नाश का वह कारण है। पण्डितमरण होने का वह कारण है। आहाहा! विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण १४, गुरुवार, दिनांक - १९-८-१९७१
गाथा-१०४, श्लोक - १४०, प्रवचन-९९

नियमसार। निश्चय—सच्चा त्याग। सच्चा त्याग किसे कहा जाता है? अर्थात् सच्चा प्रत्याख्यान का स्वरूप। १०४ गाथा।

सम्मं मे सव्वभूदेसु वेरं मज्झं ण केणवि।
आसाए वोसरित्ता णं समाहि पडिवज्जए॥१०४॥

नीचे हरिगीत।

समता मुझे सब जीव प्रति वैर न किसी के प्रति रहा।
मैं छोड़ आशा सर्वतः धारण समाधि कर रहा॥१०४॥

समाधि कहो, शान्ति कहो, अरागीदशा कहो या प्रत्याख्यान कहो।

टीकाः—यहाँ (इस गाथा में) अन्तर्मुख परम-तपोधन की भावशुद्धि का कथन है। अन्तर्मुख... भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द और शुद्ध है, उसके सन्मुख जिसका भाव है। **परम तपोधन...** जिसे अतीन्द्रिय आनन्द का धन अन्तर से प्रगट हुआ है। समझ में आया? **परम तपोधन...** अतीन्द्रिय भगवान आत्मा... वह अन्दर टीका में इन्द्रियाँ है सही न, इसलिए और यह आया। परम अतीन्द्रिय आत्मा के सन्मुख में अन्तर्मुख में से अतीन्द्रिय आनन्द का जिसे धन अर्थात् लक्ष्मी प्रगट हुई है, उसे यहाँ प्रत्याख्यान, राग के त्याग का वन (और) स्वभाव की शान्तिवन आत्मा और प्रत्याख्यान कहा जाता है। आहाहा! उसकी **भावशुद्धि का कथन है।** शुद्धभाव जो अन्तर आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ... सम्यग्दृष्टि को भी अन्तर्मुख दृष्टि में परम आनन्द के नाथ की जिसे भावना होती है। मुनि को उत्कृष्ट भावना होती है। ऐसी भावशुद्धि का कथन है।

अब जरा '**सम्मं मे सव्वभूदेसु**' इसमें से निकाला। क्या कहते हैं? **जिसने समस्त इन्द्रियों के व्यापार को छोड़ा है,... 'सव्वभूदेसु'** है न? चाहे तो सर्वज्ञ परमात्मा हो,

देव-गुरु और शास्त्र हो या दुश्मन-शत्रु लोग माने, ऐसे हों—इन दोनों के प्रति धर्मात्मा को सम्यग्दर्शन में भी इन्द्रिय का व्यापार छूट गया है। भावेन्द्रिय—खण्ड-खण्ड इन्द्रिय और यह जड़ इन्द्रिय और उनके विषय भगवान की वाणी या स्त्री आदि—तीनों को इन्द्रिय कहा है। यह शरीर और जड़-इन्द्रिय जड़ है, वह तो है, परन्तु अन्दर जो ज्ञान के अंश में एक ही विषय ज्ञात होता है, ऐसी जो खण्ड-खण्ड भावेन्द्रिय, उसकी भी रुचि छोड़कर और इन्द्रिय के निमित्तों में भगवान और भगवान की वाणी जो ख्याल में आवे, उसका भी लक्ष्य छोड़कर... आहाहा! **समस्त इन्द्रियों के व्यापार को छोड़ा है,...** पाँच इन्द्रिय के विषय की ओर रुचि और लक्ष्य जिसका छूट गया है, समकित से ही छूट गया है। पहले सम्यग्दर्शन, धर्म जो पहली सम्यग्दर्शनरूपी पर्याय, उसमें ही इन्द्रियों का व्यापार, वह हेय है, (इसलिए) छूट गया है। आहाहा! समझ में आया?

यह तो मुनि की, उससे उग्र बात लेते हैं कि समस्त इन्द्रिय का व्यापार... अतीन्द्रिय भगवान आत्मा के ऊपर जहाँ दृष्टि है और उसका जहाँ स्वीकार और वेदन और अनुभव है, उसे इन्द्रिय का व्यापार छूट गया है। भीखाभाई! कहते हैं कि उसे भावेन्द्रिय का व्यापार छूट गया है, वह उसका नहीं। द्रव्येन्द्रिय का विषय छूट गया, द्रव्येन्द्रिय नहीं। और उसका विषय भगवान की वाणी और भगवान तीन लोक के नाथ, वे भी इन्द्रिय के विषय में आते हैं। आहाहा! वह छूट गया है ज्ञानी को, ऐसा कहते हैं। आहाहा! किसमें से निकाला यह? **'सव्वभूदेसु'** ऐसा शब्द है न? सर्व प्राणी, एकेन्द्रिय हो, पंचेन्द्रिय हो, सर्वज्ञदेव हो, स्त्री हो, परिवार हो, वेरी-दुश्मन हो—यह सब सर्व प्राणियों में—भूत में आ जाते हैं। उनके प्रति धर्मी को समताभाव होता है। आहाहा! समझ में आया? अर्थात् कि समस्त इन्द्रियों के व्यापार को छोड़ा है। आहाहा!

ऐसे मुझे... ऐसा कहा है न? **भेदविज्ञानियों तथा अज्ञानियों के प्रति समता है;...** आहाहा! कहते हैं, भेदविज्ञानी, गणधर और सन्त हों और अज्ञानी मिथ्यादृष्टि तथा अभव्य मिथ्यादृष्टि जीव हों—इन सबके प्रति समता है। यह भगवान, यह भेदज्ञानी हैं, इसलिए प्रशस्त राग करना, ऐसा है नहीं—ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह धर्मी जीव है, मुनि है, छठवें गुणस्थान में गणधर जैसे भेदविज्ञानी तथा अज्ञानियों... जिन्हें राग से भिन्न पड़कर अनुभव हो गया है, ऐसे धर्मात्मा या जिन्हें राग में एकता है,

ऐसे अज्ञानी, अधर्मात्मा। आहाहा! दोनों के प्रति मुझे ज्ञातापना—समतापना वर्तता है, कहते हैं। आहाहा! गजब बात!

ऐसा तो सब कहते हैं न कि 'खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमंतु मे।' इसका अर्थ क्या? जगत में जितने जीव हैं, उन सब जीवों के प्रति; यह अच्छे हैं, इसलिए राग हो, यह बुरे हैं इसलिए (द्वेष)—यह मुझे नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! ज्ञाता हो गया न। दृष्टा और ज्ञाता, ऐसा आत्मा का स्वरूप है। आहाहा! ऐसे जानने-देखने के भाव में 'यह ठीक है और यह अठीक है' ऐसा कहाँ आया? परमात्मा या धर्मात्मा ठीक है तथा दुश्मन और मिथ्यादृष्टि अठीक है—ऐसा उसमें नहीं आता। आहाहा! समझ में आया? राग आवे कदाचित्, तथापि उस राग का ज्ञाता-दृष्टा समताभाव से है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

समस्त इन्द्रियों के व्यापार को... ओहोहो! कैसी शैली ली है! अणीन्द्रिय ऐसा जो मैं... अणीन्द्रिय ऐसा आत्मा, उसका अन्तर में भान है उसे, सर्व प्राणियों के प्रति, धर्मात्मा या अधर्मात्मा, अन्ध अज्ञानी हो या देखते केवली हो... आहाहा! भीखाभाई! यह कठिन बात। क्योंकि यह सब तो ज्ञेय है, एक सरीखे ज्ञेय हैं, ऐसा यहाँ कहते हैं। एक सरीखे ज्ञेय हैं। केवली धर्मात्मा के ज्ञेय में अन्तर है, मेरे लिये ज्ञेय में अन्तर है या अज्ञानियों में मेरे लिये ज्ञेय में अन्तर है—ऐसा नहीं है। आहाहा! देखो तो वीतरागमार्ग! आहाहा!

'**सम्मं मे**' समता है अर्थात् कि अणीन्द्रिय आत्मा के भान में मैं वर्तता हूँ, इन्द्रिय के व्यापार का हेयपना छोड़ दिया है। हेय है, उसे छोड़ दिया है। आहाहा! अर्थात् कि भावेन्द्रिय और द्रव्येन्द्रिय और उनका विषय, इन सबमें यह ठीक-अठीक है, यह बात छूट गयी है। आहाहा! ऐसे सर्व प्राणियों के प्रति समता है। देखो! यह धर्म, इसका नाम प्रत्याख्यान, इसका नाम मोक्ष का मार्ग। इसका नाम वीतराग परिणति अर्थात् दशा। ओहो! ज्ञेयों में खण्ड करना कि यह ठीक और यह अठीक, वह तो राग-द्वेष है। समझ में आया? मूलचन्दभाई! ऐसा मार्ग... ऐसा मार्ग। आहाहा!

दृष्टि परिवर्तन हो गया, बस हाँ! जहाँ दृष्टि पलटी, खण्ड इन्द्रिय और उसके विषय की रुचि में से, अवलम्बन में से दृष्टि पलटी और दृष्टि अणीन्द्रिय भगवान आत्मा

अतीन्द्रिय आनन्द का धाम... धाम... उसका स्वामी (हुआ), ऐसा। उसमें धर्मी की दृष्टि गयी, सब ज्ञेय ज्ञान के परज्ञेयरूप से विषय हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया यह? यह सादी गुजराती है, हों! यह फिर लोगों को ऐसा हो जाता है। अभ्यास नहीं न अभ्यास और पकड़ सका हो कि हमको आता नहीं, इसलिए जरा उलझन हो। गुजराती तो बहुत मीठी भाषा है। 'सरस' ऐसी भाषा हमारे भाई कहते हैं सेठिया। दीपचन्दजी सेठिया कहते हैं, आहाहा! ऐसी गुजराती! वह आवे तो 'आप गुजराती में ही वाँचो' ऐसा कहे। यहाँ भगवान आत्मा... आहाहा! ... भाषा भी चाहे जो हो, अणीन्द्रिय आत्मा की दृष्टिवन्त को सबमें समता वर्तती है, कहते हैं। आहाहा! और यह विषय है। ऐई! आहाहा! पण्डितजी! देखो! एक टीका कैसी की है!

मात्र '**सम्मं मे सव्वभूदेसु**' धर्मी ऐसा कहता है कि मुझे सबके प्रति समभाव है। देवीलालजी! सर्वज्ञ और धर्मात्मा के प्रति राग आवे, वह भी मेरी चीज़ नहीं। मुझे तो राग और उसके (-धर्मात्मा) के प्रति समताभाव है। आहाहा! समझ में आया? '**मज्झं**' है न? कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं ऐसा कहते हैं कि 'मुझे'। तब टीकाकार भी ऐसा कहते हैं कि 'मुझे'। ऐसा है न? '**सम्मं मे सव्वभूदेसु**' तुम सब समता रखना—ऐसा नहीं। मुझे समता है। किस अपेक्षा से समता का स्वरूप? कि अज्ञानी और ज्ञानी, यह सर्वज्ञ परमात्मा महाभेदविज्ञानी, इनके प्रति—ज्ञेय के प्रति भी मुझे ज्ञान में, परज्ञेय ज्ञान में ज्ञात हो, परन्तु 'यह ठीक है और यह अठीक है', ऐसा मेरे स्वरूप में है नहीं। आहाहा! समझ में आया? इन्द्रिय के विषय में रुके हुए को 'यह ठीक है, अठीक है' ऐसा भासित होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

सिर को काटनेवाला हो तो अठीक है, ऐसा इन्द्रिय के विषयवाले को भासित होता है, (परन्तु) ज्ञानी को भासित नहीं होता। आहाहा! और चन्दन चोपड़े चन्दन... शरीर में दाहज्वर हुआ हो, वह भी मेरे ज्ञान का परज्ञेयरूप से 'यह ठीक नहीं', ऐसा मेरे स्वरूप में ही नहीं। आहाहा! और उसे लेप करनेवाला—अनुकूलता करनेवाला 'वह ठीक है' यह इन्द्रिय के विषय के लोलुपियों को वह ठीक लगता है, ऐसा कहते हैं। मैं तो इन्द्रिय के विषय का जीतनेवाला हूँ, आहाहा! अर्थात् कि मेरा स्वरूप ही इन्द्रिय के विषय से भिन्न है। समझ में आया?

भावेन्द्रिय हो या द्रव्येन्द्रिय हो या उसके विषय निमित्त हों—सब इन्द्रिय है, सब तीनों इन्द्रियाँ हैं। तीनों को इन्द्रिय (कहा)। परमात्मा भी इस आत्मा के लिये इन्द्रिय है। पण्डितजी! ३१वीं गाथा, समयसार। ओहोहो! परमात्मा की दिव्यध्वनि इस आत्मा के लिये तो वह इन्द्रिय है। इन्द्रिय के विषयरूप से लक्ष्य जाये तो वह है। परन्तु वह इन्द्रिय का विषय जिसने जीता है... आहाहा! समझ में आया? ऐसे समकिती अर्थात् भेदविज्ञानी (कहते हैं कि) मुझे... और भेदविज्ञानियों के प्रति, ऐसा। भेदविज्ञानी ऐसे मुझे... यह इसमें नहीं, परन्तु 'मुझे' में यह आ गया। इन्द्रिय का व्यापार छोड़ा है, उसमें यह आ गया भाई! भावेन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय और विषय-वाणी या स्त्री या कसाई या चाहे जो... आहाहा! गजब बात है न! वह जिसने छोड़ा है अर्थात् भेदज्ञानी हुआ हूँ, ऐसा हो गया इसका अर्थ। अतीन्द्रिय स्वरूप का मैंने आदर किया है और इन्द्रिय के विषय को मैंने जीता है—छोड़ा है। आहाहा!

ऐसे भेदविज्ञानी—मुझे **भेदविज्ञानियों तथा अज्ञानियों के प्रति समता है;...** आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा तो ज्ञायकस्वरूप, ऐसा जहाँ खण्ड से अधिक होकर—भिन्न होकर भासित हुआ, उसे सब—जगत के प्राणी सब एक सरीखे भासित होते हैं अर्थात् कि ज्ञेयरूप से भासित होते हैं। ऐसा यह सज्जन है और यह मित्र है, यह मेरे गुरु है और यह मेरे वेरी हैं—ऐसा उसमें नहीं है, ऐसा कहते हैं। विषयरूप से दोनों समान पररूप से। कठिन पड़े ऐसा है न! व्याख्यान में आया था बहुत बार। भाई ने लिखा है न निहालभाई ने। व्याख्यान में तो बहुत बार आया है, परन्तु उन्होंने—भाई ने स्वयं लिखा है। चाहे स्त्री का विषय हो और चाहे तो वीतराग हो—दोनों परविषय है। भले उसमें शुभभाव हो, परन्तु विषयरूप से तो सब एक है। कठिन पड़े, ऐसा है। आहाहा! यह तो वीतरागमार्ग है। यह कहीं कल्पित और ऐसे घडतर करके किया, ऐसा नहीं है, वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। अणीन्द्रिय ऐसा मैं, इन्द्रिय से भिन्न पड़ा हुआ ऐसा मैं, इन्द्रियों को जीता हुआ ऐसा मैं... आहाहा! यह विषय की बात की। जिसने इन्द्रिय को जीता और भेदविज्ञानी है, परन्तु परज्ञेय है। मेरे लिये तो परज्ञेयरूप से स्वज्ञान में जाननेयोग्य है। समझ में आया? आहाहा!

मित्र-अमित्ररूप (मित्ररूप अथवा शत्रुरूप) परिणति के अभाव के कारण...

अब दूसरा बोल। '**वेरं मज्झं ण केणवि**' यह दूसरा बोल। पहले बोल की यह व्याख्या। आहाहा! हमारे पण्डितजी कहते हैं कि सबको एक मानना खटकता है। केवलज्ञानी केवलज्ञान को जानते हैं और निगोद को जानते हैं—उसमें अन्तर है उन्हें? ज्ञेयरूप से जानते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : कोई अपेक्षा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपेक्षा कैसी हो? पवित्र है, उसे पवित्ररूप से जानते हैं। उसमें जानने में 'यह ठीक है, अठीक है' ऐसा कहाँ आता है? ठीक-अठीक तो विकल्प हो गया, वह तो राग हो गया। आहाहा! मार्ग की पद्धति, बापू! वीतराग मार्ग की रीति—कला ही अलग है। दुनिया के साथ एक भी बोल का कहीं मिलान खाये, ऐसा नहीं है। आहाहा! वस्तु ऐसी है। ज्ञानस्वरूप ऐसा भगवान अतीन्द्रिय ऐसा जहाँ इन्द्रिय के खण्ड-खण्ड की रुचि छूटकर अखण्ड अतीन्द्रिय ज्ञान की जहाँ रुचि और अनुभव दृष्टि हुई, उसे तो सब ज्ञेय है। सिद्ध हो तो ज्ञेय और और कसाई हो तो ज्ञेय है। ज्ञेय में 'यह अच्छा और यह बुरा' ऐसा लिखा है? मूलचन्दभाई! आहाहा!

वस्तु का स्वरूप यह है, इसलिए उसका नाम सम्यग्दर्शन। आहाहा! चैतन्य भगवान अतीन्द्रिय आनन्द की कातली—मूर्ति के स्वादिया समकिती हैं। अज्ञानी विषय के स्वादिया हैं। आहाहा! चाहे तो त्यागी होकर बैठा हो बाहर से नग्न, परन्तु उसे विषय जो परवस्तु है, उसमें ठीक-अठीक लगता है, वह विषय के ही स्वादिया है। वह अज्ञान के और राग के स्वादिया हैं। आहाहा! कठिन मार्ग है, भाई! बड़े समाज के झुण्ड को बैठ जाये, ऐसी बात नहीं है। कोई विरल प्राणी को, पात्रजीव को (कि) जिसे संसार का किनारा नजदीक आ गया है... आहाहा! एक छलाँग मारकर मुक्ति में जानेवाला है, इतना अन्तर है थोड़ा। समझ में आया? आहाहा! उसे यह वीतरागमार्ग बैठता है। यह वस्तु। बस दृष्टि की अपेक्षा से बात है। अस्थिरता हो, वह तो जानने की बात है, वह भी ज्ञेय हो गया। समझ में आया? दृष्टि का द्रव्य के जोर का ही यहाँ कथन है। चारित्रदोष है, वह दोष वास्तव में तो ज्ञान का ज्ञेय है। समझ में आया?

यहाँ तो '**सम्मं मे सव्व**' क्या सन्तों की वाणी! आहाहा! वाणी भी 'ठीक है' यह आत्मा में नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वाणी तो ज्ञेय है, वह ज्ञान में आ नहीं जाती।

परन्तु जिसने आत्मा को इन्द्रिय से जीता, उसे वाणी भी मेरी और वाणी से मुझे लाभ होता है, यह भी जीता गया है, 'लाभ है', ऐसा है नहीं। आहाहा! कहो, भीखाभाई! भगवान से लाभ नहीं, ऐसा कहते हैं। वाणी—दिव्यध्वनि, वह भी विषय है। चिल्लाहट मचाये वे बेचारे। अरर! एक स्त्री और एक भगवान की वाणी, दोनों को समान कहते हैं। किस अपेक्षा से? सुन तो सही भाई! यह शुभ का निमित्त है, वह स्त्री आदि अशुभ का निमित्त है, परन्तु विषयरूप से तो एक ही है। आहाहा! उसमें स्वविषय आता नहीं। समझ में आया?

अजर प्याला पियो मतवाला, किन्ही अध्यातम वासा,
आनन्दघन चेतन व्है खेले, देखे लोक तमाश॥

ऐसा भगवान आत्मा, आहाहा! उस अतीन्द्रिय के ज्ञान में चढ़ा और इन्द्रिय के विषय को जिसने 'मेरे और मैं' ऐसा जीता गया है, वह नहीं; मैं तो यह हूँ। समझ में आया? आहाहा! उसे समता है। ओहोहो! क्या कहते हैं? स्थिर उसका स्वरूप ही है। ज्ञायक उसका स्वरूप ही है। समझ में आया? एक काम होने लगा हो, पुस्तक का एक दृष्टान्त, तो फिर झट हो जाये तो ठीक और झट न हो तो ठीक नहीं, यह ज्ञान के स्वभाव में है नहीं। समझ में आया? समझ में आया या नहीं इसमें? अन्तर परिणमन तो ठीक, परन्तु ज्ञानी को तो उसके प्रति का हठ नहीं। क्योंकि उससे तो भिन्न पड़ा है। इसलिए वह अवस्था कैसे होती है, कब होती है और कैसी होती है—इसके ऊपर उसका लक्ष्य है नहीं। आहाहा! गजब बात है। ऐ पोपटभाई! विकल्प आवे, परन्तु उसका भी ज्ञाता-दृष्टा है। इसलिए विकल्प का वह स्वामी नहीं। आहाहा! उसे विषय में डाल दिया। गजब बात है न! आहाहा!

मुमुक्षु : श्रेणिक राजा को क्षायिकभाव और उदयभाव दोनों होंगे?

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव हो तो क्या है? यहाँ ज्ञान का ज्ञेय है। मिथ्यादृष्टि है, वह ज्ञान का ज्ञेय है। निगोद में अनन्त अभव्य पड़े हैं। ज्ञान में जानते हैं, परज्ञेयरूप से जानते हैं। समझ में आया? उसका लक्ष्य करके जानते हैं, ऐसा नहीं। द्रव्य का लक्ष्य करके अपने को जाना है, उसमें अतीन्द्रिय ज्ञान में वह ज्ञात हो जाये, वह व्यवहार है। आहाहा! समझ में आया?

बापू! सुख का पंथ कोई बहुत निराला है। समझ में आया? दुनिया के साथ कहीं मिलान खाये, ऐसा नहीं है। कठिन काम। और उसमें बहुत लोग प्रसन्न न हों। लाखों इकट्ठे हुए तो वह क्या समझे? क्या कहते हैं यह? वह तो सबको ऐसा करना, उसमें ऐसी समता करना, सब मारे तो अपने को ऐसा करना, मारने न देना, ढींकणा होना। ओहो! अब समझ में आये मुझे। मारने न देना और मारे—वह क्रिया कहाँ आत्मा की है? आहाहा! वह दूसरा भी कहाँ दूसरे को मार सकता है? और दूसरे को जिला सकता है, ऐसा दूसरा कहाँ कर सकता है? आहाहा! यह विकल्प नहीं। यह विकल्प—राग है वह तो। राग आ जाये, अलग बात है और राग करनेयोग्य है और मेरी चीज़ में है—बड़ा अन्तर है। उस राग से मुझे लाभ होगा, यह माननेवाले ने राग को ही विषय बनाया है, आत्मा का विषय छोड़ दिया है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात सूक्ष्म! भगवान परन्तु... उसका फल यह वह कैसा? ऐसा सम्यग्दर्शन और समता का फल, अतीन्द्रिय आनन्द का साध्य सिद्ध भगवान, वह उसका फल। और अज्ञान का फल तो नरक और निगोद है। आहाहा!

अरे! इसी प्रकार अज्ञानी और भेदविज्ञानी के प्रति एक भाव समता... यह लो, भाषा देखो न! यह प्रत्याख्यान। यह परवस्तु का मुझे सहज त्याग ही है। आहाहा! राग और पर का तो मुझमें अभाव है। मैंने परसन्मुख की रुचि छोड़कर द्रव्य की दृष्टि की, इसलिए मुझे सब त्याग ही है। यहाँ विशेष स्थिरता है, इसलिए उसमें अस्थिरता का भी त्याग है। उसे प्रत्याख्यान कहा जाता है। ऐ पोपटभाई! संवत्सरी के करो अपवास, आठ अपवास, हो गया धर्म, तपस्या। आज से शुरु करते हैं... परन्तु महीनेवाले ने पहले से शुरु किये। महीने-महीने के अपवास। ओहोहो! वाह! वाह! अपने से न हो, परन्तु होवे उसकी प्रशंसा तो करो। मिथ्यात्व की प्रशंसा है। आहाहा!

मित्र-अमित्ररूप... दूसरी व्याख्या। '**वेरं मज्झं ण केणवि**' दूसरे पद की व्याख्या। ३५ मिनिट हुए न? मुझे शत्रु, अशत्रु—मित्र, उसका विकल्प—राग ही नहीं है मुझे, कहते हैं। उसकी तो परिणति का तो अभाव है। आहाहा! उसके कारण मुझे... '**सम्मं मे सव्वभूदेसु वेरं मज्झं ण केणवि**' ऐसा वापस आया न? यहाँ भी '**मज्झं**' आया। मुझे नहीं। टीकाकार कहते हैं, कुन्दकुन्दाचार्य वर्णन करते हैं, ऐसा टीकाकार भी कहते हैं

कि **मुझे किसी प्राणी के साथ बैर नहीं है;...** समझ में आया? जहाँ आत्मा अणीन्द्रिय आनन्द की वेदनदशा प्रगट हुई, किसके साथ वेर? आहाहा! आनन्द के साथ जहाँ मैत्री बाँधी, जगत में शत्रु कौन है? सब भगवान आत्मा... आहाहा! मित्र-अमित्र की अवस्था का ही मुझमें अभाव है, ऐसा कहते हैं। इस कारण किसी प्राणी के साथ मुझे वेर नहीं। आहाहा! कठिन मार्ग ऐसा कठोर। उसकी व्याख्या भी यह। आहाहा! वस्तु की स्थिति है, ऐसा उसका ज्ञान होना चाहिए न! उसकी जो स्थिति है, उसकी जो मर्यादा है, ऐसा उसे ज्ञान हो, तब तो वह ज्ञान सच्चा और उसकी मर्यादा से आगे जाकर ज्ञान करे उल्टा, तो वह ज्ञान उल्टा है। समझ में आया?

तीसरा बोल। '**आसाए वोसरित्ता णं**' कहते हैं, मैं आत्मा **सहज वैराग्यपरिणति के कारण...** वह वेर... मित्र-अमित्र परिणति का अभाव और यह सहज... पर से, पुण्य और पाप के विकल्प से भी रहित **सहज वैराग्यपरिणति के कारण...** आहाहा! स्वाभाविक अणीन्द्रिय आत्मा के भानवाला मैं, पर से स्वाभाविक वैराग्य की परिणतिवाला मैं, ऐसा। आहाहा! 'मुझे' यह डाला न उसमें वापस। '**आसाए वोसरित्ता णं**' उन सबमें 'मुझे' 'मुझे' डालना, भले उसमें शब्द नहीं है। परन्तु वह तो '**मज्झं**' में डाल दिया। '**सम्मं मे सव्वभूदेसु वेरं मज्झं ण केणवि। आसाए...**' मुझे '**वोसरित्ता णं**'—मैं छोड़ देता हूँ। **मुझे कोई भी आशा नहीं वर्तती;** आहाहा! किसकी आशा? आनन्दमूर्ति प्रभु आत्मा की भावना में रुका हुआ, (उसे) पर की आशा है ही कहाँ? आहाहा! समझ में आया?

'आशा औरन की क्या कीजे, ज्ञान सुधारस पीजे, आशा औरन की क्या कीजे...' आशा दासी है जो जाया, वह जग में दास... दास है वह तो, कहते हैं। आहाहा! किसकी आशा? भगवान त्रिलोक का नाथ परमात्मा का जहाँ सम्यग्दर्शन-ज्ञान में साक्षात्कार हुआ, उसे किस वस्तु की आशा होगी? आशा का पूर्ण करनेवाला प्रभु आत्मा तो दृष्टि में आ गया है। आहाहा! समझ में आया? (जिससे) केवलज्ञान की पूर्ति होगी, ऐसा जो भगवान तो प्रतीति में और भरोसे में और अनुभव में आ गया है। आहाहा! **आशा नहीं वर्तती;...** किसके कारण? पर के प्रति **सहज वैराग्यपरिणति के कारण...** मुझे आशा ऐसी नहीं है। ऐसी वैराग्य परिणति है, इसलिए आशा नहीं। देखो! यह सम्यग्दर्शन से

लेकर यह बात है। यह तो उत्कृष्ट प्रत्याख्यान की बात ली, परन्तु माँडकर यहाँ से बात है। सम्यग्दर्शन में मिथ्यात्व का प्रत्याख्यान—त्याग है न! अनन्तानुबन्धी का त्याग है। आगे जाये तो प्रत्याख्यानीय और अप्रत्याख्यानीय का त्याग सहजरूप से वैराग्य परिणति से वर्तता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

परम समरसीभावसंयुक्त... 'समाहि पडिवज्जए' है न? यह 'नहीं... नहीं' करे, तब है क्या? परम समरसीभावसहित... मैं तो वीतरागभाव के रसवाला हूँ। राग के रस से छूट गया हूँ। आहाहा! **परम समरसीभावसंयुक्त परम समाधि का मैं आश्रय...** अर्थात् प्राप्त **करता हूँ (अर्थात् परम समाधि को प्राप्त करता हूँ)।** है न? पाठ तो उसमें 'आश्रय करता हूँ' यह है, परन्तु उसका अर्थ यह कि परम शान्त... परम शान्त... निर्विकल्प आनन्द की समाधि, शान्ति को मैं प्राप्त करता हूँ। पाठ तो 'आश्रय' है टीका का। आश्रय तो द्रव्य का है। उस पर्याय को प्राप्त करता हूँ, इसलिए उसका आश्रय है, ऐसा कहने में आया है। सेठी! यह तो अगम्य की बातें हैं। आहाहा!

'आश्रय' का अर्थ किया प्राप्ति। लिखा न भाई ने। पण्डितजी ने लिखा है, **परम समाधि को प्राप्त करता हूँ।** आश्रय अर्थात् पर्याय का—समाधि का आश्रय करता हूँ, अवलम्बता हूँ, ऐसा नहीं। अवलम्बन तो द्रव्य का है, परन्तु उसके अवलम्बन में शान्त अविकारी परिणति को प्राप्त होता हूँ। आहाहा! ऐसा मार्ग, उससे दूसरा विपरीत सुनने को मिले तो ऐसा सुनने को मिले नहीं, अब उसे समझ हो नहीं (और) कब रुचि कहाँ जमे? आहाहा! तब यह कहते हैं कि पुण्यपरिणाम करने का निषेध करते हैं। अरे भगवान! सुन भाषा। पाप करना, ऐसा कहते हैं इसमें? आहाहा! यहाँ तो पाप और पुण्य के दोनों विकल्प, प्रभु! जहर है, दुःख है। उसमें से दृष्टि बदल। अकेला भगवान पुण्य-पापरहित पिण्ड आनन्दकन्द प्रभु है, उसमें दृष्टि लगा। इसलिए दृष्टि में पुण्य को हेय और त्याग कहा जाता है। आहाहा!

क्या हो? ऐसा अर्थ किया, लो! पुण्य को हेय बनावे, इसलिए इसका अर्थ ही यह हो गया कि तुमको पाप करने की छूट है। लो! अरर! भगवान! तूने यह क्या किया! अति हेय होती है। जहाँ पुण्य को हेय (कहा), वहाँ पाप तो महा दुःखदायक हेय, हेय और हेय। मिथ्यात्व और सब आ गया उसमें। एक अशुभराग सूक्ष्म में सूक्ष्म—छोटा

हेय है। जहाँ शुभराग हेय, वहाँ अशुभराग का क्या कहना? कहा नहीं प्रतिक्रमण के अधिकार में? हम ऊँचे-ऊँचे चढ़ाना चाहते हैं दृष्टि और स्थिरता, उसके बदले तू ऐसी बात सुनकर नीचे-नीचे कहाँ उतरने की बात करता है? आहाहा! भाई! तेरा रास्ता ऊँचा साफ करने की बात तुझे कहते हैं। बीच में जो शुभाशुभ आवे, वह मैल है, उसमें से छूटकर जा, ऐसा हम कहते हैं। उसके बदले तू (ऐसा माने कि) पुण्य हेय है, इसलिए अब पाप करूँ। प्रभु! यह तू क्या करता है? समझ में आया? आहाहा!

परम समरसीभावसहित... परम समाधि का मैं... वह समाधि अर्थात् यह वीतराग परिणति, हों! वे बाबा करें समाधि, वह समाधि नहीं। आधि, व्याधि और उपाधिरहित, वह समाधि। आधि अर्थात् मन-वचन-काया से उत्पन्न होते संकल्प-विकल्प; शरीर में रोगादि, वह व्याधि; यह बाहर का संयोग, वह उपाधि—तीन से रहित वह समाधि। समझ में आया? आहाहा! अरे! इसे अनन्त काल का पलटा मारना है न, उसके लिये तो अनन्त पुरुषार्थ चाहिए। आहाहा! दृष्टि को पलटा डालना है, वह कहीं साधारण बात है? आहाहा! दिशा पलटने से दशा पलट जाती है। पर के ऊपर की दिशा के ऊपर लक्ष्य था, वह सब राग और द्वेष थे। समझ में आया? भगवान आत्मा... आहाहा! अपना परम अतीन्द्रिय आनन्द का स्वरूप—रूप उसे वेदते, उसके सन्मुख होकर उसे वेदने से सब आशा उड़ जाती है। आशा होती नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! परम समाधि को प्राप्त करता हूँ, ऐसा है न वह? आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द को प्राप्त करने से कोई भी आशा पर के लिये रहती नहीं कि स्वर्ग मिले तो ठीक, स्वर्ग में यह हो तो ठीक, फलाना... वह उसके घर में। मैं जहाँ हूँ, वहाँ स्वर्ग भी नहीं; मैं जहाँ हूँ, वहाँ नरक भी नहीं; मैं जहाँ हूँ, वहाँ नरक और स्वर्ग के भाव भी मुझमें नहीं। समझ में आया? आहाहा!

इसी प्रकार श्री योगीन्द्रदेव ने (अमृताशीति में २१ वें श्लोक द्वारा) कहा है कि:— आधार देते हैं।

मुक्त्वालसत्वमधिसत्त्वबलोपपन्नः,
स्मृत्वा परां च समतां कुलदेवतां त्वम्।
सञ्ज्ञानचक्रमिदमङ्ग गृहाण तूर्ण-
मज्ञान-मन्त्रि-युत-मोह-रिपूपमर्दि॥

श्लोकार्थः—हे भाई! स्वाभाविक बल सम्पन्न ऐसा तू... आहाहा! उसमें आया था कि बलवाला भी मरे तब हाय! हाय! स्वाभाविक बलसम्पन्न हो। शरीर का बल नहीं, वाणी का नहीं, वह तो परवस्तु है। यहाँ तो अन्दर में स्वाभाविक अनन्त बल—अनन्त वीर्य सम्पन्न प्रभु है। बड़ा वीर, शूरवीर और धीर है। आहाहा! समझ में आया? **स्वाभाविक बल सम्पन्न...** जिसका बल अनन्त-अनन्त जहाँ अन्तर में है, उसे कहते हैं कि तू **आलस्य छोड़कर, उत्कृष्ट समतारूपी कुलदेवी का स्मरण करके,...** तुझमें महा अनन्त महाबल है। उसमें से अनन्तवें भाग में बल करना है। समझ में आया? आहाहा! **स्वाभाविक बल सम्पन्न ऐसा तू आलस्य छोड़कर,...** यह 'तजकर' कहा न? यह प्रत्याख्यान है सही न!

उत्कृष्ट समतारूपी कुलदेवी का... स्मरण कर। आहाहा! तेरी कुलदेवी, समतारूपी परिणति वह तेरी कुलदेवी। यह लोग नहीं कहते? कि हमारी कुलदेवी यह है, यह हमारे कुलदेव सुरधन हैं। धूल भी नहीं, सुन न! तेरी कुलदेवी तो तेरी वीतरागपरिणति, वह तेरी कुलदेवी है। वह कुलदेवी है। हमारे अम्बाजी को मानना, सिकोतेर को और भवानी और... कैसी कहलाती है यह चक्री? चक्रेश्वरी। वह है न पालीताणा में, नहीं? एक चक्रेश्वरी देवी है। भोंयरा में है न? चक्रेश्वरी। ऐसे... धर्म के... यह तो कुलदेवी, तेरी समतारूपी कुलदेवी। आहाहा! परिणति है न, इसलिए यह ली है।

स्वरूप तो वीतरागमय और अनन्त बलसम्पन्न है। उसमें से उसका आश्रय करके, उत्कृष्ट बल को प्रगट करके, शान्तिदेवी को प्रगट करके—स्मरण करके **अज्ञानमन्त्री सहित मोहशत्रु का नाश करनेवाले...** आहाहा! **अज्ञानमन्त्रीसहित...** भानमूढ़ता का मन्त्री और मोहशत्रु उसका राजा। आहाहा! उसका नाश करनेवाला **इस सम्यग्ज्ञानरूपी चक्र को शीघ्र ग्रहण कर।** लो, छह खण्ड का धनी चक्र रखता है या नहीं ऐसे? देखो न! भरत ने मारा था न बाहुबली को। संसार ऐसा है। आहाहा! एक गोत्र के और उसी भव से मोक्ष जानेवाले। उन्हें खबर थी, हों! परन्तु राग के भूले... आहाहा! चक्र फेंका। बाहुबली के हाथ में आ गया। आहाहा! धिक्कार संसार को कि गोत्रगर्दन करने चक्र चलाया और चरमशरीरी को मारने। आहाहा! यह संसार! छोड़ दिया। वीतरागमूर्ति खड़े होकर हुए एकदम। क्या कहलाता है वह? श्रवलबेलगोल।

कहते हैं, **उत्कृष्ट समतारूपी...** उसको तजकर या नाश करके और इसे प्रगट करके... अज्ञान और मोह को नाश कर, ऐसा सम्यग्ज्ञानरूपी चक्र चला। आहाहा! भगवान में ज्ञान की धारा, पूर्णानन्द की धारा बहती है, ऐसे **सम्यग्ज्ञानरूपी चक्र को शीघ्र ग्रहण कर।** आहाहा! वह उपादेय है, ऐसा। यह उत्पन्न कर, उसको छोड़। आलस्य को छोड़ और इसे ग्रहण कर, ऐसा। आहाहा! लो, यहाँ समतारूपी कुलदेवी कही आत्मा की। यह हमारी देवी है और यह हमारे देव हैं।....जैन में भी भ्रमणा। जैनकुल में नाम(धारी) जैनरूप से आये तो भी उसकी भ्रमणा का पार नहीं होता।

मुमुक्षु : कुलदेवी है सही।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुलदेवी है। वीतराग परिणति वीतरागरूप हो गये, उनके कुल की देवी वह है। आहा! समता... समता... समझ में आया? यह श्लोक कहा।

शीघ्र ग्रहण कर, ऐसा। वायदा न रख। धीरे-धीरे करूँगा, बाद में करूँगा—ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। यह तारीख डालते हैं न! क्या कहलाता है? तुम्हारे केस में अभी काम नहीं चले, पन्द्रह दिन बाद आयेगा। फिर और जाये तो अभी नहीं चले, सवा महीने चलेगा। तारीख पड़ती है न अवधि। ऐसी यहाँ तारीख न डाल। कोर्ट में फिर बारह महीने बाद पड़ेगी। ऐसे करते-करते दो-दो वर्ष में केस पूरा नहीं हो, निकलता ही नहीं। यह तो कहते हैं, शीघ्र ग्रहण कर। भगवान ज्ञानस्वरूप चैतन्यबिम्ब प्रभु को सन्मुख होकर ज्ञान की परिणति को उग्र कर कि जिससे अज्ञानमन्त्री और मोहशत्रु का नाश हो जाये। इसके अतिरिक्त दूसरा उपाय नहीं है। यह नाश का उपाय कहा। दया, दान, व्रत और भक्ति करें और मोह का नाश होगा? (नहीं)। वह राग स्वयं मोह है। समझ में आया?

यह और ऐसा भी लिखा है... इसलिए। वह तो राग से राग का नाश होता है। कहो! .... लगा हो तो हरड़ खाये, तो हरड़ भी निकल जाये और वह भी निकल जाये इकट्ठा। यह तो बहुत वर्ष से सुनते हैं ५०-६० वर्ष से। आहाहा! यह अभी ही आया था। किसी ने डाला था। और कहे कि व्यवहार हेय है। नहीं, उसके पुण्य से ही पाप का नाश होगा। अरे! गजब करते हैं न! पुण्य, वह विकार, दु:ख। उस दु:ख से दु:ख को जीता जाये? आहाहा! क्या हो? जिसे बैठा हो... उस पर्याय में उस प्रकार की बात बैठी हो। ऐसी लगे कि यह तो अकेली निश्चय की सच्ची ही बात करते हैं—ऐसा लगे उसे।

निश्चय अर्थात् सच्ची, व्यवहार अर्थात् खोटी। यह करते नहीं। बहुत ऊँची वापस। है वह है, ऊँची कहो या नीची कहो, यह है।

और (इस १०४वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं):—

मुक्त्यङ्गनालिमपुनर्भवसौख्यमूलं,
दुर्भावनातिमिरसंहतिचन्द्रकीर्तिम्।
सम्भावयामि समता-मह-मुच्चकैस्तां,
या सम्मता भवति संयमिना-मजस्त्रम्॥१४०॥

श्लोकार्थः—जो (समता) रूपी... यहाँ वीतरागता लेनी है न ? आत्मा का स्वरूप जानने से जो वीतरागता प्रगटे... सम्यग्दर्शन, वह वीतरागता है। मुक्तिरूपी स्त्री के प्रति वह समता भ्रमर समान है। वह पुण्य और पाप के राग रहित आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान और शान्ति, वह समता। समकित स्वयं समता, आत्मा का ज्ञान, वह समता और उसमें शान्ति वह भी एक समता। वह समता मुक्तिरूपी स्त्री के प्रति भ्रमर समान है। मुक्ति स्त्री में रत है। समता मुक्तिरूपी स्त्री में रत है। उससे मुक्ति मिलेगी। पुण्य और पाप के विकल्प से मुक्ति मिलेगी नहीं, ऐसा कहते हैं। **जो मोक्षसौख्य का मूल है,...** वीतरागपरिणति जो राग और पुण्य बिना की, ऐसा सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की दशा, वह मोक्षसुख का मूल है। समता में तीनों डाले, तीनों।

जो दुर्भावनारूपी तिमिरसमूह को (नष्ट करने के लिए) चन्द्र के प्रकाश समान है... दुर्भावना विकार की, ऐसा जो अन्धकार अज्ञानभाव... अज्ञान अर्थात् ज्ञानरहित। उसे **(नष्ट करने के लिए) चन्द्र के प्रकाश समान है...** आहाहा! **और जो संयमियों को निरन्तर सम्मत है,...** संयमियों को तत्काल सम्मत है। समकिती को सम्मत है, परन्तु अभी उसे अस्थिरता रहती है। शान्ति... शान्ति... वीतरागता अन्दर, आनन्द का जहाँ ओघ... विकार का भाटा और आनन्द का जहाँ ज्वार आता है। आहाहा! ऐसे संयमी को समता तो तत्काल सम्भत है। **उस समता को मैं अत्यन्त भाता हूँ।** लो, स्वयं कहते हैं। **'मज्झं' 'मज्झं'** था सही न! उस वीतरागभाव को मैं भाता हूँ अर्थात् कि उसे प्राप्त करने का मेरा भाव है। भावना तो द्रव्य की हो, परन्तु द्रव्य की भावना में वीतरागपरिणति को प्राप्त करनी है, इसलिए उसे 'भाता हूँ' ऐसा कहा जाता है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण कृष्ण १५, शुक्रवार, दिनांक - २०-८-१९७१
श्लोक-१४१, गाथा-१०५, प्रवचन-१००

निश्चय-प्रत्याख्यान अधिकार। वीतराग परिणतिरूपी चारित्र, उसका यह प्रत्याख्यान अन्तर्भेद है। १४१ कलश है।

जयति समता नित्यं या योगिनामपि दुर्लभा,
निजमुखसुखवार्धिप्रस्फारपूर्णशशिप्रभा।
परम-यमिनां प्रव्रज्यास्त्रीमनःप्रिय-मैत्रिका,
मुनिवरगणस्योच्चैः सालङ्क्रिया जगतामपि॥१४१॥

क्या कहते हैं ? कि आत्मा में वीतरागतारूपी समता प्रगट होना... राग तो अनादि का प्रगट होता है। पुण्य और पाप के विकल्प तो विकार हैं, परन्तु वीतरागता धर्म का स्वरूप है, वह सब शास्त्र का तात्पर्य भाव है। आत्मा में वीतरागतारूपी समता....

श्लोकार्थ—जो योगियों को भी दुर्लभ है,... 'योगिनामपि दुर्लभा' क्या आता है ? दूसरे में आता है न ? सेवनो। सेवा तो योगियों को भी गहन है, ऐसा लोग कहते हैं। सेवा... सेवा... दुनिया की सेवा करना, वह तो योगी को दुर्लभ है, ऐसा एक पत्र में आया था। जैन के पत्र में, हों! यहाँ तो कहते हैं, सेवा किसकी ? पर की सेवा कर सकता है कहाँ ? और पर की सेवा का भाव है, वह शुभभाव-पुण्य है, राग है, वह कहीं गहन नहीं। एक पण्डित ने लिखा था। पत्र में आया है। 'सेवा योगीनामपि गहनम्।' पण्डित था, उसने लिखा था। धूल भी गहन नहीं। यह गहन तो योगियों को दुर्लभ वीतरागभाव कि जो वस्तु अखण्ड-आनन्द प्रभु, उसके उग्र आश्रय से प्रगट हो, वह आत्मा की सेवा से जो प्रगट हो, ऐसी वीतरागता योगियों को भी दुर्लभ है। आहाहा! समझ में आया ? भीखाभाई! लोग ऐसा कहते हैं। पैसा-बैसा कुछ दिया हो पाँच-पचास हजार और निवृत्ति ली हो, इसलिए ऐसा कि यह सेवा करते हैं, वह योगियों को भी दुर्लभ है, ऐसा।

यहाँ तो मुनि पद्मप्रभमलधारिदेव पंच महाव्रतधारी व्यवहार से थे। निश्चय से स्वरूप के धरनेवाले थे। वीतरागभाव जिसे, अन्तर भगवान निधान चिदानन्द प्रभु के अवलम्बन से, उग्र आश्रय से जिसने वीतरागता प्रगट की, वह प्रत्याख्यान और वह चारित्र है। **जो योगियों को भी दुर्लभ...** सन्तों को भी अन्दर उग्ररूप से वस्तु का आश्रय लेकर प्रत्याख्यान अर्थात् चारित्र की वीतराग परिणति प्रगट करना दुर्लभ है। पर का आश्रय छोड़कर... अनादि से पर के संस्कार, पर का आश्रय, पर का अवलम्बन (लेना), वह अनादि से आदतन हो गया है। उसमें से कहते हैं कि आत्मा भगवान पूर्णानन्द प्रभु, उसका उग्ररूप से आश्रय लेकर जो समता-वीतरागता होना दुर्लभ है। आहाहा! यह पैसा मिलना दुर्लभ है, यह व्रत पालना दुर्लभ है—ऐसा यहाँ नहीं कहा।

मुमुक्षु : एक जगह कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा हो, वह तो स्वरूप की स्थिरता की अपेक्षा से। अन्दर स्वरूप की स्थिरता हो, उसे महाव्रत बड़े ऐसा कहा है। महाव्रत महापुरुष पालते हैं। है न? पण्डितजी! महाव्रत है न, तो उसका अर्थ ऐसा करते हैं। उसे महापुरुषों ने पालन किया। उसका अर्थ कि जहाँ स्वरूप की ध्रुव-ऊपर बहुत ही उग्रता और आश्रय से जो वीतरागता प्रगटी है, वहाँ आगे ऐसे पंच महाव्रत के विकल्प होते हैं। पालन की है स्वरूप की स्थिरता, परन्तु व्रत पालते हैं, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया?

जो समता... समता अर्थात् वीतरागता, वीतरागता अर्थात् चारित्र की रमणता, प्रत्याख्यान—यह सब एकार्थवाचक है। यह सब वस्तु भगवान... आहाहा! जिसने अपनी शक्ति पर अनन्त काल से नजर की नहीं। आहाहा! महा अतीन्द्रिय आनन्द का भण्डार, अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द का भण्डार, ऐसा परम स्वतत्त्व का उग्ररूप से आश्रय लेना... जघन्यरूप से आश्रय लेना, वह समकित है। उग्ररूप से आश्रय लेना, इसका नाम चारित्र है। आहाहा! समझ में आया?

जो निजाभिमुख सुख के सागर में ज्वार लाने के लिए पूर्ण चन्द्र की प्रभा (समान) हैं,... आहाहा! स्वरूप के अवलम्बन से प्रगट हुई समता—वीतराग निर्विकल्प

दशा, जो निज अभिमुख सुख के सागर में... देखो! यह वीतरागता स्वरूप के अवलम्बन से प्रगट होती है। सम्यग्दर्शन, वह वीतरागता है। सम्यग्ज्ञान, वह वीतरागता है और सम्यक्चारित्र, वह तीनों वीतरागता है। कहते हैं कि जो समता—वीतरागता चारों अनुयोगों का तात्पर्य है। चार—अनुयोग शास्त्र है न? उसका तात्पर्य वीतरागता है। समभाव है, समता है। वह समता... ऐसे समता रखना राग की मन्दता की, उस समता की यह बात नहीं। आहाहा! जिसमें वीतरागता वस्तु के स्वभाव में... अरे! विश्वास (आना कठिन)।

भगवान आत्मा में पूर्ण अचल वीतरागता के स्वभाव का भण्डार है। उसमें उसका आश्रय करके, उसे ध्येय बनाकर जो वीतरागता प्रगट हो, वह निज अभिमुख सुख के सागर में... आहाहा! कहते हैं कि अपना आत्मा, उसके सन्मुख हुआ—अभिमुख हुआ सुख... उसमें से प्रगट हुआ सुख, ऐसे सुख के सागर में... आहाहा! सम्यग्दर्शन में भी सुख की दशा है। सम्यग्दर्शन प्रथम धर्मदशा, उसमें उस अतीन्द्रिय आनन्द के आश्रय से सुख की प्रशमता—शान्ति प्रगट हुई होती है। आहाहा! समझ में आया? यह तो निजाभिमुख उग्ररूप से सुख का सागर प्रगट हुआ है, कहते हैं। पर्याय... मुनि की दशा की बात है न! आहाहा! अतीन्द्रिय सागर आनन्द, वह नहीं, परन्तु उसके आश्रय से, उसमें एकाग्र होकर अतीन्द्रिय आनन्द का सागर उछला है, कहते हैं। आहाहा! कहो, सेठ! वह तुम्हारा सागर नहीं। आहाहा!

सुख के सागर में ज्वार लाने के लिए... भरती समझते हो? बाढ़। बाढ़ आती है। आहाहा! भगवान पूर्ण सुख का सागर, अपरिमित—मर्यादा बिना की जहाँ सुख की दशा, जहाँ सुख का स्वरूप पड़ा है। भगवान अन्तर में उसके सन्मुख होकर... आहाहा! राग और निमित्त से विमुख होकर। यह नियमसार है न! नियमसार अर्थात् मोक्ष का मार्ग। वस्तु के निजाभिमुख—निज अभिमुख से प्रगट हुई आनन्द और वीतरागदशा है। उसका नाम मोक्ष का मार्ग परमात्मा फरमाते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा भी कहना चाहते हैं कि जो चारित्र अर्थात् समताभाव है, वह आनन्दरूप है, दुःखरूप नहीं।

लोग ऐसा कहते हैं न? चारित्र तो बापू! बालू (रेत) के ग्रास हैं। दूध के दाँत से

वेळु... वेळु समझते हो? बालू। बालू होती है न? रेत... रेत। दूध के दाँत से रेत चबाना, ऐसा चारित्र दु:ख है, कठिन है। यह बात झूठी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भाई! तुझे खबर नहीं। चारित्र तो आनन्ददायक है, उसे दु:खदायक मान (तो) तुझे वस्तु की खबर नहीं। वह चारित्र अर्थात् कि पंच महाव्रत के परिणाम और नग्न की क्रिया, वह नहीं। भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का सागर छलाछल भरपूर तत्त्व है। उसमें डुबकी लगाकर—एकाग्र होकर जो आनन्द की छोळ—ज्वार आवे, वर्तमान किनारे—पर्याय में... आहाहा! अरे! व्रत और कष्ट सहन तो करके देखो! कैसे कठिन व्रत हैं। अरे! ऐसा नहीं, प्रभु! तुझे खबर नहीं। आहाहा!

यह चारित्र तो **निजाभिमुख सुख के सागर में ज्वार लाने के लिए पूर्ण चन्द्र की प्रभा (समान)...** वीतरागता है। यह चारित्रता कहो, समता कहो, वीतरागता कहो, प्रत्याख्यान कहो। आहाहा! जैसे सागर में पूर्णिमा हो, तब उसका ज्वार बहुत आता है। पूर्णिमा हो न, पूर्णिमा? पूर्णिमा का चन्द्र। ज्वार बहुत आवे—बाढ़ बहुत आवे। चन्द्र को और सागर को ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। जब चन्द्र पूर्णिमारूप से खिला हो, तब समुद्र भी ऐसे ज्वार में—बाढ़ में उछल जाता है। दो-दो, तीन-तीन सिर डूबे उतना उछले। यहाँ तो हमने देखा है पोरबन्दर। पोरबन्दर नजदीक से देखा। वहाँ ही सामने हम उतरे हुए थे। समुद्र के किनारे उतरने का स्थान था। क्या कहलाता है वह? टाउन हॉल। ऊपर वहाँ उतरे थे। वहाँ ही समुद्र है इस ओर। वंडी है ऊपर। वह समुद्र दिखता है। उफान मारे, जब पूर्णिमा हो। चन्द्र... आज तो अमावस्या है। पूर्णिमा को पूर्ण महीना होता है न। अमावस तो अर्धमास है। महीनो पूर्ण हो तब चन्द्र पूर्ण हो और समुद्र उछलता है, कहते हैं। आहाहा!

इसी प्रकार समता अर्थात् भगवान आनन्द के धाम का आश्रय लेकर—उग्र आश्रय लेकर जो समता और वीतरागता आयी, वह वीतरागता सुख के सागर में जो ज्वार आता है, वह ज्वार लाने में चन्द्रमा के समान है। आहाहा! समझ में आया? अरे! प्रभु! तेरा सुख कहीं अन्यत्र नहीं, ऐसा कहते हैं। शरीर में नहीं, पैसे में नहीं, कीर्ति में नहीं, नहीं पाप के भाव में सुख, नहीं पुण्य के भाव में सुख। वह तो दु:ख है। भगवान आत्मा के आनन्द का जहाँ आश्रय लिया है और समुद्र में जैसे गोते खाकर अन्दर

पड़कर जैसे मोती लावे, वैसे भगवान आत्मा अपना स्वभाव सागर में एकाग्र होकर... यह बात वह कहीं बात है! दशा पलटकर दिशा पलट जाना... आहाहा!

निज अभिमुख... भगवान आत्मा के सन्मुख होकर जो आनन्द प्रगट होता है, वह आनन्द प्रगट में होने (अर्थात्) ज्वार लाने में वह पूर्ण चन्द्र की प्रभा समान समता है। आहाहा! ऐसा कहते हैं कि चारित्र में कहो, वीतरागता में कहो या समता कहो, उसमें आनन्द है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहा! अरे! हमारे सहन करना पड़े, नंगे पैर चलना पड़े, गर्म पानी पीना, लोंच कराना और यह तीक्ष्ण धार के जैसे व्रत पालना... अरे! भगवान! क्या कहते है? भाई! वह तो बाह्य दृष्टि है। आहाहा! शब्द भी कैसे प्रयोग किये हैं, कम पड़ते हैं मानो! भाई ने लिखा है न पण्डितजी ने? कहीं इसमें लिखा है? कहीं लिखा है। प्रस्तावना में लिखा है कि शब्द कम पड़ते हैं। पाठ है न? देखो ने! '**निजमुख**' ऐसा है न? '**निजमुख**' भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द का धाम, उसके सन्मुख—निज के सन्मुख और विकार तथा संयोग से विमुख। आहाहा! यह कुछ बात है! यह कहीं बात में बैठे ऐसा है? आहाहा! अनन्त-अनन्त जिसमें पुरुषार्थ है। ऐसी दशा है, उसे ऐसे कर डालना। '**निजमुख**' शब्द प्रयोग किया है। ऐसी जो समता, वह सुख के सागर की बाढ़ लाने के लिये, सागर को जैसे चन्द्र (निमित्त) है, वैसे यह चन्द्र है। चन्द्र समान है यह। शान्ति... शान्ति... शान्ति... ऐसा कहा।

जो परम संयमियों की दीक्षारूपी स्त्री के मन को प्यारी सखी है... वस्तु भगवान परमतत्त्व के अवलम्बन से—आश्रय से जो वीतरागता प्रगट हुई, वह वीतरागता परम संयमियों की दीक्षा—चारित्र, उसकी जो स्त्री, चारित्र दीक्षारूपी—प्रव्रज्यारूपी स्त्री, उसके मन को प्रिय सखी है। समता अर्थात् वीतरागता मुनियों को प्रिय है, ऐसा कहते हैं। राग प्रिय नहीं। आहाहा! समझ में आया? पंच महाव्रत के परिणाम, वे प्रिय नहीं, ऐसा कहते हैं, भाई! इसमें। आहाहा! हो, प्रिय नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो वीतराग के घर के मण्डप हैं। समझ में आया? उस वीतराग के घर के मण्डप में किसके गीत होंगे? राग के होंगे? कहो, विवाह के समय तो 'उपाडो' कहा जाता है, वह ठीक नहीं कहा जाता, लो। 'तेडो' कहा जाता है, भाषा भी देखो न!

कहा था न? हमारे ऐसा हुआ था न! संवत् १९६४ के वर्ष। १९६४-६४। हमारे

फावाभाई का विवाह था। चौदह वर्ष की उम्र, मेरी अठारह की। मैं उनका अणवर हुआ था, वह सम्हालने। गहने-बहने हो न मूल तो वह। उसमें उसके कारण बैठाने गये गाड़ी में। मैंने कहा, उपाडो। उसको ऐसा हो कि विवाह में उपाडो नहीं कहा जाता। हम तो भगत व्यक्ति। अपने को कुछ लोक की (खबर नहीं)। कहा, उपाडो। सेठ! 'उपाडो' समझे न? उठाओ। उठाओ नहीं कहा जाता। विवाह प्रसंग में उठाओ नहीं कहा जाता। तेडो, ऐसा कहा जाता है। यह भाषा है। 'तेडो' को तुम्हारी भाषा में क्या कहते हैं? 'उपाडो' मुर्दे को उठाओ, ऐसा कहा जाता है। अपने को कुछ खबर नहीं होती।

गाँव में विवाह और बाहर गाड़ी थी, गाड़ी में बिठाने का। यहाँ उमराला। फावाभाई थे न अपने? फावाभाई, नहीं सूरतवाले? मनहर है या नहीं? गया? गया होगा। गांडाभाई कहे, देखो, भाई! यह भगत है, इसके शब्द मांगलिक हैं। कोई अमांगलिक मानना नहीं। गांडाभाई को हमारी छाप थी न। छोटी उम्र से सब छाप थी न! कहा, मस्तिष्क में कुशंका (रखना नहीं)। एक का एक पुत्र, भाई! इकलौता पुत्र। छोटी उम्र। चौदह वर्ष में विवाह। चौदह वर्ष में। पहले तो... नहीं था न, इसलिए ऐसा कि कौन जाने कैसा होगा, विवाह कर दो। यह शब्द निकला और लोगों को ऐसा हो गया, यह क्या आया यह? शंका करना नहीं, कोई सन्देह करना नहीं। यह भगत का वाक्य है। ऐई सेठी!

संवत् १९९६ में यहाँ मेरे पास ब्रह्मचर्य लिया, लो! १९६४ से ९६, कितने हुए? ३२ वर्ष। कुछ हुआ नहीं। उपाडो कहा था तो कुछ (हुआ नहीं)। व्यर्थ का लोगों का (वहम)। यहाँ १९९६ के बाद तो कितने वर्ष रहे? बहुत। यहाँ सजोड़े ब्रह्मचर्य लिया। फिर बहुत वर्ष रहे। फिर गुजर गये। फिर यह दूधीबेन—उनके घर में स्त्री गयी। दुनिया में वचन है, उसका भाव का आशय क्या है, उसे समझे नहीं। यहाँ कहते हैं, आहाहा! मुनियों को तो वीतरागता प्रिय है। ऐई! सम्यग्दृष्टि को भी वीतरागता प्रिय है। राग प्रिय नहीं, होता है अवश्य। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : सब समझने जैसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! एक-एक शब्द में...

परम संयमियों की दीक्षारूपी स्त्री के मन को प्यारी सखी है... आहाहा! भगवान

आत्मा शान्ति से छलाछल भरपूर, उसमें अन्दर स्वसन्मुखता होकर उछलकर ऐसी पर्याय प्रगट हुई—ऐसी वीतरागता, ऐसा चारित्र, वह निश्चय प्रत्याख्यान, वह सन्तों को प्रिय है। वह दु:खदायक नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रव्रज्या... प्रव्रज्या नहीं ख्याल? वह तो दीक्षा है। चारित्र, दीक्षा अर्थात् चारित्र कहो। स्वसन्मुख की स्थिरता। वह तो सम्यग्दर्शन प्राप्त हो, तब शुद्धात्माभिमुख परिणाम से प्राप्त होता है। वह कोई बाहर से नहीं होता। शुद्ध भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ अन्दर, उसके सन्मुख—शुद्ध अभिमुख परिणाम, उससे समकित होता है। और विशेष शुद्ध अभिमुख परिणाम से चारित्र होता है। जहाँ परिपूर्ण द्रव्य का आश्रय लिया, (वहाँ) केवलज्ञान होता है। आहाहा! चारित्र किसे कहना, उसकी श्रद्धा का ठिकाना नहीं यहाँ तो। नौ तत्त्व में संवर, निर्जरा आती है न? वह संवर, निर्जरा वह चारित्र है। तो संवर-निर्जरा की दशा मुनि को कैसी होती है, तब उसे मुनिपना कहा जाये, उसकी खबर नहीं। नौ तत्त्व की श्रद्धा का ठिकाना नहीं। आहाहा! पण्डितजी! यह तो बापू! उसे नौ भिन्न-भिन्न तत्त्व की अभी खबर नहीं। संवर, निर्जरा इतनी दशा हो, तब उसे चारित्र कहा जाता है और आस्रव का इतना मन्द भाग हो, तब उसे व्रत आदि कहा जाता है। एक भी तत्त्व की भिन्न-भिन्न की वास्तविकता की खबर नहीं होती। अभिन्न एकाकार तो बाद में। समझ में आया?

जो चारित्र तो दीक्षा अर्थात् स्वरूप की स्थिरता करनेवाले, रमण करनेवाले मुनि, उन्हें वह समता-वीतरागता अथवा चारित्र उनकी सखी है। प्रिय सखी है। आहाहा! वह प्रिय सखी है, ऐसा कहते हैं। बहेनपणी कहते हैं न? हिन्दी में कहते हैं या नहीं? बहेनपणी कहते हैं? बहेनपणी (अर्थात् सखी)। वह प्रिय सखी हो न, उसे बहेनपणी कहते हैं। हमारे यहाँ (गुजराती में) 'बहेनपणी' कहते हैं। जैसे यह भाईबन्ध, भाई न हो (परन्तु) भाईबन्ध (अर्थात् मित्र)। उसी प्रकार यह बहिन न हो, परन्तु बहिनपणी (सखी), ऐसा। आहाहा!

जो मुनिवरों के समूह का... आहाहा! वस्तु—भगवान के आश्रय से प्रगट हुई

समता—वीतरागता—निर्विकल्पता—चारित्रता—प्रत्याख्यान **मुनिवरों के समूह का तथा तीन लोक का भी अतिशयरूप से आभूषण है,...** वह वीतराग तिलक तीन लोक में वह शोभता, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! चारित्र अर्थात् क्या? वह तो मानो यह वस्त्र बदले और यह किया और हो गया। महाव्रत के विकल्प कुछ हों शुद्धता बिना के। हो गया जाओ। यह कहेंगे अभी १०५ में। यह समता भगवान आत्मा से प्रगट हुई... पूर्ण समता का कन्द नाथ आत्मा, उसमें प्रविष्ट होकर जो प्रगट हुई ऐसी जो समता और चारित्र, प्रत्याख्यान, आहाहा! मुनिवरों के समूह को प्रिय है, आभूषण है। मुनि के समूह को वह आभूषण है। उसमें उनकी शोभा है। आहाहा! और **तीन लोक का भी अतिशयरूप से आभूषण है,...** आहाहा!

धन्य! धन्य! द्रव्य के आश्रय से (प्रगट हुई) वीतरागता—समता—चारित्र—प्रत्याख्यान तीन लोक का आभूषण है। जिसे सन्त धारण करते हैं, इन्द्र जिसे चाहते हैं। आहाहा! ऐसी जो चारित्रदशा तीन लोक में भी... ऐसा। मुनिवरों को तो ठीक, परन्तु तीन लोक में दूसरे सबको। आहाहा! स्वर्ग के देव भी भाते हैं कि कब हम चारित्र अंगीकार करेंगे! वह चारित्र अर्थात् यह व्रत और नग्नपना, वह नहीं। कहते थे न? एक मारवाड़ी आये तब। वहाँ सुनकर उसे यह कहना था। चारित्र तो देव को नहीं। यह तो महाव्रत का चारित्र मनुष्यपने में होता है। यह नग्नपना और महाव्रत वह मनुष्यपने में (होता है), इसलिए चारित्र अंगीकार करो। देव में चारित्र वहाँ होता नहीं इसलिए... यह चारित्र माना हुआ। अरे! यह चारित्र, वह तो अचारित्र है। आहाहा!

वह समता सदा जयवन्त है। ऐसा कहकर अपनी दशा की प्रसिद्धि करते हैं। हमारे आत्मा के आश्रय से प्रगट हुई वीतरागता, वह जयवन्त वर्तती है, उसकी जय हो। आहाहा! समझ में आया? **सदा जयवन्त है,...** ऐसा कहा है न? आहाहा! हमारा भगवान, उसे अवलम्बकर—आश्रय लेकर, ध्येय बनाकर जो वीतरागता—चारित्र प्रगट हुआ है, वह वस्तु जैसे जयवन्त वर्तती है, वैसे उसके आश्रय से प्रगट हुई पर्याय चारित्र भी जयवन्त वर्तती है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग तो देखो! ओहोहो! कहो, देवीलालजी! कितनी महिमा चारित्र की!

मुमुक्षु : द्रव्यचारित्र किसे हो.... भावचारित्र....

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्यचारित्र हो, परन्तु द्रव्यचारित्र कहलाये कब उसे? भाव प्रगट हुआ हो तो उसे द्रव्यचारित्र कहा जाता है। आवे पहले, बात सच्ची है। इसलिए कहते हैं न! पहले आवे न, चौथे में, पाँचवें में... आया हो तो उसको द्रव्यचारित्र कहा जाता है। नहीं तो द्रव्यचारित्र किसका कहलाये? आहाहा! यह तो चारित्र के दो प्रकार हैं कहाँ? चारित्र एक ही है। उसका निरूपण दो प्रकार से है। अरे भगवान! आहाहा! १०५ (गाथा)।

णिक्कसायस्स दान्तस्स सूरस्स ववसायिणो।
संसार-भय-भीदस्स पच्चक्खाणं सुहं हवे॥१०५॥

जो शूर एवं दान्त है, अकषाय उद्यमवान है।
भव-भीरु है, होता उसे ही सुखद प्रत्याख्यान है॥१०५॥

आहाहा! भाषा देखो न! अज्ञानी का प्रत्याख्यान दुःखमय होता है, ऐसा कहते हैं। आत्मा के शुद्धता के भान और अनुभव बिना जो कुछ पंच महाव्रत को ले, वह सब दुःखरूप है। ऐसा बतलाना है। इसलिए तो यह पाठ है। पाठ है न? '**सुहं हवे**' इसके सामने डाला। उसको दुःखम्। आहाहा!

टीका : **जो जीव निश्चयप्रत्याख्यान के योग्य हो,...** देखो! जो आत्मा अपने स्वरूप को अवलम्बकर वीतरागता प्रगट होने के योग्य हो **ऐसे जीव के स्वरूप का यह कथन है। जो समस्त कषायकलंकरूप कीचड़ से विमुक्त है,...** कषायकलंकरूपी कादव—कीचड़। कषायकलंकरूपी कादव... देखो! कादव शब्द है इसमें। हिन्दी में क्या है? कीचड़ है। हिन्दी में है। बराबर है। यह पंच महाव्रत के परिणाम को कषाय-कलंक, कादव कहा है। सम्यग्दृष्टि का वह कादव है। राग है न! आहाहा! दुःख से लिप्त भाव है। आहाहा! **कषायकलंकरूप कीचड़ से विमुक्त है,...** जिसे चारित्र वर्तता है, ऐसा आगे कहना है न! ऐसी शुद्धता वर्तती है, उसे व्यवहार होता है, ऐसा कहते हैं।

सर्व इन्द्रियों के व्यापार पर विजय प्राप्त कर लेने से जिसने परम दान्तरूपता प्राप्त की है,... इन्द्रियों का दमन किया हो, इन्द्रियों को वश किया हो ऐसा... है न नीचे? इन्द्रियों के विषय से विरक्त हुआ है। अतीन्द्रिय आनन्द के धाम में पहुँच गया है।

अतीन्द्रिय सुख को पहुँच गया है, ऐसा कहते हैं। ऐसे मुनि, उनका यह चारित्र अथवा शुद्धभाव। **सकल परीषहरूपी महा सुभटों को जीत लेने से...** परीषहरूपी महासुभट। आहाहा! जिसने जीते हैं आनन्द, शान्ति से। वीतरागभाव से जिसने परीषह जीते हैं। **जिसने निज शूरगुण प्राप्त किया है,...** निज शूरगुण प्राप्त किया है। शरीर की शूरता और बल की यह बात यहाँ नहीं है। विकल्प का—राग का बल वह नहीं। निज शूरगुण। आत्मा का वीरतागुण—पुरुषार्थगुण जिसने प्राप्त किया है। शूरवीर है। स्वरूप में रमने के लिये वीर है। राग की रमणता जिसने छोड़ दी है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो मुनि की बात है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मुनि का भाव है, वह समकित में भी है न आंशिक? आंशिक है या नहीं उसे? उसे मुनिपना क्या है, उसकी श्रद्धा करनी है या नहीं? और उसे भावना होती है या नहीं या मुनि के लिये है, हमारे कुछ है नहीं? सेठ! हमारे तो कुछ नहीं, बस यह धन्धा-बन्धा करना। समकिती को भावना होती है। आहाहा! 'अपूर्व अवसर ऐसा कब आयेगा?' आता है न? 'कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जब' देखो! गृहस्थाश्रम में है।

कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जब
सर्व भाव से औदासीन्य वृत्ति करी,

देखो! समकिती को यह भावना होती है।

सर्व भाव से औदासीन्य वृत्ति करी,
मात्र देह वह संयम हेतु होय जब।

श्रीमद् को लाखों का मोती का व्यापार था, ऐसा लोग कहते हैं। उन्हें व्यापार था आत्मा का। अरे... अरे... गजब! समझ में आया? लोगों को तत्त्व क्या है, (इसकी खबर नहीं होती)। 'सर्व भाव से औदासीन्य वृत्ति करी, मात्र देह वह संयम हेतु होय जब।' इसका नाम संयम। इसकी भावना समकिती भी भाता है। उसे भी जानकर, पहिचानकर भावना भाता है। हमारे कुछ नहीं, उसे है—ऐसा नहीं। विकासभाई! मुक्ति चाहिए या नहीं? मुक्ति, वह अनन्त आनन्द का धाम। जिसे सुख चाहिए, वह सुख तो

मुक्ति में है और मुक्ति का कारण तो चारित्र है और चारित्र तो सम्यग्दर्शन, ज्ञान हो तो होता है। आहाहा! समझ में आया? देखो न! कितनी भावना भायी है! धन्धा था, परन्तु संयम की भावना हो न! छहढाला में आता है न? 'लेश न संयम, पै सुरनाथ जजै हैं।' तथापि वह चारित्र की भावना रखता है। यह आता है न? उसमें लाईन आती है। छहढाला में ऐसी एक लाईन आती है। सब कहीं याद रहता है? संयम धारण (कर) सके नहीं, परन्तु संयम धारण की झटाझटी। दौलतरामजी (कृत भजन में) यह आता है न? संयम धारण नहीं कर सकता, परन्तु संयम कैसे लूँ? कैसे लूँ? उसकी झटाझटी लगी होती है। ऐ सेठ! ऐसे के ऐसे बीड़ी के धन्धे में पड़े रहना और डालचन्दजी का मान मिले, बापूजी... बापूजी... (करे)। ऐसे होशियार लड़के पके और उनके फिर बापूजी। तो और कैसे होंगे?

मुमुक्षु : यह होशियार हुए तो हमको निवृत्ति मिली न!

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, यह खोटी बात है, ऐसा कहते हैं। पर के साथ क्या सम्बन्ध है? आहाहा! और वह निवृत्ति क्या? यह बाहर से निकले इतना। निवृत्ति तो राग से निवृत्ति होकर स्वरूप में जाये, उसे निवृत्ति कहते हैं। आहाहा! बाहर से निवृत्ते फिर वृद्ध हो तो क्या करे? वह करता हो तो छोड़ो अपने। हम करते हैं, वह करता है। इतना सम्मत में तो उसे आनन्द है, अनुमोदना है। हमारी ओर से वह करता है। भले हमारे जो करना है, वह तो हम कर चुके। अब यह करता है वह हम ही करते हैं। उसका अर्थ कि उसे मजा मानता है। वह सब पाप की अनुमोदना है। सेठ! ऐसा है यह तो। आहाहा!

कहते हैं, **जिसने निज शूरगुण प्राप्त किया है,...** आहाहा! शरीर का बल नहीं, पुण्य का बल नहीं। धर्मात्मा ने तो आत्मा के निज शुद्ध गुण को प्राप्त किया है। आहाहा! जो वीर्य स्वरूप का है, वह शुद्धता को रचे, ऐसा वीर्य प्रगट किया, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उसे वीरता कहते हैं, बाकी तो कायरता (है)। आहाहा! **निज शूरगुण प्राप्त किया है, निश्चय-परम-तपश्चरण में निरत ऐसा शुद्धभाव जिसे वर्तता है,...** देखो! **निश्चय-परम-तपश्चरण में निरत...** साधुपने में। ऐसा शुद्धभाव मुनि को वर्तता

है। लो, यह मुनि को शुद्धभाव होता है या नहीं? आठवें में शुद्ध होता है, कहते (लोग) हैं। आहाहा! यह तो छठवें की बात करते हैं यहाँ तो। शुद्धभाव जिसे वर्तता है, उसे व्यवहार प्रत्याख्यान यह त्याग का हो, ऐसा यहाँ कहना है। आहाहा! समझ में आया? यह तो भाई ने कहा है न। ऐसा कहते हैं। पद्मनन्दि ने कहा है न? कहा है क्या? सुन न! यह '**पच्चक्खाणं सुहं हवे**' इसका न्याय निकाला है। ऐसा जो आत्मा, जिसे पुण्य-पाप के रागरहित शुद्धभाव वर्तता है, उसकी भूमिका प्रमाण में चैतन्य के आनन्द का पवित्र भाव जिसे वर्तता है।

तथा जो संसारदुःख से भयभीत है,... चार गति के दुःख के समुद्र में पड़ना, इसका भय है। आहाहा! अरे! चौरासी लाख के अवतार कहीं कोई शरण नहीं। निराधार चार गति में भटकना, आहाहा! धर्मी को उसका भय होता है। समझ में आया? **संसारदुःख से...** संसारदुःख कहा। चारों ही गति के भव। देव भी संसारदुःख है। आहाहा! देव का भव भी संसारदुःख है। यह अरबोंपति के सेठिया के भव, वह संसारदुःख है। कहो, सेठ! देखो! इसमें लिखा, संसारदुःख। ऐसा नहीं कहा कि फलाना का—नारकी का दुःख, ढोर का दुःख और देव का सुख। चारों ही गति के दुःख। आहाहा! यह सेठिया भी कषाय की अग्नि के अंगारों में जल रहे हैं। जल रहे हैं—सुलग रहे हैं। पोपटभाई! एकदम लाल शरीर लगे, बँगले छह-छह लाख के करे, चालीस-चालीस लाख के बँगले... आहाहा! देव के बँगले में वह देव दुःखी है। आहाहा! जिसे स्व-अवलम्बी तत्त्व प्रगट हुआ नहीं, पर-अवलम्बन में ही विकल्पों के जाल में फँस गया है। ऐसा संसार का जिसे डर है। भवभय से डरे हैं। आहाहा! भवभय से डरे हैं। भव नहीं, हों! आहाहा! समकिती भवभय से डरे हैं। आहाहा!

सिंह को देखकर जैसे जवान मनुष्य भागे... वढ़वाण में, नहीं? लड़का मर गया, नहीं? आप्टा का... था। आप्टा आता है न? ट्रेक्टर में... होता है। टीमरुं, बीड़ी के टीमरुं—छोटे पत्ते आवे न छोटे? वे बड़े पत्ते। यह तो सब हमारे दुकान में थे न, सब देखा है। दुकान में सब रखा था। दुकान में धन्धा था। आप्टा के पत्ते और टीमरुं के। दोनों की बीड़ी होती है। उस लड़के को उसके पिता ने वढ़वाण भेजा। भाई! तू जा न अब। विवाहित—शादी की हुई। तीन लोगों को साथ में भेजा। जंगल में आप्टा के पत्ते

के बड़े ढ़ेर थे। बीड़ियाँ आवे न? आप्टा। आप्टा को क्या कहते हैं तुम्हारे? वे छोटे पत्ते। हमारे यहाँ आप्टा कहते हैं और टीमरुं बड़े पत्ते। एक-एक पत्ते की बीड़ी हो, उसे टीमरुं कहे और वे दो-तीन पत्ते डालें। एक पत्ता और दूसरा करके और फिर तीसरा करे। छोटे-छोटे होवे न!

इसके लिए लड़के को भेजा, हों! बड़ा ढ़ेर पड़ा हुआ। तीन लोग साथ में रखे। उसमें ऐसे सिंह दिखा। ढ़ेर के पीछे सिंह—शेर। ऐसी चिल्लाहट मचायी। तुम पहिचानते होंगे, नहीं? वढ़वाण, पीछे रहते। हम वहाँ इतने में रहते थे उस समय में। लड़का भागा, भाई! बबूल पर चढ़ने के लिये। तीन लोग साथ में। लकड़ी रखी। क्या करे लकड़ी? तीनों चढ़ गये बबूल पर, सिंह आया इसलिए। यह चढ़ने गया वहाँ बबूल की लकड़ी कपड़े में फँस गयी। चढ़ नहीं सका, ऐसे कपड़ा फँस गया। वहाँ सिंह आया। वे तीन रखवाले थे वे देखते थे। वह खाता था। रखवाले थे, वे ऊपर से देखते थे। नीचे सेठ का पुत्र। सोने का कड़ा। सोने का कड़ा होता है न? क्या कहते हैं? सोने का कड़ा कहते हैं न। वह अकेला पृथक् कर दिया और पूरा खा गया। वह सिंह जाता रहा, फिर नीचे उतरे। आहाहा! ऐसा संसार। वह संयोग के कारण दुःख है, ऐसा नहीं। वह आकुलता है, वह दुःख है। इस संसार का ज्ञानी को आकुलता से भय वर्तता है। आहाहा! अरे! चौरासी के अवतार....

कहते हैं, **संसारदुःख से भयभीत है,...** आहाहा! **उसे (यथोचित शुद्धता सहित)...** अब लेते हैं, देखो! देखो! यह शुद्धता छठवें सहित की बात है, भाई! छठवें की बात है। कोई कहे, छठवें गुणस्थान में शुद्धता नहीं होती। यह क्या कहते हैं? अरे! चौथे गुणस्थान में सम्यग्दर्शन-ज्ञान की शुद्धता है। स्वरूपाचरण, वह भी शुद्धता है। आहाहा! पाँचवें गुणस्थान में भी शुद्धता विशेष बढ़ गयी है। छठवें में विशेष शुद्धता है। ऐसा शुद्धतावाला मुनि... देखो न, न्याय तो कितना दिया है! **व्यवहार से चार आहार के त्यागरूप प्रत्याख्यान है।** चार आहार का त्याग, वह व्यवहार है, परन्तु ऐसी शुद्धता सहित हो उसे। समझ में आया? ऐसी शुद्धता भगवान आत्मा की—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की शुद्धता प्रगटे बिना अकेले चार आहार का त्याग करे, वह व्यवहार प्रत्याख्यान भी नहीं है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! कितनी स्पष्ट बात की है! ऐसे यथोचित—

छठी भूमिका के योग्य जो शुद्धता, सम्यग्ज्ञान-चारित्र, दर्शन-चारित्र की जो शुद्धता, रागरहित वीतरागता प्रगटी है, वह चारित्र और वह प्रत्याख्यान है। उसे आहार करके चार (प्रकार) आहार का त्याग, वह व्यवहार प्रत्याख्यान है, वह विकल्प है। समझ में आया? निश्चय और व्यवहार के साथ होता है, ऐसा कहते हैं। निश्चय शुद्धता न हो और व्यवहार प्रत्याख्यान हो, ऐसा तीन काल में नहीं होता, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : छठवें तक तो अकेला व्यवहार होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अकेला व्यवहार नहीं होता कभी। अकेला निश्चय होता है, केवली हो गये उसे। परन्तु अकेला व्यवहार साधक को नहीं हो सकता। अज्ञानी को व्यवहार, वह व्यवहार नहीं है। निश्चय बिना का व्यवहार कैसा? समझ में आया?

व्यवहार से चार आहार के त्यागरूप प्रत्याख्यान है। परन्तु (शुद्धतारहित)... सम्यग्दर्शन, ज्ञान और शान्ति अन्दर प्रगट नहीं हुई। **(शुद्धतारहित) व्यवहार-प्रत्याख्यान तो...** मिथ्यादृष्टि को होता है। आहाहा! कहो, समझ में आया? जहाँ राग का भी कर्तव्य नहीं और स्वरूप के कर्तव्य की दशा की स्थिरता प्रगट हुई है, उसे विकल्प उठे, उसको व्यवहार प्रत्याख्यान कहा जाता है। परन्तु वह शुद्धता बिना का... जिसने स्व-भगवान का आश्रय लिया नहीं और अवलम्बन बिना की पवित्रता जिसे प्रगट हुई नहीं, उस पवित्रता के बिना का जो व्यवहार लेकर बैठे, उस **कुदृष्टि (-मिथ्यात्वी) पुरुष को भी चारित्रमोह के उदय के हेतुभूत द्रव्यकर्म के और भावकर्म के क्षयोपशम...** अर्थात् इतना पुरुषार्थ है न, ऐसा। राग की मन्दता की है इतना क्षयोपशम। यह वास्तविक क्षयोपशम नहीं। द्रव्यक्षयोपशम। क्या कहा यह? भावक्षयोपशम नहीं। उसमें से सब निकालते हैं न सामनेवाले श्वेताम्बर और वे? हमारे राग की मन्दता की क्रिया, वह क्षयोपशमभाव है। वह करते-करते क्षायिक होगा, ऐसा कहते हैं। खोटी बात है। उदयभाव है। परन्तु मिथ्यादृष्टि ने जरा राग को पुरुषार्थ से मन्द किया है, मन्द किया है, इसलिए उसे जरा क्षयोपशम कहा गया है।

मुमुक्षु : वास्तविक नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वास्तविक नहीं। पंचास्तिकाय में आता है ऐसा। अधिकार। समझ में आया?

उसे तो वास्तव में तो **चारित्रमोह के उदय के हेतुभूत...** ऐसा है द्रव्यकर्म और भावकर्म। उसका कुछ पुरुषार्थ है न इतना। मिथ्यादृष्टि है, अज्ञानी है, शुद्धता के अनुभव बिना का है। उसे यह राग की मन्दता का प्रत्याख्यान व्यवहार से कहने में आता है। क्षयोपशम है, ऐसा कहा। **क्वचित् कदाचित् सम्भवित है।** किसी समय किसी को ऐसा होता है। नौवें ग्रैवेयक गया, तब ऐसा व्यवहार प्रत्याख्यान था। समझ में आया?

यह तो बड़ी चर्चा हुई थी राणपुर। कौन सी चर्चा? है याद? (संवत्) १९८०। ८० के वर्ष। इनका चातुर्मास १९७९ लींबड़ी में था, हमारा था बोटाद। दोनों राणपुर इकट्ठे हुए। १९८० के वर्ष। ४७ वर्ष हुए। तब प्रश्न चला था। मूलचन्दजी थे और यह जेचन्दजी (थे)। दोनों के बीच नीचे चर्चा चलती थी। मैं ऊपर था। राणपुर मंजिल है न? नौवें ग्रैवेयक मिथ्यादृष्टि गया, इतना चारित्र का क्षयोपशम है। इतना वह पुरुषार्थ का क्षयोपशम है, ऐसा कहते थे। भाई! उसे यह कहीं ऐसी खबर नहीं थी। परन्तु उसे स्थापित करना था न! भंगभेद में आवे... यह लोग मानते हैं। श्वेताम्बर में तो यही मानते हैं। हमारा व्यवहार करते हैं भले, वह व्यवहार क्षयोपशमभाव से है। ऐसा करते हुए निश्चय होगा। व्यवहार, वह उदयभाव है। निश्चय से तो उदयभाव है। जरा राग की मन्दता का पुरुषार्थ है, इसलिए व्यवहार से क्षयोपशम कहा है, परन्तु वह कहीं संवर-निर्जरा नहीं। मात्र बन्ध का ही कारण है। आहाहा! यह प्रश्न चला था तब। फिर मैं नीचे उतरा तब यह बात चलती थी। मुझे कहा, यह? मैंने कहा, नहीं। अनन्त बार गया, वह क्षयोपशम नहीं, परन्तु उदयभाव है। ऐई! ४७ वर्ष पहले, हों! पचास में तीन कम। यह क्षयोपशमभाव नहीं। ऐई भीखाभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र का... क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : कर्म का क्षयोपशम हो, उसमें क्षयोपशम कैसे लिया?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें क्षयोपशम वह तो कहा न, मन्द किया न। राग की मन्दता का वीर्य है इतनी अपेक्षा से कहते हैं। कहा, दो-तीन बार कहा। ख्याल तो हो न यह क्या कहना है! यह तो हमारे पचास वर्ष से चलता है। यह कहीं नया नहीं है।

समझ में आया ? ऐ पोपटभाई ! तुम सब नये आये अभी। उदयभाव है, परन्तु तीव्र की अपेक्षा से मन्द को क्षयोपशम द्रव्यनिक्षेप से कहा, भावनिक्षेप से नहीं। ऐसा कहा था। ऐई ! वस्तु तो ऐसी है। भावनिक्षेप से नहीं। 'अणुओगो...' ऐसा अनुयोग द्वार में पाठ है। अण-उपयोग वह द्रव्य(निक्षेप) है। जिसमें भाव-उपयोग प्रगट हुआ नहीं, वह सब द्रव्य(निक्षेप) है। शुद्ध उपयोग बिना भाव हो नहीं सकता, भावनिक्षेप। वह कथंचित् होता है। लो, अब इसकी विशेष बात है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल १, शनिवार, दिनांक - २१-८-१९७१
श्लोक-१४२, गाथा-१०५-१०६, प्रवचन-१०१

१०५ गाथा, नियमसार। निश्चय-प्रत्याख्यान अधिकार अर्थात् कि सच्चा चारित्र। रागादि दोषों का अभाव और आत्मा शुद्ध पवित्र आनन्दकन्द सच्चिदानन्दस्वरूप का आनन्द और शान्तिरूप से परिणमन अवस्था का होना, उसका नाम प्रत्याख्यान और उसका नाम मोक्ष का मार्ग है। यह यहाँ पहली बात की। द्रव्य व्यवहार प्रत्याख्यान तो अज्ञानी को होता है। राग की मन्दता करे, होता है, वह तो मिथ्यात्वसहित पुण्यबन्ध का (कारण है)। यहाँ आया है न दूसरी लाईन?

इसीलिए निश्चयप्रत्याख्यान... पृष्ठ २०४। टीका की दूसरी लाईन। व्यवहार प्रत्याख्यान अर्थात् जिसे आत्मा का भान नहीं, आत्मा सच्चिदानन्द निर्मलानन्दस्वरूप है, ऐसा जिसे आत्मज्ञान नहीं, वह मिथ्यादृष्टि जीव राग को-पुण्य को अपना माननेवाला, उसे राग की मन्दता का कुछ पुरुषार्थ हो तो उसे व्यवहार प्रत्याख्यान कहा जाता है। परन्तु वह कहीं धर्म नहीं है। **इसीलिए निश्चयप्रत्याख्यान...** सच्चा राग का त्याग और सच्चा सच्चिदानन्द प्रभु ऐसा आत्मा, उसके आश्रय से—अवलम्बन से प्रगट हुई आनन्द की और शान्ति की निर्दोष दशा, वही प्रत्याख्यान अति आसन्नभव्य जीवों को हितरूप है। आहाहा!

अनादि अनभ्यास चैतन्य की जाति का। भगवान आत्मा तो शाश्वत् वस्तु है। सत्... सत् है वह और उसका स्वभाव शाश्वत् तो ज्ञान और आनन्द है। अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द है। वह उसका स्वभाव—उसका स्वरूप आत्मा का है। परन्तु उसका अभ्यास नहीं (और) अनादि राग और पुण्य-पाप की क्रियाओं के परिणाम जो कृत्रिम विकार अनित्य है, उसका अभ्यास है, इसलिए उसे आत्मा का नित्यपना और उसके अवलम्बन से होनेवाली शुद्धता की दशा कैसी होती है, उसकी उसे खबर नहीं है। कहो, सेठ! एक तो यह बाहर के धन्धे के कारण निवृत्त नहीं होता।

मुमुक्षु : नहा-धोकर पवित्र होकर तो आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वहाँ अभी वे लड़के काम करते हैं, वे हमारी ओर से करते हैं और ठीक करते हैं—यह सब पतंग हाथ में रखकर बैठे हैं। पतंग... पतंग। पतंग दूर उड़ती हो न, उसका डोरा हाथ में हो। हाँ, जब खींचना हो तब खींचे, छोड़ना हो तो छोड़ा जाये। इसी प्रकार सब दुकान का धन्धा हम करते थे, राग, वह यह लड़के करते हैं, वह ठीक करते हैं। इसलिए बात तो वह की वह है। आहाहा! अरे! इसने अनादि का सदोष विकारभाव का व्यापार किया है। बीड़ी का व्यापार नहीं, हों! तम्बाकू, बीड़ी का व्यापार, वह तो जड़ है। उसका व्यापार कोई कर नहीं सकता। उसमें होनेवाला राग और द्वेष का भाव, पुण्य-पाप का भाव, उसका इसने व्यापार किया। तब जो वह वस्तु है, वह तो नाशवान है, पुण्य-पाप तो नाश होनेयोग्य है। इसका अर्थ यह कि पुण्य-पाप का भाव शुद्ध ज्ञानानन्दस्वभाव में नहीं है। वरना नाश होनेयोग्य हो नहीं सकता। यह शरीर, वाणी तो नाशवान है, वह तो अलग बात है। वह तो परवस्तु है, मिट्टी (है)। परन्तु अन्दर में पुण्य और पाप का राग और विकल्प हो, वे अभाव किये जा सकते हैं, नाश किये जा सकते हैं। इसलिए वह चीज़ उसकी है नहीं। कहो, पोपटभाई! उसकी नहीं, उसका उसने व्यापार किया।

मुमुक्षु : वह चोर हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह चोर है। आहाहा!

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द परमानन्द की मूर्ति आत्मा तो है। (सच्चिदानन्द)=सत्-शाश्वत्, चिद्—ज्ञान और आनन्द, ऐसा उसका स्वरूप है। परन्तु अनन्त काल में कभी उसकी सम्हाल और पुरुषार्थ किया नहीं। आहाहा! इसलिए इसने पुण्य और पाप के भाव, शुभ-अशुभराग, जो त्यागनेयोग्य है, इसके घर में नहीं, उसका व्यापार किया, इसलिए चार गतियों में भटका। आहाहा! इसलिए कहते हैं कि अज्ञान में—आत्मा के भान बिना कोई दया, दान, व्रत के परिणाम करे तो उसमें राग की कुछ मन्दता होती है, इसलिए उसे अज्ञानी को व्यवहार प्रत्याख्यान कहा जाता है। परन्तु वह तो कहीं जन्म-मरण को टालने का हेतु नहीं है। वह तो कर्म के बन्ध और कारणरूप हेतु है। आहाहा!

इसीलिए निश्चयप्रत्याख्यान.... ऐसा कहते हैं। इस कारण से निश्चय अर्थात् सच्चा आत्मा का स्वरूप जो आनन्द और ज्ञान, उसकी दशारूप परिणमना—होना और पुण्य-पाप के राग के अभावरूप होना, वह सच्चा त्याग और सच्चा धर्म और सच्चा चारित्र कहा जाता है। भारी सूक्ष्म, भाई! अरे! यह निश्चय त्याग अर्थात् राग का अभाव और भगवान आत्मा निर्दोष पवित्रता का पिण्ड प्रभु, उसमें से प्रगट हुई पवित्रता, वह पवित्रता मोक्ष का मार्ग है।

मुमुक्षु : जबतक सच्चा समझ में न आवे तबतक....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो अज्ञान से करता है। उसमें विशिष्टता की क्या बात हुई? यह तो किया है, यह बात करते हैं। अनादि से चार गति की घानी में पिले, ऐसा इसने किया है। आहाहा! अरे! जिसका निजस्वरूप पवित्र और आनन्द का धाम प्रभु, उसके सन्मुख देखे बिना, पर के सन्मुख देखकर पुण्य-पाप और राग-द्वेष और संकल्प-विकल्प किये। वह तो अज्ञानी अनादि से करता है और उससे चार गति में भटकता है। आहाहा! वह कहीं नयी चीज़ नहीं है।

यहाँ तो कहते हैं, वह व्यवहारप्रत्याख्यान भी कहीं नयी चीज़ नहीं है, ऐसा कहते हैं। और वह हितरूप भी नहीं है। ऐसा हुआ न भाई इसमें? वह हितरूप नहीं। आहाहा! आत्मा के भान बिना, अनुभव बिना जो कुछ राग का क्रियाकाण्ड दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव, करुणा, कोमलता किये, वह कुछ हितरूप नहीं है। आहाहा! आसन्नभव्यजीव जो है—जिसे निकट में मुक्ति का मार्ग और मुक्ति जिसे निकट है, आहाहा! ऐसे जीव को तो सच्चा त्याग अर्थात् राग का अभाव और निर्दोषस्वभाव का सत्यपना प्रगट होना, आत्मा जैसा निर्दोष पिण्ड है, उसमें से निर्दोषता स्व का आश्रय लेकर प्रगटे, वह निर्दोषता, वह **अति-आसन्नभव्य जीवों को हितरूप है;...** आहाहा! समझ में आया?

क्योंकि जिस प्रकार सुवर्णपाषाण नामक पाषाण उपादेय है,... क्या कहते हैं? यह सोने का पत्थर निकलता है न? सोना हो और पत्थर इकट्ठा हो, उसे सुवर्णपाषाण कहते हैं। फिर पिघलाकर अलग करते हैं न? पत्थर को अलग करे और सोना को

अलग करे। वह **सुवर्णपाषाण नामक पाषाण उपादेय है,...** उसमें से सोना निकलता है। समझ में आया? उस सोने के साथ में पत्थर है न, व्यवहार से वह उपादेय है। ध्यान रखने जैसी यह बात है जरा। अन्त में यह कहेंगे। समझ में आया? आगे कहेंगे। व्यवहार और निश्चय स्वीकृत है। १०६ (गाथा) में कहेंगे। निश्चय-प्रत्याख्यान और व्यवहार-प्रत्याख्यान स्वीकृत करे। अन्तिम सार है न? उसका हेतु यह है—कहने का आशय ऐसा है कि जैसे स्वर्णवाला पत्थर, वह उपादेय कहा जाता है। क्योंकि सोनासहित पत्थर है न? इसलिए उसे भिन्न करने के लिये वह उपादेय है। उपादेय समझ में आया? आदरणीय है। परन्तु वह राग व्यवहार में उपादेय... व्यवहार प्रत्याख्यान... ऊपर आया न? चार (प्रकार के) आहार का त्याग करे। उसके साथ यह सन्धि है। आहार के त्यागरूप प्रत्याख्यान है व्यवहार से। जरा सूक्ष्म बात है। आहाहा!

मुनिराज ऐसा कहना चाहते हैं कि भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति परमानन्द का धाम ऐसा जिसने दृष्टि में लिया है और स्वरूप में स्थिर हुआ है, उसे तो सच्चा प्रत्याख्यान और सच्चा चारित्र कहते हैं। परन्तु वैसा चारित्र शुद्धता के भानसहित की भूमिका में चार (प्रकार के) आहार का त्याग आदि ऐसा जो विकल्प आता है, वह भी एक व्यवहार प्रत्याख्यान है। वह भी व्यवहार से आदरणीय कहा जाता है। व्यवहार से व्यवहार आदरणीय, निश्चय से निश्चय आदरणीय—ऐसा कहते हैं।

फिर से। ऊपर कहा था न? निश्चयसहित है, वह त्यागरूप प्रत्याख्यान है। जहाँ स्वरूप का अन्तर आनन्द और अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड प्रभु, उसका जहाँ अनुभव (हुआ), आनन्द का अनुभव (होकर) शुद्धता की दशा वर्तती है, उसे जो व्यवहार त्याग का विकल्प आता है, उसे व्यवहार प्रत्याख्यान, व्यवहार त्याग कहने में आता है, ऐसा कहते हैं। अर्थात् कि **सुवर्णपाषाण नामक पाषाण उपादेय है, उसी प्रकार अन्धपाषाण नहीं है।** अर्थात्? जिसमें सोना नहीं, वह पत्थर व्यवहार से भी उपादेय नहीं है। अर्थात्? **(यथोचित् शुद्धतासहित)...** देखो! आत्मा ज्ञानानन्द और शुद्ध चैतन्यप्रभु का अन्तर आश्रय लेकर जो शुद्धता प्रगट हुई है, उस शुद्धतासहित **संसार तथा शरीर सम्बन्धी भोग की निर्वेगता निश्चयप्रत्याख्यान का कारण है...** समझ में आया? देवीलालजी!

बात यह। जहाँ आगे शुद्ध प्रभु चैतन्यमूर्ति की शुद्धता जिसने अन्तर में चैतन्य को अनुभव करके, आत्मा का अनुभव करके और प्रगट शुद्धता की है, उस शुद्धतासहित **संसार तथा शरीर सम्बन्धी भोग की निर्वेगता निश्चयप्रत्याख्यान का कारण है...** वह सच्चा चारित्र और राग का सच्चा त्याग है। समझ में आया? परन्तु वह अन्धपाषाण जो है... अकेला अन्धपाषाण अर्थात् निश्चय शुद्धता के भान बिना अकेली राग की मन्दता का त्याग (रूप) व्यवहार प्रत्याख्यान वह अन्ध पत्थर है।

मुमुक्षु : व्यवहार से उपादेय नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से उपादेय नहीं। समझ में आया? धीरे से समझने जैसी बात है, बापू! अनन्त काल में भगवान आत्मा वस्तु देह से भिन्न है और पुण्य-पाप के राग से भी भिन्न है। यह भिन्न की बात कहेंगे, भिन्न करने का अभ्यास। समझ में आया? इस प्रकार अन्तर्मुख में जाकर राग को भिन्न करने की जो कला, वह जिसने प्रगट नहीं की, उसका रागादि का मन्दता का त्यागभाव अन्ध पत्थर जैसा है। ऐई! अकेला व्यवहार अन्ध है, ऐसा कहा।

मुमुक्षु : शुद्धता साथ में न हो, उसमें कुछ....

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्धता साथ में हो तो उस व्यवहार का आरोप इसे कहा जाये, तो व्यवहार प्रत्याख्यान कहा जाये। आहाहा! समझ में आया? भगवान जागकर देखा हो इसने। मेरी पूँजी—मेरे निधान में तो आनन्द और शान्ति और ज्ञायकता चैतन्य स्वभावभाव भरे हैं। ऐसी निज पूँजी को... ऐ सेठ! यह तुम्हारी पूँजी-बूँजी धूल को नहीं, ऐसा कहते हैं। यह सब दुःख के निमित्त हैं तुम्हारी धूल। ऐ सेठ!

मुमुक्षु : तो क्या करना, डाल देना सब?

पूज्य गुरुदेवश्री : रख कहाँ दी है, (कि) उसे डाल दे? इसने ली है? ममता ली है इसने तो। ममता। यह तो जिसके स्थान में है, वह पड़ी ही है। समझ में आया? आहाहा!

मुनि निश्चय और व्यवहार दो की सन्धि करते हैं। सोना का पत्थर—स्वर्णपाषाण है, वह तो लेकर भेद करने की स्थिति करनी चाहिए। उसमें राग की मन्दता का भाव

और राग के अभाव का भाव, वह शुद्धतासहित जो हो तो उसे व्यवहार कहा जाता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : उपादेय....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से उपादेय कहा न? व्यवहारनय से व्यवहार उपादेय है। नीचे छठवें में कहेंगे, व्यवहार प्रत्याख्यान को स्वीकृत—अंगीकृत करता है। अन्तिम योगफल है न गाथा का? व्यवहार है न! व्यवहार है। व्यवहार से आदरणीय और व्यवहार से पालते हैं, ऐसा भी कहने में आता है।

मुमुक्षु : व्यवहार से पूज्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से पूज्य है। व्यवहार से व्यवहार पूज्य है। व्यवहार से व्यवहार पूज्य न हो तो भगवान त्रिलोक के नाथ भी पूजनीक नहीं हो सकते व्यवहार से। पद्मनन्दिपंचविंशति में यह आता है। पद्मनन्दि में पाठ आता है। व्यवहार से पूज्य है, ऐसा आता है। व्यवहार से व्यवहार पूज्य है; निश्चय में पूज्य नहीं। आहाहा! यह वस्तु है न? दीपचन्दजी ने तो बहुत लिखा है। व्यवहार त्याज्य है, त्याज्य है, परन्तु धीरे से रखना। नहीं तो तीन लोक के नाथ का भी त्याग हो जायेगा। अध्यात्म... क्या कहलाता है वह? (अध्यात्म पंच) संग्रह। उसमें लिखा है। दीपचन्दजी का श्लोक है। व्यवहार से व्यवहार है इतना। और पूज्य भी व्यवहार से कहा जाता है। 'निश्चय से' वह दूसरी चीज़ है। निश्चय और व्यवहार दोनों को यहाँ सिद्ध करना है न! समझ में आया? आहाहा! वाणी भी पूज्य है, ऐसा नहीं आया? पहले में इनकार किया और दूसरे में हाँ किया। किस अपेक्षा से?

मुमुक्षु : उसमें वापस... निकाला, वह तो जड़ है, जड़ को कैसे... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जड़ है, परन्तु सर्वज्ञ अनुसारिणी है, ऐसा कहा। सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा को अनुसरकर अर्थात् कि निमित्त होकर बाहर आयी है। उसमें—वाणी में निमित्तपना भगवान का ज्ञान है। आहाहा!

मुमुक्षु : भगवान का ज्ञान जड़ में कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : आया है कहाँ? किसने कहा? निमित्त कहा न! देवीलालजी!

ऐसा मार्ग है, भगवान! आहाहा! ऐ पाटनीजी! देखो! उसमें है, सर्वज्ञ अनुसारिणी। अनुसारिणी अर्थात् निमित्त को अनुसारिणी इतना। कहीं सर्वज्ञ के भाव वाणी में आये हैं? वाणी में तो वाणी के जड़ के भाव हैं। परन्तु वह व्यवहार कहना है न?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान वाणी में क्या आवे? वाणी तो जड़ है। जड़ के द्रव्य, गुण, पर्याय जड़ है। उसमें चैतन्य का अंश कहाँ से आया? वह तो यह वाणी के परिणमन के काल में सर्वज्ञ का ज्ञान निमित्त है, इतना लेकर, निमित्त अनुसारिणी है—ऐसा कहा जाता है। आहाहा! यह तो बात... वचन भी कथंचित् वस्तु कहते हैं न? कह सकती है वाणी। सर्वथा अव्यक्तव्य है, ऐसा कहाँ हो? भगवान आत्मा तो विकल्परहित, वाणीरहित है। परन्तु उस काल में सर्वज्ञ परमात्मा आत्मा हुआ, जो सर्वज्ञस्वभाव आत्मा में था, उसे घोलकर अन्दर में से सर्वज्ञपना पर्याय अन्तर में से प्रगट की, अब उसे वाणी उस काल में निकली, वह वाणी ऐसी ही होती है। उस वाणी में स्व-परप्रकाशक कहने की सामर्थ्य है। स्व-पर जानने की सामर्थ्य नहीं। सामर्थ्य है। केवलज्ञानी का केवलज्ञान कैसा होता है, उसे कहने की वाणी में सामर्थ्य है, ऐसा कहते हैं। ऐई!

मुमुक्षु : वह भी उपादेय कहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से उपादेय कहा। निश्चय से कहाँ है? सर्वज्ञ कैसे होते हैं, सिद्ध कैसे होते हैं, ऐसा वाणी में कहने की सामर्थ्य है। तथापि वह सिद्धरूप और केवलज्ञान का रूप वाणी में आया नहीं कहीं। समझ में आया? आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं। देखो न! इसलिए लिया न? स्पष्टीकरण किया है, पण्डितजी ने डाला है। **यथोचित् शुद्धतासहित...** अर्थात् सोनावाला पत्थर—स्वर्णपाषाण, जिसमें अच्छा स्वर्ण निकले, वह, हों! वरना यह गिरनार के पत्थर हैं, उनमें सोना है। परन्तु वह स्वर्णपाषाण किस (काम का)? सौ रुपये खर्च करे, तब साठ रुपये का सोना निकले। वह सोना क्या? उसमें तो सोना ऐसे अत्यन्त भिन्न पड़े। पत्थर और सोना दोनों भिन्न पड़ जाये, ऐसा स्वर्णपाषाण। है न बड़ी खान? स्वर्ण की खान होती है न? जेठाभाई वे थे न? सोने के पत्थर लाकर पिघलाते। जेठालाल संघवी, मुम्बई। बोटादवाले। उन्हें वह

सोने का धन्धा था। स्वर्ण के पत्थर लावे, उन्हें पिघलाते, स्वर्ण को अलग करते, इसी प्रकार भगवान आत्मा शुद्ध आनन्द का धाम उसका जिसे भान... उसका जिसे भान, उसमें जिसकी स्थिरता की शुद्धता और उसके साथ राग का भाग व्यवहार प्रत्याख्यान, वह स्वर्णपाषाण है। वह राग है, वह पत्थर जैसा है और यह शुद्धता, वह स्वर्ण जैसी है। एक पर्याय के दो भाग सब लिये। आहाहा! समझ में आया? परन्तु अन्धपाषाण, जिसमें सोना ही नहीं, इसी प्रकार जिसमें शुद्धता, आत्मा पवित्र भगवान का जिसे भान, श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति नहीं, ऐसी शुद्धता बिना के त्याग का भाव, वह अन्ध पत्थर है। सेठ! यह समझने की दरकार की ही नहीं। हो और हा....

मुमुक्षु : दरकार तो बहुत की।

पूज्य गुरुदेवश्री : कमाने की। धूल इकट्ठी करने की थी। वह भी पुण्य के कारण मिली है। वह कहीं तुम्हारे पुरुषार्थ से मिली नहीं। तुम्हारा पुरुषार्थ तो राग का था। ऐ सेठ! राग किया था तुमने। पूर्व का पुण्य था, इसलिए व्यवस्थित हो गया, आया। धूल दिखाई दी, बँगले दिखाई दिये, दिखाई दिये, हों! परन्तु दिखाई दिये वहाँ कहे मेरे।

यहाँ कहते हैं कि जिसे अन्तर में राग और परवस्तु की मेरेपने की बुद्धि छूट गयी है और आत्मा पूर्ण आनन्दकन्द है, ऐसी बुद्धि और ऐसा ज्ञान जिसे हुआ है, ऐसी शुद्धतावाले का भाव, वह तो सच्चा प्रत्याख्यान है और उसमें चार (प्रकार के) आहार आदि का त्याग योग्यता प्रमाण ऐसा विकल्प है, वह व्यवहारत्याग कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा! होता है सही न? मुनि को हमेशा आहार करने के पश्चात् चार आहार का त्याग कर दे चौबीस घण्टे या अड़तालीस घण्टे। यह तो व्यवहार हुआ, वह तो परलक्ष्यी विकल्प है। अन्दर शुद्धता... वस्तु जो अन्तर है, उसमें अन्तर्मुख में जाकर जिसने, पाताल में से—समुद्र में से मोती लाया, ऐसी शुद्धता प्रगट की है। आहाहा! सम्यग्दर्शन, ज्ञान और शान्ति अर्थात् चारित्र शुद्धता प्रगट की है। वह सच्चा चारित्र और सच्चा धर्म। परन्तु उसके साथ, ऐसी शुद्धतावाले को पूर्ण शुद्धता नहीं है, इसलिए व्यवहार त्याग का विकल्प उठता है, उसे व्यवहार प्रत्याख्यान कहा जाता है। कहो, पण्डितजी! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कारण नहीं। कारण-फारण नहीं। है, इतनी बात है। कारण-फारण नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ना, नहीं उसमें। निश्चय प्रत्याख्यान का कारण यह एक ही है। निश्चय की बात है। व्यवहार कारण है, इस बात में उसमें है ही नहीं। क्या कहा? **शुद्धतासहित संसार तथा शरीर सम्बन्धी भोग की निर्वेगता निश्चयप्रत्याख्यान का कारण...** वह निश्चय प्रत्याख्यान की बात है। संसार और शरीर सम्बन्धी भोग का त्याग, वह व्यवहार और यह निश्चय, ऐसा नहीं। भाई! इन्होंने यह स्पष्टीकरण किया है। वह नहीं। यहाँ तो स्वरूप में अतीन्द्रिय आनन्द में रमणता आयी, इसलिए राग से निवृत्ति हो गयी, ऐसा। व्यवहार-फ्यवहार की बात यहाँ कहीं नहीं है।

मुमुक्षु : निर्वेगता....

पूज्य गुरुदेवश्री : इस ओर से हट गया है, इस ओर आ गया है, बस इतना। यह दोनों निश्चय है।

मुमुक्षु : निश्चय-व्यवहार।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार नहीं। वे दो होकर एक निश्चय है।

मुमुक्षु : एक नास्ति है, एक अस्ति है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा। शुद्धता की दशा का परिणमना, अशुद्धता का अभाव होना। वह भी एक ही निश्चय है। समझ में आया? अरे, गजब बात! धर्म की बातें...

मुमुक्षु : शुद्धता के ऊपर वजन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्धता के ऊपर वजन है। हाँ।

मुमुक्षु : महाराज! समन्तभद्राचार्य ने कहा—संसार, शरीर, भोग निर्वेग....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तो है न। यह तो उसका स्वरूप है। उस ओर वेग है तो इस ओर वेग नहीं, बस। इसका अर्थ यह है। स्वभाव-सन्मुख का वेग है तो विकार-सन्मुख का वेग नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा पटरी पर चढ़ गयी हुई दृष्टि अर्थात् राग की पटरी से हट गयी है। आहाहा! यह तो निश्चय है, सत्य है, यह सच्चा चारित्र है, सच्चा मोक्ष का मार्ग है। ऐसे सच्चे मोक्षमार्गसहित राग की मन्दता का भाव व्यवहार हो, उसे व्यवहारप्रत्याख्यान, व्यवहारचारित्र, व्यवहारत्याग कहा जाता है। दोनों का ज्ञान कराया है न! समझ में आया? जैसा जहाँ हो, वैसा वहाँ जानना। खींचतान करे तो वह कुछ वस्तु (नहीं है)। आहाहा!

और भविष्य काल में होनेवाले... यह प्रत्याख्यान है सही न! **भविष्य काल में होनेवाले समस्त मोह-राग-द्वेषादि विविध विभावों का परिहार, वह परमार्थप्रत्याख्यान है...** देखो! निश्चय प्रत्याख्यान का कारण और यह परमार्थ प्रत्याख्यान अस्ति अकेला लिया। **भविष्य काल में होनेवाले समस्त मोह-राग-द्वेषादि विविध विभावों का परिहार, वह परमार्थप्रत्याख्यान है अथवा...** इसी और इसी का विस्तार करते हैं। यह तीन की बात करते हैं इसमें। **अनागत काल में उत्पन्न होनेवाले विविध अन्तर्जल्पों का...** पुण्य-पाप के विकल्प, उनका **परित्याग वह शुद्ध निश्चयप्रत्याख्यान है।** तीन प्रकार लिये। वस्तु तो वह की वह है। निश्चय प्रत्याख्यान कहो, परमार्थ प्रत्याख्यान कहो, शुद्ध निश्चय प्रत्याख्यान कहो। अन्तर्जल्प विकल्प उठे न? वृत्ति। यह छोड़ूँ, यह रखूँ ऐसा विकल्प—राग, उस राग का जहाँ अन्दर त्याग और स्वरूप की अन्दर की सत्ता का सावधानपने प्रगट होना। आहाहा! मोह के अभावरूप सावधानी। समझ में आया? यह तो मुनिराज ने अधिक स्पष्टीकरण किया। निश्चय प्रत्याख्यान, परमार्थ प्रत्याख्यान, शुद्ध निश्चय प्रत्याख्यान। समझ में आया?

[अब, इस १०५वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:] इस (गाथा की) टीका थी।

जयति सततं प्रत्याख्यानं जिनेन्द्र-मतोद्भवं,
परम-यमिना-मेतन्निर्वाणसौख्यकरं परम्।
सहज-समता-देवीसत्कर्णभूषण-मुच्चकैः,
मुनिप शृणु ते दीक्षाकान्तातियौवनकारणम्॥१४२॥

श्लोकार्थः—हे मुनिवर! सुन;... देखो! मुनि, मुनि को कहते हैं। **हे मुनिवर! सुन; जिनेन्द्र के मत में...** जिन्होंने सर्वज्ञपना प्रगट हुआ है, तीन काल—तीन लोक जिसे जानने में आये हैं और जिसने राग और अज्ञान को जीत लिया है, ऐसे जो परमात्मा जिनेन्द्र, उनके मत में—ऐसे सर्वज्ञ परमेश्वर के अभिप्राय में **उत्पन्न होनेवाला प्रत्याख्यान सतत जयवन्त है।** आहाहा! सतत् जयवन्त है। आहाहा! देखो! सम्यग्दर्शन जयवन्त वर्तता है। भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ के अन्दर भान में प्रतीति जयवन्त है, ऐसे स्वरूप के आश्रय से हुई स्थिरता वर्तती है, कहते हैं, जयवन्त है। आहाहा! समझ में आया? प्रत्याख्यान का अधिकार है न!

वीतराग परमेश्वर जिसे राग बीता है—जीता है—टल गया है अर्थात् कि निर्दोष पूर्ण सर्वज्ञ और वीतरागदशा जिसे प्रगट हुई है, ऐसा जीव का—आत्मा का स्वरूप है। जैसा स्वरूप है, वैसा प्रगट हुआ, उनके मत में (अर्थात् कि) उन्होंने जाने हुए, देखे हुए के अभिप्राय में उत्पन्न होता... आहाहा! अर्थात् कि वीतराग ने कहा, ऐसे आत्मा के स्वरूप का जिन्हें आनन्द के भान में आकर स्वरूप की लीनता प्रगट की है, वह प्रत्याख्यान सतत्... सतत्—निरन्तर चारित्र की वीतरागता वर्तती है, कहते हैं। आहाहा! मुनि स्वयं से बात करते हैं। खबर पड़ती है, ऐसा कहते हैं। सम्यग्दर्शन वर्तता है, सम्यग्ज्ञान वर्तता है, सम्यक्चारित्र वर्तता है—ऐसी खबर पड़ती है या केवली जाने? पण्डितजी! कितने ही अभी कहते हैं न?

मुमुक्षु : मिठाई खायेगा तो मुँह मीठा होगा ही।

पूज्य गुरुदेवश्री : होगा। उसकी खबर नहीं पड़ती उसे? उसकी खबर नहीं पड़े कि मुँह मीठा हुआ है? या किसी को खबर पड़े? मुनिराज जरा गम्भीरता से बात करते हैं। भावलिंगी सन्त जंगल में रहनेवाले, द्रव्य से नग्नदशा, जंगल में बसनेवाले सन्त सच्चे। आहाहा! जिन्होंने जन्म को सफल किया, जिन्होंने अवतार में अवताररहित दशा प्रगट की, जिन्होंने भव में भव के अभाव की दशा प्रगट की। कहते हैं कि जयवन्त है—ऐसा कहते हैं। हमारे पास वह भाव वर्तता है, भाई! आहाहा! समय-समय का... हम पूर्णानन्द के नाथ आत्मा, उसकी अन्तर में रमणता-रमणता करते जो स्थिरता वर्तती है निश्चयचारित्र की, निश्चय प्रत्याख्यान की, वह जयवन्त है। समझ में आया? घर में

पूँजी कितनी हो, वह इसे लक्ष्य में होती है या नहीं? सेठ! घर में कितनी पूँजी है? पचास-साठ लाख (हो), भले करोड़पति कहे। दोनों सेठियों को तुमको वहाँ करोड़पति कहते हैं। वह क्या कहलाता है तुम्हारा? बुन्देलखण्ड। फिर भले करोड़ न हो। साठ-सत्तर लाख (हो), परन्तु यह दो व्यक्ति जाने। दूसरा कौन जाने? परन्तु बाहर के तो ऐसा कहे न अधिक देखकर।

मुमुक्षु : आपके पास तो सब बात आ जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई कहता है। यहाँ किसे सुनते हैं? कोई बातें करे। ऐसा कहा जाता है। इतने पैसे हैं। करोड़पति कहलाये (फिर) चाहे जितने कम हों। परन्तु सब करोड़पति (कहते हैं)। पचास लाख से ऊपर हो, वह करोड़पति कहलाता है। ऐसी लोग बातें करते हैं।

मुमुक्षु : लोगों को....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कुछ अनुमान करनेवाले तो कितने ही होते हैं न! सब कहीं पागल होते हैं? सबको उड़ा देते हैं। समझ में आया? एक बार भाई की बात नहीं की थी? मोहनभाई की। मोहन घीया। मोहन घीया को कहे, घीयाजी! लोग तुमको करोड़पति कहते हैं। बहुत वर्ष की बात है, बहुत वर्ष की। यह मोहनलाल घीया अभी हैं न? राजकोट में रतिभाई और... करोड़पति लोग हैं। करोड़पति कहते हैं, परन्तु अस्सी लाख है। करोड़पति मुझे कहते होंगे। यह तो बहुत वर्ष की बात है, हों! पन्द्रह-बीस वर्ष हो गये। यहाँ आये थे। ...लोग ऐसा कुछ सुनकर कहने आवे कि ऐसा कहते थे। ऐसी बात चलती थी वहाँ। यहाँ कहाँ घर में देखने गये थे?

यहाँ कहते हैं, आहाहा! धन्य रे धन्य! मुनिराज को साक्षात् चारित्र वर्तता है, ऐसा उन्हें साक्षात् भान होता है। आहाहा! मुनिपना अर्थात् क्या! मोक्ष का साक्षात् मार्ग। वह तो अन्तर के आनन्द में लीनता में रमते होते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द के जो घूँट पीते हैं। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दृष्टि भी जब किसी-किसी समय ध्यान में अतीन्द्रिय आनन्द विशेष पीते हैं, तो यह तो मुनि! आहाहा! धन्य रे अवतार! जिसने मोक्ष को नजदीक किया, संसार को पीठ दी—हट गया। इस ओर आ गया। मुक्तस्वरूप भगवान

के पक्ष में चढ़ गया है। आहाहा! ऐसा कहते हैं। भगवान के मार्ग में वर्तमान में चारित्र जयवन्त वर्तता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कहो, पूनमचन्दजी! यह द्रव्यलिंगी है या भावलिंगी, भगवान जानते हैं या स्वयं जाने?

मुमुक्षु : भावलिंगी हो वह स्वयं जाने।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु द्रव्यलिंगी को तो भाव ही कहाँ है? ठीक भाई ने उतारा... नहीं जानते। है नहीं और नहीं जानते, इसलिए वह तो ऐसा ही कहे न! ऐसा कहते हैं। आहाहा!

भाई! अरे मुनि! सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर जिन्होंने पूर्ण प्रत्यक्ष आत्मा किया... आहाहा! आत्मा की भविष्य की दशा समय-समय की केवलज्ञान की होनेवाली थी, वह भी जिन्होंने वर्तमान प्रगट कर डाली। समकिती को त्रिकाल आत्मा का ज्ञान है। तो इसका अर्थ यह कि भविष्य में जो केवलज्ञान सादि-अनन्त पर्यायें होनेवाली हैं, वह उसकी प्रतीति में आ गयी है, पूरा आत्मा प्रतीति करने से। समझ में आया? क्या कहा यह? आत्मा माना न? आत्मा त्रिकाली माना न? तो त्रिकाली आत्मा अर्थात् भविष्य में केवलज्ञान तो है, है और है। उस केवलज्ञानसहित की पर्यायवाला जो आत्मा सादि-अनन्त और मोक्षमार्ग की पर्यायवाला सादि-सान्त और अज्ञान से अनादि-अन्त, ऐसे पूरे सबको जान लिया। समझ में आया?

मुमुक्षु : अनुभव सबको नहीं होता, ज्ञान है इतना....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब। परोक्षप्रमाण भी ज्ञान है न? अनुमान, वह प्रमाणज्ञान है या झूठा ज्ञान है? आहाहा!

यहाँ तो वर्तमान का जोर बताते हैं न! उसमें तो त्रिकाल पूरा आत्मा आ गया है। आहाहा! समझ में आया? आत्मा मानना अर्थात्? आत्मा तो त्रिकाली ध्रुव है, परन्तु अब उसकी पर्यायें जो भविष्य की सादि-अनन्त है, केवलज्ञान की पर्याय होनेवाली और सादि-अनन्त रहनेवाली। यह तो अनन्तवें भाग की है। अज्ञानदशा की पर्याय तो अनन्तवें भाग की अनादि-अन्त है। यह सादि-अनन्त है। पूरा आत्मा जिसने ध्रुव को प्रतीति में लिया, वह सब पर्याय का पिण्ड उसे प्रतीति में आ गया है। आहाहा! एक

आत्मा जानने पर... यह तो उसमें आता है न? भाई! प्रवचनसार, नहीं? ४८-४९ गाथा। एक आत्मा को जानने से यह जाने। आत्मा किसे कहना? सब जाने। ४८-४९ (गाथा) प्रवचनसार। यह तो भाई बंसीधरजी थे, तब यह गाथा चलती थी। सेठ थे हुकमचन्दजी। बापू! तेरा मार्ग अलग भाई! आहाहा! सब पर्याय का पिण्ड वह गुण और सब गुण का पिण्ड वह द्रव्य। द्रव्य में द्रव्य का ज्ञान होकर प्रतीति हुई, वह क्या नहीं हुई? उसे क्या बाकी रहा? आहाहा! समझ में आया?

इसी प्रकार यहाँ मुनिराज कहते हैं, अरे मुनि! वीतराग परमेश्वर ने जो जाना और देखा और उन्होंने कहा, ऐसा उनके मत में उत्पन्न... उनके मत में उत्पन्न होता... ऐसा कहते हैं। आहाहा! शान्ति और स्थिरता, वीतराग तो आत्मा है और वीतराग ने कहा ऐसा है। उसमें यह निश्चय प्रत्याख्यान उत्पन्न होता है। आहाहा! गजब बातें की हैं! **वह प्रत्याख्यान परमसंयमियों को उत्कृष्टरूप से निर्वाणसुख का करनेवाला है,...** आहाहा! आत्मा शुद्ध सचेतन प्रभु, सचेतन अकेला ज्ञायक का पिण्ड प्रभु, वह तो तीन काल, तीन लोक को जानने की सामर्थ्यवाला सब तत्त्व पूरा। ऐसा जिसने वीतरागमार्ग में से जानकर, देखकर भाव निकाला है, वह निश्चय प्रत्याख्यान **परमसंयमियों को उत्कृष्टरूप से निर्वाणसुख का करनेवाला है,...** मोक्ष का करनेवाला यह है। स्वरूप की अन्तर में रमणता चारित्र की, वह मोक्ष का कारण है। व्यवहार बीच में हो, वह तो कहा बीच में, परन्तु वह कहीं मोक्ष का कारण नहीं है। आहाहा!

कहते हैं, **सहज समतादेवी के सुन्दर कर्ण का महा आभूषण है...** आहाहा! जो वीतरागता, निर्दोषता समता प्रगट हुई है, उसको सुन्दर कर्ण का महा आभूषण प्रत्याख्यान है और **तेरी दीक्षारूपी प्रिय स्त्री...** दीक्षा अर्थात् वीतरागता प्रगट हुई है वह। दीक्षा और प्रव्रज्या दो नाम इकट्ठे पड़े हैं न? नहीं पीछे? समयसार। दीक्षा, प्रव्रज्या सब बोल है। उस बोल में आता है। दीक्षा कहो या आत्मा की शान्ति की स्थिरता, वह दीक्षा। दीक्षा (अर्थात्) वस्त्र बदलकर बैठे और हो गयी दीक्षा, (ऐसा नहीं है)।

मुमुक्षु : दो प्रकार से....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह हो जगत को, परन्तु वस्तु यह है।

समतादेवी के सुन्दर कर्ण... सुन्दर कर्ण। कर्ण—कान, ऐसा वापस। उसका आभूषण। **तेरी दीक्षारूपी प्रिय स्त्री के अतिशय यौवन का कारण है।** आहाहा! क्या कहते हैं? यौवन में जैसे शरीर की पुष्टता होती है, वैसे निश्चयप्रत्याख्यान, निश्चय-सच्ची वीतरागपरिणति, वह दीक्षारूपी प्रिय स्त्री का अतिशय यौवन—जवान दशा का कारण है। भाषा भी कैसी! अतीन्द्रिय आनन्द का जहाँ प्रकाश होकर अतीन्द्रिय आनन्द वर्तता है, ऐसी जो दीक्षा, उसमें राग के अभावरूप और शुद्धता की समतारूपी स्थिरता, वह दीक्षा की यौवनवय की पुष्टि का कारण है। अतिशय यौवन का कारण है। आहाहा! यह १०५ गाथा हुई, लो!

मुमुक्षु : .... केवलज्ञान का कारण है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह तो चारित्र की पुष्टि यौवनदशा है, ऐसा। निश्चयप्रत्याख्यान, वह चारित्र की यौवनदशा है, चारित्र की पुष्टदशा है। लस—पुष्ट होता है। निश्चयप्रत्याख्यान से चारित्र लस—पुष्ट होता है। आहाहा! है तो वह का वह भाव, परन्तु बताते हैं न। १०६ गाथा। यह प्रत्याख्यान (अधिकार) की अन्तिम गाथा है।

एवं भेदब्भासं जो कुव्वइ जीवकम्मणो णिच्चं।
पच्चक्खाणं सक्कदि धरिदुं सो संजदो णियमा॥१०६॥

ओहोहो!

यों जीव कर्म विभेद अभ्यासी रहे जो नित्य ही।
है संयमी जीन नियत प्रत्याख्यान-धारण क्षम वही॥१०६॥

टीका:—यह, निश्चय-प्रत्याख्यान अधिकार के उपसंहार का कथन है। पूरा है यह। यह गाथा... प्रतिक्रमण की व्याख्या आ गयी है, प्रत्याख्यान की (आयी), पश्चात् आलोचना—वर्तमान की लेंगे। भविष्य का प्रत्याख्यान है न? भूतकाल का प्रतिक्रमण, भविष्य का प्रत्याख्यान, वर्तमान का संवर—आलोचना।

श्रीमद् अरहन्त के मुखारविन्द से निकले हुए... आहाहा! स्वरूप की लक्ष्मीवाले अर्हंत भगवान, जिन्हें ज्ञान में कोई जगत की चीज़—रहस्य बाकी नहीं। सब रहस्य तीन काल, तीन लोक का ज्ञान स्वरूप की प्रगट दशा में सब भान आ गया है। ऐसे भगवान

अर्हंत... **अरहन्त के मुखारविन्द से निकले हुए...** लो! भाषा आयी। मुखारविन्द में से ओम ध्वनि निकले। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर होते हैं, उन्हें वाणी ऐसी होंठ नहीं हिलते, कुण्ठ नहीं धुजता। पूरे शरीर में से ओम ऐसी ध्वनि उठती है। उसे यहाँ 'मुखारविन्द में से निकली', ऐसा कहते हैं। मुखरूपी अरविन्द—कमल। दुनिया में व्यवहार है न इसलिए... डाला, व्यवहार से बात की। नहीं तो निकले तो ऐसे (पूरे शरीर में से)। पूर्ण दशा सर्वज्ञ परमेश्वर हुए, परमात्मा आत्मा में से पूर्ण शक्ति को प्रगट करके परमात्मा हों, उन्हें हम बोलते हैं ऐसी वाणी ऐसे नहीं होती।

मुमुक्षु : श्वेताम्बर तो ऐसा ही मानते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : श्वेताम्बर तो एक ही मानते हैं इतना। वह तो सब आता है। यह बात ऐसी है, इसके अतिरिक्त दूसरा समझ लेना। आहाहा! क्या हो?

मुमुक्षु : श्वेताम्बरों की मान्यता विपरीत है। मुख से निकलती है, (ऐसा कहते हैं)?

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरी है। मुख से बात करे महिलाओं के साथ, ऐसा कहते हैं। एक महिला है राजा की पुत्री। तीर मारती है और भगवान से प्रश्न किये हैं और सीधे उत्तर दिये हैं। भगवती (सूत्र) में आता है। क्या नाम? भूल गये। बाई आती है। पीहर में रहती है।

मुमुक्षु : मृगावती।

पूज्य गुरुदेवश्री : मृगावती... बाई का नाम है। भगवती (सूत्र) में है। बहुत वर्ष हो गये न अब उसे वाँचे हुए। बाई ने अठारह प्रश्न किये हैं। भगवान से प्रश्न (किये और) भगवान सीधे जवाब देते हैं।

यहाँ तो तीर्थंकर की वाणी, उन्हें सहज ओम दिव्यध्वनि निकलती है। किसी समय इन्द्र और नरेन्द्र, चक्रवर्ती, गणधर आदि के प्रश्न हों तो ओम ध्वनि निकले। ऐसी सहज दशा है। भगवान के मुख में से, इससे कहते हैं, मुखारविन्द में से निकले हुए, परमागम। उस वाणी को परमागम कहते हैं। आहाहा! सर्वज्ञ परमेश्वर पूर्ण पवित्र परमात्मदशा। देह में रहे होने पर भी जहाँ अन्तर प्रगट दशा हुई और वाणी निकली। उसके **अर्थ का विचार करने में समर्थ...** यहाँ तो कहना है जरा दूसरी बात। एक तो

परमात्मा वीतराग सर्वज्ञ सिद्ध किये, उनकी निकली हुई वाणी, उसे परमागम सिद्ध किया और **ऐसा जो परम संयमी अनादि बन्धनरूप सम्बन्धवाले अशुद्ध अन्तःतत्त्व और कर्म-पुद्गल का भेद भेदाभ्यास के बल से करता है,...** उस परमागम में ऐसा कहा है कि राग को स्वभाव से भेद कर। राग से तेरे स्वभाव को भेद कर, ऐसा परमागम में कहा है। समझ में आया?

एक तो देव सिद्ध किये (कि) परमात्मा कैसे होते हैं। उनकी वाणी कैसी निकलती है और उस वाणी को परमागम कहने में आता है। और उस परमागम में ऐसा कहा गया है कि जितने विकल्प उठते हैं दया, दान, व्रत, भक्ति या काम-क्रोध वह (भाव) कर्म (और) भगवान आत्मा कर्मरहित अकर्मस्वरूप—इन दोनों के बीच भेद कर—दो को भिन्न कर। अभ्यास भिन्न (करने का) कर। उसे भिन्न करने का अभ्यास, वह उसका धर्म। आहाहा! एक तो अनादि से माने हैं। पुण्य-पाप का राग—विकल्प, जो दया, दान, व्रत, वह तो राग है। उसे और आत्मा को एक माना, वह तो मिथ्यात्वभाव है।

परमागम भगवान की वाणी में ऐसा आया कि **परम संयमी अनादि बन्धनरूप सम्बन्धवाले...** देखो! भाषा रखी। भेद करना है, परन्तु बन्ध सम्बन्ध है, ऐसा कहते हैं। **अनादि बन्धनरूप सम्बन्धवाले अशुद्ध अन्तःतत्त्व...** (अर्थात्) विकारी पर्याय, ऐसा। **अशुद्ध अन्तःतत्त्व और कर्म-पुद्गल...** दो है न? उन्हें—दो को निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है न? विकारी पर्याय और कर्म का उदय—दोनों को निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। शुद्धता और ध्रुव को कुछ (निमित्त-नैमित्तिक) सम्बन्ध नहीं। क्या कहा, समझ में आया? कर्म का उदय जड़ और विकारी पर्याय—दोनों को निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। वह **अनादि बन्धनरूप सम्बन्धवाले...** अशुद्धतत्त्व अर्थात् विकारी पर्याय और पुद्गल, उनका **भेद भेदाभ्यास के बल से करता है,...** उनका भेद भेदाभ्यास के बल से (करता है)। ऐसी दो बात है। आहाहा! देखो! यह करने की क्रिया।

भगवान शुद्धस्वरूप पवित्र... पर्याय-अवस्था में अशुद्धता और कर्म का उदय—दोनों को जो ऐसा सम्बन्ध है, उसे छोड़ अब, कहते हैं। पर से छोड़ अर्थात् अशुद्धता की पर्याय से भी भिन्न पड़ गया। उसके साथ दोनों को सम्बन्ध था। क्या कहा? अशुद्ध

अन्त:तत्त्व लिया है न? दो जगह पहले आ गया है। पृष्ठ ८१ और पृष्ठ १५५। अशुद्ध अन्त:तत्त्व। भेद-अभ्यास का अधिकार एक जगह, एक जगह अशुद्ध अन्त:तत्त्व (कहा)। कहना है जरा ऐसा कि भगवान आत्मा तो शुद्ध अन्त:तत्त्व है। परन्तु कर्म के उदय का सम्बन्ध अशुद्ध विकार के साथ है। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध इतने को है। त्रिकाली ध्रुव ज्ञायकभाव के साथ कर्म का यह निमित्त सम्बन्ध है नहीं। उसका **भेदाभ्यास के बल से करता है,...** आहाहा! यह राग और निमित्त—दोनों से मेरी चीज़ भिन्न है, ऐसा अन्तर्मुख में पर से हटकर स्वभाव का अभ्यास करना, उसे भेदज्ञान (कहते हैं) और वह धर्म की दशा प्रगट करने का कारण है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल २, रविवार, दिनांक - २२-८-१९७१
श्लोक-१४३-१४४, गाथा-१०६, प्रवचन-१०२

यह नियमसार, निश्चय-प्रत्याख्यान अधिकार। १०६ गाथा। बीच में थोड़ा बाकी है न? **अशुद्ध अन्तःतत्त्व और कर्म-पुद्गल का भेद...** देखो! यह क्या कहते हैं? कि पर्याय में जो अशुद्धता आत्मा में है, वह अशुद्ध-आत्मा कहा जाता है। त्याग का—प्रत्याख्यान का अधिकार है न? मिथ्यात्व का त्याग, राग का त्याग, वह सब एक ही प्रकार है। आत्मा में पर्याय में—वर्तमान हालत में अशुद्धता—मलिनता जो है और कर्म का उदय जो निमित्त है, दोनों को निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध का व्यवहार है। समझ में आया? **अनादि बन्धनरूप सम्बन्धवाले...** विकारी—अशुद्ध पर्याय और कर्म का निमित्त, इनके सम्बन्धवाला **अशुद्ध अन्तःतत्त्व और कर्म-पुद्गल का...** भेद—दोनों की भिन्नता। कर्म का उदय है, उससे भिन्नता है। तो उसका अर्थ यह हो गया कि उदय में जुड़ान (है ऐसी) अशुद्ध—विकारी पर्याय है, उससे भिन्नता। समझ में आया?

मुमुक्षु : कौन भिन्न? किससे?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा की विकारी पर्याय और कर्म का निमित्त—यह दोनों आत्मा के स्वभाव से भिन्न—पृथक्।

फिर से। यहाँ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध वर्णन किया है। परम संयमी धर्मात्मा अनादि बन्धनरूप सम्बन्ध... किसके साथ? अशुद्ध आत्मा विकारी पर्याय और कर्म का निमित्त, उसका उसे सम्बन्ध है। कर्म का निमित्त है, इसलिए अशुद्धता है—ऐसा नहीं है, परन्तु अशुद्धता और (कर्म) निमित्त को निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। उन्हें भेद द्वारा... अर्थात् विकारी पर्याय और निमित्त दोनों मुझमें नहीं है। कर्म के निमित्त से लक्ष्य छूटने में अशुद्धता का लक्ष्य भी साथ ही छूट जाता है, ऐसा कहते हैं। थोड़ा सूक्ष्म है। थोड़ा सूक्ष्म है।

आत्मा तो अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति (है, वह) उसकी वास्तविकता। अब

उसकी पर्याय में अशुद्धता है, उसे यहाँ अशुद्ध अन्तःतत्त्व कहा गया है। है वह आस्रव और विकार और राग और रोग। राग का रोग। परन्तु उसे अशुद्ध अन्तःतत्त्व कहा। वस्तु वह शुद्ध अन्तःतत्त्व है। समझ में आया? शुद्ध अन्तःतत्त्व जो चिदानन्द आनन्दस्वरूप भगवान, वह आत्मा। और अशुद्ध अन्तःतत्त्व, वह विकारी पर्याय। है तो आस्रव, परन्तु उसमें एकता है न, इसलिए उसे अशुद्ध अन्तःतत्त्व कहने में आया है। एकता मानी है न! वरना तो शुद्ध चैतन्यस्वरूप परमानन्द धाम अन्तर्मुख का विषय, वह तो पूर्ण शुद्ध है। उसमें जो पर्याय में अशुद्धता, विकार, भ्रमणा, राग-द्वेष, वह दुःखरूप है, उसे यहाँ अशुद्ध अन्तःतत्त्व कहा है, उस पर्यायवाले जीव को। समझ में आया? उसे और कर्म के निमित्त को निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। नैमित्तिक विकारी पर्याय, निमित्त कर्म का उदय। दोनों का सम्बन्ध, वह व्यवहार है। मैं आत्मा शुद्ध अन्तःतत्त्व पूर्ण आनन्द, ज्ञान हूँ। उसे अशुद्ध पर्याय और निमित्त, दोनों से भेद करके भेदाभ्यास के बल से—भिन्न करने के बल से। सेठी! ऐसा भारी सूक्ष्म मार्ग है।

कर्म-पुद्गल का भेद, भेदाभ्यास के बल से—ऐसी दो बातें। भगवान आत्मा तो शुद्ध आनन्द पवित्र धाम भगवान आत्मा है। परन्तु उसकी पर्याय में जो अशुद्धता है, वह निमित्त के सम्बन्ध में हुई है। कर्म का निमित्त, उसके सम्बन्ध से संसार, विकार, उदयभाव वह अशुद्ध अन्तःतत्त्व पर्याय और कर्म का निमित्त। दो को भेद—दो का भेद करना। अर्थात् कि शुद्ध आत्मा परम आनन्द हूँ, उसकी ओर झुकने से वह अशुद्धता और निमित्त का भेद हो जाता है। सेठ! सेठ है न, (वे) तुम्हारी अपेक्षा बहुत ध्यान रखते हैं। दोनों भाई हैं न उसमें से भाग मिल जायेगा, ऐसा? ऐसा नहीं है। आहाहा!

यह वस्तु स्वयं भगवान आत्मा, वह तो अतीन्द्रिय आनन्द की कातली है। उसे चूसना चाहिए। उसके अतीन्द्रिय आनन्द में झुकाव से अतीन्द्रिय आनन्द का चुसाव—रस आता है। उसके द्वारा (अर्थात्) ऐसा जो दो का भेद-स्वरूप, उसके द्वारा भेदाभ्यास से। राग और निमित्त से भिन्न, ऐसे अन्तर्मुख के झुकाव से। वीतरागमार्ग ऐसी अलौकिक चीज़ है कि उसे शुद्ध द्रव्यपना बताते हैं, पर्याय में अशुद्धता बताते हैं और उसका निमित्त बताते हैं। ऐसी तीन चीज़ें वीतराग के अतिरिक्त कहीं नहीं होती। सर्वज्ञ परमेश्वर ने

(कहा हुआ) वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। दूसरे प्रकार से हो नहीं सकता। समझ में आया?

कहते हैं कि धर्मात्मा को क्या करना? **अनादि बन्धनरूप सम्बन्ध...** बन्धनरूप सम्बन्ध... ऐसा अशुद्ध अन्तःतत्त्व। विकारी भाव, उदयभाव, दोषवाला भाव, दुःखरूप भाव, उसे कर्म पुद्गल निमित्त है। उसका (दोनों का) भेद (अर्थात्) दोनों भिन्न हैं। इस न्याय से भिन्न हैं वास्तव में तो। निमित्त और अशुद्धता, ये दोनों भिन्न हैं। परन्तु दो भिन्न हैं, उनकी एकता मानी है, इसलिए कहते हैं कि वह **भेद भेदाभ्यास के बल से करता है,...** अन्तर्मुख स्वभाव चैतन्य की ओर झुकने से, उसकी सन्मुखता होने से यह राग और निमित्त का भेद हो जाता है और उस प्रकार के भेदाभ्यास के बल से उसका भेद करता है। ऐसा कहते हैं न? **भेद भेदाभ्यास के बल से करता है,...** ऐसा कहा। क्या कहा? अशुद्ध अन्तःतत्त्व विकारी दशा अर्थात् अशुद्ध आत्मा। अर्थात् ऐसा करके यह सिद्ध करते हैं कि पर्याय में अशुद्धता जीव ने स्वयं की है। थी, उसे भेद करना है, यहाँ तो कहते हैं। की हुई है अनादि की, उससे भेद करके भेदाभ्यास करना है। मुनि को और सम्यग्दृष्टि को। समझ में आया? बहुत धीरज का मार्ग है।

ऐसा **अशुद्ध अन्तःतत्त्व...** यहाँ तो वस्तुस्थिति बताते हैं। वस्तु शुद्ध अन्तःतत्त्व है और पर्याय में अशुद्ध अन्तःतत्त्व, वह स्वयं हुआ है और उसमें निमित्त वह (कर्म) है। यह दो का और इन दो से भिन्न का भेद भेदाभ्यास के बल से करता है। धर्मी उन्हें भिन्नता के बल से भेद करता है। आहाहा! ऐसा पकड़ना कठिन। ऐसी बात सिद्ध की है। जब प्रत्याख्यान हो कि मिथ्यात्व का त्याग हो, तब इसका अर्थ यह हुआ कि मिथ्यात्व और राग उसमें था। है या नहीं? पर्याय में—अवस्था में—दशा में—हालत में विकार था। तो विकार का त्याग होता है। पर का तो त्याग है ही। परवस्तु तो कुछ है ही नहीं। पर का लक्ष्य किया है, इतना सम्बन्ध है और लक्ष्य करके पर्याय में जो अशुद्धता उत्पन्न हुई है, वह अशुद्ध पर्याय अर्थात् अन्तःतत्त्व और कर्म-पुद्गल निमित्त, उसका **भेद भेदाभ्यास के बल से करता है,...** अन्तर के स्वभाव की सन्मुखता करके... वह निमित्त और अशुद्धता तो भेद (-भिन्न) है ही, परन्तु दो में से भी भेद करके... आहाहा!

भगवान आत्मा... काम, भाई! बड़ा है यह। समझ में आया? इसने कभी किया नहीं, इसे कैसे करना, इसकी खबर नहीं।

दो की (अर्थात्) **अशुद्ध अन्तःतत्त्व और कर्म-पुद्‌गल...** ऐसे शब्द पड़े हैं न? उसकी भिन्नता—उसका **भेद भेदाभ्यास के बल से करता है,...** वह राग और निमित्त, वह मैं नहीं। मैं ज्ञायक चिदानन्द आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु परमात्मा ईश्वर पूर्णस्वरूप मैं हूँ। ऐसे पर से भेद करने का अभ्यास करने से दोनों भिन्न पड़ जाते हैं, ऐसा कहते हैं। जेठालालभाई! आहाहा! भेदज्ञान... भेदज्ञान कहते हैं न? मुझे भेदज्ञान बताओ ऐसा बेचारे... कभी किया हुआ नहीं, सुना हुआ न हो। आहा! अरे! जीव को... ऐसा आया है इसमें। बेचारा क्या करे? यह बात... आहाहा! तीन लोक का नाथ अनन्त-अनन्त सिद्धों को शॉल में रखकर बैठा, ऐसा भगवान है। आहाहा! सोड समझते हो? सोड। हमारी काठियावाड़ी भाषा है। रजाई ओढ़े न? रजाई। शॉल ओढ़ते हैं न? शॉल। उसे यहाँ सोड कहते हैं। इस प्रकार भगवान आत्मा अनन्त सिद्धों को अपने पेट में—शॉल में रखा है। ऐसा भगवान आत्मा, उसे अशुद्धता की पर्याय और कर्म का निमित्त; निमित्त तो भिन्न है अब, दो का सम्बन्ध भी व्यवहार से था। वह व्यवहार अभूतार्थ है—झूठा, है। समझ में आया?

मार्ग तो ऐसा है भाई! सत्य तो ऐसा है। इसके कठिन कहो, सरल को, महँगा कहो, परन्तु है तो यह। इसके अतिरिक्त दूसरे प्रकार से करने जायेगा तो जन्म-मरण नहीं मिटेंगे और वह भी स्वयं के लिये है न! उसमें कहाँ किसी के लिये यह है। दुःख भी स्वयं भोगता है। आहाहा! अकेला दुःख भोगता है। यह आ गया, (१०१) गाथा। अकेला दुःख भोगता है। अकेला मरता है और अकेला जन्मता है। आया न भाई पहले? आहाहा! कौन परन्तु, तेरा था कौन कि तुझमें आवे इकट्ठा? आहाहा! तुझमें था तूने माना था कि मिथ्यात्व, राग-द्वेष वह तूने माना था। आहाहा! उससे अब भिन्न पड़ना है। इसका नाम धर्म है। है भिन्न, परन्तु इसने (एक) माना है कि यह राग मैं हूँ। यह तत्त्व तो भिन्न तत्त्व है। राग, दया, दान, व्रत आदि के परिणाम, वह आस्रवतत्त्व भिन्न तत्त्व है। कर्म का उदय तो भिन्न तत्त्व है ही। वह तो जड़ की पर्याय है। यहाँ तो दोनों का सम्बन्ध

कहकर अब उससे भिन्न करना है। जिसने सम्बन्ध जोड़ा है, वह सम्बन्ध तोड़े। भाई! यह तो तेरे घर की—हित की बात है। महँगी लगे या न लगे, परन्तु यह किये बिना इसका कभी चौरासी के अवतार, अरे भाई! नहीं मिटेंगे। दुनिया तो दुनिया देखेगी और दुनिया तो बाहर की बात की महिमा भी करेगी, इससे कहीं तेरा भला हो, ऐसा नहीं है।

यहाँ तो कहते हैं, **सम्बन्धवाले अशुद्ध अन्तःतत्त्व और कर्म-पुद्‌गल का भेद—** भिन्नता **भेदाभ्यास के बल से करता है,...** इसका अर्थ यह कि स्वसन्मुखता में आता है, इसलिए राग और निमित्त का भेद पड़ जाता है। आहाहा! ऐसा काम है। समझ में आया? **वह परम संयमी**—परम धर्मात्मा को **निश्चयप्रत्याख्यान तथा व्यवहारप्रत्याख्यान को स्वीकृत (-अंगीकृत) करता है।** लो। ऐसे धर्मात्मा को स्वसन्मुख की प्रगट हुई दशा, वह निश्चयप्रत्याख्यान है और विकल्प उठे जरा यह चौबीस घण्टे, अड़तालीस घण्टे आहार नहीं लूँ, वह व्यवहारप्रत्याख्यान। परन्तु वह ऐसे धर्मात्मा को निश्चय और व्यवहार होता है। अकेले आत्मा के भान बिना के त्याग और अपवास किये और यह किया, उसे व्यवहार त्याग भी नहीं। लंघन है। दोनों लिये, हों! बात साधक की है न!

पंच महाव्रत का अभी विकल्प है, वह व्यवहारत्याग कहलाता है, व्यवहार प्रत्याख्यान। अन्तर में राग से भिन्न पड़कर चैतन्य का तलिया जिसने अन्दर से खोजा है, चैतन्य के तल में तो अनन्त आनन्द और ज्ञान भरा है, ऐसे तल में—तलिया में अन्तर में जाता है, उस दशा को निश्चयत्याग कहा जाता है। समझ में आया? यह बात, साधारण लाखों लोग इकट्ठे हों और हो...हा... हो, ऐसा यह नहीं है। ऐई मूलचन्दभाई! लाखों लोगों में हो...हा हो, ऐसा नहीं। वह तो व्यवहार में प्रसन्न हो जाये। आहाहा... आहाहा! अपवास किये, अट्ठाई की, दस लक्षण के दस दिन किये, वाह... वाह...

मुमुक्षु : अपवास करनेवाले की तो शोभायात्रा निकलती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शोभायात्रा निकलती है। मरे उसकी अर्थी निकलती है या नहीं? वह शोभायात्रा नहीं? महिलायें और आदमी इकट्ठे होकर निकलते हैं या नहीं? या अकेला मुर्दा जाता है? और वह शोभायात्रा साथ में होती है, वह भी शोभायात्रा ही है न, दूसरा क्या है? बारात में विवाह कराने जाये और मरने में जलाने जाये, दूसरा क्या

है ? बाजा बजावे। हमारे पालेज में तो, एक भंगी होता है, उसके पास बड़ा भुंगला हो, भुंगला। मरे तब वह भुंगला लेकर आवे। बड़ा भुंगला ऐसा बड़ा भुंगला। भंगी हो भंगी। भंगी समझते हो न? हरिजन नहीं। हरिजन तो ढेढ, यह तो भंगी। उससे हल्का कहलाये। उनमें भी दो प्रकार हैं। विष्टा और पायखाना साफ करे, वह भंगी कहलाता है। हरिजन तो उससे वह कहलाता है। सूत का काम करे... वह भंगी का घर है वहाँ। दिशा (दस्त) को जाते हैं वहाँ बाहर घर है। यह मेरे तो बड़ा भुंगला लेकर आवे। भुं... भुं... करता मुर्दे के सामने आगे चले। वह बाजा है। विवाह करने जाये, तब वह बैण्डबाजा बजावे। सब एक का एक प्रकार है। क्या है परन्तु ? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, मुनिराज ने ऐसी शैली ली है कि राग से और निमित्त से... निमित्त से तो भिन्न ही है, परन्तु राग और निमित्त को सम्बन्ध था, वह सम्बन्ध तोड़ा। स्वभाव के साथ सम्बन्ध करने से राग का सम्बन्ध का अन्दर भेद पड़ गया। उस भेद के अभ्यास द्वारा अन्तर्मुख दृष्टि हुई और जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान और शान्ति प्रगट हुई, वह तो सत्य स्वरूप, सत्य त्याग, सत्य प्रत्याख्यान। उसमें अभी अधूरा है, इसलिए विकल्प आता है कि त्याग करूँ... यह करूँ... यह करूँ। उस विकल्प को 'व्यवहार अंगीकार करता है' ऐसा कहा जाता है। व्यवहार से आदर करता है, ऐसा।

इस निश्चय-प्रत्याख्यान अधिकार की अन्तिम गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव नौ श्लोक कहते हैंः— एक के नौ। ९ अफर अंक है न। आगे ९ लेंगे। आलोचना में ९ लेंगे। एक ६ लेंगे और एक ९ लेंगे। आहा! १४३, ऊपर कलश है न?

भाविकालभवभावनिवृत्तः सोऽहमित्यनुदिनं मुनिनाथः।
भावयेदखिलसौख्यनिधानं स्वस्वरूपममलं मलमुक्त्यै॥१४३॥

आहाहा! अरे! मुनियों ने तो काम किया है न! गजब किया है! दिगम्बर मुनि, वे तो केवलज्ञान के पथानुगामी हैं, केवलज्ञान को स्थिर कर रखा है। केवलज्ञान लूँ, केवलज्ञान लिया और लूँ, ऐसा है। ऐसी दशा है। देखो! क्या कहते हैं ?

श्लोकार्थः—'जो भावि काल के भव-भावों से... भविष्य के भव के कारण

ऐसे विकारी भाव **निवृत्त है, वह मैं हूँ'...** आहाहा! सम्यग्दृष्टि भी ऐसा ही है। प्रत्याख्यान है सही न, इसलिए भावि काल लिया है। प्रतिक्रमण में भूतकाल ले। संवर—आलोचना में वर्तमान ले। भावि काल के परन्तु वर्तमान में, भावि काल के भव-भावों से निवृत्त हूँ, अर्थात् अभी मैं निवृत्त हूँ। आहाहा! मेरे स्वभाव में वह विकारभाव है ही नहीं। भूतकाल के लिये और भविष्यकाल के लिये और वर्तमान काल के लिये। आलोचना में वर्तमान आयेगा। अहो! चैतन्यसमुद्र ऐसा पवित्र का धाम प्रभु! मैं, वह मैं। भावि काल के भव के भाव—संसार के भाव, पुण्य-पाप के विकल्प से निवृत्त है, वह आत्मा मैं हूँ। आहाहा! समझ में आया? ऐसी खबर पड़ती होगी यह?

निवृत्त है, वह मैं हूँ'... पर्याय में विकार था और वह विकार भावि काल में भव का कारण था। उससे मैं निवृत्त हूँ, वह मैं हूँ। आहाहा! **ऐसा मुनिश्वर को...** धर्मात्मा को **मल से मुक्त होने के लिए...** देखो! भावि भव का भाव, वह मैल है। चाहे तो सर्वार्थसिद्धि स्वर्ग में जाने का भाव (हो) वह भी मैल है। उससे तो निवृत्त है वह मैं। निवृत्त है, वह मैं। वह है, वह मैं नहीं—शुभाशुभभाव है, वह मैं नहीं। उससे निवृत्त है, वह मैं हूँ। आहाहा! कठिन काम, भाई! अन्तर्मुख ढलने से, स्वभाव-सन्मुख ढलने से—झुकने से वह मैं, यह तो भावि के भव के भाव से रहितवाला वह मैं हूँ। समझ में आया? भारी कठिन काम। यह सत्य ही ऐसा है। उसे कठिन कहना, वह तो लोक की दुर्लभता बताने के लिये (बात है)। कठिन कहने से वह वस्तु इससे कोई दूसरी प्रकार हो, ऐसा नहीं है। बात तो यह है।

भगवान! सत्य का स्वरूप तो यह है। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने ऐसा प्रसिद्ध—जगत में प्रसिद्ध किया है। समझ में आया? अरे! भावि अर्थात् भविष्य काल, उसके जो भव, उसका भाव। भव का भाव, उससे तो मैं निवृत्त हूँ। अभी मैं निवृत्त हूँ। आहाहा! समझ में आया? यह तो कुछ बात है? यह तो भाव है। यह भाव प्रगट हुए बिना सब बातें थोथे-थोथा हैं। आहाहा! फिर पूजा करे और भक्ति करे और यात्रा निकाले तथा दस-दस लाख, बीस लाख खर्च करे और मन्दिर बनावे लाख, करोड़ और अरब—सब व्यर्थ है। मैं अर्थात् आत्मा। और यह आगे कहेंगे। अनन्त-अनन्त आनन्द

का नाथ भरपूर ऐसा मैं भावि भव के भाव से निवृत्त है, वह मैं हूँ। आहाहा! वर्तमान में वह भाव करता है कि मैं ऐसा हूँ और भावि के लिये भी मैं ऐसा ही हूँ। आहाहा! भारी कठिन बात! पूरे दिन यह देखो न! दस दिन आयेंगे। पूजा करना, भक्ति पूरा सवेरे से यह षोडशकारण भावता... क्या आता है?

मुमुक्षु : दरशविशुद्धि भावना भाय....

पूज्य गुरुदेवश्री : सोलह तीर्थंकरपद पाये। ऐ..ई! सब प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। आहाहा! षोडशकारण भावना तो विकल्प—राग है। जिस भाव से तीर्थंकर (गोत्र) बँधे, वह राग है, अपराध है, नुकसान है। आहाहा! ऐ मूलचन्दभाई!

मुमुक्षु : तीर्थंकरपद को प्राप्त हो....

पूज्य गुरुदेवश्री : तीर्थंकर अर्थात् क्या? समवसरण मिले, वह तीर्थंकर? वह तो जड़ का होना है। वह तो पुण्य की प्रकृति है और जिस भाव से बँधी, वह तो अपराध है। पुरुषार्थसिद्धि उपाय में (गाथा २२०) कहा है, नहीं? महाराज! समकिती भी जब तीर्थंकरगोत्र बाँधे, तो वह भाव समकिती को ही होता है, तो यह क्या है? समकित से बँधता है? नहीं। वह तो शुभोपयोग का अपराध है। समझ में आया? पहले बताया था। कितनी गाथा? २२०, देखो!

'इस लोक में रत्नत्रयरूप धर्म निर्वाण का ही कारण होता है, अन्य गति का नहीं, और जो रत्नत्रय में पुण्य का आस्रव होता है, वह यह अपराध शुभोपयोग का है।' कहो, समझ में आया? तीर्थंकर की बात है ऊपर, हों! यह २१८ (गाथा) है।

सति सम्यक्त्वचरित्रे तीर्थंकराहारबन्धकौ भवतः।
योगकषायौ नासति तत्पुनरस्मिन्नुदासीनम्॥२१८॥

'जिसमें सम्यक्त्व और चारित्र...' आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा होने पर भी, उसे 'तीर्थंकर और आहारकप्रकृति का बन्ध करनेवाला योग और कषाय होते हैं...' योग और कषाय तीर्थंकरप्रकृति के बन्ध का कारण है। आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य महाराज दिगम्बर सन्त वनवासी (यह कहते हैं)। पुरुषार्थसिद्धि उपाय, २१८ गाथा। आहाहा! 'और न होते, होता नहीं...' अर्थात् कि योग और कषाय न हो तो तीर्थंकरगोत्र नहीं

बँधता। 'यह सम्यक्त्व और चारित्र बिना बन्ध के कर्ता योग और कषाय नहीं होते...' सम्यक्त्व और चारित्र हो तथा योग और कषाय से कर्म बँधे ऐसा नहीं होता है। इसलिए सम्यक्त्व और चारित्र हो वहाँ ऐसी कषाय हो, उससे तीर्थंकरगोत्र बँधता है, तो वह 'इस बन्ध में उदासीन है।' यह सम्यग्दर्शन और चारित्र, जिस भाव से तीर्थंकरप्रकृति बँधे, उस भाव से उदास है। तब है क्या वह? ऐसा कहा। वह अपराध है। यह २२० (गाथा) में अपराध कहा। योग-कषाय, वह अपराध है। आहाहा! ऐ भीखाभाई! तीर्थंकरप्रकृति भी... कहते हैं न, मूलचन्दभाई (कहे), तीर्थंकरप्रकृति बँधे न? तीर्थंकर हो न? आहाहा! और जिस भाव से तीर्थंकर (गोत्र) बँधा, उस भाव से कहीं केवलज्ञान नहीं होता। वह तो अपराध है। उसका नाश करेगा, तब केवलज्ञान होगा। समझ में आया? ऐसा मार्ग! आहाहा! वीतराग का निर्दोष निष्कलंक मार्ग। आहाहा!

अपना स्वभाव ही अत्यन्त शुद्धस्वभाव पवित्र है। उसके—स्वभाव के भान द्वारा और स्थिरता द्वारा ही मुक्ति होती है। उसमें यह बीच में अपराध आता है। आहाहा! वह प्रसन्न-प्रसन्न हो। षोडशकारण भावना भाय, तीर्थंकरपद पाय... क्या आता है न? क्या कहा बाद में? परमगुरु होय... ऐई श्रीचन्दजी! हमारे श्रीचन्दजी बहुत गाते हैं। यह दस दिन आयेंगे न? परमगुरु होय... यह बैठे वहाँ। पहले बहुत गाते थे, अब कम हो गया है। अपवास-बपवास हो। तीर्थंकरपद पाय, परमगुरु होय... परमगुरु होय। तीर्थंकरप्रकृति से परमगुरु होता होगा? और जो भाव अपराध है, उससे आत्मा परमगुरु होता होगा? ऐई सेठ! लोगों की श्रद्धा में ही कुछ भान नहीं होता।

यहाँ तो २२० (गाथा) में कहा। '**शुभोपयोगोऽयमपराधः**' मूलचन्दभाई! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव—शुभोपयोग का अपराध है। शुभोपयोग स्वयं अपराध है। आहाहा! कुछ निरपराध (भाव) से बन्धन होगा? पाटनीजी! (संवत्) १९८५ में यह बात सभा में रखी थी। १९८५। तब सम्प्रदाय में थे न? पौष महीना था, पौष। १९८५। बोटाद। १५ और २७ = ४२ (वर्ष) हुए। वहाँ तो हजारों लोग आते थे। लोगों को हमारे प्रति बहुत प्रेम था न! खचाखच सभा। यह तो अभी छोटी है। वह तो बड़ी सभा। ३००-३५० घर। १०००-१५०० लोग खचाखच (बैठे हों)। समाय नहीं, इसलिए

बाहर बैठे। लोगों को बहुत मान था न! प्रियता बहुत थी हमारे प्रति। यह मुँहपत्ती बदली, मूर्ति आयी, वहाँ सब बदल गया। तब सभा में ऐसा कहा था, हों! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह धर्म नहीं। धर्म से बन्ध हो, वह वस्तु हो सकती नहीं। इसलिए धर्म से विरुद्ध, वह पुण्य है। दूसरे प्रकार से कहें तो, कहा, अधर्म है। खलबलाहट हो गयी। सभा को तो सबको प्रेम था न!

एक वेशधारी बैठे थे जगजीवन। ऐई हरिभाई! जगजीवन को पहिचानते हो न? कहाँ गये हरिभाई? जगजीवनजी थे। अकेले बैठे थे। (कहा), वोसरे... वोसरे... वोसरे-वोसरे अर्थात् यह श्रद्धा हमें नहीं चाहिए। कहाँ है परन्तु? मुफ्त के उठ गये सभा में से। सभावालों को कुछ खबर पड़ी कि क्या बोले? परन्तु मुझे खबर पड़ी। सभा तो एक ही ध्यान से मेरा सुनती हो। वे तो चले गये। व्याख्यान पूरा होने के पश्चात् अकेले (थे तब) कहा, परन्तु किसलिए उठे? नहीं जँचता हो तो बैठे रहना था। किसी ने माना तुमको? क्या कहा, यह सभा को खबर है? वोसरे-वोसरे करके उठ गये।

अपने आता है न वोसरे? नहीं आया? आ गया प्रत्याख्यान में। त्यागता हूँ, छोड़ता हूँ। वोसरे अर्थात् छोड़ता हूँ। यह श्रद्धा छोड़ता हूँ। परन्तु कहाँ थी? मुफ्त में किसलिए उठ गये? उनके बड़े साधु को—मूलचन्दजी को अच्छा लगाने (के लिए उठ गये)। देखो! मैं उस समय ऐसी सभा में भी (ऐसा बोला)। कोई सभा समझती नहीं कि तुमने क्या कहा। मुझे खबर है कि यह श्रद्धा तुम्हारी वोसरे-वोसरे... १९८५ की बात है सेठ! १५ और २७ = ४२ वर्ष हुए। सम्प्रदाय में कहा था, हों! आहाहा! मार्ग यह है। मार्ग यह है, कहा। दो बातें की थीं। पंच महाव्रत, वह आस्रव है और तीर्थंकरगोत्र जिस भाव से बँधे, वह धर्म नहीं, परन्तु अधर्म है। मानो, न मानो; परन्तु मार्ग यह है। बालचन्दजी! तुम्हारे सम्प्रदाय में रहकर कहा था। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, ऐसे धर्मात्मा को **मल से मुक्त होने के लिए...** आहाहा! **परिपूर्ण सौख्य के निधानभूत...** आहाहा! परिपूर्ण आनन्द का निधान ऐसा जो निर्मल निजस्वरूप, भगवान आत्मा अपना—निज स्वरूप परिपूर्ण आनन्द, आहाहा! परिपूर्ण सुख, अनन्त सुख। परिपूर्ण सुख का निधान ऐसी मेरी निज की खान। वह भी **निर्मल निज स्वरूप...**

उसे **प्रतिदिन भाना चाहिए।** धर्मात्मा को दिन-प्रतिदिन यह भावना करना चाहिए। मैं परम आनन्द का धाम, निधान, उसकी ओर झुकाव करना, इसका नाम धर्म है। कहो, सेठ!

मुमुक्षु : भावना भाना तो इस प्रकार से।

पूज्य गुरुदेवश्री : भावना का अर्थ कि यहाँ एकाग्रता है। भावना (अर्थात्) विकल्प नहीं। कहते हैं कि धर्मात्मा ने, 'मैं हूँ' ऐसा निर्णय तो स्थिरता में किया है। परन्तु मुक्त होने के लिये बारम्बार परिपूर्ण सुख का धाम निधान प्रभु... आहाहा! अल्प सुख नहीं, दु:ख तो नहीं ही। भगवान आत्मा में दु:ख तो है ही नहीं, विकार तो है ही नहीं, निमित्त तो नहीं, परन्तु अल्पसुख भी नहीं। चैतन्य आनन्द का नाथ, जिसका स्वभाव आनन्द, ऐसे परिपूर्ण सुख का निधान, ऐसा निज निर्मल स्वरूप, उसकी ओर झुकाव करना। आहाहा! लो, जेठालालभाई! अभी तो यहाँ जेठालालभाई को दिक्कत यह (कि) कर्म का हो तो विकार हो, कर्म हो तो विकार हो। करो, चर्चा। यह कहे, मैं ऐसा मानता नहीं। क्या कहा यह? जिसे सुखी होना हो, उसे क्या करना? कि परम परिपूर्ण आनन्द का निधान भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा ने प्रगट किया और ऐसा आत्मा है। परम आनन्द की मूर्ति प्रभु परिपूर्ण आनन्द ऐसा जो आत्मा का स्वभाव—निर्मल निज स्वरूप, ऐसा आत्मा का, उसमें एकाग्र होना, वह सुख को प्राप्त करने का रास्ता है। बाकी यह सब दु:ख के प्राप्त करने के रास्ते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया? १४३ (श्लोक पूरा) हुआ। १४४।

घोरसन्सृतिमहार्णवभास्वद्यानपात्रमिदमाह जिनेन्द्रः।
तत्त्वतः परमतत्त्वमजस्त्रं भावयाम्यहमतो जितमोहः ॥१४४॥

आहाहा! श्लोकार्थ :- आहाहा! **घोर संसारमहार्णव...** चार गति में भटकने का महा समुद्र संसार मिथ्यात्वभाव। आहाहा! नरक और निगोद, चींटी और कौआ, कुत्ता और कुंजर—हाथी, ऐसे भव महासंसार। **घोर संसारमहार्णव...** महा समुद्र है, कहते हैं। आहाहा! उसका **यह (परम तत्त्व) दैदीप्यमान नौका है...** चैतन्य भगवान आनन्द का नाथ, उस परम घोर संसार को तिरने के लिये नाव समान है। यह आत्मा नाव है। यह बाहर के संयोग तो दु:खदायक का निमित्त है और अन्तर के संकल्प-विकल्प, वह तो

दु:ख की मूर्ति है। आहाहा! संकल्प और विकल्प, यह करूँ और वह करूँ—वह सब दु:ख की खान है, अकेली दु:ख की खान है। ऐसा महा समुद्र संसार को तिरने के लिये **यह (परम तत्त्व) देदीप्यमान नौका है...** यह शोभित नाव है—शृंगारित नाव है। कौन? आत्मा। अनन्त ज्ञान और आनन्द का नाथ प्रभु, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द है, परिपूर्ण सुख से भरपूर आत्मा है। वह आत्मा संसार के घोर संसार के भव से तिरने के लिये नाव आत्मा है। आहाहा!

'नाव तरे रे मेरी नाव तरे...' ऐसा श्वेताम्बर में आता है। यह बात सच्ची नहीं परन्तु... एक अयवन्तो राजकुमार था। छोटी उम्र में दीक्षा ले ली। श्वेताम्बर में भगवती (सूत्र) में आता है। बात सब खोटी है, परन्तु वह बात ऐसी आती है। सार निकालना है। वह अयवंतो राजकुमार था। फिर छोटी उम्र में दीक्षा ले ली। बहुत छोटी उम्र। उसमें मुनियों के साथ जंगल—दिशा के लिये बाहर जाता है। वापस आ रहे थे, वहाँ बहुत वर्षा आयी। वरसाद समझे? वरसाद समझते नहीं? बारीश कहो या बरसात कहो, इतना शब्द है। पानी बहुत गिरा। उसमें छोटा बालक, राजकुमार और दीक्षा हो गयी। वह पानी का प्रवाह चले न? बहुत वर्षा इसलिए। स्वयं ऐसे बैठ गया। बैठकर ऐसे प्रवाह चला उसमें धूल की पाल बाँधी। मिट्टी की पाल बाँधी और पात्र हाथ में था। श्वेताम्बर तो ऐसा माने न? पात्र।

मुमुक्षु : पात्र तो पहले से सिद्ध कर दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब सिद्ध करना है। एक कंकर से सब... सब बात खोटी। वह पात्र उसमें रखा। 'नाव तरे रे मोरी नाव तरे... ऐसे मुनिवर जल सु खेल करे...' उसकी सज्झाय सब वाँची हुई है। यह तो दुकान पर वाँची हुई है। (संवत्) १९६४-६५। चारों सज्झायमाला है न? यह तो तब वाँची हुई है। उन दूसरे साधुओं ने देखा तो कहे, अरर! यह क्या? पानी में... नाव तरे रे मोरी नाव तरे, मुनिवर जल सु खेल करे, मोहनीय कर्मना रे ए चाळा, मुनिवर दोहे ना नरिया रे बावा...' एक हस्तिमुक्तकुमार और एक गजसुकुमार। दोनों छोटे थे न? उनकी एक बड़ी सज्झाय है। यह तो सब दुकान पर वाँची हुई। दीक्षा से पहले, हों! १९६४ के वर्ष। धन्धा निवृत्ति का, घर की दुकान थी। खूब वाँचा हुआ।

यहाँ ऐसा कहते हैं... वह तो पात्र और पानी और साधु वह सब बात खोटी है। समझ में आया? परन्तु यह नाव। आहाहा! मेरा भगवान आत्मा परमानन्द की मूर्ति। 'नाव तरे रे मोरी नाव तरे, ऐसे निज आनन्द में आतम खेल करे...' 'निज' कहा न? देखो न! मेरा तिरता आत्मा, वह संसार के समुद्र से नाव समान तिरता है। सम्यग्दृष्टि धर्मी ऐसे अपने निजानन्दस्वरूप भगवान को संसार के समुद्र से तिराता नाव मानता है। आहाहा! समझ में आया? राजकुमार। गजसुकुमार हुए न? श्रीकृष्ण के भाई। वे छोटी उम्र में... विवाह नहीं किया था और दीक्षा ली। उन्हें भी एकदम वैराग्य होकर श्मशान में... ध्यान में थे और उनके ससुर ने... अपने फोटो है न गजसुकुमार का? इन दो की बात आती है। 'दो मुनिवर नाम लिया बाला।' एक तो मुनि को पात्र नहीं होते और मुनि बालक हो तो भी उसे ऐसे मोह के खेल नहीं होते। ऐई! आहाहा! ऐसी बातें मिलायी है उसमें भगवतीसूत्र में।

राणपुर में यह कोई बात आयी थी। वे भाई थे न? क्या कहलाये? राणपुर में छापावाले। गुजर गये, नहीं? अमृतलालभाई। वे वहाँ व्याख्यान में आये हुए। वहाँ था न? उनका स्थान था न राणपुर। बाहर छापा में था। हम उनके घर में गये थे। तब व्याख्यान में आये हुए और यह बात आती थी। यह आयी थी तब। १९८४ की बात है। १९८४ का चातुर्मास था न? राणपुर। बेचारे ने कभी सुनी हुई नहीं, इसलिए आहा! क्या कहते हैं यह? क्योंकि उसे वैराग्य... सब आये थे। पर्यूषण में तो आवे न! देखो! ऐसा है। आत्मा राग से भिन्न और पर से भिन्न, उसका भान किये बिना नाव तिरेगी नहीं, कहा। डूब जायेगी। यह बाहर की शोभा और यह पैसा मिला और ढींकणा मिला और इज्जत बढ़ी। पूँछड़े बढ़े। भटकने के हैं। ऐई मलूकचन्दभाई तब थे या नहीं? १९८४। उसका उपाश्रय, कैसा?

मुमुक्षु : अमृतलाल....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह। वह उपाश्रय है न? वहाँ कमरे पर वाँचा था न! तपसी का उपाश्रय। १९८४ में। यह थे न, मनसुख-मनुसख सबने प्रौषध किये थे तब। खबर है? यह मनसुख तब छोटा था। १९८४। १६ और २७, कितने हुए? ४३ वर्ष

पहले की बात है। उसने प्रौषध किया था। पूनमचन्दभाई! तुम्हारे पिता ने और उन सबने प्रौषध किया था।

मुमुक्षु : बाजार में वह नहीं चलती हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची है। अब यह दूसरा माल आया। यह तो कस्तूरी बेंची जाती है अब। वे तो सब घास के पोटले थे। आहाहा!

देखो न! मुनिराज ने किस प्रकार से (बात की है)! अरेरे! घोर महार्णव संसार... चौरासी के अवतार के कारण विकारभाव, मिथ्यात्वभाव, पुण्य-पाप भाव—ऐसा महासंसार घोर, उसमें दैदीप्यमान मेरी नाव रंगीत है—शोभित नाव है, कहते हैं। ऐसा कहा न? भाई! '**भास्व**', '**भास्व**', '**भास्व**' अर्थात् शोभित। समझ में आया?

एक दृष्टान्त देते थे। एक था अन्धा। उसके पिता मर गये और उसके पिता को नाव का धन्धा। नाव टूट गयी, फूटी हुई। उसमें कोई पुण्य का योग होगा। नर्मदा की नदी में उस ओर जाना था। अब यह कहे कि मेरे पास कुछ साधन नहीं, मैं अन्धा। फूटी हुई नाव थी। कागज से श्रृंगारित किया। कागज... कागज चिपकाकर... क्या कहा? कागज नहीं समझते? लाल चित्रामणवाले कागज (लगाये)। फूटी हुई नाव। नाव फूटी हुई। छिद्र पड़े हुए। खर्च करे तो हजार रुपये चाहिए। शोभित नाव। फिर नदी के इस किनारे से उस किनारे जाना। (प्रत्येक) आदमी के तीन रुपये, चार रुपये इस किनारे से उस किनारे ले जाने के। यह नाववाला कहे, मुझे तो एक रुपया लेना है। पूरी खचाखच भर गयी। नाव चली। चलते हुए जहाँ पानी भरा तो कागज गीले हुए। अन्दर अधबीच में पानी आया। ऐ... यह क्या हुआ? भाई! तुमको खबर नहीं? चार रुपये का एक रुपया (लिया तो) तुम ठगाये या मैं ठगाया? ... बताया। वह चार रुपया ले तो मैंने एक रुपया लिया तो कुछ कारण होगा, ऐसा तुमको विचार नहीं आया? चश्मा चढ़ाया था हरा। इसलिए देखे नहीं दूसरे। देखो! मैं तो अन्ध हूँ। तुम भी अन्ध?

इसी प्रकार यह मोक्ष के मार्ग की सरल बातें अन्धों ने कर डाली है सब। समझ में आया? दया पालो, व्रत पालो और तप करो... मोक्ष होगा। अन्धों ने ऐसा सरल मार्ग किया और वे भान बिना के बैठे उसमें। समझ में आया? जेठाभाई! यह हमारे हीराजी

महाराज दृष्टान्त देते थे। गुरु (दृष्टान्त) देते थे। उनकी क्रिया तो बहुत कठोर थी न! आहाहा! सस्ता धर्म। अपवास करो, यह करो, अठ्ठम करो, यह क्या कहा जाता है तुम्हारे? सोळ भथ्थु करो... सोळ भथ्थु नहीं? मासखमण महीने के। श्रावण शुक्ल पूर्णिमा से अपने दिगम्बर में। षोडशकारण भावना, उसके अपवास। जाओ, तुम्हारा कल्याण। धूल भी नहीं, सुन न! मर जा न कल्याण करके। वह तो राग की क्रिया है। सस्ता बताया अन्धे ने। ऐई मूलचन्दभाई! फूटी नाव श्रृंगारित।

यह सच्ची श्रृंगारित। आहाहा! **दैदीप्यमान नौका है ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है;...** आहाहा! तीन लोक के नाथ जिनेन्द्र वीतराग परमेश्वर, जिनके सौ इन्द्र तलिया चाटे, ऐसे भगवान त्रिलोकनाथ ने ऐसा कहा कि संसार में तिरने की नाव, वह तेरा परम आनन्द का धाम आत्मा है। उसकी दृष्टि और अनुभव कर, वह तिरने का उपाय है। बाकी यह क्रियाकाण्ड और रागादि, वह कोई तिरने का उपाय है नहीं। आहाहा! कठिन तो लगे भाई लोगों को, हों! बहुत वर्ष से सेवन करता हो, मान मिला हो सामने पड़कर, लो। यह हमारे घर में होशियार है। निकले पागल। ऐई पोपटभाई! आहाहा!

अरे! घोर संसार को तिरने के लिये दैदीप्यमान आत्मा, उसकी दैदीप्यमान नाव है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान की नाव आत्मा, उसका जिसने अन्तर अनुभव किया, वह आत्मा स्वयं संसार को तिरने की नाव है। दूसरा कोई क्रियाकाण्ड आदि संसार को तिरने की नाव है नहीं। अरे! **इसलिए मैं...** जिनेन्द्रदेव परमात्मा त्रिलोकनाथ ने ऐसा कहा। इन्द्रों के, गणधरों के समक्ष में परमात्मा ऐसा फरमाते थे।

मैं मोह को जीतकर निरन्तर परम तत्त्व को तत्त्वतः (पारमार्थिक रीति से) भाता हूँ। आहाहा! ऐसा परम तत्त्व... मोह को जीतकर, मिथ्याभ्रान्ति को टालकर, मेरा भगवान आनन्द का धाम, उसके ऊपर मेरी दृष्टि और उसका स्वीकार, वह परम सत्य का स्वीकार है। ऐसे जीव को **निरन्तर परम तत्त्व को तत्त्वतः (पारमार्थिक रीति से)...** विकल्प और चिन्ता से नहीं। आहाहा! अन्तर के भगवान आत्मा में एकाग्र होकर भाता हूँ। उसकी भावना में एकाग्र हूँ। वह मुझे मोक्ष का उपाय है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल २, सोमवार, दिनांक - २३-८-१९७१
श्लोक-१४५-१४६-१४७, प्रवचन-१०३

नियमसार, निश्चय-प्रत्याख्यान अधिकार। सच्चा त्याग और सच्चा चारित्र किसे होता है और कैसे होता है—उसकी बात है। १४५ कलश। इस ओर १४५ है न!

प्रत्याख्यानं भवति सततं शुद्धचारित्रमूर्तेः,
भ्रान्तिध्वन्सात्सहजपरमानन्दचिन्निष्ठबुद्धेः।
नास्त्यन्येषामपरसमये योगिनामास्पदानां,
भूयो भूयो भवति भविनां सन्सृतिर्घोररूपा॥१४५॥

श्लोकार्थ :- कहते हैं, **भ्रान्ति के नाश से...** भगवान आत्मा पूर्णानन्द और विज्ञानघन है। उसे निमित्त से लाभ माने, राग से लाभ माने और एक समय की अवस्था जितना माने—वह सब भ्रान्ति मिथ्यात्व है। समझ में आया? **भ्रान्ति के नाश से...** अर्थात् जो एक समय में पूर्णानन्द घन आत्मा का आश्रय करे, तब भ्रान्ति का नाश होता है। सूक्ष्म बात है। अकेले अध्यात्म का पूरा तत्त्व है न! भ्रान्ति के नाश से बात की यहाँ से। मैं अपूर्ण हूँ, विकार हूँ, राग से हूँ, निमित्त से हूँ—ऐसी जो दृष्टि, वह मिथ्याभ्रान्ति और अज्ञान है। थोड़ी सूक्ष्म। बहुत सूक्ष्म नहीं है। तुमने कभी परिचय किया नहीं, इसलिए बहुत सूक्ष्म, ऐसा कहना है। ऐ सेठ! ....कहते हैं, हमारे बहुत सूक्ष्म है, ऐसा लगता है। कभी अभ्यास कहाँ किया है बीड़ियों के भुंगला के कारण, तम्बाकू के कारण। यह तो थोड़ी सूक्ष्म है, सेठ! हाँ, बहुत सूक्ष्म तो अन्तर में उतरकर लीन होना... आहाहा! है न आगे आयेगा। आहाहा!

भाई! तुझे भ्रान्ति है। क्या? कि मैं पूर्ण आनन्दधाम चैतन्य अभेद अखण्डानन्द का आश्रय लूँ तो मुझे कुछ समयग्दर्शन और धर्म की शान्ति हो—ऐसा तुझे श्रद्धा नहीं है। तुझे श्रद्धा में (ऐसा है कि) कुछ निमित्त से मुझे मिल जायेगा, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम से कुछ मिल जायेगा। एक अंशबुद्धि जो है—पूरा आत्मा, उसकी एक

समय की पर्याय का अंश है, उसकी बुद्धि में रुकने से स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती। वह अंशबुद्धि। अलग-अलग भाषा आवे वहाँ। ... रखी है? समझ में आया? यहाँ तो भ्रान्ति को सिद्ध करना है पहले। भ्रान्ति अर्थात् क्या? पूर्णानन्द प्रभु अनन्त आनन्द का धाम जिसमें सुखसागर से डोल रहा है, उसका आश्रय न लेकर, पर के आश्रय से मुझे कुछ कल्याण होगा, समकित होगा, निमित्त के आश्रय से मुझे कुछ समकित होगा, दया, दान, राग की मन्दता, भक्ति आदि से मुझे समकित होगा....

मुमुक्षु : बल तो मिले न?

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा भी बल मिलता नहीं, धूल भी मिलता नहीं। यह मार्ग ऐसा है, भाई! एक समय की दशा... तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव परमात्मा ने परम सत्य... परम सत्य देखकर, सम्हालकर पूर्ण प्राप्त किया, उनकी वाणी में आया, वह परमागम है। उस परमागम में ऐसा कहा, भाई! पूरी भरपूर पूर्ण चीज़ है अभेद, उसकी दृष्टि का तुझे अनादि से अभाव है। और एक समय की दशा, राग की मन्दता भक्ति आदि की और निमित्त देव-गुरु-शास्त्र और पर-प्रतिमा,...—उससे मुझे समकित होगा, यह मिथ्या भ्रान्ति है। देवीचन्दजी! समझ में आया?

भ्रान्ति का नाश... ऐसी जो भ्रमणा, उसका नाश किया। यहाँ प्रत्याख्यान है न इसलिए यहाँ से शुरु किया है। तोड़ता है, ऐसा। जो पहले भ्रान्ति को छोड़ता है, ऐसा नास्ति... **जिसकी बुद्धि सहज-परमानन्दयुक्त चेतन में निष्ठित (-लीन, एकाग्र) है,...** भ्रमणा छोड़कर जिसकी मति और बुद्धि **सहज-परमानन्दयुक्त चेतन...** ऐसा। चेतन तो सही, परन्तु परमानन्दसहित अतीन्द्रिय आनन्द के रसवाला तत्त्व है वह। स्वाभाविक परमानन्दसहित ऐसी जो चैतन्यवस्तु, उसमें भ्रान्ति के अभाव से उस चीज़ में जिसकी मति लीन है। जिसकी बुद्धि उस ओर ढल गयी है। अरे! भ्रान्ति का नाश होने से बुद्धि स्वसन्मुख ढल जाती है, ऐसा कहते हैं। यह सुख का उपाय, बाकी सब दुःख के रास्ते। चार गति में भटकने के रास्ते हैं। समझ में आया? जिसकी बुद्धि अर्थात् मति—जिसकी वर्तमान ज्ञान की अवस्था, पर से मुझे लाभ होगा, पर्याय से या राग से या निमित्त से, ऐसी बुद्धि नाश होने से, जो बुद्धि परमानन्दसहित ऐसा भगवान चैतन्यस्वरूप, उसमें

जिसका झुकाव होकर लीन हुआ है। झुकाव हुआ है, वह तो सम्यग्दर्शन में हुआ है, यह तो उसके उपरान्त लीन हुआ है। समझ में आया? आहाहा!

ऐसे शुद्धचारित्रमूर्ति को... भगवान अनन्त आनन्द का शुद्ध सागर, उसमें जिसकी दृष्टि जमकर लीन हो गयी है, उसका नाम शुद्ध चारित्र की मूर्ति कही जाती है। आहाहा! समझ में आया? चारित्र अर्थात् पंच महाव्रत के परिणाम, वह कहीं चारित्र नहीं; नग्नपना, वह कहीं चारित्र नहीं। चारित्र हो, उसमें यह (नग्नपना) हो वापस निमित्त, परन्तु वह चारित्र नहीं। चारित्र तो भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का धाम सुखस्वरूप मैं, चैतन्य सुख के सहित है, चैतन्य सुखसहित है, ऐसी जो त्रिकाली चीज़, उसमें जिसने दृष्टि की है और उसमें जो लीन हुआ है, उसे चारित्रवन्त कहते हैं। आहाहा! यह व्याख्या तो देखो चारित्र की! **ऐसे शुद्धचारित्रमूर्ति...** शुद्ध क्यों कहा? कि महाव्रत के विकल्प आदि हों, वह तो अशुद्ध चारित्र है। आहाहा! भगवान अपने निजघर को देखकर उसमें स्थिर होता है, उसे चारित्र कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

सतत प्रत्याख्यान है। उसे तो निरन्तर प्रत्याख्यान ही है, ऐसा कहते हैं। सम्यग्दृष्टि को निरन्तर द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि है, निरन्तर द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि है और उसमें लीन है, उसे निरन्तर—सतत प्रत्याख्यान है। ऐसा चारित्र सुना भी नहीं होगा। गर्म पानी पीना, भगवान के उपधान करना, आहाहा! १०८ खमासमणा देना। मजदूरी कर-करके मर जाये। सहजानन्द प्रभु की खान में अनन्त-अनन्त आनन्द... अनन्त-अनन्त आनन्द... अनन्त आनन्द प्रगट हो, उससे भी अनन्त गुणा आनन्द उसमें है। ऐसे अतीन्द्रिय अनन्त आनन्दसहित ऐसे चैतन्य प्रभु में जिसकी दृष्टि पड़ी है और उसमें जो लीन हुआ है। दृष्टि पड़ी, वह समकित की और उसमें विशेष लीन हुआ, वह चारित्र। समझ में आया? यह तो निश्चय की बात है, परन्तु कोई व्यवहार...? नहीं तो कहे, उसका साधन होगा या नहीं? या सीधे यह? अरे भगवान! साधन... साधन एक ही होता है। जो वस्तुस्वरूप के साधन नाम का—करण नाम का गुण पड़ा है, वह साधन एक ही आत्मा है। व्यवहार साधन कहा, वह (साधन) नहीं, उसे आरोप से साधन कहा है। आहाहा! समझ में आया?

परसमय में (-अन्य दर्शन में) जिनका स्थान है,... पूनमचन्दजी! क्या आया?

देखो! अन्य दर्शन में जिसका स्थान है... वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा ने कहा आत्मा, उसके स्थान में जो नहीं और अन्यमति के स्थान में जो है... सब धर्म समान नहीं इसमें ऐसा कहा। आहाहा! परमेश्वर सर्वज्ञदेव ने आत्मा देखा और उनने देखे-जाने छह द्रव्य। उनके मार्ग में जो हो अर्थात् कि द्रव्यस्वभाव के मार्ग में हो, उसे समकित और चारित्र होता है। इसके अतिरिक्त अज्ञानियों का कल्पित आत्मा एक ही है और उसने जाना हुआ अल्पज्ञ ही है, वह रागवाला ही है, निमित्त के संग से उसे लाभ होता है, ऐसा वह है—ऐसा जो अन्यदर्शन के स्थान में है, **ऐसे अन्य योगियों को प्रत्याख्यान नहीं होता;...** ऐसे जीव को प्रत्याख्यान, चारित्र नहीं होता। आहाहा!

पहले समझण में तो यथार्थता करे। ...भाई! समझ में आता है? समझ में यथार्थता करे, पश्चात् दृष्टि हो और फिर लीन हो, उसे चारित्र होता है। मूलचन्दभाई! यह तो सब वस्त्र बदले, नग्न हो गये और चारित्र। हम गुरु हैं। उन गुरु को मानते नहीं? अरे भगवान! भाई! कठिन लगेगा तुझे। गुरु किसे कहा जाता है? जिसका प्याला फटा है अन्दर से आनन्द का, जिसे आनन्द की मौज अन्दर में आती है, जो दुनिया की अनुकूलता, प्रतिकूलता पर जरा-सी नजर करता नहीं। आहाहा! ऐसा समभाव में लीन है, ऐसे चारित्रमूर्ति को प्रत्याख्यान निरन्तर होता है और इसके अतिरिक्त अज्ञानी के मत में बिल्कुल प्रत्याख्यान नहीं होता। यहाँ निरन्तर होता है, तो यहाँ जरा भी नहीं होता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतराग सर्वज्ञदेव ने कहे हुए के अतिरिक्त जितने मार्ग हैं, उन मार्गों में नहीं सम्यग्दर्शन, नहीं उनमें चारित्र। उसे प्रत्याख्यान या चारित्र हो नहीं सकता। आहाहा! सब खोटे ही हैं। एक सर्वज्ञ परम-आत्मा देवाधिदेव, सौ इन्द्र के पूज्य, पूर्णानन्द को प्राप्त दशा, उन्होंने जो कहा उस मार्ग के अतिरिक्त सब मार्ग झूठे हैं। ऐ सेठ!

मुमुक्षु : ....निन्दा का विकल्प... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : निन्दा का अर्थ क्या? वस्तु की स्थिति बताना, वह निन्दा है? प्रश्न तो बराबर है पण्डितजी का। टोडरमलजी ने लिया है, यह तो निन्दा है न? आप तो अन्यमति की निन्दा करते हो सब। समझ में आया? किस (अधिकार) में है?

पाँचवें में है या छठवें में? पाँचवें में। पाँचवें में। पाँचवें में है न? कितना पृष्ठ है? अलग-अलग लोगों को याद रखना चाहिए। ... आये बिना रहे?

देखो! यह प्रश्न किया है टोडरमलजी ने। अन्यमत तो अनिष्ट है, उसे समान कैसे माना जाये? वीतरागमार्ग के साथ अन्यमतों को समान कैसे माना जाये? अनिष्ट है, उसे समान कैसे माना जाये? '(प्रश्न):- यह तो सच्चा, परन्तु अन्यमतों की निन्दा करने से अन्यमति दुःख पाते हैं और दूसरों के साथ विरोध होता है, इसलिए दूसरों की निन्दा किसलिए करते हो?' ऐई पण्डित! लो, यह सब आया इसमें, देखो! '(उत्तर):- हम कषायपूर्वक निन्दा करें और अन्य को दुःख उपजावें, तब तो हम पापी हैं, परन्तु यहाँ तो अन्यमत के श्रद्धान द्वारा जीवों को अत्त्वश्रद्धान दृढ़ होता है और इससे वे संसार में दुःखी होते हैं; इसलिए करुणाभाव से यहाँ यथार्थ निरूपण किया है।' समझे? टोडरमलजी ने तो हजारों बोल का निकाल (हल) किया है। कितनी सूक्ष्म दशा! एक-एक बोल चलते सबका हल कर दिया है।

लो, कहते हैं, करुणाभाव द्वारा यह यथार्थ निरूपण है। यह तो वस्तु का स्वरूप है। उसमें हमें क्या.... 'तथापि कोई दोष बिना दुःख पावे, विरोध उपजावे तो उसमें हम क्या करेंगे? जैसे मदिरा की निन्दा करने से कलाल दुःख पावे...' मदिरा। 'कुशील की निन्दा करने से वेश्यादिक दुःख पावे तथा खरा-खोटा पहिचानने की परीक्षा बतलाने पर ठग दुःख पावे तो उसमें हम क्या करेंगे? इस प्रकार यदि पापियों के भय से धर्मोपदेश न दें तो जीव का भला कैसे होगा? ऐसा तो कोई उपदेश नहीं कि जिसके द्वारा सर्व जीवों को चैन हो।' सेठ! यह वाँचा है या नहीं मोक्षमार्गप्रकाशक? थोड़ा-थोड़ा वाँचा है... बस, चलने दो। मोक्षमार्गप्रकाशक तुम्हारे पास है न! यहाँ आये थे थोड़े हिन्दी मोक्षमार्गप्रकाशक। तुम्हारे... आये हैं थोड़े हिन्दी। तुम्हारे घर में है तो तुमने वाँचे हैं या नहीं? आहाहा! 'ऐसा तो कोई उपदेश नहीं कि जिसके द्वारा सर्व जीवों को चैन हो। और सत्य कहने से विरोध उपजावे, परन्तु विरोध तो परस्पर झगड़ा करने पर होता है, परन्तु हम लड़ेंगे नहीं तो वे अपने आप उपशान्त हो जायेंगे। हमको तो हमारे परिणाम का फल है।' लो, यह पाँचवाँ अध्याय है। पण्डितजी! बराबर है प्रश्न-उत्तर? आहाहा!

अरे! सर्वज्ञ परमेश्वर... अरे! आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर है, भाई! आहाहा! यह सर्वज्ञ(शक्ति) से ही परमेश्वरतावाला है। ऐसी शक्ति का धनी है यह। तो उसे सर्वज्ञ परमेश्वरता पर्याय में प्रगट होती है। द्रव्य में सर्वज्ञ परमेश्वर (पना) है तो पर्याय में प्रगट होता है। ऐसी बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त तीन काल, तीन लोक में अन्यत्र हो नहीं सकती। समझ में आया? इसलिए मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव (कहते हैं), निरन्तर जिसे चारित्र है, चारित्र की मूर्ति है, संसार का अन्त आ गया है, मोक्ष के समीप हो गया है। आहाहा! जंगलवासी मुनि दिगम्बर हैं, वे ऐसा कहते हैं, अन्य योगियों को कि जिनका स्थान अन्य में है, वीतराग सर्वज्ञ ने कहे हुए द्रव्यों में, तत्त्वों में नहीं, अन्य तत्त्व में जिनकी बुद्धि और अन्य तत्त्व में जिनका स्थान है, **ऐसे अन्य योगियों को प्रत्याख्यान नहीं होता;...** तब?

उन संसारियों को पुनः पुनः घोर संसरण (-परिभ्रमण) होता है। आहाहा! परमेश्वर वीतराग ने कहा हुआ आत्मा, उसमें जिनका स्थान है, उसमें जिन्होंने दृष्टि दी है और उसमें जो स्थिर हुए हैं, उनका स्थान अल्पकाल में मुक्ति है। समझ में आया? आहाहा! इसके अतिरिक्त अज्ञानी प्राणी अपनी कल्पना से धर्म के रूप को—स्वरूप को कहते हैं। ऐसे स्थान में जिन योगियों का जन्म (हुआ) और योगी हुए, उन्हें चारित्र नहीं होता। क्योंकि जहाँ सम्यग्दर्शन होता नहीं, वहाँ चारित्र तो होता नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐ सेठ! इनको जाना पड़े कहीं बड़े बुलावे वहाँ। सामने है सही न! जय नारायण कहने। यहाँ इनकार करते हैं। **उन संसारियों को पुनः-पुनः घोर संसरण होता है।** आहाहा! जब वीतरागमार्ग में आत्मद्रव्य की दृष्टि हुई और स्वरूप में लीनता हुई, उसे मुक्ति नजदीक में है, उसे हथेली में मुक्ति है। आहाहा! बाकी अन्य स्थान में (रहे हुए) अन्य के योगी को—साधु को प्रत्याक्ष्यान नहीं होता। क्योंकि जहाँ सम्यग्दर्शन ही होता नहीं, उसे चारित्र होता नहीं और उसका वास तो संसार में रहने का है, इसलिए घोर संसार में भटकेगा। १४५ (कलश पूरा) हुआ। १४६।

महानन्दानन्दो जगति विदितः शाश्वतमयः,
स सिद्धात्मन्युच्चैर्नियतवसतिर्निर्मलगुणे।

अमी विद्वान्सोऽपि स्मरनिशितशस्त्रैरभिहताः,
कथं काङ्क्षन्त्येनं बत कलि-हतास्ते जड-धियः ॥१४६ ॥

कहते हैं, सिद्धात्मा कैसे हैं ? और सिद्धात्मा जैसा यह आत्मा है। **श्लोकार्थः— जो शाश्वत् महा आनन्दानन्द जगत में प्रसिद्ध है,...** शाश्वत् महा आनन्दानन्द... महा आनन्दानन्द... जगत में प्रसिद्ध है कि पूर्णानन्द का स्वरूप जगत में है। जैसे दुःख का स्वरूप जगत में है, वैसे महा आनन्दानन्द का स्वरूप भी जगत में है। **वह निर्मल गुणवाले सिद्धात्मा में अतिशयरूप से तथा नियतरूप से रहता है।** परम आनन्द है, वह जगतप्रसिद्ध है, कहते हैं। परम सुखी—परम आनन्द, वह निर्मल गुणवाले सिद्धात्मा में ऐसा आनन्द अतिशयरूप से और नियतरूप से—निश्चलरूप से सिद्धात्मा में रहता है। ऐसे आनन्द का आनन्द तो सिद्धात्मा में है और ऐसा आत्मा, सिद्धात्मा जैसा यह आत्मा, उसका आनन्दानन्द इस आत्मा में है। समझ में आया ? आहाहा !

बाहर में आनन्द मानते हैं न ! पैसे में आनन्द है, इज्जत में आनन्द है, रूपवान शरीर में आनन्द है, यह स्त्री ठीक मिले, पुत्र... धूल भी नहीं, दुःखी है, सुन न ! आहाहा ! आनन्द कैसा वहाँ ? अज्ञानी की भ्रमणा है, मिथ्यादृष्टि मूढ़ जीव की। पर में मुझे ठीक है, यह उसकी मूढ़ता है। आहाहा ! अनुकूलता में... अनुकूलता कहना किसे ? पैसा और शरीर की अनुकूलता, वह तो जड़ है। सेठ ! यहाँ बात अलग है। अनुकूलता तो भगवान आत्मा आनन्द का धाम, उसकी ओर का झुकाव होना, वह अनुकूलता है, बाकी सब प्रतिकूलता है। आहाहा ! समझ में आया ? पाँच-पचास लाख मिले, इज्जत, यह और उसे दो-चार करोड़ लो न। ऐसा हो जाये कि हम सुखी हैं। धूल भी नहीं, भ्रमणा है। ऐ सुमनभाई ! तुम तो दो बादशाह कहलाते हो। ...के साथ कुछ नहीं। दो भाई ऐसे कहलाते हैं वहाँ, बुलन्दशहर के (बुन्देलखण्ड के) बादशाह। बुलन्दशहर नहीं, कैसा ? बुन्देलखण्ड। बुलन्दशहर भाई का—कैलाशचन्दजी का। वहाँ गये थे न। अरे ! कहाँ... ? तुझे खबर नहीं, हों ! यह भ्रमणा में कहीं मानता है, वह महादुःखी का दुःख होने का रास्ता है। यहाँ कहते हैं कि परम महान शाश्वत् आनन्दानन्द जगत में प्रसिद्ध है, कहते हैं। ऐसा आनन्द तो सिद्धात्मा में रहता है अर्थात् कि सिद्ध जैसा यह भगवान आत्मा, उसमें आनन्द का आनन्द रहता है। आहाहा ! समझ में आया ?

(तो फिर,) अरे रे! यह विद्वान भी... आहाहा! अरेरे! शास्त्र को जाना, वाँचे, ऐसे विद्वान भी आत्मा के आनन्द को छोड़कर **काम के तीक्ष्ण शस्त्रों से घायल होते हुए क्लेशपीड़ित होकर उसकी (काम की) इच्छा क्यों करते हैं!** आहाहा! विद्वान भी, ऐसा कहते हैं कि यह शास्त्र जाने और वाँचे, शास्त्र का ज्ञान किया। शास्त्र का, हों! आत्मा का नहीं। आहाहा! अरेरे! ऐसा आनन्दानन्द का धाम तो प्रभु तू है न! शुद्धात्मा है न तू! उसे छोड़कर, अरेरे विद्वानों! विद्वान भी, साधारण लोगों की क्या बात करना? कहते हैं। शास्त्र के पठनवाले भी इस पर में सुखबुद्धि मानकर भटकते हैं। क्या है यह तुझे? यह तो विद्वानता बिना के साधारण लोगों का क्या कहना? ऐसा कहते हैं। वह पर में सुख चाहे, वह तो बड़ा मूढ़ है। परन्तु यह तो जाना, ख्याल में आया है, वाँचा है, उसे खबर है कि आत्मा आनन्द, आत्मा में आनन्द है। वह धारणा में—ख्याल में है। तथापि **काम के तीक्ष्ण शस्त्रों से...** काम के बाण विंध डालते हैं उसे। पर में, शरीर में, स्त्री में, इज्जत में, कीर्ति में, श्लाघा, पूजा, प्रसिद्धि होना... अरेरे! यह कामबाण के शस्त्र से घाते गये हैं। ऐ भीखाभाई! यहाँ तो यह बात है। आहाहा!

अरेरे! 'अरेरे!' आया है न उसमें—रमेश में। रमेश न? प्रेमचन्दभाई का पौत्र। आहाहा! सरोवर... अरे मृगला! आता है न उसमें? कहाँ पड़ा है? 'सरोवर कांठे रे मृगला तरस्या रे लोल।' सरोवर किनारे मृग प्यासे। समझ में आया? आहाहा! 'दौडे हांफी झांझवा जलनी रे काज...' दौड़े हाँफे मृगजल के काज। मृग जहाँ पानी नहीं वहाँ दौड़ते हैं। अरेरे! इसी प्रकार आत्मा अज्ञानी पैसे, इज्जत, कीर्ति, शरीर, माँस, स्त्री का शरीर कहीं सुख नहीं, प्रभु! तुझे भ्रान्ति हो गयी है। उस मृगजल में तुझे जल की भ्रान्ति हुई है। आहाहा! है या नहीं उसमें कहीं? प्लास्टिक में... यह गुजराती तुमको आती नहीं, सेठ! लो, यह रखो तो सही अब एक। एक है अन्तिम। पढ़ना। देवचन्दभाई की... यह तो गुजराती है। देखो, तीसरी लाईन। हिन्दी है न, तीसरी लाईन।

सरोवर कांठे रे मृगला तरस्या रे लोल, दोडे हांफी झांझवा जलनी काज
अरेरे! साचा वारि अेने ना मळे रे लोल।

वारि अर्थात् पानी। 'अरेरे! साचा वारि रे अेने ना मळे...' मृगजल। ऐ पोपटभाई!

यह टाईल्स में, लड़के में मुझे सुख है—वह मृगजल है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! बड़े बँगले—हजीरा बनाकर झूले में झूले, वह सोने के कढ़े हों, वे लोग सामने हाँकते हों, खाने बैठा हो ऐसे श्रीखण्ड और पूड़ी, मक्खी न गिरे इसलिए स्त्री पंखा लगाकर बैठी हो। धूल में भी नहीं, सुन न! हमने देखा है। जगजीवनभाई थे। जगजीवनभाई को माँ और नागरभाई थे न। जीमने बैठे तो साथ में—जोड़े से बैठते राणपुर में। ७८ के वर्ष में। अब छोटे साधारण गाँव में न हो। बेचारे वे बाहर में न करे। .... धरमचन्द की सासुमाँ। नागरभाई बैठते। सब नजरों से देखा है। ....बैठा हो। उसमें मानो कि आहाहा! धूल भी नहीं, दु:ख के पर्वत में सिर फोड़ता है। सुन न....! है या नहीं इसमें?

'अेम मनना मृगला ने पाछा वाळजो रे लोल। ऐ मनना मृगला ने पाछा वाळजो रे लोल।
जोडी दो आत्मसरोवर आज, अेने मळशे आतमसुख अमूला रे लोल
अे मार्ग साधुना जगने दोह्यला रे लोल, अे मार्ग जुदा रे जगतथी संतना रे लोल।
अे जगत साथे मींढवळी न थाय।'

इस जगत के पन्थ के साथ यह तुलना नहीं होती कहीं, भाई! 'संतपंथ जगतपंथ से जुदा जाणजो रे लोल।' पूनमचन्दजी! मिला या नहीं पृष्ठ तुमको? नहीं मिला, लो। 'संतपंथ जगतपंथथी जुदा जाणजो रे लोल।' आहाहा! यह मूल .... वांचता। आहाहा!

कहते हैं, अरेरे! विद्वानों के मन... यह तो उसमें आयेगा न सर्वविशुद्ध (ज्ञान अधिकार) में। ऐसा जानने पर भी अरे! उपशम अभी पाता नहीं। सर्वविशुद्ध में आता है। अरेरे! तेरे ख्याल में—जानने में आया कि आनन्द तो आत्मा में है, बाहर में नहीं। तथापि विद्वान कामबाण के शस्त्र से क्यों घात हो जाते हैं? समझ में आया? वह पर में सुखबुद्धि, वह मिथ्यात्व का बड़ा घर है। आहाहा! समझ में आया? यह पैसे में, शरीर में, इज्जत में, कीर्ति में, स्त्री में, पुत्र में कुछ भी सुख (मानता) है, वह महा मिथ्यात्वभाव है। मलूकचन्दभाई! ऐसी बात है, भगवान! आहाहा! उसे मिथ्यात्व कहते हैं, प्रभु! और वह मिथ्यात्व कसाईखाना से भी बड़ा पाप है, उसकी इसे खबर नहीं। समझ में आया?

तब कोई स्त्री-पुत्र को छोड़कर ब्रह्मचर्य ले, उसे तो सुखबुद्धि नहीं न पर में? उसे भी है, सुन न! वह तो बाहर की बात है। अन्दर का पुण्यभाव हो, उसमें भी जिसकी

हितबुद्धि और सुखबुद्धि है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! वीतराग का मार्ग दुनिया से— पूरे जगपंथ से निराला है। वह तुलना नहीं होती। मींढवणी अर्थात् समझे? मिलान। दूसरे मार्ग के साथ मिलाना नहीं, यह नहीं मिलेगा, मिलान नहीं खायेगा कहीं। समझ में आया? सूत की डोरी और... क्या कहलाता है? नेतर की छाल। नेतर होता है न, उसकी छाल है और सूत की डोरी, दोनों का बाँधा दोरडा। डोरी नहीं बुनेगा, वह दोरडा नहीं बुनेगा। दोरडा समझते हो? डोरी—रस्सी। डोरी—रस्सी हो सूत की और एक वह नेतर का सोटा, उसमें से छाल निकाले। बुनो। नहीं बुनेगी। ऐसे वीतरागमार्ग को अन्यमार्ग के साथ नहीं मिलाया जा सकता। समझ में आया? ऐसा मार्ग है।

अरे रे! यह विद्वान भी काम के तीक्ष्ण शस्त्रों से घायल होते हुए क्लेशपीड़ित होकर... दुःखी-दुःखी होते हैं। आहाहा! पर में मेरी महत्ता मिले, ऐसे याचक भी सब काम की पीड़ा से पीड़ित हो गये हैं। वह भी विषय है। आहाहा! मुझे दुनिया में कुछ गिने, गिनती में आवे। उसके लिये मर पड़े बेचारे पूरे दिन। कोई अच्छा कहे, कोई अच्छा कैसे कहे? आहाहा! कहते हैं, अरेरे! जानपना लक्ष्य में लिया, वह सब अज्ञानपने परिणमा उसे। समझ में आया? **घायल होते हुए क्लेशपीड़ित होकर उसकी (काम की) इच्छा क्यों करते हैं!** अरेरे! अरे! तुझे शास्त्र के जानने के बोल आये, भाषा जड़ और तुझे यह क्या होता है, भाई? ऐसा कहते हैं। मुझे दुनिया अच्छा कैसे कहे, मुझे कोई ठीक कहे, मुझे कुछ जानकारीवाला हूँ, ऐसा कहे, मैं भी... साहेब बाहर में प्रमुख है, ऐसा कहे। मर गये परन्तु। अरे ...चन्दभाई! .... कुर्सी के लिये मर जाते हैं सब। कोई प्रजा को क्या होता है, उसकी किसी को पड़ी नहीं है। और अभी के लोग पैसे बिना एक भी काम चलता नहीं। नौकरीवाला व्यक्ति हो, परन्तु कुछ काम करे तो पैसा लाओ, चाय लाओ, चाय लाओ। आहाहा! बहुत लेख लिखा है जैनगजट में। यह किसकी १५वीं अगस्त मनानी है? दुःख में... दुःख में आगे बढ़ गये हैं। ... छोटा काम करना हो, नौकर हो सरकार का, उसे कुछ दें तो अपना काम चले। यह तो गजब हो गया है। इसलिए अज्ञानी बेचारे कहीं पड़े हैं।

यहाँ तो कहते हैं, अरे! महा आनन्दानन्द का धाम भगवान प्रसिद्ध है न! इसी प्रकार यह दुनिया में सुख है, ऐसा प्रसिद्ध नहीं होता? और उस सुख का सुखस्वरूप

पूरा किसी में कहीं है। क्योंकि सुख को चाहता है तो कहीं सुख को मानता है। सुख को चाहता है न? तो कहीं मानता है। कहाँ है, इसकी खबर नहीं। और उसके लिये उपाय भी करता है। सुख का उपाय कैसे है, उसकी खबर नहीं। आहाहा! केरोसीन छिड़ककर मरे तो भी उसे सुख की इच्छा है। इसी प्रकार यहाँ से मुक्ति.... फिर अकेला होकर सुखी होऊँ। आहाहा! वह सुख कहाँ है और सुख का उपाय क्या है, (इसकी) खबर नहीं। ....बताया, परन्तु मानना इसे है न वापस। आहाहा! ऐसा कहते हैं कि भाई! तुझे रुचि में बैठता है? आत्मा में आनन्द है, ऐसा बैठता है तुझे? और ऐसा यदि न बैठे (और) पर में आनन्द (मानता है) तो तूने एक भी बात सुनी नहीं। वीतराग की वाणी तुझे कान में पड़ी नहीं, भाई! आहाहा!

वे जड़बुद्धि हैं। ऐसा वापस ले लिया, लो। आहाहा! अरे! शास्त्र का जानपना करके भी, कहते हैं कि पर में सुखबुद्धि में गति कर रहा है, चाहे तो इज्जत में, चाहे तो विषय में, चाहे तो भोग में, चाहे तो मकान में, चाहे तो स्त्री आदि में, समझ में आया? परन्तु वह गति सब विषय के कामबाण से विंध गये की है। आहाहा! समझ में आया? यह तो शान्तमार्ग है, वीतरागमार्ग है। जिसे आत्मा का वीतरागमार्ग बैठा, उसे तो आनन्द आत्मा में भासित होता है। पुण्य के परिणाम में आनन्द भासित नहीं होता तो फिर स्त्री, पुत्र, धूल में कहाँ आनन्द था? ऐसी बड़ी गुलांट खा गये हुए की बात है यह तो। मूलचन्दभाई! आहाहा! भाई! मिथ्यात्व का लक्षण और समकित का लक्षण—दोनों विपरीत है। आहाहा! अरेरे! शास्त्र का जानपना होने पर भी, जिसे पर में सुख के लिये छटपटाहट पड़ी है, कहते हैं कि क्लेश से पीड़ित है। काम के तीक्ष्ण बाण से घायल हुआ वह जड़बुद्धि है। आहाहा! समझ में आया? १४६ (कलश) हुआ। अब १४७। भारी कलश बहुत ऊँचे! नगद माल को बतावे ऐसा है।

प्रत्याख्यानाद्भवति यमिषु प्रस्फुटं शुद्धशुद्धं,
सच्चारित्रं दुरघ-तरुसान्द्राटवी-वह्निरूपम्।
तत्त्वं शीघ्रं कुरु तव मतौ भव्यशार्दूल नित्यं,
यत्किम्भूतं सहज-सुखदं शील-मूलं मुनीनाम्॥१४७॥

आहाहा! **श्लोकार्थः—जो दुष्ट पापरूपी वृक्षों की घनी अटवी को जलाने के**

लिए... दुष्ट पुण्य और पापरूपी वृक्ष, उसकी घनी अटवी... जंगल में होते हैं अकेले वृक्ष... वृक्ष... वृक्ष... घनी अटवी में जाने पर आते हैं... क्या कहा जाता है वह ? घाट... घाट... पन्द्रह मील छोड़कर घाट आता है पूना जाते हुए। ... वह तीन-तीन .... आते हैं। झाड़ के ढ़ेर। भरपूर वृक्ष। चलने का रास्ता न हो। ऐसा कहते हैं कि पुण्य और पापरूपी वृक्ष की घनी अटवी, उसे जलाने को अग्निरूप **ऐसा प्रगट शुद्ध-शुद्ध सत्चारित्र...** है। आहाहा! स्वरूप की दृष्टि होकर स्वरूप में रमणता करना, वह पापरूपी, पुण्य-पाप दोनों इकट्ठे, उस वृक्ष की घनी अटवी को जलाने को **अग्निरूप है, ऐसा प्रगट शुद्ध-शुद्ध सत्चारित्र...** चारित्र गुण तो त्रिकाल पड़ा है, कहते हैं। परन्तु प्रगट चारित्र हो अन्तर की रमणता... आनन्द के धाम में रमने के लिये पुण्य और पाप के विकल्प की क्रीड़ा छोड़ना। आहाहा! समझ में आया ? **ऐसा प्रगट शुद्ध-शुद्ध सत्चारित्र संयमियों को प्रत्याख्यान से होता है;...** ऐसे संयमियों को स्वरूप की रमणता से और राग के अभाव से होता है।

(इसलिए) हे भव्यशार्दूल! (भव्योत्तम!)... आहाहा! **तू शीघ्र अपनी मति में तत्त्व को नित्य धारण कर।** कल आया था न, भाई! हाँ, वह यह। **शीघ्र अपनी मति में तत्त्व को नित्य धारण कर।** तेरी मति में राग और पुण्य और पर जो धारण किये हैं, वह मिथ्यात्वभाव है। तेरी वर्तमान पर्याय में दया, दान, व्रत, भक्ति इत्यादि परवस्तु जो धार रखी है, वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! तू शीघ्र... भगवान! अब तेरा काल आया है न ऐसा। आहाहा! ऐसा कहते हैं। शीघ्र कर काम, बापू! अब वायदा न कर। अभी नहीं। लड़के लाईन पर चढ़ जायेंगे, फिर करूँगा। लड़की कुँवारी है, बड़ी होती है, उसका विवाह करके फिर करूँगा। अरेरे! मर जायेगा बीच में तो ? ऐ सेठ! ....बड़े लोगों को अधिक होता है, लड़के बड़े घर में विवाह करना हो न, बड़ा खर्च करना हो और सामनेवाला ठीक मिला हो। आहाहा! पगड़ी-बगड़ी पहनकर हाथ में लकड़ी फिरावे और स्त्री की आवाज कण्ठ बैठ जाये तो भी बोल-बोल करे। अब धीरे बोलो। भाई! ऐसा अवसर किसी दिन आता है। मर जाता है। कहते हैं, अरेरे! तेरी मति में यह सब स्थापित किया है न! होलियाँ स्थापित की हैं तेरी मति में। ऐ पूनमचन्दजी! आहाहा! भगवान! **अपनी मति में तत्त्व को नित्य धारण कर।** गजब बात करते हैं न! तेरी बुद्धि

में पूरा द्रव्य है, उसे धारण कर। मति ने राग को धारण किया है, उस मति में तत्त्व को धारण कर, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

दिगम्बर सन्तों की वाणी अर्थात् एक झटके में दो टुकड़े। एक झटके में... हमारी काठियावाड़ी भाषा है। यह झटका ऐसे मारे वहाँ दो टुकड़े एकदम। राग और आत्मा— दोनों तीनों काल भिन्न। कहते हैं, अरे! राग और विकार तथा पुण्य और निमित्त को तूने मति में धारण किया है, स्थापित किया है, बापू! वह तो मिथ्यात्वभाव है। एक समय की अवस्था को मति में—अपनी अवस्था को अवस्था में रखा, वह मिथ्यात्वभाव है। पाटनीजी! ....सुनने को मिले नहीं। सुनने को मिले तो (कहे), हो गया, यह ऊँची श्रेणी की बात है। हमारे नीचे क्या करना? बात तो हुई कि भाई! मार्ग तो ऐसा है।

रात्रि में एक मारवाड़ी आया था अगास में। वह सही, परन्तु उसका साधन क्या? दूसरा साधन? ऐसा। भाई! साधन ही यह है। चाय पीकर फिर भक्ति करे देव की—गुरु की, यह दान करें, यह करें, पूजा करें—यह साधन-बाधन है या नहीं? अगास गये थे न एक दिन? ....रात्रि में फिर कोई नहीं। ...यह बात सच्ची है, परन्तु साधन चाहिए तो करना क्या? स्वरूप की दृष्टि करना और पर्यायबुद्धि—रागबुद्धि छोड़ना, यह करना नहीं है? करनेयोग्य तो यह है। यह बाहर के कारण से होता होगा? भगवान की भक्ति लाख-करोड़ अनन्त कर न, वह तो विकल्प है। उससे साधन होकर अन्दर जाया जाता होगा? आहाहा! शिवलालभाई! ऐसे देखते-देखते अन्दर में जाया जाता है? उसे छोड़ने से अन्दर में जाया जाता है। ऐ वीरचन्दभाई! बापू! मार्ग ऐसा है। आहाहा!....

अरे! शीघ्र तेरी मति में तत्त्व को, तत्त्व अर्थात् द्रव्यस्वरूप भगवान आनन्द का धाम ध्रुवधाम ऐसे ध्रुव को मति में धार न! एक समय की पर्याय और राग को मति में रखता है, उसकी अपेक्षा इस भगवान को रख न, कहते हैं। आहाहा! **तू शीघ्र अपनी मति में तत्त्व को नित्य धारण कर।** वापस, नित्य धारण कर, हों! यह दृष्टि में लिया, वह लिया, वह दृष्टि में आया, सो आया, ऐसा का ऐसा कायम रख। आहाहा! देखो! यह वीतराग का मार्ग। वीतराग ऐसा कहते हैं कि मेरे सामने देखना छोड़कर तेरे सन्मुख देख। आहाहा! मेरे सन्मुख देखकर मेरी भक्ति कर तो वहाँ तुझे राग होगा। आहाहा! वह

तो वीतराग यह कहते हैं, हों! आहाहा! तू तो तुझमें परिपूर्ण तू है न! मेरे सन्मुख देखने से तुझे तेरा कहाँ मिले ऐसा है? तेरी मति में हम स्थापित हैं, वह छोड़ और तेरी मति में तू (तुझे) स्थापित कर, ऐसा कहते हैं। आहाहा! देवीलालजी! यह सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा और सन्त और समकिती एक यह बात करते हैं। मूलचन्दभाई! **नित्य धारण कर,** ऐसा वापस। उस नित्य वस्तु को पर्याय में कायम रख अब। एक बार नित्य की दृष्टि की, उस दृष्टि में नित्य आया—स्थापित हुआ, ऐसा कहते हैं।

अन्तिम लाईन है। **कि जो तत्त्व सहज सुख का देनेवाला...** है। भगवान आत्मा को मति में स्थाप कि जिससे वह तत्त्व सुख का देनेवाला है। वह सुख की खान वहाँ है, वह सुख वहाँ से द्रवित होगा। धूल में, बाहर में कहीं सुख है नहीं। आहाहा! **तथा मुनियों के चारित्र का मूल है।** द्रव्य त्रिकाली ज्ञायकभाव, वह समकित का कारण और वह चारित्र का मूल है। उसके आश्रय से चारित्र होता है। कहीं पर्याय और राग और महाव्रत के विकल्प के आश्रय से चारित्र नहीं है। आहाहा! कठिन बात, भाई! यह मुनियों के चारित्र का मूल तो द्रव्य-तत्त्व भगवान ज्ञायकभाव है। जिसमें स्थिर होना, उसका मूल तो द्रव्य है, ऐसा कहते हैं। राग में स्थिर होना है? पर्याय में स्थिर होता है? आहाहा! यहाँ देखकर यहाँ स्थिर हो, वह तत्त्व चारित्र का मूल है। १४७ वाँ (कलश) हुआ।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल ३, मंगलवार, दिनांक - २४-८-१९७१
श्लोक-१४८-१४९-१५०, प्रवचन-१०४

नियमसार, निश्चय-प्रत्याख्यान अधिकार। स्वरूप में रमणता वह चारित्र अथवा प्रत्याख्यान। वह किसे होता है और कैसे होता है—यह बात चलती है। १४८ कलश है न, कलश।

जयति सहज-तत्त्वं तत्त्व-निष्णात-बुद्धेः
हृदय-सरसि-जाताभ्यन्तरे सन्स्थितं यत्।
तदपि सहज-तेजः प्रास्त-मोहान्धकारं,
स्वरसविसरभास्वद्बोधविस्फूर्तिमात्रम्॥१४८॥

यह मोक्षमार्ग का अधिकार है। परमानन्दरूपी मुक्तदशा की प्राप्ति का उपाय वह मोक्षमार्ग। वह मोक्षमार्ग किसके आश्रय से होता है, उसकी व्याख्या है।

श्लोकार्थः—तत्त्व में निष्णात बुद्धिवाले जीव के... देखो! क्या कहते हैं? जो तत्त्व में निपुण बुद्धिवाला जीव है। अजीवतत्त्व आदि पर है; पुण्य-पाप के विकार आस्रवतत्त्व भी पर है, उनसे पर भिन्न ऐसा जो आत्मा, ऐसे तत्त्व में निष्णात बुद्धिवाले जीव के **हृदयकमलरूप अभ्यन्तर में जो सुस्थित है,...** आहाहा! भगवान आत्मा पूर्णानन्द ध्रुव चैतन्यस्वभाव, वह सम्यग्दर्शन का विषय है। कहते हैं कि जिसे तत्त्व में निपुणता-विचिक्षणता प्रगट हुई है, अर्थात् कि जिसे, आत्मा अखण्ड आनन्द है और रागादि और अजीवादि पर है, ऐसा जिसे अन्तर में भेदज्ञान हुआ है, उस भेदज्ञानी के हृदय में—जीव के हृदयकमलरूपी अभ्यन्तर में यह आत्मा स्थित है। यह भगवान आत्मा सच्चिदानन्द-स्वरूप पूर्ण आनन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा; तत्त्वों में निष्णात—विचिक्षण निपुण बुद्धिवाले ऐसे अभ्यन्तर हृदय में यह सुस्थित है। आहाहा!

अन्तर में यह आत्मा मन से, राग से, वाणी से, शरीर से, अरे! एक समय की पर्याय से भी पर है। मूल बात है न, मूल बात जरा। ऐसा अन्दर भगवान जीव के...

निपुणबुद्धिवाले जीव के, ऐसा। जिसे सम्यग्ज्ञान हुआ है कि यह आत्मा शरीर, वाणी, मन और राग और पुण्य-पाप की क्रिया व्यवहार की, उससे भिन्न है। वह तत्त्व भिन्न है, यह तत्त्व भिन्न है। आहाहा! जिसे तत्त्व में समझण यथार्थ प्रगट हुई है, उसके हृदयकमल में—अभ्यन्तर में सुस्थित प्रभु आत्मा है। अज्ञानी को खबर नहीं। मैं एक पूर्णानन्द सच्चिदानन्द प्रभु हूँ, ऐसी अज्ञानी को खबर नहीं, ऐसा कहते हैं। उस तत्त्व में सुखरूपी समुद्र जो भरा है प्रभु, उसकी जिसे विचिक्षणता (और) पर से भिन्नता प्रगट हुई है, वह निष्णातबुद्धि है। आहाहा! समझ में आया?

आठ वर्ष की बालिका हो या मंडुक—मेंढ़क हो... देडको समझते हैं न? मेंढ़क। परन्तु अन्तर में वस्तु... वस्तु स्वभाव से भरपूर चीज़ त्रिकाली वस्तु और त्रिकाली स्वभाव से भरपूर पदार्थ, उसमें जिसकी निष्णात अर्थात् निपुण बुद्धि है। इस संसार के निपुण और चतुर की यहाँ बात नहीं। वह तो अज्ञान है, मूढ़ता है। ...संसार की चतुराई तो मूढ़ता है। दुनिया की बुद्धि तो संसार के समझदार संसार में भटकने की है। ऊँचे नम्बर आवे उसमें। भटकने में नरक और निगोद जाये, वह ऊँचा नम्बर आवे। यह धर्मात्मा स्वर्ग और मुक्ति में जाये। वस्तु की निपुणता... चिदानन्द प्रभु यह वस्तु है, तत्त्व है, आत्मा है, अविनाशी है। उसके अविनाशीपने में जिसकी बुद्धि निष्णात है। यहाँ तो सब तत्त्व में निष्णात का अर्थ कि यह आत्मा ऐसा है, राग ऐसा है, अजीव ऐसे हैं। आहाहा! दूसरे प्रकार से कहें तो उस तत्त्व में निष्णात बुद्धिवाले जीव के हृदय में... वह वस्तु ऐसी है कि जिसमें कर्म नहीं, शरीर नहीं, राग नहीं, एक पर्याय की भी जिसमें नास्ति है। ऐसे वस्तु के भान हुए को... दूसरी चीज़ अवस्थादि की उसमें नास्ति है। ऐसी जो तत्त्व की निष्णातता—निपुणता हुई, उसके हृदय में भगवान विराजते हैं। भारी कठिन! कहो, समझ में आया?

अभ्यन्तर में जो सुस्थित है,... ध्रुवरूप से स्थिर है। आहाहा! अविनाशी प्रभु अनन्त-अनन्तगुणा अविनाशी का नाथ, उस तत्त्व में निपुण बुद्धि (वाले) के हृदय में वह विराजता है। आहाहा! अर्थात् क्या कहते हैं? अज्ञानी तो एक समय की पर्याय, राग और पर कोई बड़े मुझसे हैं, उसे मानता है, समझ में आया? इसलिए वह तो अज्ञान में पर विराजता है। आहाहा! और ज्ञान में चैतन्य भगवान पूर्णानन्द का नाथ स्वयं विराजता

है, उसके हृदय में—ज्ञान में। समझ में आया? यह अन्तर का मार्ग अलग है। **वह सहज तत्त्व जयवन्त है।** सुस्थित है, ऐसा कहा। वह नित्यानन्द प्रभु सहज—स्वाभाविक तत्त्व जयवन्त है। त्रिकाल ऐसा का ऐसा ध्रुवरूप से विराजमान है। उसमें दृष्टि करनेयोग्य है, कहते हैं। और दृष्टि करके लीन होना, इसका नाम चारित्र और प्रत्याख्यान है। आहाहा! प्रत्याख्यान का अधिकार है न! समझ में आया?

वह सहज तत्त्व जयवन्त है। कहते हैं, ज्ञानी के हृदय में है, परन्तु जयवन्त तत्त्व ध्रुव है। था, वह प्रतीति में आया है। सहज तत्त्व जयवन्त वर्तता है कि जिस जयवन्त तत्त्व का आश्रय लेने से, है—उसका आश्रय लेने से उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है। मोक्षमार्ग अधिकार है न। आहाहा! भारी ऐसी बातें! छह काय की दया पालना, अपवास करना, व्रत करना, भक्ति करना, पूजा—यह तो सब इसमें कुछ आता नहीं। भाई! यह सब विकल्पों के तत्त्व में तो निपुण है कि यह विकल्प है, वह मैं नहीं। समझ में आया? **उस सहज तेज ने मोहान्धकार का नाश किया है...** आहाहा! अर्थात्? भगवान नित्यानन्द प्रभु अविनाशी वह तेज से—सहज तेज से, स्वाभाविक ज्ञान का तेजबिम्ब प्रभु, उसने मोहान्धकार—दर्शनमोह और मिथ्यात्व का तो जिसने नाश किया है। अर्थात् कि जो उसका आश्रय लेता है, उसे मिथ्यात्व और मोह नहीं रहते। भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकर का आश्रय ले तो मोह का नाश होता है, ऐसा नहीं कहा यहाँ।

भाई! तेरा निधान, अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान और शान्ति से भरपूर तत्त्व, ऐसे तेज से अर्थात् उस चीज़ में मिथ्यात्व, दर्शनमोह आदि है ही नहीं अर्थात् कि उसने उस तत्त्व ने मिथ्यात्व और अज्ञान का नास्तिभाव किया है अथवा सहज तेज है, उसकी जो अन्तर्दृष्टि लगाता है, उसे मोह—दर्शनमोह और मिथ्यात्व नहीं रहते। आहाहा! बहुत कठिन काम भाई! समकित को लेकर जा, पहली यह बात करते हैं। सीधे डाल दो उसे। ऐसा कि मुनियों को कहते हैं। हमारे क्या है? सेठ! तत्त्व में निष्णात कहा न पहला? धर्मी जीव उसे कहते हैं कि धर्मी ऐसा जो आत्मा और रागादि पर, उस तत्त्व में जिसकी बुद्धि निष्णात है—निपुण है। उसकी बात तो यहाँ चलती है। आहाहा!

भेदज्ञान है दो का.... भिन्न-भिन्न तत्त्व हैं, उसमें निपुणता है। इस भगवान में एक

समय की पर्याय की नास्ति का ज्ञान। उसका (—द्रव्य का) करने से, पर्याय है (परन्तु) इसमें नहीं, ऐसा उसका ज्ञान आ जाता है। आहाहा! पूर्ण स्वरूप प्रभु 'पूर्णमिदं आत्मा' अनन्त आनन्दादि से भरपूर भरा हुआ कलश है। समझ में आया? आहाहा! उसमें जिसकी बुद्धि स्थिर है अथवा जिसकी बुद्धि में वह वस्तु स्थित है। आहाहा! जयवन्त वर्तता है प्रभु। जिसमें हीनपना या अधिकपना कुछ है नहीं। वह तो वस्तु ध्रुव है चिदानन्दध्रुव। **उस सहज तेज ने...** अर्थात् कि द्रव्य में मिथ्यात्व और दर्शनमोह का कर्म नहीं है अर्थात् कि वह तेज—चैतन्य के तेज का जिसने आश्रय लिया, उसे दर्शनमोह का नाश हो जाता है। यहाँ तो अभी समकिती की बात चलती है। समझ में आया?

और वह (सहज तेज) निज रस के विस्तार से प्रकाशित ज्ञान के प्रकाशनमात्र है। वह भगवान तो अकेला ज्ञान के प्रकाश की मूर्ति है। आहाहा! सहज भगवान ज्ञानस्वभावरूप त्रिकाल, वह निज शक्ति के फैलाव से अन्दर की अन्दर शक्तियों का विस्तार है। उसे प्रकाशते वह ज्ञान के प्रकाशमात्र है। अकेला चैतन्य का पुंज ज्ञान के प्रकाशमात्र है। वह आत्मा जिसकी बुद्धि आत्मा में हुई है, वह सम्यग्दृष्टि और निष्णात अर्थात् निपुण है। उसने सब शास्त्र को जाना, इसे जाना उसने सब जाना। आहाहा! समझ में आया? वह तेज—ज्ञान का तेज अपनी शक्ति से विस्ताररूप प्रकाशित ज्ञान का पुंज स्वयं है। यह तो मात्र जानपने के प्रकाशमात्र ही भगवान है। उसमें राग, पुण्य, दया, दान, संसार कुछ है नहीं। आहाहा! ऐसे तत्त्व को अन्तर में दृष्टि में ले तो उस तत्त्व की दृष्टि सच्ची कहलाये। क्योंकि तत्त्व ऐसा है, उसे दूसरे प्रकार से लक्ष्य में ले तो वह आत्मा जैसा है, वैसी श्रद्धा उसे नहीं हुई। वह तो मिथ्याश्रद्धा है। समझ में आया? आहाहा! १४८ (कलश हुआ)। (अब कलश) १४९।

अखण्डित-मनारतं सकल-दोष-दूरं परं,
भवाम्बुनिधि-मग्नजीवततियानपात्रोपमम्।
अथ प्रबल-दुर्ग-वर्ग-दव-वह्नि-कीलालकं,
नमामि सततं पुनः सहजमेव तत्त्वं मुदा॥१४९॥

आहाहा! **श्लोकार्थ :- जो सहज...** भगवान आत्मा अविनाशी (अर्थात्) अनुत्पन्न और नाश न हो, ऐसा जो ध्रुवतत्त्व, नित्यानन्द निजस्वभाव भगवान आत्मा **अखण्डित**

है। आहाहा! उसमें खण्ड—भेद है नहीं। ध्रुव चैतन्य प्रभु में खण्ड क्या? अखण्ड है। पर्याय का अंश—खण्ड भी जिसमें नहीं। समझ में आया? ....यह विद्या कैसी? कहो, निरंजन! यह वहाँ था कुछ अमेरिका में? गप्पें मारे अभी तक। आहाहा! ऐसा भगवान जयवन्त वर्तता है तेरे पास—पर्याय के पास। वह परमात्मा स्वयं शुद्ध आत्मघन जो है, वह एक समय की पर्याय के पास विराजता है। वह दूर नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

अखण्डित है... अखण्डरूप से विराजमान है। आहाहा! **शाश्वत् है...** खण्ड नहीं, अब त्रिकाल रहनेवाला है, कहते हैं। है... है... है... है... है... सत्... सत्... सत्... सत्... सत्... सत्... **सकल दोष से दूर है,..** भगवान पूर्णानन्द का नाथ जो विकल्पगम्य नहीं, वह सकल दोष से दूर है। विकल्प भी दोष है। आहाहा! **सकल दोष से दूर है, उत्कृष्ट है,...** उत्कृष्ट—ऊँचे में ऊँचा वह तत्त्व है, उससे उत्कृष्ट जगत में कोई चीज़ है नहीं। आहाहा! समझ में आया? ग्राह्य होना कठिन। अनादि का अभ्यास पर में, अन्तर में देखने को झुकाव की दृष्टि नहीं, बाहर को देखने की झुकाववाली दृष्टि में वह कहीं ज्ञात नहीं होता। समझ में आया?

ओहो! **भवसागर में डूबे हुए...** चौरासी के अवतार में डूबे हुए—गोते खाते हुए... आहाहा! एकेन्द्रिय के जीव पृथ्वी में, पानी में, अग्नि में, वायु में, वनस्पति में... आहाहा! समझ में आया? उसमें भटकते प्राणी को—ऐसे **डूबे हुए जीवसमूह को नौका समान है...** वह भगवान नित्यानन्द प्रभु, उसमें बैठनेवाले को संसार समुद्र का पार आ जाता है। राग और पुण्य में बैठनेवाले को भगवान आत्मा का अन्त आ गया उसे तो। उसे पार हो गया अर्थात् राग में आ गया वह तो। भटका-भटक है। आहाहा!

पाँच बजे स्वप्न आया जरा। यह सब जरा परमागम याद आ गया। पाँच-छह व्यक्ति यहाँ आये थे परसों, हमारे वजुभाई... अब यह कब उद्घाटन होगा? ऐ वजुभाई! लोग चिल्लाहट मचाते हैं। और वजुभाई को अभी ठिकाना नहीं। तुम्हारा ठिकाना नहीं, ऐसा हो न या दूसरा क्या हो उसमें? वह बात याद आ गयी। सवा बजे तो नींद उड़ गयी। कहा, ... ऐसा कहते हैं। यहाँ तो अभी कुछ पता नहीं। ७२ के वैशाख में करने का विचारा था। उसमें कुछ पता खाता नहीं। इस विचार में नींद उड़ गयी। उसमें आया

जरा यह। पाँच... एक व्यक्ति ने पूछा, महाराज! अर्जुन के समय में... ऐसा प्रश्न किया। ऐई! अर्जुन के समय में तो बहुत समकिती धर्मी थे न, अभी क्यों नहीं हैं? ऐसा पूछा। सेठ! भाई! अनादि निगोद में रहा है, वहाँ से बहुत निकल आते हैं, वे सब मिथ्यादृष्टि हैं। ऐसा उत्तर दिया। बहुत मिथ्यादृष्टि हैं। इतने सब जीव अनन्त! भाई! लॉजिक से— न्याय से तू समझ तो तुझे बैठे। यह आत्मा है और यह आत्मा जब अपने राग से मुक्त होगा, तब अल्प काल में मुक्ति होगी। ऐसे अनन्त काल में अनन्त हुए। वह सब अनन्त संख्या है, ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया?

न्याय से भी सिद्ध करते हैं कि अनन्त जीव हैं। उसमें से पृथक् पड़ा, ऐसा भी अनन्त है। तो जो अनन्त पृथक् पड़े, ऐसे सब अनन्तगुने पड़े हैं। परन्तु उसे उसका भान नहीं है। बाहर में यह और वह और भटकते हुए... वह जरा लॉजिक से प्रसन्न हुआ अन्दर। दिखता था अन्दर... यह योग्य ही नहीं अन्दर। अनन्त-अनन्त आत्मा की संख्या में से एक-एक मुक्ति (प्राप्त करे ऐसे करते) अनन्त प्राप्त करते हैं। अनन्त मुक्ति प्राप्त करे तो दूसरे कितने जीव हैं? वे सब वहाँ मिथ्यात्व में पड़े हैं सब। निगोद की दशा है न! बहुत वहाँ से आते हुए मिथ्यादृष्टि रहेंगे, ऐसा आया है। परन्तु धर्म समझ सकते हैं। उसे समझने का प्रयत्न करे तो जयवन्त प्रभु विराजता है। ...हो गया है। यह तुम्हारे परमागम में आया है, ऐई!

सवेरे ऐसा और याद आया परमागम का। ....पाँच-छह व्यक्ति आये थे परसों। तुम्हारे वजुभाई। कोई बोटादवाले थे वहाँ? पाँच-छह व्यक्ति थे। कहो, अब हमारे यह उद्घाटन का महोत्सव देखना है हमारी मौजूदगी में। कब होगा? व्यवस्था कब की? यह करे उसमें क्या काम आवे? वजुभाई करे तो हो वहाँ। ऐसा चिन्ता का विकल्प आया। उसके कारण नींद उड़ गयी। घण्टे-दो घण्टे का... करनेयोग्य है। अरे! कहा, इन लोगों की बात सच्ची। रामजीभाई जैसों को ८९ वर्ष लगा। उनकी मौजूदगी में हो तो कितना... किसे खबर क्या हुआ? .... मण्डल में इनके कारण बड़ी शोभा है। इनकी मौजूदगी में यह हो तो कितना...? ऐसी मन में चिन्ता हो गयी और चिन्ता से नींद उड़ गयी। सवा बजे से ठेठ चार-साढ़े चार पश्चात् कुछ आयी होगी। यह आया उसमें यह आया।

कौन जाने क्या आया? अर्जुन के समय में बहुत धर्मी थे और अभी कहाँ... ? यह प्रश्न आया, लो। पाण्डव के समय में—नेमिनाथ के समय में। आहाहा! बापू! आत्मा तो अनन्त है। धारावाही मुक्ति प्राप्त करता है। आहाहा! समझ में आया? छह महीना आठ समय में ६०८ (जीव) मुक्ति में न जाये, ऐसा काल कभी होता नहीं। ऐसा भगवान आत्मा... मूल तो यह परमागम का एकदम मस्तिष्क में आ गया। यह विकल्प ही जहाँ रह गया। यह काम शीघ्र हो, ऐसा कुछ लगता है... यह तो कुछ निपटता ही नहीं। इतना-इतना चल जाता है। दो महीने क्या कुछ काम (हुआ)? एक व्यक्ति करे न... आहाहा! क्या करते हैं यह? .... ऐसा काम। काम तो अपना परमागम प्रगट करना, वह है। यह तो बाहर के निमित्त की बात आवे। यह तो और पश्चात्.... यह हो तब न। ऊपर हो, तब संगमरमर अभी... संगमरमर भी कम हैं। अभी चिपकाने के संगमरमर पूरे लावे, फिर और उत्कीर्ण करने के। सब बातें ऐसी हो गयी। मस्तिष्क में ऐसा आ गया। सवा बजे यह आया।

मुमुक्षु : सवाया काम होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : देखो! यह सब प्रसन्न हो गये। आहाहा!

कहते हैं, अरे! भवसागर में डूबे हुए जीव के समूह को, भगवान नित्यानन्द प्रभु में जो बैठे, उसे वह नौका समान है, ऐसा कहते हैं। प्रभु नित्यानन्द का नाथ अविनाशी अपना स्वरूप उसमें जो दृष्टि दे और बैठे, (उसे) वह संसारसमुद्र को पार होने के लिये नौका है। समझ में आया? प्रेमचन्दभाई! आहाहा! वीतराग... वीतराग... वीतराग। अनन्त जीव अनन्त मोक्ष के धारावाही जानेवाले... उनके मार्ग को प्राप्त करनेवाले चाहे जिस काल में हो परन्तु अनन्त मुक्ति में गये और छह महीने आठ समय में ६०८ जाते हैं। जाते हैं, भाई! .... काल यहाँ आया। समझ में आया? प्राप्त करनेवाले नहीं जगत में, ऐसा कोई भी नहीं। कोई अन्तर थोड़ा पड़े तो भी अन्तिम आठ समय में ६०८ एक साथ जाते हैं। आहाहा! कोई थोड़े-थोड़े (काल में) होकर गये, वरना बिल्कुल अन्तर पड़ जाये छह महीने के अन्दर में। आठ समय में—अन्तिम आठ समय में ६०८, आठ समय में ६०८। आहाहा! अरे! ऐसे आत्मायें और उन आत्मा के शरण में गये हुए और उस पूर्णता को प्राप्त होनेवाले ऐसे जीव सदा मौजूद हैं। समझ में आया?

ओहो! मुनिराज ने आत्मा को गाया है न! दिगम्बर सन्त जंगल में बसनेवाले, जगत से दूर जंगल में रहनेवाले वनवासी—वन में बने हुए शास्त्र यह हैं। एकान्त... एकान्त... एकान्त... एकान्त... अन्तर एकान्त है और बाहर एकान्त। समुद्र उछला, विकल्प आया और एकदम शास्त्र रचना (हो गयी)। उसमें यह समयसार, प्रवचनसार, नियमसार अमृत का चोसला है। आहाहा! अकेला अमृत का पाटिया है। अरेरे! यह पक्ष की बात नहीं, वस्तु की स्थिति है भगवान! आहाहा! समझ में आया? अरे प्रभु! तू कौन है? तुझे खबर है कि तेरा तत्त्व, उसमें यदि दृष्टि दे और बैठे तो संसार समुद्र का पार आ जायेगा तुझे। ऐसा वह तत्त्व है। समझ में आया? आहाहा! कैसी बात की है! भवसागर में डूबे हुए—गोते खाते हुए—हिचकोले खाते हुए उसे नाव मिल जाये। आहाहा! लकड़ी पकड़कर पैर ऊँचा करके गिरे अन्दर। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा अकेला चैतन्यप्रकाश का पुंज और आनन्द का धनी, अकेला आनन्द का स्वरूप जहाँ, ऐसा अविनाशी भगवान, उसमें जो बैठे और पकड़े, चौरासी का अन्त (आ जाये)। कहो, समझ में आया? यह मार्ग है।

वह कहे, भगवान को पकड़ो, गुरु को पकड़ो। ऐसे नहीं पकड़े जाते पैर को, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कोई कहता था... ऐसा कि जब विमान जायेगा तुम्हारा, तब डण्डा—लकड़ी पकड़ूँगा, कहते हैं। ऐसा कोई कहता था। ....पकड़े उसमें तिरने का उपाय उसमें है। लकड़ी तिरे पानी में से; उसी प्रकार चैतन्य का स्वभाव वह समुद्र में से तारता है। आहाहा! भीखाभाई! अरे रे! ऐसी चीज़ की जिसे खबर नहीं, जिसे सम्यग्दर्शन और... जिसे नहीं सम्यग्दर्शन और चारित्र नहीं, वह साधु और आचार्यपद नाम धरावे। आहाहा! गजब बात है! समझ में आया? जिसमें नजर करे तो उसमें बैठे... अनादि से राग, पुण्य और पर्याय अंश में बैठा है। उस वस्तु में जाने से, वस्तु में बैठने से संसारसमुद्र के जीवसमूह डूबे हुए को नाव है, नाव। भगवान आत्मा, वह नाव है, कहते हैं। कहो, समझ में आया? आहाहा!

तथा प्रबल संकटों के समूहरूपी दावानल को... आहाहा! प्रबल संकट... संकटों... निगोद के परिणाम, आहाहा! नरक के भाव प्रबल संकट समूह है। ऐसे

दावानल को **(शान्त करने के लिए) जल समान है,...** भगवान। यह चौरासी के अवतार का दावानल सुलगता है, आकुलता वह अवतार है। संयोग, वह दुःख नहीं। आकुलता जो सुलगती है अशान्ति, उसे शान्त करने को—दावानल को बुझाने को भगवान पूर्णानन्दस्वरूप स्वयं शान्त जल समान हैं। आहाहा! समझ में आया? अभी तो पहली समझण तो करे कि यह चीज़ ऐसी है। उसे इस प्रकार रास्ता है उभरने का; बाकी रास्ता है नहीं। अरे! छोटी उम्र के बेचारे चले जाते हैं। यह अवतार... पीछे ममता में हो, मरकर ढोर में जाये, अरेरे! यह अवतार! यह कहते हैं, भगवान! तू एक चीज़ है कि जो संसार के दावानल को बुझाने की सामर्थ्य रखता है। संसार को उत्पन्न करने की सामर्थ्य तुझमें नहीं है। आहाहा! राग और पुण्य को उत्पन्न करने की सामर्थ्य तुझमें नहीं है। उसे शान्त करने की तुझमें सामर्थ्य है। आहाहा! समझ में आया?

उस सहज तत्त्व को... मुनिराज अपना प्रमोद प्रसिद्ध करते हैं, ओहो! उन्हें—मुनि को निश्चयचारित्र है न! उनकी नग्नदशा ही होती है। उन्हें २८ मूलगुण के विकल्प हों तो व्यवहार से वे होते हैं, परन्तु वह राग, दुःख है। भगवान आनन्द की मूर्ति है, उसमें बैठे, उसमें दृष्टि को स्थापित करे (तो) संसार का अन्त आता है। आहाहा! सेठी! कहो, ऐसा है। **सहज तत्त्व को...** क्या कहते हैं मुनिराज? **मैं प्रमोद से सतत नमस्कार करता हूँ।** मेरी बैठक वहाँ हो गयी है अब, स्थिरता वहाँ जमी है; इसलिए मैं प्रत्याख्यान में हूँ—ऐसा कहते हैं। आहाहा! सहज तत्त्व भगवान पूर्णानन्द प्रभु को मैं प्रमोद से—आनन्द से—वर्तमान में आनन्द की दशा से उसमें मैं झुका हुआ हूँ। मुझे दुःख है नहीं, पर्याय में दुःख नहीं, द्रव्य-गुण में तो है ही नहीं। अर्थात् कि प्रत्याख्यान अर्थात् चारित्र वह आनन्ददायक है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? सम्यग्दर्शन-ज्ञान भी आनन्ददायक है, चारित्र तो महा आनन्ददायक है। आहाहा! जिसके अवतार सफल किये, भव के किनारे आ गया, ऐसा चारित्र, बापू! वह कहीं बात है! साधारण में मनवा बैठे कि चारित्रवन्त है। आहाहा! भाई! यह दशायें सुनने में भी महामुश्किल, उसे देखने और जानने की स्थिरता अलौकिक बात है। समझ में आया?

इसलिए श्रीमद् ने कहा न कि 'देहमात्र संयम हेतु होय जब, सर्व भाव से उदासीन वृत्ति करि...' मात्र एक देह रहे, उसे वस्त्र-पात्र भी न हो, ऐसा कहते हैं। मात्र देह वह

संयम—हेतु है... संयम का हेतु। निमित्त है, निमित्त। संयम का कारण तो आत्मा है। वह (देह) बाह्य निमित्त। 'अन्य कारणे अन्य कछु कल्पे नहीं...' दूसरे किसी कारण से कोई विकल्प मुझे चलता नहीं। आहाहा! ऐसी चारित्रदशा! आनन्द से **सतत नमस्कार करता हूँ।** मैं आनन्द में हूँ, हों! वर्तमान, कहते हैं। आहाहा! यह आनन्द की उग्रदशा, वह चारित्र है, वह प्रत्याख्यान है। ऐसे चारित्र से, प्रमोद से सतत् नमता हूँ। मेरी बैठक वहाँ गयी है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! १४९ हुआ न। १५०। आहाहा!

जिनप्रभुमुखारविन्दविदितं स्वरूपस्थितं,
मुनीश्वरमनोगृहान्तरसुरत्नदीपप्रभम्।
नमस्यमिह योगिभिर्विजितदृष्टिमोहादिभिः,
नमामि सुख-मन्दिरं सहज-तत्त्वमुच्चैरदः ॥१५०॥

'**अदः**' अर्थात् क्या? सदा। **सदा अत्यन्त नमता हूँ।** आता है न? क्या कहते हैं? **श्लोकार्थः—जो जिनप्रभु के मुखारविन्द से विदित (प्रसिद्ध) है,...** आहाहा! ऐसा जो भगवान, वह तो जिनप्रभु ने देखा, जाना और ...में ज्ञात हुआ, उनके मुख में वाणी आयी, उसमें यह प्रसिद्ध होता है। दूसरे अज्ञानियों की वाणी में ऐसा आत्मा आ नहीं सकता। समझ में आया? **जिनप्रभु के मुखारविन्द...** मुखरूपी अरविन्द—कमल, उसके द्वारा भगवान प्रसिद्ध है। सिद्ध समान तेरा स्वरूप है, ऐसा वाणी में प्रसिद्ध है, कहते हैं। यह भगवान की वाणी में प्रसिद्ध है। आहाहा! समझ में आया? तुझे मेरी भी आवश्यकता नहीं, ऐसा तू प्रसिद्ध है, ऐसा कहते हैं। ऐसा वीतराग ने प्रसिद्ध किया है। मलूकचन्दभाई! आहाहा! बापू! तू दबैल नहीं, हों! तेरा तत्त्व महाप्रभु वाणी से भगवान ने प्रसिद्ध किया कि तेरी प्रसिद्धि तुझसे होती है। और वह चैतन्यमूर्ति प्रसिद्ध ही है। ... आता है न? 'प्रसिद्धं सिद्धं'। वह सिद्ध भी प्रसिद्ध है और तेरा आत्मा प्रसिद्ध है, परन्तु 'जिन' के मुख से निकला हुआ वह। वीतराग परमात्मा एक समय में जिन्हें केवलज्ञान और केवलदर्शन में लोकालोक नहीं जाना परन्तु उनकी पर्याय को जाना, उसमें ज्ञात हो गये हैं। ऐसे भगवान के मुख में से... अरेरे! सुन। जिनवरदेव के मुखारविन्द से—दिव्यध्वनि से प्रसिद्ध किया है आत्मा को। आहाहा! कहो, पाटनीजी! आहाहा!

जो स्वरूप में स्थित है,... यह भगवान ने ऐसा कहा है कि तेरा स्वरूप तुझमें

स्थित ही है, कहीं गया नहीं। आहाहा! अरे! यह बात भी सुननी मुश्किल पड़े। ऐ सेठ! ...और पर्दा डाला हो आड़ा, कुछ शल्य पड़ी (हो) कि इससे होगा, इससे होगा। (ऐसा) शल्य पड़ा होता है। इसलिए उसे अन्तर में देखने के लिये समय रहा नहीं। ऐसे का ऐसा, ऐसे का ऐसा कि इससे होगा... इससे होगा... इससे होगा। यह जो तिरने का कारण नहीं, इससे तिरूँगा—इस शल्य में आत्मा दिखाई नहीं देता। समझ में आया? **जो स्वरूप में स्थित है,...** भगवान तो अपने आनन्द-ज्ञान आदि अनन्त शक्तियाँ जो स्वरूप अनन्त शक्ति में वह विराजमान है। आहाहा! वह राग में आया नहीं और एक समय की पर्याय में भी आया नहीं, ऐसा कहते हैं। वह तो अपने स्वरूप में स्थित है। आहाहा! कहो, पद्मचन्दजी! ऐसी बात है यह। अरे! वीतराग के अतिरिक्त यह नहीं होती, भाई! ऐसा कहते हैं। मुनि ऐसा कहना चाहते हैं। बापू! जिसे वीतरागता, सर्वज्ञता प्रगट नहीं हुई, जिसे ज्ञान में ऐसा आतमा आया नहीं, उसकी वाणी में नहीं आता। दूसरे प्रकार से कल्पना करे वे सब उल्टे रास्ते चढ़नेवाले हैं। आहाहा!

कहते हैं, उस स्वरूप में स्थित प्रभु है, **जो मुनीश्वरों के मनोगृह के भीतर...** धर्मात्मा के मन के गृह के अन्दर **सुन्दर रत्नदीप की भाँति प्रकाशित है,...** चैतन्यरत्न प्रकाशित होता है। ज्ञानी के ज्ञान में वह प्रकाशित होता है, कहते हैं। **रत्नदीप की भाँति...** इस दीपक की भाँति नहीं। यह तो बुझ जाये, बुझ जाये, लबक-झबक हो। यह तो ऐसा का ऐसा रत्नदीप—चैतन्यरूपी रत्नदीपक अन्दर जलहलता है, ज्ञानी का कलेजा—ज्ञान में, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! **जो इस लोक में दर्शनमोहादि पर विजय प्राप्त किये हुए...** आहाहा! भाषा देखो! **योगियों से नमस्कार करनेयोग्य है...** क्या कहते हैं? यह भगवान आत्मा नित्यानन्द का नाथ तू स्वयं ध्रुव। जिसने दर्शनमोह का नाश किया है—मिथ्यात्व का नाश किया है, ऐसे दर्शन पर विजय प्राप्त सन्तों को वह नमस्कार करनेयोग्य है। अज्ञानी को नमस्कार करनेयोग्य (नहीं क्योंकि), वस्तु ज्ञात नहीं हुई, इसलिए नहीं। आहाहा! समझ में आया?

जिसने भगवान आत्मा को मिथ्यात्वभ्रान्ति... नाश करके भ्रान्ति को और जिसने विजय प्राप्त की है अन्तर में। आहाहा! ऐसे सन्तों को अथवा धर्मात्मा को नमस्कार करते हैं। उन्होंने देखा कि 'यह'। देखे बिना किसे नमस्कार करना? ऐसा कहते हैं। समझ में

आया? डाह्याभाई! आहाहा! भाई! यह तो तेरे घर की... आहाहा! यह घर की बात है, हों! इतना बड़ा उसे (बैठता नहीं)। कहीं न कहीं सहारा चाहिए, किसी की शरण में जाऊँ।—तो ऐसा वह है नहीं। 'अपने स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है।' यह छठवाँ बोल, अलिंगग्रहण। अलिंगग्रहण का छठवाँ बोल है। अपने से अपने स्वभाव से ज्ञात हो ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। दूसरे प्रकार से मानो तो वह ज्ञात होगा नहीं। आहाहा! उसे अभी उसकी समझ में इतनी बात बड़ी है, ऐसा तो ले। इसके बिना सच्ची समझण होगी नहीं, समझण अन्तर में ढले नहीं। समझ में आया? आहाहा!

किसे नमस्कार करनायोग्य है, वह आत्मा? जिसने भ्रान्ति को टाला है और जिसने जीव का अनुभव किया है, उसे उसमें नमनेयोग्य है। प्रत्याख्यान चारित्र का अधिकार है न! आहाहा! वे उसमें ढले हैं, वे उसमें झुके हैं, वे उसमें स्थिर हैं। समझ में आया? उसका नाम प्रत्याख्यान और चारित्र है। **तथा जो सुख का मन्दिर है,...** आहाहा! वह सुख का मन्दिर है, प्रभु। क्या कहते हैं यह? वह आनन्द का मन्दिर है। 'मंगल (मन्दिर) खोलो', आता है न? (मंगल) मन्दिर खोलो। वह मंगलमय मन्दिर आत्मा है। समझ में आया? **जो सुख का मन्दिर है,...** आहाहा! उसमें प्रवेश करने से आनन्द की वेदनदशा हो, ऐसा वह आत्मा है। सुखमन्दिर में जाये तो सुख मिले, सुख दिखाई दे, आहाहा! ऐसा कहते हैं। सुखमन्दिर है, उसमें जा तो तुझे सुख अकेला आनन्द दिखाई दे। वह आनन्द जो होता है, उसका नाम सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र। आहाहा! ऐसी बात तो कितनों ने सुनी भी नहीं होगी जिन्दगी में। पद्मचन्दजी! भगवान! तेरी महत्ता की बात तूने सुनी नहीं और तुझे यह बात समझ में आ जाये और अनुभव हो, बापू! कैसे हो? आहाहा! यह अपवास करो, यह व्रत पालन करो। बापू! यह तो बाहर की ओर के लक्ष्यवाली बातें, भाई! पूजा करो और यह भगवान के... करो, ढींकणा करो। भाई! यह चीज़ जो कहना चाहते हैं विकल्प, वह वस्तु में नहीं है। वस्तु में नहीं तो उसके कारण आत्मा को वस्तु का लाभ हो, ऐसा कैसे हो? समझ में आया? आहाहा!

भगवान के समय में तो पशु भी ज्ञानी पाँचवें गुणस्थानवाले। गजब है न! और ढाई द्वीप के बाहर पाँचवें गुणस्थानवाले असंख्य पशु—मछलियाँ, मगरमच्छ, सिंह,

बाघ, भालू, सर्प बड़े। हजार-हजार योजन के लम्बे शरीर हों। स्वयं तो असंख्य प्रदेश आनन्द का धाम सुख के मन्दिर में बैठे हैं। ऐसे 'पशु है' ऐसा बाहर दिखाई दे। आहाहा! पूँछ जरा हिले जहाँ... हजार योजनवाले की पूँछ कितनी बड़ी होगी? कितने ही पानी के जीव घात हो जाये। उसे कुछ नहीं, उसके कारण। अन्दर का जितना राग है, उतना बन्धन है। समझ में आया? और जितना रागरहित आत्मा में स्थिर हुआ है, उतना उसे आनन्द है। पशु आनन्दी। ऐ सेठ! और यह सब पैसेवाले दुःखी। करोड़पति हुआ वह पहले लकड़ी हाथ में थी। लकड़ी हाथ में रखे न मूँठवाली? करोड़पति हुआ तो लकड़ी छूट गयी। पैर जहाँ टूटा, वह लकड़ी वापस हाथ में आ गयी। सहारा लकड़ी समझे न? यह सेठ भी रखते हैं।

पैसे गये... हमारे तो उपाश्रय में बैठे हों तो देखे। पहले पैसे थे तब लकड़ी नहीं थी। गये, सब टूट गया, कमर टूट गयी। हमारे तो वहाँ उपाश्रय में जाली के बाहर... ऐसे निकले गली में, दिखाई दे। मन्दिर जाते हों पूजा करने। समझ में आया? आहाहा! यह तो कहते हैं, प्रभु! तू तो सुख का मन्दिर है न, नाथ! वह अन्तर में जा तो दिखाई देगा तुझे आनन्द। वहाँ दुःख भी नहीं, आकुलता नहीं, कुछ है नहीं। ऐसे को आत्मा कहा जाता है। आहाहा! प्रेमचन्दभाई! ऐसा आत्मा इसने सुना नहीं। आहाहा!

उस सहज तत्त्व को... 'नमता हूँ... नमता हूँ' किसलिए कहते हैं? प्रत्याख्यान प्रसिद्ध करने, ऐसा। ऐसा जो भगवान, उसमें मैं नम गया हूँ, मुड़ गया हूँ, झुक गया हूँ, वहाँ मैं बैठा स्थिर होकर, इसका नाम चारित्र और प्रत्याख्यान है। समझ में आया? ऐसे बाहर से लिया, लो, प्रत्याख्यान कराओ अट्ठम के, फलाना के, ढींकणा के। जहाँ है वहाँ कौन है, उसकी खबर नहीं होती। बाहर से विकल्प में, वह स्वयं नहीं वहाँ घिर गया है। आहाहा! ऐसा ही है। इसने तो बहुत किया है। गर्म पानी पीया, उपधान किये। उपधान किये कितनी बार? एक बार? तीन-चार बार। पैंतालीस दिन में वह करते हैं न लांघण। आहाहा! यह तो एक जानने की बात है। अनन्त काल से ऐसा चलता है। ऐसे **सहज तत्त्व को मैं...** मेरा आत्मा सदा नमता है। आहाहा! मेरी बैठक वहाँ है। समझ में आया? मेरी बैठक राग में या पुण्य में है नहीं। आहाहा! उसे चारित्र कहते हैं और उसे

प्रत्याख्यान सम्यग्दर्शनसहित हो उसे कहते हैं। आहाहा! १५० (श्लोक) हुआ।

'अत्यन्त नमूं... नमूं... ' आया सर्वत्र अन्त में। तीन में—१४९ में आया, १५० में और १५१ में यह है। आहाहा! मेरा भगवान सहजात्मस्वरूप नित्य ध्रुव है। उसकी पर्याय है वह भी एक समय की है। वह तो ध्रुव सहजस्वरूप तत्त्व—आत्मतत्त्व, आत्मा का सत्त्व—स्वभाव, वह तो त्रिकाली वस्तु है। उसे मैंने जाना है और उसमें मैं स्थिर हूँ, वह उसमें मेरा नमन है। इसका नाम सम्यग्दर्शनसहित का चारित्र। ऐसे चारित्र... चारित्र की व्याख्या करे बाहर के क्रियाकाण्ड। उसका भी कहाँ ठिकाना है अभी? आहाहा! भगवान... भगवान... आहाहा! १५१ में आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भाद्र शुक्ल ४, बुधवार, दिनांक - २५-८-१९७१
श्लोक-१५१, गाथा-१०७, प्रवचन-१०५

नियमसार, १५१ कलश। क्या अधिकार चलता है यह? प्रत्याख्यान अर्थात् कि मिथ्यात्व का त्याग, अव्रत का त्याग, उसके त्याग में चैतन्यस्वरूप का आश्रय लेकर आत्मा की जो स्थिरता। वस्तुस्वभाव परमात्मा स्वयं त्रिकाल स्वरूप है। आत्मा स्वयं परमात्मा, हों! वह परमात्मा नित्यानन्द, नित्य निरावरण, ऐसी जो चीज़ अपनी, उसमें उसकी दृष्टि करके उसका अनुभव करना, यह पहला सम्यग्दर्शन में होता है। पश्चात् उस स्वरूप में लीन होना, अतीन्द्रिय आनन्दस्वभाव, नित्यानन्द, सहजानन्द में लीनता—एकाग्रता—उग्रता, पुरुषार्थ की उग्रता से प्रचुर स्वसंवेदन—आनन्द का उग्र वेदन होना, उसका नाम प्रत्याख्यान और चारित्र कहा जाता है।

मुमुक्षु : अपनी शरीर की....

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्यत्र कहाँ जाये? जहाँ हो वहाँ घर में जाये या बाहर में जाये? अपना परमात्मस्वरूप है, उसे पहले दृष्टि में, अनुभव में लेकर यह इसे करना का है। पश्चात् उसमें एकाग्रता, उग्ररूप से द्रव्य का—स्वभाव का आश्रय करके लीनता होना, उसका नाम चारित्र और उसका नाम प्रत्याख्यान है। उसका नाम विकार का त्याग कहा जाता है। नास्ति से बात है सब। समझ में आया? आहाहा! मार्ग ऐसा है। यह बात १५१ अन्तिम कलश है। १०६ गाथा का कलश है।

प्रनष्ट-दुरितोत्करं प्रहत-पुण्य-कर्मव्रजं,
प्रधूतमदनादिकं प्रबलबोधसौधालयम्।
प्रणामकृततत्त्ववित् प्रकरणप्रणाशात्मकं,
प्रवृद्ध-गुण-मन्दिरं प्रहृत-मोह-रात्रिं नुमः ॥१५१॥

भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु अविनाशी अपना स्वरूप, एक समय में—सूक्ष्म काल में वह त्रिकाल ध्रुव चीज़ जो है, वह आत्मा—वह अपना निज परमात्मा। ऐसा

निज आत्मा, उसने **पाप की राशि को नष्ट किया है,...** अर्थात् कि पाप का भाव उसमें नहीं। पर्याय में था न! द्रव्य में नहीं। यहाँ यह कहना है न। पापभाव पर्याय में था, द्रव्य में नहीं। नहीं, उसका आश्रय करे तो पाप का नाश हो। समझ में आया? अगम्य बातें हैं भाई! संसार के दु:ख, चौरासी के अवतार, उनके अन्त को लाने का तो यह एक उपाय है। स्वयं परमात्मा पूर्णानन्दस्वरूप, जिसका आनन्द कहीं अन्यत्र नहीं, दया-दान-व्रत-भक्ति के परिणाम में भी आनन्द नहीं। वह परिणाम तो राग और दु:खरूप है। आहाहा! उसे नाश करने का इसका (आत्मा का) स्वभाव है अथवा यह वस्तु उसमें (आत्मा में) है नहीं। समझ में आया? जिसे भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, निजात्म परमात्मा कारणप्रभु, उसे कारणजीव कहो, कारणपरमात्मा कहो, नित्यानन्द कहो, ध्रुवस्वरूप कहो, ज्ञायकभाव कहो, सदृश शक्ति का तत्त्व पूरा कहो। उसे तो पाप का गंज जिसमें नहीं। पाप की राशि... '**उत्करं**' है न? पाप की राशि '**उत्करं**' अर्थात् कचरा, ढ़ेर, उसे जिसने नष्ट किया है कि जिस चीज़ में वह है ही नहीं। ऐसी चीज़ की दृष्टि करने से पाप उत्पन्न होते नहीं, ऐसा कहते हैं।

जिसने पुण्यकर्म के समूह को हना है,... 'प्रहतपुण्यकर्मव्रजं' आहाहा! शुभभाव जो पुण्यभाव, ऐसे पुण्यभाव को, समूह—उसका—पुण्य का ढ़ेर उसने नष्ट किया है, अर्थात् कि पुण्यभाव जिसमें नहीं। ऐसा निजात्मतत्त्व, उसमें पुण्य का समूह है नहीं। अथवा ऐसे निजात्मतत्त्व का आश्रय करने से पुण्य के भाव का नाश होकर उत्पन्न नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब धर्म की रीति ऐसी। बाहर से ऐसा माना है न कि ऐसा करना, ऐसा करें, ऐसा करना और व्रत पालते हैं, तप करते हैं, अपवास करते हैं—यह तो सब विकल्प है और उसका कर्तापना वह तो महा भ्रमणा, अज्ञान है। समझ में आया? भगवान आत्मा... पुण्यकर्म के समूह को तो जिसने नष्ट किया है अर्थात् उसमें है ही नहीं। अर्थात् ऐसा चिद्घन प्रभु की दृष्टिपूर्वक अन्तर स्थिरता होने से वह पुण्यपरिणाम उत्पन्न नहीं होते। नहीं, इसलिए नष्ट कर देता है, ऐसा उसका स्वभाव है। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा, परन्तु इसने कभी सुना भी नहीं। समझ में आया?

जिसने मदन (-काम) आदि को खिरा दिया है,... मदन... मदन... आहाहा! कामवासना, वह तो जिसकी चीज में है ही नहीं। भिन्न-भिन्न शब्द प्रयोग किये हैं। नष्ट

किया है, घात किया है, खंखेरी डाला है। '**प्रधूत**' है न? '**मदनादिकं**' मदन—विषय की वासना, वह तो जिसकी चीज़ में अन्तर में है नहीं। ऐसा नित्यानन्द प्रभु मदवासना—विषय की वासना, विषय का प्रेमजाल, वह चैतन्य भगवान पूर्णानन्द में नहीं है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि के विषयरूप से, ध्येयरूप से हो तो वह ध्रुववस्तु है। ध्रुव के ध्येय से ध्यान प्रगट होने पर सम्यग्दर्शन होता है और उसमें वासना मद की—भोग की, दुनिया जिसे ऐसा मजा और रस मानती है, कहते हैं कि उस वासना की गन्ध वस्तु में नहीं है, भाई! उस वासना की गन्ध अन्दर हो तो वह वासना टाल नहीं सकते और वासनासहित ही सदा रहे। कभी सुखी हो नहीं सके। समझ में आया?

यह वीतराग का धर्म यह है। वस्तु का यह धर्म है। वस्तु अर्थात् परमात्मा स्वयं, उसमें अनन्त ज्ञान-दर्शन आदि बसे हुए—रहे हुए हैं। उसमें काम की वासना नहीं रही हुई है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसा जो भगवान पूर्णानन्द का स्वरूप जिसका, उसका शरण लेने से उसमें कामवासना तो नहीं, परन्तु उसका शरण लेने पर कामवासना उत्पन्न नहीं होती। कहो, समझ में आया? मदन इत्यादि विषय की वासना, नवीन चीज़ को देखने की कौतूहलता इत्यादि जो चीज़ में नहीं है। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा, उसे आत्मा कहते हैं। ऐसा आत्मा जो दृष्टि में ले और ऐसा आत्मा जिसे श्रद्धा में बैठे, उसे कामवासना की उत्पत्ति नहीं होती। आहाहा! स्थिरतासहित की बात है न! सम्यग्दर्शन में वस्तु अनुभव में आयी, परन्तु अभी वासना होती है आसक्ति की। विषय की वासना का प्रेम और मिठास नहीं है। समकिती को आसक्ति है, परन्तु उसका रस नहीं है। उसका वह स्वामी नहीं, उसे मिठासरूप से वेदता नहीं। उसे जहरवाला जानकर वह छोड़ता है। समझ में आया?

चैतन्यस्वभाव आनन्द के रस का रसीला प्रभु, चैतन्य भगवान आत्मा अणीन्द्रिय—अतीन्द्रिय, अणीन्द्रिय—अतीन्द्रिय का आनन्द का धाम प्रभु स्वयं, उसमें यह कौतूहलता कैसी? उस कौतूहलता को जिसने खंखेर डाला है। आहाहा! जैसे यह पंखी (पक्षी) होते हैं न, उन्हें धूल छुए न पंख में, पंखी... पंखी... ऐसे-ऐसे करे वहाँ धूल को झड़ा डालता है। चिड़ा-बिड़ा धूल में नहाये न। उसे धूल जरा लगती हो तो धूल में जाकर ऐसे करे। ऐसे-ऐसे हो तो झड़ा डालता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा... आहाहा! पण्डितजी!

आहाहा! यह अतीन्द्रिय सहजानन्द का नाथ प्रभु, ऐसा जिसने—धर्मी ने दृष्टि में लिया है और उसमें स्थिरता की है। ऐसी बात है न अभी तो। प्रत्याख्यान है न! निजघर में जम गया है। उसे विषयवासना छूट जाती है। आसक्ति भी नहीं रहती, ऐसा कहते हैं भाई!

सम्यग्दर्शन में (राग में) रस तो रहता नहीं। आत्मा का सम्यग्दर्शन पूर्णानन्द का स्वभाव जहाँ स्वीकार में अन्तर में आया, ओहोहो! थोड़ा आनन्द का स्वाद आया, उसमें पूरा आनन्दमय आत्मा है, ऐसा जो अनुभव किया, उसे अब राग में रस नहीं रहता। इन्द्र के इन्द्रासन में हो समकिती, कहीं उसका रस नहीं। रस उड़ गया है। समझ में आया? रस का अर्थ (यह कि) उसमें एकाग्र होने से मजा है, यह सब उड़ गया है। सम्यग्दर्शन धर्म की पहली ध्वजा लहरायी, पूरी दुनिया के प्रति रस उड़ जाता है। भले छह खण्ड के राज में हो और छियानवें हजार रानियाँ पद्मिनी जैसी के मध्य में दिखाई दे, (समकिती) कहीं नहीं है। आहाहा!

अरे! यह चीज़ तो देखो, यह क्या है? यह भगवान को जोर से हिलाकर देखो तो, कहते हैं कि वह तो आनन्द का नाथ है। उसमें विषय की वासना की गन्ध है नहीं। आहाहा! अरे! दुनिया हैरान होकर मर जाये बाहर में। पैसे में सुख है, इज्जत में सुख है, बड़ी पदवी मिले, दस हजार और पन्द्रह हजार का मासिक वेतन हो, दिन (की आमदनी) हो, लो न! आहाहा! मैं चौड़ा और गली सकड़ी। हम जहाँ हैं वहाँ छोटे हो जाते हैं। छोटा मकान, छोटा यह। बड़े मकान में आओ। राजा... क्या है परन्तु? आहाहा! किसका पागलपन फटा है यह?

यहाँ कहते हैं कि भगवान आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप, सहजानन्दमूर्ति प्रभु, ऐसा जिसने अन्तर में वस्तु को ज्ञेय बनाकर, वस्तु को ध्यान में विषय बनाकर जो अनुभव हुआ, उसे धर्म—समकित कहा जाता है और विषय की वासना का रस उड़ जाता है। वासना हो आसक्ति, (परन्तु) रस नहीं। जैसे काला नाग देखकर लोग भागते हैं, उसी प्रकार इसे (ज्ञानी को) लगता है। आहाहा! अज्ञानी विषय की वासना में मजा और लीन हो जाता है। आहाहा! समझ में आया? उसकी दृष्टि में अन्तर है। उसे राग में रस लगता है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

....मिथ्यादृष्टिपना गजब! क्योंकि वह पर में रस (-अच्छापन) है नहीं और माना

है, वह तो विपरीत मान्यता है। रस तो भगवान आत्मा के आनन्द में है। वहाँ जिसने रस देखा और माना और अनुभव किया, उसे कहीं जगत में चक्रवर्ती की सम्पदा में भी कहीं सुख दिखाई नहीं देता। आहाहा! समझ में आया? धर्म चीज़ बहुत महँगी है, भाई! दुर्लभ है। अलभ्य है, ऐसा नहीं; प्राप्त न हो सके, ऐसा नहीं, परन्तु दुर्लभ है। अनादि से वह बाह्य में मान बैठा है न कि ऐस व्रत पालन किये, अपवास किये और यह किये, वस्त्र बदलाये, हो गये साधु, हो गये त्यागी। भाई! इस धर्म का मुख बड़ा है। जिसमें पूरा आत्मा समा जाये, ऐसी श्रद्धा में। समझ में आया? इसने विषय-वासना झड़ा डाली है। आहाहा!

जो प्रबल ज्ञान का महल है,... कैसा है प्रभु आत्मा? चैतन्यस्वभाव का महल बड़ा महल है। आहाहा! प्रवेश करने पर उसे आनन्द आवे, ऐसा वह है, कहते हैं। समझ में आया? लोग नहीं कहते? चाहे जितने बाहर घूमे, परन्तु घर में आवे तब शान्ति। कुछ बोलते हैं, कुछ भाषा है।

मुमुक्षु : दुनिया का छोर कहाँ आया? कि घर में।

पूज्य गुरुदेवश्री : घर में, बस यह। ऐसा आता है। दुनिया का छोर कहाँ आया? कि घर में। बहुत घूम-घूमकर घूमे, परन्तु घर में आवे तो हा..श.. (चैन) ऐ सेठ! इसी प्रकार चारों ओर विकल्प में घूमे, उसमें दुःख में जाता है, वह दुःख को निमन्त्रित करता है। नोतरे समझते हैं? आमन्त्रण देता है। हमारे यहाँ जीमणवार... आना जीमने। आहाहा!

पुण्य और पाप के विकल्प—राग, वह दुःख का... दुःख का मूल है, ऐसा जिसने... दुःख के मूल से रहित प्रभु आनन्द का मूल है, मोक्ष का मूल वह आत्मा है, उसमें से मोक्ष उगता है, उगता अर्थात् उत्पन्न होता है। ऐसे भगवान में... तू प्रबल ज्ञान का महल, अकेला ज्ञानपिण्ड... ज्ञानपिण्ड... ज्ञानपुंज... ज्ञान का अकेला बँगला है। ज्ञान का अकेला बँगला। तुम्हारे संगमरमर का बँगला नहीं, ऐसा कहते हैं, सेठ! ऐ सेठ! यह तुम्हारा बँगला संगमरमर का—धूल का नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ज्ञान का बँगला, अकेला ज्ञान से भरा हुआ भरपूर तत्त्व। आहाहा! ऐसा उसे आत्मा कहते हैं। उसमें संसार भरा है, राग भरा है—वह आत्मा है नहीं। आहाहा! कठिन बातें, भाई! समझ में आया? सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा ने परमात्मा की दशा

प्रगट की, उस दशा का पूरा स्वरूप ही आत्मा परमात्मा है। वह परमात्मा है, उसका एन्लॉर्ज होकर पर्याय में परमात्मा होता है। समझ में आया?

जिसे तत्त्ववेत्ता प्रणाम करते हैं,... देखो! भाषा तो देखो। कहते हैं कि वह ऐसा तत्त्व है कि जिसके जाननेवाले उसमें नमते हैं। आहाहा! उसके जाननेवाले—जाने हुए उसमें नमते हैं। यह वस्तु भगवान आत्मा... वह पुण्य-पाप के विकल्प से हटकर ऐसा ज्ञान का महल प्रभु में वह तत्त्ववेत्ता उसे नमते हैं। उस वस्तु के जाननेवाले... जाननेवाले उसमें नमते हैं, ऐसा कहते हैं। प्रत्याख्यान अधिकार है न! वह तत्त्ववेत्ता अर्थात् सम्यग्दृष्टि—तत्त्व का जाननेवाले वह उसमें नमते हैं अर्थात् रहते हैं। उसे 'प्रमाण करता है' ऐसा कहा न! प्रणाम करता है। प्रणाम, वह नमन करना, उसमें प्रणाम कहा। नमकर, अन्तिम शब्द आयेगा '**नुमः**' आहाहा! यह तो परमात्मा को प्राप्त करने के मन्त्र हैं। समझ में आया? **जिससे तत्त्ववेत्ता प्रणाम करते हैं,...** प्रणाम (अर्थात्) विशेष स्थिरता करते हैं, नमते हैं, उसमें ढलते हैं। करवट बदल डाली है जिसने—धर्मी ने। तत्त्व ज्ञायकमूर्ति आनन्द का धाम ऐसा धर्मी ने जाना, उसकी करवट दिशा बदल गयी है। वह राग और निमित्त में से हटकर यहाँ ढल गया है। आहाहा!

और जो प्रकरण के नाशस्वरूप है... अर्थात् कि कुछ करना जिसे रहा नहीं। है वस्तु त्रिकाली, उसे करना क्या? **कृतकृत्य है।** समझ में आया? '**प्रकरण**' अर्थात् कार्य। कोई कार्य करना नहीं है। कृतकृत्य वस्तु तो वस्तु है। **जो पुष्ट गुणों का धाम है...** '**प्रबलबोध**' वह न? '**प्रवृद्धगुणमंदिरं**' '**प्रवृद्धगुणमंदिरं**' '**सौधालय**' में यह आया, नहीं? वह तो महल में रहता है। '**प्रबलबोधसौधालयम्**' महल है अकेला। मैल नहीं, महल। आहाहा! भगवान आत्मा धर्मी का ध्येय और धर्मी की जहाँ दृष्टि है, ऐसी वह चीज़ पुष्ट गुणों का धाम है। आहाहा! उसके गुण पुष्ट पड़े हैं, एक-एक गुण अनन्त-अनन्त सामर्थ्यवाले ऐसे पुष्ट गुणों का वह धाम है। कहो, समझ में आया? उसके गीत इसने सुने नहीं। उसके गुण कैसे और कैसा है, इसने सुने नहीं, दूसरी सब बातें लगायी। आहाहा! समझ में आया? **पुष्ट गुणों का धाम है...** गुण हैं, परन्तु पुष्टगुण हैं, ऐसा कहते हैं। अपार महिमा एक-एक गुण... स्वभाव—सत्त्व, सत् का सत्त्व, सत् ऐसा भगवान, उसका सत्त्व अर्थात् गुण। वे गुण पुष्टगुणों का वह धाम है। आहाहा!

तथा जिसने मोहरात्रि का नाश किया है,... भगवान आत्मा जिसमें मोहरूपी अन्धकार है ही नहीं। चैतन्य का प्रकाश अकेला भगवान, उसमें मोह की अन्धकार दशा है ही नहीं। अर्थात् वस्तु में तो नहीं, परन्तु वस्तु का जिसने आश्रय किया, उसे मोह का अन्धकार रहता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! लो, यह धर्मकथा चलती है। ऐसी कैसी ? पर्यूषण हो और अपवास करना, चतुर्विध आहार (त्याग) करना... क्या कहलाता है ? नकोरडा। नकोरडा चलते हैं, तुम्हारे क्या कहते हैं ? निर्जल करे न, उसे नकोरडा कहते हैं। चतुर्विध आहार। पानी की बूँद न ले। आठ करे तो ऐसे हो। प्रौषध... प्रौषध... यहाँ तो उसे पानी की बूँद नहीं... चारों आहार का त्याग। आठ दिन करो। तुम्हारे अट्ठम करे, उसे ऐसा लाभ, एक पोरशी चढ़ावे तो ऐसा लाभ। सब लंघन की बातें हैं।

भगवान आनन्द के धाम में समीप जाता है, उप-वास—ऐसे चिदानन्द भगवान के समीप जाकर बसे, उसे उपवास कहते हैं। आहाहा! अरे! उसका—निजानन्द का नाथ कभी देखा नहीं, देखने को कभी आड़ तोड़ी नहीं। पर्दे में रखा उसे। पर्दे में रखा, पर्दे में रखा। या राग का प्रेम, या विषय का प्रेम, या एक समय की अवस्था में पूर्ण मनने का प्रेम, उसे पर्दे में रखा। आहाहा! मार्ग ऐसा है, भाई! कहते हैं, मोहरात्रि का तो जिसने नाश किया है। ओहो! **उसे (-उस सहज तत्त्व को)...** ज्ञान में लिया है, ऐसा भाव—तत्त्व को **हम नमस्कार करते हैं। 'नुमः'** प्रत्याख्यान है न! उसमें हम झुक गये हैं, ढल गये हैं, ढलकर पिण्ड हो गये हैं। यह प्रत्याख्यान। समझ में आया ? यह अधिकार पूरा हुआ, छठवाँ अधिकार।

इस प्रकार, सुकविजनरूपी कमलों के लिए जो सूर्य समान हैं और पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित देहमात्र जिन्हें परिग्रह था... मुनियों को तो एक शरीरमात्र होता है। अन्दर भावलिंग प्रगट हुआ हो, उसे वस्त्र-पात्र कुछ होते नहीं। नहीं प्रगट हुआ हो उसे भाव भी नहीं, वहाँ द्रव्य(लिंग) उसका (वास्तविक) है नहीं। जिन्हें देहमात्र परिग्रह था। 'देहमात्र संयम हेतु' आता है न ? उसमें आवे परन्तु पीछेवालों ने सब गड़बड़ कर दिया। **ऐसे श्री पद्मप्रभमलधारिदेव द्वारा रचित नियमसार की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में (अर्थात् श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत श्री नियमसार परमागम की निर्ग्रन्थ मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेवविरचित तात्पर्यवृत्ति नाम की टीका में) निश्चय-प्रत्याख्यान अधिकार नाम का छठवाँ श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ।**

— ७ —
परम-आलोचना अधिकार

सातवाँ (अधिकार)। भूतकाल का प्रतिक्रमण और भविष्य का प्रत्याख्यान और वर्तमान का संवर—आलोचना। भगवान पूर्णानन्द है, उसे देखना, उसका नाम आलोचना। उसे देखने से राग का देखना टल जाता है। समझ में आया? यह आलोचना अधिकार है। १०७ (गाथा)।

णोकम्मकम्मरहियं विहावगुणपज्जएहिं वदिरित्तं।
अप्पाणं जो झायदि समणस्सालोयणं होदि॥१०७॥

नोकर्म, कर्म, विभाव, गुण पर्याय विरहित आतमा।
ध्याता उसे, उस श्रमण को होती परम-आलोचना॥१०७॥

आत्मा को ध्यावे, वह आलोचना, ऐसा कहा। आलोचना का व्यवहार कहेंगे आगे। उसका त्याग करना, उसका त्याग। वह तो व्यवहार की भाषा है।

टीका : यह निश्चय-आलोचना के स्वरूप का कथन है। भगवान आत्मा जैसा जिस प्रकार से सर्वज्ञ ने देखा और है—वैसा अन्तर में देखना, अन्दर में देखकर निहारना और स्थिर होना, इसका नाम आलोचना है, इसका नाम संवर है। भूतकाल का प्रतिक्रमण, भविष्य का (प्रत्याख्यान) आता है न? वर्तमान काल का संवर। आलोचना, वह संवर। आहाहा! कठिन बात भाई यह तो! उसमें दूसरा कुछ व्यवहार-व्यवहार साधन है या नहीं? यह विवाद सबको उठती है। सीधे आत्मा अकेला? वह व्यवहार की रुचि छोड़कर आश्रय छोड़े तब उसे आत्मा का आश्रय हो। इसलिए व्यवहार साधन-फाधन है नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, कैसा है भगवान आत्मा अन्दर? **औदारिक, वैक्रियिक, आहारक,**

तैजस और कार्मणशरीर, वे नोकर्म हैं;... इनसे रहित है। इन पाँच शरीरों से भगवान अन्दर रहित है। उसका तो ज्ञानविग्रह—शरीर है। वह चैतन्य की अरूपी मूर्ति है। इस शरीर से वह भिन्न चीज़ है। **ज्ञानावरण,...** अब आठ कर्म लेते हैं। **दर्शनावरण, अन्तराय, मोहनीय, वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र नाम के द्रव्यकर्म हैं।** वह आत्मा में नहीं। उसको नोकर्म कहा शरीर (आदि) को। दूसरी जगह भाषा आदि को कहा। यहाँ आठ कर्मरहित प्रभु है... परन्तु कर्मसहित है न? सहित है, वह तो तेरी पर्यायबुद्धि में आगे जाने पर निमित्त के ऊपर लक्ष्य जाता है, यहाँ अन्दर जाता नहीं, इसलिए सहित दिखता है। वह कर्म से रहित ही है। समझ में आया? अजीव से रहित है, उसे जीव कहते हैं। अजीव से सहित है, उसे जीव कहते हैं? आठ कर्म तो अजीव है, यह शरीर अजीव है। उससहित, उसे जीव कहते हैं, ऐसा होगा? उससे रहित, उसे जीव कहते हैं। आहाहा! अर्थात् इसे दृष्टि शरीर और कर्म से उठाकर, उनसे रहित है, उस पर दृष्टि देनी है। आहाहा! समझ में आया?

कर्मोपाधिनिरपेक्ष सत्ताग्राहक शुद्धनिश्चयद्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा से परमात्मा.. अर्थात् अपना आत्मा **इन नोकर्मों और द्रव्यकर्मों से रहित है।** नीचे है। **शुद्धनिश्चय-द्रव्यार्थिकनय...** अर्थात्? शुद्धनिश्चय अर्थात् स्व, द्रव्य अर्थात् कायम रहनेवाली चीज़, जिस ज्ञान का प्रयोजन है, ऐसा जो आत्मा, वह तो अकेला सत्ता को ही ग्रहण करता है। वह नय तो अकेली सत्ता 'है' उसे जानता है। समझ में आया? सम्यग्ज्ञानी का ज्ञान कर्म की सत्तारहित अकेली स्वभावसत्ता को ही ग्रहण करता है। भगवान आनन्द का अस्तित्व सत्ता का त्रिकाल... त्रिकाल... त्रिकाल, उसे सम्यग्ज्ञान ग्रहण करता है अर्थात् उपादेयरूप से मानता है और उसे ही आत्मा मानता है। समझ में आया? आहाहा! एक बात।

मतिज्ञानादिक वे विभावगुण हैं... लो, विभावगुण, मति-श्रुत, वह भी विभावगुण है। है पर्याय, परन्तु कर्म के निमित्त की अपेक्षा है, इसलिए उसे विभावगुण कहा है। उनसे भी वस्तु रहित है। आहाहा! **और नरनारकादि व्यंजनपर्यायें ही विभावपर्यायें हैं;...** यहाँ ...की बात पर्याय की कहलाती है। सिद्ध में व्यंजनपर्याय नहीं कही, वह यह। नर-नारकादि जो आकृति है न आत्मा के प्रदेश की अन्दर व्यंजनपर्याय, वह विभावपर्याय

है। दोनों से भगवान द्रव्यस्वभाव भिन्न है। आहाहा! **गुण सहभावी होते हैं...** वह आता है, वह दूसरा प्रकार है। वे गुण सहभावी और पर्यायें क्रमभावी, वह दूसरी चीज़। उसमें तो गुण एकसाथ रहे हुए हैं और पर्याय एक के बाद एक होती है, यह व्याख्या है।

यहाँ दूसरी व्याख्या है। मतिज्ञानादि विभाव एक साथ रहे हुए हैं, यह लेना है यहाँ। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधि, मन:पर्यय—वह विभावगुण सहभावी है। चारों पर्यायें एक साथ में है। समझ में आया? ऐसा लेना है। वह जो सहचर—सहभावी वह गुण और क्रमभावी, वह पर्याय, उसकी व्याख्या दूसरी। वह तो अन्दर आत्मा में जहाँ ज्ञान है, वहाँ दर्शन है, आनन्द है, सभी गुण एक साथ हैं, उसका नाम सहभावी। और पर्याय एक के बाद एक होती है, इसलिए क्रमभावी। ऐसा क्रमभावी पर्याय और सहभावी गुण तो सिद्ध को भी होते हैं। समझ में आया?

यह दूसरी बात है। यहाँ तो आत्मा साधक है, उसकी जो मति-श्रुतज्ञान की पर्याय एक साथ है, इससे उसे—सहभावीपर्याय को गुण कहा है। मतिज्ञान हो तो श्रुतज्ञान... चार साथ में, साथ ही है। उपयोग एक के बाद एक। कुछ न हो तो दो तो होते ही हैं मति और श्रुत तो। उपयोग का प्रश्न नहीं। उसका—पर्याय का हुंकार मति और श्रुत का तो एक साथ है। एक साथ, इसलिए सहभावी कहा। समझ में आया? और नर-नारकादि विभाव, मनुष्य की गति हो, तब देव की नहीं होती और देव की हो, तब मनुष्य की नहीं होती। यह क्रमभाव से है। व्यंजनपर्याय क्रमभाव से है। आहाहा!

परमात्मा इन सबसे (-विभावगुणों तथा विभावपर्यायों से) व्यतिरिक्त है। आहाहा! भगवान वस्तु, वह विभावपर्यायें अर्थात् गुण—एक साथ प्रगट रही हुई दशायें और क्रम-क्रम से होनेवाली गति का क्रम विषय... क्रम, उससे रहित वस्तु है। अकेली सत्ताग्राहक दृष्टि में वह पर्याय आती नहीं। **गुण सहभावी होते हैं और पर्यायें क्रमभावी होती हैं।** यह दोनों में डालना। मतिज्ञान सहभावी है, नर-नारकादि क्रमभावी है। समझ में आया? पाठ में है या नहीं? '**विहावगुणपज्जएहिं वदिरित्तं**' ऐसा जो भगवान आत्मा, ऐसा जो परमात्मा, इन सबसे से व्यतिरिक्त है। आहाहा!

उपरोक्त नोकर्मों और द्रव्यकर्मों से रहित तथा उपरोक्त समस्त विभावगुणपर्यायों

से व्यतिरिक्त तथा स्वभावगुणपर्यायों से संयुक्त,... लो, अपना स्वभाव गुण और पर्याय, उससे सहित। पर्याय का अर्थ—गुण के भेदवाला, ऐसा। गुण और पर्याय से... त्रिकाल निरावरण निरंजन परमात्मा, ऐसा। वापस यह कहते हैं। मूल तो स्वभाव गुण और पर्याय अर्थात् सब भेद, उनसे अभेद है एकाकार। **त्रिकाल-निरावरण निरंजन परमात्मा को...** ऐसा जो तीनों काल में निरावरण... अथवा इस गुणपर्याय में अगुरुलघुस्वभावपर्याय भी आती है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, वह नहीं अभी नहीं। अगुरुलघु की पर्याय है न स्वभावपर्याय, ऐसे स्वभावगुणपर्यायों से संयुक्त **त्रिकाल-निरावरण निरंजन परमात्मा को...** ऐसे तो पर्याय है एक समय की अवस्था, परन्तु उसे अपेक्षा से बात की है उसकी। स्वभावगुणभेद, ऐसा लें तो अधिक ... आवे। स्वाभाविक गुणभेदों से सहित है। त्रिकाल, हों!

ऐसा त्रिकाल निरावरण निरंजन परमात्मा... आहाहा! **त्रिगुप्ति गुप्त (-तीन गुप्ति द्वारा गुप्त ऐसी)...** मन-वचन से हटकर **परमसमाधि द्वारा...** आलोचना है न! वीतरागी पर्याय द्वारा **जो परम श्रमण सदा अनुष्ठान समय में...** उस अन्तर की रमणता के काल में.... आहाहा! आलोचना है न! **परमसमाधि द्वारा...** वह पर्याय है। **जो परम श्रमण...** परम श्रमण... आहाहा! सबको परम लागू करते हैं। **सदा अनुष्ठान समय में...** उस स्वरूप के आचरण के काल में उसका अनुष्ठान करते हैं धर्मी। अनुष्ठानस्वरूप में रमना, वह स्वरूप का अनुष्ठान है। अनुष्ठान कहो, आचरण कहो, आचार कहो—यह स्वरूप का अनुष्ठान है। पंच महाव्रतादि विकल्प, वह नहीं। उनसे तो रहित कहा पहले।

ऐसी परमसमाधि द्वारा... लोगस्स में आता है 'समाहिवरमुत्तं दिंतु'। नहीं आता? लोगस्स में आता है। उसके अर्थ भी कौन करे? उसमें क्या समझे? हाँक रखे। 'अेवं मये अभित्त्थुया विहुयरयमला पहिणजरमरणां... समाहिवरमुत्तं दिंतु।' नेमचन्दभाई! आता है न लोगस्स में? 'समाहिवरमुत्तं दिंतु...' हे प्रभु! हमारे आनन्द की समाधिरूपी वर-वरदान हमको दो। हमारे दूसरा कुछ नहीं चाहिए। आहाहा! बड़ी बातें... साधारण

मनुष्यों के लिये कुछ करने का... ? साधारण मनुष्य आत्मा है ही नहीं, सुन न! वह तो असाधारण भगवान है। आहाहा! उसे तो साधारण रूप से आक्षेप देता है। क्योंकि साधारण के लिये कुछ दूसरा होगा। (दूसरा) धूल भी नहीं, सुन न! आत्मा ही साधारण नहीं, असाधारण है। समझ में आया ?

अनुष्ठान समय में... भाषा क्या की! परमात्मप्रकाश में आता है न ? उस काल में उसे उपादेय है, अन्दर रमे तब। आहाहा! **अनुष्ठान समय में...** ऐसे अन्तर में चैतन्य भगवान पूर्ण परमात्मा को दृष्टि में लिया है और स्थिरता के काल में वह स्थिर हुआ है। उसे अनुष्ठान यह करने का है। कहो, समझ में आया ? साधु को सवेरे-शाम ऐसा करना, ढींकणा करना, ढींकणा करना। यह उसका अनुष्ठान है, कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : समाधि को अनुष्ठान नहीं कहा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सब एक ही हुआ। अलग-अलग प्रकार से (कहते हैं)। समाधि द्वारा अनुष्ठान के काल में अर्थात् अन्दर रमणता के काल में... सब भाषा भिन्न-भिन्न रूप से समझायी है।

वचनरचना के प्रपंच से (-विस्तार से) पराङ्मुख... विकल्प और वाणी छोड़कर (अर्थात्) उनसे पराङ्मुख। स्व से सन्मुख। स्व से सन्मुख, विकल्प और वाणी से विमुख, आहाहा! समझ में आया ? ऐसी धर्मकथा कैसी होगी ? अधिक लोगों में तो लोग प्रसन्न हों.... खोटे से प्रसन्न हों ? यह तो अनादर करते हैं। समझ में आया ? व्यवहार का पोषण करो, व्यवहार की देशना दो। ऐई! आहाहा! भगवान! क्या करता है ? भाई! तू कहाँ खड़ा है ? क्या करता है यह ? उस दुःख की खान में खड़ा है, भाई! व्यवहार के पोषक तो दुःख की खान में खड़े हैं। आहाहा! भगवान आनन्द का धाम, ऐसा निजात्मा—परमात्मा पूर्णानन्द प्रभु के स्वसन्मुख होकर, स्वसन्मुख के आचरण काल में पर से विमुख होकर **ध्याता है,... 'अप्पाणं'** ऐसा लेना है न! पाठ है न यह। **'अप्पाणं जो झायदि'** ऐसे से रहित होकर ऐसे जो गुण से सहित है, उसे जो ज्ञान में, श्रद्धा में ध्याता है। आहाहा!

उस भावश्रमण को सतत निश्चय आलोचना है। निरन्तर उसे आलोचना है।

उसे निरन्तर स्वभाव सन्मुख का अनुष्ठान—आचरण वर्तता ही है। आहाहा! लो, ठीक बात आयी। दोपहर में आज आलोचना का है न! यह भी आलोचना वाँचा। **सतत निश्चय आलोचना है।** आहाहा! निरन्तर सन्तों को, जो ऐसे वीतरागी सन्त हों उन्हें। द्रव्यस्वभाव में स्थिर हैं, विकल्प से हट गये हैं... नास्ति से बात ली है। उसे निरन्तर आनन्द के आचरण में उसे आलोचना ही है। गजब बातें, भाई! निश्चय की बात। यह तो एकान्त निश्चय हो जाये। अभी कुछ व्यवहार हो तो होता है, ऐसा कहो तो अनेकान्त—ऐसा नहीं। वही अनेकान्त। निश्चय के स्वभाव में आनन्द प्रगटे, व्यवहार से प्रगटे नहीं, इसका नाम अनेकान्त कहा जाता है।

वे कहे, जरा व्यवहार से भी होता है, निश्चय से होता है, तो अनेकान्त कहलाता है। अरे भगवान! वह तो दोनों एक हुई। दो चीज़ अत्यन्त भिन्न है। दो की दशा में अन्तर, दिशा में अन्तर, फल में अन्तर। आहाहा! राग है, वह दोष है, उसका फल दुःख है, उसका फल बन्धन है, उसके फल में संयोग आता है। अराग, वह आत्मा की निरुपाधि दशा है, उसकी दिशा द्रव्य के ऊपर है, उसकी दशा वीतरागी है, उसका फल आनन्द है। आहाहा! ऐसा अर्थ किया, लो, गाथा का। **'णोकम्मकम्मरहियं विहावगुण-पज्जएहिं वदिरित्तं। अप्पाणं'** ऐसे आत्मा को जो ध्याता है, उस आत्मा को विषय बनावे, विषय बनाकर स्थिर हो, ध्येय करके ध्यान में उसे ध्यावे, उसे आलोचना होती है। आहाहा! समझ में आया? निश्चय आलोचना उसे होती है। अब समयसार का दृष्टान्त (उद्धरण) देते हैं। समयसार में आता है न। आलोचना का कलश... कलश।

मोहविलासविजृम्भितमिदमुदयत्कर्म सकलमालोच्य।
आत्मनि चैतन्यात्मनि निष्कर्मणि नित्यमात्मना वर्ते॥

श्लोकार्थः—मोह के विलास से फैला हुआ जो यह उदयमान (-उदय में आनेवाला) कर्म,... पुण्य-पाप आदि विकल्प सर्व, **उस समस्त को आलोचकर...** समस्त को छोड़कर... लोंच करते हैं न, लोंच नहीं करते ऐसे? यह लोंच है। मूल में से ऐसा सब निकाल डाले। हाँ, हाँ, ऐसा है न, ऐसा आता है। बहुत... मूल में से उखाड़ डालना। रागादि का विकल्प मूल में से उखाड़ डाल। यह तो नास्ति से कथन है। परन्तु

भगवान आत्मा की ओर ढला, वहाँ मूल में उत्पन्न होते नहीं, उसे 'उखाड़ डालने का' कहा जाता है।

(-उन सर्व कर्मों की आलोचना करके), मैं.... वह मैं, ऐसा मुनि कहते हैं। आहाहा! कोई करे उसे ऐसे हो, ऐसा नहीं है। मैं ऐसा करता हूँ, उसमें मुझे ऐसा होता है, ऐसा कहते हैं। **चैतन्यस्वरूप आत्मा में... निष्कर्म ऐसा....** भगवान आत्मा **(अर्थात् सर्व कर्मों से रहित)...** होकर... कर्म नहीं, ऐसा जो भगवान आत्मा... चैतन्यस्वरूप उसका, वापस ऐसा। उसका स्वरूप क्या है ? कि चैतन्यस्वरूप आत्मा। यह तो निष्कर्म अर्थात् कर्म से रहित, इतना। अब चैतन्यस्वरूप आत्मा... वह कैसा है ? तब उसका स्वरूप क्या ? कर्मरहित सही। निष्कर्म, परन्तु उसका स्वरूप अस्ति क्या ? चैतन्य ज्ञायकभाव-स्वरूप आत्मा। आहाहा!

यह सर्वज्ञ परमात्मा का पंथ है। ऐसा मार्ग है, ऐसा पहले श्रद्धा और समझ में तो ले। समझ में आया? तो उसे मार्ग निकलेगा। परन्तु श्रद्धा में और समझण में विपरीतता है, उसे मार्ग की ओर झुकने की रुचि का वीर्य आयेगा नहीं। कहते हैं, **आत्मा से ही (-स्वयं से ही) निरन्तर वर्तता हूँ।** अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं। चैतन्यस्वरूप आत्मा, यह सब कर्मों को छोड़कर अर्थात् लक्ष्य छोड़कर, मेरे स्वरूप में मैं वर्तता हूँ। देखो सन्तों! इसका नाम चारित्र और इसका नाम आलोचना और इसका नाम संवर है। बाहर से ऐसा कहे कि मुझे संवर का प्रत्याख्यान, ढींकणा... तब क्या संवर अभी (उसकी खबर नहीं होती)। अटककर कहाँ जाना और वह है कैसा—इसकी खबर बिना संवर की उत्पत्ति नहीं होती। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

-:प्रकाशक:-
श्री कुंदकुंद-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,
विले पार्ला, मुंबई
www.vitragvani.com